सचित्र श्री छेद सूत्र

(दशा-कल्प-व्यवहार)

प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि

ILLUSTRATED Shri Chhed Sutra

(DASHA - KALPA - VYAVHAR)

Pravartak Shri Amar Muni

श्रुतकेवलि श्री भद्रबाहु संकलित

छेद सूत्र

दशाश्रुतस्कंध ■ बृहत्कल्प ■ व्यवहार

सचित्र हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद-विवेचन युक्त

✻ प्रधान सम्पादक ✻

उत्तर भारतीय प्रवर्तक जैनधर्म दिवाकर

श्री अमर मुनि जी महाराज

✻ सह-सम्पादक ✻

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

पद्म प्रकाशन

पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. द्वारा सम्प्रेरित सचित्र आगममाला का सत्रहवाँ पुष्प

■ छेद सूत्र
[दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प, व्यवहार]

■ *प्रधान सम्पादक*
उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक जैनधर्म दिवाकर
श्री अमर मुनि जी महाराज

■ *सह-सम्पादक*
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

■ *अंग्रेजी अनुवादक*
सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन

■ *प्रथमावृत्ति*
वि स. २०६१
ईस्वी सन् २००५, मार्च

■ *चित्रांकन*
डॉ त्रिलोक शर्मा

■ *प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान*
पद्म प्रकाशन
पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

■ *मुद्रक एवं वितरक*
श्री दिवाकर प्रकाशन
ए-७, अवागढ हाउस, एम जी रोड, आगरा-२८२ ००२
दूरभाष (०५६२) २८५११६५

■ *मूल्य*
छह सौ रुपया मात्र (६००/- रुपये)

COMPILED BY SHRUT KEVALI SHRI BHADRABAHU

CHHED SUTRA

Dashashrut Skandh ■ Brihat Kalp ■ Vyavahar
Illustrated Hindi-English Translation and Explanation

* EDITOR-IN-CHIEF *

Uttar Bharatiya Pravartak Jain Dharma Diwakar
Shri Amar Muni ji Maharaj

* ASSOCIATE-EDITOR *

Srichand Surana 'Saras'

PADMA PRAKASHAN

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

THE SEVENTEENTH NUMBER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES INSPIRED BY UTTAR BHARATIYA PRAVARTAK GURUDEV BHANDARI SHRI PADMACHANDRA JI M. S.

- CHHED SUTRA

  [Dashashrut Skandh, Brihat Kalp, Vyavahar]

- *Editor in Chief*

  Uttar Bharatiya Pravartak Jain Dharma Diwakar

  Shri Amar Muni ji Maharaj

- *Associate Editor*

  Srichand Surana 'Saras'

- *English Translator*

  Shravak Shri Rajkumar Jain

- *First Edition*

  V Samvat 2061

  A.D 2005, March

- *Illustrator*

  Dr Trilok Sharma

- *Publisher and Distributor*

  Padma Prakashan

  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040

- *Printers & Distributor*

  Shri Diwakar Prakashan

  A-7, Awagarh House, M G Road, Agra-282 002

  Phone (0562) 2851165

- *Price*

  Six Hundred Rupees only (Rs 600/-)

राष्ट्रसन्त पूज्य गुरुदेव
उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक
भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म.
की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

अमर मुनि
(उत्तर भारत प्रवर्त्तक)
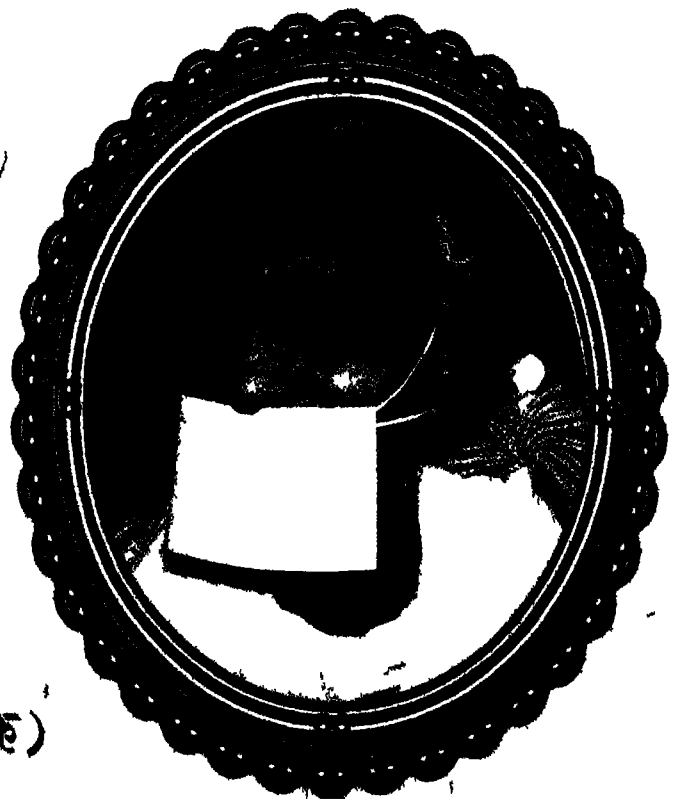
परम विदुषी उप प्रवर्तिनी महासती श्री आज्ञावती जी म०

श्री बोधराज सन्तोष रानी जैन
घरोंडा मण्डी

श्री अनिल मंजू जैन
विश्वा अपार्टमेंट, दिल्ली

डॉ० नीरज मोनिका जैन
पश्चिम विहार, दिल्ली

श्री सुरेश सुनीता जैन
अग्र नगर, लुधियाना

श्री अभय कुमार जी रेणु जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली

समाजरत्न श्री हीरा लाल जी जैन
लुधियाना
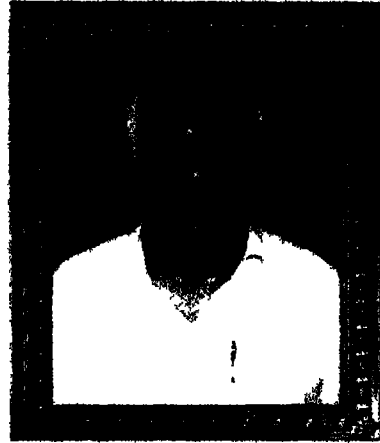
श्री श्याम लाल जी जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली

लाला सुण्डे लाल जी जैन
पानीपत
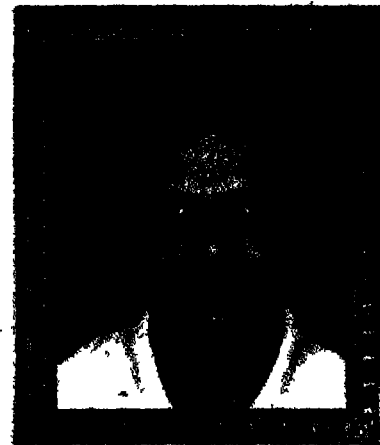
श्री राजपाल जी जैन
सोनीपत

माता श्रीमती शकुन्तला देवी जैन
पश्चिम विहार, दिल्ली
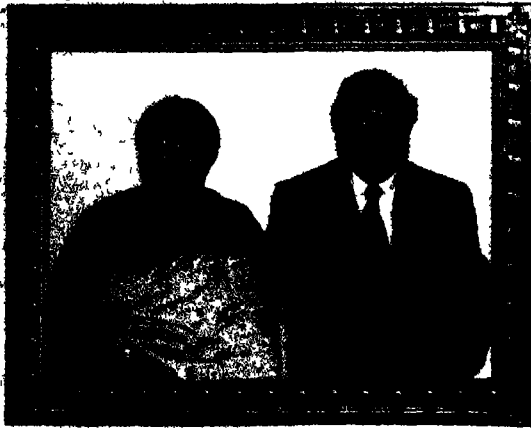
श्री सी. पी. जैन, डॉ वीना जैन
पश्चिम विहार, दिल्ली

श्री शांति लाल जी मीना कोठारी
पश्चिम विहार, दिल्ली

श्री रमेशभाई शाह, मालती बेन शाह
गुजरात विहार, दिल्ली

श्री विजय कुमार जी आशा रानी जैन
शास्त्री नगर, लुधियाना

प्रकाशकीय

यह बताते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि श्रुत-सेवा के महान् ऐतिहासिक कार्य मे हम अपनी लगभग आधी मजिल पार कर चुके हैं। अब तक १८ आगम ग्रन्थ चित्रो सहित हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित कर चुके है। इस वर्ष दो आगम ग्रन्थ श्री भगवती सूत्र भाग-१ तथा तीन छेद सूत्र का प्रकाशन हो रहा है।

श्री भगवती सूत्र जैन तत्त्वज्ञान का महासागर है। इसमें अमूल्य ज्ञान की एक से एक दीप्तिमान मणियाँ है।

दूसरे ग्रन्थ मे तीन छेद सूत्रों का प्रकाशन किया गया है। छेद सूत्र जैनश्रमणो के आचार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आगम है। जब तक इन सूत्रों का अर्थ सहित अध्ययन नहीं किया जाय, तब तक श्रमण अग्रणी या सिघाडा प्रमुख बनकर विचरण भी नही कर सकता। इसे श्रमण धर्म की आचारसंहिता या सविधान पुस्तक भी कहा जा सकता है। ये दोनो ही आगम अपने-अपने स्थान पर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अस्तु

उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक पूज्य गुरुदेव परम श्रद्धेय भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. की हार्दिक इच्छा और प्रबल प्रेरणा से उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म ने श्रुत-सेवा का यह महान् कार्य प्रारम्भ किया और वे निरन्तर एकचित्त, एकलक्ष्य होकर इस कार्य सम्पादन मे जुटे हुए है। हमे अत्यन्त प्रसन्नता है कि पूज्य गुरुदेवो के आशीर्वाद से तथा उनके प्रति असीम भक्तिभाव से प्रेरित होकर सहयोगदाता, उदार सज्जन सहयोग का हाथ बढा रहे है और हमे उत्साहित करते है कि इस महान् ज्ञान यज्ञ की ज्योति जलती रहनी चाहिए। हम सभी सहयोगी बन्धुओ के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शन करते हुए इस वर्ष में दोनो आगम ग्रन्थ पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत कर रहे हैं।

आगमो के बहुत ही जिम्मेदारीपूर्ण सम्पादन कार्य में पूज्य गुरुदेव के अन्तेवासी श्री वरुण मुनि जी म. बडी तल्लीनता के साथ जुटे हुए हैं। साथ ही विद्वान् सम्पादक श्रीचन्द जी सुराना 'सरस', श्री सुरेन्द्र जी बोथरा तथा जैन आगमों के गहन अभ्यासी स्वाध्यायी सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन का भी हमे पूर्ण सहयोग प्राप्त हो रहा है। हम आप सबके बहुत-बहुत आभारी है।

इन आगमो के प्रकाशन का हमारा एक ही लक्ष्य है, एक ही उद्देश्य है कि जिनशासन की आधारभूत जिनवाणी का घर-घर मे प्रचार-प्रसार हो और प्रत्येक साधु-सतियाँ तथा विद्वान् आगमप्रेमी सद्‌गृहस्थ इनका अधिकाधिक लाभ उठाये और स्वाध्यायशील बने। आइए आप भी हमारे उद्देश्यो को सफल बनाने में आगम स्वाध्याय का सतसकल्प लेवे। धन्यवाद !

महेन्द्रकुमार जैन
अध्यक्ष
पद्म प्रकाशन

PUBLISHER'S NOTE

We are pleased to convey to our readers that we have come almost half way on the path of this historical mission of service to the scriptures. Till date we have published eighteen *Agams* with Hindi-English translations and illustrations. In the current year we are bringing out two *Agams*—*Shri Bhagavati Sutra*, Volume-1 and three *Chhed Sutras* in one volume.

Shri Bhagavati Sutra is an ocean of Jain metaphysics. It contains increasingly brilliant gems of invaluable knowledge.

The second book contains three *Chhed Sutras*, which form an important part of the *Agamic* literature on codes of ascetic praxis and conduct of Jain ascetics. A *shraman* cannot become a successful leader or head of a group of ascetics as long as he does not study the text and meaning of these *Sutras*. This group of scriptures can easily be called the book of codes or the constitution of *Shraman* religion. Both these *Agams* occupy equally high place in their respective fields.

Honouring the intense desire of and inspiration by late Gurudev Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandra ji M. this project was launched by Uttar Bharatiya Pravartak Shri Amar Muni ji M. He continues to devote his unwavering and earnest attention to advancing and successfully concluding this mission.

Many generous and devout guru-devotees from different areas have displayed their devotion for the Guru and scriptures through their financial contributions. They encourage us and ask us to ensure that the pious flame of this mission of knowledge should continue burning We express our sincere gratitude for them all, and present these two *Agams* this year

Pujya Gurudev's able disciple Shri Varun Muni ji M shares the responsibility of editing the *Agams* with all sincerity and devotion. We are getting regular assistance of contributing scholars like Shri Srichand ji Surana 'Saras', Agra; Shri Surendra ji Bothara, Jaipur, and Shri Rajkumar ji Jain, Delhi. We are, indeed, indebted to them.

Our singular aim and purpose of publication of these *Agams* is that the Word of the Jina, the very foundation of Jain religion, may reach every single house as well as every *Sadhu* and *Sati*, and every reader with scholarly bent may take maximum advantage of this to indulge in regular studies. Come, take a resolve of regular study of *Agams* and join us in our mission Thanks !

—*Mahendra Kumar Jain*
PRESIDENT
Padma Prakashan

स्वकथ्य

वीतरागी वाणी के रूप में वर्तमान मे मान्य बत्तीस आगमो के नाम है–ग्यारह अग, बारह उपाग, चार मूल, चार छेद, एक आवश्यक सूत्र। चार छेद सूत्रो के नाम इस प्रकार है–

(१) दशा श्रुतस्कन्ध, (२) बृहत्कल्प, (३) व्यवहार, (४) निशीथ।

छेद सूत्र : विशुद्धि के शास्त्र

जिस प्रकार आचाराग, दशवैकालिक आदि आगमो में श्रमण–आचार का मुख्य विषय है, उसी प्रकार छेद सूत्रो मे श्रमण आचार की विशुद्धि के प्ररूपक नियमोपनियमो का कथन है।

निर्दोष आचार पालन पर जैनधर्म का मुख्य बल है। आचार–शुद्धि के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का वर्णन इन आचार ग्रन्थो मे उपलब्ध है। आचार पालन की तरह आचार की शुद्धि पर भी बहुत ध्यान दिया गया है। यहाँ तक कि स्वप्न में भी यदि आचार नियमो के विपरीत हो जाये तो उसका भी प्रायश्चित्त करना चाहिए। आचार मे दोष लगने के अनेक कारण हो सकते है। आगमो मे दस प्रकार की प्रतिसेवना का वर्णन है, अर्थात् दस कारणो से आचार में दोष लग सकता है। उसमे प्रमाद, कषाय, रागभाव, विस्मरण, आशंका, सभ्रम, भय तथा विशेष कठिन परिस्थिति आदि अनेक कारणो से साधु अकृत्य–अकरणीय का सेवन कर सकता है। किन्तु आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि करके तुरन्त उसकी शुद्धि कर लेना चाहिए। शुद्धि के लिए जिन आगमो में विशेष रूप से विधान तथा नियमोपनियम है, उन आगमो का नाम है–छेद सूत्र।

'छेद' का अर्थ

'छेद' शब्द का सामान्य अर्थ है, काटना। जैसे शरीर के किसी अग मे सडांध पैदा हो जाये, अग विकृत या विषाक्त हो जाये तो उस अंग की शुद्धि के लिए मलहम आदि भी लगाई जाती है, अथवा आवश्यकता होने पर उस अंग को काटना या छेदना भी पड सकता है। इसी प्रकार संयम मे दोष लगने पर उसका तप रूप प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि की जा सकती है, अथवा कभी आवश्यक होने पर चारित्र का छेदन कर (दीक्षा पर्याय काटकर) भी उसकी शुद्धि करनी पडती है। इस प्रकार जिन सूत्रो मे यह विधान है, उन सूत्रों का नाम ही 'छेद सूत्र' प्रसिद्ध हो गया।

कुछ आचार्यों का मानना है कि पाँच चारित्र मे पहला सामायिक चारित्र अल्प कालीन है, दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र दीर्घकालीन चारित्र है। उसी मे दोष लगने की अधिक सभावनाएँ रहती है। अत छेदोपस्थापनीय चारित्र की विशुद्धि के प्ररूपक आगम भी 'छेद' नाम से जाने जाते है। आचार्यों ने कहा है–

जम्हा तु होति सोधी छेद सुयत्थेण खलितचरणस्स।
तम्हा छेय सुयत्थो बलवं मोत्तूण पुव्वगतं। –व्यवहारभाष्य १८२९

चारित्र मे किसी प्रकार की स्खलना होने पर, दोष लगने पर छेद सूत्रो के आधार पर उसकी शुद्धि होती है। इसलिए पूर्वगत सूत्रों को छोडकर बाकी सूत्रो मे अर्थ की दृष्टि से छेद सूत्र बलवान है, महत्त्वपूर्ण है।

निशीथभाष्य मे (५१८४) में कहा है-"छेद सूत्रो के आधार पर चारित्र की शुद्धि होती है। इसलिए ये 'छेयं' (छेक) अर्थात् उत्तम सूत्र है।"

चार छेद सूत्रो मे निशीथसूत्र सबसे गम्भीर और रहस्यमय सूत्र है। 'निशीथ' शब्द का अर्थ है-रात्रि का मध्य काल। इसका आशय है-जो सूत्र एकान्त में, या विशेष योग्य पाठक को, योग्य क्षेत्र-काल में पढाया जाता है वह निशीथ है। जबकि बाकी तीन सूत्र दशा, कल्प, व्यवहार अपने निश्चित समय पर आगम पढने की पात्रता आने पर पढाये जाते है।

व्यवहारभाष्य मे बताया है-"ये चार सूत्र प्रत्याख्यान पूर्व की तृतीय आचारवस्तु से लिए गये हैं। इनमे से दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प सूत्र तथा व्यवहार सूत्र का निर्यूहण चौदह पूर्वधारी श्रुतकवेली भद्रबाहु स्वामी ने किया। किन्तु निशीथ के सम्बन्ध मे मतभेद है। श्रमण जीवन मे इन तीनो छेद सूत्रो के पढने को विशेष आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसलिए मैने इस आगम शृखला मे तीन छेदसूत्रो का सम्पादन-विवेचन किया है।

छेद सूत्रों का वर्ण्य-विषय

छेद सूत्रों की विषय-वस्तु पर विचार करने से उसे चार भागो मे बाँटा जा सकता है-(१) उत्सर्ग मार्ग, (२) अपवाद मार्ग, (३) दोष-सेवन, (४) प्रायश्चित्त विधान।

(१) जिन नियमो का पालन करना प्रत्येक साधु-साध्वी के लिए अनिवार्य है। उन नियमो का प्रामाणिकता के साथ शुद्ध पालन करना उत्सर्ग मार्ग है। निर्दोष चारित्र की पालना करने वाला श्रमण प्रशसनीय माना गया है। उत्सर्गमार्ग को सामान्य आचार विधि कह सकते है।

(२) अपवाद मार्ग का अर्थ है, विशेष विधि। यह दो प्रकार की है-(१) निर्दोष विशेष विधि, (२) सदोष-विशेष विधि।

उत्तर गुण प्रत्याख्यान में जो भी आगार रखे जाते है, वे सब निर्दोष विशेष विधि है। अर्थात् निर्दोष अपवाद है। निर्दोष अपवाद का कोई प्रायश्चित्त नही होता। कभी-कभी मन न होते हुए भी विशेष परिस्थिति में विवश होकर या परिस्थिति के साथ समझौता करने की दृष्टि से जिस दोष का सेवन किया जाता है अथवा करना पडता है वह है-सदोष विशेष विधि। उक्त सदोष अपवाद सेवन का ही प्रायश्चित्त लिया जाता है।

(३-४) दोष का अर्थ है-उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का भग करना। और उस दोष की विशुद्धि के लिए की जाने वाली विधि या प्रक्रिया प्रायश्चित्त कहलाती है। प्रायश्चित्त के दस प्रकार है। कोई विशेष प्रबल कारण उपस्थित होने पर, अनिच्छापूर्वक, प्रमाद के कारण अथवा विस्मरण, भ्रम आदि कारणों से दोष सेवन हो जाता है या किया जाता है उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त ग्रहण करना। तथा किस दोष-शुद्धि के लिए कौन-सा, कितना प्रायश्चित्त देना इन सब विषयो का वर्णन छेद सूत्रो मे है।

यह ध्यान रखने की बात है कि छेद प्रायश्चित्त से केवल उत्तर गुणो मे लगे दोष की शुद्धि होती है। मूल गुणो में लगे दोष के लिए तो आगे के मूलार्ह आदि तीन प्रायश्चित्त दिये जाते हैं।

तीन प्रकार के 'कल्प'

छेद सूत्रो में तीन प्रकार के कल्प बताये हैं-(१) विधि कल्प, (२) निषेध कल्प, (३) विधि-निषेध कल्प। जिन सूत्रों मे **'कप्पइ'** शब्द का प्रयोग है वे विधि कल्प के सूत्र हैं। जिन सूत्रों में **नो कप्पइ** शब्द का प्रयोग है, वे निषेध कल्प के सूत्र हैं। जिनमे कप्पइ-नो कप्पइ दोनों का प्रयोग है, वे विधि-निषेध कल्प है। कुछ सूत्र ऐसे भी हैं, जिनमें 'कप्पइ नो कप्पइ' दोनो का ही प्रयोग नहीं है, वे विधान सूत्र हैं।

कुछ विधि-निषेध, निर्ग्रन्थो के लिए है, कुछ निर्ग्रन्थियों के लिए, कुछ दोनों के लिए समान है। इस प्रकार इन तीन छेद सूत्रों मे विधि मार्ग, निषेध मार्ग अर्थात् उत्सर्ग मार्ग, अपवाद मार्ग और उनके प्रायश्चित्त का वर्णन है। एक प्रकार से इन छेद सूत्रो को श्रमण जीवन की आचार-संहिता, अथवा दण्ड संहिता भी कहा जा सकता है।

प्राचीन धर्म सम्प्रदायों के सभी परम्पराओ मे भिक्षुओं, श्रमणो व सन्यासियो के आचार विधान में दोष विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त आदि का वर्णन मिलता है। जैसे निर्ग्रन्थो के लिए छेदसूत्र हैं, उसी प्रकार बौद्ध भिक्षुओ के प्रायश्चित्त सम्बन्धी वर्णन विनय पिटक मे, वैदिक परम्परा के संन्यासी वर्ग के लिए श्रोत सूत्र तथा स्मृति ग्रन्थो मे इस प्रकार के वर्णन उपलब्ध है। सामान्य मानव के आचार में भूलों की सम्भावना रहती है और उसकी शुद्धि के लिए दण्ड या प्रायश्चित्त का विधान भी आवश्यक है। शासन की भाषा मे जिसे दण्ड कहा जाता है, उसे आध्यात्मिक भाषा मे प्रायश्चित्त कहा गया है। अन्तर यह है कि दण्ड तो जबर्दस्ती भी दिया जाता है, थोपा भी दिया जाता है, परन्तु प्रायश्चित्त कभी जबर्दस्ती नही होता। जब साधक की आत्मा जागती है, तब अपनी अन्त प्रेरणा से स्व-कृत पाप व दोष के प्रति ग्लानि होने पर पश्चात्ताप करता है, गुरुजनो के समक्ष उसकी शुद्धि के लिए उपस्थित होकर निवेदन करता है "भगवन् ! मैने अमुक परिस्थिति मे अमुक दोष का सेवन किया है, उसका प्रायश्चित्त देकर मेरी आत्मा को शुद्ध करने का मार्ग बताने की कृपा करे।"। दण्ड और प्रायश्चित्त में यह बहुत बडा अन्तर है। छेद सूत्रो का मुख्य विषय सयम-विशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान करना है।

इस पुस्तक मे तीन छेद सूत्र है। जिनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(१) दशाश्रुतस्कन्ध-समवायाग तथा उत्तराध्ययन आदि सूत्रो मे कल्प तथा व्यवहार सूत्र के पूर्व आचार दशा (आयार दशा) का नाम आता है। छेद सूत्रों में यह प्रथम सूत्र है। आचारदशा नाम इसके विषय के अनुरूप ही है, क्योंकि इसके दसो अध्ययनों मे साधु के आचार का विषय ही है।

जैसे असमाधिस्थान, सबल दोष, आशातना आदि। इनमे जीवन व्यवहार की सूक्ष्म तथा छोटी-छोटी बातो पर भी ध्यान दिया गया है। व्यवहार स्वच्छ, उच्च तथा सबके अनुकूल रखना व्यवहार शुद्धि है।

इस सूत्र का आठवाँ अध्ययन 'पर्युषणा कल्प' है। इसमे पहले केवल साधु समाचारी का ही वर्णन था। तीर्थंकर चरित्र तथा स्थविरावली का विषय इसमे कब से जुडा यह निश्चित नही कहा जा सकता, किन्तु यह तीनों प्रसंग जुडने से इस पर्युषणा कल्प को 'कल्प सूत्र' के नाम से अलग कर दिया गया। जिसका पर्युषण पर्व के दिनों में वाचन करने की परम्परा चल पड़ी।

स्थानांग सूत्र मे इसके दस अध्ययनो के नाम है। दस अध्ययन होने से 'दशा' नाम प्रचलित होना सम्भव लगता है। इस कारण आचारदशा का प्रचलित नाम दशाश्रुतस्कंध अधिक प्रसिद्ध हो गया।

दशाश्रुतस्कध का पाठ सम्पादन करने व अनुवाद विवेचन लिखने मे आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म सा द्वारा सम्पादित प्रति (सह सम्पादक डॉ. सुव्रत मुनि शास्त्री) मुख्य आधारभूत रही है। किन्तु इस प्रति में प्राचीन प्रतियो के आधार पर पाठ लिया हुआ है। इसे प्राचीन प्रतियो के प्राप्त पाठ आधारों पर पुनः संशोधित कर, बीच–बीच मे छूटे हुए पाठ सयोजित कर आगम अनुयोग प्रवर्तक उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' ने 'आचारदशा' का सुन्दर सम्पादन किया है। आचार्य श्री घासीलाल जी म. ने भी प्राचीन टीका ग्रन्थों के आधार पर 'दशाश्रुतस्कन्ध' सूत्र पर संस्कृत टीका लिखी है। मैने उक्त तीनो प्रतियो का अवलोकन कर यह सम्पादन विवेचन किया है।

दशाश्रुतस्कन्ध का नवम अध्ययन मोहनीय स्थान और दशम अध्ययन आयति स्थान तो श्रमण तथा श्रमणोपासक दोनो के लिए ही विशेष मननीय है। मोहनीय स्थान का वर्णन तो पूर्ण रूप से मनुष्य की सामाजिक व नैतिक चेतना को परिष्कृत करने वाला और आदर्श आचार सहिता का सूचक है।

(२) **बृहत्कल्प सूत्र**–इस सूत्र का प्राचीन नाम 'कप्पसुत्त है, किन्तु जब से पर्युषणा कल्प को कल्प सूत्र के रूप मे प्रसिद्धि मिली तब से उससे भिन्नता सूचित करने के लिए 'कप्पसुत्त' को बृहत्कल्प सूत्र सज्ञा दे दी गई। नन्दी सूत्र मे इसका नाम **'कप्पो'** ही है । बृहत्कल्प नाम किसी प्राचीन सूची में नही मिलता है।

'कल्प' शब्द के अनेक अर्थ होते है। मुख्य रूप मे आचार, मर्यादा, धर्म–मर्यादा तथा राजनीति की मर्यादा का सूचन 'कल्प' शब्द से होता है। बारह कल्प देवलोको मे राजनीति की मर्यादा मुख्य होने से उन्हे 'कल्पविमान' कहा जाता है।

प्रस्तुत सूत्र मे कल्प सूत्र धर्म–मर्यादा या आचार–मर्यादा का सूचक है। जिस सूत्र मे धार्मिक जीवन की आचार–मर्यादा आदि का कथन है–उसे 'कप्प सुत्त' कल्प सूत्र कहा है। इसके छह उद्देशक या अध्ययन हैं।

कप्प सुत्त मे ८० विधि निषेध कल्प है। इनमे पाँच महाव्रत तथा पाँच समितियो की शुद्धि से सम्बन्धित ८० प्रकार के विधि–निषेध का वर्णन है। सबसे अधिक एषणा समिति से सम्बन्धित विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

कल्प–अकल्प के विधि और निषेध का ज्ञान करना श्रमण जीवन का मुख्य आवश्यक विषय है। इस दृष्टि से इस सूत्र की श्रमण जीवन मे बहुत अधिक उपयोगिता है।

(३) **व्यवहार सूत्र**–यह तृतीय छेद सूत्र है। व्यवहार सूत्र की वैयाकरणीक परिभाषा है। वि + अव + हर = व्यवहार। जिससे विवादित विषयो का अवहरण अर्थात् निराकरण तथा सशयास्पद विषयो का निर्धारण होता है, उस शास्त्र का नाम है व्यवहार। जैसा कि कहा गया है–

नाना सन्देहहरणात् व्यवहार इति स्थितिः। –कात्यायन व्याकरण

व्यवहार सूत्र के भाष्यकार (पीठिका गाथा २) का कथन है-इस सूत्र मे व्यवहार, व्यवहारी तथा व्यवहर्तव्य ये तीन प्रमुख विषय हैं–

(१) व्यवहार अर्थात् साधन। जैसे पाँच प्रकार के व्यवहार।

(२) व्यवहारी–गण व गच्छ की शुद्धि करने वाले गीतार्थ आचार्यादि।

(३) व्यवहर्तव्य–व्यवहार करने योग्य, श्रमण–श्रमणियाँ।

कुल मिलाकर इसका भाव है, श्रमण–श्रमणियों के आचार आदि में आने वाले दोषो, अतिचारों आदि की शुद्धि रूप क्रिया (व्यवहार) का सम्पादन व्यवहारज्ञ (आचार्यादि) द्वारा किया जाने का शास्त्र–व्यवहार सूत्र है।

छेद सूत्रों में सार्वभौम सामाजिक नियम

छेद सूत्रों में केवल श्रमण के आचार–विचार का ही वर्णन नही है, किन्तु अनेक स्थानों पर सामान्य गृहस्थ जीवन में उपयोगी समाज व राजनीति के नियामक सार्वभौम सिद्धान्तो का भी वर्णन है। जैसे दशा श्रुतस्कध मे आशातना आदि का वर्णन। इसमे जीवन के सामान्य व्यवहार, बोल–चाल की सभ्यता तथा बडों के साथ किस प्रकार आदर पूर्वक व्यवहार करना।[1] इन सब बातों की सूचना है। मोहनीय स्थान में राष्ट्र के बड़े आधारभूत नेता व प्रतिष्ठित व्यक्ति की हत्या करना, अपने उपकारी का तिरस्कार व कृतज्ञता आदि विषय नैतिक दृष्टि में भी महत्त्वपूर्ण है।[2]

व्यवहार सूत्र मे तो अनेक ऐसे सूत्र है जो आज के परिप्रेक्ष्य मे भी मार्ग दर्शक बनते हैं। जैसे दोष–शुद्धि के लिए तप वहन करने वाला साधु गण से अलग रहता है। गच्छ के साधु उसके साथ कोई सम्बन्ध नही रखते, परन्तु यदि वह अस्वस्थ हो जाता है, उसे सेवा की जरूरत हो तो आचार्य आदि गण के साधुओं से उसकी सेवा करवाते है। उसे किसी प्रकार की असमाधि नहीं होने देते।[3] यदि किसी साधु ने दोष–सेवन कर लिया है, तथा वह किसी कारण से अस्वस्थ हो गया है, पागल हो गया है या भयभीत हो उठा है, तो उस दशा मे उसे गण से अलग नहीं करना चाहिए, अपितु संघ का कर्त्तव्य होता है कि उसकी योग्य सेवा, परिचर्या व चिकित्सा कराये। जब तक वह स्वस्थ चित्त न हो जाय, तब तक उसकी उचित व्यवस्था रखना सघ का कर्त्तव्य है। इसमे मानवीय संवेदना, वत्सलता व उदारता का परिचय मिलता है।

समाज की न्याय व्यवस्था मे आजकल एक विषय बहुत चर्चित हो रहा है, दोषी कौन ? जिसका दोष प्रमाणित न हो जाये या वह स्वय अपना दोष स्वीकार नहीं कर ले उसे दोषी मानना चाहिए या नही ! व्यवहार सूत्रकार कहते है–जब तक दोषी अपना दोष स्वीकार नही करे, अथवा पुष्ट प्रमाणो से वह दोषी सिद्ध न हो जाय तब तक उसे दोषी नही माना जा सकता। भले ही उसने दोष सेवन किया हो या नही किया हो। किन्तु बिना प्रमाण के उसे दोषी नही कहना चाहिए।[4]

पद की पात्रता के सम्बन्ध से भी इसी मापदण्ड को रखा है। जिसने जीवन मे कोई बडा दोष सेवन कर लिया हो, फिर भले ही उसने उसका प्रायश्चित्त किया हो, किन्तु कम से कम तीन वर्ष तक अथवा जीवन पर्यन्त भी सघ मे उसे कोई भी जिम्मेदार पद नही दिया जा सकता।[5]

गण मे कोई भी पद देने के लिए भी साधु की पात्रता देखना चाहिए। उसका आगम ज्ञान, आचार कुशलता आदि का विचार करके ही उसे पद दिया जा सकता है। जिसने 'आचार प्रकल्प' का अध्ययन नही किया है उसे संघ में कोई भी पद देना निषिद्ध है।[6]

---

१ तृतीय दशा,
२ नवमी दशा, गा १६, १४ आदि।
३ व्यवहार सूत्र उ २ सूत्र ५, ७, १२।
४ वही सूत्र २३।
५ वही उ. ३ सूत्र १३।
६ वही सूत्र ४–६।

इसी प्रकार आचार्य उपाध्याय को पद पर स्थापित करना तथा हटाने का अधिकार केवल आचार्य को ही है। सघ मे फूट डालने का प्रयत्न करने वाला साधु बडे प्रयाश्चित्त का पात्र होता है इत्यादि।[1]

इस प्रकार के अनेक प्रसग है–जो समाज, राजनीति व सघीय व्यवस्था के नियामक सिद्धान्त हैं, उनका प्रतिपादन इन सूत्रों में मिलता है। इस विषय पर विशेष अध्ययन की अपेक्षा है।

आधारभूत व्याख्या साहित्य

जैसा मैने पहले बताया है–ये तीनो छेद सूत्र श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु द्वारा पूर्वों के आधार पर रचे गये है। ये सूत्र विषय की दृष्टि से बहुत गम्भीर है। संक्षिप्त सूत्र पाठ मे उनका पूरा अर्थ समझ पाना और उसके पूर्वापर की पृष्ठभूमि को समझना बहुत ही कठिन है। इसलिए निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय भद्रबाहु) ने इन छेद सूत्रो पर निर्युक्तियाँ लिखी है। फिर इन पर चूर्णि भी लिखी गई है। तथा बृहत्कल्प तथा व्यवहार सूत्र पर भाष्य (विस्तृत प्राकृत व्याख्या) भी मिलते है। बृहत्कल्प पर लघुभाष्य प्रसिद्ध भाष्यकार श्री सघदासगणि की रचना है। व्यवहार सूत्र पर विशालकाय भाष्य तथा उस पर विस्तृत टीकाएँ भी उपलब्ध है।

इन भाष्य तथा टीका ग्रन्थों मे सूत्रकार का मूल आशय, उसकी पृष्ठभूमि सघीय परम्परा तथा उस सम्बन्ध में वर्तमान समय में प्रचलित उदाहरण दृष्टान्त आदि का सहारा लेकर बहुत ही विस्तृत दृष्टि से इनके अर्थ किये गये है। इन भाष्यो मे प्राचीन समाज, अन्य धर्म सम्प्रदाय तथा राजनीति की स्थितियों का भी ज्ञान सग्रहीत है। जो इतिहास व समाज शास्त्र के अध्ययन मे बहुत उपयोगी है।

व्यवहार तथा बृहत्कल्प सूत्र के विषयो को स्पष्ट करने वाली अनेक कथाएँ दृष्टान्त तथा उदाहरण भाष्य ग्रन्थो मे आते है, इनमे से बहुत–सी कथाएँ प्रचलित भी हैं और बहुत–सी नही भी। परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ उन उदाहरणो का उपयोग नही किया है।

बृहत्कल्प तथा व्यवहार सूत्र पर आचार्य श्री घासीलाल जी म ने सस्कृत मे भाष्य रचना की है। जिसमे प्राचीन निर्युक्ति–चूर्णि एव भाष्य के आधार पर अनेक विषयो पर व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त उपाध्याय मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. ने भी तीनो छेद सूत्रो का उच्चस्तरीय सम्पादन किया है, जिसमें मूल पाठ का भावानुलक्षी सुन्दर अनुवाद तथा विद्वत्ता पूर्ण गम्भीर विवेचन भी है। यह सम्पादन छेद सूत्रों जैसे गहन आगमो पर योग्य अधिकारी विद्वान द्वारा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करता है। हमने अनुवाद तथा विवेचन मे इसका उपयोग किया है। मुनिश्री के गहन अध्ययन तथा चिन्तनपूर्ण विवेचन का सभी को लाभ मिलेगा।

इस प्रकार अनेक विद्वानो द्वारा सम्पादित तथा व्याख्यात विवेचन का लाभ उठाते हुए मैंने अपनी बुद्धि तथा ज्ञान लब्धि के अनुसार इन सूत्रों का अनुवाद/विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमे पूर्ण सावधानी बरती है, कही कोई बात आगम तथा परम्परा के विरुद्ध नही जाये। यों तो छेद सूत्रो का विषय बहुत गहन है तथा इनमे वर्णित तथ्य साधु समाचारी, वर्तमान श्रमण समाचारी पर अनेक स्थानों पर

---

१ वही सूत्र १४

विचारणीय बिन्दु भी प्रस्तुत करती है। परन्तु फिर भी विवादास्पद तथा आक्षेपात्मक विषयों से बचकर मैंने तटस्थता के साथ सन्तुलित भाषा में ही विषयों का स्पष्टीकरण किया है। फिर भी कहीं किसी प्रकार की स्खलना हुई हो या परम्परा के प्रतिकूल आया हो, तो उसके लिए मिच्छामि दुक्कडं के साथ भूल सुधार की भावना व्यक्त करता हूँ।

आगम सम्पादन के जिम्मेदारी पूर्ण कार्य का निर्वहन करने मे पूज्य गुरुदेव उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. की प्रेरणा प्रोत्साहन तथा आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा है। यह है कि वास्तव में तो उन्हीं की कृपा से यह अत्यन्त गुरुतर कार्य भी सहज ही सम्पादित हो रहा है। गुरुजनो का आशीर्वाद पद-पद पर हमारा सम्बल व मार्गदर्शक बना हुआ है।

सदा की भाँति इन तीनो छेद सूत्रो के सम्पादन मे श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का आत्मीय सहयोग रहा है। श्री सुराना जी ने आगम सेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने का संकल्प किया है। उनकी इस पवित्र भावना का मै अनुमोदन करता हूँ।

छेद सूत्रो के अग्रेजी अनुवाद का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया है आगमो के विशेष अभ्यासी, गृहस्थ जीवन मे साधु वृत्ति से जीवन यात्रा करने वाले विद्वान विचारक सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन ने। उन्होने पूर्ण मनोयोग पूर्वक एवं सेवा भावना से सम्पूर्ण कार्य किया है। ऐसे विद्वान सहयोगी के प्रति किन शब्दो मे आभार व्यक्त करूँ? साथ ही श्री सुरेन्द्र जी बोथरा ने भी अग्रेजी अनुवाद कार्य को एकबार पुनरीक्षण कर आवश्यक संशोधन आदि किये है। उन सबको हार्दिक धन्यवाद।

पूज्य गुरुदेव की कृपा से आगम सेवा करने वाले गुरुभक्तो ने इस प्रकाशन मे दिलखोलकर अपना सहयोग दिया है। उनके सहयोग के बल पर ही सस्था इतने महँगे प्रकाशन कर रही है।

इस प्रकार इस कार्य मे जिन-जिन सहृदयो का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ, मै उन सबके प्रति आभारी हूँ।

सितम्बर, २००४
जैन स्थानक, लुधियाना

—प्रवर्त्तक अमर मुनि
(उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक)

PREFACE

Thirty-two *Agams* accepted at present as the word of the omniscient are—eleven *Angas*, twelve *Upangas*, four *Mool*, four *Chhed* and one *Avashyak*. The titles of four *Chhed Sutras* are as under—

(1) *Dashashrut Skand*, (2) *Brihat Kalp*, (3) *Vyavahar*, (4) *Nisheeth*.

CHHED SUTRA—SCRIPTURES OF PURIFICATION

Just as the primary subject in *Acharanga*, *Dashavaikalik* and such like *Agams* is the conduct of a *Shraman*, similary in *Chhed Sutras* it is the narration of rules and sub-rules determining the purification of ascetic conduct.

The main emphasis in Jain Dharma is on following a faultless conduct Great attention is paid to purity of conduct as in case of the practice of ascetic conduct. Even the extremely subtle rules relating to purification of ascetic conducts are available in these *Achar Sutras*. It is so much subtle that in case any rule relating to conduct is disobeyed even in a dream state, one should undertake *prayashchit* (self-indictment) for it. There can be many causes for a digression in conduct In *Agams* ten types of causes that can make the conduct faulty (*pratisevana*) have been stated. According to it, a Jain monk can do an undesirable and unworthy act in a state of slackness, passion, attachment, forgetfulness, doubt, scepticism, fear or an exceptionally difficult state. But he should set it right immediately by self-criticism, *pratikraman*, repentance and self-imposed punishment (*prayashchit*) and the like. The *Agams* which indicate rules and sub-rules and special rules for such purification are categorised as *Chhed Sutras*

MEANING OF WORD 'CHHED'

The common meaning of the word '*Chhed*' is to cut. In case any limb of the human body becomes damaged, gives out bad smell, or becomes poisoned, an ointment is applied to it for curing it. It may also be necessary in certain circumstances to cut it or pierce it Similarly when a sin relating to ascetic discipline is committed, it can be purified by undertaking *prayashchit* in the form of ascetic austerities. In case it becomes absolutely necessary, it is also corrected by reducing the period of monkhood or by initiating in monkhood afresh So the *Sutras*, which deal with it are commonly known as *Chhed Sutras*

Some *Acharyas* are of the view that out of five types of ascetic conduct, the first one is *Samayik Charitra*—the conduct meant for a small period, while the second one—the *Chhedopasthapaniya Charitra* is the conduct to be followed for a long period. The possibility of incurring any fault is greater in case of the second type of conduct. So the *Agams* which deal with purification of sins in the practice of this *Chhedopasthapaniya Charitra* are also known as *Chhed Sutras.*

Jamha tu hoti Sodhi Chhed Suyatthen Khalitcharanan.
Tamha Chheya Suyattho balavam motoon puvvagatam.

—*Vyavahar bhashya* 1829

It means that in case any deviation occurs in ascetic discipline or any sin is committed, it can be set right on the basis of *Chhed Sutras.* So *Chhed Sutra* is more prominent and effective from the point of view of substances so far as *Sutras* other than *Purvas* are concerned

It is mentioned in *Nisheeth Bhashya* (5/84)—The conduct is purified on the basis of *Chhed Sutras.* So these are '*Chheyam*'. In other words they are excellent.

Out of the four *Chhed Sutras*, *Nisheeth Sutra* is the most profound and difficult. The word '*nisheeth*' means mid night. It means that *Sutra*, which is taught in solitude to a specially capable student at a specified place and at a specified time is *Nisheeth*. The other three Sutras namely *Dashashrut Skandh, Brihat Kalp* and *Vyavahar* are taught when a disciple becomes capable to study *Agams* but at a pre-determined time.

It is mentioned in *Vyavhar bhashya*—These four *Sutras* have been derived from the third *achar-vastu* of *Pratyakhyan Purva* Out of them, *Dashashrut Skandh, Brihat Kalp* and *Vyavahar Sutra* have been compiled by Shrut Kevali Bhadrabahu Swami who was expert in fourteen *Purvas*. But there is difference of opinion about *Nisheeth Sutra*. It is believed that it is very essential and important to study these three *Chhed Sutras* in ascetic life. So in this series of *Agams*, I have edited and commented upon these three *Chhed Sutras.*

THE SUBJECT-MATTER OF CHHED SUTRAS

After detailed study of the subject described in *Chhed Sutras,* their subject-matter can be classified in four parts—

(1) (*Utsarg marg*) Normal conduct.

(2) (*Apavad marg*) Conduct in exceptional circumstances

(3) (*Dosh-Sevan*) Committing a fault in ascetic practice.

(4) (*Prayashchit Vidhan*) Provision of repentance and self-indictment

(1) The discreet and faultless practice of all those rules, which are mandatory in ascetic discipline for every Jain monk and nun is called *Utsarg marg*. A *Shraman* who practices faultless conduct is believed to be praiseworthy. We can term *Utsarg marg* as normal practice of ascetic conduct.

(2) *Apavad marg* means special practice It is of two types—(1) Faultless special practice, (2) Faulty special practice

The exceptions that are clearly stated while undertaking the *pratyakhyan* (vow) relating to supplementary discipline are all included in faultless special practice. In other words they are faultless exceptions. There is no *prayashchit* for faultless exceptions Sometimes in a helpless condition due to special circumstances, in order to make a compromise with the situation one unwillingly commits a sin or has to commit a sin or fault in his ascetic conduct. This is called sinful or faulty special ascetic practice. The *prayashchit* is undertaken only for such faulty activity practiced as an exception

(3-4) Sin or Fault (*Dosh*) means to break the rules of common ascetic conduct or exceptional conduct. The practice for purification of sin or activity related to it is called *prayashchit. Prayashchit* is of ten types Sometimes under grave special circumstances unwillingly, due to slackness or forgetfulness about rules or in a state of doubt, a fault occurs or a sin is committed. One has to accept *prayashchit* for its purification. In *Chhed Sutras*, the type of *prayashchit* and the quantum of *prayashchit* for every type of such fault or sin, for the purpose of purification, are mentioned in detail.

It is worthy to be noted that through *prayashchit* (repentances and self-imposed austerities) only the faults in supplementary discipline can be rectified For any sin relating to basic ascetic conduct, the three types of *prayashchit* namely moolarh (reduction in period of monkhood) and the like are awarded.

THREE TYPES OF KALP

In *Chhed Sutras*, three types of *Kalp* have been described. They are—**(1) *Vidhi Kalp***—practices to be followed, **(2) *Nishedh Kalp***—practices that are to be avoided, **(3) *Vidhi-nishedh Kalp***—practices to be followed and avoided. The *Sutra* wherein the word '*Kappayi*' is used are those which

indicate practice to be followed. The *Sutras* wherein the word '*no kappayi*' has been used are those, which indicated prohibitions. The *Sutras* wherein both '*kappayi—no kappayi*' has been mentioned relate to *Vidhi-nishedh Kalp*. Some *Sutras* are such wherein neither '*kappayi*' nor '*no kappayi*' has been mentioned They are *Sutras* relating to general rules.

Some provisions regarding practice and prohibitions concern Jain monks (*nirgranths*). Some relate to Jain nuns (*nirgranthis*) and some are same for both. Thus these three *Chhed Sutras* state conduct to be practiced (*Vidhi marg*), conduct that is prohibited (*Nishedh marg*) and (*Utsarg marg*) the conduct in exceptional circumstances. The prayashchit in each case is also mentioned therein. The *Chhed Sutras* are thus in a way the code of conduct of ascetic discipline or the penal code of ascetic discipline.

We find provision of *prayashchit* and the like for purifying the sin committed in the code of conduct of all traditions in ancient religious sects so far as the *Bhikshus, Shramans* or *Sanyasis* of the respective faiths are concerned. For *Nirgranths* (Jain monks) it is in *Chhed Sutras* For Buddhist *Bhikshus* the details regarding *prayashchit* are in *Vinay Pitak* and for *Sanyasis* of Vedic faith, it is in *Smritis* and *Shrot Sutras* A common man is likely to commit fault in his conduct and it is necessary to make provision of punishment or *prayashchit* for its purification In government rules it is called *punishment* while in spiritual context it is *prayashachit* The only difference is that punishment is awarded forcibly also while *prayashchit* is never awarded forcibly. When the religious practitioner becomes self-awakened, he through self-introspection feels dejected about the sin or fault he has committed and then repents for it. He comes to his spiritual teachers for purification and requests—"Melord ! I have committed such and such sin in such and such circumstances. Please purify my soul by awarding *prayashchit* and telling me the method of purification." This is the great distinction between punishment and *prayashchit*. The primary subject of *Chhed Sutras* is to make a provision of prayashchit for purification of ascetic conduct.

This book contains three *Chhed Sutras* whose contents in brief are as under—

(1) Dashashrut Skandh—*Kalp* and *Purva achar dasha* are mentioned in *Samavayanga* and *Uttaradhyayan Sutras* and the like. In *Chhed Sutras*, it is the first *Sutra*. The term '*achar dasha*' for it is in consonance with its subject because in all the ten chapters in it ascetic conduct is the subject discussed.

For instance, states of non-equanimity, major faults in ascetic conduct, indiscipline and the like. Here even the subtle and very minor faults in daily behaviour have also been considered. To maintain unblemished, grand behaviour which is worthy of appreciation by all is the purity of conduct.

The eighth chapter of this *Sutra* is *Paryushan kalp*. Earlier only code of conduct of a Jain monk was discussed in it. It cannot be said with certainly when the subject relating to the life-sketch of *Tirthankaras* and lineages of *Sthavirs* was added to it But with the addition of these two, it was given the title *'Kalp sutra'* and separated from *Dashashrut Skandh* and therefore it became a tradition to recite it during *Paryushan* days.

In *Sthananga Sutra*, the headings of its ten chapters have been mentioned. Probably its prevalent title is *'Dasha'* as it has ten chapters So the more popular caption of *Achar-dasha* is *Dashashrut Skandh.*

In editing, translating and writing commentary on *Dashashrut* Skandh, the basis has been primarily the one edited by Acharya Samrat Shri Atmaram ji Maharaj (Asstt Editor Dr. Suvrat Muni Shastri). But in this edition the text has been compiled on the basis of ancient editions. The text has been re-written on the basis of available ancient editions, by Anuyog Pravartak Upadhyaya Shri Kanhaiyalal ji Maharaj 'Kamal' and edited as 'Achardasha' beautifully by including missing parts in the text. Acharya Shri Ghasilal ji Maharaj has written commentary in Sanskrit on *Dashshrut Skandh* on the basis of ancient texts and commentaries. I have studied and taken into account all the three in preparing this edition.

The ninth chapter—*Mohaniya Sthan* and the tenth chapter—*Ayati Sthan* of *Dashashrut Skandh* need to be studied thoroughly by both the *Shramans* (Jain monks) and *Shramanopasak* (the lay devotees). The description in *Mohaniya Sthan* is likely to bring a total reform in social and moral consciousness of human beings and is an indicator of ideal code of conduct

(2) Brihat-kalp Sutra—The ancient name of this *Sutra* is *'Kapp-Sutt.'* However, when *Paryushan Kalp* became popular as *Kalp Sutra,* it was captioned as *Brihat Kalp Sutra* in order to distinguish it from *Kalp Sutra*. In *Nandi Sutra* it is mentioned as *Kappa*. The title *Brihat Kalp* does not find mention in any ancient list.

The word *'Kalp'* has many meanings. Primarily the word *kalp* denotes conduct, limitations, religious bindings, social limitations. Since the political distinctions in status are more prominent in twelve *Kalp* heavenly abodes, they are called Kalp Viman

In the present edition, Kalp Sutra provides information about religious code or the code of conduct. A *Sutra* (text) which describes in detail the code of conduct and the like of a religious way of life is called *Kapp Sutt* or *Kalp Sutra*. The detailed description in it is primarily of matters relating to conduct of collecting alms (*Eshana Samiti*).

Kalp Sutra contains eighty facets of dos and donots. In it there is description of eighty types of precautions (dos and donots) concerning proper practice of five major vows and five *Samiti*.

In ascetic way of life, it is most essential to have knowledge about the procedure of what is acceptable, what is non-acceptable and what is prohibited. So this *Sutra* is very important and useful in practicing ascetic way of life.

(3) Vyavahar Sutra—This is the third *Chhed Sutra*. The grammatical interpretation of *Vyavahar* is *Vi + ava + har* So *Vyavahar Sutra* is that *Sutra* which settles disputed matters and clarifies the doubts. It is mentioned in *Katyayan* grammar as follows—

Nana Sandeh-harnaat-vyavahaar iti sthiti, which means that *vyavahar* removes various types of doubts

The author of *bhashya* on *Vyavahar Sutra* states that this sutra describes three main topics namely *Vyavahar, vyavahari* and *vyavahartavya*.

(1) *Vyavahar* means methods, for instance five types of conduct.

(2) *Vyavahari*—Learned *Acharya* and the like who is capable of ensuring unblemished conduct in the *gana* or *gachha* (group).

(3) *Vyavahartavya*—Jain monks and nuns who are worthy of following the code

In a nutshell it means that the scriptures dealing with the code relating to purification of faults occurring in the conduct of *Shramans* and *Shramanis*, slight deviations in practicing the vows through an *Acharya* and the like who is well educated in the code of conduct is *Vyavahar Sutra*.

GENERAL SOCIAL RULE IN CHHED SUTRAS

Chhed Sutras do not deal with ascetic conduct alone but also with useful general principles of social and administrative welfare. For

instance in *Dashashrut Skandh*, there is description of rude behaviour towards spiritual masters. The method of speech among each other or the method of dealing with elders in a respectful manner—all this information is available in this *Shastra*. From ethical point of view, the topics relating to murder of national leader or person of great influence and humility or insolence towards one who had helped in need are mentioned in *Mohaniya Sthan* and are of great significance.

In *Vyavhar Sutra* there are many *Sutras* of such a nature, which can serve as a guide even in the present set up For instance a *Sadhu* who undertakes austerities for purification of his faults, has to live separately from the *gana* (group) The other *Sadhus* of the group have no dealings with him. However, if he becomes ill and he needs care, the *Acharya* and the like can get him attended through other *Sadhus* of the *gana*. He ensures that he does not have any state of non-equanimity In case any *Sadhu* has committed a sin and due to any reason, he has become sick, mad or terrorised he should not be kept away from the group in that condition. But it is the duty of the organisation (*Sangha*) to properly serve him attend to him and ensure his proper medical treatment. It is the responsibility of the *Sangha* to make proper arrangements for him till he becomes healthy These provisions indicate human touch, love and broad mindedness

In the judicial adjudication in society, the common topic of discussion these days is that who is the sinner. Should a person be considered sinner or not whose sin has not been proved or who has not accepted his sin. The author of *Vyavhar Sutra* states that a person cannot be believed to be a sinner till he has not accepted the sin or it has not been established by fool–proof evidence that he is the sinner. It is immaterial whether he has actually committed the sin or not but without proof he should not be addressed as sinner.

The same yard stick is in respect of fitness for a particular post A person who has committed a major sin in life, cannot be assigned a post of responsibility for three years or throughout his life even if he has undergone requisites *prayashchit* for it.

It is necessary to examine the capability of a monk before assigning any post in the group to him. He can be given the post only after examining his knowledge of scriptures, his ascetic conduct and the like. It is prohibited to assign any post to a *Sadhu* who has not studied *Achar prakalp*.

Similarly only *Acharya* is competent to declare one as the *Acharya* or *Upadhyaya* or to remove him from that post The monk who is responsible for causing bickering in the religious order is liable for major *prayashchit*.

There are many instances wherein substantial principles of social, political and spiritual state of administration are involved. They are available in these *Sutras*. This subject needs special attention of research scholars

RELEVANT COMMENTATIVE LITERATURE

As I have said earlier, Shrut Kavali Acharya Bhadrabahu has complied these three *Chhed Sutras* on the basis of *Purvas* These *Sutras* are very deep so far as subject-matter is concerned. It is very difficult to understand its complete meaning and its background in the brief text So the author of *niryuktis* Acharya Bhadrabahu (the second Bhadrabahu) wrote commentaries (*niryuktis*) on *Chhed Sutra*. Later on *Churnis* were also written on these *Sutras* Moreover, *bhashyas* are also available in *Prakrit* on *Brihat kalp* and *Vyavhar Sutra*. *Laghu bhashya* on *Brihat kalp* is by the famous author Shri Sanghadas gani Voluminous *bhashya* and detailed commentaries are available on *Vyavhar Sutra*

In the *bhashyas* and treatises the authors have explained in detail the basic object of the author of the *Sutra*, the background, the organisational tradition, the prevalent illustrations and examples in the present period that have relevance thereto. In the *bhashyas*, the knowledge of the ancient social set-up, other religious organisations and the state of political set up has been detailed, which is very useful in the study of history and social science.

In the text of *bhashyas* there are many stories, illustrations and examples that clarify the topic mentioned in *Vyavhar* and *Brihat kalp Sutras*. Many of these stories are popular these days and many of them are not But due to lack of space, these examples have not been used here.

Acharya Shri Ghasilal ji Maharaj has written *bhashya* in Sanskrit on *Brihat Kalp* and *Vyavhar Sutra* Therein many topics have been explained on the basis of *niryukti, churni* and *bhashya*. Further Upadhyaya Shri Kanhaiyalal ji Maharaj has also edited the three *Chhed Sutra* in an exemplary manner. His editions contain beautiful translation depicting the basic idea and also scholarly commentary. This editing presents a reliable treatise on profound *Agams* like *Chhed Sutras* by a capable, authoritative scholar We have made use of it in

translation and explanation. Everyone shall be benefited by the deep study and exhaustive commentary of Upadhayaya ji

Thus taking benefit of detailed commentaries and editions prepared by various scholars, I have prepared this translation/explanation on these *Sutras* in accordance with my knowledge and understanding. The subject of *Chhed Sutras* is very deep and the facts described therein present many matters worth consideration relating to code of conduct of a Jain monk and *Shraman* code of conduct prevalent at present. But avoiding disputable matters, I have in an impartial manner and in balanced language tried to clarify various topics Still I seek pardon for any drawback or deviation from the tradition that might have occurred and am prepared to rectify the mistake

The inspiration, encouragement and blessing of reverend Gurudev Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padmachand ji Maharaj is always with me in discharging the duty of editing the *Agams* with full responsibility. In fact, due to his blessings this extremely difficult work is being edited at ease. The blessings of my spiritual teachers serves as a support and guide to me at every step

As usual, Srichand ji Surana 'Saras' has provided worthy assistance in editing the three *Chhed Sutras* Shri Surana ji has made a resolve to devote his life for service of *Agams* I appreciate his noble resolve in this respect

The important responsibility of translating *Chhed Sutras* in English has been discharged by Sushravak Shri Rajkumar ji Jain who is devoted towards *Agams*, a scholarly thinker and leads the life in a spiritual manner He has done the entire work with complete devotion and full attention. I have no appropriate words to show my sense of gratitude towards such a scholar for his assistance. Further, Shri Surendra ji Bothra has examined the English translation and made corrections where necessary My hearty gratitude to all of them

The devotees have provided great financial assistance in this publication under the heavenly blessings from gurudev This organisation is discharging the responsibility of such costly publications only on the strength of their assistance

Thus, I am grateful to all those who have directly or indirectly assisted in this work.

September, 2004 | **—*Pravartak Amar Muni***
Jain Sthanak, Ludhiana | (Uttar Bharatiya Pravartak)

सहायक आधारभूत ग्रन्थ

१. **दशा श्रुतस्कंध : आचार्य श्री आत्माराम जी म.**
(सस्कृत छाया हिन्दी भाषा टीका)
सम्पादन : डॉ सुव्रत मुनिजी शास्त्री एम. ए. पी-एच डी
प्रकाशक : आचार्य श्री आत्माराम जैन धर्मार्थ समिति, दिल्ली
श्री पद्म प्रकाशन, नरेला मण्डी, दिल्ली-४०
द्वितीयावृत्ति : जून २००१

२. **त्रीणि छेद सूत्राणि :**
सम्पादक : अनुयोग प्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल'
प्रकाशक : श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर।
प्रथम संस्करण : जनवरी, १९९२

३. **दशा श्रुतस्कंध : आचार्य श्री घासीलाल जी म.**
(सस्कृत टीका, हिन्दी गुजराती अनुवाद सहित)
प्रकाशक : श्री जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट
द्वितीयावृत्ति : ईस्वी सन् १९६०, वि सं. २०१६

४. **श्री व्यवहार सूत्र : श्री बृहत्कल्प सूत्र : आचार्य श्री घासीलाल जी म.**
(भाष्य तथा संस्कृत टीका सहित)
प्रकाशक : श्री जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट
प्रथमावृत्ति : ईस्वी सन् १६६९

५. **व्यवहारभाष्य**
सम्पादिका : समणी कुसुम प्रज्ञा
प्रकाशक : जैन विश्व भारती सस्थान, लाडनूँ
प्रथमावृत्ति : सन् १९९६

❁

उक्त सभी विद्वानों तथा प्रकाशनसंस्थानों के प्रति हार्दिक आभार।
सम्पादन हेतु साहित्य उपलब्ध कराने में जैनाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि शोध संस्थान उदयपुर के कार्यकर्ताओं के प्रति हार्दिक धन्यवाद।

BASIC REFRENCE WORKS

1. **Dashashrutskandh : Acharya Shri Atmaram ji M.**
   (Sanskrit transliteratıon and Hindi commentary)

   Editor : Dr Suvrat Muniji Shastri, M.A., Ph D.

   Publisher : Acharya Shri Atmaram Jain Dharmarth Samiti, Delhı.
   Shrı Padma Prakashn, Narela Mandi, Delhı-40

   Second edition : June, 2001

2. **Trini Chhed Sutrani :**

   Editor : Anuyogapravartak Muni Shrı Kanhaialal ji M. 'Kamal'

   Publisher : Shrı Agam Prakashan Samitı, Beawar

   First Edition : January 1992

3. **Dashashrutskandh : Acharya Shri Ghasilal ji M.**
   (with Sanskrit Tıka and Hındi and Gujarati translatıons)

   Publisher : Shri Jain Shastroddhar Samiti, Rajkot

   Second Edition : 1960 AD, 2016 V.

4. **Shri Vyavahar Sutra : Shri Brihatkalp Sutra Acharya Shri Ghasilal ji M.**
   (With Bhashya and Sanskrit Tika)

   Publisher : Shrı Jain Shastroddhar Samiti, Rajkot

   First Edition : 1969 AD

5. **Vyavahar Bhashya**

   Editor : Samani Kusum Prajna

   Publisher : Jain Vishva Bharati Samsthan, Ladnu

   First Edition : 1996 AD

Hearty gratitude for aforesaid scholars and publishers.
Thanks to the staff of Jainacharya Shri Devendra Muni Shodh Samsthan, Udaipur for making reference works available.

अनुक्रमणिका

दशाश्रुतस्कन्ध

बृहत्कल्प सूत्र

द्वितीय उद्देशक २३१–२५२

तृतीय उद्देशक २५३–२७२

चतुर्थ उद्देशक २७३–३१४

पाँचवाँ उद्देशक ३१५–३३५

व्यवहार सूत्र

CONTENTS

DASHASHRUT SKANDH

BRIHAT-KALP SUTRA

VYAVAHAR SUTRA

ॐ नमो समणस्स भगवओ महावीरस्स

Om Namo Samanassa Bhagavao Mahavirassa

दशाश्रुतस्कन्ध

DASHASHRUT SKANDH

प्राक्कथन

चार छेदसूत्रो मे पहला छेदसूत्र है–दशाश्रुतस्कन्ध। छेदसूत्र के दो उद्देश्य है–(१) दोषो से बचने की सूचना देना, और (२) प्रमादवश दोष लगने पर उसका प्रायश्चित्त करके आत्म-शुद्धि कर लेना।

दशाश्रुतस्कन्ध मे दस अध्ययन है। इसका मुख्य नाम तो 'आचारदशा' है, किन्तु दस अध्ययन होने से दशाश्रुतस्कन्ध नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। इन अध्ययनो को उद्देशक भी कहा जाता है।

प्रथम उद्देशक मे बीस असमाधि स्थानो का वर्णन है। असमाधि स्थान का अर्थ है–जिस प्रकार काँटा आदि चुभने से शरीर मे पीडा व व्याकुलता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इन सामान्य दोषों के सेवन से सयम मे व्यवधान या व्याकुलता उत्पन्न होती है। सामान्य रूप मे असमाधि स्थान तो सैकडो हो सकते है, किन्तु यहाँ पर मुख्य रूप मे बीस स्थानो का कथन सकेत मात्र है। इनके आधार पर अन्य भी समझ लेना चाहिए।

INTRODUCTION

Chhed Sutras are four in number and the first among them is *Dashashrut Skandh* This *Chhed Sutra* has two objects namely—(i) to caution in advance about safe-guarding oneself from sins, (ii) in case any sin has been committed due to negligence, to undertake self-purification by accepting due repentance

Dashashrut Skandh contains ten chapters Its original caption is *Achar Dasha* But its more popular title is *Dashashrut Skandh* because it has ten chapters These chapters are also called *Uddeshaks*

The first *Uddeshak* describes twenty states of distraction of mind. When a thorn pricks deep in the body, it causes pain and restlessness Similarly when one commits the common faults (mentioned hereafter), it causes disturbance and restlessness in ascetic life Ordinarily states of non-equanimity (*asamadhi*) can be hundreds in number but here primary twenty states have been mentioned and in the context thereof other states of non-equanimity may be understood

प्रथम दशा : असमाधि स्थान
FIRST DASHA : STATES OF NON-EQUANIMITY

बीस असमाधि स्थान **TWENTY STATES OF NON-EQUANIMITY**

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता।

[प्र.] कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ?

[उ.] इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) दवदवचारी यावि भवइ, (२) अप्पमज्जियचारी यावि भवइ, (३) दुप्पमज्जियचारी यावि भवइ, (४) अतिरित्त—सेज्जासणिए भवइ, (५) राइणिअ—परिभासी यावि भवइ, (६) थेरोवघाइए यावि भवइ, (७) भूओवघाइए, (८) संजलणे, (९) कोहणे यावि भवइ, (१०) पिट्ठिमंसिए, (११) अभिक्खणं—अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ, (१२) नवाणं अहिगरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाइत्ता भवइ, (१३) पोराणाणं अहिगरणाणं खामिय अविउसवियाणं पुणो उदीरेत्ता भवइ, (१४) अकाले सज्झायकारए यावि भवइ, (१५) ससरक्खपाणिपाए यावि भवइ, (१६) सद्दकरे यावि भवइ, (१७) झंझकरे यावि भवइ, (१८) कलहकरे यावि भवइ, (१९) सूरप्पमाणभोई यावि भवइ, (२०) एसणाए असमिए यावि भवइ।

एते खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं वीसं असमाहिट्ठाणा पण्णत्ता—त्ति बेमि॥

॥ इति पढमा दसा समत्ता ॥

१. हे आयुष्मन् ! मैने सुना है -भगवान महावीर ने ऐसा कहा है—इस निर्ग्रन्थ प्रवचन मे स्थविर भगवन्तो ने बीस असमाधि स्थान कहे है।

[प्र.] स्थविर भगवन्तो ने वे कौन से बीस असमाधि स्थान कहे है ?

[उ.] स्थविर भगवन्तो ने बीस असमाधि स्थान इस प्रकार कहे है। यथा—

(१) अतिशीघ्र चलना। (२) प्रमार्जन किये बिना (अंधकार मे) चलना। (३) उपेक्षाभावपूर्वक प्रमार्जन करना। (४) अतिरिक्त शय्या—आसन रखना। (५) रत्नाधिक के सामने परिभाषण करना। (६) स्थविरो का उपघात करना। (७) पृथ्वी आदि का घात करना। (८) प्रतिक्षण क्रोध मे जलना। (९) क्रोध मे कठोर वचन बोलना। (१०) पीठ पीछे निन्दा करना। (११) बार—बार निश्चयात्मक भाषा बोलना। (१२) नवीन कलहो को उत्पन्न करना। (१३) क्षमापना द्वारा उपशान्त पुराने क्लेश को फिर से उभारना। (१४) अकाल मे स्वाध्याय करना। (१५) सचित्त मिट्टी आदि से युक्त हाथ—पाँव आदि का प्रमार्जन न करना। (१६) अनावश्यक बोलना या जोर—जोर से बोलना। (१७) सघ मे भेद उत्पन्न करने वाला वचन बोलना। (१८) कलह करना। (१९) सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना। (२०) एषणा समिति मे असावधान रहना।

स्थविर भगवन्तो ने ये बीस असमाधि स्थान कहे है। ऐसा मै कहता हूँ।

1. Oh, the blessed ! I have heard that Bhagavan Mahavır has mentioned that the learned Saints (*Sthavırs*) have described twenty states of non-equanimity ın the Sacred Word

[Q.] What are the twenty states of non-equanimity (distractıon of mind) mentioned by *Sthavırs* ?

[Ans.] The twenty states of non-equanimity mentıoned by *Sthavirs* are as under—

(1) To walk very fast (2) To walk (in darkness) wıthout cleaning the ground. (3) To clean carelessly. (4) To keep extra beds. (5) To speak rudely in presence of elders (6) To cause harm to *Sthavırs*. (7) To cause harm to earth-bodıed organısm and other such specıes. (8) To burn always ın anger. (9) To utter harsh words ın anger. (10) To disgrace any one in his absence. (11) To repeatedly use definıte language (wıthout knowing reality). (12) To create new strıfe. (13) To revive a quarrel that has already been pacıfied by mutual forgiveness (14) To study scrıptures durıng the prohıbıted perıod (15) Not to clean properly hand and feet besmeared with sand or other thıngs ınfested wıth lıvıng organısm (16) To speak without any purpose or to shout loudly (17) To utter such words that can cause difference in the order (18) To quarrel (19) To keep on eating from sunrıse to sunset (20) To be careless ın observıng the code prescribed for alms seeking

These are the twenty sources of distractıon of mınd as mentıoned by *Sthavırs* So, I say.

विवेचन : सर्वप्रथम यहाँ स्थविर का अर्थ समझ लेना चाहिए। ग्यारह अग आगम सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित एवं गणधरो द्वारा सकलित है। अत यहाँ पर **तेण भगवया एवमक्खायं**–उन भगवान ने ऐसा कहा है यह पाठ मिलता है। किन्तु यहाँ पर **'थेरेहिं'** शब्द आया है। स्थविर का अर्थ व्यापक है। गणधर, चतुर्दश पूर्वधर या दश पूर्वधर को भी स्थविर भगवान कहा जाता है। इससे स्पष्ट होता है यह सब वर्णन श्रुतकेवली स्थविर (आचार्य भद्रबाहु) द्वारा संकलित है।

असमाधि का अर्थ है मानसिक संक्लेश। **समाधिश्चेतसः स्वास्थ्यं**–चित्त की स्वस्थता का नाम समाधि है। जिन प्रवृत्तियों से संयमी जीवन मे सक्लेश या दोष उत्पन्न होता है, वे असमाधि स्थान है। अर्थात् *श्रमण*–समाचारी के विधि–निषेधो के अनुसार संयम का आचरण न करना अथवा जिन–जिन प्रवृत्तियो से आत्म–विराधना (आत्मा का पतन) तथा सयम–विराधना व सयम दूषित होता है वे सभी प्रवृत्तियाँ असमाधि स्थान कहलाती है। इनकी शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त का विधान निशीथसूत्र में है।

इस व्याख्या के अनुसार असमाधि स्थानो की सख्या निर्धारित करना कठिन है, फिर भी स्थविर भगवन्तो ने इस पहली दशा मे मुख्य रूप मे बीस *असमाधि स्थान* बताये हैं–

(१) **शीघ्र चलना**—उद्विग्न मन (अशान्त-चित्त) वाला भिक्षु यदि अति शीघ्र गति से गमन करता है तो उसको अनेक प्रकार की शारीरिक हानियाँ होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त चीटी आदि अनेक प्रकार के छोटे-मोटे जीवो की हिंसा भी हो सकती है। अत अतिशीघ्र गति से बिना देखे चलना पहला असमाधि स्थान है।

(२) **अप्रमार्जन**—जहाँ अँधेरा हो तथा मार्ग मे चींटियाँ आदि छोटे-मोटे जीव अधिक संख्या मे हो, वहाँ दिन मे भी बिना प्रमार्जन किये चलने से जीवो की हिंसा (विराधना) होती है।

आवश्यक कार्यों से रात्रि मे गमनागमन करना चाहें तो बिना प्रमार्जन किये चलने से त्रस जीवो की विराधना होती है, क्योंकि अनेक जीव-जन्तु रात्रि मे चलते-फिरते रहते है और अधकार के कारण दृष्टिगोचर नही होते है। अत बिना प्रमार्जन किये नही चलना चाहिए।

(३) **दुष्प्रमार्जन करना**—जितनी भूमि का प्रमार्जन किया है, उसके अतिरिक्त बिना देखी भूमि पर बिना विवेक के इधर-उधर पैर रखने से जीवो की हिसा होना सम्भव है। अत प्रर्माजन की हुई भूमि पर ही पैर रखकर चलना चाहिए। उपेक्षा भाव से प्रमार्जन करना दुष्प्रमार्जन कहा जाता है।

ये तीनो इर्यासमिति के दोष है।

(४) **आवश्यकता से अधिक शय्या-संस्तारक रखना**—श्रमणसमाचारी मे वस्त्र-पात्र आदि उपकरण सीमित व नियत प्रमाण मे रखने का विधान है। फिर भी यदि भिक्षु आवश्यकता से अधिक शय्या-सस्तारकादि रखता है तो उनका प्रतिदिन उपयोग न करने पर और प्रतिलेखन, प्रमार्जन न करने पर उनमे जीवोत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है। उन जीवो के सघर्षण व समर्दन से सयम की क्षति होती है। इसका सम्बन्ध आदान भाण्ड निक्षेपण समिति से है।

(५) **रत्नाधिक के सामने बोलना**—दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ भिक्षुओ को **रत्नाधिक** कहा जाता है। उनके समक्ष अविनयपूर्वक उद्दण्डता के साथ बोलने से व उपहास करने से आशातना होती है। रत्नाधिक श्रमणो की आशातना करना प्रायश्चित्त योग्य कार्य है।

(६) **स्थविरो का उपघात करना**—वृद्ध (स्थविर) या बहुश्रुत भिक्षु दीक्षा-पर्याय मे चाहे छोटे हो या बडे हो, उनकी चित्तसमाधि का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। उनका सम्मान करना और सेवा की समुचित व्यवस्था करना तथा उनका मन अशान्त रहे, इस प्रकार का व्यवहार न करना सभी श्रमणो का कर्त्तव्य है।

(७) **छह काय के जीवो का हनन करना**—श्रमण के लिए किसी भी त्रस-स्थावर प्राणी को त्रस्त करने की प्रवृत्ति करना सर्वथा निषिद्ध है, क्योकि वह छह काय का प्रतिपालक होता है।

(८-९) **क्रोध से जलना और कटु वचन बोलना**—किसी के प्रति क्रोध से सतत सतप्त रहना तथा कठोर वचन बोलकर क्रोध प्रकट करना, ये समाधि भग करने वाले है।

(१०) **पीठ पीछे किसी की निन्दा करना**—पर-निन्दा करना पन्द्रहवाँ पापस्थान है। किसी की अनुपस्थिति मे उसकी निन्दा करना या दोष निकालना पीठ का माँस खाने तुल्य जघन्य अपराध है। निन्दा करने वाला स्वय भी कर्मबन्ध करता है तथा दूसरो को भी असमाधि उत्पन्न करके कर्मबन्ध करने का निमित्त बनता है।

(११) **बार-बार निश्चयात्मक भाषा बोलना**—भिक्षु को जब तक किसी विषय की पूर्ण जानकारी नही हो जाये, या उस विषय मे सन्देह हो, तब तक उसके विषय मे निश्चयात्मक भाषा बोलने का निषेध है। क्योकि

निश्चयात्मक वचन बोले अनुसार काम न होने पर जिनशासन की निन्दा होती है, बोलने वाले की अपकीर्ति होती है, कई बार सघ मे विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है एवं अनेक प्रकार के अनर्थ व सकट उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

(१२) **नया कलह उत्पन्न करना**–बिना विवेक के बोलने से कलह उत्पन्न हो जाते हैं। अत कलह उत्पन्न होने वाली भाषा का प्रयोग करना असमाधि स्थान है।

(१३) **पुराने कलह को पुन. उभारना**–बिना विवेकपूर्वक बोलने से कई बार उपशान्त हुआ कलह पुन उत्तेजित हो जाता है। स्वय की व दूसरो की शान्ति भग हो जाती है। अत उपशान्त कलह को पुन उत्तेजित करना असमाधि स्थान है।

(१४) **अकाल मे स्वाध्याय करना**–सूर्योदय और सूर्यास्त का समय तथा मध्यान्ह और मध्य रात्रि का (११ से १२ तक) एक–एक मुहूर्त्त का समय स्वाध्याय के लिए अकाल कहा गया है। कालिकसूत्रो के स्वाध्याय के लिए दूसरा और तीसरा प्रहर अस्वाध्याय काल है। इसके सिवाय तीस और भी अस्वाध्याय काल बताये है। इससे भगवदाज्ञा का उल्लघन तथा अन्य दैवी उपद्रव होने की सम्भावना रहती है। अत अकाल मे स्वाध्याय करना असमाधि स्थान है।

(१५) **सचित्त रज–युक्त हाथ–पैर आदि का प्रमार्जन न करना**–भिक्षु भिक्षा के लिए जाये या विहार करे, उस समय उसके हाथ–पैर आदि पर यदि कभी सचित्त रज–मिट्टी के कण लग जाये तो उसका प्रमार्जन किये बिना बैठना, शयन करना, आहारादि करना अयतना का कारण है। यह असमाधि का हेतु है।

(१६) **बहुभाषी होना**–बहुत ज्यादा बोलना या अनावश्यक भाषण करना कलह–उत्पत्ति का कारण हो सकता है। इससे भी समाधि व शान्ति भग हो सकती है।

(१७) **संघ मे मतभेद उत्पन्न करना**–संघ व समाज मे मतभेद उत्पन्न करने वाली दुर्नीति का प्रयोग करना असमाधि स्थान है।

(१८) **कलह करना**–असत्य भाषण से प्राय कलह उत्पन्न होता है, किन्तु सत्य, अप्रिय, कटुक, कठोर और कलहकारी भाषा के प्रयोग से भी असमाधि उत्पन्न होती है। किसी की शान्ति भग करना भी 'कलह' है।

(१९) **सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ न कुछ खाते रहना**–भोजन के समय पर भोजन कर लेना चाहिए। सारा दिन कुछ न कुछ खाते रहने से शरीर तो अस्वस्थ होता ही है, साथ ही रसास्वादन की आसक्ति भी बढ जाती है। जिह्वा असयम को प्रोत्साहन मिलता है।

(२०) **अनेषणीय भक्त–पान आदि ग्रहण करना**–आहार–वस्त्रादि आवश्यक पदार्थ ग्रहण करते समय उद्गम, उत्पादना और एषणा के दोषो को टालकर गवेषणा न करने से सयम दूषित होता है। सयम मे शिथिलता आती है तथा ज्ञान–दर्शन की आराधना बाधित होती है।

अत इन २० असमाधि स्थानो का वर्जन करके भिक्षु को समाधि स्थानो का ही सेवन करना चाहिए, जिससे सयम मे समाधि–प्राप्ति हो सके।

॥ प्रथम दशा समाप्त ॥

Elaboration—First of all we should understand the real meaning of *Sthavir*. The omniscient Lord had narrated eleven *Anga Agams*

(Scriptures) and *Ganadhars* had given them the linguistic form. So, it is mentioned in the scriptures–**'Ten Bhagavaya Evamakhayam'** which means that the Lord had said that. But the word used here is **'Therehim'** *Sthavir* has many interpretations. *Ganadhars*, *Shrut Kevalis* (those who have learnt fourteen *Poorvas*) and *Dash-poorvadhars* (those who have learnt ten *Poorvas*) are also called *Sthavir Bhagavan*. It is therefore explicitly evident that this *Sutra* is a compilation by *Shrut Kevali* Sthavir Acharya Bhadrabahu.

Asamadhi means state of mental disturbance. *Samadhi* is the state of healthy *Chitta* (mind and heart). The behaviour that causes faults or disturbances in ascetic life is called source of non-equanimity (*Asamadhi Sthana*) According to 'dos' and 'do nots' mentioned in the prescribed code of conduct for Sainthood, all the stages of conduct that cause downfall of the self or that pollute the saintly life of restraint are termed as sources of non-equanimity The punishment in the form of repentance for purification of the ills caused by such behaviour is prescribed in *Nisheeth Sutra*

Keeping in view the above mentioned interpretation, it is difficult to numerate the causes of distraction of mind. Still the *Sthavirs* in the first *Dasha* have mentioned the primary *Asamadhi Sthans* as twenty in number—

(1) To walk fast—In case a monk (in disturbed state of mind) walks fast, there is a great probability that it may cause physical harm of several types Further it may result in violence to many types of small living beings such as ants So to move at fast speed without properly looking ahead is the first source of non-equanimity

(2) Apramarjan (not to clean)—In case there is darkness and many small insects such as ants in large number are on the road, the movement without proper cleaning can cause violence to the living beings even in the day.

In case one has to go for an urgent purpose in the night, it can cause violence to the mobile living beings if one moves without properly cleaning the path ahead. It is because many living beings move about at night and are not visible due to darkness So one should not move without cleaning the path ahead

(3) Dush-pramarjan (to clean carelessly)—There is possibility of violence to living beings if one moves about without proper discrimination on any land other than the land that has been cleaned. To clean improperly is called *dush-pramarjan*

All the three above-mentioned are the transgressions of *Irya Samiti* (the code of proper care in movement).

(4) To keep clothes and pots in excess of actual requirement—In the code of conduct for monks, the number of clothes and pots that a *Shraman* can keep has been prescribed. Still in case a monk (*Bhikshu*) keeps them in excess, there is a possibility of growth of *jivas* (living beings) in them if they are not used daily or one does not properly look into them and clean them where necessary The code of restraints in *monk-hood* is violated by the disturbance caused to those living beings or when they are run over This fault is in the context of *Adaan Bhand Nikshepan Samiti*. (carefully taking up and laying down things)

(5) To speak rudely with *Ratnadhik* (those senior in *monk-hood*)—The monks senior in initiation in saintly life are called *Ratnadhik*. It is a sin against them if one talks to them in a rude, or indolent manner without exhibiting proper respect to them The conduct that causes disrespect to seniors is worthy of repentance

(6) To hurt the *Sthavirs*—It is the duty of a monk to remain cautious in providing mental equanimity to old monks and those who are learned in scriptures (*Bahu-shrut*) whether they are senior or junior to him in *monk-hood*. It is the duty of all the monks to show respect to them, to make proper arrangement for their comfort, and not to behave with them in such a way that may disturb their mental peace

(7) To kill living beings belonging to any of the six categories—The attitude that results in causing hurt to mobile (*tras*) or immobile (*sthavar*) living beings is totally prohibited in *monk-hood*, because a monk is a protector of *jivas* (living beings) of all the six categories.

(8-9) To remain engrossed in anger and to utter pinching words—One who continuously remains in a state of anger and one who expresses his anger in rude and harsh words disturbs the state of equanimity (*Samadhi*)

(10) To speak ill of others in his absence—To talk ill of others in their absence is the fifteenth demerit To point out bad qualities of a person in

his absence is the worst sin equivalent to eating flesh of one's back. Such a person collects bad *karmas* and in addition becomes a causal factor in bringing about a state of non-equanimity in others.

(11) To speak in absolute language repeatedly—It is a taboo for a monk to use absolute language if he does not have complete knowledge about that subject or he has any doubt. In case the result is not in line with the words uttered in absolute manner, it causes disrespect to the dictum of the Lord, dishonour to the monk who uses such a language, and many times it creates such a dangerous situation in the spiritual order, which may produc many types of troubles and disturbances

(12) To create fresh strife—When one speaks without discrimination it creates strife Therefore, to use language that creates ill feelings brings about a state of non-equanimity

(13) To instigate again a subdued quarrel—Sometimes when one speaks indiscriminately, a subdued quarrel re-starts Thus one disturbs his own peace and that of others Therefore, to instigate a subdued quarrel is considered a source of non-equanimity.

(14) To study scriptures during the prohibited time-period—A period of 48 minutes from sunrise, sunset, noon and mid-night is stated to be the period prohibited for study of scriptures. For study of *Kalik Sutras*, the second and third quarter of the day and night is the prohibited period In addition, thirty time-periods are also mentioned as prohibited time-periods for study of scriptures Any transgression in this context is non-adherence to the command of *Bhagavan* and may cause other divine troubles. Thus any study during the prohibited period is stated to be a source of non-equanimity

(15) Not to clean hands and feet besmeared with *sachitta* (infested with living organism; life-bearing) dust—When a *Bhikshu* moves about in search of alms or when he goes to another place, sometimes particles of *sachitta* dust fall on his hands and feet It is considered his lack of proper care if he sits, sleeps or takes food without properly cleaning the *sachitta* dust stuck to his hands and feet Such slackness is the cause of state of non-equanimity

(16) To talk too much—Talking too much or to lecture unnecessarily may cause trouble Such a situation also results in disturbance of state of equanimity and that of peace

(17) To create rift in the religious organization—To create rift in the religious order or in the society with an evil intention is a source of non-equanimity.

(18) To quarrel—A quarrel generally starts due to false talk. But even a fact narrated in indecent, harsh, pinching and quarrelsome style produces non-equanimity. It is also considered a quarrel if one disturbs mental peace of others

(19) To keep on eating something throughout the day from sunrise to sunset—One should take his meals at the proper prescribed time. Eating something throughout the day causes ill health Moreover, it increases attachment for taste in the eatables It discourages alacrity in control of taste.

(20) To accept food and liquids in a non-prescribed manner—In case a monk does not properly observe the prescribed code while accepting food, cloth or other articles of essential use and does not look into the faults prescribed relating to their production (*Udgam and Utpadan*) and offering (*eshana*), it badly affects his ascetic-discipline It brings weakness in conduct of spiritual restraints. It also hampers the practice of right knowledge and right faith or perception.

Thus a monk should practice spiritual restraint avoiding the above-mentioned twenty sources of distraction (non-equanimity) so that he may gain equanimity in the conduct of *monk-hood*

● FIRST DASHA CONCLUDED ●

द्वितीय दशा : शबल दोष
SECOND DASHA : MAJOR FAULTS

प्राक्कथन

प्रथम दशा में असमाधि स्थान का वर्णन था। असमाधि स्थान सामान्य दोष है जिनकी शुद्धि साधारण प्रायश्चित्त से भी हो जाती है। इस दशा मे शबल दोषो का कथन है।

INTRODUCTION

In the first chapter (*Dasha*), the sources of non-equanimity were mentioned Such causes are common faults and the self can ordinarily be purified just by repentance In this chapter (*Dasha*) major faults (*Shabal Dosh*) have been narrated □□

इक्कीस शबल दोष **TWENTY ONE MAJOR FAULTS**

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सबला पण्णत्ता।

[प्र.] कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सबला पण्णत्ता ?

[उ.] इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सबला पण्णत्ता, तं जहा–

(१) हत्थकम्मं करेमाणे सबले, (२) मेहुणं पडिसेवमाणे सबले, (३) राइ–भोअणं भुंजमाणे सबले, (४) आहाकम्मं भुंजमाणे सबले, (५) रायपिंडं भुंजमाणे सबले। (६) उद्देसियं वा, कीयं वा, पामिच्चं वा, आच्छिज्जं वा, अणिसिट्ठं वा, अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं वा भुंजमाणे सबले।

(७) अभिक्खणं–अभिक्खणं पडियाइक्खित्ताणं भुंजमाणे सबले। (८) अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सबले, (९) अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सबले, (१०) अंतो मासस्स तओ माइट्ठाणे करेमाणे सबले, (११) सागारियपिंडं भुंजमाणे सबले।

१. हे आयुष्मन् ! मैने सुना है उन भगवान महावीर ने ऐसा कहा है–इस आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवन्तो ने इक्कीस शबल दोष कहे है।

[प्र.] स्थविर भगवन्तो ने वे इक्कीस शबल दोष कौन से कहे है ?

[उ.] स्थविर भगवन्तो ने वे इक्कीस शबल दोष इस प्रकार कहे है। जैसे–

(१) हस्तकर्म करने वाला शबल दोषयुक्त है। इसी प्रकार (२) मैथुन प्रतिसेवन करने वाला। (३) रात्रि भोजन करने वाला। (४) आधाकर्मिक आहार खाने वाला। (५) राजपिण्ड को खाने वाला। (६) साधु के उद्देश्य से निर्मित, साधु के लिए मूल्य से खरीदा हुआ, उधार लाया हुआ, निर्बल से छीनकर लाया हुआ, बिना आज्ञा के लाया हुआ अथवा साधु के स्थान पर लाकर के दिया हुआ आहार खाने वाला शबल दोषयुक्त है।

(७) पुनः-पुन: (आहार का) प्रत्याख्यान करके आहार खाने वाला। (८) छह मास के भीतर ही एक गण से दूसरे गण में जाने वाला। (९) एक मास के भीतर तीन बार (नदी आदि को पार करते हुए) उदक-लेप (जल सस्पर्श) लगाने वाला। (१०) एक मास के भीतर तीन बार माया कपट करने वाला। (११) शय्यातर के आहारादि को खाने वाला सबल दोष का सेवन करता है।

1. Oh, the blessed ! I have heard that Bhagavan Mahavir had said this—Reverend *Sthavirs* have mentioned twenty-one major faults (transgressions) in their Sacred Word.

[Q.] What are the twenty-one major faults that the *Sthavirs* have mentioned ?

[Ans.] Twenty-one major faults that the *Sthavirs* have mentioned are as under—

(1) A monk who has committed masturbation. (2) One involved in sexual activity (3) One who takes meals at night (4) One who accepts *Aadhakarmik* food (food specifically prepared for him) (5) One who takes food from the royal family. (6) Monk who takes food cooked for him, purchased for him, got for him on credit, snatched from a weak person, brought to him without permission (of the owner) or offered to him after bringing it to the place of stay of the monk (All these commit major fault)

(7) One who takes the vow of restraint (for food) but again and again accepts food. (8) One who shifts from one group (*gana*) to another within six months (9) One who dips in water (while crossing a river or other water body) three times within one month (11) One who accepts food from the house of the owner of the place where he (the monk) is staying. (All these commit major fault)

(१२) आउट्टियाए पाणाइवायं करेमाणे सबले। (१३) आउट्टियाए मुसावायं वयमाणे सबले, (१४) आउट्टियाए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सबले।

(१५) आउट्टियाए अणंतरहिआए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, निसीहियं वा चेएमाणे सबले। (१६) आउट्टियाए ससणिद्धाए पुढवीए, ससरक्खाए पुढवीए ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेएमाणे सबले। (१७) आउट्टियाए चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलुए, कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए, स-अंडे, स-पाणे, स-बीए, स-हरिए, स-उस्से, स-उदगे, स-उत्तिंगे पणग-दग मट्टीए, मक्कडा-संताएण ठाणं वा, सिज्जं वा, निसीहियं वा चेएमाणे सबले।

(१८) आउट्टियाए मूलभोयणं वा, कंद-भोयणं वा, खंध-भोयणं वा, तया-भोयणं वा, पवाल-भोयणं वा, पत्त-भोयणं वा, पुप्फ-भोयणं वा, बीय-भोयणं वा, हरिय-भोयणं वा भुंजमाणे सबले।

(१९) अंतो संवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सबले, (२०) अंतो संवच्छरस्स दस माइट्ठाणाइं करेमाणे सबले।

(२१) आउट्टियाए सीओदग वग्घारिय-हत्थेण वा मत्तेण वा, दव्वीए वा, भायणेण वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले।

एते खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं एगवीसं सबला पण्णत्ता-त्ति बेमि॥

॥ इति बिइआ दसा समत्ता ॥

(१२) जान-बूझकर जीव हिंसा करने वाला शबल दोष का सेवन करता है। (१३) जान-बूझकर असत्य बोलने वाला। (१४) जान-बूझकर अदत्त वस्तु को ग्रहण करने वाला।

(१५) जान-बूझकर सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर कायोत्सर्ग, शयन या आसन करने वाला। (१६) जान-बूझकर सचित्त जल से गीली पृथ्वी पर और सचित्त रज से युक्त पृथ्वी पर स्थान (ठहरना) शयन या आसन करने वाला (१७) जान-बूझकर सचित्त शिला पर, सचित्त पत्थर के ढेले पर, दीमक लगे हुए जीवयुक्त काष्ठ पर तथा अण्डोयुक्त, द्वीन्द्रियादि जीवयुक्त, बीजयुक्त, हरित तृणादि से युक्त, ओसयुक्त, जलयुक्त, पिपीलिका (कीडी) नगरायुक्त, पनक (शेवाल) युक्त, गीली मिट्टी पर तथा मकडी के जालेयुक्त स्थान पर स्थान, शयन और आसन करने वाला। शबल दोष का सेवन करता है।

(१८) जान-बूझ करके १ मूल, २ कन्द, ३. स्कन्ध, ४ छाल, ५. कोपल, ६ पत्र ७. पुष्प, ८. फल, ९. बीज, और १०. हरी वनस्पति का भोजन करने वाला।

(१९) एक वर्ष के भीतर दस बार उदक-लेप लगाने वाला। (२०) एक वर्ष के भीतर दस बार मायास्थान सेवन करने वाला। एव (२१) जान-बूझ करके शीतल-सचित्त जल से गीले हाथ, पात्र, चम्मच या बर्तन से अशन, पान, खादिम या स्वादिम को ग्रहण कर खाने वाला शबल दोषयुक्त है। इन आचरणो से शबल दोष लगता है।

स्थविर भगवन्तो ने ये इक्कीस शबल दोष कहे है। -ऐसा मै कहता हूँ।

(12) One who causes violence to the living beings intentionally. (13) One who intentionally tells a lie. (14) One who intentionally takes a thing that has not actually been offered (All these commit major fault.)

(15) One who sits, sleeps or meditates at a place close to contaminated (with living organism) earth intentionally. (16) One who sits, sleeps or stays intentionally on the ground, which is wet with contaminated water or which is full of contaminated dust. (17) One who intentionally sits, sleeps or stays on a slab or heap of stone that contain life, or on wood containing termites, or on earth containing two or more sensed living beings, or on seeds capable of growing, on green grass, or on soil wet with mist or water, or on abode of ants or on moss or weeds, or at a place covered with cobwebs.

(18) One who intentionally eats 1. roots, 2 bulbous roots, 3 trunk, 4. bark, 5. sprouts, 6. leaves, 7 flowers, 8. fruits, 9 seeds and 10. green vegetables

(19) One who enters a water body ten times in a year (20) One who behaves deceitfully ten times in a year (21) One who accepts food, liquids, sweets or suchlike from a person whose hands, pots, spoon or vessel is wet with cold water infested with living organism.

All the said twenty-one ways of life are included in major transgressions (faults). The *Sthavirs* have mentioned these twenty-one major transgressions I say so

विवेचन : पहली दशा मे सयम के सामान्य दोष–बीस असमाधि स्थानो का कथन है। इस दूसरी दशा मे इक्कीस शबल (अधिक घातक) दोषो का कथन है। 'शबल' का अर्थ है, सयमरूपी श्वेत चादर को मलिन करने वाले दोष। इनसे मूल महाव्रतो को भी क्षति पहुँचती है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने 'शबल' की व्याख्या करते हुए लिखा है–"शबल दो प्रकार के है–द्रव्य शबल–चितकबरापन। भाव शबल–दोष लगने पर चारित्र का दूषित/दागी हो जाना।"

मूल गुणो मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार लगना–ये तीनो शबल दोष है। अनाचार का सेवन करना–व्रत का सर्वथा भग है। साधक को सदा जागरूक व सावधान रहना चाहिए कि उसकी सयम चारित्ररूपी चादर मैली व दाग–धब्बो से दूषित न हो। जरा–सा धब्बा लगते ही उसकी शुद्धि कर लेना चाहिए। यहाँ पर मुख्य रूप से २१ शबल दोषो का उल्लेख किया है। समवायागसूत्र २१ मे भी शबल दोषो का कथन है तथा निशीथसूत्र मे इन दोषो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान भी किया है।

इनके सेवन से आत्मा कर्मबद्ध होकर दुर्गति को प्राप्त करती है। इन दोषो की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त भी प्राय अनुद्घातिक (गुरु) मासिक या चौमासिक होते है–

(१) **हस्तकर्म**–मोहनीयकर्म के प्रबल उदय से तथा अन्य सहायक निमित्त जैसे कुसगति आदि से अनेक अज्ञानी प्राणी इस बुरी आदत के शिकार हो जाते हैं। इस बुरी लत से शरीर तो निस्तेज हो ही जाता है, जीवनी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। चारित्र दूषित व मनोबल क्षीण हो जाता है।

हस्तमैथुन से 'वीर्य' नष्ट होने पर शरीर अनेक असाध्य रोगो से ग्रस्त हो जाता है। विरक्त साधक भी किसी अज्ञान व कामोत्तेजना के कारण इससे ग्रस्त न हो जाये, इसलिए इसको 'शबल' दोष कहा है।

इस दुष्कर्म को बृहत्कल्पसूत्र और ठाणागसूत्र मे गुरु (बडे) प्रायश्चित्त का स्थान कहा है। निशीथसूत्र के प्रथम सूत्र में ही इसका प्रायश्चित्त बताया है। इससे स्पष्ट होता है यह दुष्कर्म महादोष व पतन का प्रमुख कारण है।

(२) **मैथुन सेवन**–सयमी साधक मैथुन त्याग करके आजीवन ब्रह्मचर्य पालन के लिए उद्यत हो जाता है। क्योंकि वह यह जानता और मानता है कि यह मैथुन अधर्म का मूल है एव महादोषो का कारण है। विवेकपूर्वक संयमसाधना करते हुए भी कभी–कभी आहार–विहार की असावधानियो से या नववाड का समुचित पालन न करने से अथवा वेदमोह का तीव्र उदय होने पर साधक सयमसाधना से विचलित हो सकता है। मैथुन सेवन करने वाले को गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है, साथ ही उसके तीन वर्ष के लिए या जीवनभर के लिए धर्मशास्ता के सभी उच्च पदो को प्राप्त करने के अधिकार समाप्त कर दिये जाते है।

टीकाकार का कथन है, यहाँ मैथुन सेवन का कथन–अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार तक सीमित है। यदि वह मैथुन स्त्री–संसर्ग रूप अनाचार सेवन होता है तो वह शबल दोष से भी बडा दोष है। उसका प्रायश्चित्त भी बडा है।

(३) **रात्रिभोजन**–रात्रिभोजन का त्याग करना साधु का मूल गुण है। वह आजीवन रात्रिभोजन का त्यागी होता है। इसके लिए दशवैकालिक, बृहत्कल्प आदि सूत्रो में विभिन्न प्रकार के निषेध और प्रायश्चित्त का विधान है। रात्रिभोजन से प्रथम महाव्रत भी दूषित होता है।

(४) **आधाकर्म**–यह एषणा समिति मे उद्‌गम दोष है। जो आहारादि साधु, साध्वी के निमित्त तैयार किया हो, अग्नि, पानी आदि का आरम्भ किया गया हो, वह आहारादि आधाकर्म दोषयुक्त कहलाता है। अनेक आगमो में आधाकर्म आहार खाने का निषेध किया गया है। यदि भूल से आधाकर्म आहार ले लिया गया हो तो जानकारी होने के बाद उसे खाना नहीं कल्पता है, किन्तु परठ देना चाहिए। आधाकर्मी आहारादि के सेवन से प्रथम महाव्रत दूषित होता है।

(५) **राजपिण्ड**–जिनका राज्याभिषेक हुआ हो, जो राज्यचिन्हो से युक्त हो, ऐसे राजा के घर का आहारादि राजपिण्ड कहा जाता है। पहले और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनकाल मे राजपिण्ड ग्रहण करने का निषेध है। किन्तु बीच के २२ तीर्थंकरो के शासनकाल में साधु राजपिण्ड ग्रहण कर सकते थे। राजाओ के यहाँ गोचरी जाने से अनेक दोष लगना सम्भव है। जैसे–

१ राजाओ की पाकशाला मे भक्ष्याभक्ष्य का विचार नही रहता है।

२ उनका पौष्टिक भोजन काम–वासनावर्धक होने से साधुओ के योग्य नही होता है।

३ राजकुल मे बार–बार जाने से जनता अनेक प्रकार की आशंकाएँ करती है।

४ साधु के आगमन को अमगल समझकर कोई कष्ट दे या पात्र फोड दे।

५ साधु को चोर या गुप्तचर समझकर पकडे, बाँधे या मारपीट भी कर दे इत्यादि।

निशीथसूत्र मे राजपिण्ड ग्रहण करने वाले को गुरु चौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

(६) **क्रीतादि**–साधु के निमित्त खरीदकर लाये हुए, उधार लाये गये, किसी से छीनकर दिये जाने वाले, बिना आज्ञा के दिये जाने वाले, भागीदारी के पदार्थ व अन्य ग्रामादि से सम्मुख लाकर दिये जाने वाले पदार्थों को ग्रहण करना और उनका सेवन करना यहाँ शबल दोष कहा है। ये सभी एषणा समिति के अन्तर्गत उद्‌गम के दोष है। इनके सेवन से गृहस्थकृत आरम्भ की अनुमोदना होती है जिससे प्रथम महाव्रत दूषित होता है और तीसरे महाव्रत मे भी दोष लगता है।

(७) **प्रत्याख्यान–भंग**–किसी प्रत्याख्यान को एक बार भग करना भी दोष ही है किन्तु बार–बार प्रत्याख्यानो को भग करना शबल दोष कहा गया है। ऐसा करने से साधु की प्रतीति (विश्वास) नहीं रहती है। जनसाधारण को पता चलने पर साधु समाज की अवहेलना होती है। दूसरा महाव्रत और तीसरा महाव्रत दूषित हो जाता है। प्रतिज्ञा भ्रष्ट व्यक्ति का सर्वत्र अनादर होता है।

(८) **गणसंक्रमण**–जिस आचार्य या गुरु की निश्रा मे जो साधु–साध्वी रहते है, उनका अन्य आचार्य या गुरु के नेतृत्व में जाकर रहना गणसक्रमण–गच्छपरिवर्तन कहलाता है। गणसंक्रमण के प्रशस्त (अच्छे) और अप्रशस्त (बुरे) दोनो कारण होते हैं। ज्ञानवृद्धि या संयमवृद्धि के लिए अथवा परोपकार की भावना से गणसंक्रमण करना

प्रशस्त कारण है। गुस्से में आकर या अहकार से अथवा अन्य किसी प्रलोभन के कारण गणसक्रमण करना अप्रशस्त कारण है।

वैसे प्रशस्त कारणो से गणसक्रमण करना कल्पनीय होते हुए भी बारम्बार या छह मास के भीतर करने पर चंचल वृत्ति का प्रतीक होने से उसे यहाँ शबल दोष कहा है।

(९) उदक-लेप-अर्द्ध जघा [घुटने के बीच के जितने] प्रमाण के कम पानी मे चलना 'दगसंस्पर्श' और अर्द्धजंघा प्रमाण से अधिक, नाभि के नीचे तक पानी मे चलना 'उदक-लेप' कहा जाता है। सचित्त जल की अत्यल्प विराधना करने पर भिक्षु को लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है। अत बिना विशेष कारण के उसे एक बार भी पानी में चलकर नदी आदि पार करना नही कल्पता है। प्रस्तुत सूत्र मे एक मास मे तीन बार जलयुक्त नदी पार करने पर शबल दोष लगना बताया है, इसका कारण यह है कि चातुर्मास समाप्त होने के बाद भिक्षु ग्रामानुग्राम विहार करता है। फिर एक गाँव मे मासकल्प (२९ दिन) से ज्यादा नहीं ठहर सकता है। इस कारण यदि उसे प्रथम विहार के दिन ऐसी नदी पार करना पडे तथा फिर २९ रात्रि वहाँ रहने के बाद तीसवे दिन विहार करने पर भी ऐसा ही प्रसग उपस्थित हो जाये तो परिस्थितिवश (अपवाद रूप मे) उसे एक मास मे दो बार नदी पार करना कल्प-मर्यादा निर्वाह के लिए आवश्यक हो सकता है। इससे अधिक तीन-चार बार 'उदक-लेप' लगाने मे अन्य अनावश्यक कारण होने से वह शबल दोष कहा जाता है। सेवा आदि कार्यों के निमित्त यदि अधिक उदक लेप लगे तो उसे शबल दोष नही माना जाता है।

(१०) मायासेवन-माया एक ऐसा भयकर कषाय है जिसके सेवन मे सयम और सम्यक्त्व दोनो का ही नाश हो जाता है। ज्ञातासूत्र मे मल्लिनाथ तीर्थंकर के जीव का उदाहरण देकर बताया है कि माया के सेवन से मिथ्यात्व की प्राप्ति और स्त्रीवेद का निकाचित बध हुआ। अत भिक्षुओ को तप-सयम की साधना मे भी कभी माया का सेवन नही करना चाहिए।

इस सूत्र मे एक मास मे तीन बार मायासेवन करने को शबल दोष कहा है किन्तु एक या दो बार मायासेवन करने पर शबल दोष नही कहा है, इसमे विशेष परिस्थिति ही प्रमुख कारण समझना चाहिए।

व्यवहारसूत्र के आठवे उद्देशक मे इसका स्पष्टीकारण करके बताया है, कभी साध्वियो के लिए अथवा बाल, रुग्ण, वृद्ध भिक्षुओ के ठहरने के लिए स्थान प्राप्त करने हेतु अथवा विकट-विषम परिस्थिति मे माया का किंचित् सेवन करना पड सकता है। अत महीने मे दो बार ऐसी परिस्थिति आ जाये तो मायासेवन कर मकान प्राप्त करना शबल दोष नही कहा गया है। किन्तु सामान्य कारणो से एक बार मायासेवन करना भी शबल दोष समझना चाहिए।

(११) शय्यातर-पिण्ड-जिस मकान मे भिक्षु ठहरा हुआ हो, उस शय्या (मकान) का दाता शय्यातर तथा उसके घर का आहारादि शय्यातर-पिण्ड या सागारिय-पिण्ड कहा जाता है। क्योंकि मकान मिलना दुर्लभ ही होता है और मकान देने वाले के घर से आहारादि अन्य पदार्थ ग्रहण करे तो मकान की दुर्लभता और भी बढ जाती है। सामान्य गृहस्थ यही सोचते है कि जो अपने घर मे अतिथि रूप मे ठहरते है तो उनकी सभी व्यवस्था उसे ही करनी होती है। भिक्षु का भी ऐसा आचार हो तो वह शय्यादाता के लिए भार रूप माना जाता है। इत्यादि कारण से सभी तीर्थंकरो के शासनकाल मे साधुओ के लिए यह आवश्यक नियम है कि वह शय्यादाता के घर से आहारादि ग्रहण न करे, क्योकि शय्यादाता अत्यधिक श्रद्धा-भक्ति वाला हो तो अनेक दोषो की संभावना हो सकती है।

(१२-१३-१४) जानकर हिंसा, मृषा और अदत्तादान का सेवन—भिक्षु जीवनभर के लिए तीन करण, तीन योग से हिंसा, असत्य और अदत्त का त्यागी होता है। यदि अनजाने इनका सेवन हो जाये तो उसका प्रायश्चित्त आता है। किन्तु संकल्प करके जान-बूझकर कोई हिंसा आदि करता है तो उसके ये कृत्य शबल दोष कहे जाते है और इन कृत्यो से मूल गुणों की विराधना होनी है और उसका संयम भी शिथिल व दूषित हो जाता है।

(१५-१६-१७) जान-बूझकर पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय की विराधना करना—छहों काय के जीवों की विराधना न हो, भिक्षु प्रतिक्षण यह विवेक प्रत्येक कार्य करते समय रखे। जैसे-१ सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर, २ नमीयुक्त भूमि पर, ३ सचित्त रज से युक्त भूमि पर, ४ सचित्त मिट्टी बिखरी हुई भूमि पर, ५ सचित्त भूमि पर, ६. सचित्त शिला पर, ७ सचित्त पत्थर आदि पर, ८. दीमकयुक्त काष्ट पर तथा अन्य किसी भी त्रस स्थावर जीव से युक्त स्थान पर बैठना, सोना तथा खड़े रहना भिक्षु को नहीं कल्पता है। इन तीनो सूत्रो में बताया है कि सकल्पपूर्वक किये गये ये सभी कार्य शबल दोष हैं। अत भिक्षु चलना, खडे रहना, बैठना, सोना, खाना, बोलना आदि सभी प्रवृत्तियाँ यतनापूर्वक करे, जिससे पापकर्मों का बन्ध न हो।

(१८) कंद, मूल आदि भक्षण—भिक्षु जीवनपर्यन्त सचित्त का त्यागी होता है। गृहस्थ के लिए बने वनस्पति के अचित्त खाद्य पदार्थ ग्रहण करके क्षुधा शान्त कर सकता है। किन्तु अचित्त खाद्य न मिलने पर सचित्त फल, फूल, बीज या कद, मूल आदि वनस्पति के दसो भागो का खाना साधु को नहीं कल्पता है। क्योकि छेदन-भेदन करने से वनस्पतिकाय के जीवो के प्रति अनुकम्पा नही रहती है, अत प्रथम महाव्रत भग होता है। यहाँ जान-बूझकर खाने को शबल दोष कहा है।

(१९-२०) उदकलेप-मायासेवन—९वे, १०वे शबल दोष मे एक मास मे तीन बार उदकलेप और मायासेवन को शबल दोष कहा है, यहाँ एक वर्ष मे दस बार सेवन को सबल दोष कहा है। ९ बार तक सेवन को शबल दोष नही मानने का कारण यह है कि गाँव से गाँव विचरते हुए प्रथम मास मे दो बार जो परिस्थिति बन सकती है, वैसी परिस्थिति आठ महीनो मे विहार करते समय नव बार भी बन सकती है। २९ दिन के कल्प से रहने पर सात महीनो मे सात बार और प्रथम महीने मे दो बार विहार करना आवश्यक होने से एक वर्ष मे नव विहार आवश्यक होते है। अत नव बार से अधिक उदकलेप और मायास्थान सेवन को यहाँ शबल दोष कहा है। विशेष कारण का स्पष्टीकरण किया जा चुका है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि मायासेवन मे स्थान प्राप्ति का ही मुख्य हेतु माना है।

(२१) सचित्त जल से लिप्त पात्रादि से भिक्षा ग्रहण करना—दशवैकालिक (५) तथा आचाराग (२/१/६) मे कहा है-भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु यदि यह जाने कि दाता का हाथ अथवा चम्मच, बर्तन आदि सचित्त जल से भीगे हुए है तो उससे भिक्षा ग्रहण करना नहीं कल्पता है। ऐसे लिप्त हाथ आदि से भिक्षा ग्रहण करने पर अप्काय के जीवो की विराधना होती है। खाद्य पदार्थों मे सचित्त जल मिल जाने पर सचित्त खाने-पीने का दोष लगना भी सम्भव है। यह एषणा का 'लिप्त' नामक नौवाँ दोष है।

॥ द्वितीय दशा समाप्त ॥

Elaboration—In the first chapter (*Dasha*), twenty minor faults in spiritual discipline have been mentioned. In the second chapter (*Dasha*), more dangerous twenty-one faults are narrated. *Shabal* means a fault that darkens the bright sunshine of spiritual discipline. Such faults

adversely affect even the major vows (*Mahavrats*). While explaining the word '*Shabal*' Acharya Atmaram ji Maharaj has said—*Shabal* is of two types—*Dravya Shabal* (*Shabal* from outside) which means non-uniformity in the body The second is *Bhaava Shabal*. It means the conduct becoming blemished due to the *Shabal* (major) fault.

To think in the mind about breaking the basic tenets (*Atikram*), to make preparation for it (*Vyatikram*), to reach the stage of minor transgression (*Atichar*) in spiritual discipline—all the said three are major (*Shabal*) faults. Indulging in misconduct (*Anachar*) amounts to breaking the vow completely. A practitioner of spiritual discipline should always remain careful and vigilant so that his path of spiritual discipline does not get polluted. Even the slightest indiscipline should be purified immediately. Here primarily twenty-one major faults (*Shabal Dosh*) have been mentioned. In *Samavayanga Sutra* too twenty-one major faults are narrated. In *Nisheeth Sutra* penance for their purification has been prescribed.

Due to these faults the soul accumulates bad *karmas* and thus goes into the bad state of existence in the next life The penance too for these faults is generally more severe, namely reducing the period of *monkhood* by one month to four months.

(1) Masturbation—Many ignorant persons fall prey to this bad habit due to the strong effect of deluding *karma* and other supplementary factors such as company of bad characters. It adversely affects the physical body and the strength The conduct is badly affected and the mental vigour also diminishes

The loss of *Virya* (energy) due to unnatural intercourse becomes the cause of many incurable diseases In order to dissuade a detached person (practicing the spiritual code) from indulging in unnatural sexual activity out of ignorance or sexual urge, it has been classified as a major fault in spiritual discipline

In *Brihat-kalp Sutra* and *Sthananga Sutra*, this bad practice has been included in the category requiring severe punishment Its punishment has been mentioned in the very first aphorism of *Nisheeth Sutra* It is thus evident that this bad act is the primary cause of dangerous digression and downfall.

(2) Indulgence in sexual activity—After discarding sexual activity, a practitioner of spiritual restraint, prepares himself for observing celibacy throughout life because he understands and believes that sex is the root

of non-spirituality and cause of major faults. Even while cautiously following code of restraints a practitioner can occasionally deviate from spiritual practice due to lack of care in taking of food, in movement, in properly observing nine restrictions for celibacy or due to intense fruition of gender instinct. One who indulges in sexual activity has to undergo punishment of curtailment of four months in period of initiation. Simultaneously, he loses for three years or for the entire remaining life-span the right of being considered for any of the high posts in spiritual order.

According to the commentator, this punishment is prescribed for those practitioners who have thought of, prepared themselves or slightly transgressed the limits in sex-discipline. In case, he actually commits sex with a woman, his guilt is more drastic than even the major fault Its punishment is also drastic.

(3) Taking meals at night—It is one of the basic virtues of a monk to refrain from taking meals at night. He must observe it strictly throughout his life. Restrictions of various type in this context and also punishments for these have been mentioned in *Dashavaikalik*, *Brihat-kalp* and other scriptures. Taking meals at night badly affects even the proper observance of the first major vow.

(4) *Adhakarm* (Food prepared for a monk)—This fault is in context of care in accepting of prepared food. The food which has been prepared for a monk or a nun and in which use of fire or water is involved, is termed as faulty food having the fault of Adhakarm. In many *Agams* taking of such food is strictly prohibited. In case such food has been inadvertently accepted, it should not be eaten when one comes to know that it is *Adhakarmi* It should be discarded. Taking of *Adhakarmi* food makes the observance of first major vow (*Mahavrat*) faulty

(5) Royal food—A person who has been crowned as a king or one who is adorned with royal symbols is called Raja The food prepared in his house is called royal food (*Raj Pind*). During the periods of influence of the first *Tirthankar* and the last *Tirthankar*, the acceptance of royal food by a monk is prohibited. But during the periods of influence of the remaining twenty-two *Tirthankars*, it could be accepted. Many faults can occur in case a monk goes to a king's palace for alms Namely—

1. In the royal kitchen, there is no proper distinction of proper food worthy of being taken according to spiritual code

2. The energetic food is not desirable for monks since it increases sexual instinct

3. In case a monk goes to the royal family repeatedly, it may cause various types of misgivings in the general public

4 One may consider the arrival of a monk as a bad omen and therefore cause pain to him or break his pot

5 One may apprehend a monk considering him to be a thief or a spy and then tie him or beat him.

According to *Nisheeth Sutra*, a monk who accepts food from the royal family deserves the hard punishments of four month.

(6) Purchased food—Articles that have been purchased, got on credit, or snatched, secured without the permission of the owner, or those belonging to a partner, or brought forth from a village or other distant place specifically for the monk, cannot be accepted or used by the monk It is considered a major fault All these are faults in production covered under *Eshana Samiti* (the prescribed code of collecting alms) The use of such articles by a monk supports the sinful activity of the householder in their production or procurement It adversely affects the first major vow and also the third major vow (*Mahavrat*)

(7) Breaking a vow of restraint—To break a vow or voluntarily accepted restraint is, indeed, a fault. But in case it is broken repeatedly, it becomes a major fault People lose faith in him When the general public learns about it, the reputation of the monk organization is adversely affected It is a slur on the second and the third major vow A person who fails in his resolve is dishonoured everywhere

(8) Change of the spiritual group (*gana*)—In case monks or nuns belonging to a particular *acharya* or the guru, change their affiliation and enter another spiritual group, it is called *gana-sankraman* The causes of such a change may be good or bad It is meritorious to change the group for progress in spiritual knowledge or spiritual restraint But it is a demerit to change the group in a fit of anger or ego or due to greed.

The change of spiritual group repeatedly or within six months is a symbol of non-steadfast behaviour even if it is done for a good cause. Therefore, it is termed as a major fault.

(9) Udak-lape (Walking in water)—To walk in lower than knee deep water is termed as *dag-sansparsh* but when one walks in more than

knee-deep water and the water level has not crossed the naval, it is called *Udag-lape* In case a monk has slightly transgressed the code relating to life-bearing water (*sachitta jal*) he is awarded minor punishment So, it is not proper for a monk to cross a stream on foot even once without any specific cause. In this *Sutra*, it has been clearly mentioned that it is a major fault in case a monk crosses a flowing stream thrice in a month. The underlying idea is that a monk moves from one village to another after the completion of four months' stay during *chaturmas*. He cannot stay for more than a month (29 days) in a particular village. In case he has to cross a stream while going to that village and after completion of 29 days stay there, he wants to return to the earlier place, he shall have to cross the stream again during that month namely on the 30th day. So, it becomes necessary for him to cross the flowing stream twice within a month To cross the stream three or four times is due to extraneous causes, which are not essential. So, it becomes a major fault. In case one has to go to serve another monk in need or in suchlike circumstances, it is not termed as a major fault

(10) Fraud—Fraud (crookedness) is a dangerous passion and it pollutes both the code of restraint and the right faith (*Samyaktva*) In *Jnata Sutra*, quoting the example of previous life of Lord Mallinaath, it is stated that due to a little crookedness in conduct, that soul entered the field of wrong faith (*mithyatva*) and collected such *Karma* that resulted in birth as a woman Therefore, the monks should not fall prey to crookedness even in ascetic practices.

In this *Sutra*, the fraud in conduct is a major fault in case it is done three times or more. But it is not so if it is done once or twice It should be understood that it is so mentioned keeping in view the special circumstances as the major cause for such behaviour.

It has been clarified in the eighth *Uddeshak* (chapter) of *Vyavahar Sutra*. A monk may have to exhibit a little crookedness in his conduct in procuring place of stay for nuns or young, ill and old monks or sometimes even in grave situation. Therefore, it is not a major fault in spiritual conduct in case in any such circumstances, a monk secures a house for stay by adopting slightly crooked behavior not more than two times in a month. But in ordinary circumstances crookedness observed even once should be considered as a major fault.

(11) Food from the owner of the house where the monk is staying (*Shayyatar Pind*)—The person who has offered the house to the monk

for stay is called *Shayyatar* and the food and other suchlike of that house is termed as *Shayyatar Pind* or *Saagariya Pind*. This is because generally it is difficult to get a house for stay. In case the monk gets food and suchlike also from there, it shall become more difficult to get a place of stay. An ordinary householder feels that he has to make all the arrangements for any person who is going to stay in his house as a guest. In case a *Bhikshu* (monk) also behaves in that fashion, he shall become a burden on the owner of the house. So, it is an essential rule during the period of influence of all the *Tirthankars* that the monk should not accept food and suchlike from the owner of the house who has provided the place of stay In case the person who has offered such a place is a great devotee, there can be possibilities of many faults.

(12-13-14) Causing violence, falsehood and stealing knowingly—A *Bhikshu* has discarded violence, falsehood and taking of anything not specifically offered by the owner (*adatta*) for entire life in three modes (of doing himself, getting it done and appreciating one who has done so) and also in three states (mentally, verbally and also in action) In case he transgresses inadvertently, he has to undergo repentance But in case one intentionally and knowingly commits any act of violence or suchlike, it is termed as a major fault Such an act adversely affects the basic code and vows, and his spiritual conduct also gets weakened and polluted.

(15-16-17) To intentionally cause violence to earth-bodied, water-bodied and plant-bodied living beings—A *Bhikshu* while doing any activity should remain cautious every moment that there does not occur any violence to any of the six types of living beings For instance he should not sit, sleep or stand on (i) land close to the earth infested with earth-bodied living beings, (ii) moist land, (iii) land with life-bearing dust, (iv) land on which life-bearing sand is scattered, (v) land infested with living beings (*sachitta bhumi*), (vi) *sachitta shila* (rock), (vii) *sachitta patthar* (stone soiled by water or dust containing living beings), (viii) wood infested with white ants, or any place infested with mobile or immobile living beings In these three aphorisms, it has been stated that all such activities done intentionally comprise major faults in the spiritual conduct So, a *Bhikshu* should perform all the activities namely those of walking, standing, sitting, sleeping, eating, talking and suchlike carefully so that he may not collect demerit-bearing *karmas*

(18) Eating bulbous roots, imbedded stems (*kand, mool*) and suchlike—A *Bhikshu* is one who has discarded taking life-bearing

(*sachitta*) things for his entire life-span. He can satisfy his hunger by accepting vegetable dishes prepared by a householder for himself and which no longer contain living organism. In case such preparations are not available, he cannot accept fruits, flowers, seeds, roots, stems close to the roots and suchlike ten parts of vegetable that still have life. It is because in cutting or piercing them compassion towards plant-bodied living beings withers away and therefore, the first major vow is affected. Here it is categorized as a major fault in spiritual discipline when it is taken knowingly

(19-20) Walking in water and crookedness (*Udak-lape and Maya*)— In the ninth and tenth major faults it has been mentioned that they occur when a *Bhikshu* crosses a stream or observes crookedness in behaviour three times in a month Here it is stated that such an act done ten times in a year becomes a major fault Such an act done nine times in a year is not categorized as a major fault It is because while wandering from one village to another the situation leading to such an act can occur twice in the first month and nine times in the total span of eight months Since a monk cannot stay for more than twenty-nine days at a place, it is essential for him to move out seven times in the period of seven months and twice in the first month Thus nine movements are essential. Therefore crossing a flowing stream more than nine times or adopting slight crookedness in behaviour more than nine times in a year is termed as a major fault The special situation has already been explained earlier It is thus evident that in case of crookedness in spiritual conduct the primary cause is securing place of stay.

(21) To accept alms from a pot bearing water-bodied living beings— In the fifth chapter of *Dashavaikalik Sutra* and in the sixth aphorism of the first *Uddeshak* of the second chapter of *Acharanga Sutra* it has been mentioned – 'While entering for accepting alms, if the *Bhikshu* finds that the hand, spoon or the pot from which the donor is going to give food is soiled with life-bearing water, he should not accept that food. The acceptance of food from such hands and the like will cause violence to water-bodied beings When life-bearing water mixes with the eatables, there is possibility of the fault of consuming life-bearing food and water. This is the ninth fault in securing alms, which is known as *lipt* (besmeared).

● SECOND DASHA CONCLUDED ●

तृतीय दशा : आशातना
THIRD DASHA : DIGRESSIONS (ASHATANA)

प्राक्कथन

प्रस्तुत तृतीय दशा मे तेतीस आशातना का कथन है। 'आशातना' शब्द का अर्थ है ज्ञान-दर्शन-चारित्र की क्रिया को खण्डित व दूषित करने वाली प्रवृत्ति। इसके दो भेद है-(१) **मिथ्या प्रतिपादन**-पदार्थ का स्वरूप बिना जाने या अहकार आदि के कारण मिथ्या कथन करना। (२) **मिथ्या प्रतिपत्ति लाभ**-गुरु व पूज्य जनो के प्रति अविनय तथा अवहेलना का व्यवहार करना। सक्षेप मे देव-गुरु-धर्म-सघ व जीव आदि किसी के प्रति अवहेलना, तथा असभ्य दीखने वाला, उनको अप्रिय लगने वाला व्यवहार आशातना है। आशातना के भी सैकडो प्रकार हो सकते है। यहाँ तेतीस अशातना का सक्षेप मे सूचन मात्र है।

INTRODUCTION

In the present third chapter (*Dasha*) there is detailed description of thirty-three *ashatana* (digressions) The word *ashatana* denotes that instinct or behaviour which destroys or adversely affects the activity relating to right knowledge, faith (or perception) and conduct It is of two types—**(1) To wrongly establish a concept**—To make a wrong statement without knowing the real nature of a substance or in a fit of ego **(2) To behave in a wrong manner**—To behave in a disrespectful or rude manner with the teacher or those worthy of respect In brief any behaviour, which indicates disrespect to the Lord, the teacher, the religious organization or living beings and also which appears to be uncivilized or deplorable is a digression. Digression can be of hundreds of types. But here thirty-three digressions have been listed in brief □□

तेतीस आशातनाएँ THIRTY THREE DIGRESSIONS

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ।

[प्र.] कयराओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ ?

[उ.] इमाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ। तं जहा-

(१) सेहे रायणियस्स पुरओ गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२) सेहे रायणियस्स सपक्खं गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३) सेहे रायणियस्स आसन्नं गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(४) सेहे रायणियस्स पुरओ चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(५) सेहे रायणियस्स सपक्खं चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(६) सेहे रायणियस्स आसन्नं चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(७) सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(८) सेहे रायणियस्स सपक्खं निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(९) सेहे रायणियस्स आसन्नं निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

१. हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है भगवान महावीर ने ऐसा कहा है–इस जिन–प्रवचन मे स्थविर भगवन्तो ने तेतीस आशातनाएँ कही है।

[प्र.] उन स्थविर भगवन्तों ने तेतीस आशातनाएँ कौन–सी कही है ?

[उ.] उन स्थविर भगवन्तो ने तेतीस आशातनाएँ इस प्रकार कही है। जैसे–

(१) शैक्ष (अल्प दीक्षा–पर्याय वाला), रात्निक (दीर्घ दीक्षा–पर्याय वाला) साधु के आगे चले तो, उसे आशातना दोष लगता है।

(२) इसी तरह शैक्ष, रात्निक साधु के समश्रेणी–(बराबरी) मे चले तो, उसे आशातना दोष लगता है।

(३) शैक्ष, रात्निक साधु के अति समीप होकर चले तो, उसे आशातना दोष लगता है।

(४) शैक्ष, रात्निक साधु के आगे खड़ा हो तो, आशातना दोष लगता है।

(५) शैक्ष, रात्निक साधु के समश्रेणी मे खड़ा हो तो, आशातना दोष लगता है।

(६) शैक्ष, रात्निक साधु के अति समीप खड़ा हो तो, आशातना दोष लगता है।

(७) शैक्ष, रात्निक साधु के आगे बैठे तो, आशातना दोष लगता है।

(८) शैक्ष, रात्निक साधु के समश्रेणी मे बैठे तो, आशातना दोष लगता है।

(९) शैक्ष, रात्निक साधु के अतिसमीप बैठे तो, आशातना दोष लगता है।

1. Oh, the blessed ! I have learnt that Bhagavan Mahavir has said—In the spiritual dialogue, the respected *Sthavirs* have mentioned thirty-three digressions or irreverence (*Ashatana*).

[Q.] What are the said thirty-three digressions ?

[Ans.] The thirty-three digressions have been narrated as under—

(1) It is irreverence (digression) if one younger in saintly period (*shaiksha*) walks ahead of that monk who is senior to him in saintly period (*Ratnik*).

(2) Similarly if he walks side by side and very close to his elders in saintly life, that also is irreverence.

(3) If he walks very close to his elders that also is irreverence in a spiritual behaviour towards the elders.

(4) A junior is guilty of irreverence if he stands ahead of the senior monk (*Ratnik*)

(5) He is guilty of irreverence if he stands in the same line with the senior monk

(6) He is guilty of irreverence if he stands very close to his senior in *monk-hood*

(7) It is irreverence if the junior sits ahead of his seniors

(8) It is irreverence if he sits in line with the senior monk.

(9) It is irreverence if he sits very close to the senior monk.

(१०) सेहे रायणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमिं निक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आयमइ, पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स। (११) सेहे रायणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमि वा विहारभूमिं वा निक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आलोएइ पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१२) केइ रायणियस्स पुव्वसंलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवइ, पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१३) सेहे रायणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स 'अज्जो ! के सुत्ता, के जागरा ?' तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अपडिसुणेत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१०) शैक्ष, रात्निक साधु के साथ बाहर मलोत्सर्ग-(शौचभूमि) स्थान पर गया हुआ हो, वहाँ शैक्ष रात्निक से पहले आचमन (शौच-शुद्धि) करे तो, आशातना दोष लगता है। इसी प्रकार-(११) शैक्ष, रात्निक के साथ बाहर विचारभूमि (शौचभूमि) या विहारभूमि (स्वाध्याय स्थान) मे जावे तब शैक्ष रात्निक से पहले गमनागमन की आलोचना करे तो

(१२) कोई व्यक्ति रात्निक के पास वार्त्तालाप के लिए आवे, यदि शैक्ष उससे पहले ही वार्त्तालाप करने लगे तो. .

(१३) रात्रि मे या विकाल (सन्ध्या समय) मे रात्निक साधु शिष्य को सम्बोधन करके कहे-"हे आर्य ! कौन-कौन सो रहे है और कौन-कौन जाग रहे है ?" उस समय जागता हुआ भी शैक्ष यदि रात्निक के वचनो को अनसुना करके उत्तर न दे तो, आशातना दोष लगता है।

(10) In case a junior monk, who had gone with his senior to an open land for call of nature, does the cleansing and the like before his senior does, he is guilty of irreverence (11) Similarly a junior monk commits guilt of digression if he does introspective repentance about the violence committed in the process of going, before his senior does

असमाधि स्थान

चित्र परिचय-१

Illustration No. 1

असमाधि स्थान एवं आशातना

असमाधि स्थान

१. मार्ग चलते समय बहुत जल्दी जल्दी, सामने की भूमि को बिना देखे चलना अथवा आकाश की तरफ देखते हुए या इधर-उधर देखते हुए चलना सयम मे असमाधि का कारण है। इससे जीव-हिंसा तथा शरीर की हानि भी हो सकती है।

२ गुरु अथवा स्थविरो के सामने अविनयपूर्वक, कठोरता या अवहेलनापूर्वक बोलना भी असमाधि का कारण है।

३ पीठ पीछे, चुप-चुप गुरुजनो की चुगली अथवा निन्दा करना, यह भी सयम मे असमाधि का कारण है।

-दशा १/१, ५, १०, पृ ५

आशातना

आशातना के अनेक प्रकार है, जैसे कुछ ये है-

१ मार्ग चलते समय गुरुओ से सटकर टकराते हुए या उनके बराबर चलना।

२ गुरुजन किसी के साथ बातचीत करते हो तब बिना बुलाये ही उनके बीच मे बोलना या बीच मे आकर खडा हो जाना।

३ प्रवचन आदि के समय गुरुओ के पाट पर आसन के बराबर तथा उनके शरीर को छूते हुए बैठना।

इत्यादि अवज्ञा तथा अविनयपूर्ण व्यवहार गुरुओ की आशातना कहा जाता है।

दशा ३/१ ४ ९, पृ २६

CAUSES OF NON-EQUANIMITY AND IRREVERENCE

CAUSES OF NON-EQUANIMITY

1 To walk very hastily, without looking at the ground ahead or looking up and sideways while moving is a cause of non-equanimity in ascetic-discipline This may cause harm to living beings as well as own body

2 To use immodest, harsh and insulting language before the teacher or seniors is also a cause of non-equanimity

3 To slander and criticize seniors furtively in their absence is also a cause of non-equanimity

—Dasha 1/1, 5, 10, p 5

IRREVERENCE

Numerous types of **Irreverence**, some are—

1 To touch, collide or move adjacent to the seniors while walking

2 To interfere or obstruct seniors when they are talking to someone

3 To sit adjacent to or touching the body of the seniors while they are sitting on a platform giving discourse or otherwise

Suchlike disrespectful and immodest behaviour with seniors is called ashaatana (irreverence)

—Dasha 3/1, 4, 9, p 26

(12) In case someone comes to the senior monk for some discussion, a junior monk is guilty of digression if he starts talking to him before the senior does.

(13) In case the senior monk addresses his disciple in the evening or at night, "O, the blessed ! Among you, who sleeps and who is still awake." In case the disciple is awake but does not reply and ignores the command of his teacher, he is guilty of irreverence

(१४) सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ, पच्छा रायणियस्स, भवइ आसायणा सेहस्स। (१५) सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेइ, पच्छा रायणियस्स, भवइ आसायणा सेहस्स। (१६) सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागं उवणिमंतेइ, पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१७) सेहे रायणिएणं सद्धिं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिगाहित्ता तं रायणियं अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं-खद्धं दलयति, भवइ आसायणा सेहस्स। (१८) सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिगाहित्ता रायणिएणं सद्धिं आहारेमाणे तत्थ सेहे खद्धं-खद्धं डागं-डागं उसढं-उसढं रसियं-रसियं मणुन्नं-मणुन्नं मणामं-मणामं निद्धं-निद्धं लुक्खं-लुक्खं आहारित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१४) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को लेकर उसकी आलोचना पहले किसी अन्य शैक्ष के पास करे और पीछे रात्निक के समीप करे तो है। (१५) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को दिखावे और पीछे रात्निक को दिखावे तो है। (१६) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को उपाश्रय मे लाकर पहले अन्य शैक्ष को (भोजनार्थ) आमन्त्रित करे और पीछे रात्निक को आमन्त्रित करे तो, आशातना दोष लगता है।

(१७) शैक्ष, यदि रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (उपाश्रय मे) लाकर रात्निक से बिना पूछे जिस-जिस साधु को देना चाहता है, उसे जल्दी-जल्दी अधिक-अधिक मात्रा मे दे तो, (१८) शैक्ष, अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु के साथ आहार करता हुआ यदि वहाँ वह शैक्ष प्रचुर मात्रा मे विविध प्रकार के शाक, श्रेष्ठ, ताजे, रसदार मनोज्ञ मनोभिलषित स्निग्ध और रूक्ष आहार जल्दी-जल्दी करे तो आशातना दोष लगता है।

(14) In case a junior monk who has just returned after bringing eatables and other things does the routine introspection of faults during this process in front of another junior monk and later in front of the head, he is guilty of irreverence (*ashatana*). (15) In case the said junior monk shows the articles brought as alms to another junior monk before the head, he is guilty of digression. (16) In case the said junior monk who

has brought food in *Upashraya* (place of stay) first invites another monk for meals and later invites the head, he is guilty of irreverence.

(17) A junior monk is guilty of digression in spiritual conduct if on his return after collecting alms in the company of his senior, serves out of it hurriedly and larger servings favouring some monks without the permission of the senior monk (18) In case a junior monk who went for collection of alms, after his return and while sitting for consuming it in a group, consumes with haste and in large quantities such articles that are to his taste or rich or well cooked, he is guilty of digression (*ashatana*)

The junior monk is guilty of digression

(१९) सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२०) सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स तत्थगए चेव पडिसुणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२१) सेहे रायणियं 'किं' त्ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२२) सेहे रायणियं 'तुमं' त्ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२३) सेहे रायणियं खद्धं-खद्धं वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२४) सेहे रायणियं तज्जाएणं-तज्जाएणं पडिहणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१९) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष अनसुनी कर चुप रह जाता है तो

(२०) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर ही बैठा हुआ उसकी बात को सुने और सन्मुख उपस्थित न हो तो .

(२१) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष 'क्या कहते हो' ऐसा कहता है तो

(२२) शैक्ष, रात्निक को "तू" या "तुम" कहे तो .

(२३) शैक्ष, रात्निक के सन्मुख अनर्गल प्रलाप करे तो.

(२४) शैक्ष, रात्निक को उसी के द्वारा कहे गये वचनो से (उनको दुहराकर) प्रतिभाषण करे, तिरस्कार करे, तो आशातना दोष लगता है।

(19) When the senior monk calls him and he remains silent posing as if he has not heard.

(20) On being called by a senior he does not go to the senior monk but remains sitting where he was.

(21) On being called by a senior he asks—'What is the matter ?'

(22) If he uses disrespectful terms of address like 'thou' when calling the senior monk.

(23) If he meaninglessly chatters before a senior monk.

(24) If he insults his senior by mockingly repeating what the senior had uttered

(२५) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स 'इति एवं' वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२६) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स 'नो सुमरसी' ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२७) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स णो सुमणसे, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२८) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२९) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं आच्छिंदित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३०) सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठियाए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए अव्वोगडाए दोच्चंपि तच्चंपि तमेव कहं कहित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२५) शैक्ष, रात्निक के धर्मकथा कहते समय बीच मे कहे कि 'यह ऐसा कहिये' तो आशातना दोष लगता है।

(२६) शैक्ष, रात्निक के कथा (धर्मकथा) कहते हुए "आप भूलते है" इस प्रकार कहता है तो .

(२७) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि अप्रसन्नता प्रकट करे, तो .

(२८) शैक्ष, रात्निक के कहते हुए यदि (किसी बहाने से) परिषद् को विसर्जन (वापस) करे तो

(२९) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि कथा मे बाधा उपस्थित करे तो

(३०) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए परिषद् के उठने से, छिन्न-भिन्न होने से और बिखरने से पूर्व यदि उसी कथा को दूसरी बार और तीसरी बार भी कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

(25) When the senior monk is delivering a spiritual lecture, if the junior monk interferes and says—'It should be so stated', he is guilty of disrespect

(26) When the senior monk is delivering a lecture, if the junior monk says that he was forgetting something, he is guilty of disrespect.

(27) When the senior monk is delivering a lecture to the public, if the junior monk makes a face, he is guilty of disrespect.

(28) When the senior monk is delivering a lecture, if the junior monk on same pretext disperses the public, he is guilty of disrespect or digression

(29) When the senior monk is delivering a lecture if the junior monk causes some obstruction, he is guilty of digression

(30) When the senior monk is delivering a lecture, if the junior monk, before the dispersal of the congregation, delivers the same lecture second time or third time, he is guilty of digression.

(३१) सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारगं पाएणं संघट्टित्ता हत्थेण अणणुण्णवित्ता गच्छइ, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३२) सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा, निसीइत्ता वा, तुयट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३३) सेहे रायणियस्स उच्चासणंसि वा, समासणंसि वा चिट्ठित्ता वा, निसीइत्ता वा, तुयट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स।

एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ, त्ति बेमि।

॥ तइया दसा समत्ता ॥

(३१) शैक्ष, यदि रात्निक साधु के शय्या-संस्तारक (पाट व बिछौना आदि) का (असावधानी से) पैर से स्पर्श हो जाने पर हाथ जोड़कर बिना क्षमायाचना किये चला जाये तो..

(३२) शैक्ष, रात्निक के शय्या-संस्तारक पर खडा हो, बैठे या सोये तो. .

(३३) शैक्ष, रात्निक से ऊँचे या समान आसन पर खडा हो, बैठे या सोवे तो उसे आशातना दोष लगता है।

स्थविर भगवन्तो ने ये तेतीस आशातनाएँ कही है। ऐसा मै कहता हूँ।

(31) A junior monk is guilty of digression if he carelessly touches the bed or bedding of the senior monk with his foot and does not seek pardon for the same with folded hands before leaving.

(32) A junior monk is guilty of digression if he sits, stands or sleeps on the bed or bedding of the senior monk

(33) A junior monk is guilty of disrespect if he sits, stands or sleeps on a seat at the same level or at a higher level than that of the senior monk.

The reverend *Sthavirs* have stated thirty-three *ashatanas* (digressions or modes of disrespect) as mentioned above So, I say

विवेचन : भगवान ने कहा है-वीतराग धर्म का मूल विनय है। विनय सभी गुणों का प्राण है।

गुरु का विनय (आदर) नही करना या अविनय (अनादर) करना, ये दोनो ही आशातना के प्रकार है।

आशातना देव एव गुरु की तथा ससार के किसी भी प्राणी की हो सकती है। धर्म-सिद्धान्तो की भी आशातना होती है। अत आशातना की विस्तृत परिभाषा इस प्रकार होती है-

देव, गुरु की विनय भक्ति न करना, अविनय अभक्ति करना, उनकी आज्ञा भग करना या निन्दा करना, धर्म सिद्धान्तो की अवहेलना करना, विपरीत प्ररूपणा करना और किसी भी प्राणी के साथ अप्रिय व्यवहार करना, उसकी निन्दा, तिरस्कार व अनादर करना. '**आशातना**' है। लौकिक भाषा मे इसे असभ्य व उद्दड व्यवहार कहा जाता है। इनका महत्त्व जितना **श्रमण** के लिए है, उतना ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए भी है।

यों तो आशातना का क्षेत्र बहुत व्यापक है, परन्तु यहाँ तीसरी दशा मे कही गई तेतीस आशातना का सम्बन्ध केवल गुरु (दीक्षा-पर्याय ज्येष्ठ रत्नाधिक श्रमण) और शिष्य के व्यवहार से ही है ऐसा प्रतीत होता है।

निशीथसूत्र उद्देशक (१०) में गुरु व रत्नाधिक की आशातना करने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है और तेरहवें और पन्द्रहवें उद्देशक मे क्रमश· गृहस्थ तथा सामान्य साधु की आशातना का प्रायश्चित्त विधान है।

गुरु व रत्नाधिक की तेतीस आशातनाएँ इस प्रकार है-

चलना, खडे रहना और बैठना, तीन क्रियाओं की अपेक्षा नव आशातनाएँ कही है। गुरु या रत्नाधिक के आगे या समश्रेणी में बराबर और पीछे अत्यन्त निकट चलने से उनकी आशातना होती है।

आगे चलना अविनय प्रकट करता है, समकक्ष चलना विनयाभाव दर्शाता है, पीछे अत्यन्त निकट चलना अविवेक का सूचक है। इसी तरह खडे रहने और बैठने के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

इन आशातनाओ से गुरुजनो की मर्यादा व गरिमा की अवहेलना होती है, शिष्य का अहभाव प्रदर्शित होता है, तथा लोगो मे गुरु की गरिमा का ह्रास होता है। अत· गुरु या रत्नाधिक के साथ बैठना, चलना, खडे रहना हो तो उनसे कुछ पीछे या कुछ दूर रहना चाहिए। कभी उनके सन्मुख बैठना आदि हो तो भी उचित दूरी रखकर विवेकपूर्वक बैठना चाहिए। यदि गुरु से कुछ दूरी पर चलना हो तो विवेकपूर्वक आगे भी चला जा सकता है। गुरु या रत्नाधिक की आज्ञा होने पर आगे-पीछे पार्श्व भाग मे या निकट कही भी बैठने आदि से आशातना नही होती है। इन सब क्रियाओ मे गुरु की इच्छा तथा आज्ञा सर्वोपरि है।

साराश यह है कि गुरु या रत्नाधिक के साथ आना-जाना, चलना, बोलना आदि प्रत्येक प्रवृत्ति मे शिष्य यही ध्यान रखे कि ये प्रवृत्तियाँ उनके करने के बाद करे। उनके वचनो को शान्त मन से सुनकर स्वीकार करे। अशनादि पहले उनको दिखावे। उन्हे बिना पूछे कोई कार्य न करे। उनके साथ आहार करते समय आसक्ति से स्वादिष्ट आहार न खावे। उनके साथ वार्त्तालाप करते समय या विनय-भक्ति करने मे और प्रत्येक व्यवहार करने मे उनका पूर्ण सन्मान रखे। उनके शरीर की तथा उपकरणो की भी किसी प्रकार से अवज्ञा न करे। शिष्य ध्यान रखे, उसके किसी भी व्यवहार से गुरु के सम्मान व गरिमा को ठेस न पहुँचे।

गुरु या रत्नाधिक की आज्ञा से यदि कोई प्रवृत्ति करे और उसमे आशातना दिखे तो भी आशातना नही कही जाती है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने नीति ग्रन्थ व आगमो के सन्दर्भ देते हुए लिखा है, यदि कभी ऐसी परिस्थिति हो कि उक्त मर्यादा मे रहने पर गुरु का, सघ का या श्रद्धालु जनता का अहित व अनिष्ट होने की सम्भावना दीखे तो शिष्य धर्मबुद्धि से उचित आचरण करे, उसमे आशातना दोष नही लगता। शिष्य को समयज्ञ तथा व्यवहारज्ञ होना चाहिए। प्रत्येक शिष्य को चाहिए कि वह आशातनाओ को समझकर अपने जीवन को विनयशील बनावे। (दशा पृष्ठ ८२)

॥ तृतीय दशा समाप्त ॥

Elaboration—*Bhagavan* has stated that humility is the very foundation of *Dharma* It is the underlying current in all virtues.

Not to be humble towards the guru (the spiritual master) or to show disrespect to him—both of these states are classified as *ashatana* (digressions).

Ashatana (disrespect) can be of *Bhagavan*, the spiritual master, or of any living being in this world. It can be even of religious principles So, *ashatana* (digression) can be defined in detail as under—

Not to be humble or respectful towards *Bhagavan* or the spiritual teacher; to show disrespect or rudeness towards them, to disobey them or to criticize them, to disregard religious principle or to interpret them in a different way; and to behave rudely with any person, to criticize him, to dishonour him—all this is *ashatana* (digression in spiritual conduct). In common language, it can be termed as uncivilized and rude behaviour. It is equally important for monks as well as every householder or the common man.

Normally the field of *ashatana* is very wide but the thirty three *ashatana* (digressions) mentioned in the third *Dasha* appear to be relating to the behaviour between the disciple and the spiritual teacher or between a junior monk and a senior monk in the context of period of *monk-hood*

In the tenth *Uddeshak* of *Nisheeth Sutra*, it has been stated that one who shows disrespect (*ashatana*) to his spiritual master or to senior in *monk-hood* deserves severe punishment (*guru chaumasi*) The punishment for disrespect towards a householder and ordinary monk has been mentioned in the thirteenth and fifteenth *Uddeshaks* respectively

The thirty three types of *ashatana* (digressions) towards guru and *ratnadhik* (the senior in *monk-hood*) are as under—

In the context of three activities namely those of moving, standing and sitting there are nine digressions since it is an *ashatana* (digression or disrespect) to move in front of, adjacent to or behind but extremely close to the senior monk.

To move ahead of the senior monk exhibits disrespect, to move by his side indicates lack of humility and to move behind extremely close to him indicates immodesty Same should be understood in case of the activity of standing and that of sitting

The status and honour of the spiritual teachers are adversely affected due to these *ashatanas*. It also indicates the egoistic nature of the disciple Further, it diminishes the honour of the guru amongst the general public So in case one has to sit, move or stand with the guru, he

should remain behind him and at some distance. In case it is essential to sit in front of his guru, even then he should sit at some distance in a respectful manner. In case one has to go with the guru, he can go ahead of him but with a sense of modesty. In case the guru or the senior monk concerned asks him to go ahead, or by his side or just behind him, then it is no longer an *ashatana*. In all these activities the desire or the command of the spiritual teacher is supreme.

In brief, when a disciple or a junior monk moves about, talks or does any such activity with his teacher or a senior monk, he should always keep in mind that in all his actions he should follow and not lead his teacher or the senior He should accept their word after calmly listening. He should show his alms to his spiritual teacher (the guru) or the senior monk and should not do anything without seeking his permission While taking his meals with the senior, he should not eat tasty items with a sense of attachment He should be completely respectful to his guru or the senior monk in all his interaction including talking to him and serving him. No disrespect should shown to his body or his articles. A disciple should keep in mind that none of his actions should adversely affect the honour and respect of his guru.

In case any monk does act wrongly with the permission of his guru or that of his senior, it is not termed as *ashatana* even if it appears to be so Referring to the *Agams*, Acharya Shri Atmaram ji Maharaj has mentioned that in case there happens to be such a situation that while observing the said restraints, there is a possibility of damage to the welfare of the guru, the religious organization or the devotees, if the disciple acts with a discerning attitude he is not guilty of any fault of digression (*ashatana*). A disciple should be expedient and judicious. Every disciple must ensure that he properly understands the digressions and then leads a humble life

● THIRD DASHA CONCLUDED ●

चतुर्थ दशा : गणि-सम्पदा
FOURTH DASHA : GANI SAMPADA

प्राक्कथन

इस चौथी दशा मे आठ गणि-सम्पदा का वर्णन है। गणी का अर्थ है, गण या समुदाय का नायक आचार्य। आचार्य मे मुख्यत. दो गुण आवश्यक है-संग्रह और उपग्रह।

वस्त्र, पात्र व शास्त्र आदि का एकत्र करना संग्रह और शिष्यों को आवश्यकतानुसार उनका वितरण करना उपग्रह है।

सम्पद् भी द्रव्य और भाव भेद से दो प्रकार की है। द्रव्य संपद्-शिष्य समूह और भाव सम्पद्-ज्ञानादि गुण। जो इन दोनों सम्पदाओ से सम्पन्न होता है, वह आचार्य 'गणी' पद को सुशोभित करता है। प्रस्तुत दशा मे विभिन्न दृष्टियो से गणि-सम्पदा का विस्तृत वर्णन है। ये सभी सम्पदाएँ परस्पर एक-दूसरे की पूरक है।

INTRODUCTION

Eight types of *Gani Sampada*—(wealth of *acharya*) have been mentioned in the fourth *Dasha Gani* means the head of the spiritual organization or the *acharya*. It is essential that the *acharya* should primarily have two qualities, namely that of collection (*Sangrah*) and that of distribution (*Upagrah*)

To keep stock of clothes, pots, scriptures and the like is *Sangrah* and to distribute it among the disciples according to their respective need is *Upagrah*.

Sampad (wealth) is also of two types—*Dravya* (external) and *Bhaava* (internal). The external wealth (*Dravya Sampad*) is the group of disciples and internal wealth (*Bhaava Sampad*) consists of the qualities such as right knowledge and the like A person who possesses both the said *Sampadas* is appointed as *acharya* In the present chapter (*Dasha*), there is a detailed description of the wealth of the *acharya* (*Gani*) from different angles All these wealth are complementary to each other □□

***आठ प्रकार की गणि-सम्पदा* EIGHT TYPES OF *GANI* SAMPADA**

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं-इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता।

[प्र.] कयरा खलु ता थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता ?

[उ.] इमा खलु ता थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता, तं जहा-

(१) आयारसंपया, (२) सुयसंपया, (३) सरीरसंपया, (४) वयणसंपया, (५) वायणासंपया, (६) मइसंपया, (७) पओगमइसंपया, (८) संगहपरिण्णा णामं अट्ठमा संपया।

१. आयुष्मन् ! मैने सुना है उन भगवान महावीर ने ऐसा कहा है–इस जिनशासन मे स्थविर भगवन्तो ने आठ प्रकार की गणि–सम्पदा कही है।

[प्र.] भगवन् ! वह आठ प्रकार की गणि–सम्पदा कौन–री कही है ?

[उ.] आठ प्रकार की गणि–सम्पदा इस प्रकार है। जैसे–

(१) आचारसम्पदा, (२) श्रुतसम्पदा, (३) शरीरसम्पदा, (४) वचनसम्पदा, (५) वाचनासम्पदा, (६) मतिसम्पदा, (७) प्रयोगमतिसम्पदा, (८) आठवीं सग्रहपरिज्ञासम्पदा।

1. Oh, the blessed ! I have heard that Bhagavan Mahavir has so stated 'In the order of *Tirthankar*, the reverend *Sthavirs* have stated eight types of wealth of the *acharya*

[Q.] Reverend Sir ! What are the eight types of the wealth of an *acharya* ?

[Ans.] The eight types of wealth of an *acharya* are as under—

(1) *Achar Sampada*—the wealth of right conduct, (2) *Shrut Sampada*—the wealth of right knowledge, (3) *Sharira Sampada*—the wealth of impressive physical body, (4) *Vachan Sampada*—the wealth of oratory, (5) *Vaachana Sampada*—the wealth of expertise in teaching scriptures, (6) *Mati Sampada*—the wealth of proper understanding, (7) *Prayog Sampada*—the wealth of proper application of knowledge and experience, (8) *Sangrah-parijna Sampada*—the expertise in collection and distribution

***(१) आचारसम्पदा* ACHAR SAMPADA**

२. [प्र.] से किं तं आयारसंपया ?

[उ.] आयारसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) संजम–धुव–जोग–जुत्ते यावि भवइ, (२) असंपग्गहिय–अप्पा,

(३) अणियतवित्ती, (४) वुड्ढसीले यावि भवइ। से तं आयारसंपया।

२. [प्र.] भगवन् ! वह आचारसम्पदा क्या है ?

[उ.] आचारसम्पदा चार प्रकार की है। जैसे–

(१) सयमक्रियाओ मे सदा उपयुक्त (सावधान) व स्थिर व निश्चल रहना। (२) अहकाररहित होना।

(३) एक स्थान पर प्रतिबद्ध होकर (बँधकर) नही रहना। (४) वृद्धो के समान गम्भीर स्वभाव धारण करना। यह चार प्रकार की आचारसम्पदा है।

2 **[Q.]** Reverend Sir! What is *Achar Sampada*?

[Ans.] *Achar Sampada* is of four types namely—

(1) To remain extremely careful, steadfast and stable in observing the code of spiritual restraints (2) To avoid pride. (3) Not to remain attached to a particular place (4) To remain serene and composed like the aged and experienced persons

These are the four types of the wealth of right conduct of an *acharya*.

विवेचन : आचारसम्पदा–आचार सम्पन्नता सबसे पहला गुण है। जिसका आचार शुद्ध होगा, उसका व्यवहार भी शुद्ध होगा तथा विचार भी पवित्र रहेंगे। आचारसम्पदा के चार अग है–

(१) सयम की सभी क्रियाओ मे योगो का स्थिर होना आवश्यक है, क्योकि तभी उन क्रियाओ का उचित रीति से पालन हो सकता है। चंचलता व अस्थिरता साधना मे बाधक है।

(२) आचार्य–पद–प्राप्ति का अभिमान न करते हुए सदा विनीतभाव से रहना, क्योंकि विनय से ही अन्य सभी गुणो का विकास होता है।

(३) अप्रतिबद्ध होकर विचरण करना, क्योकि आचार्य के गाँव–नगरो में विचरण करने से ही धर्म–प्रभावना अधिक होती है तथा सतत विचरण से ही वह आचार–धर्म पर दृढ रह सकता है।

(४) लघुवय मे भी आचार्य पद प्राप्त हो सकता है किन्तु शान्त स्वभाव एव गाभीर्य होना अर्थात् बचपन न रखकर प्रौढता धारण करना अत्यावश्यक है।

इन गुणो से सम्पन्न आचार्य "आचारसम्पदा" युक्त होता है।

Elaboration—(1) ***Achar Sampada*—**To possess right conduct is the very first trait A person who possesses right conduct, his behaviour also shall be spotless and his thought shall be chaste *Achar Sampada* has four limbs—

(1) In all activities relating to *monk-hood*, it is essential that all the associations of soul (yoga) are stable because only then the said activities can be properly performed Instability and lack of concentration are hurdles in the practice of *monk-hood*

(2) An *Acharya* should not have the pride of his post He should always remain humble Only humility can develop all the other good qualities

(3) An *Acharya* should move about without any attachment to a particular place. He can spread the message of the Lord only if he goes from village to village and town to town He can remain steadfast in religious conduct only if he is ever itinerant

(4) A person can be an *acharya* even at a young age But it is very important that he should be quiet and thoughtful by temperament. In other words he should not be childish He should behave like one having rich experience.

An *acharya* having the above said qualities is stated to be one blessed with *Achar Sampada*.

(२) श्रुतसम्पदा SHRUT SAMPADA

३. [प्र.] से किं तं सुयसंपया ?

[उ.] सुयसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) बहुस्सुए यावि भवइ, (२) परिचियसुए यावि भवइ,

(३) विचित्तसुए यावि भवइ, (४) घोसविसुद्धिकारए यावि भवइ। से तं सुयसंपया।

३. [प्र.] भगवन् ! श्रुतसम्पदा क्या है ?

[उ.] श्रुतसम्पदा चार प्रकार की कही है। जैसे–

(१) अनेक शास्त्रो का ज्ञाता/बहुश्रुत होना। (२) सूत्र व सूत्र के अर्थ से भलीभाँति परिचित होना।

(३) अपने व अन्य धर्मग्रन्थो का अधिकृत ज्ञाता होना। (४) शुद्ध व स्पष्ट उच्चारण करने वाला होना। यह चार प्रकार की श्रुतसम्पदा है।

3. [Q.] Reverend Sir ! What is *Shrut Sampada* ?

[Ans.] *Shrut Sampada* is of four types, namely—

(1) To possess knowledge of many scriptures, in other words, to be *bahushrut*. (2) To be well acquainted with the text and underlying meaning of the scriptures (3) To be authoritative in the knowledge of scriptures of his own faith and those of others (4) To be able to recite the scriptures distinctly and without any fault

These are the four types of *Shrut Sampada*

विवेचन · श्रुतसम्पदा–आचार्य अनेक साधको का मार्गदर्शक होता है, अत उसको स्वय अनेक शास्त्रो का ज्ञाता होना चाहिए। बहुश्रुत कोई भी निर्णय करने मे सक्षम होता है। श्रुतसम्पदा के चार अग इस प्रकार है-

(१) उपलब्ध विशाल श्रुत मे से प्रमुख सूत्रग्रन्थो का चिन्तन-मननपूर्वक अध्ययन करना और उनमे आये विषयो से तात्त्विक निर्णय करने की क्षमता होना आचार्य का गुण है।

(२) श्रुत के विषयो का हृदयगम होना, उसका परमार्थ समझना तथा विस्मृत न होना।

(३) नय-निक्षेप, भेद-प्रभेद सहित अध्ययन होना तथा मत-मतान्तर आदि की चर्चा-वार्त्ता करने के लिए विविध ग्रन्थो का समुचित अभ्यास होना।

(४) ह्रस्व-दीर्घ, सयुक्ताक्षर, गद्य-पद्यमय सूत्रपाठो का उदात्त-अनुदात्त घोष के साथ पूर्ण शुद्ध उच्चारण करना।

इन गुणो से सम्पन्न आचार्य "श्रुत (ज्ञान) सपदा" युक्त होता है।

Elaboration—*Shrut Sampada*—An *acharya* is the guide for many practitioners Therefore, it is essential that he should know many sacred

books himself A *bahushrut* (expert in scriptural knowledge) is capable of taking a decision in any situation *Shrut Sampada* is of four types—

(1) It is a special trait of an *acharya* to go deep into the text of important books out of the evincible scriptures He should be capable of interpreting and finally deciding the subjects mentioned in them from philosophical angle

(2) He should memorize the subjects mentioned in religious books, understand the underlying meaning and never forget it

(3) His study of scriptures should take into account the points of view (*naya*) and the aspects of the thing (*nikshep*), classification and further divisions of the subject concerned He should have sufficient knowledge of various religious books of different philosophical thoughts, so that he may be able to successfully participate in the philosophical discussions with scholars of different faiths

(4) He should be able to clearly pronounce the words in loud or low voice keeping in view the mode, the conjunction, and the prosaic or poetic style of the text in the scriptures

An *acharya* possessing these qualities is said to be blessed with *Shrut Sampada*

(३) शरीरसम्पदा SHAREER SAMPADA

४. [प्र.] से किं तं सरीरसंपया ?

[उ.] सरीरसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) आरोह–परिणाहसंपन्ने यावि भवइ, (२) अणोतप्पसरीरे,

(३) थिरसंघयणे, (४) बहुपडिपुण्णिंदिए यावि भवइ। से तं सरीरसंपया।

४. [प्र.] भगवन् ! शरीरसम्पदा क्या है ?

[उ.] शरीरसम्पदा चार प्रकार की कही है। जैसे–

(१) शरीर की लम्बाई–चौडाई का उचित प्रमाणयुक्त होना। (२) लज्जास्पद शरीर वाला न होना अर्थात् शरीर सुगठित, सुडौल होना।

(३) शरीर–सहनन। सुदृढ होना। (४) सर्व इन्द्रियो का परिपूर्ण होना। यह चार प्रकार की शरीरसम्पदा है।

4. [Q.] Reverend Sir ! What is *Sharira Sampada* ?

[Ans.] *Sharira Sampada* (wealth of the body) is of four types, namely—

(1) The length and breadth of the physical body being in proper proportion. (2) Well-built impressive body, not being worthy of condemnation. (3) The joints in the body being extremely strong. (4) To possess all and fully developed sense-organs.

These are the four types of *Sharira Sampada.*

विवेचन : शरीर की स्वस्थता तथा सुदर्शनीयता व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना देती है। इससे धर्म प्रभावना मे भी सहायता मिलती है। इस दृष्टि से शरीरसंपदा के चार अग है–

(१) ऊँचाई और मोटाई मे प्रमाणयुक्त शरीर अर्थात् अति लम्बा या अति ठिगना तथा अति दुर्बल या अति स्थूल न होना।

(२) शरीर के सभी अगोपागो का सुव्यवस्थित होना अर्थात् दूसरो को हास्यास्पद और स्वय को लज्जाजनक लगे, ऐसा शरीर न होना।

(३) सुदृढ सहनन होना अर्थात् शरीर शक्ति व धृति से सम्पन्न होना। सुदृढ सहनन वाला कठिन परीषह सहने मे सक्षम होता है।

(४) सभी इन्द्रियाँ परिपूर्ण होना, शरीर सुगठित होना, आँख-कान आदि की विकलता न होना अर्थात् शरीर सुन्दर, सुडौल, कान्तिमान और प्रभावशाली होना।

इन गुणो से युक्त आचार्य 'शरीरसम्पदा' युक्त होता है।

Elaboration—A healthy and attractive physique makes a person impressive It helps in spreading the philosophical thought as well. In view of this, *Sharira Sampada* is of four types—

(1) To possess a body with standard proportion of height and bulk. In other words, it is neither very tall nor very short; it is neither very thin nor very fat.

(2) All the parts and side-parts being at the right place properly joined In other words the body should not be a cause of shame for oneself and a target of mockery for others

(3) The body-joints being pretty strong—the body possessing physical strength and cohesion A person having strong physical joints is capable of bearing the terrible torments

(4) To possess all the sense organs in proper shape, to have well-built body, not to have any physical shortcoming in eyes, ears and others. In other words to have such a body which is charming, well built, graceful and impressive.

An *acharya* having the above said qualities is said to be one possessing *Sharira Sampada.*

(४) वचनसम्पदा VACHAN SAMPADA

५. [प्र.] से किं तं वयणसंपया ?

[उ.] वयणसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) आदेयवयणे यावि भवइ, (२) महुरवयणे यावि भवइ,

(३) अणिस्सियवयणे यावि भवई, (४) असंदिद्धवयणे यावि भवइ। से तं वयणसंपया।

५. [प्र.] भगवन् ! वचनसम्पदा क्या है ?

[उ.] वचनसम्पदा चार प्रकार की कही है। जैसे–

(१) आदेय वचन वाला होना। (२) मधुर वचन वाला होना।

(३) राग-द्वेषरहित वचन वाला होना। (४) सन्देहरहित वचन वाला होना। यह चार प्रकार की वचनसम्पदा है।

5. [Q.] Reverend Sir ! What is *Vachan Sampada* ?

[Ans.] *Vachan Sampada* is of four types, namely—

(1) To speak in a tone worthy of acceptance (2) To speak with a sweet voice (3) To speak without any taint of attachment or contempt (4) To speak in a definite manner free of all doubts

These are the four types of *Vachan Sampada*.

विवेचन · धर्म के प्रचार-प्रसार मे प्रमुख साधन वाणी भी है। अत तीन सम्पदाओ के साथ-साथ वचनसम्पदा भी आचार्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

वचनसम्पदा के चार अग इस प्रकार है–

(१) गुरु के आदेश और शिक्षात्मक वचन शिष्यादि सहर्ष स्वीकार कर ले और जनता भी उनके वचनो को प्रमाण मान ले, उनकी वाणी मे इतनी प्रभावकता होना आदेयवचन है।

(२) सारगर्भित तथा मधुरभाषी होना और आगमसम्मत वचन होना। किन्तु निरर्थक या मोक्षमार्ग विरोधी वचन न बोलने वाला होना।

(३) निश्रा अर्थात् अनुबन्धयुक्त वचन। जैसे "उसने भी ऐसा कहा था या उससे पूछकर कहूँगा" के इत्यादि अथवा राग-द्वेष से युक्त वचन न बोलना, किन्तु शान्त स्वभाव से निष्पक्ष वचन बोलना।

(४) सन्देहरहित स्पष्ट वचन एव अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाला परिपूर्ण वचन बोलना। असत्य, मिश्र या सदिग्ध वचन न बोलना।

इन गुणो से युक्त आचार्य "वचनसम्पदा" से युक्त होता है।

Elaboration—In propagation of religion speech too is an important factor So, it is very essential that an *acharya* should possess not only the

other three *Sampadas* but he should also simultaneously have the wealth of speech.

Vachan Sampada is of four types, namely—

(1) His speech should be so much effective and worthy of acceptance that disciples and others should gladly accept his command as well as guidance The public too should also have faith in the authenticity of his word. To have such influence in one's speech is to be *adeya vachan*

(2) His utterances should be full of essence of philosophical text, sweat and in line with scriptures. He should not speak in a vague and meaningless manner His word should not contradict the true path of salvation.

(3) His word should not be dependent on others For instance he should not say, 'He had also said so or that I shall say after inquiring from him' and the like He should not speak in a voice full of attachment or contempt He should speak in a quiet and impartial manner

(4) He should speak in a style, which is free of any doubt, distinct and expresses the desired appropriate meaning His speech should also be complete in all respects He should not utter false or skeptical words or those having many interpretations

An *acharya* having these qualities is said to possess *Acharya Sampada*

(५) वाचनासम्पदा **VAACHANA SAMPADA**

६. [प्र.] से किं तं वायणासंपया ?

[उ.] वायणासंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) विजयं उद्दिसइ, (२) विजयं वाएइ,

(३) परिनिव्वावियं वाएइ, (४) अत्थनिज्जावए यावि भवइ। से तं वायणासंपया।

६. [प्र.] भगवन् ! वाचनासम्पदा क्या है ?

[उ.] वाचनासम्पदा चार प्रकार की कही है। जैसे–

(१) शिष्य की योग्यता को समझकर मूल सूत्र-पाठ की वाचना देना। (२) शिष्य की योग्यता का विचार कर सूत्रार्थ की वाचना देना।

(३) पूर्व मे पढाये गये सूत्रार्थ को धारण कर लेने पर फिर आगे पढाना। (४) अर्थ-सगतिपूर्वक नय-प्रमाण से अध्यापन कराना। यह चार प्रकार की वाचनासम्पदा है।

6. [Q.] Reverend Sir ! What is *Vaachana Sampada* ?

[**Ans.**] *Vaachana Sampada* is of four types, namely—

(1) To recite text from scriptures to the disciple keeping in view his capability. (2) To teach meaning of the text to the disciple keeping in view his capability to understand them (3) To teach him the next lesson only after he has properly understood the earlier lesson and retained it. (4) To teach him with proper interpretation of various aspects and points of view with authentication.

These are the four types of *Vaachana Sampada*.

विवेचन : (१-२) यहाँ 'विजय' या 'विचय' शब्द का अर्थ है अनुप्रेक्षा, विचार-चिन्तन आदि करना। सूत्र के मूल पाठ की तथा अर्थ की वाचना के साथ इस शब्द का प्रयोग यही सूचित करता है कि शिष्य विनय, उपशान्ति, जितेन्द्रियता आदि श्रुत ग्रहण के योग्य प्रमुख गुणो से युक्त है या नही तथा किस सूत्र का कितना पाठ या कितना अर्थ देने योग्य है, इस प्रकार की अनुप्रेक्षा करके पाठ्य विषय का उद्देश (सूचन) करना तथा मूल पाठ व अर्थ की वाचना देना आचार्य का गुण है।

(३) शिक्षा प्राप्त करने वाले मे पाठ को कण्ठस्थ करने की शक्ति और उसे स्मृति मे धारण किये रखने की शक्ति का क्रमश विकास हो, इसका भी ध्यान रखना तथा पूर्व मे वाचना दिये गये मूल पाठ और अर्थ की स्मृति का निरीक्षण-परीक्षण करके जितना उपयुक्त हो उतना आगे पढाना।

(४) शिष्य जितने सूत्र को ग्रहण-धारण कर सकता हो उतना ही ज्ञान देना। अथवा सक्षिप्त वाचना पद्धति से दिये गये मूल और अर्थ को अच्छी प्रकार ग्रहण कर लेने पर शब्दार्थों के विकल्प, नय-प्रमाण, प्रश्न-उत्तर और अन्यत्र आये उन विषयो के उद्धरणो के सम्बन्धो को समझाते हुए तथा उत्सर्ग-अपवाद की स्थितियो मे उसी सूत्र के आधार से किस तरह उचित निर्णय लेना आदि विस्तृत व्याख्या समझाना।

इन गुणो से युक्त आचार्य "वाचनासम्पदा" से युक्त होता है।

Elaboration—(1-2) Here the word '*Vijay*' or '*Vichaya*' means to introspect, to deeply meditate The use of this word with reciting of original text and its meaning indicates that it is important to keep in mind whether the disciple is humble, quiet, has control over his senses and other qualities essential for attaining scriptural knowledge It is also important to know beforehand which sacred books should be taught to him and to what extent It is a special trait of an *acharya* to give lessons in scriptures to his disciples only after properly considering these aspects

(3) An *Acharya* should ensure that there should be gradual development of the capacity of memorizing the lesson and retaining it in his disciples. He should also at random test the retaining power of his students for text as well as meaning Only then he should deliver the next lecture

(4) A student should be given lesson in scripture only to the extant he is capable of understanding it and retaining it in his memory. In case the lesson in text and its meaning has been given in a brief manner, he should first ensure that the disciple has properly understood it He should then teach various interpretations of the words, different points of view with logical validity, the interpretations in question-answer form, and the references appearing in other texts about those matters. He should properly teach them how to take decision based on alternative interpretation of the same text under unusual and exceptional circumstances.

An *acharya* possessing these qualities is said to be equipped with *Vaachana Sampada*

(६) मतिसम्पदा MATI SAMPADA

७. [प्र. १] से किं तं मइसंपया ?

[उ.] मइसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) उग्गह–मइसंपया, (२) ईहा–मइसंपया, (३) अवाय–मइसंपया, (४) धारणा–मइसंपया।

[प्र. २] से किं तं उग्गह–मइसंपया ?

[उ.] उग्गह–मइसंपया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) खिप्पं उगिण्हेइ, (२) बहुं उगिण्हेइ, (३) बहुविहं उगिण्हेइ, (४) धुवं उगिण्हेइ, (५) अणिस्सियं उगिण्हेइ, (६) असंदिद्धं उगिण्हेइ। से तं उग्गह–मइसंपया।

(३) एवं ईहा–मई वि।

(४) एवं अवाय–मई वि।

[प्र. ५] से किं तं धारणा–मइसंपया ?

[उ.] धारणा–मइसंपया छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) बहुं धरेइ, (२) बहुविहं धरेइ, (३) पोराणं धरेइ, (४) दुद्धरं धरेइ, (५) अणिस्सियं धरेइ, (६) असंदिद्धं धरेइ। से तं धारणा–मइसंपया। से तं मइसंपया।

७. [प्र. १] भगवन् ! मतिसम्पदा क्या है ?

[उ.] मतिसम्पदा चार प्रकार की है। जैसे–

(१) अवग्रहमतिसम्पदा–सामान्य रूप से अर्थ को जानना। (२) ईहामतिसम्पदा–सामान्य रूप से जाने हुए अर्थ को विशेष रूप से जानने की इच्छा होना। (३) अवायमतिसम्पदा–ईहित वस्तु का विशेष रूप से निश्चय करना। (४) धारणामतिसम्पदा–निश्चित रूप मे ज्ञात विषय का कालान्तर मे स्मरण रखना।

[प्र. २] भगवन् ! अवग्रहमतिसम्पदा क्या (कितने प्रकार की) है ?

[उ.] अवग्रहमतिसम्पदा छह प्रकार की है। जैसे-

(१) प्रश्न के आशय को शीघ्र ग्रहण करना। (२) पढे-सुने पाठ के विस्तृत अर्थ को ग्रहण करना। (३) अनेक प्रकार के अर्थों को ग्रहण करना। (४) स्थिर रूप मे अर्थ को ग्रहण करना। (५) जो अर्थ गुरु ने नहीं बताया उस अर्थ को भी अपनी प्रतिभा से ग्रहण करना। (६) सन्देहरहित होकर अर्थ को ग्रहण करना। ये छह प्रकार की अवग्रहमतिसम्पदा है।

(३) इसी प्रकार ईहामतिसम्पदा भी उक्त भेदो के अनुसार छह प्रकार की है।

(४) इसी प्रकार अवायमतिसम्पदा भी छह प्रकार की है।

[प्र. ५] भगवन् ! धारणामतिसम्पदा क्या है ?

[उ.] धारणामतिसम्पदा छह प्रकार की है। जैसे-

(१) बहुत अर्थ को धारण करना। (२) अनके प्रकार के अर्थो को धारण करना। (३) पुरानी बातो को धारण करना। (४) कठिन से कठिन विषय को धारण करना। (५) स्वतत्र रूप मे अनुकूल अर्थ को स्थिर रूप से धारण करना। (६) ज्ञात अर्थ को सन्देहरहित होकर धारण करना। यह धारणामतिसम्पदा है।

7. [Q.] Reverend Sir ! What is *Mati Sampada* ?

[Ans.] *Mati Sampada* is of four types, namely—

(1) ***Avagrah Mati Sampada***—ability of conation or sensual knowledge It is to know the common meaning **(2)** ***Iha Mati Sampada***—Conception It is the desire to know in a definite manner the interpretation cursorily known earlier **(3)** ***Avaya Mati Sampada***—Judgment It is ascertained knowledge of the said subject **(4)** ***Dharana Mati Sampada***—Retention It is firm and indelible grasp and retention of the knowledge

[Q. 1] Reverend Sir! How many types are of *Avagrah Mati Sampada*?

[Ans.] *Avagrah* (conation) sensual knowledge is of six types, namely—

(1) To understand quickly the purpose of the question. (2) To understand detailed meaning of the lesson heard or read earlier (3) To know different interpretations (4) To know the meaning in a definite manner (5) To know the meaning, which has not been told by the teacher, with his own insight (6) To understand the meaning free from all doubts

These are the six types of *Avagrah Mati Sampada*

(2) *Iha Mati Sampada* is also of six types and it is to be understood in a similar fashion as above-mentioned.

(3) *Avaya Mati Sampada* (Judgment in the context of sensual knowledge) is also of above-said six types

[Q. 4] Reverend Sir ! What is *Dharana Mati Sampada* (Retention of sensual knowledge) ?

[Ans.] *Dharana Mati Sampada* is of six types, namely—

(1) To retain ample meanings (of numerous texts) (2) To retain many types of interpretation (3) To retain past events (4) To retain most difficult topics. (5) To permanently retain proper meaning independently. (6) To retain the known meaning free from all doubts.

This is *Dharana Mati Sampada*—retention of sensual knowledge.

विवेचन : मतिसम्पदा–मति का अर्थ है बुद्धि–(१) औत्पत्तिकी, (२) वैनयिकी, (३) कार्मिकी, और (४) पारिणामिकी, इन चारो प्रकार की बुद्धियो से सम्पन्न होने वाला आचार्य प्रभावक माना जाता है।

प्रत्येक पदार्थ के सामान्य और विशेष गुणो को समझकर सही निर्णय करना। एक बार निर्णय करके समझे हुए विषय को लम्बे समय तक स्मृति मे रखना। किसी भी विषय को स्पष्ट समझना, किसी के द्वारा किये गये प्रश्न का समाधान करना, गूढ वचन के आशय को शीघ्र और नि संदेह स्वत समझ जाना। इस प्रकार की तीक्ष्ण बुद्धि और धारणा-शक्ति से सम्पन्न आचार्य "मतिसम्पदा" युक्त होता है।

Elaboration—*Mati Sampada—Mati* means intellect. An *acharya* who possesses all the four types of intellect namely, (1) *autapattiki* (intelligence since birth), (2) *vainayiki* (intellect developed due to humility), (3) *karmiki* (intellect developed due to rich experience, and (4) *parinamiki* (intellect due to ripe age), is considered to be an influential *acharya*

To take proper decision after clearly understanding the ordinary and special attributes of every substance, to retain in memory for a long period a subject that has been understood after properly looking into all its aspects, to understand every matter clearly, to properly reply questions raised by anyone, and to understand quickly and without any doubt the underlying meaning of an intricate word; An *acharya* who possesses such a sharp intellect and retaining power is considered to be the one having *Mati Sampada*

(७) प्रयोगमतिसम्पदा PRAYOG SAMPADA

८. [प्र.] से किं तं पओगमइसंपया ?

[उ.] पओगमइसंपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) आयं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ, (२) परिसं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ,

(३) खेत्तं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ, (४) वत्थुं विदाय वायं पउंज्जित्ता भवइ। से तं पओगमइसंपया।

८. [प्र.] भगवन्! प्रयोगमतिसम्पदा क्या है?

[उ.] प्रयोगमतिसम्पदा चार प्रकार की कही है। जैसे-

(१) अपनी शक्ति को जानकर वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) करना। (२) परिषद् के भावो को समझकर वाद-विवाद करना।

(३) क्षेत्र को जानकर वाद-विवाद करना। (४) वस्तु के विषय को तथा व्यक्ति विशेष को जानकर वाद-विवाद करना। यह प्रयोगमतिसम्पदा है।

8. [Q.] Reverend Sir! What is *Prayog Mati Sampada*?

[Ans.] *Prayog Mati Sampada* (expertise in use of intellect according to the circumstances) is of four types—

(1) To indulge in philosophical discussion after properly evaluating one's own debating power (2) To indulge in discussion after understanding the thought-activity of the audience (3) To indulge in discussion after understanding the area (4) To indulge in discussion after understanding the subject of discussion and the person with whom it is to be discussed

This is called *Prayog Mati Sampada*

विवेचन : आवश्यकता होने पर अपने श्रुत तथा बुद्धि का प्रयोग करने की कुशलता होना प्रयोगमतिसम्पदा है।

(१) कुशल चिकित्सक की भाँति प्रतिपक्ष की योग्यता आदि व उसकी मान्यता आदि को जानकर तथा अपने सामर्थ्य का विचार करके वाद या प्रवचन करना।

(२) स्वयं के और प्रतिवादी के सामर्थ्य व उसकी मान्यता आदि का विचार करने के साथ उस समय उपस्थित परिषद् की योग्यता, रुचि, भावना, सम्मान और क्षमता का भी ध्यान रखकर तदनुरूप वाद-चर्चा (प्रवचन) का विषय चुनकर उसका विस्तार करना।

(३) उपस्थित परिषद् के सिवाय चर्चा-स्थल के क्षेत्रीय वातावरण और प्रमुख पुरुषो का विचार कर वाद करना।

(४) साथ मे रहने वाले बाल, ग्लान, वृद्ध, नवदीक्षित, तपस्वी आदि की चित्त समाधि का ध्यान रखकर शिष्यो के हिताहित का विचार रखते हुए तथा वाद के परिणाम मे लाभालाभ की तुलना करके वाद या प्रवचन करना।

इन कुशलताओ से सम्पन्न आचार्य "प्रयोगमतिसम्पदा" युक्त होता है।

Elaboration—Expertise in use of one's scriptural knowledge and intellect at the time of need is called *Prayog Mati Sampada*.

(1) Like an experienced doctor, to start discussion or deliver the lecture after properly understanding the ability, the belief and the like of the other side and also weighing properly one's capability.

(2) To select the subject of discussion keeping in view the ability and the like of the opposite side and also the ability, interest, emotions, status and capacity of the gathering, and then to explain the subject in detail

(3) To start discussion after taking note of not only the gathering concerned but also the local environment at the place of discussion and the belief of important person present who matter.

(4) To start dialogue or spiritual lecture taking note of avoiding disturbance to the ignorant, the sick, the aged, the new entrant in *monk-hood*, as also the affect of the discussion on the disciples and probable results of the discussion—whether it can serve any useful purpose or not.

An *acharya* having the above said qualities is said to be one possessing *Prayog Mati Sampada*

(८) संग्रहपरिज्ञासंपदा SANGRAH PRAIJNA SAMPADA

९. [प्र.] से किं तं संगहपरिण्णा णामं संपया ?

[उ.] संगहपरिण्णा णामं संपया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) बहुजणपाउग्गयाए वासावासेसु खेत्तं पडिलेहित्ता भवइ, (२) बहुजणपाउग्गयाए पाडिहारिय-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं उगिण्हित्ता भवइ, (३) कालेणं कालं समाणइत्ता भवइ, (४) अहागुरु संपूएत्ता भवइ। से तं संगहपरिण्णासंपया।

९. [प्र.] भगवन् ! संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा क्या है ?

[उ.] संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा चार प्रकार की है। जैसे–

(१) वर्षावास मे बहुत मुनिजनो के निवास योग्य क्षेत्र का प्रतिलेखन करना। (२) बहुत से मुनिजनो के लिए प्रातिहारिक पीठ फलक शय्या और सस्तारक ग्रहण करना। (३) समयानुसार यथोचित कार्य करना और कराना। (४) गुरुजनो का यथायोग्य मान-सम्मान पूजा-सत्कार करना। यह संग्रहपरिज्ञा नामक सम्पदा है।

9. [Q.] Reverend Sir ! What is *Sangrah Parijna Sampada* ? (expertise in collection and distribution)

[Ans.] *Sangrah Parijna Sampada* is stated to be of four types, namely—(1) To properly study (or inspect) the area suitable for the long stay of many monks during monsoon-stay (*varshavas*) (2) To accept benches, stools, beds and clothes for the use of many monks. (3) To do and to get done every activity at proper time and in a proper way. (4) To honour and greet duly and properly the spiritual masters (guru).

This is called *Sangrah Parijna Sampada*.

विवेचन : संग्रह का अभिप्राय है गण व समुदाय के लिए आवश्यक वस्तुओ का सग्रह व वितरण करना सग्रहपरिज्ञासम्पदा है। इसके चार भेद है-(१) उपरोक्त सम्पदाओ से युक्त आचार्य मे यह क्षमता तथा कुशलता होनी चाहिए कि जनपद मे ग्रामानुग्राम विचरण करके धर्म पर सर्वसाधारण की श्रद्धा सुदृढ करना और लोगों को धर्मानुरागी बनाना, जिससे चातुर्मास योग्य क्षेत्रो की सुलभता रहे।

(२) वहाँ के लोगो की आतिथ्य [सुपात्रदान] की भावना बढाना जिससे बाल, ग्लान, वृद्ध, तपस्वी और अध्ययनशील साधु-साध्वियो का तथा आचार्य, उपाध्याय का निर्वाह एव सेवा-शुश्रूषा सहज सम्पन्न हो सके अर्थात् पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक तथा आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, औषध आदि की प्राप्ति सुलभ हो।

(३) स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, उपधि-आहारादि की गवेषणा, अध्ययन-अध्यापन आदि निश्चित समय पर विधि के अनुसार सम्पन्न हो तथा संयम का सम्यक् पालन हो।

(४) दीक्षा-पर्याय मे जो ज्येष्ठ हो तथा सयमदाता, वाचनादाता या गुरु हो, उनके यथायोग्य आदर-सत्कार पूजा-सन्मान आदि व्यवहारो का स्वय पूर्ण पालन करना। ऐसा करने से शिष्यो में और समाज में विनय गुण का अनुपम प्रभाव होता है। सद्गुणो का विस्तार होता है।

सघनायक आचार्य मे आठो ही सम्पदा होना आवश्यक है। तभी वे सम्पूर्ण सघ के सदस्यो की सुरक्षा और विकास कर सकते हैं तथा जिनशासन की प्रचुर प्रभावना कर सकते है।

इस प्रकार आठो ही सम्पदाएँ परस्पर एक-दूसरे की पूरक तथा स्वत महत्त्वपूर्ण है। ऐसे गुणो से सम्पन्न आचार्य का होना प्रत्येक गण (गच्छ-समुदाय) के लिए अनिवार्य है। जैसे कुशल नाविक के बिना नौका के यात्रियों की समुद्र मे पूर्ण सुरक्षा की आशा रखना अनुचित है वैसे ही आठ सम्पदाओ से सम्पन्न आचार्य के अभाव में सयमसाधको की साधना और आराधना सदा विराधनारहित रहे, यह भी सम्भव नही है।

प्रत्येक साधक का भी यह कर्त्तव्य है कि वह जब तक पूर्ण योग्य और गीतार्थ न बन जाये तब तक उपरोक्त योग्यता से सम्पन्न आचार्य के नेतृत्व मे ही अपना सयमी जीवन सुरिक्षत बनाये रखे।

Elaboration—The expertise in collecting necessary articles for the *gana* (group of monks) and distributing them is *Sangrah Parijna Sampada*. It is of four types, namely—(1) The *acharya* possessing the above mentioned *Sampadas* must have the capability of strengthening the faith of the common man in Dharma by moving from one village to another and making them keen to follow the religious tenets, so that areas suitable for *Chaturmas* (four month stay of monks during rainy season) are easily available.

(2) He should be able to increase the feeling of hospitality for monks among the people of those areas, so that the newly initiated, the sick, the old monks, those undergoing strict ascetic practices, and those monks and nuns who are keen to study scriptures as also the supervising *Acharya* and *Upadhyaya* (who are to teach them) can be properly attended to In other words the required stools, beds, clothes, food, water,

pots, medicine and suchlike are easily available to them in accordance with their prescribed code.

(3) The monks may be able to study, retrospect (*pratikraman*) and properly look into (*prati-lekhan*) their articles Further, they may be able to move at prescribed time for collection of food and other articles they need and are able to study and revise scriptures in time strictly in accordance with prescribed procedure. Thus, they may be able to properly follow their life of ascetic restraint.

(4) An *acharya* should properly follow the entire methodology regarding exhibiting of respect and worship towards those senior in *monk-hood* period, these who have initiated him in *monk-hood* and those who have taught him scriptures Such behaviour has a great impact on the disciples and the society in learning humility. The field of good qualities also gets extended

It is necessary that the *acharya* who is the head of the religious order possess all the eight *Sampadas* Only then he can properly safeguard the interests of the members of the entire religious order (*Sangh*) and cause its development He can then serve the established order of *Tirthankar* immensely

Thus, all the eight *Sampadas* are complementary to each other and also of great importance It is essential for every *gana* (the religious organization) that its *acharya* has all the above-said qualities. Just as people traveling in a ship cannot expect complete safety unless the captain of the ship is an expert one, the practice of ascetic code by those initiated in the order without any digression and in a systematic manner is not possible unless the *acharya* is equipped with the said eight *Sampadas*.

It is also the duty of every practitioner of ascetic discipline that he should spend his ascetic life under the guidance of such an *acharya* who has the above-mentioned capabilities till he becomes fully capable and well versed in the code prescribed in scriptures.

शिष्यों के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य DUTIES OF ACHARYA TOWARDS DISCIPLES

१०. आयरिओ अंतेवासिं इमाए चउव्विहाए विणयपडिवत्तीए विणइत्ता भवइ निरिणत्तं गच्छइ, तं जहा—

(१) आयार–विणएणं, (२) सुय–विणएणं, (३) विक्खेवणा–विणएणं, (४) दोसनिग्घायण–विणएणं।

[प्र. १] से किं तं आयार–विणए ?

[उ.] आयार–विणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

(१) संजमसामायारी यावि भवइ, (२) तवसामायारी यावि भवइ,

(३) गणसामायारी यावि भवइ, (४) एकल्लविहारसामायारी यावि भवइ। से तं आयार–विणए।

१०. आचार्य अपने शिष्यो को यह चार प्रकार की विनय–प्रतिपत्ति (विनय विधि का ज्ञान) सिखाने से उनके ऋण से उऋण हो जाता है। जैसे–

(१) आचारविनय, (२) श्रुतविनय, (३) विक्षेपणाविनय, (४) दोषनिर्घातनाविनय।

[प्र. १] भगवन् ! आचारविनय किसे कहते है ?

[उ.] आचारविनय चार प्रकार का है, जैसे–

(१) सयम की समाचारी सिखाना। (२) तप की समाचारी सिखाना।

(३) गण की समाचारी सिखाना। (४) एकाकी विहार की समाचारी सिखाना। यह आचारविनय है।

10. After teaching four types of modesty (*vinaya*) to his disciples, an *acharya* can be considered as one who has fully discharged his duty They are—

(1) Modesty related to conduct (*achar vinaya*), (2) Modesty related to scriptures (*shrut vinaya*), (3) Modesty related to removal of skepticism (*vikshepana vinaya*), (4) Modesty related to removal of faults committed (*dosh-nirghatana vinaya*)

[Q. 1] Reverend Sir ! What is *Achar Vinaya* (modesty related to conduct) ?

[Ans.] *Achar Vinaya* is of four types, namely—

(1) To teach the code relating to ascetic restraints, (2) to teach code relating to ascetic practices, (3) to teach code relating to the religious order (*gana*), (4) to teach code relating to ascetic life in solitude

This is *Achar Vinaya*

विवेचन : आठ सम्पदाओ से सम्पन्न भिक्षु को जब आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है तब वह सम्पूर्ण सघ का धर्मशास्ता हो जाता है। तब उसे भी सघ सरक्षण एव सवर्धन के अनेक कर्त्तव्यो के उत्तरदायित्व निभाने होते है। उनके प्रमुख उत्तरदायित्व चार प्रकार के है–

(१) आचारविनय, (२) श्रुतविनय, (३) विक्षेपणाविनय, (४) दोषनिर्घातनाविनय।

(१) आचारविनय–गणी (आचार्य) का मुख्य कर्त्तव्य है कि सबसे पहले शिष्यो को आचार सम्बन्धी शिक्षाओ से सुशिक्षित करे। वह आचार सम्बन्धी शिक्षा चार प्रकार की है–

(१) संयम की प्रत्येक प्रवृत्ति के विधि-निषेधो का ज्ञान कराना, महाव्रत, समिति, गुप्ति, यतिधर्म, परीषहजय आदि सयम के भेद-प्रभेदो का यथार्थ बोध देना।

(२) अनेक प्रकार की तपश्चर्याओ के भेद-प्रभेदो का ज्ञान कराना। तप करने की प्रेरणा देकर उत्साह बढाना। निरन्तर तपश्चर्या करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए आगमोक्त क्रम से तपश्चर्या की एव पारणा मे परिमित पथ्य आहारादि के सेवन की विधि का ज्ञान कराना।

(३) गीतार्थ (बहुश्रुत), अगीतार्थ (अल्पज्ञ), भद्रिक परिणामी (सरलमना) आदि सभी की संयमसाधना निर्विघ्न सम्पन्न हो, अत आचारशास्त्रो तथा छेदसूत्रो के आधार से बनाये गये गच्छ सम्बन्धी नियमो-उपनियमो (समाचारी) का सम्यक् ज्ञान कराना।

(४) गण की सामूहिकचर्या को त्यागकर यदि कोई एकाकी विहार करना चाहे तो, उसे एकाकीविहारचर्या करने की योग्यता का, वय का तथा विचरणकाल में सावधानियाँ रखने का ज्ञान कराना एव एकाकीविहार करने की क्षमता प्राप्त करने के उपायो का ज्ञान कराना।

यह आचार्य का चार प्रकार का "आचारविनय" है।

Elaboration—When a monk equipped with all the eight *Sampadas* is installed as *acharya*, he becomes the head of the entire religious order (*Sangh*) Then, he has to discharge several duties relating to the safeguard and development of the religious organization. His primary responsibilities are four, namely—

(1) Modesty related to conduct, (2) Modesty related to scriptures, (3) Modesty related to removal of skepticism, (4) Modesty related to faults committed (*dosh nirghatana vinaya*)

(1) *Achar Vinaya*—It is the primary duty of Guru (the head of the order) that he should first of all train the disciples in all teachings related to conduct Such teachings are of four types—

(1) To educate about all activities relating to ascetic restraints—the 'dos' and 'do nots' thereof To make him understand properly the various classifications and sub-classification of ascetic discipline viz the major vows (*Mahavrat*), carefulness (*Samiti*), restraints (*gupti*), observances of a monks (*Yati Dharma*), conquest of sufferings (*Parishah Jaya*) and the like

(2) To teach him the types and sub-types of various austerities To encourage him to undergo austerities In order to obtain power of undertaking austerities continuously, to educate him to do austerities systematically according the method presented in *Agams*, and the conditions to be observed in taking limited prescribed food and the like after an austerity is concluded

(3) He has to ensure that ascetic practices of the well educated (*gitarth*), less educated (*agitarth*) in ascetic discipline, and simple minded worthy is completed smoothly. Therefore, he should properly educate him about the major and auxiliary rules of the sect (*gachh*) prepared on the basis of conduct related scriptures and *Chhed Sutras*.

(4) Sometimes a senior monk wants to move alone leaving the collective way of life of monks. It is important that he should know the capabilities essential for moving alone and the monk-period necessary for that purpose. He should also know the precautions essentially to be observed during that period. Further, he should know the method to gain capability for leading saintly life in solitude

These are the four types of modesty relating to conduct meant for an *acharya*

[प्र. २] से किं तं सुय–विणए ?

[उ.] सुय–विणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

(१) सुत्तं वाएइ, (२) अत्थं वाएइ, (३) हियं वाएइ, (४) निस्सेसं वाएइ। से तं सुय–विणए।

[प्र. २] भगवन् ! श्रुतविनय किसे कहते है ?

[उ.] श्रुतविनय चार प्रकार का है, जैसे–

(१) मूल सूत्रो को पढाना। (२) सूत्रो के अर्थ को पढाना। (३) शिष्य के हित का उपदेश देना। (४) सूत्र और अर्थ का यथाविधि समग्र अध्यापन कराना। यह श्रुतविनय है।

[Q. 2] Reverend Sir! What is modesty related to scriptures (*Shrut Vinaya*)?

[Ans.] *Shrut Vinaya* is of four types, namely—

(1) To teach the basic texts (*Sutras*). (2) To teach the meaning of *Sutras*. (3) To give lessons relating to the welfare of the disciples (4) To teach both the *Sutra* and the underlying interpretation thereof following the prescribed procedure

This is *Shrut Vinaya* (modesty related to scriptures)

विवेचन : श्रुतविनय–(१–२) आचारधर्म का प्रशिक्षण देने के साथ–साथ आचार्य का दूसरा कर्त्तव्य है–आज्ञाधीन शिष्यो को सूत्र व अर्थ की समुचित वाचना देकर श्रुतसम्पन्न बनाना।

(३) उसे सूत्रार्थ का ज्ञान देकर तप, सयम की वृद्धि के उपायो का ज्ञान कराना अर्थात् शास्त्रज्ञान को जीवन मे क्रियान्वित करवाना एवं समय–समय पर उन्हे हितशिक्षा देना।

(४) सूत्ररुचि वाले शिष्यो को प्रमाण–नय की चर्चा द्वारा उसके विविध रहस्यो को समझाना। छेदसूत्र आदि सभी आगमो की क्रमश: वाचना देना एव वाचना के समय आने वाले विघ्नो का शमन कर श्रुतवाचना पूर्ण कराना।

यह चार प्रकार का "श्रुतविनय" है।

Elaboration—*Shrut Vinaya*—(1-2) While training in right conduct, the second duty of the *Acharya* is to simultaneously give lessons to his disciples in respect of *Sutra* and the real meanings thereof, so as to make them expert in the knowledge of *Agams*.

(3) After giving them knowledge of *Agams*, he should teach them the methods of increasing the capacity for austerities and ascetic discipline. In other words, the knowledge of *Agams* should reflect in their conduct. At appropriate times, they should also be given lessons helpful to them in ascetic life.

(4) To teach various underlying thoughts to those who are interested in study of *Agams* by discussion regarding authenticity (*praman*) and stand-point (*naya*) To teach all the *Agams* including *Chhed Sutras* systematically To overcome hurdles appearing during that study and smoothly complete the lessons on *Agams*

These are four types of *Shrut Vinaya*.

[प्र. ३] से किं तं विक्खेवणा–विणए ?

[उ.] विक्खेवणा–विणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

(१) अदिट्ठधम्मं दिट्ठ–पुव्वगत्ताए विणयइत्ता भवइ,

(२) दिट्ठपुव्वगं साहम्मियत्ताए विणयइत्ता भवइ,

(३) चुयधम्माओ धम्मे ठावइत्ता भवइ,

(४) तस्सेव धम्मस्स हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेयसाए, अणुगामियत्ताए अब्भुट्ठेत्ता भवइ।

से तं विक्खेवणा–विणए।

[प्र. ३] भगवन् ! विक्षेपणाविनय किसे कहते है ?

[उ.] विक्षेपणाविनय चार प्रकार का है। जैसे–

(१) जिसने सयमधर्म को पूर्ण रूप से नही समझा है उसे समझाना।

(२) सयमधर्म के ज्ञाता को ज्ञानादि गुणो से अपने समान बनाना।

(३) धर्म से च्युत होने वाले शिष्य को पुन. धर्म मे स्थिर करना।

(४) सयमधर्म मे स्थित शिष्य के हित के लिए, सुख के लिए, सामर्थ्य बढाने के लिए, मोक्ष के लिए और भवान्तर मे भी धर्म की प्राप्ति हो, इसके लिए प्रयत्नशील रहना।

यह विक्षेपणाविनय है।

[Q. 3] Reverend Sir ! What is *Vikshepana Vinaya* (modesty related to removal of faults) ?

[Ans.] *Vikshepana Vinaya* is of four types, viz.—

(1) To teach ascetic code to those who have not understood it fully

(2) To bring up one who has knowledge of ascetic discipline to his own level in knowledge and suchlike

(3) To re-establish in *Dharma* that discipline who has failed in observing ascetic discipline

(4) To make continuous effort for the welfare, peace, increasing capability and salvation of those disciples who are stable in ascetic conduct so that they may gain *Dharma* in the next life-span also.

This is *Vikshepana Vinaya*

विवेचन : विक्षेपणाविनय–जब किसी प्रकार की शका–कुशका व पर–मतो के आक्षेप आदि से चित्त में किसी प्रकार का विक्षेप–व्यवधान या असमजस उत्पन्न हो जाय तो आचार्य चार प्रकार से उसे दूर करने का प्रयत्न करते है–

(१) जो धर्म के स्वरूप से अनभिज्ञ है, उन्हे धर्म का स्वरूप समझाना। (२) जो अनगारधर्म के प्रति उत्सुक नही है, उन्हे अनगारधर्म स्वीकार करने के लिए उत्साहित करना।

(३) किसी अप्रिय प्रसग से क्षुब्ध होकर किसी भिक्षु की सयमधर्म से अरुचि हो जाय तो उसे विवेकपूर्वक पुन स्थिर करने का प्रयत्न करना। (४) श्रद्धालु शिष्यो को सयमधर्म की पूर्ण आराधना कराने मे सदैव तत्पर रहना।

Elaboration—*Vikshepana Vinaya*—When any doubt or misgiving appears in the mind due to any misunderstanding or skepticism about the religious order or the aspersions by followers of other faiths, it is essential that the *acharya* should make effort to remove them in four ways, namely—

(1) To teach the true nature of *Dharma* to those who do not know it (2) To encourage those who are not keen to accept *monk-hood* towards it (3) In case due to any untoward event, a monk feels dejected about ascetic life, effort should be solemnly made to re-establish himself in ascetic discipline (4) To remain always ready in engaging devoted disciples in ascetic practices so as to provide them complete training.

[प्र. ४] से किं तं दोसनिग्घायणा–विणए ?

[उ.] दोसनिग्घायणा–विणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

(१) कुद्धस्स कोहं विणएत्ता भवइ, (२) दुट्ठस्स दोसं णिगिण्हित्ता भवइ, (३) कंखियस्स कंखं छिंदित्ता भवइ, (४) आया–सुपणिहिए यावि भवइ। से तं दोसनिग्घायणा–विणए।

[प्र. ४] भगवन् ! दोषनिर्घातनाविनय किसे कहते है ?

[उ.] दोषनिर्घातनाविनय चार प्रकार का है, जैसे–

(१) क्रुद्ध व्यक्ति के क्रोध को दूर करना। (२) दुष्ट व्यक्ति के द्वेष को दूर करना। (३) आकाक्षा वाले व्यक्ति की आकाक्षाओ का निवारण करना। (४) अपनी आत्मा को सयम मे लगाये रखना। यह दोषनिर्घातनाविनय है।

[Q. 4] Reverend Sir ! What is *Dosh-nirghatana Vinaya* (modesty related to faults committed) ?

[Ans.] *Dosh-nirghatana Vinaya* is of four types, viz —

(1) To remove anger of one who is angry (2) To remove hatred of a bad person (3) To set at rest the desires of one who has desires. (4) To keep oneself engaged in ascetic-discipline

This is *Dosh-nirghatana Vinaya*

विवेचन : शिष्य–समुदाय मे उत्पन्न दोषो को दूर करना "दोषनिर्घातनाविनय" है। शिष्यो की समुचित व्यवस्था करते हुए भी विशाल समूह मे साधना करते हुए कभी कोई साधक छद्मस्थ अवस्था के कारण कषायो के वशीभूत होकर किसी दोष विशेष के पात्र हो सकते हैं। तब आचार्य (१) क्षमा आदि का उपदेश देकर, उनके दुष्फल बताकर क्रोधादि दोषो को दूर करे।

(२) शिष्यो की राग–द्वेषात्मक परिणति का निष्पक्षभावपूर्वक निवारण करे।

(३) अनेक प्रकार की आकाक्षाओ के अधीन शिष्यो की आकाक्षाओ को उचित उपायो से दूर करे।

(४) शिष्यो के उक्त दोषो का निवारण करते हुए भी अपनी आत्मा को सयम गुणो से परिपूर्ण बनाये रखे।

जो आचार्य शिष्य–समुदाय की विवेकपूर्वक परिपालना करता हुआ सयम की आराधना कराता है, वह शीघ्र ही मोक्ष गति को प्राप्त करता है। सम्यक् प्रकार से गण का परिपालन करने वाले आचार्य, उपाध्याय उसी भव मे या दूसरे भव मे अथवा तीसरे भव मे अवश्य मुक्ति प्राप्त करते है।

Elaboration—To remove faults that have appeared in disciples is called *Dosh-nirghatana Vinaya*. In spite of proper arrangement and undergoing ascetic practices in a large group, sometimes a monk, due to his *Chhadmasth* (imperfect) state, commits faults in a fit of passions. Then the *acharya* should eliminate them—(1) by giving him lesson about forgiveness and the like and telling him the dangerous results of passions like anger.

(2) He should remove the feelings of attachment and hatred reflecting in the activities of the disciple with a sense of impartiality

(3) With proper means he should eliminate the expectations of the disciples who are slaves of many desires.

(4) While setting at rest the faults of his disciples, he should ensure that his own self is fully engaged in attributes of ascetic-discipline

An *acharya* who solemnly looks after his disciples and engages them in ascetic practices, attains salvation very soon Those *Acharyas* or *Upadhyayas* who properly look after the religious organization (*gana*), certainly attain liberation in that very life-span, in the next life-span or latest in the third life-span

आचार्य और गण के प्रति शिष्य के कर्त्तव्य DUTIES OF DISCIPLES TOWARD ACHARYA AND THE ORGANISATION

११. तस्स णं एवं गुणजाइयस्स अंतेवासिस्स इमा चउव्विहा विणयपडिवत्ती भवइ, तं जहा–

(१) उवगरणउप्पायणया, (२) साहिल्लणया, (३) वण्णसंजलणया, (४) भारपच्चोरुहणया।

११. पूर्वोक्त गुणो से युक्त आचार्य के गुणवान अन्तेवासी शिष्य के लिए भी यह चार प्रकार की विनय प्रतिपत्ति कही है। जैसे–

(१) **उपकरणोत्पादनता**–सयम जीवन के उपयोगी वस्त्र–पात्रादि का प्राप्त करने का प्रयत्न करना। (२) **सहायकता**–अशक्त साधुओ की सहायता करना। (३) **वर्णसंज्वलनता**–गण और गणी के गुण प्रकट करना। उनको प्रकाश मे लाना। (४) **भारप्रत्यारोहणता**–गण के भार का सम्यक् रीति से निर्वाह करना।

11. For the virtuous disciple of an acharya endowed with aforesaid qualities also four types of modesty have been stated—

(1) *Upakaranotpadanata*—to try to procure clothes, pots and other things useful in ascetic life (2) *Sahayakata*—to help weak and emaciated monks (3) *Varnasanjvalanata*—to exhibit and bring to light the merits of religious organization (*gana*) and its head (*gani*). (4) *Bhaar-pratyarohanata*—to properly discharge the duties and responsibilities of the religious organization

[प्र. १] से किं तं उवगरणउप्पायणया ?

[उ.] उवगरणउप्पायणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) अणुप्पण्णाणं उवगरणाणं उप्पाइत्ता भवइ, (२) पोराणाणं उवगरणाणं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ, (३) परित्तं जाणित्ता पच्चुद्धरित्ता भवइ, (४) अहाविहिं संविभइत्ता भवइ। से तं उवगरणउप्पायणया।

[प्र. १] भगवन् ! उपकरणोत्पादनताविनय किसे कहते है ?

[उ.] उपकरणोत्पादनताविनय चार प्रकार की है। जैसे–

(१) आवश्यकतानुसार वस्त्र–पात्र आदि नवीन उपकरणो को प्राप्त करना। (२) प्राप्त उपकरणों का यथोचित सरक्षण और संगोपन–देखभाल करना। (३) जिस मुनि के पास अल्प उपधि हो, या पुराना फट गया हो तो आवश्यकता होने पर उसकी पूर्ति करना। (४) शिष्यो के लिए यथायोग्य उपकरणों का विभाग (बँटवारा) करके देना। यह उपकरणोत्पादनताविनय है।

[Q. 1] Reverend Sir ! What is *Upakaranotpadanata Vinaya* (procuring of pots, cloth and the like) ?

[Ans.] *Upakaranotpadanata Vinaya* is of four types—

(1) To collect new clothes and pots according to the requirement thereof (2) To ensure required safety of *Upakarans* and see that they are in proper shape (3) To satisfy the basic need of such a monk who has less *Upakaran* than the basic need or where clothes and the like has become sufficiently old and torn (4) To properly distribute *Upakarans* among the disciples according to their requirement

This is *Upakaranotpadanata Vinaya.*

[प्र. २] से किं तं साहिल्लणया ?

[उ.] साहिल्लणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) अणुलोमवइसहिते यावि भवइ, (२) अणुलोमकायकिरियता यावि भवइ,

(३) पडिरूवकायसंफासणया यावि भवइ, (४) सव्वत्थेसु अपडिलोमया यावि भवइ। से तं साहिल्लणया।

[प्र. २] भगवन् ! सहायकताविनय किसे कहते है ?

[उ.] सहायकताविनय चार प्रकार का है। जैसे–

(१) गुरुजनो के अनुकूल तथा हितकारी वचन बोलना। अर्थात् गुरु के आदेश–निर्देश को विनयपूर्वक स्वीकार करना। (२) जैसा गुरुजन कहे, वैसी प्रवृत्ति करना। उनकी इच्छा के प्रतिकूल प्रवृत्ति नही करना।

(३) गुरु को शारीरिक व मानसिक साता पहुँचाना। यथोचित सेवा–शुश्रूषा करना। (४) सभी कार्यों मे उनकी इच्छा व रुचि को ध्यान मे देखकर अनुकूल व्यवहार करना। यह सहायकताविनय है।

[Q. 2] Reverend Sir ! What is *Sahayakata Vinaya* (helping or serving physically weak monks) ?

[Ans.] *Sahayakata Vinaya* is of four types—

(1) To use language, which is in accordance with the status of the teacher and exhibits respect for them; in other words, to accept the orders

and directions of the guru with modesty (2) To engage oneself in activities as desired by the guru. (3) To provide mental and physical relief to the guru. To serve him as needed. (4) To keep in mind the desire and inclination of the teacher in all the activities and then to act accordingly

This is *Sahayakata Vinaya*

[प्र. ३] से किं तं वण्णसंजलणया ?

[उ.] वण्णसंजलणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) अहातच्चाणं वण्णवाई भवइ, (२) अवण्णवाइं पडिहणित्ता भवइ,

(३) वण्णवाइं अणुवूहइत्ता भवइ, (४) आय वुड्ढसेवी यावि भयइ। से तं वण्णसंजलणया।

[प्र. ३] भगवन् ! वर्णसज्वलनताविनय किसे कहते है ?

[उ.] वर्णसज्वलनता (गुणो को प्रकाशित करना) विनय चार प्रकार का है। जैसे–

(१) गुरु के यथातथ्य गुणो की प्रशसा करना। (२) गुरु की निन्दा व आक्षेप करने वालो को उचित उत्तर देकर हतोत्साह करना।

(३) गुरु के वर्णवादी (गुणोत्कीर्तन करने वालो) को उत्साहित करना व गुणो का प्रकाश फैलाना। (४) स्वय वृद्धो की सेवा तथा उनका आदर बहुमान करना। यह वर्णसज्वलनताविनय है।

[Q. 3] Reverend Sir ! What is *Varnasanjvalanata Vinaya* (to exhibit merits of the organization and its head, the guru) ?

[Ans.] *Varnasanjvalanata Vinaya* is of four types—

(1) To appreciate factual merits of the guru (2) To discourage critics of the guru and those who make false allegations by properly replying their queries (3) To encourage those who narrate good qualities of the guru and to widely advertise merits of the guru (4) To engage oneself in service of the aged and to give them proper respect

This is *Varnasanjvalanata Vinaya*

[प्र. ४] से किं तं भारपच्चोरुहणया ?

[उ.] भारपच्चोरुहणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) असंगहिय–परिजणसंगहित्ता भवइ,

(२) सेहं आयारगोयरसंगहित्ता भवइ,

(३) साहम्मियस्स गिलायमाणस्स अहाथामं वेयावच्चे अब्भुट्ठित्ता भवइ,

(४) साहम्मियाणं अहिगरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सिए अपक्खग्गहिय–मज्झत्थभावभूए सम्मं ववहरमाणे तस्स अधिगरणस्स खमावणाए विउसमणयाए सया समियं अब्भुट्ठित्ता भवइ।

कहं णु साहम्मिया अप्पसद्दा, अप्पझंझा, अप्पकलहा, अप्पकसाया, अप्पतुमंतुमा, संजमबहुला, संवरबहुला, समाहिबहुला, अप्पमत्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा—एवं च णं विहरेज्जा।

से तं भारपच्चोरुहणया।

एसा खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता। —त्ति बेमि।

॥ चउत्थी दसा समत्ता ॥

[प्र. ४] भगवन् ! भारप्रत्यारोहणताविनय किसे कहते है ?

[उ.] भारप्रत्यारोहणताविनय चार प्रकार का है। [गुरु के कार्यभार को स्वय सँभालना- भारप्रत्यारोहणता है] जैसे-

(१) धर्म प्रचार हेतु नवीन शिष्यों की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना।

(२) नवीन दीक्षित शिष्यो को आचार-गोचर अर्थात् सयम की विधि सिखाना तथा शुद्ध आचार पालन मे सहायक बनना।

(३) साधर्मिक रोगी साधुओ की यथाशक्ति जहाँ जैसी आवश्यकता हो वैयावृत्य के लिए तत्पर रहना।

(४) सघ मे या साधर्मिको मे परस्पर कलह उत्पन्न हो जाने पर राग-द्वेष से दूर रहते हुए, किसी पक्ष विशेष को ग्रहण न करके मध्यस्थभाव रखना और सम्यक् व्यवहार का पालन करते हुए उस कलह के क्षमापन और उपशमन के लिए सदा तत्पर रहना और यह विचार करना कि किस तरह साधर्मिक परस्पर अनर्गल प्रलाप नही करे, कलह, कषाय और तू-तू, मै-मै नही हो, तथा साधर्मिक जन संयम, सवर और समाधि की अभिवृद्धि करते हुए अप्रमत्त होकर सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करे।

यह भारप्रत्यारोहणताविनय है।

इस प्रकार गण के हित, सरक्षण व सवर्धन का कार्य करने वाला श्रमण जिनशासन की सेवा करता हुआ सुगति को प्राप्त होता है। इस प्रकार स्थविर भगवन्तो ने आठ प्रकार की गणिसम्पदा कही है। - ऐसा मै कहता हूँ।

॥ चौथी दशा समाप्त ॥

[Q. 4] Reverend Sir ! What is *Bhaar-pratyarohanata Vinaya* (to properly discharge duties towards the religious organization) ?

[Ans.] *Bhaar-pratyarohanata Vinaya* is of four types, viz —

(1) To make efforts for initiating new disciples in order to widely propagate the religion.

(2) To train newly initiated disciples in the prescribed code for proper conduct, collection of alms and leading a good saintly life of restraint To assist them in leading pure ascetic discipline

(3) To remain ready for the service of sick monks of the order according to one's capacity as and when needed

(4) In case any dispute arises in the organization or among the followers of the same faith, to keep oneself away from any feeling of attachment or hatred and without taking side of any one, to maintain impartiality and to remain prepared for subduing or ending that dispute. Also to always think how the members of the organization can avoid unnecessary quarrels, raising out of passions, undesired exchange of words and addressing each other in a rude manner The followers of the same faith should make progress in ascetic restraints, *Samvar* (stoppage of inflow of *karmic* matter), equanimity, and spend their life influencing their soul carefully in ascetic discipline and austerities.

This is *Bhaar-pratyarohanata Vinaya*

A monk who looks after the interest of the organization, safeguards it and develops it, attains good state of existence in the life thereafter while serving the order established by *Tirthankar*.

Thus the reverend *Sthavirs* have mentioned eight types of *Gani-Sampada*

So, I say

● FOURTH DASHA CONCLUDED ●

पंचम दशा : चित्तसमाधि
FIFTH DASHA : EQUANIMITY OF MIND (CHITTA)

प्राक्कथन

चौथी दशा मे गणि-सम्पदा का विशद् व्यापक वर्णन किया गया है। गणि-सम्पदा से सम्पन्न गणी समाधि को प्राप्त होता है। अत· यहाँ समाधि का स्वरूप तथा समाधि प्राप्त करने की विशद् विधि का वर्णन किया है। पहली दशा मे सामान्य असमाधि के बीस कारण बताये हैं। यहाँ पर समाधिभाव प्राप्त होने के दस कारणों का कथन है।

भौतिक पदार्थों की उपलब्धि से प्राप्त होने वाला सुख व आनन्द द्रव्यसमाधि है। चित्त की निर्मलता व स्थिरता से जो अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वह भावसमाधि है।

प्रस्तुत दशा मे भावसमाधि प्राप्त करने के दस उपायो का, समाधि के स्वरूप का तथा समाधि से प्राप्त होने वाले अपूर्व लाभ का वर्णन है।

INTRODUCTION

A detailed description of *Gani-Sampada* (inner wealth of the head of the organization) is mentioned in the fourth chapter The head who is well equipped with *Gani Sampada* attains state of equanimity. Therefore, the intrinsic nature of the state of equanimity and detailed method of attaining it has been discussed here In the first *Dasha* (Chapter), twenty reasons for common state of non-equanimity were mentioned. Here ten reasons for attaining state of equanimity are stated

The happiness derived by getting worldly substances is *Dravya Samadhi* But the transcendental bliss experienced as a result of purity and stability of the mind is *Bhaava Samadhi*.

In the present chapter (*Dasha*), ten method for attaining *Bhaava Samadhi* (real inner state of equanimity), the real nature of *Samadhi* and the invaluable gain resulting from *Samadhi* have been discussed.

□□

चित्तसमाधि के दस स्थान **TEN REASONS FOR EQUANIMITY**

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं–

इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहिठाणा पण्णत्ता।

[प्र.] कयरा खलु ताइं थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहिठाणा पण्णत्ता ?

[उ.] इमाइं खलु ताइं थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहिठाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. आयुष्मन् ! मैने सुना है–उन भगवान महावीर ने ऐसा कहा है–

इस जिनशासन में स्थविर भगवन्तो ने दस चित्तसमाधि स्थान (चित्त की प्रसन्नता के कारण) बताये है।

[प्र.] भगवन् ! स्थविर भगवन्तो ने दस चित्तसमाधि स्थान कौन से कहे है ?

[उ.] स्थविर भगवन्तो ने दस चित्तसमाधि स्थान इस प्रकार कहे है। जैसे–

1. O, the blessed ! I have heard—Bhagavan Mahavir has said—

Sthavirs have stated that there are ten reasons for equanimity of the mind as mentioned in the order of the *Jina*

[Q.] Reverend Sir ! What are the ten reasons for attaining state of equanimity?

[Ans.] The ten reasons for attaining state of equanimity as mentioned by reverend *Sthavir* are as follows—

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नगरे होत्था। एत्थ नगरवण्णओ भाणियव्वो।

तस्स णं वाणियगामस्स नगरस्स बहिया उत्तर–पुरच्छिमे दिसीभाए दूतिपलासए णामं चेइए होत्था। चेइयवण्णओ भाणियव्वो।

जियसत्तू राया। तस्स धारणी नामं देवी। एवं समोसरणं भाणियव्वं। जाव पुढविसिलापट्टए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

अज्जो ! इति समणे भगवं महावीरे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी–

इह खलु अज्जो ! निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा इरियासमियाणं, भासासमियाणं, एसणासमियाणं, आयाण–भंड–मत्त–निक्खेवणा–समियाणं, उच्चार–पासवण–खेल–सिंघाण–जल्लपारिट्ठवणियासमियाणं, मणसमियाणं, वयसमियाणं, कायसमियाणं, मणगुत्तीणं, वयगुत्तीणं, कायगुत्तीणं गुत्तिंदियाणं, गुत्तबंभयारीणं, आयट्ठीणं, आयहियाणं, आयजोईणं, आयपरक्कमाणं, पक्खियपोसहिएसु समाहिपत्ताणं झियायमाणाणं इमाइं दस चित्तसमाहिठाणाइं असमुप्पण्णपुव्वाइं समुप्पज्जेज्जा।

२. उस काल और उस समय मे वाणिज्यग्राम नगर था।

उस वाणिज्यग्राम नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) मे दूतिपलाशक नाम का चैत्य (उद्यान) था। यहाँ पर नगर का एव चैत्य का वर्णन औपपातिकसूत्रानुसार कहना चाहिए।

वहाँ जितशत्रु राजा था। उसकी धारणी नाम की देवी थी। यहाँ समवसरण का वर्णन कहना चाहिए। उस उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्टक (पत्थर का सिहासन जैसा) था। श्रमण भगवान महावीर पधारे, वहाँ विराजमान हुए। उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए परिषद् एकत्र हुई। भगवान ने धर्म का निरूपण किया। उपदेश सुनकर परिषद् वापस चली गई।

'हे आर्यो !' इस प्रकार सम्बोधन कर श्रमण भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियो से इस प्रकार कहा–

हे आर्यो ! निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियो को, जोकि ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान–भाण्ड–मात्रनिक्षेपणासमिति, उच्चार–प्रस्रवण–खेल–सिंघाणक–जल्ल–मल की परिष्ठापनासमिति, मन. समिति, वचनसमिति, कायसमिति, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से युक्त होते हैं तथा गुप्तेन्द्रिय (इन्द्रियसयमी) गुप्तब्रह्मचारी (ब्रह्मचर्य की नैष्ठिक साधना करने वाले), आत्मार्थी, आत्मा का हित करने वाले, **आत्मयोगी**–मन, वचन, काय योगो को वश में रखने वाले, **आत्मपराक्रमी**–आत्मा के लिए पुरुषार्थ–पराक्रम करने वाले, **पाक्षिकपौषधों**–(अष्टमी–चतुर्दशी–अमावस्या–पूर्णिमा–पर्व–तिथियो मे विशेष धर्म जागरणा करते हुए) मे समाधि को प्राप्त और शुभ ध्यान करने वाले है। उन मुनियो को ये पूर्व मे उत्पन्न नही हुए चित्तसमाधि के दस स्थान उत्पन्न हो जाते है।

2. At that time, during that period there was a town called Vanijyagram.

In the outskirts of that town in north-east direction, there was Dootipalashak garden The detailed description of the town and the garden may be understood as mentioned in *Aupapatik Sutra*.

Jitshatru was the ruler of that area. His queen was Dharani The religious congregation (*Samavasaran*) was arranged In that garden, under the Ashoka tree there was a stone-slab Shraman Bhagavan Mahavir reached there and sat on the slab. The congregation gathered in order to listen to his sermon *Bhagavan* explained true *Dharma*. Thereafter, the congregation dispersed

Addressing the monks and nuns as 'O Aryas !' Bhagavan Mahavir said—

'O, the blessed ! There are monks and nuns who are strictly following the code relating to movement, speech, collection of alms, they take due care in handling pots in placing them, due care in discarding stool, urine, sputum, dirt stuck on the body and the like and follow the code relating to complete control of mind, speech and physical movement There are monks and nuns who have control on their senses, who practice code of celibacy, who are keen to attain self-realization, who always think of welfare of the soul. They subdue vitiation of mind, organ of speech and body (*Atmayogi*) They are serious in their effort for development of the self They observe complete fast on eight and fifteenth day of the fortnight and also on important days of celebration as also keep themselves awake meditating on the self Such monks and nuns attain ten stages of equanimity of mind, which they had never reached earlier.

तं जहा–

(१) धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जेज्जा, सव्वं धम्मं जाणित्तए।

(२) सण्णिजाइसरणेणं सण्णिणाणं वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, अप्पणो पोराणियं जाइं सुमरित्तए।

(३) सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए।

(४) देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, दिव्वं देवड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए।

(५) ओहिणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, ओहिणा लोगं जाणित्तए।

(६) ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, ओहिणा लोयं पासित्तए।

(७) मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा अंतो मणुस्सखित्तेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणित्तए।

(८) केवलणाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, केवलकप्पं लोयालोयं जाणित्तए।

(९) केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, केवलकप्पं लोयालोयं पासित्तए।

(१०) केवलमरणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा सव्वदुक्खपहीणाए।

वे (चित्तसमाधि के) दस स्थान इस प्रकार है–

(१) पूर्व असमुत्पन्न (पहले कभी उत्पन्न नही हुई) ऐसी अलौकिक धर्म–भावना यदि साधु के मन मे उत्पन्न हो जाये तो वह सर्व धर्म को जान सकता है, इससे चित्त को समाधि प्राप्त हो जाती है।

(२) वह संज्ञि जातिस्मरणज्ञान (संज्ञी भवो का ज्ञान) जो पहले कभी उत्पन्न नही हुआ, यदि उसे उत्पन्न हो जाये और वह अपने पूर्वजन्मो का स्मरण कर ले तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(३) पहले कभी नही देखा हुआ यथार्थ स्वप्न दर्शन हो जाये तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(४) पूर्व अदृष्ट देवदर्शन (श्रमण की सेवा मे देवो का आना) यदि हो जाये और दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव दिख जाये तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(५–६) पूर्व असमुत्पन्न अवधिज्ञान तथा अवधिदर्शन यदि उसे उत्पन्न हो जाय और उनके द्वारा वह लोक को जान लेवे, देख लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(७) पूर्व असमुत्पन्न मन.पर्यवज्ञान यदि उसे उत्पन्न हो जाय और मनुष्य क्षेत्र के भीतर अढाई द्वीप–समुद्रो मे संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो के मनोगत भावो को जान लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(८–९) पूर्व असमुत्पन्न केवलज्ञान तथा केवलदर्शन यदि उसे उत्पन्न हो जाये और सम्पूर्ण लोक–अलोक को जान लेवे, देख लेवे तो चित्तसमाधि प्राप्त हो जाती है।

(१०) पूर्व असमुत्पन्न केवलमरण (केवलज्ञानयुक्त मृत्यु–मोक्षगति) यदि उसे प्राप्त हो जाये तो वह सब दु:खो के सर्वथा अभाव से पूर्ण शान्तिरूप समाधि को प्राप्त हो जाता है।

The ten conditions that can result in producing equanimity of the mind are as under—

(1) In case such a unique thought activity towards *Dharma* that had never appeared earlier in the mind of the monk, occurs, he can know all about *Dharma*. Such a condition will provide equanimity in his mind and heart.

(2) In case he gains sentient knowledge about his earlier births as a sentient being (*Jati-smaran Jnana*) which had never appeared in him earlier, he recollects his earlier births and that knowledge provides *Chitta Samadhi* (equanimity of mind) to him

(3) In case he perceives a true dream that he had never perceived earlier, he can gain equanimity of mind.

(4) In case he sees invisible celestial beings (when they come to the monks), their celestial wealth, celestial shine and celestial grandeur, he can gain equanimity of mind.

(5-6) In case he gets extra-sensory knowledge (*Avadhi-jnana*) and extra-sensory perception (*Avadhi-darshan*) that he had not got earlier, and with it, he perceives and comprehends the world (*Lok*) he can gain *Chitta Samadhi*.

(7) In case he gets Supra-mental knowledge (*Manahparyav-jnana*) that he never had earlier, and with its help, he is able to know mental thought-activity of fully developed sentient (*Sanjni*) five-sensed living beings existing in the area where human beings can take birth (*Manushya Kshetra*) within *Adhai Dveep* (two and a half continents) and oceans, he can acquire equanimity of the mind

(8-9) If he acquires perfect knowledge (*Keval Jnana*) and perfect perception (*Keval Darshan*) and thus knows and perceives the entire universe consisting of *Lok* and *Alok*, he gets equanimity and stability of mind.

(10) If he meats death in a state when he possesses perfect knowledge, he is totally free from all trouble, and thus gains total equanimity in the form of complete peace

गाहाओ

ओयं चित्तं समादाय, झाणं समणुपस्सइ।
धम्मे ठिओ अविमाणो, निव्वाणमभिगच्छइ ॥१ ॥

ण इमं चित्तं समादाय, भुज्जो लोयंसि जायइ।
अप्पणो उत्तमं ठाणं, सण्णीणाणेण जाणइ ॥२ ॥

(8) When the knowledge-deluding *Karma* of any living being is completely wiped out, he becomes a soul having perfect knowledge (*Kevali*) He then knows thought-reflections of the entire world (*Lok*) and world beyond (*Alok*)

(9) When the perception-obscuring *Karma* of a living being is completely destroyed, he gains perfect perception and he then perceives thought-reflections of the entire world and the world beyond.

(10) When a monk follows his vows (five *Mahavrats* and the like) with complete discrimination spotlessly and destroys all the deluding *Karmas*, he gets real state of perfect equanimity He then perceives, the entire world and the world beyond.

जहा मत्थए सूइए, हताए हम्मइ तले।
एवं कम्माणि हम्मंति, मोहणिज्जे खयं गये॥११॥

सेणावइम्मि निहए, जहा सेणा पणस्सति।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गये॥१२॥

धूमहीणो जहा अग्गी, खीयति से निरिंधणे।
एवं कम्माणि खीयंति, मोहणिज्जे खयं गये॥१३॥

सुक्क-मूले जहा रुक्खे, सिंचमाणे ण रोहति।
एवं कम्मा ण रोहंति, मोहणिज्जे खयं गए॥१४॥

जहा दड्ढाणं बीयाणं, न जायंति पुणंकुरा।
कम्म-बीएसु दड्ढेसु, न जायंति भवंकुरा॥१५॥

चिच्चा ओरालियं बोंदिं, नाम-गोयं च केवली।
आउयं वेयणिज्जं च, छित्ता भवति नीरए॥१६॥

एवं अभिसमागम्म, चित्तमादाय आउसो !
सेणि-सुद्धिमुवागम्म, आया सोधिमुवेहइ॥१७॥ -त्ति बेमि।

॥ पंचमा दसा समत्ता ॥

(११) जैसे ताल (ताड) वृक्ष मस्तक स्थान (अग्र भाग पर) मे सुई या तीक्ष्ण शस्त्र से छेदन किये जाने पर टूटकर नीचे गिर जाता है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर शेष कर्म भी स्वत विनष्ट हो जाते है।

(१२) जैसे सेनापति मारे जाने पर सारी सेना भाग जाती है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर शेष सर्व कर्म विनष्ट हो जाते है।

चित्र परिचय-२

Illustration No. 2

मोहनीय कर्म (१)

दृश्य १ मे देखे-ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मो मे मोहनीय कर्म सबका राजा तुल्य है तथा शेष सात कर्म उसके अनुचर योद्धा के समान है। इसलिए मोह कर्म को जीतने पर शेप कर्म भी स्वत जीत लिये जाते है।

२ जिस प्रकार ताड के वृक्ष पर लगे फल का ऊपरी भाग वृन्त (मस्तक) छेद देने पर फल टूटकर स्वत ही नीचे गिर जाते है।

३ युद्ध मे जब सेनापति मर जाता है, तो शेष सेना शीघ्र ही इधर-उधर पलायन कर जाती है।

४ प्रज्वलित धूमरहित अग्नि ईधन समाप्त हो जाने पर अपने आप बुझकर शान्त हो जाती है।

इसी प्रकार मोहनीय कर्म का क्षय होने पर शेष कर्म बहुत शीघ्र सरलतापूर्वक क्षीण हो जाते है।

दशा ५/११, १२, १३, पृ ६८

MOHANIYA KARMA (1)

Scene-1—Mohaniya Karma (deluding karma) is like a king among the eight karmas including Jnanavaraniya (knowledge obscuring) The remaining seven karmas are like its subordinate soldiers Therefore, on subduing deluding karma all the other karmas are automatically subdued

Scene-2—As the fruit of a pine (Taad) tree falls on its own when its head is pierced

Scene-3—As the army soon scatters and runs away when its commander is dead

Scene-4—As the flaming smokeless fire gets quenched automatically when the fuel is finished

In the same way all the remaining karmas are soon and easily shed when Mohaniya karma is destroyed

—Dasha 5/11, 12, 13, p 68

मोहनीय कर्म (१)

मोहनीय कर्म (२)

चित्र परिचय-३

Illustration No. 3
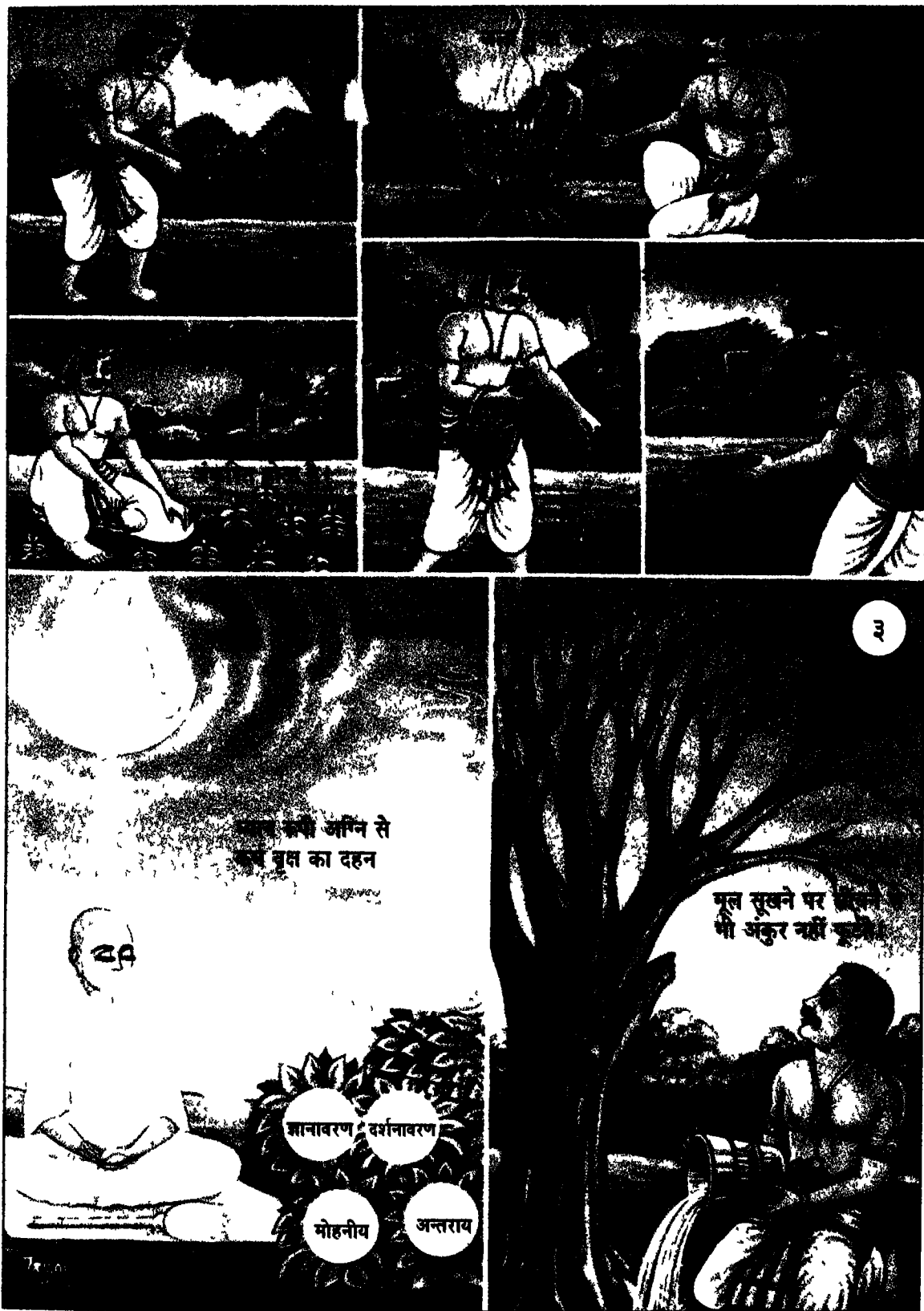
मोहनीय कर्म (२)

१ २ जिस प्रकार बीज भूमि मे पडकर अकुरित होता है। उसी प्रकार कर्मरूपी बीज से जन्म–मरण की पौध बढती है।

३–४ जिस प्रकार बीजो को जला देने पर उनको खेत मे बोया जाय, तब भी अकुरित नही होते। उसी प्रकार कर्मरूपी बीज जल जाने पर ससाररूपी खेत मे पुन जन्म–मरण के अकुर पैदा नही होते।

५ जिस वृक्ष की मूल (जड) सूख गई हो, उसे कितना ही पानी सीचो पर वह पुन हरा-भरा नही होता।

इसी प्रकार जो मुनि शुक्लध्यानरूपी अग्नि से कर्मरूपी वृक्षो को जलाकर भस्म कर देता है, उसके नाम गोत्र आयुष्य वेदनीय कर्म जलकर नष्ट हो जाते है। वह शरीर त्यागकर पुन जन्म धारण नही करता। अपितु क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर सिद्धि रूप निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

–दशा ५/१४ १७ पृ ६९

MOHANIYA KARMA (2)

Scene-1-2—As a seed sown in the ground sprouts, likewise the plant of cycles of life and death sprouts from the seed of karma and grows

Scene-3-4—As burnt seeds do not sprout even when sown in a farm, likewise when the seeds of karma are burnt the sprouts of life-death do not germinate in the farm of cycles of rebirth.

Scene-5—No matter how much a tree with dried roots is watered it does not sprout and turn green

In the same way the sage who burns the trees of karma with the fire of sublime meditation (Shukla Dhyan) gets his Naam-Gotra-Ayushya-Vedaniya karmas burnt and destroyed After abandoning his earthly body he does not reincarnate Instead, he goes up the path of destruction of karmas (Kshapak Shreni) and attains nirvana to become a Siddha (liberated soul)

—Dasha 5/14, 17, p 69

(१३) जैसे धूमरहित अग्नि ईंधन के अभाव मे अपने आप क्षीण हो जाती है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर सर्व कर्म क्षय हो जाते है।

(१४) जैसे मूल (जड) सूख जाने पर जल-सिचन किये जाने पर भी वृक्ष पुनः अकुरित नही होता है, इसी प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय हो जाने पर शेष कर्म भी पुन. उत्पन्न नही होते है।

(१५) जैसे जले हुए बीजो से पुन अकुर उत्पन्न नही होते है, इसी प्रकार कर्मबीजो के जल जाने पर भवरूप (जन्म-मरण) अकुर उत्पन्न नही होते है।

(१६) औदारिक शरीर को त्यागकर तथा नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय कर्म का छेदन कर केवली भगवान कर्म-रज से सर्वथा रहित हो जाते है।

(१७) हे आयुष्मन् शिष्य ! इस प्रकार आत्मा (समाधि के भेदो) को जानकर, राग और द्वेष से रहित निर्मल चित्त को धारण कर, शुद्ध श्रेणी (क्षपक-श्रेणी) को प्राप्त कर परम विशुद्धि निर्वाण को प्राप्त करता है। -ऐसा मै कहता हूँ।

(11) A palm tree breaks and falls down ıf its head ıs pıerced wıth a needle or a sharp weapon. Sımılarly when the deludıng *Karma* is destroyed, all the remaınıng *Karmas* get wiped out on their own

(12) Just as an army runs away from the battle field ıf the general ıs kılled Sımılarly when the deludıng *Karma* ıs destroyed all the remaınıng *Karmas* get wıped out on their own

(13) A smokeless fire gets extınguıshed in absence of fuel Sımılarly when deludıng *Karma* ıs destroyed, the remaınıng *Karmas* get elımınated.

(14) A tree does not blossom even if ıt is watered in case ıts roots have drıed up Sımılarly when the deludıng *Karma* ıs destroyed, the remaınıng *Karma* do not fructıfy agaın.

(15) Burnt seeds do not grow agaın Sımilarly when *Karma*-seeds are destroyed, the plant of bırth and death does not grow.

(16) Fırst the physıcal body is discarded Thereafter the name, status and age determınıng *Karmas* are destroyed Then the *Kevalı* (Soul blessed with perfect knowledge) becomes completely free from *karmıc* dust

(17) O, blessed discıple! Thus after knowıng the types of equanımity, and gainıng the state of clear mind free from all attachments and hatred, the living being ascends the hıgher stages of development of qualıties (*Kshapak Shrenı*). He then attains totally pure state of lıberatıon

So, I say

विवेचन : गद्य पाठ में उन दस चित्तसमाधिस्थानो का कथन है और गाथाओं में उन समाधिस्थानों की प्राप्ति किस प्रकार की साधना करने वाले भिक्षु को होती है, यह बताया है तथा उस समाधिस्थान का क्या परिणाम होता है, यह भी सूचित किया है।

दस चित्तसमाधि (आत्म-आनन्द के) स्थानों का दस गाथाओ मे वर्णन करने के बाद मोहनीयकर्म के क्षय का महत्त्व चार उपमाओं के द्वारा बताया गया है-(१) ताड का वृक्ष शीर्ष स्थान पर सुई से छेद करने पर गिर जाता है। (२) युद्ध-भूमि मे सेनापति मर जाने से सेना स्वय भाग जाती है। (३) ईंधन के बिना अग्नि स्वत बुझ जाती है। (४) वृक्ष की जड सूख जाने पर वृक्ष अपने आप नष्ट हो जाता है।

सभी कर्म भवपरम्परा के बीज है। इन कर्म-बीजो के जल जाने अर्थात् पूर्ण क्षय हो जाने पर जीव शाश्वत मोक्ष को प्राप्त होता है। वह पुन. ससार में परिभ्रमण नही करता है।

प्रस्तुत दशा में दस चित्तसमाधिस्थान श्रमण निर्ग्रन्थो को प्राप्त होने का प्रासगिक कथन है, किन्तु इनमें से कई स्थान श्रमणोपासक को भी प्राप्त हो सकते है और कोई-कोई शुभ परिणामी अन्य सज्ञी जीवो को भी प्राप्त हो सकते है।

॥ पाँचवी दशा समाप्त ॥

Elaboration—Ten *Samadhi-sthaans* (conditions that can lead to equanimity of mind) have been stated in prose, and in the verses the practices that can result in reaching such *Samadhi-sthaans* have been described What is going to be the final result of that *Samadhi-sthaan* is also indicated

After describing ten *Samadhi-sthaans* in ten verses, the importance of destroying deluding *Karmas* has been stated through four illustrations Viz.—(1) A palm tree falls down when its top is pierced with a needle, (2) an army itself disperse from the battle-field if the general is killed, (3) a fire extinguishes itself in the absence of fuel, and (4) a tree withers away if its root dries up

All *Karmas* are the root (fundamental) causes of passing continuously through births and deaths When the *Karma*-molecules are completely destroyed, the soul attains salvation It no longer takes birth in this mundane world thereafter

In the present chapter (*Dasha*) there is the mention of ten sources of equanimity (concentration of mind) pertaining to monks and nuns. But even a householder (following the minor vows) can attain same stages of concentration out of them Some sentient beings with meritorious bent of mind can also attain concentration of mind

● FIFTH DASHA CONCLUDED ●

षष्ठ दशा : उपासक-प्रतिमा
SIXTH DASHA : UPASAK PRATIMA

प्राक्कथन

पूर्व की पाँच दशाओं में मुख्य रूप में 'श्रमण' की आचार-सहिता का कथन किया गया है। छठी दशा मे उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन है। उपासक का अर्थ है-जो साधुओ के समीप धर्म का श्रवण करता है या उनकी सेवा करता है, उसे 'श्रमणोपासक' भी कहा जाता है। यद्यपि 'श्रमणोपासक' एवं 'श्रावक' शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, फिर भी भाव की दृष्टि से इनमे अन्तर है। धर्म का श्रवण करने वाला भी 'श्रावक' कहलाता है और सम्यग्दर्शन का धारक भी 'श्रावक' पद का अधिकारी है। आगम मे बारह व्रतो को धारण करने वाले को 'श्रमणोपासक' कहा गया है-**समणोवासए जाए !** इस दृष्टि से अविरति सम्यग्दृष्टि को 'श्रावक' तथा देशविरत सम्यग्दृष्टि को 'श्रमणोपासक' कहा जा सकता है।

'प्रतिमा' शब्द के भी अनेक अर्थ है। 'व्रत', 'अभिग्रह' व 'तप विशेष' को धारण करना भी 'प्रतिमा' है। टीकाकार ने अर्थ किया है-'प्रतिमा' अर्थात् सादृश्य (समानता)। वेष-भूषा की समानता 'द्रव्य प्रतिमा' तथा गुणो की समानता प्राप्त करना 'भाव प्रतिमा' है।

प्रस्तुत दशा मे श्रावक या उपासक की ग्यारह प्रतिमाओ का वर्णन है। इनमें प्रथम 'दर्शन प्रतिमा' सम्यग्दर्शन से प्रारम्भ होती है। सम्यग्दर्शन व सम्यक् ज्ञान होने पर ही सम्यक् चारित्र आता है। दूसरी से ग्यारहवी प्रतिमाओ मे, क्रमश सम्यक् चारित्र की क्रमिक आराधना की विधि है। ग्यारहवी 'श्रमणभूत' प्रतिमा मे चारित्र की उत्कृष्टता आने पर श्रावक भी 'श्रमण के समान' अवस्था मे पहुँच जाता है। आत्म-साधना का यह सुन्दर क्रमारोहण प्रत्येक आत्म-साधक गृहस्थ के लिए मननीय है।

INTRODUCTION

In the earlier five *Dashas* (Chapters) primarily the conduct of an ascetic has been discussed In the Sixth *Dasha* eleven special vows (*pratima*) have been discussed *Upasak* is that person who listens to the spiritual lecture of the monks sitting close to him or who serves a monk He is also called *Shramanopasak*: Although the words *Shramanopasak* and *Shravak* are used to denote same meaning, still there is difference in the underlying idea A person who listens to the scriptures is called *Shravak* and a person who has right spiritual perception also deserves to be called as such In *Agam*, a householder who has accepted twelve prescribed minor vows is called *Shramanopasak* Keeping note of this distinction, a person who has right perception but who has not accepted any vow is a *Shravak* and one who has accepted the vows too is a *Shramanopasak*

The word *pratima* has also many interpretations. To undertake some vow, austerity or restraint as a precondition to some act (*abhigrah*) can also be interpreted as *pratima*. The commentator has translated *Pratima* as similarity Similarity in dress is *Dravya Pratima* and similarity in good qualities is *Bhaava Pratima*

In the present *Dasha*, eleven *pratimas* of a *Shravak* or *Upasak* (a householder devotee) have been discussed. The first one is *Darshan Pratima* and it starts with right perception One can get right conduct only after attaining right perception (belief) and right knowledge. In second *pratima* up to eleventh *pratima*, methods of gradual advancement in practice of right conduct has been stated. In the eleventh *pratima*, which is *Shramanbhoot pratima*, there is the highest stage of right conduct of a householder He then reaches a stage similar to that of a *Shraman* (monk). This gradual advancement in the conduct for spiritual advancement of the soul is worthy of consideration by every aspirant of self-realization. □□

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासग-पडिमाओ पण्णत्ताओ।

[प्र.] कयरा खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासग-पडिमाओ पण्णत्ताओ ?

[उ.] इमाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासग-पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-

(१) दंसण-पडिमा, (२) वय-पडिमा, (३) सामाइय-पडिमा, (४) पोसह-पडिमा, (५) काउसग्ग-पडिमा (६) बंभचेर-पडिमा, (७) सचित्त-परिण्णाय पडिमा, (८) आरंभ-परिण्णाय पडिमा, (९) पेस-परिण्णाय पडिमा, (१०) उद्दिट्ठ भत्त-परिण्णाय पडिमा, (११) समणभूय पडिमा।

१. हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने सुना है उन भगवान ने इस प्रकार प्रतिपादन किया है। इस जिन-शासन मे स्थविर भगवन्तो ने एकादश उपासक-प्रतिमाएँ कही है।

[प्र.] हे भगवन् ! स्थविर भगवन्तो ने वे कौन-सी ग्यारह उपासक-प्रतिमाएँ कही है ?

[उ.] ये (आगे कही जाने वाली)-ग्यारह उपासक-प्रतिमाएँ स्थविर भगवन्तो ने कही है, जैसे-

(१) दर्शन-प्रतिमा, (२) व्रत-प्रतिमा, (३) सामायिक-प्रतिमा, (४) पौषध-प्रतिमा, (५) कायोत्सर्ग-प्रतिमा, (६) ब्रह्मचर्य-प्रतिमा, (७) सचित्तत्याग-प्रतिमा, (८) आरम्भत्याग-प्रतिमा, (९) प्रेष्यत्याग-प्रतिमा, (१०) उद्दिष्टभक्तत्याग-प्रतिमा, (११) श्रमणभूत-प्रतिमा।

1. O the blessed ! I have heard that Bhagavan Mahavir has stated that there are eleven *pratimas* (particular vows) meant for *Upasaks*.

[Q.] Reverend Sir ! What are the eleven *pratımas* ?

[Ans.] These are the eleven *pratımas*—(1) *Darshan Pratıma*, (2) *Vrat Pratima*, (3) *Samayik Pratıma*, (4) *Paushadh Pratima*, (5) *Kayotsarg Pratima*, (6) *Brahmacharya Pratıma*, (7) *Sachıtta Tyaag Pratıma*, (8) *Aarambh Tyaag Pratıma*, (9) *Preshya Tyaag Pratıma*, (10) *Uddısht bhakt Pratima*, (11) *Shramanbhoot Pratima*.

(१) दर्शन–प्रतिमा DARSHAN PRATIMA (PARTICULAR VOW OF RIGHT PERCEPTION)

२. अकिरियवाई यावि भवइ।

नाहियवाई, नाहियपण्णे, नाहियदिट्ठी, णो सम्मवाई। णो णितियावाई, ण संति परलोगवाई, णत्थि इहलोए, णत्थि परलोए, णत्थि माया, णत्थि पिया, णत्थि अरिहंता, णत्थि चक्कवट्टी, णत्थि बलदेवा, णत्थि वासुदेवा, णत्थि णिरया, णत्थि णेरइया, णत्थि सुक्कड–दुक्कडाणं फल–वित्ति–विसेसो, णो सुच्चिण्णा कम्मा सुच्चिण्णा फला भवंति, णो दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णा फला भवंति। अफले कल्लाण पावए, णो पच्चायंति जीवा, णत्थि सिद्धा से एवं वादी एवं पण्णे एवं दिट्ठी एवं छंद–राग–मती–णिविट्ठे यावि भवइ।

२. जो जीव–अजीव आदि पदार्थों का अस्तित्व नही मानता वह अक्रियावादी (नास्तिक–मिथ्यात्वी) है।

जिसकी प्रज्ञा और दृष्टि मे नास्तिकता भरी है वह सम्यक्‌वादी नही हो सकता। वह पदार्थों की स्थिरता व नित्यता का विरोध करता है। वह परलोक को नही मानता, इस लोक मे भी पुण्य–पाप को नही मानता। परलोक, पुनर्जन्म तथा वह स्वर्ग–नरक को नही मानता। उसकी दृष्टि मे न माता–पिता है, नही अरिहत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक है, तथा सुकृत–दुष्कृत कर्म फल मे भी विश्वास नही करता। "शुभ कर्म शुभ फल देते है, अशुभ कर्म अशुभ फल देते है", इस सिद्धान्त को भी नही मानता। अच्छे व बुरे कर्मों का कोई फल नही मिलता। आत्मा परलोक मे जाकर उत्पन्न नही होता। नारक–(स्वर्ग) तथा मोक्ष भी नहीं है–वह ऐसा कहता है, उसकी बुद्धि और दृष्टि भी ऐसी है। उसका विचार व चिन्तन सांसारिक राग से ग्रस्त रहता है। (उस नास्तिकवादी का चितन व आचरण इस प्रकार का होता है)–

2. A person who does not believe ın basıc substances such as *jıva* (lıvıng beings), *ajıva* (non-living beıngs) is *Akrıyavadı* or one having wrong belıef

A person whose ıntellect and perception is absorbed ın wrong belief cannot be *Samyakavadı* (one having right perception). He contradicts the stabılıty and permanence of substances. He does not believe ın lıfe after present life-span He does no believe in fruıt of meritorious and demeritorious activities. He does not belıeve ın next world, re-birth, heaven and hell. According to him there is no father, mother, Omniscient

(*Arihant*), *Chakravarti*, *Baladev*, *Vaasudev*, hell or hellish beings. He also does not believe in any reward of good and bad deeds. He does not have faith in the principle that good *karmas* produce good fruit and bad *karmas* produce bad fruit. His view is that there is no fruit of good or bad activity and that the soul is not re-born. Further he believes that there is no hell or heaven. His intellect and perception act accordingly. His thought activity and viewpoint is influenced by worldly attachment. Such is the behaviour and thought activity of non-believer in soul (*Nastikavadi*).

३. "हण, छिंद, भिंद", विकत्तए, लोहिय–पाणी, चंडे, रुद्दे, खुद्दे, असमिक्खियकारी, साहस्सिए, उक्कंचण, वंचण, माई, नियडि, कूडमाई, साइ–संपओगबहुले, दुस्सीले, दुप्परिचए, दुचरिए, दुरणुणेया, दुव्वए, दुप्पडियाणंदे, निस्सीले, निव्वए, निगुणे, निम्मेरे, निपच्चक्खाण–पोसहोववासे, असाहु।

३. नास्तिक लोगो से कहता है–"जीवो का हनन करो, छेदन करो, भेदन करो" और स्वयं वह (जीवो को) काटने वाला होता है, उसके हाथ रुधिर (लहू) से लिप्त होते है। वह चण्ड, क्रोधी, रौद्र और क्षुद्र हृदय होता है, बिना विचारे काम करने वाला एव दु साहसिक होता है। लोगो से उत्कोच (घूस) लेता है, उनको ठगता है। वह मायावी होता है, गूढ कपट रचता है, कूट मायाजाल बिछाता है और माया को अत्यधिक प्रयोग में लाता है। दुश्शील होकर दुष्ट जनो की सगति करता है, दुष्ट जनो से परिचय रखता है, दुष्टों का अनुगामी होता है, दुष्ट आचरण करता है, कृतघ्न होता है, शीलरहित होता है, निर्गुणी होता है, मर्यादा का अतिक्रमण करने वाला होता है। वह किसी तरह का त्याग नही कर सकता अर्थात् पौषध या उपवास कभी नही करता और साधुओ से दूर रहता है।

3. A *Nastik* says, "Kill, cut and pierce living beings (*jivas*)" and he himself also kills such living beings His hands remain besmeared with blood. He is angry and dreadful He is not broad-minded. He acts thoughtlessly and in an emotional manner He takes bribe. He deceives people He is a fraud He plans in a deeply deceitful manner. He mostly acts in a fraudulent way He is a bad character and likes company of bad characters He keeps contact with bad people He follows notorious persons. His behaviour is wretched and worthy of condemnation. He forgets good acts done to him He has no good qualities He crosses the limits of restraints He does not undertake any vow. He never does *paushadh* or fast. He remains away from monks.

४. सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरया जाव–जीवाए, जाव सव्वाओ परिग्गहाओ एवं जाव सव्वाओ कोहाओ, सव्वाओ माणाओ, सव्वाओ मायाओ, सव्वाओ लोभाओ, पेज्जाओ, दोसाओ, कलहाओ, अब्भक्खाणाओ, पिसुण्ण–पर–परिवायाओ, अरति–रति–माया–मोसाओ, मिच्छादंसणसल्लाओ अप्पडिविरय जाव–जीवाए।

४. नास्तिकवादी जीवनभर प्राणातिपात और परिग्रह से निवृत्ति नहीं कर सकत.। इसी प्रकार जीवन पर्यन्त सब प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पिशुनता, परपरिवाद, अरति, रति, माया, मृषा और मिथ्यादर्शन (इन १८ पापों) से भी निवृत्ति नही कर सकता।

4. A person of wrong belief (*Nastık*) can never avoid killing and attachment to wealth throughout his life. He cannot avoid eighteen types of sins namely anger, pride, deceit, greed, delusion, attachment, hatred, quarrel, talking ill, back biting, creating enmity among others, dislike for things not to his taste, liking for things of hıs taste, deceit mixed with falsehood and wrong perception. He cannot avoid these eıghteen sins.

५. सव्वाओ कसाय–दंतकट्ठ–ण्हाण–मद्दण–विलेवण–सद्द–फरिस–रस–रूव–गंध–मल्लाऽलंकाराओ अप्पडिविरया जावजीवाए, सव्वाओ सगड–रह–जाण–जुग्गगिल्लिए–थिल्लिए सीया–संदमाणिया–सयणासण–जाण–वाहण–भोयण–पवित्थर–विधीतो अप्पडिविरया जावजीवाए।

५. वह नास्तिक विचार वाला सब प्रकार के कषाय (लाल) रंग के वस्त्र, दन्तधावन, स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला और अलंकारों से जीवनभर निवृत्ति नहीं कर सकता और सब प्रकार के शकट (बैलगाडी), रथ, यान, युग, गिल्ली (ऊँट की सवारी), थिल्ली (खच्चरगाडी), शिविका (पालकी) स्यन्दमानिका, शयनासन (शय्या आसन), यान (रथ), वाहन (अश्व आदि), भोजन और घर के उपकरण सम्बन्धी भोगों से भी यावज्जीवन निवृत्ति नही कर सकता। वह उन्ही मे आसक्त रहता है।

5. A person with wrong perception (or faith) cannot discard durıng his entire life the likıng for clothes of bright attractive colours, cleanıng of teeth, bathing, massage, application of paste on the body, attachment for senses namely of touch, hearing, taste, sight, smell, use of garlands and ornaments. He cannot avoid use of carts, vehıcles, riding on camel-cart, mule driven cart, palanquın, charıot, bed, transport, horse rıde, and household comforts relating to food and other accessories in the house. He always remains deeply attached to them.

६. असमिक्खियकारी, सव्वाओ आस–हत्थि–गो–महिसाओ, गवेलय–दास–दासी–कम्मकर–पोरुस्साओ अप्प–डिविरया जावजीवाए। सव्वाओ कय–विक्कय–मासद्धमासरूपग–संववहाराओ अप्पडिविरया जावजीवाए। सव्वाओ हिरण्ण–सुवण्ण–धण–धन्न–मणि–मोत्तिय–संख–सिल–प्पवालओ अप्पडिविरया जावजीवाए। सव्वाओ आरम्भ–समारंभाओ अप्पडिविरया जावजीवाए। सव्वाओ करण–करावणाओ अप्पडिविरया जावजीवाए। सव्वाओ कुट्टण–पिट्टणाओ तज्जण–तालणाओ, वह–बंध–परिकिलेसाओ, अप्पडिविरया, जाव जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिय–कम्मा कज्जन्ति पर–पाण–परियावण–कडा कज्जंति ततो वि य अप्पडिविरया जावजीवाए।

६. यह नास्तिकवादी बिना विचारे काम करने वाला होता है। जीवनभर अश्व, हस्ति, गौ, महिष, अजा, मेष, दासी, दास, कर्मकर और पुरुष-समूह का उपयोग व उपभोग करने से निवृत्ति नही कर सकता। सब प्रकार के क्रय, विक्रय, माषार्द्ध या माषरूपक व्यापार-व्यवहार से निवृत्ति नही कर सकता। सब प्रकार के हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, मणि, मौक्तिक, शख, शिला, प्रवाल का भी त्याग नही कर सकता। सब प्रकार के कूट-तोल, कूट-माप, आरम्भ-समारम्भ, पचन-पाचन, करना-कराना, कूटना, पीटना, तर्जना, ताडना, पकडना, मारना आदि कार्यों को भी नही छोड सकता। इनके अतिरिक्त अन्य जो निन्दनीय अबोधि (मूढता) अज्ञान बढाने वाले और दूसरे जीवो के प्राणो को पीडा पहुँचाने वाले जितने भी क्रूर कर्म किये जाते हैं, उनसे भी निवृत्ति नही कर सकता।

6. A person with wrong belief acts thoughtlessly Throughout his life, he cannot discard use of house, elephant, cow, buffalo, goat, sheep, servant, maid, and use of employees and groups of attendants. He cannot refrain from trade involving purchase, sale and storage He cannot avoid possession of silver, gold, wealth, food-grains, beads, pearls, conch-shell, rocks, and coral He cannot refrain the habit of deceitful weighment or measurement, activities involving violence or leading to violence, cooking, digesting, doing, getting done, grinding, heating, threatening, catching, killing and the like Further, he cannot avoid, all such dreadful acts that are worthy of condemnation and are going to increase ignorance or wrong knowledge or cause violence to the life force of other living beings

७. से जहानामए केइ पुरिसे कलम-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-जवजवा एवमाइएहिं अयत्ते कूरे मिच्छा दंडं पउंज्जइ। एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिर-वट्टग-लापय-कपोत-कपिंजल-मिया-महिस-वराह-गाह-गोह-कुम्म-सरिसवादिएहिं अयत्ते कूरे मिच्छादण्डं पउंजइ।

७. जैसे कोई पुरुष कलम, (शाली धान), मसूर, तिल, माष (उडद), निष्फाव, कुलत्थ, आलिसिदक और ज्वार आदि धान्यो के विषय मे यतनारहित हो क्रूरतापूर्वक मिथ्यादण्ड (अनावश्यक हिंसा) करता है। इसी प्रकार कोई पुरुष विशेष तित्तिर, बटेर, लावा, कबूतर, कपिजल, मृग, महिष (भैस), वराह (शूकर), गाह, गोधा, कछुआ और सर्पादि जीवो के विषय मे निर्दय होकर क्रूरता से उनका वध-बन्धन आदि करता है।

7. Just as a person without proper care, indiscriminately engages himself in unnecessary violence to plants such as paddy, *masoor, til, maash, nishphav, kulattha, aalisindak, jvaar* (millet) and the like, similarly the person (with wrong belief) kills or keeps cruelly in tight bondage quails, partridge, *lava*, pigeon, *kapinjal*, deer, buffalo, pigs, *gaah, godha*, tortoise, snakes and the like.

८. जावि य से बाहिरिया परिसा भवति, तं जहा—दासेति वा पेसेति वा भितएति वा भाइल्लेति वा कम्मकरेति वा भोगपुरिसेति वा तेसिंपि य णं अण्णयरगंसि अहा—लहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं वत्तेति, तं जहा—

इमं दंडेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह, इमं तालेह, इमं अंदुयबंधणं करेह, इमं नियलबंधणं करेह, इमं हडिबंधणं करेह, इमं चारणबंधणं करेह, इमं नियल—जुयल—संकोडिय—मोडियं करेह, इमं हत्थ—छिन्नयं करेह, इमं पाय—छिन्नयं करेह, इमं उट्ठ—छिन्नयं करेह, इमं सीस—छिन्नयं करेह, इमं मुख—छिन्नयं करेह, इमं हिय—उप्पाडियं करेह, एवं उलंबियं करेह, इमं घासियं, इमं घोलियं, इमं सूलाकायतयं, इमं सूलाभिन्नं, इमं खारवत्तियं करेह, इमं दब्भवत्तियं करेह, इमं सीहपुच्छयं करेह, इमं वसभपुच्छयं करेह, इमं दवग्गिदड्ढयं करेह, इमं काकणी मंसखावियं करेह, इमं भत्त—पाण—विरुद्धयं करेह, जावज्जीव—बंधणं करेह, इमं अन्नतरेणं असुभकुमारेणं मारेह।

८. जो उसकी बाहर की परिषद् (परिजन) होती है, जैसे—दास, प्रेष्य (काम के लिए जिसे इधर-उधर भेजा जाता है), भृतक (वेतनभोगी), भागिक (हिस्सेदार), कर्मकर (काम करने वाला) और भोग—पुरुष (खाने—पीने वाला), उनके द्वारा कोई छोटा—सा अपराध हो जाने पर अपने आप ही उनको भारी दण्ड देता है। जैसे—

इसको दण्डित करो, इसका सिर मूँड दो। इसका तिरस्कार करो। इसको मारो। इसको बेडी (जंजीर) और सॉकल आदि से काष्ठादि पर बाँध दो। इसके अग—अग को सकुचित कर मोड डालो। इसके हाथ, पैर, नाक, ओंठ, सिर, मुख और जननेन्द्रिय का छेदन करो। इसके हृदय, नेत्र, दाँत, मुख, जिह्वा और वृषणो (अण्डकोष) को उखाड डालो। इसको वृक्ष से लटका दो, भूमि पर रगडो। इसके मलद्वार से शूली प्रवेश कर मुँह से बाहर निकाल दो। इसके शूल से टुकडे—टुकडे कर डालो या शूली पर चढा दो। इसके घावो पर नमक छिडको। इसको कैची, कुशा आदि तीक्ष्ण घास से चीर डालो। इसको सिह या बैल की पूँछ से बाँध दो। इसको दावाग्नि मे जला दो। इसके माँस के कौडी के समान छोटे-छोटे टुकडे बनाकर इसी को खिलाओ। इसका भोजन और पानी बन्द कर दो। इसको जीवनभर बन्धन (कारागार) मे रखो। इसको किसी और बुरी कुमौत से मार डालो।

8. He gives severe punishment for a minor offense to servants, messengers, daily labour, partners, employees and cooks He orders in the following manner—

Punish him Totally shave his head Condemn him Beat him. Shackle him to a wooden plank. Squeeze the parts of his body. Pierce his hands, feet, nose, lips, head, face and penis Pull out his heart, eyes, teeth, mouth, tongue and testicles. Hang him with a tree Rub him against the earth. Thrust a rod through his anus and let it out from his mouth. Cut him to pieces with a lance. Hang him on the scaffold. Sprinkle salt on his wounds. Slit him with scissors or sharp-edged grass Tie him to the tail

of a lion or a bullock. Burn him in the forest fire. Make small pieces of his flesh and force him to eat. Stop his food and drink. Put him in the prison throughout life. Kill him in suchlike dreadful manner.

९. जाविय सा अब्भिंतरिया परिसा भवति, तं जहा—मायाति वा पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा धूयाति वा सुण्हाति वा तेसिंपि य णं अण्णयरंसि अहालहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं वत्तेति, तं जहा—

सीतोदग—वियडंसि कायं बोलित्ता भवति, उसिणोदय—वियडेण कायं सिंचित्ता भवति, अगणि—वियडेण कायं सिंचित्ता भवति, अगणिकाएण कायं उड्डहित्ता भवति, जोत्तेण वा वेत्तेण वा नेत्तेण वा कसेण वा छिवाडीए वा लयाए वा पासाइं उद्दालित्ता भवति, दंडेण वा अट्ठीण वा मुट्ठीण वा लेलुएण वा कवालेण वा कायं आउट्टित्ता भवति, तहप्पगारे पुरिसजाए संवसमाणे दुम्मणा भवंति, तहप्पगारे पुरिसजाए विप्पवसमाणे सुमणा भवंति।

९. उस (नास्तिक) की जो आभ्यन्तर परिषद् (कुटुम्बीजन) होती है, जैसे—माता, पिता, भ्राता, भगिनी, पुत्री और पुत्रवधू आदि उनके किसी छोटे से अपराध पर भी स्वय भारी दण्ड देता है। जैसे—

(नास्तिक कहता है) इनको शीतल जल मे डुबा दो, इनके शरीर पर खौलते हुए गर्म जल का सिचन करो, इनको आग मे जला दो, इनके पार्श्व भागो (पसलियो) को योक्त्र (पशुओ को पीटने का चाबुक) से, बेत से, नेत्र (शस्त्र विशेष) से, चाबुक से, लघु चाबुक आदि से चमडी उधेड डालो, अथवा दण्ड से, कूर्पर (कोहिनी) से, मुष्टि से, ठीकरो से इनके शरीर पर प्रहार करो। इस प्रकार के पुरुष के समीप रहने पर लोग दु:खी होते है, किन्तु उससे दूर रहने पर प्रसन्नचित्त होते है।

9. He gives severe punishment for a very minor offense even to the members of his family and close relations namely father, mother, brother, sister, daughter, daughter-in-law etc. He orders as under—

Drown them in cold water Sprinkle boiling water on their body Burn them in the fire. Beat their sides with cane, *netra* (a special weapon), long whip, small whip and the like and pull out their skin Hit them with stick, elbow, fist and broken pots Persons living near such a person feel dejected and they feel relieved when they are away from him

१०. तहप्पगारे पुरिसजाए दंडमासी, दंडगरुए, दंडपुरेक्खडे अहिए अस्सिं लोयंसि अहिए परंसि लोयंसि। ते दुक्खेंति सोयंति एवं झूरंति तिप्पंति पिट्टेइ परितप्पन्ति। ते दुक्खण—सोयण—झूरण—तिप्पण—पिट्टण—परितप्पण—वह—बंध—परिकिलेसाओ अप्पडिविरया भवंति।

एवामेव ते इत्थि—काम—भोगेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववण्णा जाव वासाइं चउ—पंच—छ—दसमाणि वा अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं भुंजित्ता काम—भोगाइं पसेवित्ता वेरायतणाइं संचिणित्ता बहुयं पावाइं कम्माइं उसन्नं संभार—कडेण कम्मुणा से जहानामए—अय—गोले इ वा सेल—गोले इ वा उदयंसि

पक्खित्ते समाणे उदग–तलमइवत्तित्ता अहे धरणीतले पइठाणे भवति एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए वज्जबहुले धूतबहुले पंकबहुले वेरबहुले दंभ–नियडि–साइबहुले आसायणाबहुले आसायणा–घाती कालमासे कालं किच्चा धरणी–तलमइवत्तित्ता अहे नरग–धरणी–तले पइठाणे भवति।

१०. इस प्रकार का क्रूर पुरुष दूसरो को दण्ड देने के लिए सदा तत्पर रहता है, किसी को भी नही छोडता। छोटे से अपराध पर भी भारी व कठोर दण्ड देता है। हर समय दण्ड को ही आगे किये रहता है। वह इस लोक और पर–लोक मे अहित करने वाला है। वह दूसरे जीवों को दु:खित करता है, उनको शोक उत्पन्न करता है, झुराता है, रुलाता है, पीड़ा पहुँचाता है और परितापना देता है। वह पुरुष दूसरों को दु:खित करने, शोक पैदा करने, झुराने, रुलाने, पीड़ा पहुँचाने, परितापना, वध और बन्धरूप परिक्लेश पहुँचाने मे सदा संलग्न रहता है।

इस प्रकार वे नास्तिक पुरुष स्त्री–सम्बन्धी काम–भोगों के लिए मूर्च्छित, गृद्ध, अतिगृद्ध और आसक्त रहते है। यावत् चार, पाँच, छः, दस वर्ष पर्यन्त अथवा इससे कुछ कम या अधिक समय तक काम–भोगो को भोगकर और सबके साथ वैर–भाव बाँधकर अनेक पापकर्मों का उपार्जन करते हुए प्राय· भारी कर्मों को बाँधकर जैसे लोहे या पत्थर का गोला जल में डालने पर जल स्तर को पार करता हुआ नीचे धरती के तले जा बैठता है, इसी प्रकार वज्रवत् कर्मों से भारी हुआ, पूर्वजन्म के कर्मों से बँधा हुआ, बहुत सारे पापकर्मों के उदय से, अधिक वैर–भाव से, अप्रतीति की अधिकता से, पापरूपी कीचड़ मे लिप्त होने से, दम्भ, छल, आशातना (दूसरो को सताने की वृत्ति) और अपकीर्ति की अधिकता से, त्रस प्राणियों के घात से (पापोपार्जन करके) मृत्यु आने पर इस भूमि तल को अतिक्रम करके नीचे नरक तल पर जा बैठता है।

10. Such a cruel person always remains ready to punish others. He never forgives any one. He awards heavy punishment even for a minor offense He always thinks of punishing others. He does evil in this world and the next. He causes pain to other living beings, brings sorrow to them, makes them to feel morose, troubles them, and hurts them. He always engages himself in causing pain, sorrow, moroseness, trouble, hurt and bondage to others.

Thus such believers of wrong faith remain deeply and immensely attached and extremely absorbed in sexual pleasures. Leading such a mundane life for four, five, six or ten years or a little less or more period, they, after creating enmity with others and committing many types of sins, collect very bad *Karma*s, which burden their self heavily. As an iron ball or a stone ball placed in water goes down and down and ultimately settles at the bottom, similarly the said believer in wrong faith becomes heavy due to the burden of bad *Karma*s and the *karmic* matter of the earlier life-span when the *karmas* come to fruition, he finds inimical environment all around; increase in disgust towards him, being smeared

with slime of sin; his pride, deceit, instinct of troubling others and increase in his bad reputation; and his activities of killing mobile living beings All these burden him at the time of his death to push his soul downwards till it crosses the bottom of the earth and settles at the bottom of the hell.

११. ते णं नरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्प–संठाण–संठिआ, निच्चंधकार–तमसा ववगय–गह–चंद सूर–णक्खत्त–जोइस–प्पहा, मेद–वसा–मंस–रुहिर–पूय–पडल–चिक्खल–लित्ताणुलेवणतला, असुइविसा, परम–दुब्भिगंधा, काउय–अगणि–वण्णाभा, कक्खड–फासा, दुरहियासा, असुभ नरगा, असुभ नरयेसु वेयणाओ, नो चेवणं नरए नेरइया निद्दायंति वा पयलायंति वा सुतिं वा रतिं वा धितिं वा मतिं वा उवलम्भंति, ते णं तत्थ उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं चंडं दुक्खं दुग्गं तिक्खं तिव्वं दुरहियासं नरएसु नेरइया नरयवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

११. वह नरक–स्थान भीतर से गोलाकार और बाहर से चतुष्कोण है। नीचे उस्तरे के समान तीक्ष्ण धारयुक्त आकार वाले है। वहाँ सदैव तम और घोर अन्धकार ही रहता है। सूर्य, चन्द्र ग्रह और नक्षत्रो की ज्योति की प्रभा उनसे बहुत दूर रहती है। उन नरको का भूमितल मेद, वसा, माँस, रुधिर और पीव के कीचड से लिप्त रहता है। वे मल–मूत्र आदि अशुचि से लिप्त है। वहाँ उत्कट दुर्गन्ध आती है और कृष्ण अग्नि के समान सब तपते रहते है। उस भूमि का कर्कश स्पर्श सहने मे बडा दु खदायी है। नरक अशुभ है। उनकी वेदनाएँ भी अशुभ ही हैं। नरक मे नारकियो को कभी निद्रा तथा प्रचला निद्रा (गहरी नीद) नही आती, न ही उनको स्मृति, रति, धृति और मति उपलब्ध होती है। वे नारकी नरक मे अत्यन्त उग्र, विपुल (बहुत अधिक), प्रगाढ (घनीभूत), कर्कश, कटुक, चण्ड, रौद्र, दु खमय, तीक्ष्ण, तीव्र और दु:सह्य वेदना का अनुभव करते रहते है।

11. That hellish region is round from inside but rectangular from outside The bottom is like sharp-edged razor Always there is extreme darkness. The light of sun, moon, planets and constellations (*nakshatras*) is at a great distance from there The bottom of those hells remains full of flesh, blood, bone marrow, puss and mud. They are soiled with stool and urine and produce stinking smell. They are always hot like the black fire The abrasive touch of that area is very painful Hells are bad There the sufferings are also bad The hellish beings never get deep sleep or normal sleep They do not gain even memory, pleasure, patience and sensual knowledge Those hellish beings experience extremely dreadful, very deep, thick, rude, dreadful, painful, sharp, strong and unbearable pain.

१२. से जहानामए रुक्खे सिया, पव्वयग्गे जाए मूलछिन्ने अग्गे गरुए, जओ निन्नं, जओ दुग्गं, जओ विसमं, तओ पवडति, एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं,

दुक्खाओ दुक्खं, दाहिणगामि नेरइए कण्ह–पक्खिए आगमेसाणं दुल्लभ–बोहिए यावि भवति। से तं अकिरियावाई यावि भवइ।

१२. जिस प्रकार पर्वत की चोटी पर उत्पन्न हुआ वृक्ष जड से काटे जाने पर अग्र भाग के भारी होने से जहाँ निम्न, विषम और दुर्गम स्थान होता है वही गिरता है, ठीक इसी प्रकार नास्तिक पुरुष भी गर्भ से गर्भ, मृत्यु से मृत्यु, जन्म से जन्म और दुःख से दुःख मे (गिरता है)। वह दक्षिण दिशागामी नारकी (घोर कष्टमय), कृष्ण–पाक्षिक (अर्धपुद्गल परावर्त तक ससार मे भटकने वाला) और आगामी काल में दुर्लभ–बोधि होता है। यही अक्रियावाद का फल है।

12. Just as a tree grown on the top of a mountain, after having been cut from the root, falls in the lower, non-smooth, inaccessible area because it is heavy at the top, similarly a person of wrong faith goes from one birth to another, from one death to another, and from one trouble to another That hellish being is destined to be born in the southern region of extreme trouble He is destined to wander and face birth, and death for extremely long period (*ardha-pudgal paravart kaal*) He is destined not to gain right spiritual knowledge easily This is the result of his being *Akriyavadi*—one with wrong belief.

क्रियावाद का फल **FRUITS OF KRIYAVAD**

१३. [प्र.] से किं तं किरियावाई यावि भवति ?

[उ.] तं जहा–आहियावाई, आहियपन्ने, आहियदिट्ठी, सम्मावाई, नियावाई, संति परलोगवादी, अत्थि इहलोगे, अत्थि परलोगे, अत्थि माया, अत्थि पिया, अत्थि अरिहंता, अत्थि चक्कवट्टी, अत्थि बलदेवा, अत्थि वासुदेवा, अत्थि सुक्कड–दुक्कडाणं कम्माणं फल–वित्ति–विसेसे, सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति, दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला भवंति, सफले कल्लाण–पावए, पच्चायंति जीवा, अत्थि नेरइया, जाव अत्थि देवा, अत्थि सिद्धी, से एवं वादी, एवं पन्ने, एवं दिट्ठी–छंद–राग–मति–निविट्ठे आवि भवति। से भवइ महिच्छे, जाव उत्तरगामिए नेरइए, सुक्कपक्खिए, आगमेस्साणं सुलभबोहिए यावि भवइ। से तं किरियावादी।

१३. [प्र.] क्रियावादी कौन है ?

[उ.] जो आस्तिकवादी है। जिसकी प्रज्ञा और दृष्टि आस्तिक है, सम्यग्वादी है, मोक्षवादी है और परलोकवादी है तथा जो यह मानता है कि यह लोक है, परलोक है, माता है, पिता है, अर्हन्त है, चक्रवर्ती है, बलदेव है, वासुदेव है, सुकृत और दुष्कृत कर्मों का फल मिलता है, शुभ कर्मों के शुभ फल होते है, अशुभ कर्मों के अशुभ फल होते है, जीव अपने पाप और पुण्य कर्मों के साथ ही परलोक मे उत्पन्न होते है, यावत् नैरयिक जीव है, देव है, मोक्ष है, उसको क्रियावादी कहते है। वह उक्त सब बातो का समर्थन करता है। इस प्रकार उसकी प्रज्ञा (सम्यक्) होती है, इस प्रकार उसकी दृष्टि सम्यक् है।

प्रशस्त धर्म–राग मे उसकी बुद्धि सलग्न होती है। वह उच्च इच्छाओ वाला होता है। वह (किसी दुष्कर्म के फलस्वरूप यदि नरक मे जाता है तो) उत्तरगामी (अल्पवेदना वाला) नैरयिक होता है। उसको शुक्लपाक्षिक (शीघ्र मोक्षगामी) कहते है और आगामीकाल मे वह सुलभबोधि हो जाता है। इसी को क्रियावादी कहते है।

13. [Q.] Who is Kriyavadi ?

[Ans.] A Kriyavadi has following qualities He believes in existence of soul His knowledge and perception is based on existence of soul He has right faith He believes in liberation of soul from *karmas*. He believes in next life He believes in existence of the present world, the next world, the mother, the father, the *Tirthankar*, the *Chakravarti*, *Baladeva* and *Vaasudeva*. He believes that good and bad *karmas* produce results accordingly, that meritorious *karmas* produce good result and demeritorius *karmas* produce bad result and that the living beings take re-birth with their respective accumulated *karmas* He believes in the existence of hellish beings, celestial beings, and the state of liberation Further a *kriyavadi* affirms all the above mentioned statements His knowledge is right and his perception is also correct His intellect is engaged in attachment for noble spirituality He has desires of a high order If due to any bad *karma*, he takes birth in the hell, he is born there as a hellish being who has to suffer comparatively less pain He is called *shukla-pakshik* (one who is going to attain liberation soon) He is destined to gain right spiritual knowledge with comparative ease in near future. Such a person is known as *kriyavadi*

विवेचन : श्रावक एव साधु के आचार का आधार सम्यग्दर्शन है। इसलिए सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाने से पूर्व मिथ्यादर्शन का स्वरूप यहाँ बताया है। अर्थात् जो धर्म, पुण्य–पाप, परलोक आदि मे श्रद्धा–विश्वास नही रखता, वह धर्म की सम्यक् आराधना भी नही कर सकता। अत पहले मिथ्यादर्शन का स्वरूप बताने के पश्चात् फिर प्रथम **'दर्शन प्रतिमा'** का स्वरूप बताया है।

उक्त पाठ आचार्य श्री आत्माराम जी म द्वारा सम्पादित प्रति मे है, किन्तु आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित प्रति मे इसे अधिक व प्रक्षिप्त पाठ मानकर मूल के साथ नही देकर पृथक् दिया है। कुछ आगमज्ञ बहुश्रुतो का मत है कि अक्रियावाद का यह वर्णन सूत्रकृताग, श्रु २, अ २ से उद्धृत है। छेदसूत्रो का यह विषय नही है। हमने आचार्य श्री आत्माराम जी म द्वारा सम्पादित पाठ ही यहाँ उद्धृत किया है।

Elaboration—The basis of the conduct of a householder and of a monk is right perception (faith) Therefore in order to clarify the nature of right faith, nature of wrong faith has been explained here In other words, on who does not have a faith in spirituality, meritorious and demeritorious *karmas* and the next world, cannot properly follow

Dharma in the right manner Therefore after stating the nature of wrong faith, the nature of first *Darshan Pratima* has been discussed.

The above version is in the book edited by Acharya Atmaram ji. But in the book published by Agam Prakashan Samiti, Beawar it has been excluded from the original text considering it to be interpolated and additional reading and has been mentioned separately. Many scholars of Agams are of the view that this interpretation of Akriyavad has been taken from second chapter and second part of *Sutra Kritanga* It is not a subject within the scope of a *Chhed Sutra* We have considered here only the version adopted by Acharya Atmaram ji.

(१) दर्शन–प्रतिमा DARSHAN PRATIMA

१४. तत्थ खलु इमा पढमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति। तस्स णं बहूइं सीलवय–गुणवय–वेरमण– पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं नो सम्मं पट्ठविय–पुव्वाइं भवंति। एवं दंसण–पढमा उवासगपडिमा॥१॥

१४. प्रथम दर्शन–प्रतिमा मे सर्वधर्म विषयक (जीवाजीवादि का सम्यक् बोध) रुचि होती है। किन्तु उसके बहुत से शीलव्रत गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासव्रत, सम्यक्तया ग्रहण किये हुए नही होते। इस प्रकार उपासक की पहली दर्शन–प्रतिमा होती है।

14. In the first level, *Darshan Pratima*, there is keen desire for all aspects of spirituality (to know nature of all the essentials such as *jiva*, *ajiva* and others) But it is not necessary for him to adopt vows relating conduct and supplementary vows including restraints and *paushadhopavas* in prescribed manner. This is the first stage of restraints (*Upasak Pratima*) of a householder.

(२) व्रत–प्रतिमा VRAT PRATIMA

१५. अहावरा दोच्चा उवासगपडिमा, सव्व धम्मरुई यावि भवति।

तस्स णं बहूइं सीलवय–गुणवय–वेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइ भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं नो सम्मं अणुपालित्ता भवति। दोच्चा उवासगपडिमा॥२॥

१५. द्वितीय उपासक–प्रतिना मे सब प्रकार के धर्म की रुचि (सम्यक् तत्त्व दृष्टि) होती है।

इसमे बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास धारण किये जाते है। किन्तु सामायिकव्रत और देशावकाशिकव्रत की सम्यक्तया अनुपालना नही होती। यह द्वितीय उपासक–प्रतिमा है।

15. In the second level, *Vrat-Pratima* of a householder, there is keen interest in all aspects of spirituality

At this stage, many vows, supplementary vows including restraints and *paushadhopavas* (partial ascetic vow and fasting) are observed. But *Samayik Vrat* (vow of meditating for 48 minutes at fixed hours) and *Deshavakashik* vow (vow of limitations) are not observed in properly prescribed manner This is second *Upasak Pratima.*

विवेचन . इस प्रतिमा मे आत्मा यद्यपि श्रावक के बारह व्रतो की सम्यक्तया आराधना के योग्य बन जाता है तब भी सामायिक और देशावकाशिक व्रतो की शरीर द्वारा यथाकाल सम्यग् अनुपालना नही कर सकता। इस प्रतिमा के लिए दो मास का समय अर्थात् एक मास पहली प्रतिमा का और एक मास इस प्रतिमा का निर्धारित किया गया है।

Elaboration—At this stage (*Pratima*) although the self is capable of properly observing twelve vows of the householder, yet he cannot physically undertake the vow relating to *Samayik* and the vow of limitations (*Deshavakashik* vow) in the prescribed manner The total period of two months has been earmarked for this stage—one month for the first stage and one month for this stage

(३) सामायिक–प्रतिमा SAMAYIK PRATIMA

१६. अहावरा तच्चा उवासगपडिमा। सव्वधम्मरुई यावि भवति।

तस्स णं बहूइं सीलवय–गुणवय–वेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं चउदसि–अट्ठति–उदिट्ठ–पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहोववासं नो सम्मं अणुपालित्ता भवति। तच्चा उवासगपडिमा।

१६. तीसरी उपासक–प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमा वाले को सर्वधर्म विषयक रुचि होती है। उसके द्वारा बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासव्रत धारण किये जाते है। वह सामायिक और देशावकाशिक व्रतो की आराधना उचित रीति से करता है। किन्तु चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी आदि पर्व दिनो मे पौषधोपवासव्रत की सम्यक् अनुपालना नही कर सकता। यह तीसरी उपासक–प्रतिमा है।

16. Third stage (*Pratima*) of spiritual restraints of a householder practitioner is like this A person undergoing this stage has keen interest in all aspects of spirituality He accepts many vows, supplementary vows, restraints and *paushadhopavas* He conducts the practice of the vow of *samayik* and that of limitations (*Deshavakashik*) according to prescribed code But he cannot strictly confirm to the restraint of observing *paushadhopavas* on every fourteenth, eighth and fifteenth day of the fortnight and other important days of auspicious celebrations. This is the third level for a householder (*Upasak Pratima*)

(४) पौषध–प्रतिमा PAUSHADH PRATIMA

१७. अहावरा चउत्थी उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

तस्स णं बहूइं सीलवय–गुणवय–वेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं सम्मं पट्ठवियाइं भवंति। से णं सामाइयं देसावगासियं सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं चउद्दसि–अट्ठमि–उदिट्ठ–पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं एगराइयं उवासगपडिमं नो सम्मं अणुपालित्ता भवति। चउत्थी उवासगपडिमा।

१७. चौथी उपासक–प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमा वाले को सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासव्रतो की सम्यक्तया आराधना करता है। वह सामायिक और देशावकाशिकव्रतो की आराधना उचित रीति से करता है, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी आदि पर्व दिनो मे प्रतिपूर्ण पौषधव्रत का पूर्णतया अनुपालन करता है। किन्तु 'एक रात्रि की' उपासक–प्रतिमा का सम्यक् आराधन नही करता। यही चतुर्थी उपासक–प्रतिमा है।

17. The fourth stage (*Pratima*) of a householder devotee is now being discussed Such a person has deep interest in the spiritual from all angles

He practices vows of the householder devotee including the supplementary vows, the restraints and *paushadhopavas* properly He immaculately observes *paushadhopavas* on fourteenth, eighth and fifteenth days of each and every fortnight strictly according to the code But he does not observe meticulously the higher stage of awakening and meditation throughout one night This is the fourth practice (*Upasak Pratima*)

विवेचन : इस प्रतिमा वाला पहली, दूसरी और तीसरी प्रतिमाओ के सब नियमो का विधिपूर्वक पालन करता है। वह पर्व दिनो मे प्रतिपूर्ण पौषधव्रत भी करने लग जाता है। किन्तु वह उपासक की एक रात्रि की कायोत्सर्ग अवस्था मे ध्यान करने की प्रतिज्ञा को सम्यक्तया पालन नही कर सकता है।

पौषध का अर्थ–जिसके करने से धर्म की पुष्टि और कुशल अनुष्ठान की वृद्धि होती है वह पौषध कहलाता है। उसके चार भेद है - (१) **आहार–पौषध**–एक देश (अश) या सब आहार का परित्याग करना, (२) **शरीर–पौषध**–एक देश या सारे शरीर के सस्कार का परित्याग करना, (३) **ब्रह्मचर्य–पौषध**–एक देश या सब प्रकार के अब्रह्मचर्य का परित्याग करना, और (४) **व्यापार–पौषध**–एक देश या सारे व्यापार का परित्याग करना।

यह चौथी प्रतिमा पूर्वोक्त गुणो से युक्त और पूर्वोक्त प्रतिमाओ के समय सहित चार मास की होती है।

Elaboration—The practitioner of this *pratima* follows the first, second and third *pratima* strictly according to the prescribed procedure. He observes vows of *paushadhopavas* properly on prescribed days. However he is unable to observe the vow of meditation in the state of *kayotsarg* (absolute dissociation from the body) for one whole night

Meaning of *Paushadh*—the spiritual practice, which makes foundation of *Dharma* strong and helps in developing expertise in proper observation, is called *Paushadh*. It is of four types—(1) ***Aahar-paushadh***—To avoid food of one specific type or of all types (2) ***Sharira-paushadh***—To avoid decorating one part of the body or the entire body (3) ***Brahmacharya-paushadh***—To avoid sex, limiting it (to one's own wife) or to avoid sex in all forms completely (4) **Vyapar-*paushadh***—To avoid one type of trade or trade in all its forms.

This fourth *pratima* with above mentioned qualities and restrictions is of four months.

(५) कायोत्सर्ग–प्रतिमा KAYOTSARG PRATIMA

१८. अहावरा पंचमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

तस्स णं बहुइं सीलवय–गुणवय–वेरमण सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं सामाइयं। से णं एगराइयं उवासगपडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, बंभयारी, रत्ति–परिमाणकडे–से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे, जहन्नेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेण पंच मासं विहरइ। पंचमा उवासगपडिमा।

१८. पाँचवी उपासक–प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमा वाले की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

उसके शीलादि व्रत ग्रहण किये हुए होते है। वह सामायिक और देशावकाशिकव्रत की भलीभाँति आराधना करता है। वह चतुर्दशी आदि पर्व दिनो में पौषधव्रत का अनुष्ठान करता है। वह एक रात्रि की उपासक प्रतिमा का भी अच्छी तरह पालन करता है। वह–(१) स्नान नही करता, (२) रात्रि–भोजन को त्याग देता है, (३) धोती की लाँग खुली रखता है, (४) दिन मे तथा पर्व तिथियों मे ब्रह्मचर्य का पालन करता है, और (५) रात्रि मे मैथुन क्रिया का परिमाण (मर्यादा) करता है। इस प्रकार वह कम से कम एक दिन, दो दिन या तीन दिन से लेकर अधिक से अधिक पॉच मास तक इसका पालन करता है। यही पॉचवी उपासक–प्रतिमा है।

18. The fifth stage of householder devotee is as mentioned hereafter. He has keen interest in all aspects of spiritually

He has undertaken all the minor vows (the vows of the householder). He properly observes the supplementary vows of *Samayik* and *Deshavakashik* restraint He observes *paushadhopavas* on fourteenth day and the like every fortnight as prescribed in scriptures. He also meticulously follows the stage of meditating throughout for one night—(1) He does not take bath (2) He does not take meals at night (3) He keeps one end of his *dhoti* (a long piece of cloth worn on the lower body) loose (4) He observes restriction relating to complete *Brahmacharya* during the daytime and all the days of auspicious festivals. (5) He

observes limitation regarding sex during night This way he observes this stage of spiritual discipline for one, two or three days up to a maximum period of five months This is the fifth *Upasak Pratima*

विवेचन : इस प्रतिमा में जघन्य एक, दो या तीन दिन कहने का अभिप्राय यह है कि-यदि कोई व्यक्ति पाँचवीं प्रतिमा को ग्रहण कर एक, दो, तीन या दस दिन अर्थात् पाँच मास से पहले अपनी आयुष्य समाप्त कर दे या दीक्षित हो जाये तो उसके लिए इसकी अवधि उतने ही दिनो की होगी। किन्तु जो जीवित है और दीक्षित नही हुए उनके लिए इसकी (पाँचवी प्रतिमा की) अवधि पाँच मास की प्रतिपादन की गई है। पहली प्रतिमाओ का समय भी इसके अन्तर्गत है।

Elaboration—The interpretation of one, two or three days in this stage (*Pratima*) is that the maximum duration of this stage for a person who dies during this period or adopts *monk-hood*, shall be accordingly for one, two, three days or up to 5 months But for one who remains alive or who does not adopt *monk-hood*, the maximum duration of this stage is five months The period of earlier four stage also follows the same rule

(६) ब्रह्मचर्य-प्रतिमा BRAHMCHARYA PRATIMA

१९. अहावरा छट्ठा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव से णं एगराइयं काउस्सग्गपडिमं सम्मं अणुपालित्ता भवति। से णं असिणाणए, वियडभोई, मउलिकडे, दिया वा राओ वा बंभयारी, सचित्ताहारे से अपरिण्णाए भवइ। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं, दुयाहं, तियाहं वा जाव उक्कोसेण छमासे विहरेज्जा। छट्ठी उवासगपडिमा।

१९. छठी उपासक-प्रतिमा इस प्रकार है। जो छठी प्रतिमा ग्रहण करता है उसकी सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

(१) वह एक रात्रि की कायोत्सर्ग-प्रतिमा का सम्यक् रीति से पालन करता है। (२) वह स्नान नही करता, (३) रात्रि मे भोजन नही करता, (४) धोती की लाँग नही बाँधता, (५) दिन मे, और (६) रात्रि मे ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है, किन्तु वह सचित्त आहार का परित्याग नही करता। वह औषधि आदि के निमित्त सचित्त आहार का सेवन कर सकता है। इस प्रकार वह कम से कम एक दिन, दो दिन, तीन दिन और अधिक से अधिक छ मास तक विचरता है। यही छठी उपासक-प्रतिमा है।

19. The sixth stage (*Pratima*) is as mentioned hereafter One who practices it has keen interest in all aspects of spirituality (*Dharma*)

(1) He practices properly the stage of *Kayotsarg* (meditation) for the entire night once (2) He does not take bath, (3) He does not take meals at night, (4) He does not tie the end of his *dhoti*, (5) He strictly observes code of celibacy during the day, (6) and during the night But he does not undertake the restraint of not taking raw substance, containing life He can take such substances as medicine He observes such stage of

restraint for one, two, three day and so on up to a maximum period of six months This is the sixth *Upasak Pratima*

(७) सचित्तत्याग–प्रतिमा RESTRICTION OF DISCARDING SACHHITT THINGS (ANIMATE, VEGETABLE AND WATER)

२०. अहावरा सत्तमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव राओवरायं वा बंभयारी सचित्ताहारे से परिण्णाए भवति। आरंभे से अपरिण्णाए भवति। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं दुयाहं तियाहं वा जाव उक्कोसेणं सत्त मासे विहरेज्जा। से तं सत्तमा उवासगपडिमा।

२०. सातवी उपासक–प्रतिमा इस प्रकार है। उसको सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह दिन और रात सदैव ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करता है। वह सचित्त आहार (जल) का परित्याग कर देता है, परन्तु आरम्भ–(कृषि एव व्यापार आदि) का सर्वथा–(अनुमति देने रूप त्याग) नही कर सकता। वह कम से कम एक, दो या तीन और यावत् अधिक से अधिक सात महीने तक इसका पालन करता है। यही सातवी उपासक–प्रतिमा है।

20. The seventh stage of spiritual discipline of a householder is as mentioned hereafter He has keen interest in all matters relating to spirituality (*Dharma*)

He observes complete celibacy during the day and during the night He observes restriction of not taking *sachitta* (life bearing) food and *sachitta* water But he does not observe the restraint relating to *aarambh* (trades like agriculture wherein violence to living beings is involved) completely as he can give consent for such activities He practices this stage of discipline for one, two, three days or at the most for seven months This is the seventh *Upasak Pratima*

(८) आरम्भपरित्याग–प्रतिमा ARAMBH PARIITYAG PRATIMA

२१. अहावरा अट्ठमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव राओवरायं बंभयारी। सचित्ताहारे से परिण्णाए भवति। आरंभे से परिण्णाए भवति। पेसारंभे अपरिण्णाए भवति। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जाव जहन्नेणं एगाहं दुयाहं तियाहं वा जाव उक्कोसेणं अट्ठमासे विहरेज्जा। से तं अट्ठमा उवासगपडिमा।

२१. आठवी उपासक–प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमाधारी की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह रात्रि और दिवस मे ब्रह्मचर्यव्रत का पूर्ण पालन करता है, सचित्त आहार (जल) और स्वयं आरम्भ करने का परित्याग कर देता है। किन्तु (आजीविका निमित्त) वह दूसरो से आरम्भ कराने का परित्याग नही करता। इस प्रकार रहता हुआ वह कम से कम एक, दो या तीन दिन और अधिक से अधिक आठ मास तक पालन करता है। यही आठवी उपासक–प्रतिमा है।

21. Eighth stage (*Pratima*) of a householder devotee (*Upasak*) is mentioned hereafter. Such a person has keen interest in all aspects of spirituality.

He observes celibacy during the day as well as the night. He practices restraint of *aarambh* (cooking and other worldly activity) himself but he does not prohibit others to indulge in *aarambh* (for subsistence). He observes this practice for one, two, three days or at the most the eighth months. This is the eighth *Upasak Pratima*.

(९) प्रेष्यत्याग-प्रतिमा PRESHYA TYAG PRATIMA (NOT TO GET ANY VIOLENCE DONE)

२२. अहावरा नवमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव राओवरायं बंभयारी। सचित्ताहारे से परिण्णाए भवति। आरंभे से परिण्णाए भवति। पेसारंभे से परिण्णाए भवति। उद्दिट्ठभत्ते से अपरिण्णाए भवति। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं नव मासे विहरेज्जा। से तं नवमा उवासगपडिमा।

२२. नौवी उपासक-प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमाधारी की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह रात्रि और दिन मे ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करता है। वह सचित्त आहार और स्वय आरम्भ करने और कराने का परित्याग कर देता है, (अनुमति का आगार है) किन्तु उद्दिष्टभक्त (अपने निमित्त बने हुए भोजन) का परित्याग नही करता। इस प्रकार वह कम से कम एक, दो या तीन दिन और उत्कर्ष से नौ मास पर्यन्त इस प्रतिमा की आराधना करता है। यही नौवी उपासक-प्रतिमा है।

22. Ninth stage (*Pratima*) of a householder devotee (*Upasak*) is mentioned hereafter Such a person has keen interest in all aspects of spirituality

He completely observes celibacy throughout day and also the night He neither prepares any *sachitta* food nor gets it prepared (He however can consent such worldly activity of others) But he has not taken the restraint of refusing food that has been specifically prepared for him He practices this stage (*Pratima*) of restraint for one, two, three days or at the most for nine months This is ninth *Upasak Pratima*

(१०) उद्दिष्टभक्तत्याग-प्रतिमा REJECTING FOOD SPECIALLY PREPARED FOR HIM (UDDISHT BHAKT TYAG PRATIMA)

२३. अहावरा दसमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव उद्दिट्ठभत्ते से परिण्णाए भवति। से णं खुरमुंडए वा सिहाधारए वा। तस्स णं आभट्ठस्स समाभट्ठस्स वा कप्पंति दुवे भासाओ भासित्तए, जहा जाणं वा जाणं, अजाणं वा णो जाणं। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं दस मासे विहरेज्जा। से तं दसमा उवासगपडिमा।

२३. दसवी उपासक-प्रतिमा इस प्रकार है। इस प्रतिमा धारण करने वाले की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह पूर्वोक्त सब गुणो से युक्त होता है। वह उद्दिष्ट भक्त का भी परित्याग कर देता है। वह सिर के बालों का क्षुर (उस्तरे) से मुण्डन करता है किन्तु शिखा (चोटी-गृहस्थ का चिन्ह होने से) अवश्य धारण करता है। जब उसको कोई एक या बार-बार बुलाता है तो वह दो ही उत्तर दे सकता है-जानने पर "मै अमुक विषय जानता हूँ" और न जानने पर "मै इसको नही जानता।" इस प्रकार से विचरता हुआ जघन्य से एक दिन, दो दिन या तीन तीन यावत् दस मास पर्यन्त पालन करता है। यही दसवीं उपासक-प्रतिमा है।

23. The tenth stage (*Pratima*) of restraints of a householder devotee is mentioned in this manner. He has keen interest in all matters relating to spirituality

He has all the restraints mentioned earlier. He rejects even that food, which has been specifically prepared for him. He gets his head cleanly shaven with a razor except a small bench of the hair at the centre (as a symbol of householder). When any one asks him once or repeatedly, he simply replies, if he has knowledge about the matter, that he knows it If he does not have knowledge about it he says that he does not know it Thus passing his life span, he observes this practice for one, two, three days or at the most for ten months This is the tenth *Upasak Pratima*

(११) *श्रमणभूत-प्रतिमा* SHRAMANBHOOT PRATIMA

२४. अहावरा एकादसमा उवासगपडिमा। सव्व धम्मरुई यावि भवति।

जाव उद्दिट्ठभत्ते से परिण्णाए से णं खुरमुंडए वा लुंच सिरए वा, गहियायारभंडगनेवत्थे। जारिसे समणाणं निग्गंथाणं धम्मे पण्णत्ते, तं जहा-सम्मं काएणं फासेमाणे, पालेमाणे पुरओ जुगमायाए पेहमाणे, दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पाए रीएज्जा, साहट्टु पाए रीएज्जा, तिरिच्छं वा पायं कट्टु रीएज्जा, सति परक्कमेज्जा, संजयामेव परिक्कमेज्जा, नो उज्जुयं गच्छेज्जा। केवलं से नायए पेज्जबंधणे अवोच्छिन्ने भवति। एवं से कप्पति नायविधिं वइत्तए।

२४. ग्यारहवी उपासक-प्रतिमा इस प्रकार है। ग्यारहवी प्रतिमायुक्त उपासक की सर्वधर्म विषयक रुचि होती है।

वह उद्दिष्टभक्त का परित्याग कर देता है, (सामर्थ्य न हो तो) सिर के बाल क्षुर से मुँडवा देता है अथवा केशो का लुचन करता है। वह साधु का आचार और भण्डोपकरण ग्रहण कर साधु के वेष में श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए प्रतिपादित धर्म को सम्यक्तया काय से स्पर्श करता हुआ और उसका पालन करता हुआ यतनाशील होता है। मार्ग चलते हुए आगे त्रस प्राणियो को देखकर वह उनकी रक्षा के लिए

अपने पैर ऊपर उठा लेता है। पैरो को सकुचित कर चलता है अथवा तिरछा पैर रखकर चलता है। गमन मार्ग में यतनापूर्वक चलता है, किन्तु बिना देखे सीधा नही चलता। केवल ज्ञातिवर्ग के साथ उसके प्रेम–बन्धन का सूत्र टूटा नही होता, अत वह ज्ञाति के लोगो मे भिक्षावृत्ति के लिए जाता है।

24. This is eleventh stage (*Pratima*) of restraints of a spiritual householder devotee. He has keen interest in all matters concerning *Dharma*

He rejects food specifically prepared for him. He plucks all the hair of his head. If he does not have capability to that extent, he gets his head shaved with a razor. He adopts the dress and pots prescribed for a monk and properly follows that conduct cautiously In case he finds any module living being on his way, he keeps his feet away from it, or joins his feet or changes the direction in order to protect that living being He walks with utmost care and does not walk straight without seeing the path ahead properly. He still has his slight attachment with his relatives So he goes to his relatives for collecting alms

भिक्षा ग्रहण की विधि METHOD OF COLLECTING ALMS (BHIKSHA)

२५. तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे, कप्पति से चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए, नो से कप्पति भिलिंगसूवे पडिग्गाहित्तए। तत्थ णं से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे कप्पति से भिलिंगसूवे पडिग्गाहित्तए, नो कप्पति चाउलोदणे पडिग्गाहित्तए। तत्थ णं से पुव्वागमणेणं दोवि पुव्वाउत्ताइं कप्पंति दोवि पडिग्गाहित्तए। तत्थ णं से पच्छागमणेणं दोवि पच्छाउत्ताइं णो से कप्पति दोवि पडिग्गाहित्तए। जे तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पति पडिग्गाहित्तए। जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते से णो कप्पति पडिग्गाहित्तए।

तस्स णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स कप्पति एवं वदित्तए "समणोवासगस्स पडिमापडिवन्नस्स भिक्खं दलयह।" तं चेव एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे णं केइ पासित्ता वदिज्जा "केइ आउसो तुमं वत्तव्वं सिया ?" "समणोवासए पडिमा–पडिवण्णए अहमंसीति" वत्तव्वं सिया।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे जहन्नेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा उक्कोसेणं एक्कारस मासे विहरेज्जा। एकादसमा उवासगपडिमा।

एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ।

–त्ति बेमि।

॥ छट्ठा दसा समत्ता ॥

२५. उपासक गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाने पर यदि उसके वहाँ जाने से पहले घर मे चावल पके हो और दाल न पकी हो तो उसको चावल ले लेने चाहिए, दाल नही। यदि उसके जाने से पहले

दाल तैयार हो और चावल उसके पहुँचने के बाद बने तो उसको दाल ले लेनी चाहिए, चावल नही। यदि दोनो वस्तुएँ उसके जाने से पहले ही बनी हुई हो तो दोनो को ग्रहण कर सकता है। यदि दोनो पीछे बनें तो दोनो मे से किसी को भी नही ले सकता। जो वस्तु उसके जाने से पहले की बनी हुई हो उसको वह ग्रहण कर सकता है। जो उसके जाने के पीछे बने उसको नही ले सकता।

उस उपासक को गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट होने पर इस प्रकार बोलना योग्य है–'प्रतिमा–प्रतिपन्न श्रमणोपासक को भिक्षा दो''। इस प्रकार की चर्या से विचरते हुए उसको यदि कोई पूछे-''हे आयुष्मन् ! तुम कौन हो ?'' तब उसको कहना चाहिए–''मै प्रतिमाधारी श्रमणोपासक हूँ। यही मेरा स्वरूप है।''

इस प्रकार से रहता हुआ वह जघन्य से एक, दो या तीन दिन और उत्कृष्ट एकादश मास पर्यन्त इस प्रतिमा का पालन करता है। यही श्रमणोपासक की ग्यारहवी प्रतिमा है। स्थविर भगवन्तो ने यही ग्यारह उपासाक–प्रतिमाएँ प्रतिपादन की हैं।

इस प्रकार मै कहता हूँ।

25. If rice is ready but the pulse is not ready when a householder devotee goes to a house for collecting alms, he should take only the cooked rice and not the (uncooked or partially cooked) pulses If pulses are already cooked but rice gets cooked only after his arrival, he should accept only the pulses If both the things were already cooked when he arrived, he can accept both If both of them were properly cooked only after his arrival for collecting alms, he cannot accept any one of them A thing that was cooked before his arrival can be accepted him but a thing that was prepared after his arrival cannot be accepted by him

After entering the house, he should says, "Give alms to the *Shramanopasak* who is observing *Pratima* " In case, during this practice of restraint, some one asks him, 'O the blessed! Who are you?' He should reply, "I am a *Shramanopasak* practicing *pratima* This is my only introduction "

Thus passing his life-span, he follows this stage of spiritual restraints (*Pratima*) for one, two, three days or at the most for eleven months This is the eleventh *Upasak Pratima Sthavirs* have mentioned these eleven stages (*Pratima*)

So I say

श्रावक प्रतिमा · संक्षिप्त विवेचन

सामान्य रूप से कोई भी सम्यग्दृष्टि आत्मा व्रत धारण करने पर व्रतधारी श्रावक कहा जाता है। वह एक व्रतधारी भी हो सकता है या बारह व्रतधारी भी हो सकता है। प्रतिमाओं मे भी अनेक प्रकार के व्रत, प्रत्याख्यान ही धारण किये जाते है, किन्तु विशेषता यह है कि इसमे जो भी प्रतिज्ञा की जाती है उसमे कोई आगार नही रखा जाता है और नियत समय तक अतिचाररहित नियम का दृढता के साथ पालन किया जाता है।

जिस प्रकार भिक्षु-प्रतिमा धारण करने वाले को विशुद्ध दीर्घ सयम-पर्याय और विशिष्ट श्रुत का ज्ञान होना आवश्यक है, उसी प्रकार उपासक-प्रतिमा धारण करने वाले को भी बारह व्रतो के पालन का अभ्यास होना और कुछ श्रुतज्ञान होना भी आवश्यक है, किन्तु पहली **'दर्शन-प्रतिमा'** मे 'सम्यक्त्व' की पृष्ठभूमि ही मुख्य है। आगे की प्रतिमाओं में क्रमश श्रावकव्रतो की आराधना का क्रम है। **'सव्व धम्मरुई'** शब्द सूचित करता है कि उसकी जीव-अजीव आदि समस्त पदार्थों के वस्तु स्वभावो मे यथार्थ रुचि-सम्यक् श्रद्धा होती है। वह वस्तु स्वभाव का सम्यक् ज्ञाता और सम्यक् श्रद्धालु होता है।

प्रतिमा धारण करने वाले श्रावक को सासारिक जिम्मेदारियो से निवृत्त होना तो आवश्यक है ही किन्तु सातवी प्रतिमा तक गृहकार्यों का त्याग आवश्यक नही होता है, तथापि प्रतिमा के नियमो का शुद्ध पालन करना अत्यावश्यक होता है। आठवी प्रतिमा से अनेक गृहकार्यों का त्याग करते हुए ग्यारहवी प्रतिमा मे सम्पूर्ण गृहकार्यों का त्याग करके श्रमण के समान आचार का पालन किया जाता है।

ग्यारह प्रतिमाओ मे से किसी भी प्रतिमा को धारण करने वाले को आगे की प्रतिमा के नियमो का पालन करना आवश्यक नही होता है, स्वेच्छा से पालन कर सकता है अर्थात् पहली प्रतिमा मे सचित्त का त्याग अथवा श्रमणभूत जीवन भी धारण कर सकता है। किन्तु आगे की प्रतिमा धारण करने वाले को उसके पूर्व की सभी प्रतिमाओ के सभी नियमो का पालन करना आवश्यक होता है अर्थात् सातवी प्रतिमा धारण करने वाले को सचित्त का त्याग करने के साथ ही सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य, पौषध, कायोत्सर्ग आदि प्रतिमाओ का भी यथार्थ रूप से पालन करना आवश्यक होता है।

(१) पहली **दर्शन-प्रतिमा** धारण करने वाला श्रावक दृढ प्रतिज्ञ सम्यक्त्वी होता है। मन, वचन, काय से वह सम्यक्त्व मे किसी प्रकार का अतिचार नही लगाता है।

(२) दूसरी **व्रत-प्रतिमा** धारण करने वाला यथेच्छ एक या अनेक छोटे या बडे कोई भी नियम प्रतिमा के रूप मे धारण करता है, जिनका उसे अतिचाररहित पालन करना आवश्यक होता है।

(३) तीसरी **सामायिक-प्रतिमाधारी** श्रावक सुबह, दोपहर, शाम को नियत समय पर सदा निरतिचार सामायिक एव देशावकाशिक (१४ नियम धारण) व्रत का आराधन करता है तथा पहली-दूसरी प्रतिमा के नियमो का भी पूर्ण पालन करता है।

(४) चौथी **पौषध-प्रतिमाधारी** श्रावक पूर्व की तीनो प्रतिमाओ के नियमो का पालन करते हुए महीने मे पर्व-तिथियो के छह प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् प्रकार से आराधन करता है। इस प्रतिमा के धारण करने से पहले श्रावक पौषधव्रत का पालन तो करता ही है किन्तु प्रतिमा के रूप मे नही।

(५) पाँचवी **कायोत्सर्ग-प्रतिमाधारी** श्रावक पहले की चारो प्रतिमाओ का सम्यक् पालन करते हुए पौषध के दिन सम्पूर्ण रात्रि या नियत समय तक कायोत्सर्ग करता है।

(६) छट्ठी **ब्रह्मचर्य-प्रतिमा** का धारक पूर्व प्रतिमाओ का पालन करता हुआ सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता है। स्नान का और रात्रि-भोजन का त्याग करता है तथा धोती की एक लाँग खुली रखता है।

(७) सातवी **सचित्तत्याग-प्रतिमा** का आराधक श्रावक पानी, नमक, फल, मेवे आदि सभी सचित्त पदार्थों के उपभोग का त्याग करता है, किन्तु उन पदार्थों को अचित्त बनाने का त्याग नही करता है।

(८) आठवी **आरम्भत्याग–प्रतिमाधारी** श्रावक स्वय आरम्भ करने का सम्पूर्ण त्याग करता है, किन्तु दूसरो को आदेश देकर सावद्य कार्य कराने का उसके त्याग नही होता है।

(९) नौवी **प्रेष्यत्याग–प्रतिमा** मे श्रावक आरम्भ करने व कराने का त्यागी होता है, किन्तु स्वत ही कोई उसके लिए आहारादि बना दे या आरम्भ कर दे तो उस पदार्थ का वह उपयोग कर सकता है।

(१०) दसवी **उद्दिष्टभक्तत्याग–प्रतिमाधारी** श्रावक दूसरे के निमित्त बने आहारादि का उपयोग कर सकता है, स्वय के निमित्त बने हुए आहारादि का उपयोग नही कर सकता है। उसका व्यावहारिक जीवन श्रमण जैसा नहीं होता है। इसलिए अलग पहचान के लिए वह शिखा (चोटी) रखता है। उसने पहले अपना धन आदि कही गुप्त रखा हो और फिर पुत्रादि परिवार जनो के पूछने पर वह इतना ही उत्तर देता है–"मै जानता हूँ" या "मै नही जानता हूँ।"

(११) ग्यारहवी **श्रमणभूत–प्रतिमाधारी** श्रावक यथाशक्य सयमी जीवन स्वीकार करता है। किन्तु यदि लोच न कर सके तो मुण्डन करवा सकता है। वह भिक्षु के समान आहार–गवेषणा के सभी नियमो का पालन करता है।

इस प्रतिमा की अवधि समाप्त होने के बाद वह प्रतिमाधारी सामान्य श्रावक जैसा जीवन बिताता है। इस कारण इस प्रतिमा के आराधनाकाल मे स्वय को भिक्षु न कहकर "मै प्रतिमाधारी श्रावक हूँ" इस प्रकार कहता है।

पारिवारिक लोगो से प्रेम सम्बन्ध का आजीवन त्याग न होने के कारण वह ज्ञात कुलो (स्व ज्ञाति–जनो) मे ही गोचरी के लिए जाता है। भिक्षा के लिए घर मे प्रवेश करने पर वह इस प्रकार कहे कि "प्रतिमाधारी श्रावक को भिक्षा दो।"

इन ग्यारह प्रतिमाओ मे से प्रारम्भ की चार प्रतिमा तक का आराधनाकाल कितना है, इस प्रकार की कालमर्यादा का कथन इस सूत्र मे नही है। पाँचवी से ग्यारहवी तक क्रमश पाँच मास से ग्यारह मास तक का काल कहा है। तदनुसार पहली से चौथी तक क्रमश एक मास से चार मास तक का काल परम्परा से माना जाता है।

ग्यारह प्रतिमाओ का कुल समय एक मास से लेकर ग्यारह मास तक का होता है। इनका योग करने पर पाँच वर्ष और छह मास होते है।

ग्यारह प्रतिमाओ की आराधना पूर्ण होने के बाद ग्यारहवी प्रतिमा जैसा आचार जीवन पर्यन्त रहना ही श्रेयस्कर है। यही दृढता एव वीरता का सूचक है। किन्तु आगम मे इस विषय का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता है।

इन प्रतिमाओ की आराधना क्रमश करना या बिना क्रम के करना, ऐसा स्पष्ट विधान भी उपलब्ध नही है। किन्तु कार्तिक सेठ के समान एक प्रतिमा को अनेक बार धारण किया जा सकता है। ऐसी धारणा प्रचलित है।

॥ षष्ठी दशा समाप्त ॥

SHRAVAK PRATIMA: BRIEF COMMENTARY

Ordinarily one who has right faith is called a *Vrat-dhari Shravak* when he accepts some vow (of the householder devotee) He may accept one vow or more or all the twelve vows In *Pratimas* (eleven stages of restraints) also many types of vows are undertaken but it is worth mention that in these self imposed restriction, there is no loophole The

restraint undertaken is strictly and carefully followed with full determination for the predetermined period.

A monk who accepts *Pratimas* of a *Bhikshu* must have long experience of faultless *monk-hood* and a good knowledge of *Agams*. Similarly a devotee householder who accepts *Upasak Pratima* must have fair practice of twelve vows of the householder and some knowledge of scriptures. The primary, however, in the first stage, *Darshan Pratima,* is acceptance of right faith (or night perception). In the later stages (*Pratimas*), there is emphasis on practice of vows of *Shravak* systematically The word **'Savva dhammaruyi'** indicates that he has keen interest or right belief in the true nature of all essentials including *Jiva* (living beings) and *Ajiva* (non-living). He has right knowledge and right faith in the nature of substance.

It is necessary for a householder devotee who is practicing *Pratimas* that he is free from worldly responsibilities but up to seventh *Pratima* it is not essential for him to refrain from ordinary activities of the house Still it is very important that he should sincerely and properly follow all the essentials of the *Pratima* concerned. From eighth stage (*Pratima*) he starts refraining selectively from devotee activities and in eleventh stage, he completely discards all the worldly activities and follows the conduct similar to that of a monk

For a person who adopts any *pratima* out of the enumerated eleven *pratimas*, it is not essential to follow restrictions concerning *pratimas* that follow He, however, may follow those restrictions also of he so desires In other words, in the first *pratima* he can refrain from life-bearing vegetable and life-bearing water or adopt life-style of a monk if he so desires But a person who undertakes any *pratima* other than the first must follow all the restriction relating to all the earlier *pratima* or *pratimas* For instance one who practices seventh *Pratima* must reject life-bearing vegetables and simultaneously observe complete celibacy and the conditions of *Paushadh*, *Kayotsarg* (meditation) and the like as mentioned in earlier six *pratimas*.

(1) A *shravak* who practices the first *Darshan Pratima* is a firm believer in right faith. He does not permit any fault mentally, verbally or physically in his right faith.

(2) The practitioner of the second *pratima* adopts one or many minor or major rules as *pratima* according to his capability and it is essential for him to practice them faultlessly.

(3) The follower of the third *Samayik Pratima* practices *Samayik* and in the morning, at noon and in the evening at fixed time and does not permit even partial transgression He also observes *Deshavakashik Vrat* (14 rules)

(4) The practitioner at the fourth stage (*Pratima*) follows the principles laid down for earlier three stages and practices *Paushadh* (partial ascetic vow) properly on all the six prescribe days in the month Before practicing this *Pratima*, a *shravak* practices *Paushadh* but not as *Pratima*

(5) A *shravak* who has undertaken the fifth *pratima* follows meticulously all the earlier four *pratimas* and on the night of *Paushadh* he remains in *Kayotsarg* (meditation) throughout the night or up to a predetermined period.

(6) The practitioner of the sixth *pratima* follows the restrictions of all the earlier *pratimas* and also complete celibacy (rejection of sex) He discards taking bath as well as taking meals at night He keeps one side of his Dhoti untied

(7) The practitioner of the seventh *pratima* refrains from taking life-bearing water, salt, fruit or dry fruit but he does not avoid making those things inanimate

(8) The practitioner of the eighth *pratima* refrains from all sinful mundane activities but he does not stop ordering others to perform worldly activity

(9) The practitioner of the ninth *pratima* refrains from doing sinful worldly activities or getting them done But in case someone prepares food for him or does some sinful act for him, he can accept the food and the like

(10) The practitioner of the tenth *pratima* can accept food prepared for others but he cannot accept food that has been specifically prepared for him His normal life is not like that of a monk. Therefore he keeps hair at the middle of his head as a mark of difference In case he has concealed his valuable, when asked by members of the family he simply replies, "I know or I don't know."

(11) The practitioner of eleventh *pratima* accepts life-style of a monk to the extent he can follow But if he cannot pluck his hair, he can get his

head shaved. He follows all the principles concerning collection of alms as laid down for a monk.

After the prescribed duration of this *pratima*, the practitioner resumes life like that of a *Shravak* So during the period of observation of this *pratima*, he does not call himself a monk but says—"I am a *Shravak* who observes *Pratima*."

Since he has not discarded his attachment with the members of his family, he goes to the homes of his relations for collecting alms After entering the house he should say, "Give alms to *Pratimadhari Shravak* (a layman practicing *Pratima*) "

In the aphorisms the duration of the first four *pratimas* is not mentioned. But from fourth *pratima* up to eleventh *pratima* the period mentioned is five months up to eleven months respectively Keeping this fact a view, traditionally, the first to fourth *pratima* is believed to be for a period of one month to four months respectively

The total period of eleven *pratimas* is from one month to eleven months. The sum total of this period is 5 years and six months

It is beneficial if, after following all the eleven *pratima*, one leads a life according to eleventh *pratima*. That style indicates firmness and boldness of conduct. But in *Agams*, this topic is not clearly stated

It is also not clearly indicated whether these *pratimas* should be practiced in the respective order or according to convenience But it is believed that one *pratima* can be practiced many times as was done by Kartik Seth

● SIXTH DASHA CONCLUDED ●

सप्तमी दशा : भिक्षुप्रतिमा
SEVENTH DASHA : BHIKSHU PRATIMA

प्राक्कथन

सातवी दशा मे बारह भिक्षु प्रतिमाओ का वर्णन है। आगमो मे भिक्षु की अनेक प्रकार की प्रतिमाओ का कथन है। जैसे-समाधि प्रतिमा, उपधान प्रतिमा, एकाकी विहार प्रतिमा, यवमध्य प्रतिमा, वज्रमध्य प्रतिमा, सर्वतोभद्र प्रतिमा, सप्त पिण्डैषणा-पानैषणा प्रतिमा तथा कायोत्सर्ग प्रतिमा आदि। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपनी साधना मे धैर्य, सहिष्णुता, तितिक्षा, ध्यान आदि की अभिवृद्धि के लिए भिक्षु विभिन्न प्रकार की प्रतिज्ञाएँ एव अभिग्रह आदि के प्रयोग करता हुआ साधना को उज्ज्वल, उज्ज्वलतर, प्रखरतम बनाने मे प्रयत्नशील रहता है।

इस दशा मे वर्णित भिक्षु प्रतिमाओ का सम्बन्ध उसकी तप, तितिक्षा-सयम व ध्यान वृत्ति को अधिक से अधिक प्रखर बनाने से है। विभिन्न प्रयोगो से कर्मनिर्जरा कर आत्मा को निर्वाण प्राप्ति की ओर बढाते रहना यही इन प्रतिमाओ का लक्ष्य है।

INTRODUCTION

In the seventh *Dasha* (Chapter), twelve *Pratima* of a *Bhikshu* (monk) have been mentioned In *Agams* many types of *Pratimas* of a *Bhikshu* have been stated, for instance *Samadhi Pratima, Upadhan Pratima, Ekal Vihar Pratima, Yav Madhya Pratima, Vajra Madhya Pratima, Sarvatobhadra Pratima, Sapt Pindaishana Paanaishana Pratima, Kayotsarg Pratima* and the like It is thus evident, that a *Bhikshu* practices various types of special restraints and resolves in order to increases his courage, forbearance, patience, capability of meditation and the like and thereby tries to make his spiritual practice increasingly radiant

The *pratimas* of a *Bhikshu* mentioned in this chapter (*Dasha*) relate to sharpening his austerities, restraints and meditational instinct The goal of these *pratimas* is to enable the self to go ahead on the path of salvation by shedding accumulated *karma* through different experiments in austerities □□

१. सुयं मे आउसं, तेणं भगवया एवमक्खायं, इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खु पडिमाओ पण्णत्ताओ।

[प्र.] कयरा खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ ?

[उ.] इमाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ। तं जहा-

(१) मासिया भिक्खुपडिमा, (२) दो–मासिया भिक्खुपडिमा, (३) ति–मासिया भिक्खुपडिमा, (४) चउ–मासिया भिक्खुपडिमा, (५) पंच–मासिया भिक्खुपडिमा, (६) छ–मासिया भिक्खुपडिमा, (७) सत्त–मासिया भिक्खुपडिमा, (८) पढमा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, (९) दोच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, (१०) तच्चा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा, (११) अहोराइंदिया भिक्खुपडिमा, (१२) एगराइया भिक्खुपडिमा।

मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उववज्जंति, तं जहा–दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा, तं उप्पण्णे सम्मं सहति, खमति, तितिक्खति, अहियासेति।

१. आयुष्मन् शिष्य ! मैंने सुना है, भगवान ने ऐसा कहा है–इस जिन–शासन मे स्थविर भगवन्तो ने बारह भिक्षु–प्रतिमाओ का कथन किया है।

[प्र.] भगवन् ! स्थविर भगवन्तो ने कौन–सी बारह भिक्षुप्रतिमाएँ कही है ?

[उ.] ये (आगे कही जाने वाली) बारह भिक्षुप्रतिमाएँ स्थविर भगवन्तो ने प्रतिपादन की हैं। जैसे–

(१) मासिकी भिक्षुप्रतिमा, (२) द्विमासिकी, (३) त्रिमासिकी, (४) चातुर्मासिकी, (५) पचमासिकी, (६) षण्मासिकी, (७) सप्तमासिकी, (८) प्रथमा सप्तरात्रिदिवा, (९) द्वितीया सप्तरात्रिदिवा, (१०) तृतीया सप्तरात्रिदिवा, (११) अहोरात्रिकी, तथा (१२) एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमा।

मासिकी भिक्षु प्रतिमाधारी, गृह त्यागी, त्यक्त–शरीर (जिसने शरीर का ममत्व छोड दिया है)। साधु को यदि कोई देव–मनुष्य–तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न हो जाये तो वह उनको धैर्यपूर्वक सहन कर लेता है किसी प्रकार का दीन भाव नही दिखाता। ध्यानयोग मे निश्चल रहता है।

1. 'O the blessed !' I have heard *Bhagavan* has said so In the order of *Tirthankars* the reverend *Sthavirs* have mentioned twelve *Bhikshu-pratimas*

[Q.] Reverend Sir ! What are the twelve *Bhikshu Pratimas* ?

[Ans.] Twelve *Bhikshu Pratimas* (special codes and resolutions for an ascetic)described by revered *Sthavirs* are as under

(1) *Masiki Bhikshu Pratima*, (2) *Dvi-masiki Pratima*, (3) *Tri-masiki Pratima*, (4) *Chaturmasiki Pratima*, (5) *Panch-masiki Pratima*, (6) *Shat-masiki Pratima*, (7) *Sapt-masiki Pratima*, (8) *Prathama Sapt-ratrindiva*, (9) *Dvitya Sapt-ratrindiva*, (10) *Tritiya Sapt-ratrindiva*, (11) *Ahoratriki*, and (12) *Ek ratriki Pratima.*

In case any divine being, human being or animal causes any suffering to a *Bhikshu* who is practicing *masiki pratima*, who has completely

discarded any attachment with his house and also with his physical body, he courageously endures it and does not show any grief. He remains firm in his meditation.

विवेचन : भिक्षुप्रतिमा आराधना विधि–

प्रतिमा धारण की पात्रता–सयम की उत्कृष्ट आराधना करते हुए योग्यता प्राप्त गीतार्थ भिक्षु कर्मों की विशेष निर्जरा करने के लिए बारह भिक्षुप्रतिमाएँ स्वीकार करता है।

भिक्षुप्रतिमाओ की आराधना करने वाला मुनि प्रारम्भ के तीन सहनन (वज्र ऋषभ नाराच, ऋषभ नाराच, नाराच) मे से किसी एक सहनन वाला होना चाहिए। २० वर्ष की सयमपर्याय का धारक २९ वर्ष की आयु तथा जघन्य ९वे पूर्व की तीसरी आचारवस्तु का ज्ञाता होना चाहिए। प्रतिमा धारण के पूर्व अनेक प्रकार की साधनाएँ व अभ्यास भी किये जाते है। उनमे उत्तीर्ण होने पर प्रतिमा धारण के लिए गुरुजन आज्ञा देते है। अत वर्तमान मे इन भिक्षुप्रतिमाओ की आराधना नही की जा सकती है अर्थात् इनका विच्छेद माना गया है।

इस दशा मे बारह भिक्षुप्रतिमाओ के नाम कालमर्यादा के अनुसार दिये गये है। टीकाकार ने इनकी व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया है कि "दो–मासिया, ति–मासिया" इस पाठ से "द्वितीया एकमासिकी, तृतीया एकमासिकी" इस प्रकार अर्थ करना चाहिए। क्योंकि इन प्रतिमाओं का पालन निरन्तर शीत और ग्रीष्मकाल के आठ मासो मे ही किया जाता है। चातुर्मास मे इन प्रतिमाओ का पालन नही किया जाता। पूर्व की प्रतिमाओ के एक, दो मास भी आगे की प्रतिमाओं मे जुड जाते है, अत "द्वि–मासिकी, त्रि–मासिकी" कहने का अर्थ इतना ही है कि दूसरी, तीसरी मासिक प्रतिमा। यदि ऐसा अर्थ न करे तो प्रथम वर्ष मे तीन प्रतिमा पालन करके छोडना होगा, दूसरे वर्ष में चौथी प्रतिमा पालन करके छोडना होगा, इस प्रकार बीच मे छोडते हुए पाँच वर्ष मे प्रतिमाओ की आराधना करना उचित नही कहा जा सकता। प्रत्येक प्रतिमाधारी मुनियो को सामान्य रूप से १६ नियम पालन योग्य है। इन नियमो के दो मुख्य उद्देश्य है–(१) शरीर की शुश्रूषा अर्थात् देह के प्रति ममत्व का त्याग, और (२) धैर्य व साहस के साथ नियमो की अनुपालना। १६ नियमो का सूचन अगले सूत्रो मे किया गया है–

Elaboration—Method of practicing *Bhikshu Pratima*—

Qualification to accept *Pratima*—While undergoing practice of spiritual discipline of highest degree a qualified and accomplished *Bhikshu*, in order to undertake special shedding of *karma*, practices twelve *pratimas* (special codes and resolutions) of a *Bhikshu* (an ascetic)

It is essential that a *Bhikshu* who wants to practice *Bhikshu Pratima*, should have any one of the first three built up of bodily joints (*Vajra Rishabh Narach, Rishabh Narach or Narach*) His period of *monkhood* should be at least twenty years and his age at least twenty nine years. He should have the knowledge of at least third *Acharvastu* of the ninth *Purva* Before starting a *Pratima*, many practices are undertaken. Only when one qualifies in them, the spiritual teacher (Guru) allows him to practice a *Pratima*. Therefore in present age these *Bhikshu Pratimas*

cannot be practiced. In other words they are no longer in existence at present.

In this *Dasha*, the names of the twelve *Bhikshu Pratimas* are in accordance with their duration. While explaining it, the commentator has mentioned that the words **'Do masiya, ti masiya'** in the scripture should be interpreted as 'second of one month duration' and 'third of one month duration' respectively because these *pratimas* are practiced continuously during all the eight months comprising of the winter season and the summer season These *pratimas* are not practiced in monsoon season (*chaturmas)* The periods of earlier *pratimas* viz one month, two month are added to the periods of later *pratimas* Therefore *dvi-masiki* means second *pratima* of one month duration and *tri-masiki* means third such *pratima* In case it is not interpreted in this way one shall have to stop after three *pratimas* in the first year, after fourth *pratima* in the second year and so on. Thus stopping in between, the practice of *pratimas* shall be completed in five years, which is not proper Every monk who is practicing *Pratimas* must observe sixteen rules The purpose of these rules is two fold (1) to discard care or attachment toward the body and (2) to follow the rules with patience and courage The detailed description of sixteen rules is given in the aphorisms ahead—

(१) प्रतिमाधारी की भिक्षा-विधि THE METHOD OF COLLECTING ALMS OF A MONK OBSERVING PRATIMAS

२. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पति एगा दत्ति भोयणस्स पडिगाहित्तए एगा पाणगस्स।

अण्णाय उञ्छं, सुद्धं, उवहडं, निज्जूहित्ता बहवे दुप्पय-चउप्पय-समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमग कप्पइ से एगस्स भुंजमाणस्स पडिगाहित्तए।

णो दुण्हं णो तिण्हं णो चउण्हं णो पंचण्हं णो गुव्विणीए णो बाल-वच्छए, णो दारगं पेज्जमाणीए, णो अंतो एलुयस्स दोवि पाए साहट्टु दलमाणीए, णो बहिं एलुयस्स दोवि पाए साहट्टु दलमाणीए, एगं पायं अंतो किच्चा एगं पायं बहिं किच्चा एलुयं विक्खंभइत्ता एवं दलयति एवं से कप्पति पडिगाहित्तए, एवं से नो दलयति एवं से नो कप्पति पडिगाहित्तए।

२. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी गृह-त्यागी साधु को एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेना कल्पता है अर्थात् यह विहित आचार है। वह भी अज्ञात कुल से शुद्ध और थोडी मात्रा मे लेना चाहिए और जब मनुष्य, पशु, श्रमण (आजीवक आदि भिक्षु), ब्राह्मण, अतिथि, कृपण (याचक) और भिखारी लेकर चले जाये तब साधु को लेना चाहिए। जहाँ एक व्यक्ति के लिए भोजन बना हो वही से लेना

चाहिए। किन्तु जहाँ दो, तीन, चार या पाँच के लिए बना हो, तथा गर्भवती के लिए तथा बालवत्सा एवं बच्चे को स्तनपान कराने वाली के लिए बना हो। वहाँ से नही लेना। अथवा जो स्त्री बच्चे को दूध पिलाती हो उसके हाथ से भी नही लेना चाहिए। जिसके दोनो पैर देहली के भीतर हो या दोनों पैर उससे बाहर हों उससे भी नही लेना चाहिए। जो एक पैर देहली के भीतर और एक पैर देहली के बाहर रखकर अर्थात् देहली को दोनो पैरो के बीच मे कर भिक्षा दे उससे ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिए। किन्तु जो इस प्रकार से न दे उससे नही लेना चाहिए।

2. A monk who has dıscarded hıs worldly connections and who is practıcıng *Masıkı Bhıkshu Pratıma* (practice of special restraints for one month) can accept only once gıven food and once given water as mentıoned ın the code and that also should be taken in small quantity from unknown famılıes He should go there for alms only after men, anımals, monks of other faiths, Brahmıns, guests, beggars and the lıke have left after takıng alms He should take food only from that place where ıt has been prepared for one person In case ıt has been prepared for two, three, four or five persons, or for a pregnant woman or for a woman who ıs provıdıng breast-feed to the child, he should not accept food from there He should also not take food from that woman who ıs provıdıng mılk to the chıld In case the person offerıng alms has both his feet ınsıde or outsıde the door-step, food should not be accepted from hım In case he offers keepıng one foot outside and one foot ınsıde, alms can be taken from that person But ıf he does not gıve ın that manner alms should not be taken from hım.

विवेचन : 'दत्ति' का अर्थ–वृत्तिकार ने 'दत्ति' की व्याख्या इस प्रकार की है–जब दाता साधु के पात्र मे अन्न या पानी देने लगे उस समय जब तक उस पदार्थ की अखण्ड धारा बनी रहे, तब तक उसका नाम 'दत्ति' है। धारा खण्डित होने पर 'दत्ति' समाप्त हो जाती है।

पहली प्रतिमा से सातवी प्रतिमा तक भिक्षु की एक–एक दत्ति बढती है। आठवी से बारहवी प्रतिमा तक दत्ति का कोई परिमाण नही कहा गया है। अत उन प्रतिमाओ मे पारणे के दिन आवश्यकतानुसार आहार–पानी की दत्ति ग्रहण की जा सकती है।

Elaboration—The meaning of word *'dattı'*—The commentator has ınterpreted *dattı* as follows when a donor ıs offerıng food or water, a contınuous pourıng of the substance from the hand of the donor to the pot of the *Bhıkshu* is one *dattı* When continuıty breaks, that *'datti'* ends

From first *pratıma* up to seventh *pratıma*, one *dattı* increases with every *pratıma* From eighth to twelfth *pratıma*, there ıs no specified limit of *dattıs* So on the day when the fast is broken, food and water can be taken accordıng to the need.

(२) प्रतिमाधारी का भिक्षाकाल SPECIFIC TIME OF COLLECTING ALMS BY BHIKSHU PRACTICING PRATIMA

३. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स तओ गोयरकाला पण्णत्ता। तं जहा–आदि मज्झ चरिमे।

(१) आदि चरेज्जा, नो मज्झे चरेज्जा, णो चरिमे चरेज्जा। (२) मज्झे चरेज्जा, नो आदि चरेज्जा, नो चरिमे चरेज्जा। (३) चरिमे चरेज्जा, नो आदि चरेज्जा, नो मज्झे चरेज्जा।

३. एकमासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार के भिक्षाचर्या के आदि, मध्य और चरम–ये तीन काल है–(१) उनमें से यदि आदि भाग मे भिक्षा के लिए जाय तो मध्य और चरम (अन्तिम) भाग मे न जाये। (२) यदि मध्य भाग मे जाये तो आदि व अन्तिम भाग मे न जावे। (३) यदि अन्तिम भाग मे जावे तो आदि और मध्य भाग मे न जावे।

3. These timings have been prescribed for a *Bhikshu* practicing month long *pratima* to collect alms namely the first, the middle and the last (part of the day)—1 In case he goes for alms in the first period, he should not go in the other two, (2) In case he goes in the second period, he should not go in the other two, (3) In case he goes in the third period, he should not go in the first and the middle period

(३) छह प्रकार की गोचरचर्या SIX TYPES OF METHOD OF COLLECTING ALMS (FOOD AND WATER)

४. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स छव्विहा गोचरिया पण्णत्ता। तं जहा–पेडा, अद्धपेडा गोमुत्तिया, पतंग–वीहिया, संवुक्कावट्टा, गत्तु पच्चागया।

४. एकमासिकी प्रतिमाधारी अनगार की छह प्रकार की गोचर–विधि कही है। जैसे–(१) पेटाकार, (२) अर्द्ध–पेटाकार, (३) गोमूत्रिकाकार, (४) पतगवीथिकाकार, (५) शखावर्ताकार, और (६) जाकर पुन प्रत्यावर्तन करते हुए।

4. The method of collecting alms by a *Bhikshu* practicing *Pratimas* is of six types namely—(1) *Petakaar*, (2) *Ardh-petakaar*, (3) *Go-mutrikakaar*, (4) *Patangveethikakaar*, (5) *Shankhavartakaar*, (6) On the way back.

विवेचन : भिक्षा के लिए दिन के तीन भाग इस प्रकार किये जा सकते हैं–यदि १२ घण्टो का दिन हो तो ४–४ घण्टो के आदि, मध्य व अन्तिम यो तीन विभाग करे। इन तीन विभागो मे से किसी एक विभाग मे ही भिक्षाचरी ग्रहण करना तथा खाना कल्पता है।

गोचरी के लिए भ्रमण करने के छह प्रकारो मे से किसी एक प्रकार से गोचरी करने का अभिग्रह करके वह उसी प्रकार से भ्रमण करता है।

भिक्षाचरी से सम्बन्धित छह प्रकार के अभिग्रह इस प्रकार है–(१) पेटा–भिक्षा मार्ग पेटी की तरह होने पर, चतुष्कोण भ्रमण करना, (२) अर्धपेटा–दो कोणो पर भ्रमण करना, (३) गोमूत्रिका–गोमूत्र धार की तरह आडे–

तिरछे भ्रमण करते हुए गोचरी करना, (४) पतंग वीथिका–पतगा उडकर चलता है, उसी प्रकार बीच–बीच में घरो को छोडते हुए भ्रमण करना, (५) शम्बूकावर्ता–शंख के समान आवर्तन करते (घूमते) हुए गोचरी करना, (६) जाकर प्रत्यावर्तन करना–पहले गली के अन्तिम छोर पर जाकर वापस दूसरी ओर लौटकर आना।

Elaboration—A day can be divided into three parts for the purpose of collecting alms. In case the day is of 12 hours, the three parts shall be first four hours, second four hours, and last four hours The monk can go for alms only durıng any one part of four hours of the said three parts and consume accordingly.

He decides ın mind to adopt one specıfic method out of the six prescribed methods for movıng about in search of alms, and than moves accordingly

The sıx types concernıng movement in search of alms are as under : **(1) *Peta***—The path between the houses where from alms can be collected ıs lıke sıdes of a quadrılateral, and he wanders around the four corners. **(2) *Ardh-peta***—To move only up to two corners of the quadrılateral, **(3) *Go-mutrika***—To move lıke the flow of urine off a cow in a slantıng manner, **(4) *Patang Veethika***—A moth flıes and moves So whıle collectıng alms, to leave some houses ın between, **(5) *Shambukavarta***—To move spırally for alms lıke the shape of a conch shell, (6) **On the way back**—To reach the end of the street and then collect alms only on return

(४) वसतिवास काल PERIOD OF STAY

५. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स जत्थ णं केइ जाणइ कप्पइ से तत्थ एगराइयं वसित्तए।

जत्थ णं केइ न जाणइ कप्पइ से तत्थ एगरायं वा दुरायं वा वसित्तए। नो से कप्पइ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसति से संतराछेदे वा परिहारे वा।

५. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को जहाँ कोई जानता हो वहाँ वह एक रात्रि रह सकता है और जहाँ उसको कोई नही जानता हो, वहाँ वह एक या दो रात्रि रह सकता है, किन्तु एक या दो रात्रि से अधिक रहना उचित नही है।

एक या दो रात से अधिक जो जितने दिन रहता हो उसको उतने दिनो का छेद अथवा तप का प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

5. A *Bhıkshu* practicing *Masıkı Pratıma* can stay for one night at a place where some one knows him and for one or two nights at a place where no one knows hım. But ıt ıs not proper for hım to stay for more than two nıghts.

In case he stays for more than one or two nights he should accept punishment of reduction in his ascetic period by the number of days spent in excess or of undergoing austerities accordingly.

(५) भाषा-विधि LANGUAGE OF MONK PRACTICING *PRATIMA*

६. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पति चत्तारि भासाओ भासित्तए। तं जहा—(१) जायणी, (२) पुच्छणी, (३) अणुण्णवणी, (४) पुट्ठस्स वागरणी।

६. मासिक भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को चार भाषाएँ बोलना कल्पता है। जैसे-(१) **याचनी**—आहारादि के लिए, याचना करने के लिए (२) **पृच्छनी**—मार्गादि के विषय में पूछने के लिए, (३) **अनुज्ञापनी**—स्थानादि की आज्ञा लेने के लिए, और (४) **पृष्ठ व्याकरणी**—प्रश्न का उत्तर देने के लिए।

6. A *Bhikshu* practicing *Masiki Pratima* can speak four types of language · **(1)** ***Yachana***—To ask for alms, **(2)** ***Prachhani***—To inquire about the way leading to some place, **(3)** ***Anujapani***—To seek permission for a place of stay, and **(4)** ***Prishth Vyakarni***—To reply to a question.

(६) कल्पनीय उपाश्रय PRESCRIBED PLACE OF STAY

७. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ तओ उवस्सया पडिलेहित्तए। तं जहा—(१) अहे आरामगिहंसि वा, (२) अहे वियडगिहंसि वा, (३) अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।

मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पति तओ उवस्सया, (१) अहे आरामगिहंसि वा, (२) अहे वियडगिहंसि वा, (३) अहे रुक्खमूलगिहंसि वा। अणुण्णवेत्तए। उवाइणित्तएय तं चेव।

७. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रय (ठहरने का स्थान) प्रतिलेखन करना, उनकी आज्ञा लेना और वहाँ ठहरना कल्पता है। जैसे-(१) उद्यानगृह (उद्यान मे बने घर), (२) चारो ओर से खुले तथा ऊपर से आच्छादित गृह, तथा (३) वृक्ष के नीचे या वहाँ बने हुए गृह।

7. A monk practicing *Masiki Bhikshu Pratima* can accept any of the three types of places after properly looking into them, and seeking permission thereof Those places are—(1) houses built in gardens, (2) a house open from all sides but covered at the top, and (3) Under a tree or a house made under a tree

(७) कल्पनीय संस्तारक PRESCRIBED BED AND BEDDING

८. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पति तओ संथारगा पडिलेहित्तए। तं जहा—(१) पुढवीसिलं वा, (२) कट्ठसिलं वा, (३) अहासंथडमेव वा संथारगं। एवं तओ संथारगा अणुण्णवेत्तए, उवाइणित्तए, य।

८. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को तीन प्रकार के संस्तारक-(१) पृथिवी की शिला, (२) लकडी का पाट (काष्ठ-फलक), और (३) यथासंसृत-(पहले से जैसा बिछा हो) संस्तारकों की प्रतिलेखना (गवेषणा) करना, उनके लिए आज्ञा लेना और उनको ग्रहण करना कल्पता है।

8. A *Bhikshu* practicing *Masiki Bhikshu Pratima* can accept any of the three types of bed namely—(1) a slab of stone, (2) a bed of wood, and (3) a bedding already spread. He should then minutely examine them, take permission for their use, and thereafter accept them.

(८) स्त्री-पुरुष का उपसर्ग SUFFERING CAUSED BY MAN OR WOMAN

९. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स इत्थी वा पुरिसे वा उवस्सयं उवागच्छेज्जा, णो से कप्पति तं पडुच्च निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

९. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी मुनि के उपाश्रय मे यदि कोई स्त्री या पुरुष आ जावे तो उनको देखकर उपाश्रय के बाहर जाना और बाहर से भीतर आना नही कल्पता है। अर्थात् वहाँ तटस्थ भाव से स्वाध्याय लीन रहना चाहिए।

9. In case any man or woman comes to the place where the *Bhikshu* practicing *Masiki Bhikshu Pratima* is staying, after seeing them he should neither go inside nor go out He should remain absorbed in scriptural study in an impartial manner

(९) अग्नि का उपसर्ग SUFFERING DUE TO FIRE

१०. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स केइ उवस्सयं अगणिकाएणं झामेज्जा णो से कप्पति तं पडुच्च निक्खमित्तए पविसित्तए वा। तत्थ णं केइ बाहाए गाहाय आगसेज्जा नो से कप्पति तं अवलंबित्तए पलंबित्तए वा, कप्पति अहारियं रिइत्तए।

१०. यदि कोई व्यक्ति प्रतिमाधारी अनगार के उपाश्रय को अग्निकाय से जलाये तो मुनि को अग्नि के प्रकोप से डरकर उपाश्रय से बाहर नही निकलना चाहिए और यदि बाहर हो तो भीतर नहीं आना चाहिए। किन्तु यदि कोई उसकी भुजा पकडकर बलपूर्वक उसे खीचे तो खींचने वाले का अवलम्बन और प्रलम्बन करना (उसका प्रतिरोध करना) योग्य नही, अपितु ईर्यासमिति के अनुसार यथाविधि बाहर निकल जाना चाहिए।

10. In case a person puts on fire the *Upashraya* (place of stay) where monk practicing *Bhikshu Pratima* is staying, he should not come out from there out of fear caused by dangerous fire. In case he is outside, he should not go inside. But in case some one forcibly pulls him by the arm, he should not oppose him. He should rather go out observing the prescribed rules of *Irya Samiti* (movement)

(१०) काँटा आदि निकालने का निषेध RESTRICTION OF PULLING OUT A THORN

११. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स पायंसि खाणू वा कंटए वा हीरए वा सक्करए वा अणुपवेसेज्जा नो से कप्पइ नीहरित्तए वा विसोहित्तए वा, कप्पति से अहारियं रियत्तए।

११. प्रतिमाधारी साधु के पैर में यदि लकडी का तीक्ष्ण ठूँठा, काँटा, काँच अथवा कंकर आदि लग जाये तो उसको निकालना या विशुद्ध (मलहम आदि) करना नही कल्पता, प्रत्युत ईर्यासमिति के अनुसार चलते रहना चाहिए।

11. In case any sharp splınter of wood, a thorn, a piece of glass or a sharp piece of stone gets stuck ınto the foot of the monk practicing *Bhikshu Pratıma*, he should not take it out He should not apply any ointment on ıt. He should rather go on movıng accordıng to prescrıbed procedure of *Irya Samıtı*

(११) आँख मे गिरी धूल आदि निकालने का निषेध RESTRICTION OF REMOVING DUST AND THE LIKE FROM THE EYE

१२. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स अच्छिंसि पाणाणि वा बीयाणि वा रए वा परियावज्जेज्जा, नो से कप्पति नीहरित्तए वा विसोहित्तए वा, कप्पति से अहारियं रिइत्तए।

१२. प्रतिमाधारी साधु की आँखो मे यदि कोई सूक्ष्म जीव, बीज या धूल रजकण पड जाये तो उसे निकालना अथवा विशोधन करना–(जल आदि से धोना) नही कल्पता है, किन्तु ईर्यासमिति के अनुसार गमन क्रिया मे प्रवृत्त रहना चाहिए।

12. In case any minute lıvıng beıng, seed or dust particle enters the eye of a monk practıcing *Bhıkshu Pratıma*, he should neıther take ıt out nor clean or wash the eye He should contınue wandering according to the prescribed procedure for *Irya Samitı*

विवेचन : इस नियम का भाव स्पष्ट करते हुए वृत्तिकार ने बताया है–प्रतिमाधारी भिक्षु को आँख मे से त्रस प्राणी निकालने का निषेध किया गया है, इस नियम मे भी शरीर के प्रति निरपेक्षता एव सहनशीलता का ही लक्ष्य है। भिक्षु उस प्राणी के जीवित रहने तक आँखो की पलके भी नही पडने देता है, जिससे वह स्वय निकल जाता है। यदि वह नही निकल पा रहा हो तो जीव की अनुकम्पा दृष्टि से प्रतिमाधारी भिक्षु निकाल सकता है। आगे १५वे नियम मे कहा है–मार्ग मे पशु भयभीत हो तो मार्ग छोड सकता है। इस प्रकार इन नियमो मे प्रतिमाधारी के दृढ मनोबली और कष्ट-सहिष्णु होते हुए शरीर के ममत्व व शुश्रूषा का त्याग करना सूचित किया गया है। इनमे जीवरक्षा का अपवाद स्वत समझ लेना चाहिए।

Elaboration—Clarıfying the underlyıng purpose ın this rule, the commentator states, 'A mobıle lıvıng beıng ıs not permıtted to be removed from the eyes of a *Bhıkshu* who ıs practicıng *pratima*. The object is to avoıd specıal attentıon towards the body and enhance forbearance The practicing monk does not even close his eyelids so that

the live mobile being may come out on its own. In case it is not able to come out, the compassionate approach is that the monk may help it come out. In the fifteenth rule it is mentioned that he should leave the path in case any animal feels afraid of him. Thus in these rules, it has been informed that a *Bhikshu* practicing *pratima* has a strong mind, great capacity of endurance in sufferings, and detachment for his body. Exceptions directed at protection of living beings should automatically be incorporated.

(१२) सूर्यास्त होने पर विहार का निषेध AVOIDING TRAVEL AFTER SUNSET

१३. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स जत्थेव सूरिए अत्थमेज्जा तत्थ एव जलंसि वा थलंसि वा दुग्गंसि वा निण्णंसि वा पव्वयंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा कप्पति से तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए नो से कप्पति पदमवि गमित्तए। कप्पति से कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव जलंते पाईणाभिमुहस्स वा दाहिणाभिमुहस्स वा पडीणाभिमुहस्स वा उत्तराभिमुहस्स वा अहारियं रिइत्तए।

१३. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधु को विहार करते हुए मार्ग में (ठहरने का उचित स्थान न मिलने पर) जहाँ पर सूर्यास्त हो जाय वही ठहर जाना चाहिए, चाहे वहाँ जल (शुष्क जलाशय) हो, स्थल हो, दुर्गम (जगल) स्थान हो, निम्न स्थान हो, पर्वत हो, विषम स्थान हो, गर्त्त (गड्ढा) हो या गुफा हो, उसको सारी रात्रि वही पर व्यतीत करनी चाहिए। किन्तु वहाँ से एक कदम भी आगे बढना उचित नही। रात्रि समाप्त होने पर प्रात काल सूर्योदय के अनन्तर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम या उत्तर किसी भी दिशा की ओर ईर्यासमिति के अनुसार गमन करना कल्पता है।

13. A monk practicing *Bhikshu Pratima* should at once stop where he arrives at sunset (in case he could not earlier find a suitable place for stay) It is immaterial whether that place is a dried up pond, an open land, a dreadful forest, a low land, a mountain, an uneven place, a ditch or a cave. He should spend the whole night there It is not proper for him to move even a step further during the night When the night ends and the sun rises he can go in any direction, east, south, west or north, following the code of movement

निद्रा निषेध AVOIDING SLEEP

१४. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स णो से कप्पइ अणंतरहियाए पुढवीए निद्दाइत्तए वा पयलाइत्तए वा। केवली बूया आदाणमेयं। से तत्थ निद्दायमाणे वा पयलायमाणे वा हत्थेहिं भूमिं परामुसेज्जा। अहाविधिमेव ठाणं ठाइत्तए निक्खमित्तए।

उच्चार–पासवणेणं उप्पाइज्जा नो से कप्पति उगिण्हित्तए वा। णिगिण्हित्तए वा। कप्पति से पुव्वपडिलेहिए थंडिले उच्चार–पासवणं परिट्ठावित्तए तमेव उवस्सयं आगम्म अहाविहि ठाणं ठाइत्तए।

१४. उक्त स्थिति में मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार यदि सचित्त पृथ्वी के निकट ठहरा हो तो वहीं पर निद्रा लेना या ऊँघना नही कल्पता है। क्योंकि केवली भगवान इसको कर्म-बन्धन का कारण बताते हैं। वे कहते हैं कि भिक्षु वहाँ पर निद्रा लेता हुआ या ऊँघता हुआ अपने हाथो से यदि भूमि का स्पर्श करेगा, तो उससे पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा अवश्य होगी। अत. यथाविधि निर्दोष स्थान पर ही रहना चाहिए या वहाँ से अन्यत्र किसी स्थान को चल देना चाहिए।

यदि वहाँ पर ठहरे हुए मुनि को मल या मूत्रोत्सर्गादि की शंका उत्पन्न हो जाये तो उसको उचित है कि किसी पूर्व प्रतिलेखित स्थान पर मल-मूत्र का उत्सर्ग करे किन्तु मल-मूत्र के वेग को रोकना नहीं चाहिए। पुनः उसी स्थान पर आकर सावधानीपूर्वक स्थिर रहकर कायोत्सर्गादि क्रिया करे।

14. Under above mentioned circumstances a *Bhıkshu* practicing *Masıkı Pratıma* is not entitled to sleep or doze ın case he is stayıng near lıfe-bearıng land because the omniscient calls it a cause of *karma* bondage. The *Kevalı* says there shall certaınly be violence to earth-bodıed lıvıng beings ın case the monk touches the earth while sleeping or dozıng Therefore, he should according to the prescrıbed code, stay only at a faultless place and should not go to any other place from there.

In case the monk who is staying there has an urge for nature's call, ıt ıs proper for hım to do so at a place that has been properly examıned by hım earlier. But he should not in any way stop that urge Thereafter, he should return to the same place and carefully engage himself ın spırıtual actıvıties such as meditatıon (*Kayotsarg*)

(१३) रजयुक्त शरीर से गोचरी निषेध AVOIDING GOING FOR ALMS WHEN BODY IS COVERED WITH DUST

१५. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स नो कप्पति ससरक्खेणं काएणं गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

अह पुण एवं जाणेज्जा ससरक्खे से अत्ताए वा जल्लत्ताए वा मल्लत्ताए वा पंकत्ताए वा विद्धत्थे से कप्पति गाहावतिकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

१५. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को मार्ग चलते हुए शरीर पर सचित्त रज लग गई हो तो गृहस्थ के घर मे भोजन अथवा पानी के लिए जाना-आना नही कल्पता। यदि वह जान जाय कि सचित्त-रज प्रस्वेद (पसीना) से, शरीर के मल से, हाथो के मल से अथवा प्रस्वेद-जनित-मल से सूख गई या नष्ट हो गयी है, तो उसको गृहपति के घर में भोजन या पानी के लिए जाना-आना कल्पता है।

15. In case lıfe-bearing dust has stuck to the body of the monk practicing *Bhıkshu Pratima* while moving about, he should not go to the house of any person for collecting food or water as alms. In case he comes to know that the animate dust has dried up or has been destroyed by

perspiration from the body, slime of the body, slime of the hands or the slime produced by the perspiration, he can go to the householder for collecting food or water as alms.

(१४) अग प्रक्षालन–निषेध RESTRICTION OF WASHING PARTS OF THE BODY

१६. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स नो कप्पति सीओदग–वियडेण वा उसिणोदग–वियडेण वा हत्थाणि वा पायाणि वा दंताणि वा अच्छीणि वा मुहं वा उच्छोलित्तए वा पधोइत्तए वा। णण्णत्थ लेवालेवेण वा भत्तमासेण वा।

१६. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधु को अचित्त शीतल जल अथवा गरम पानी से हाथ, पैर, दाँत, आँखे या मुख एक बार अथवा बार–बार नही धोने चाहिए। किन्तु यदि कोई अशुद्ध वस्तु अथवा अन्नादि लग जाने पर मुख, हाथ आदि अवयव लिप्त हो गये हो तो वह उनको पानी से शुद्ध कर सकता है।

16. A monk practicing *Masiki Bhikshu Pratima* should not wash his hands, feet, teeth, eyes or face with non-life-bearing cold or hot water once or repeatedly But in case his face, hand or any part of the body is smeared with any impure matter or food and the like, he can clean it with water

(१५) पशुओ से भयभीत होने का निषेध AVOID FEAR FROM ANIMALS

१७. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स नो कप्पति आससस्स वा हत्थिस्स वा गोणस्स वा महिसस्स वा कोलसुणगस्स वा सुणस्स वा वग्घस्स वा दुट्ठस्स ग आवदमाणस्स पयमवि पच्चोसक्कित्तए। अदुट्ठस्स आवदमाणस्स कप्पति जुगमित्तं पच्चोसक्कित्तए।

१७. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधु के सामने यदि गमन करते समय मदोन्मत्त हाथी, घोडा, वृषभ, महिष, वराह, कुत्ता या व्याघ्र आदि दुष्ट पशु आ जाये तो उसको उनसे डरकर एक कदम भी पीछे नही हटना चाहिए। किन्तु यदि कोई दुष्टतारहित पशु स्वाभाविक ही सामने आ जाये और वह साधु से डरता हो तो साधु को चार हाथ तक पीछे हट जाना चाहिए।

17. During the wanderings, if a monk practicing *Masiki Bhikshu Pratima* comes across an intoxicated elephant, horse, bullock, buffalo, wild boar, dog, wolf or the like, he should not move even one step backwards out of fear. But in case an animal that is not dreadful comes in front naturally and is afraid of the monk, he should move backwards up to four *Haath* (about four and a half feet)

(१६) सदी–गर्मी सहन करें ENDURING HEAT AND COLD

१८. मासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स नो कप्पति छायाओ सीयंति नो उण्हं इयत्तए, उण्हाओ उण्हंति नो छायं इयत्तए। जं जत्थ जया सिया तं तत्थ तया अहियासए।

१८. मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी साधु को शीत के भय से शीत स्थान से उठकर उष्ण स्थान मे और गर्मी के भय से उष्ण (धूप) स्थान से शीत (छायायुक्त) स्थान पर नही जाना चाहिए। किन्तु वह जिस समय जहाँ पर हो, जैसा हो उस समय वही पर शीत या उष्ण परीषह सहन करना चाहिए।

18. A monk practicing *Bhıkshu Pratıma* for a month should not move from a cold place to a hot place out of fear of cold. He should also not move from a hot place to a cold place out of fear of heat But he should stay at the place where he was already present and patıently bear the suffering caused by cold or heat as the case may be.

१९. एवं खलु एसा मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, सम्मं काएणं फासित्ता, पालित्ता, सोहित्ता, तीरित्ता, किट्टइत्ता, आराहित्ता, आणाए अणुपालिया भवइ।

१९. इस प्रकार यह मासिकी भिक्षुप्रतिमा यथासूत्र (सूत्र के अनुसार), यथाकल्प (कल्पानुसार), यथामार्ग (मोक्षमार्ग के अनुसार), यथातथ्य (जैसे कहा है उसी अनुसार) सम्यक्तया काय से स्पर्श कर, उपयोगपूर्वक पालन कर, अतिचारो से शुद्ध कर, पूर्ण कर, जिन कथित मार्ग की वाणी द्वारा स्तुति करते हुए आज्ञा के अनुसार अनुपालना–आराधना की जाती है।

19. Thus he should practıce *Masıkı Bhıkshu Pratıma* strıctly as laid down ın the scriptures, wıth the prescrıbed lımitatıon, conforming to the path of salvation, and as stated by *Tirthankar* He should exhibit proper care ın these practıces and should repent and seek pardon for mınor transgressıons ıf any He should complete the practıces, praıse the saıd order of *Tırthankar*s and follows their order

अन्य भिक्षु प्रतिमाएँ OTHER BHIKSHU PRATIMAS

२०. दोमासियं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ। नवरं दो दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहित्तए दो पाणस्स॥२॥

तिमासियं तिण्णि दत्तीओ॥३॥ चत्तारि मासियं चत्तारि दत्तीओ॥४॥ पंचमासियं पंच दत्तीओ॥५॥

छमासियं छ दत्तीओ॥६॥ सत्तमासियं सत्त दत्तीओ॥७॥ जेत्तिया मासिया तेत्तिया दत्तीओ।

२०. द्वि–मासिकी भिक्षुप्रतिमाधारी शरीर के मोह से रहित अनगार प्रतिदिन केवल दो दत्तियाँ आहार की और दो दत्तियाँ पानी की ग्रहण करता है। इसी प्रकार त्रिमासिकी, चातुर्मासिकी, पञ्चमासिकी, षण्मासिकी और सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमाओ मे मुनि क्रमश तीन, चार, पाँच, छह और सात दत्तियाँ अन्न की और सात दत्तियाँ पानी की ग्रहण कर सकता है।

20. A *Bhikshu* observing *Dvı-masık Bhıkshu Pratıma*, who ıs non-attached to his body, accepts only two offerings of food and two offerings of water every day Similarly durıng *Trı-masıkı*, *Chatur-masıkı*, *Panch-*

masiki, Shat-masiki and Sapt-masiki Bhikshu Pratimas he can accept up to two, three, four, five, six and seven offerings respectively.

सात रात–दिन की प्रथम (आठवीं) प्रतिमा FIRST SEVEN DAY-NIGHT PRATIMA

२१. पढमा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए जाव अहियासेइ। कप्पइ से चउत्थेणं भत्तेणं अपाणएणं बहिया गामस्स वा जाव, रायहाणीए वा, उत्ताणस्स वा, पासिल्लगस्स वा नेसिज्जयस्स वा ठाणं ठाइत्तए।

तत्थ दिव्वं माणुस्सं तिरिक्ख–जोणिया उवसग्गा समुज्जेज्जा। ते णं उवसग्गा पयलेज्ज वा पवडेज्जा वा, णो से कप्पइ पयलित्तए वा पयडित्तए वा।

तत्थ णं उच्चार–पासवणं उब्बाहिज्जा, णो से कप्पइ उच्चार–पासवणं उगिण्हित्तए वा। णिगिण्हित्तए वा कप्पइ से पुव्वपडिलेहियंसि थंडिलंसि उच्चार–पासवणं परिठवित्तए, अहाविहिमेव ठाणं ठाइत्तए।

एवं खलु एसा पढमा सत्तराइंदिया भिक्खुपडिमा अहासुयं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।*

२१. पहली सात रात्रि और सात दिन की भिक्षु–प्रतिमाधारी अनगार को शरीर सम्बन्धी किंचित् भी मोह नही होता, वह समस्त परीषहो को सहन करता है। उसको उचित है कि वह निर्जल उपवास करके ग्राम यावद्–राजधानी के बाहर उत्तान आसन पर (चित्त लेटना) पार्श्व आसन पर या निषद्य आसन (पालथी मारकर बैठना) पर कायोत्सर्गादि करे।

यदि वहाँ देव, मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उपस्थित होकर बाधा पहुँचाएँ तो अनगार को ध्यान से विचलित या पतित होना उचित नहीं।

यदि साधनाकाल में मल और मूत्र की शका उत्पन्न हो जाये तो उसको रोकनी नही चाहिए, किन्तु किसी पहले देखे हुए निर्दोष स्थान पर उनका उत्सर्ग (त्याग) कर यथाविधि अपने आसन पर आकर कायोत्सर्गादि क्रियाओ मे स्थिर रहना चाहिए।

इस प्रकार यह पहली सात रात–दिन की प्रतिमा सूत्रो मे बताये अनुसार जिनेश्वर देव की आज्ञा के अनुसार पालन की जाती है।

21. The monk does not have any attachment for his body during the first *pratima* where duration is seven days and seven nights. He calmly endures all the sufferings. It is proper for him that while observing complete fast (without water) he assumes *uttanasan, parshvasan* or *nishadyasan* (yogic postures) and remains in *Kayotsarg* (meditation) outside the village or the town concerned

Even if any suffering is caused by celestial beings, human being or animals, it is not proper for him to get disturbed in meditation or withdraw from meditation.

In case he gets a call of nature during this practice, he should not stop that urge but he should go to the suitable place earlier examined by him for that purpose and thereafter he should return to his place as prescribed and stabilize himself in meditation and the like.

Thus he should practice this first seven days practice strictly according to scriptures as ordained by *Tirthankar*.

सात रात–दिन की दूसरी–तीसरी प्रतिमा (९–१०वीं प्रतिमा)

SECOND SEVEN DAY-NIGHT PRATIMA

२२. एवं दोच्चा सत्तराइंदिया यावि। नवरं दंडायइयस्स वा लगडसाइस्स वा उक्कुडुयस्स वा ठाणं ठाइत्तए सेसं तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ।

एवं तच्चा सत्तराइंदिया यावि। नवरं गोदोहियाए वा वीरासणियस्स वा अंबखुज्जस्स वा ठाणं ठाइत्तए तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ।

२२. इसी प्रकार दूसरी सात दिन–रात की भिक्षुप्रतिमा है। विशेषता केवल इतनी है कि इस प्रतिमा के आराधनाकाल मे दण्डासन, लगुडासन और उत्कुटुकासन मे स्थित होकर ध्यान किया जाता है। शेष सब नियम पहले कही हुई प्रतिमाओ के समान जान लेने चाहिए। उन सब नियमो के साथ ही इसका पालन किया जाता है।

इसी प्रकार तीसरी सात दिन–रात की प्रतिमा के विषय मे भी जानना चाहिए। इसमे यह विशेषता है कि कायोत्सर्गादि क्रियाएँ गोदोहनिकासन, वीरासन और आम्र–कुब्जासन से स्थिर होकर की जाती है। शेष सब पूर्ववत् इसका पालन किया जाता है।

22. The second seven day-night *pratima* is also similar to it the only difference is that in this practice meditation is done in *dandasan* or *lagudasan* or *utkatukasan* (yogic postures) All the other rules are identical to those meant for earlier practices It should be strictly followed fully observing all the prescribed rules

The third seven day-night *pratima* is also similar to earlier one with the only difference that activities relating to meditation are done in *godohanikasan* or *veerasan* or *amrakubjasan* (yogic postures) All else is practiced as earlier mentioned.

विवेचन : इन भिक्षुप्रतिमाओं मे पहली से सातवी प्रतिमा तक उपवास आदि तपस्या का कोई आवश्यक नियम नहीं है, साधक इच्छानुसार तप कर सकता है। आठवी, नवमी और दसवी प्रतिमा तीनो प्रतिमा एक–एक सप्ताह की है। तीन सप्ताह तक एकान्तर उपवास करना आवश्यक होता है तथा पारणे मे आयबिल किया जाता है। दत्ति सख्या की मर्यादा को छोडकर भिक्षा के व अन्य सभी नियम पूर्व प्रतिमाओ के समान होते है। उपवास

के दिन चारो आहार का त्याग करके सूत्रोक्त किसी एक आसन से ग्रामादि के बाहर पूर्ण दिन-रात स्थिर रहना होता है। तीनो प्रतिमाओ मे केवल आसन का अन्तर होता है।

आठवीं से दसवीं प्रतिमा तक तीन-तीन विशेष प्रकार के आसनो का विधान है। आठवी और नवमी प्रतिमा का प्रथम आसन "उत्तानासन" और "दंडासन" है। इन दोनो मे आकाश की तरफ मुख करके सोया जाता है, किन्तु इनमे अन्तर यह है कि उत्तानासन मे हाथ-पाँव आदि फैलाये हुए या अन्य किसी भी अवस्था मे रह सकते है और दंडासन मे मस्तक से पाँव तक पूरा शरीर दण्ड के समान सीधा लम्बा रहता है और हाथ-पैर अन्तररहित रहते हैं।

इसी प्रकार उक्त दोनो प्रतिमाओ का द्वितीय आसन 'एक पार्श्वासन' और 'लकुटासन' है। इन दोनो आसनो मे एक पसवाडे (करवट) से सोया जाता है किन्तु इनमे अन्तर यह है कि "एक पार्श्वासन" में भूमि पर एक पार्श्व भाग से सोना होता है और लकुटासन मे करवट से सोकर मस्तक एक हथेली पर टिकाकर और पाँव पर पाँव चढाकर लेटे रहना होता है। इस प्रकार इसमे मस्तक और एक पाँव भूमि से ऊपर रहता है।

दोनो प्रतिमाओ का तृतीय आसन "निषद्यासन" और "उत्कुटुकासन" है। ये दोनो बैठने के आसन है। निषद्यासन मे पालथी लगाकर पर्यंकासन से सुखपूर्वक बैठा जाता है और "उत्कुटुकासन" मे दोनों पाँवो को समतल रखकर उन पर पूरे शरीर को रखते हुए बैठना होता है। यह गुरुवदन का आसन है।

दसवी प्रतिमा के तीनो आसनो की यह विशेषता है कि वे न बैठने के, न सोने के और न सीधे खडे रहने के है किन्तु बैठने तथा खडे रहने के मध्य की अवस्था के है। प्रथम गोदुहासन मे पूरे शरीर को दोनो पाँवो के पजो पर रखना पडता है। इसमे जघा उरु आपस मे मिले हुए रहते है और दोनो नितम्ब एडी पर टिके हुए रहते है।

दूसरे वीरासन मे पूरा शरीर दोनो पजो के आधार पर तो रखना पडता है किन्तु इसमे नितम्ब एडी से कुछ ऊपर उठे हुए रखने पडते है तथा जघा और उरु मे भी कुछ दूरी रखनी पडती है। इस प्रकार कुर्सी पर बैठे व्यक्ति के नीचे से कुर्सी निकाल देने पर जो आकृति उसकी होती है वैसा ही लगभग इस आसन का आकार समझना चाहिए।

तीसरा आसन आम्रकुब्जासन है। इस आसन मे भी पूरा शरीर तो पैरो के पजो पर रखना पडता है, घुटने कुछ टेढे रखने होते है, शेष शरीर का सम्पूर्ण भाग सीधा रखना पडता है। जिस प्रकार आम ऊपर से गोल और नीचे से कुछ टेढा होता है इसी प्रकार यह आसन किया जाता है। किसी भी एक आसन से २४ घण्टे रहना यद्यपि कठिन है, फिर भी दसवी प्रतिमा के तीनो आसन तो अत्यन्त कठिन है। सामान्य व्यक्ति के लिए तो इन आसनों मे एक घण्टा रहना भी अशक्य होता है।

Elaboration—There is no specific order for observing austerities like fasting in the first seven *bhikshu pratimas* A practitioner can do austerities as he likes, the eighth, ninth and tenth *pratimas* are of one week each. During this period it is a must to observe fast followed by *Ayambil* (eating once in a day food cooked or baked with a single ingredient even without any salt or other condiments) and then followed by fast and so on. All the rules for the *pratimas* are the same except for the number of offerings (*datti*) that can be accepted On the fasting day

the monk has to discard all the four types of food and stabilize himself in one posture outside the village or town as the case may be according to the procedure laid down in the scriptures He has to remain stable for the entire day and also the night In the third *pratima*, the difference is only that of posture

For eighth to tenth *pratimas*, special postures of three types each have been prescribed. The first posture of eighth and ninth *pratimas* is *Uttanasan* and *Dandasan* respectively In both these postures one has to lie down keeping his face towards the sky The only difference is that in *Uttanasan*, hands and feet can be spread wide or can be kept in any position but in the Dandasan, the entire body from head to feet has to be kept straight like a pole and there should be no space between hand and feet

Similarly the second prescribed postures for the said two *pratimas* are '*Ek parshvasan*' and '*Lakutasan*' respectively In both these postures one has to lie down on one side continuously The only difference is that in '*Ek parashvasan*' one has to lie down on one side whereas in '*lakutasan*' while sleeping, the head has to be kept on a palm and one foot should be kept on the other Thus in this posture head and one foot are above the ground

The third postures of the said two *pratimas* are '*nishadyasan*' and '*utkutukasan*' Both of them are sitting postures. In *nishadyasan* one has to sit in ordinary sitting posture thigh touching the ground while in *utkutukasan* while sitting, the entire weight of the body is on the feet This posture is that of expressing gratitude to the guru

The special feature of the three prescribed postures for tenth *pratima* is that they are not postures of sitting of sleeping or of standing straight It is however, the intermediary posture in between sitting and standing. In the first one namely *Goduhasans* the entire weight of the body is on the tows of the feet, the knees and thighs are touching each other and both the buttocks are on the heels

In the second posture namely *Virasan*, the entire body is on paws of the feet but the buttocks should be a little above the heels. It is also similar to that of a person sitting in the chair when the chair has actually been removed.

The third one is *Amrakubjasan* In this posture also the entire weight of the body is on the paws of the feet, the knees should be a little bending

down and the remaining part of the body should be kept straight. Just as a mango is normal at the top and a little bent from the bottom, similar is the state in this posture. It is difficult to remain in any one of these postures for 24 hours but the three postures enunciated for tenth *pratima* are extremely difficult A common man cannot remain in any of these postures continuously even for an hour.

अहोरात्रि की ग्यारहवी प्रतिमा ELEVENTH PRATIMA OF 24 HOURS (AHORATRI)

२३. एवं अहोराइंदिया वि। नवरं छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं बहिया गामस्स वा जाव रायहाणिस्स वा ईसिं पब्भारगएण काएणं दोवि पाए साहट्टु वग्घारिय–पाणिस्स ठाणं ठाइत्तए सेसं तं चेव जाव अणुपालित्ता भवइ।

२३. इसी प्रकार एक रात–दिन (अहोरात्रि) की प्रतिमा के विषय मे जानना चाहिए। इसमें इतना विशेष है कि यह निर्जल षष्ठ भक्त तप से की जाती है। ग्राम या राजधानी के बाहर जाकर शरीर को थोडा–सा आगे की तरफ झुकाकर दोनो पैरों को सकुचित कर और भुजाओ को जानु पर्यन्त लम्बी कर कायोत्सर्ग करना चाहिए। शेष पूर्व मे जितने भी नियम कहे गये है उनके अनुसार यह प्रतिमा पालन की जाती है।

23. The conditions for this *pratima* of *ahoratri* (24 hours) should be considered similar as mentioned earlier The only difference is that it is practiced with complete fasting without water After going outside the village or the town, the body is bent a little forward, the feet are brought very close, and the arms are extended up to knees This is the prescribed posture for meditation All the earlier mentioned rules are also applicable to this *pratima*

एक रात्रि की (१२वीं) प्रतिमा TWELFTH PRATIMA OF ONE NIGHT

२४. एग–राइयं भिक्खुपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं वोसट्ठकाए णं जाव अहियासेइ। कप्पइ से अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं बहिया गामस्स वा जाव रायहाणिस्स वा ईसिं पब्भारगएणं काएणं, एग–पोग्गलटितीए दिट्ठीए अणिमिसि–नयणेहिं अहापणिहितेहिं गत्तेहिं सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं दोवि पाए साहट्टु वग्घारिय–पाणिस्स ठाणं ठाइत्तए।

तत्थ से दिव्वं माणुस्सं तिरिक्ख–जोणिया जाव अहियासेइ।

से णं तत्थ उच्चार–पासवणं उब्बाहिज्जा नो से कप्पइ उच्चार–पासवणं उगिण्हित्तए। वा णिगिण्हित्तए वा। कप्पइ से पुव्व–पडिलेहियंसि थंडिलंसि उच्चार–पासवणं परिठवित्तए। अहाविहिमेव ठाणं ठाइत्तए।

२४. एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमाधारी अनगार को शरीर का किंचित् भी मोह नही होता, वह आने वाले सब परीषहो को सम्यक् प्रकार से सहन करता है। वह निर्जल अष्टम–भक्त (तेला) करके ग्राम या राजधानी के बाहर जाकर शरीर को थोडा–सा आगे की ओर झुकाकर एक पुद्गल (पदार्थ) पर दृष्टि

स्थिर रखते हुए अनिमेष नेत्रो से, निश्चल अंगों से, सब इन्द्रियो को गुप्त रखकर दोनो पैरो को संकुचित कर, भुजाओं को जानु पर्यन्त लम्बी करके कायोत्सर्ग करता है।

उसको वहाँ पर देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी जितनी भी बाधाएँ उत्पन्न हो, उनको सम्यक् प्रकारेण सहन करना चाहिए।

यदि उसको वहाँ मल-मूत्र की शंका उत्पन्न हो जाय तो उसको रोकना नही चाहिए, किन्तु किसी पूर्व प्रतिलेखित (देखे हुए) स्थान पर उनका त्यागकर फिर अपने स्थान पर आकर विधिपूर्वक कायोत्सर्गादि क्रियाओं मे सलग्न हो जाना चाहिए।

24. The monk practicing *Bhikshu Pratima* for one night has absolutely no attachment for his body He endures all the sufferings that fall on his way with total patience. After accepting three days fast without water, he comes out of the village or town concerned He bends his body a little forward and fixes his gaze on one particular thing He then continuously looks at it without closing the eyes and without any movement of any part of his body. He keeps all his senses fully under his control and the feet close while his arms are extended up to his knees He meditates in this posture.

In case any suffering is caused by any celestial being, human being or animal, he should bear it properly and patiently

He should not control any instant call of nature but should relieve himself at the place already examined by him and then return to his place and engage himself in meditation as before

सम्यक् पालन नही होने पर हानि **LOSS DUE TO FAILURE IN RIGHT PRACTICE**

२५. एगराइयं भिक्खुपडिमं अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहियाए, असुभाए, अक्खमाए, अणिसेस्साए, अणाणुगामियत्ताए भवंति। तं जहा—(१) उम्मायं वा लभेज्जा, (२) दीहकालियं वा रोगायंकं वा पाउणेज्जा, (३) केवलि-पण्णत्ताओ धम्माओ भंसिज्जा।

२५. एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का सम्यक् प्रकार से पालन न करने वाले अनगार को ये तीन स्थान अहित के लिए, अशुभ के लिए, अक्षमा (अकल्याण) के लिए, मोक्षमार्ग से च्युत करने वाले और आगामी काल मे दु ख दु खदायी होते है। जैसे-(१) उन्माद की प्राप्ति, (२) दीर्घकालिक रोग एव आतक की प्राप्ति, तथा (३) वह केवलीभाषित धर्म से भ्रष्ट हो सकता है।

25. A monk who is not able to properly practice the said *pratima* of one night duration, gets three stages of downfall, which cause loss to him, demerit to him, his downfall from the path of liberation, and great suffering in future. They are—(1) Getting mentally deranged

(2) Sufferance from disease or terror for a long period (3) Downfall from the *Dharma* (the noble path) stated by Omniscients.

सम्यक् पालन होने पर लाभ GAIN DUE TO PROPER PRACTICE OF PRATIMA

२६. एगराइयं भिक्खुपडिमं सम्मं अणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा हियाए, सुहाए, खमाए, निसेस्साए, अणुगामियत्ताए भवंति। तं जहा–(१) ओहिनाणे वा से समुपज्जेज्जा, (२) मणपज्जवनाणे वा से समुपज्जेज्जा, (३) केवलनाणे वा से असमुप्पन्न–पुव्वे समुपज्जेज्जा।

एवं खलु एसा एगराइया भिक्खुपडिमा अहासुयं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता, पालित्ता, सोहित्ता, तीरित्ता, किट्टित्ता, आराहित्ता आणाए अणुपालित्ता यावि भवति।

२६. एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा का अच्छी तरह से पालन करते हुए अनगार को (आगे बताये गये) ये तीन स्थान हित, सुख, शक्ति या शान्ति मोक्ष, और सुखद भविष्य लिए होते है। जैसे–उसको (१) अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है, अथवा (२) मन·पर्यवज्ञान उत्पन्न हो जाता है, अथवा (३) पहले उत्पन्न नही हुआ ऐसा केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

इस प्रकार यह एक रात्रि की भिक्षुप्रतिमा जिस प्रकार सूत्रो मे कही गई है उसके अनुसार, आचार और ज्ञानादि मार्ग के अनुसार, यथातथ्य रूप से सम्यक् प्रकारेण काया से स्पर्श कर, पालन कर, शोधन कर, पूर्ण कर, कीर्तन कर तथा आराधना कर जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है।

26. A monk who properly practices the *bhikshu pratima* of one night duration gets the following three stages of benefit, which are helpful for his welfare, pleasure, power, peace, liberation and excellent future For instance—(1) He attains *Avadhi-jnana* (extrasensory perception of the physical dimension, something akin to clairvoyance), (2) He attains *Manah-paryav Jnana* (extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings; something akin to telepathy), or (3) He gets *Keval-jnana* (omniscience) that he had never got earlier.

So this *bhikshu pratima* of one night duration is practiced strictly according to the procedure mentioned in the scripture, the code mentioned therein and the path laid down by *Tirthankar* It is properly adopted, practiced, completed, appreciated, observed, and followed in the conduct

विवेचन : पहली प्रतिमा से दशमी प्रतिमा तक सात मास और २१ दिन मे पूर्ण होती है। इसके पश्चात् ११वी प्रतिमा का आराधनाकाल तीन दिन का है जिसे इस प्रकार समझाया गया है–

आठवे महीने के बावीसवे दिन, पूर्व प्रतिमा के उपवास का पारणा कर, तेवीसवे दिन उपवास करके, चौबीसवे दिन बेला करके ग्यारहवी प्रतिमा का पालन किया जाता है। बेले मे दिन–रात सीधे खडे रहकर कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग मे हाथो को शरीर से सटाकर जानु पर्यन्त सीधे रखना, दोनो पाँवो को सकुचित करना, वक्षस्थल और मुख कुछ आगे झुकाकर सीधे खडे रहना होता है। इस प्रकार अहोरात्रि के कायोत्सर्ग से इस प्रतिमा का आराधन किया जाता है, शेष सभी वर्णन पूर्व प्रतिमाओ के समान है।

पच्चीसवें दिन बेले का पारणा करके, छब्बीसवे, सत्तावीसवे और अट्ठावीसवे–इन तीन दिनो मे तेला किया जाता है। तेले के दिन सम्पूर्ण रात्रि का कायोत्सर्ग करके बारहवी प्रतिमा का पालन किया जाता है। कायोत्सर्ग की विधि ग्यारहवीं प्रतिमा के समान है किन्तु इस प्रतिमा मे सारी रात एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर रखना, आँखो की पलकें भी नही झपकाना, अगोपागो को सर्वथा स्थिर रखना, सभी इन्द्रियो को अपने विषय से निवृत्त रखना तथा किसी प्रकार का उपसर्ग होने पर कायोत्सर्ग मुद्रा से किंचित् भी विचलित न होना, यह इस बारहवी प्रतिमा की विशेषता है।

एक पुद्गल पर दृष्टि रखने का तात्पर्य यह है कि सब ओर से दृष्टि हटाकर नासिका या पैरो के नखो पर दृष्टि को स्थिर करना। इससे मन स्वत ही स्थिर हो जाता है।

इस बारहवी प्रतिमा मे उपसर्ग अवश्य होते है, ऐसा भी कहा जाता है। किन्तु सूत्र मे इतना ही कथन है कि सम्यग् आराधना का यह सुफल है और असम्यग् आराधना का यह कुफल है।

आठवे महीने के २९वे दिन तेले का पारणा करके बारह ही प्रतिमा पूर्ण कर दी जाती हैं। इस प्रकार मिगसर की एकम से प्रतिमाएँ प्रारम्भ की जाये तो आषाढी पूनम के पूर्व १२ भिक्षुप्रतिमाओ की आराधना पूर्ण हो जाती है।

बारह भिक्षुप्रतिमा की उग्र साधना करने वाले श्रमण कर्मों की महान् निर्जरा करके आराधक होकर शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करते है। *(उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म सा कृत विवेचन के आधार पर)*

Elaboration—The total duration of first to tenth *pratima* is seven months and twenty one days thereafter the practice of eleventh *pratima* takes another three days which is described as under .

On the 22nd of the eighth month, after breaking the fast relating to earlier *pratima,* eleventh *pratima* is practiced by observing complete fast without water on both the 23rd and the 24th day One has to remain standing straight in meditation (*Kayotsarg*) The hands should be kept straight touching the body and extended up to the knee, the feet should be joined, the chest and the face should be a little bent forward Thus this *pratima* is practiced in *Kayotsarg* for 24 hours The remaining description is identical to earlier mentioned *pratima*s

On the 25th day, the two days fast is concluded and thereafter on the following three days namely the 26th, 27th and the 28th day three days fast is observed. All these three nights are spent in *Kayotsarg* (meditation) and thus the twelfth *pratima* is practiced. The method of *Kayotsarg* is the same as mentioned earlier in case of eleventh *pratima* But in this *pratima*, the eye is kept fixed on one substance for the whole night. No blinking should occur. The parts of the body should be totally motionless. The sense organs should be detached from their sensual activities. In case any type of suffering occurs, the posture of *Kayotsarg*

should not be disturbed at all. This is the special feature of twelfth *pratima*.

The essence of keeping eye on one substance is that the attention should be withdrawn from all sides and kept fixed on the tip of the nose or nails of the feet. This way the mind automatically becomes stable.

It is also said that sufferings occur during the course of twelfth *pratima*. However, in the aphorism the statement is only to this extent that proper practice of this *pratima* is beneficial and improper practice is harmful.

On the 29th day of the eighth month, the three days fast is concluded. Thus the practice of twelfth *pratima* is completed. Therefore, in case these *pratimas* are started from the first day of Migasar, it will conclude before the fifteenth day of the bright fortnight of Asadh (a month in Indian Calendar).

The monks, who undergo hard practice of *Bhikshu Pratimas*, shed *karmas* in plenty and attain liberation soon *(based on the commentary by Upadhyaya Muni Kanhaiyalal ji M Sa)*

२७. एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ।

त्ति बेमि।

॥ इति भिक्खुपडिमा णामं सत्तमी दसा समत्ता ॥

२७. इस प्रकार स्थविर भगवन्तो ने बारह भिक्षुप्रतिमाएँ प्रतिपादन की है।

इस प्रकार मै कहता हूँ।

॥ भिक्षुप्रतिमा नामक सातवीं दशा समाप्त हुई ॥

27. Reverend *Sthavirs* have propounded twelve *bhikshu pratimas* in this manner

So I say

● SEVENTH DASHA CONCLUDED ●

अष्टम दशा : पर्युषणा कल्प
EIGHTH DASHA : PARYUSHANA KALP

प्राक्कथन

इस सूत्र की आठवीं दशा का नाम पर्युषणा कल्प है। ऐसी परम्परा गत मान्यता है कि वर्तमान मे जो कल्पसूत्र पर्युषण में पढा जाने वाला है, जिसमे २४ तीर्थकरों का चरित्र, चातुर्मास समाचारी और स्थविरावली का वर्णन है। पहले यह दशाश्रुतस्कन्ध का ही एक भाग था। किन्तु बहुत समय पश्चात् उसको स्वतंत्र आकार प्रदान कर दिया गया और आठवी दशा मे मात्र भगवान महावीर के पच कल्याणको का उल्लेख मात्र रह गया।

दशाश्रुतस्कन्ध एवं कल्पसूत्र के रचनाकार श्रुतकेवली भद्रबाहु को मानने से भी इस धारणा की पुष्टि होती है। फिर भी इतिहासकारो मे इस विषय पर मतभेद भी है। अस्तु यहाँ सक्षिप्त पाठ प्रस्तुत है।

INTRODUCTION

The eighth *Dasha* of this *Sutra* is *Paryushana Kalp*. It is traditionally believed that *Kalp Sutra,* which contains the life sketch of all the twenty four *Tirthankars*, their conduct during *chaturmas* and the ascetic lineage of Bhagavan Mahavir (*Sthaviravali*), and is read during *Paryushana* (the holy week of Jains), was originally a part of *Dashashrut Skandh.* After a long period it was removed from *Dashashrut Skandh* and given an independent shape. Consequently the present text of this eighth chapter (*Dasha*) is left with just brief mention of five auspicious occasions (*Panch Kalyanaks*) in the life of Bhagavan Mahavir

The belief that Bhadrabahu is the author of both *Dashashrut Skandh* and *Kalp Sutra* supports this assertion However, historians still have difference of opinion in this regard Here the brief reading is stated. ❑❑

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था, तं जहा–

(१) हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते।

(२) हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए।

(३) हत्थुत्तराहिं जाए।

(४) हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए।

(५) हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।

(६) साइणा परिणिव्वुए भगवं जाव भुज्जो भुज्जो उवदंसेइ।

॥ इति पज्जोसणा नाम अट्ठमी दसा समत्ता ॥

१. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पाँच हस्तोत्तर (उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र) हुए थे।

(१) भगवान उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे देवलोक से च्यव कर गर्भ मे आये।

(२) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे भगवान का एक गर्भ से दूसरे गर्भ में सहरण हुआ।

(३) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जन्मे।

(४) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में मुण्डित होकर आगार वास से अणगार धर्म मे प्रव्रजित हुए।

(५) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे भगवान को अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात निरावरण कृत्स्न परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

(६) स्वाति नक्षत्र मे भगवान परम निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हुए यावत् भगवान ने बारम्बार स्पष्ट रूप से धर्म को समझाया।

1. In that period during that time five auspicious events in the life of Mahavır were associated with Uttara-phalguni *nakshatra*

(1) Bhagavan Mahavır descended from heaven in Uttara-phalguni *nakshatra* (constellation) and was conceived in the womb of his mother.

(2) In Uttara-phalguni *nakshatra*, Bhagavan (in the form of embryo) was transferred.

(3) He took birth in Uttara-phalguni *nakshatra*.

(4) He adopted *monk-hood* after getting his hair plucked in Uttara-phalguni *nakshatra*

(5) He got infinite, unmatched, unrestricted, unveiled, perfect and supreme omniscience (*Keval-jnana* and *Keval-darshan*) in Uttara-phalguni *nakshatra*

(6) In Swati *Nakshatra* Bhagavan Mahavır attained liberation... and so on up to . clarified repeatedly all aspects of Dharma.

विवेचन : आचाराग सूत्र २/१५ तथा कल्पसूत्र मे भगवान महावीर के उक्त च्यवन आदि की तिथियाँ इस प्रकार है–

(१) **च्यवन**–चौथे आरे के केवल ७५ वर्ष तथा आठ महीने पन्द्रह दिन शेष रहने पर आषाढ शुक्ला छठ की रात्रि मे उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान महावीर का जीव दशवे स्वर्ग के वर्द्धमान नामक महाविमान से च्यवकर ब्राह्मण कुण्डपुर वे ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा माता की कुक्षि मे प्रविष्ट हुआ।

(२) **गर्भ संहरण**–तिरासी वी रात्रि मे आश्विन कृष्णा १३ की रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे देवानन्दा माता की कुक्षि मे क्षत्रिय कुण्डपुर के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला देवी की कुक्षि में सौधर्मेन्द्र शक्र की आज्ञा से हरिणैगमेषी देव द्वारा सहरित स्थानान्तरित किये गये।

(३) जन्म—चैत्र शुक्ला १३ की मध्य-रात्रि के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में त्रिशला क्षत्रियाणी ने सुख व आरोग्यपूर्वक पुत्र रत्न के रूप में भगवान महावीर को जन्म दिया।

(४) दीक्षा—कुमार वर्द्धमान २८ वर्ष के होने पर उनके माता-पिता का स्वर्ग हो गया। उसके २ वर्ष पश्चात् (३० वर्ष की आयु में) मृगसिर कृष्णा १० के अपरान्ह (चतुर्थ प्रहर में) उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में ससार का त्याग कर दो दिन की निर्जल तपस्या मे स्वय अपने हाथो से केश लुंचन कर प्रव्रजित हुए।

(५) केवलज्ञान—दीक्षा के १२ वर्ष छह मास पूर्ण होने पर वैशाख शुक्ला दशमी के चतुर्थ प्रहर मे ऋजु बालुका नदी के किनारे पर श्यामाक गाथापति के क्षेत्र (खेत) मे शाल वृक्ष के नीचे दो दिन के निर्जल उपवास से गोदोहिका आसन मे सूर्य के सम्मुख ध्यानस्थ थे। उस समय चार घनघाती कर्मों का नाश करने पर श्रमण वर्द्धमान को केवलज्ञान-केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। उस समय भी चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ योग कर रहा था।

(६) परिनिर्वाण—केवली चर्या के तीसवें वर्ष समग्र जीवन के साढे बहत्तर वर्ष पूर्ण होने पर श्रमण भगवान महावीर राजगृह के निकटवर्ती पावापुरी के हस्तिपाल राजा की रज्जुग सभा मे चातुर्मास स्थित थे। कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि मे जब भगवान महावीर निर्जल दो दिन (बेले) के उपवासी थे। तथा १६ प्रहर तक निरन्तर धर्म देशना कर चुके थे। अमावस्या की पश्चिम रात्रि मे स्वाति नक्षत्र के योग मे श्रमण भगवान महावीर ने समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया।

सक्षेप मे भगवान महावीर के जीवन के ये बिन्दु है, जिनका विस्तार आचारांग तथा कल्पसूत्र आदि मे प्राप्त होता है। कल्पसूत्र का यही अश आठवीं दशा के रूप मे यहाँ सूत्रबद्ध किया गया है।

॥ अष्टम दशा समाप्त ॥

Elaboration—The dates of descent of Bhagavan Mahavır ın *Acharanga Sutra* 2/15 and *Kalp Sutra* are as under.

(1) Descent—When only 75 years 8 months and 15 days of fourth stage (*Ara*) of the present tıme-cycle (*Avasarpıni* tıme cycle) were left, on the sixth nıght of bright fortnıght of Ashadh when moon was ın Uttara-phalgunı constellatıon, the soul of Bhagavan Mahavır descended from the great celestial vehicle called Vardhaman and entered the womb of Devananda, wıfe of Brahmin Rıshabh Datt of Kundpur.

(2) Transfer of Embryo—On the 43rd night of conception when it was the thirteenth nıght of dark fortnight of Ashvin ın Uttara-phalguni *nakshatra*, Hıranaıgameshı Dev under the order of Indra, master of Saudharma Dev-lok, transferred the embryo of Devananda into the womb of Trishala

(3) Birth—Queen Trishala, a Kshatriya woman, gave birth to Bhagavan Mahavir at midnight on the thırteenth date of bright fortnight of Chaitra without any pain and at that time ıt was Uttara-phalguni constellation (*nakshatra*)

(4) Diksha (Renunciation)—Prince Vardhaman was 28 years of age when his parents died. Two years later at the age of thirty years, during the fourth quarter of the tenth day of the dark fortnight of Mrigasir in Uttara-phalguni *nakshatra*, while observing two day complete fast without water, he plucked the hair of his head himself and renounced the world.

(5) Omniscience (Keval Jnana)—After completing a period of twelve years six months and fifteen days, during the fourth quarter of the tenth day of bright fortnight of Vaisakha at the bank of stream Rijubalika under a Sal tree in the farm of nobleman Shyamaka, he was observing two day complete fast without water and sitting in meditation in the posture of a milkman milking a cow and facing the sun. He then shed all the four soul affecting *Karmas* and attained omniscience (*Keval Jnana*) and perfect perception (*Keval Darshan*). At that time also the moon was in Uttara-phalguni *nakshatra*.

(6) Salvation (Pari-nirvana)—In the thirtieth year of omniscience when Bhagavan Mahavir had completed seventy two and a half years of his age, he has staying in the assembly hall (*rajjug sabha*) of king Hastipal at Pavapuri near Rajagriha. It was the fifteenth day of dark fortnight of Kartik. Bhagavan Mahavir was then observing a two day fast without water and he had continuously delivered lecture on scriptures for 16 quarters (48 hours) When in the later part of the night, it was Svati *nakshatra*, Bhagavan Mahavir destroyed all the *karmas* and attained liberation (Moksha)

In brief, these are the important events in a nutshell pertaining to the life of Bhagavan Mahavir and there detailed account is available in *Acharanga Sutra* and *Kalp Sutra* This account out from *Kalp Sutra* has been narrated here as eighth *Dasha*

● EIGHTH DASHA CONCLUDED ●

नवम दशा : मोहनीय स्थान
NINTH DASHA : STAGES (CAUSES) OF DELUSION

प्राक्कथन

प्रस्तुत नवम दशा मे मोहनीय कर्मबध के तीस स्थान (कारण) बताये हैं। मोहनीय कर्म आठ कर्मों में सबसे प्रमुख और जीव को विवेक शून्य व मूढ बना देने वाला कर्म है। इसकी उत्कृष्ट बंध स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागर है, जो सब कर्मों मे उत्कृष्ट स्थिति है।

यों तो मोहनीय कर्म बध के अन्य भी अनेक कारण हो सकते है किन्तु यहाँ पर तीस ऐसे कारणो का उल्लेख है, जिनमे आत्म-परिणामो मे अत्यधिक क्रूरता, निर्दयता तथा कलुषता आती है। जो व्यावहारिक जीवन मे भी अति निकृष्टता व नीचता के द्योतक है। इसी कारण यहाँ मोहकर्म को **'महामोहनीय'** कहा है।

इनमे मुख्यत· साधु को लक्ष्य किया गया है, किन्तु सामान्य रूप मे प्रत्येक व्यक्ति के लिए ही यह महत्त्वपूर्ण उपदेश है।

INTRODUCTION

In nınth *Dasha*, thırty causes of deludıng *Karmıc* bondage have been narrated Out of all the eight *karmas*, deluding (*mohanıya*) *karma* is the worst. It makes one devoid of ratıonalıty and foolısh The maxımum duratıon of thıs bondage ıs 70 Kotakoti Sagar (a conceptual unıt of time) and thıs ıs the hıghest duratıon among all the eıght *karmas*

There can be many causes of bondage of deludıng *karma* but here thırty such causes have been enumerated that involve extreme brutalıty, cruelty, and callousness of ıntent or attitude. These are also signs of extreme meanness and ıgnominy ın socıal lıfe That ıs the reason that *mohanıya karma* has been named as *maha-mohanıya karma* (extremely deludıng *karma*) here

Prımarıly thıs lesson ıs addressed to a monk but generally speakıng, thıs lesson contains ımportant message for every person. ❑❑

महामोहनीय कर्म-बंध के तीस स्थान MAHA-MOHANIYA KARMA—THIRTY CAUSES OF ITS BONDAGE

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। वण्णओ। पुण्णभद्दे नामं चेइए। वण्णओ। कोणिय राया, धारिणी देवी। सामी समोसढे परिसा निग्गया। धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

"अज्जो !" ति समणे भगवं महावीरे बहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी–

"एवं खलु अज्जो ! तीसं मोहणिज्जठाणाइं जाइं इमाइं इत्थी वा पुरिसो वा अभिक्खणं-अभिक्खणं आयारेमाणे वा, समायारेमाणे वा मोहणिज्जत्ताए कम्मं पकरेइ।" तं जहा–

१. उस काल और उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नाम का चैत्य (उद्यान) था। नगरी एव उद्यान का विस्तृत वर्णन (उववाईसूत्र से) जानना चाहिए।

वहाँ कोणिक राजा राज्य करता था, उसके धारिणी देवी पटरानी थी, श्रमण भगवान महावीर स्वामी ग्रामानुग्राम विचरते हुए वहाँ पधारे। परिषद् चम्पा नगरी से निकलकर धर्मश्रवण के लिए पूर्णभद्र चैत्य मे आई। भगवान ने धर्म का सम्यक् स्वरूप बताया। धर्म श्रवण कर परिषद् चली गई।

श्रमण भगवान महावीर ने सभी निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थनियो को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा-

"हे आर्यो ! जो स्त्री या पुरुष इन तीस मोहनीय-स्थानो का सामान्य या विशेष रूप से पुनः-पुन आचरण/आसेवन करते हैं, वे महामोहनीय कर्म का बन्ध करते है।" वे इस प्रकार हैं-

1. At that time, during that period there was a city called Champa. In it there was Puranbhadra garden Detailed description of the city and its garden can be known from *Uvavayi Sutra*.

King Konik was ruling there Dharani was his chief queen Once during his wanderings, Shraman Bhagavan Mahavir arrived there. The people came out of Champa city in order to listen to his spiritual discourse in Puranbhadra garden *Bhagavan* explained true nature of spirituality (Dharma) and thereafter congregation dispersed

Bhagavan Mahavir called all the monks and nuns of his order and said –

'O the blessed ! Any man or woman who repeatedly has in his conduct these thirty causes of delusion in an ordinary manner or in a specific manner, he accumulates the bondage of highly deluding or *maha-mohaniya karmas*

These causes are as under ·

हिंसा दोष SIN OF VIOLENCE

(१) जे केइ तसे पाणे, वारिमज्झे विगाहिआ।
उदएणाऽक्कम्म मारेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(२) पाणिणा संपिहित्ताणं, सोयमावरिय पाणिणं।
अंतो नदंतं मारेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(३) जायतेयं समारब्भ, बहुं ओरुंभिया जणं।
अंतो धूमेण मारेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(४) सीसम्मि जो पहणइ, उत्तमंगम्मि चेयसा।
विभज्ज मत्थयं फाले, महामोहं पकुव्वइ॥

चित्र परिचय-४

Illustration No. 4

महामोहनीय कर्मबंध के हेतु (१)

महामोहनीय कर्म सबसे दीर्घकालिक और दु खदायी है। इसके बध हेतुओ मे कुछ हेतु इस प्रकार है। जैसे-

१ किसी प्राणी को पकडकर, हाथ-पैर बाँधकर निर्दयतापूर्वक उसे तेज जल धारा मे डुबोकर मार देना।

२ किसी के मुँह, नाक आदि श्वास लेने के द्वारो को रोककर, उसकी दम घोट देना, आर्त्तनाद करने पर भी दयाहीन होकर उसे मार डालना।

३ बहुत से प्राणियो को किसी कमरे या भवन आदि मे बन्द कर आग लगाकर धुएँ से निर्दयतापूर्वक उनका दम घोट देना, उन्हे तडपा तडपाकर मारना।

४ किसी के मस्तक पर अथवा गर्दन आदि कोमल अगो पर क्रूरतापूर्वक तीव्र शस्त्र-प्रहार कर उसका छेदन-भेदन कर देना।

५ जो स्वय किसी की हत्या आदि दुष्ट कर्म करके, किसी दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर झूठा आरोप लगाता है कि "यह हत्या तुमने की है। तुम ही हत्यारे हो।" इस प्रकार झूठा दोषारोपण करना।

इस प्रकार के दुष्कर्म करने पर मन मे अत्यन्त क्रूरता व कपट भाव रहता है। जिसके कारण महामोहनीय कर्म का वन्ध होता है।

-दशा ९/१, २ ३, ४, ८, पृ १२७

CAUSES OF BONDAGE OF MAHAMOHANIYA KARMA (1)

Mahamohaniya karma (highly deluding karma) is the most long lasting and tormenting of all karmas Some of the causes of its bondage are as follows—

1 To catch a living being, tie his limbs and cruelly kill by drowning him in a rapid stream

2 To suffocate someone by blocking his mouth and nose and kill him without any mercy in spite of his pathetic wailing

3 To confine many persons in a room or a house, set it to fire and cruelly suffocate them to meet their death writhing.

4 To callously hit the delicate parts, like head and neck, of someone with sharp edged weapon to cut and pierce him

5 To falsely blame someone for some self committed heinous crime—"You have committed this murder You are the murderer"

When committing such deeds mind is filled with extreme cruelty and deceit As a consequence of this, one attracts bondage of highly deluding karmas

—Dasha 9/1, 2, 3, 4, 8, p 127

महामोहनीय कर्म बन्ध के हेतु (१)

महामोहनीय कर्म बन्ध के हेतु (२)

चित्र परिचय-५

Illustration No. 5
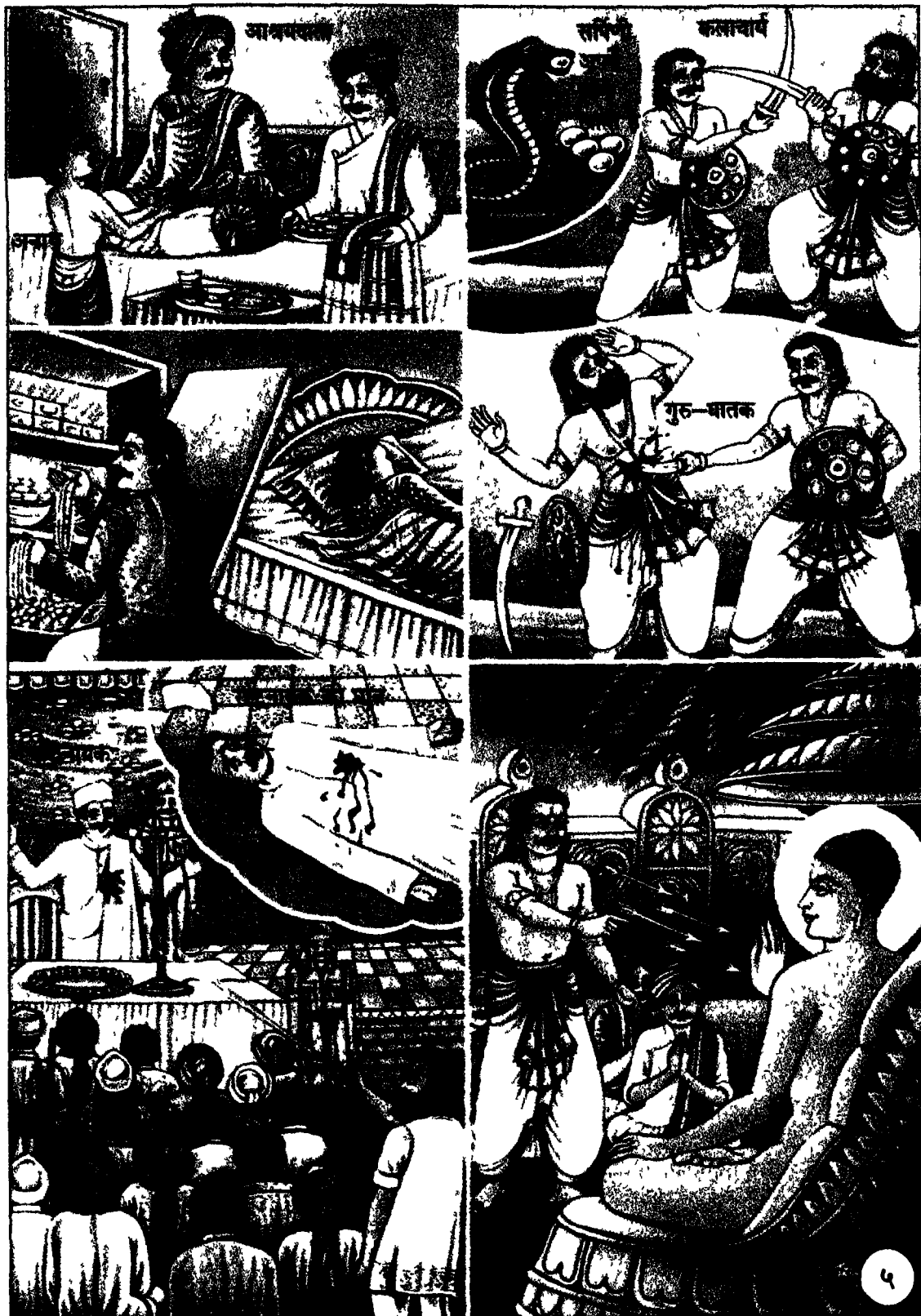
महामोहनीय कर्मबंध के हेतु (२)

निम्न प्रकार के क्रूर कर्म महामोहनीय कर्मबन्ध के हेतु है। जैसे-

१ कोई एक दीन, अनाथ, असहाय व्यक्ति किसी दयालु पुरुष का आश्रय पाकर उसके सहयोग से समर्थ बन जाता है। खाने, कमाने योग्य बनकर समृद्धि प्राप्त कर लेता है। वह पापात्मा कृतघ्न बनकर उसी आश्रयदाता उपकारी की चोरी आदि करके, उसका धन हरण करता है। तो ऐसा कृतघ्न व्यक्ति महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

२ जिस प्रकार सर्पिणी अपने ही अण्डो को खुद खा जाती है। वैसे ही कोई व्यक्ति किसी कलाचार्य (शिक्षक) अथवा धर्माचार्य आदि के पास विद्या व ज्ञान प्राप्त करके धोखे से उनको घात कर देता है। तो वह मूर्ख व्यक्ति महामोहनीय कर्म का बध करता है।

३ जो राष्ट्र का कर्णधार या मार्गदर्शक नेता है, लोकप्रिय है, हजारो लोको का भला करने वाला है। कोई दुष्ट यदि उस राष्ट्र के कर्णधार की हत्या करता है। तो वह देशद्रोही महामोहनीय कर्म का बध करता है।

४ अनन्त ज्ञान-दर्शन के धारक जिनेश्वर देव आत्मा के कल्याण का मार्ग बताते है। उन वीतराग लोकोपकारी जिनेन्द्र भगवान की निन्दा करने वाला तथा अवर्णवाद बोलने वाला अज्ञानी मूढात्मा महामोहनीय का बधन करता है।

दशा ९/१३, १४, १५, १६, १९ पृ १३१

CAUSES OF BONDAGE OF MAHAMOHANIYA KARMA (2)

Following are some cruel actions that cause bondage of Mahamohaniya karma—

1 Some pitiable helpless orphan becomes competent with the help of some kind person He is able to earn his living and becomes rich That sinful person becomes thankless and deprives his supporter of his wealth through deceit and other means Such thankless person attracts bondage of highly deluding karmas

2 As a snake eats its own eggs, in the same way when a person deceitfully kills his own teacher and guide under whom he had acquired all knowledge and skill Such ungrateful person attracts bondage of highly deluding karmas

3 When a rascal kills the leader of nation who guides the nation, is popular and beneficent for masses That traitor attracts bondage of highly deluding karmas

4 Jineshvar Dev, endowed with infinite knowledge and perception, shows the path of beatitude of soul The ignorant fool who criticizes and slanders that detached and beneficent Jinendra Bhagavan attracts bondage of highly deluding karmas

—Dasha 9/13, 14, 15, 16, 19, p 131

(५) सीसं वेढेण जे केइ, आवेढेइ अभिक्खणं।
तिव्वासुभ-समायारे, महामोहं पकुव्वइ॥

(६) पुणो-पुणो पणिहीए, हणित्ता उवहसे जणं।
फलेण अदुव दंडेणं, महामोहं पकुव्वइ॥

(१) जो कोई व्यक्ति त्रस प्राणियो को जल में डुबोकर या प्रचण्ड वेग वाली तीव्र जलधारा में डालकर डुबो देता है, मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२) जो व्यक्ति किसी प्राणी के मुँह, नाक आदि श्वास लेने के द्वारो को हाथ से ढँककर या अवरुद्ध कर अव्यक्त शब्द घुर-घुर जैसा अन्तर्नाद करते हुए प्राणी को मारता है, वह महामोहनीय कर्म बाँधता है।

(३) जो बहुत से प्राणियो को एक घर, भवन बन्द कमरा या मण्डप आदि में घेर कर, अवरुद्ध कर, अग्नि के धुएँ से उन्हें निर्दयतापूर्वक मारता है, वह महामोहनीयकर्म का बन्ध करता है।

(४) जो किसी प्राणी के उत्तमांग-शिर पर या (गर्दन पर) दुष्ट भाव पूर्वक शस्त्र से प्रहार कर उसका भेदन-छेदन करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(५) जो व्यक्ति तीव्र अशुभ (क्रूर) परिणामों से किसी त्रस प्राणी के सिर को गीले चमडे के अनेक वेष्टनो से आवेष्टित करता है, लपेटता है। वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(६) जो किसी प्राणी को बार-बार छल पूर्वक धोखा देकर भाले से या डण्डे से मारकर हँसता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करतै है।

(1) A person drowns mobile living beings in rapid current of dreadful flowing water and thus kills them He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(2) A person covers or blocks the mouth, nose and other suchlike passages of a living being through which it breathes. Thereby it produces fricative invisible of blocked breathing and gets killed. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(3) A person collects many living being in one house, hall, closed room or pavilion, confines them and then cruelly kills them with smoke of a fire He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(4) A person hits with a weapon at the head or neck of a living being, with ill intent, piercing or cutting it. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(5) A person with extremely dreadful intent wraps the head of a living being in many layers of wet leather He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(6) A person deceives a living being, hits him with a spear or a rod and mocks him repeatedly. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

असत्य व कपट दोष SIN OF FALSEHOOD AND DECEIT

(७) गूढ़ायारी निगूहिज्जा, मायं मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(८) धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुमकासित्ति, महामोहं पकुव्वइ॥

(९) जाणमाणो परिसाए, सच्चामोसाणि भासए।
अक्खीण-झंझे पुरिसे, महामोहं पकुव्वइ॥

(१०) अणायगस्स नयवं, दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं, किच्चा णं पडिवाहिरं॥

उवगसंतंपि झंपित्ता, पडिलोमाहिं वग्गुहिं।
भोग-भोगे वियारेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(७) जो व्यक्ति गुप्त रूप से अनाचार सेवन करता है और फिर झूठ कर उसे मायाचार को छिपाता है, तथा और सूत्रो (जिनवाणी) के यथार्थ अर्थों को छुपाकर मनमाना अर्थ करता है। वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(८) जो निर्दोष व्यक्ति पर मिथ्या आक्षेप करता है, अपने दुष्कर्मों का उस पर आरोप लगता है। उसे कलकित करता है, जैसे-"तूने ही ऐसा कार्य किया है" इस प्रकार झूठ दोषारोपण करने वाला महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(९) जो भरी सभा मे जान-बूझ कर मिश्र भाषा (सच-झूठ का मिश्रण कर) बोलता है और निरन्तर कलह करता रहता है अथवा असत्य बोलकर कलह को उकसवा देता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१०) कोई कुटिल नीति वाला मत्री, राजा के हितचिन्तको को भरमाकर भडकाया या षड्यत्र रचकर राजा को राज्य से बाहर भेजकर स्वय राज्य-लक्ष्मी का उपभोग करने लगता है, उसकी रानियों का शील खण्डित करता है और विरोध व प्रतिकार करने वाले सामन्तो आदि का तिरस्कार करके उनके भोग्य पदार्थों में बाधा पहुँचाता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(7) A person secretly engages himself in bad conduct and then conceals his deceitful action by telling a lie. Further he intentionally conceals correct interpretation of scriptures and interprets them in a way that suits him. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(8) A person falsely accuses an innocent person of his own misdeeds. He blames such person uttering—'It is you alone who has committed such an act A person who makes such false accusation acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(9) A person intentionally speaks dubious language (mixture of truth and falsehood) in a big gathering and quarrels continuously Or, he instigates a strife by telling a lie. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(10) A cunning and conspiring minister misguides and inflames the well-wishers of the king and plots a conspiracy to send the king away from the kingdom and then enjoys the kingdom as well and violates the modesty of his queens Besides this he insults those officials who oppose him and deprives them of their facilities and comforts Due to such activities he acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

कुशील–सेवन SIN OF ENGAGING IN WRONG SEX

(११) अकुमारभूए जे केई, "कुमार–भूए त्ति हं" वए।
इत्थी–विसय–सेवी य, महामोहं पकुव्वइ॥

(१२) अबंभयारी जे केई, 'बभंयारी त्ति हं' वए।
गद्दहेव्व गवां मज्झे, विस्सरं नयइ नदं॥

अप्पणो अहिए बाले, मायामोसं बहुं भसे।
इत्थी–विसय गेहिए, महामोहं पकुव्वइ॥

(११) जो बालब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने आपको बालब्रह्मचारी कहता है और (गुप्त रूप मे) स्त्रियो के साथ विषय–भोग मे आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१२) जो ब्रह्मचारी नही होते हुए भी–"मै ब्रह्मचारी हूँ" इस प्रकार झूठ बोलता है। वह मानो गायो के बीच गधे के समान बेसुरा बकता है। अपनी आत्मा का अहित करने वाला ऐसा धूर्त पुरुष माया–युक्त झूठ बोलकर स्त्रियो मे आसक्त रहता हुआ महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(11) A person is not celebate since his birth but declares himself as celibate He secretly engages himself in sex with women and remains sexually attached. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(12) A person has not accepted the vow of celibacy but calls himself a celebate falsely He is like a donkey that shouts incoherently among cows He brings disgrace to his soul Such a cheat by telling lie deceitfully, remains attached to women He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

कृतघ्नता SIN OF INGRATITUDE

(१३) जं निस्सिए उव्वहइ, जस्साहिगमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तंसि, महामोहं पकुव्वइ॥

(१४) ईसरेण अदुवा गामेणं, अणीसरे ईसरीकए।
तस्स संपय–हीणस्स, सिरी अतुलमागया॥

इस्सा–दोसेण आविट्ठे, कलुसाविल–चेयसे।
जे अंतरायं चेएइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(१३) जिसका आश्रय व आलम्बन पाकर जो अपनी आजीविका कर रहा है और जिसकी सेवा करके व जिसके सहयोग से समृद्धि को प्राप्त हुआ है, वह उसी के धन का अपहरण या विनाश करता है, (ऐसा) महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१४) जो दीन–अनाथ व्यक्ति किसी स्वामी (मालिक) का या ग्रामवासियो का आश्रय पाकर उच्च स्थान को प्राप्त करता है और जिनकी सहायता से सर्वसाधनसम्पन्न बनता है, यदि ईर्ष्यायुक्त एवं कलुषितचित्त होकर उन आश्रय–दाताओ व उपकारियो के लाभ मे अन्तराय/बाधा उत्पन्न करता है तो वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(13) A person destroys or snatches the wealth of a person with whose support or assistance, he started his livelihood and whose service and help made him rich. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(14) A person was poor and orphan He with the help of his master or residents of the area got a high position and became wealthy having all sorts of comforts. In case out of jealousy or contemptuous mind, he causes hurdles in the benefits accruing to those who had given him help and support, he shall acquire bondage of *maha-mohaniya karmas*

विश्वासघात SIN OF VIOLATION OF TRUST

(१५) सप्पी जहा अंडउडं, भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइं पसत्थारं, महामोहं पकुव्वइ॥

(१६) जे नायगं च रट्ठस्स, नेयारं निगमस्स वा।
सेट्ठिं बहुरवं हंता, महामोहं पकुव्वइ॥

(१७) बहुजणस्स णेयारं, दीवं ताणं च पाणिणं।
एयारिसं नरं हंता, महामोहं पकुव्वइ॥

(१५) जिस प्रकार सर्पिणी अपने ही अण्डो को खा जाती है, उसी प्रकार जो अपने पालनकर्ता, सेनापति (नायक) तथा कलाचार्य (शिक्षक) या धर्माचार्य (गुरु) को मार डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१६) जो राष्ट्रनायक राजा आदि को, निगम (व्यापार मण्डल आदि) के नेता को तथा लोकप्रिय श्रेष्ठी को मारता है, उसका घात करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१७) जो बहुत लोगो के नेता की, तथा समुद्र मे द्वीप के समान अनाथ व असहाय जनो के रक्षक व सहायता करने वाले की हत्या करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(15) A female snake eats her own eggs. Similarly a person who kills his guardian, his leader, his teacher or his spiritual master, he acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(16) A person kills the head of the state, the head of the corporation, or a popular merchant of the area. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(17) A person kills a leader of masses or a great supporter of orphans and helpless like an island in an ocean. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

धर्म–भ्रष्टता SIN OF FALL IN SPIRITUALITY (DHARMA)

(१८) उवट्ठियं पडिविरयं, संजयं सुतवस्सियं।
विउक्कम्म धम्माओ भंसेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(१९) तहेवाणंत–णाणीणं, जिणाणं वरदंसिणं।
तेसिं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ॥

(२०) नेयाइअस्स मग्गस्स, दुट्ठे अवयरइ बहुं।
तं तिप्पयन्तो भावेइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(१८) जो पाप कर्मों से विरत होकर दीक्षा लेने वाले को तथा तपस्या करने वाले साधु को धर्म मार्ग से भ्रष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(१९) जो अज्ञानी पुरुष अनन्त ज्ञानदर्शनसम्पन्न जिनेन्द्र देव का अवर्णवाद–निन्दा करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२०) जो दुष्टात्मा के सत्य मार्ग की निन्दा करके अनेक भव्य जीवो को (सत्य मार्ग) से भ्रष्ट करता है तथा की द्वेषपूर्वक न्यायमार्ग अन्याय युक्त सिद्ध करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(18) A person causes downfall, from the path of spirituality, of a person who is prepared to adopt renunciation discarding worldly sinful

activities or of a monk who is already practicing austerities He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(19) An ignorant person (or person of wrong faith) talks ill of the omniscient *Tirthankar* having infinite knowledge and perception. He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(20) A bad person, condemning the right path of liberation, distracts many worthy beings from the right path He, out of jealousy, tries to prove the right path to be the wrong path He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

गुरु–अवज्ञा व मिथ्याभाषण DISOBEDIENCE OF GURU AND FALSE SPEECH

(२१) **आयरिय–उवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।**
ते चेव खिंसइ बाले, महामोहं पकुव्वइ॥

(२२) **आयरिय–उवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ।**
अप्पडिपूयए थद्धे, महामोहं पकुव्वइ॥

(२३) **अबहुस्सुए य जे केई, सुएणं पविकत्थइ।**
सज्झाय–वायं वयइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(२४) **अतवस्सिए जे केइ, तवेण पविकत्थइ।**
सव्वलोयपरे तेणे, महामोहं पकुव्वइ॥

(२५) **साहारणट्ठा जे केइ, गिलाणम्मि उवट्ठिए।**
पभू न कुणइ किच्चं, मज्झंपि से न कुव्वइ॥
सढे नियडी–पण्णाणे, कलुसाउलचेयसे।
अप्पणो य अबोहीए, महामोहं पकुव्वइ॥

(२१) जिन आचार्यों या उपाध्यायो की कृपा से श्रुत और आचार की शिक्षा प्राप्त की है। जो अज्ञानी उनकी ही अवहेलना व निन्दा करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२२) जो अहकारी व्यक्ति अपने आचार्य–उपाध्यायो की सम्यक् प्रकार से सेवा नही करता है तथा उनका आदर–सत्कार नही करता है और अपने ज्ञान का मिथ्या अभिमान करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२३) जो वास्तव मे बहुश्रुत नही होते हुए भी अपने आपको बहुश्रुत, स्वाध्यायी और शास्त्रो के रहस्य का ज्ञाता बताता है, वह (मिथ्याभिमानी) महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२४) जो वास्तव मे तपस्वी नही होते हुए भी अपने आपको तपस्वी बताता है, वह इस ससार मे सबसे बडा चोर है। ऐसा मिथ्या आत्म–प्रशसक महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२५) जो शक्ति तथा सामर्थ्य होते हुए भी रुग्ण व्यक्तियो की सेवा का महान् कार्य नही करता है अपितु 'मेरी इसने सेवा नहीं की है अत' मै भी इसकी सेवा क्यो करूँ' इस प्रकार सोचता व कहता है, वह महामूर्ख मायावी एवं मिथ्यात्वी कलुषितचित्त होकर अपनी आत्मा का अहित करता है, ऐसा व्यक्ति महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(21) A person insults and talks ill of those *Acharyas* and teachers (*Upadhyayas*) with whose blessings he got knowledge of scriptures and right conduct. Such a fool acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*.

(22) A person is egoistic He does not properly serve his *acharya* and teachers He does not respect them. He has a false pride of his knowledge He thus acquires bondage of *maha-mohaniya karmas*

(23) A person is not in reality an expert in scriptural knowledge but declares that he is *bahushrut* (expert), scholar and that he knows the secrets of scriptures. He accumulates deluding *karmas* of a high degree.

(24) A person is not practicing austerities in the prescribed manner but calls himself a *tapasvi* (practitioner of austerities). He accumulates delusion causing *karmas* of high degree.

(25) A person (monk) has the strength and capability of serving the sick but does not perform this great responsibility. He on the other hand thinks and says . "He has not looked after me So why should I serve him " Such a person is extremely foolish, deceitful and one having a polluted mind He commits downfall of his soul He accumulates delusion causing *karmas* of a high degree.

(२६) जे कहाहिगरणाइं, संपउंजे पुणो–पुणो।
सव्व तित्थाण–भेयाए, महामोहं पकुव्वइ॥

(२७) जे य आहम्मिए जोए, संपउंजे पुणो पुणो।
सहा–हेउं सही–हेउं, महामोहं पकुव्वइ॥

(२८) जे य माणुस्सए भोए, अदुवा पारलोइए।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ, महामोहं पकुव्वइ॥

(२९) इड्ढी जुई जसो वण्णो, देवाणं बलवीरियं।
तेसिं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ॥

(३०) अपस्समाणो पस्सामि, देवे जक्खे य गुज्झगे।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी, महामोहं पकुव्वइ॥

(२६) चतुर्विध संघ मे मतभेद पैदा करने के लिए (या फूट डालने के लिए) जो कलह के प्रसग बार-बार उपस्थित करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२७) जो प्रशसा प्राप्त करने के लिए अथवा दूसरों से मित्रता जोडने के लिए अधार्मिक योग करके वशीकरणादि का बार-बार प्रयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२८) जो मनुष्य अथवा देव सम्बन्धी भोगो की अतृप्ति के कारण उनकी बार-बार अभिलाषा करता रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(२९) जो व्यक्ति देवो की ऋद्धि (विमान सम्पदा), द्युति (शरीर व आभरणों की कांति) यश, वर्ण (सौन्दर्य) और बल-वीर्य (दिव्य सामर्थ्य) का अवर्णवाद (अवहीलना) निन्दा या उपहास करता है। वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(३०) जो अज्ञानी जिनेश्वर देव की पूजा के समान अपनी पूजा का इच्छुक होकर देव, यक्ष और असुरो को नहीं देखता हुआ भी कहता है कि "मैं इन सबको देखता हूँ, (वे मेरी सेवा करते है) ऐसा मिथ्याकारी महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है।

(26) A person creates repeatedly a situation leading to quarrel, lack of trust or infighting in the four-fold spiritual order (*Sangh*). He accumulates delusion causing *karmas* of a high degree

(27) A person in order to seek appreciation and friendship of others, repeatedly does non-spiritual bad activities that may subdue others He accumulates delusion causing *karmas* of high degree.

(28) A person feeling not satisfied with the sensual human and celestial comforts, desires them repeatedly He accumulates delusion causing *karmas* of a high degree

(29) A person mocks at the grandeur, brightness (of physical body and ornaments), status, beauty and power of celestial beings, condemns them and talks ill of them He collects deluding *karmas* of a high degree

(30) A person desires that he should be worshipped like a *Tirthankar* He therefore claims that he sees celestial beings, *Yakshas* and *asuras* (demons) and that they serve him although actually he does not see any such beings He speaks wrongly He accumulates delusion causing *karmas* of a high degree

उपसंहार CONCLUSION

एते मोहगुणा वुत्ता, कम्मंता चित्तवद्धणा।
जे उ भिक्खू विवज्जेज्जा, चरेज्जत्तगवेसए॥१॥

जं पि जाणे इतो पुव्वं, किच्चाकिच्चं बहुं जढं।
तं वंता ताणि सेविज्जा, जेहिं, आयारवं सिया॥२॥

आयार-गुत्ती सुद्धप्पा, धम्मे ठिच्चा अणुत्तरे।
ततो वमे सए दोसे, विसमासीविसो जहा॥३॥

सुचत्तदोसे सुद्धप्पा, धम्मट्ठी विदितायरे।
इहेव लभते कित्तिं, पेच्चा य सुगतिं वरं॥४॥

एवं अभिसमागम्म, सूरा दढपरक्कमा।
सव्वमोहविणिमुक्का, जाइमरणमतिच्छिया॥५॥

॥ इति नवम दसा समत्ता ॥

ये सभी मोह से उत्पन्न होने वाले, अशुभ कर्म का फल देने वाले, तथा चित्त की मलिनता को बढाने वाले दोष है। अतः भिक्षु इनका आचरण न करे, किन्तु सतत आत्मा की गवेषणा तथा आत्मा-दर्शन मे सलग्न रहे॥१॥

भिक्षु पूर्व मे (दीक्षा से पूर्व अथवा अज्ञानदशा मे) किये हुए अपने कृत्याकृत्यों को जानता हुआ उनका पूर्ण रूप से परित्याग करे और उन संयमस्थानो (श्रेष्ठ आचार) का सेवन करे, जिनसे कि वह आचारवान् बने॥२॥

जो भिक्षु पचाचार के पालन से आत्मा की रक्षा करता है, शुद्धात्मा है और श्रेष्ठ धर्म मे स्थित है, वह अपने दोषो को त्याग दे। जिस प्रकार 'आशिविष-सर्प', (आशीविष सर्प उगले हुए जहर को वापस नही पीता) विष का वमन कर देता है॥३॥

इस प्रकार दोषो को त्यागकर शुद्धात्मा, धर्मार्थी, भिक्षु मोक्ष के स्वरूप को जानकर इस लोक में यश-कीर्ति को प्राप्त करता है और परलोक मे सुगति को प्राप्त होता है॥४॥

जो दृढ पराक्रमी, शूरवीर भिक्षु इन सभी स्थानो को जानकर उन मोहबन्ध के कारणो का त्याग कर देता है, वह जन्म-मरण का अतिक्रमण करता है, अर्थात् ससार से मुक्त हो जाता है॥५॥

All these sins or faults are such in nature that arise out of sheer attachment, that are going to result in collecting *karmas* of demerit and that are going to increase pollution of the mind. Therefore a monk should not indulge in them. He should continuously and carefully engage himself in self-introspection and self-realization.

A *bhikshu* knowing fully well his wrong activities of the period (the period earlier to that of renunciation) should renounce them completely. He should follow such activities of restraint that may make him one of right conduct

A bhikshu who guards his self by practicing five-fold conduct, who is a pure soul, and who is stable in true *Dharma*, he should renounce his sins in the same way as an *Aashivish* snake discards his poison (and does not again sip the discarded poison)

After renouncing his faults, that pure soul of monk desirous of spirituality (*Dharma*) and fully aware of the nature of salvation, attains respect and honour in this world. In the next life-span (life after death), he gets meritorious state of existence

A *bhikshu* of great strength and courage, after knowing well all the above-said causes of highly deluding *karmas* discards all of them He crosses the jungle of births and deaths In other words he attains liberation from the mundane world

विवेचन · श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने साधु–साध्वियो को सम्बोधित कर महामोहनीय कर्मबन्ध के तीस स्थान कहे हैं। यद्यपि यतनापूर्वक व्यवहार करने वाला भिक्षु सामान्य पापकर्म का भी बन्ध नही करता है तथापि उसके लिए यहाँ महामोहनीय कर्मबन्ध के स्थानो का कथन किया गया है, जिसका प्रयोजन यह है कि साधना–पथ पर चलते हुए भी कभी कोई भिक्षु कषायो के वशीभूत होकर क्लेश, ममत्व, अभिमान और दुर्व्यवहार आदि दोषो से दूषित हो सकता है। अत जिनशासन के समस्त साधु–साध्वियो (गृहस्थो को भी) को लक्ष्य मे रखकर भगवान ने इन तीस महामोहनीय कर्मबन्ध स्थानो का कथन किया है ? इन तीस स्थानो मे साधक के आध्यात्मिक सद्‌गुणो व नैतिक मर्यादाओ को विशेष महत्त्व दिया गया है। हिंसा, क्रूरता, निर्दयता, असत्यभाषण, कुटिलता, माया सेवन, धोखा, कृतधूता दूसरो को अन्याय अनीति की शिक्षा देना, उपकारी की बात कर समाज व राष्ट्र के साथ द्रोह करना तथा तीर्थंकरो की निन्दा कर जनता को मार्ग भ्रष्ट करना आदि दुर्गुणो को महामोहनीय कर्म का बध हेतु बताकर इनसे बचने की शिक्षा दी गई है। सक्षेप मे इनमे वर्णित दुर्गुण व दुवृत्तियाँ इस प्रकार है–

(१) एक से छह स्थानो मे क्रूरता युक्त हिंसक वृत्ति,

(२) सातवे स्थान मे माया (कपट),

(३) आठवे स्थान मे असत्य आक्षेप लगाना,

(४) नवमे स्थान मे न्याय के प्रसग पर मिश्रभाषा के प्रयोग से कलहवृद्धि कराना,

(५) दसवे, पन्द्रहवे स्थान मे विश्वासघात करना,

(६) ग्यारहवे, बारहवे, तेवीसवे, चौबीसवे और तीसवे स्थान मे अपनी असत्य प्रशसा करके दूसरो को धोखा देने की प्रवृत्ति,

(७) तेरहवे, चौदहवे, पन्द्रहवे स्थान मे कृतघ्नता,

(८) सोलहवे, सत्रहवे स्थान मे अनेको के आधारभूत उपकारी पुरुष का घात करना,

(९) अठारहवे स्थान मे धर्म से भ्रष्ट करना,

(१०) उन्नीसवे स्थान मे ज्ञानी (सर्वज्ञ) का अवर्णवाद (निन्दा) करना,

(११) बीसवे स्थान मे न्यायमार्ग से विपरीत प्ररूपणा करना,

(१२) इक्कीसवे–बावीसवें स्थान मे आचार्यादि की अविनय आशातना करना,

(१३) पच्चीसवे स्थान मे शक्ति होते हुए कषायवश निर्दय बनकर रोगी की सेवा न करना,

(१४) छब्बीसवे स्थान मे बुद्धि के दुरुपयोग से सघ मे मतभेद पैदा करना,

(१५) सत्तावीसवें स्थान मे अत्यधिक कामवासना,

(१६) उनतीसवे स्थान मे देवो के विषय मे अवर्णवाद बोलना,

इन सब कारणो से महामोहनीय का कर्मबन्ध होता है।

मुमुक्षु साधक ऐसे कुकृत्यो को जानकर उनका त्याग करे। यदि पूर्व मे इनका सेवन किया हो तो उनकी आलोचना आदि करके शुद्धि कर ले। महामोहनीय कर्मबन्ध के इन स्थानो से विरत रहने वाला इस भव मे यशस्वी होता है और परभव मे सुगति प्राप्त करता है।

॥ नवम दशा समाप्त ॥

Elaboration—Addressing monks and nuns, Shraman Bhagavan Mahavir has stated thirty causes of bondage of delusion causing *karmas* Although behaving in a discerning manner, a *bhikshu* does not accumulate ordinary demeritorious *karmas*, yet causes of delusion bearing *karmas* have been mentioned here for him. It is because a *bhikshu* treading the spiritual path may under the influence of passions sometimes commits the faults of quarrelling, attachment, egoism, bad behaviour and the like Therefore, keeping monks and nuns of his order (and even householders) in view, Bhagavan has mentioned thirty causes of bondage of delusion bearing *karmas*.

A great importance has been given to spiritual qualities and moral limitation of the practitioner in the said thirty causes of deluding *karmas* Violence, cruelty, lack of compassion, falsity, cheating, crookedness in behaviour, deceitfulness, thankless nature, educating others about methods of injustice and immorality, killing those who had done any favour, spying or hatching a plot against the society or the nation and condemning *Tirthankars*, creating hatred in the common people about the right path of liberation—such are the causes of deluding *karmas* After describing these causes, they have been advised to avoid them In brief the bad qualities and bad behaviour described here are as under—

(1) First six causes relate to instinct of violence coupled, with cruelty

(2) The seventh cause mentions about deceit

(3) The eighth cause relates to wrong accusation.

(4) The ninth cause relates to use of distorted language (*Mishra bhasha*) and thus causing increase in the quarrel instead of doing justice.

(5) The tenth and fifteenth cause is to be untrustworthy

(6) The eleventh, twelfth, twenty third, twenty fourth, and thirtieth cause relate to instinct of false appreciation of oneself and of decrying others

(7) Thirteenth, fourteenth and fifteenth cause mention about thanklessness.

(8) Sixteenth and seventeenth causes relate to killing a benevolent person who was serving as a support to many people

(9) The eighteenth cause relates to falling from *Dharma*.

(10) The nineteenth cause relates to criticism of omniscient.

(11) The twentieth cause relates to interpreting the path of justice wrongly

(12) The twenty first and twenty second cause relate to rudeness towards *Acharya* and the like.

(13) The twenty fifth cause relates to not attending to an ill person under the influence of passions and due to lack of compassion although one has the requisite strength

(14) The twenty sixth cause relates to causing dispute in the religious organisation by use of logic in wrong direction

(15) The twenty seventh cause relates to very strong desire for sensual pleasures

(16) The twenty ninth cause relates to talking ill about celestial beings

The bondage of deluding *karmas* is created by all the said causes.

A practitioner of the path to salvation should understand all these causes and discard them. In case he had done any such non-spiritual act in the past he should repent for it and thus purify his soul A person who keeps himself renounced from these causes of deluding *karmas* is praised in the present life-span and attains good state of existence in the next.

● NINTH DASHA CONCLUDED ●

दसवीं दशा : निदान
TENTH DASHA : NIDAN

प्राक्कथन

इस दशमी दशा में निदान का वर्णन है। कुछ ग्रन्थो मे इसका 'आयतिट्ठाण अज्झयणं' नाम भी आता है। 'आयति' का अर्थ है 'संसार' या कर्मबन्ध ! ससार-भ्रमण का प्रमुख कारण है कर्मबन्ध और कर्मबन्ध का मुख्य हेतु है मोह, या मिथ्यात्व। मोह कर्म की प्रबलता से निदान किया जाता है। निदान करने पर सम्यक्त्व का नाश हो जाता है। दुर्गति प्राप्त होती है। जिससे ससार-भ्रमण बढ़ता है।

'निदान' शब्द का एक अर्थ है, छेदन या काटना। जिससे ज्ञान-दर्शन-चारित्र का छेदन या विदारण होता है उस क्रिया को यहाँ 'निदान' कहा है।

सामान्य भाषा मे निदान को हम तप-सयम की साधना का सौदा कह सकते है। जिस तप आदि का महाफल मिलने वाला होता है, उसके लिए अल्प फल की कामना करके तप आदि को बेच डालना 'निदान' है। इस अध्ययन का प्रारम्भ भगवान महावीर के समवसरण मे घटी उस विचित्र घटना से होता है, जिसमे श्रेणिक राजा व चेलना महारानी के सुख-ऐश्वर्य-सौभाग्य को देखकर श्रमण-श्रमणी मोहग्रस्त होकर उसी प्रकार के भोग-ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए निदान कर बैठते है।

भगवान महावीर उन श्रमणो को सम्बोधित करके निदान का कटुफल बताकर उनकी दोष-शुद्धि कराते हैं।

इस प्रसग मे दो प्रकार के निदान का वर्णन है। जिसमें प्रथम चार निदान निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के स्त्री-पुरुष सम्बन्धी सुखो की अभिलाषा से सम्बन्धित है। ५-६-७ तीन निदान देव सम्बन्धी काम-भोगाभिलाषा से सम्बन्धित है। ८वे मे श्रावक होने का तथा नौवे में श्रमण होने का निदान बताया है। श्रावक व श्रमण होने की भावना उत्तम होते हुए भी उसके लिए निदान करना घातक है। अत अन्त में निदानरहित निष्काम तप करने की शिक्षा के साथ उस तप का महाफल बताया है।

इस दशा के मूल पाठो मे उपलब्ध प्रतियो मे भिन्नता मिलती है। किसी मे संक्षिप्त पाठ है, किसी में विस्तृत। विस्तृत पाठ औपपातिकसूत्र व सूत्रकृतागसूत्र से मिलता है। सक्षिप्त पाठ के कारण वर्णन प्रवाह में धारा टूटती हुई प्रतीत होती है। अत· हमने आचार्य श्री आत्माराम जी म द्वारा सम्पादित तथा अनुयोगव्याख्याता उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म द्वारा संशोधित दोनो प्रतियो को समक्ष रखकर शुद्ध पाठ रखने का प्रयत्न किया है। व्याख्या मे भी दोनो का आधार लिया है।

INTRODUCTION

In the tenth *Dasha, Nidan*—the activity that reduces the reward of austerities has been described In some texts, this chapter is titled as *'Aayatithan Ajhayanam'*. *'Aayati'* means mundane world or bondage of *karma*. The primary cause of wanderings in the mundane world is

bondage of *karma* and the main cause of this bondage is worldly attachment or wrong belief *Nidan* is done when one is in extreme influence of deluding *karma*. *Nidan* destroys right faith It leads to bad state of existence It increases one's wanderings in the mundane world.

The word '*nidan*' means to pierce or to cut An activity which pierces or breaks right belief, right knowledge and right conduct is called '*nidan*'

In common language we can say that '*nidan*' is trading the practice of austerities and restraints An austerity which is going to give great reward when sold for the desire of a very minor reward is called '*nidan*' This chapter starts with a strange event that occurred in the *Samavasaran* (congregation) of Bhagavan Mahavir Once king Shrenik and queen Chelana came to the *Samavasaran* of Bhagavan Mahavir Looking at their enjoyments grandeur and good luck, the monks and nuns under the influence of delusion (worldly attachment) made '*nidan*' in their mind that they should also get such pleasures (in their next life).

Addressing those monks and nuns, Bhagavan Mahavir narrated the dangerous results of '*nidan*' Then they repented and cleansed their sin (fault)

Here ten types of *nidan* have been mentioned The first four relate to the desires of monks and nuns for worldly pleasure of men and women, the next three relate to sensual desires of celestial beings, the eighth is the desire of being a *Shravak* in the next life and ninth relates to the desire of being a monk It is an excellent thought–activity to become a *Shravak* or a monk but it is dangerous to make a '*nidan*' for it So in the end one has been advised to practice austerities without seeking any reward and *nidan* (desire of reward) The great reward of such austerities is also mentioned

In the available texts, we find different readings In some, it is brief and in some it is in detail The detailed version is similar to the one in *Aupapatik Sutra* and *Sutrakritanga* The continuity appears to be disturbed in the case of brief version Therefore, we have considered two texts–one edited by Acharya Shri Atmaram ji Maharaj and the other by Upadhyaya Shri Kanhaiyalal ji Maharaj–The famous interpretor of *Anuyoga* and have tried to take into account the true version. We have based our explanation too on both of them

□□

१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेइए। वण्णओ। रायगिहे नयरे सेणिए राया होत्था। रायवण्णओ जाव चेलणाए सद्धिं भोगे भुंजमाणे विहरइ।

तए णं से सेणिए राया अण्णया कयाइ ण्हाए जाव कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए णरिंदे। सकोरंट–मल्ल–दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं जाव ससिव्व पियदंसणे नरवई जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सिंहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिंहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–

"गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया !" जाइं इमाइं रायगिहस्स णयरस्स बहिया आरामाणि य, उज्जाणाणि य, आएसणाणि य जाव दब्भकम्मंताणि जे तत्थ महत्तरगा आणत्ता चिट्ठंति ते एवं वदह–

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सेणिए राया भंभसारे आणवेइ–जया णं समणे भगवं महावीरे, आदिगरे, तित्थयरे जाव संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं सुहेणं विहरमाणे, संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे इहमागच्छेज्जा, तया णं तुम्हे भगवओ महावीरस्स अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणेत्ता सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स एयमट्ठं पियं णिवेदह।"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसे सेणिएणं रन्ना भंभसारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ–तुट्ठ–चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु–"एवं सामी ! तह त्ति" आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति।

पडिसुणित्ता सेणियस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जाइं इमाइं रायगिहस्स बहिया आरामाणि वा जाव जे तत्थ महत्तरगा आणत्ता चिट्ठंति, ते एवं वयंति जाव "सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं पियं निवेदेज्जा, पियं भे भवतु" दोच्चंपि तच्चंपि एवं वदंति, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

१. उस काल और उस समय मे राजगृह नाम का नगर था। उस नगर के बाहर गुणशील नाम का चैत्य (उद्यान) था। उस राजगृह नगर मे श्रेणिक नाम का राजा था। नगर, उद्यान एव राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिकसूत्र से जानना चाहिए। वह श्रेणिक राजा चेलणा महारानी के साथ परम सुखमय जीवन बिता रहा था।

एक दिन श्रेणिक राजा ने स्नान आदि किया यावत् कल्पवृक्ष के समान वह नरेन्द्र अलकृत एवं विभूषित होकर कोरण्टक पुष्पो की माला लगा छत्र धारण किया। चन्द्र के समान प्रियदर्शी नरपति श्रेणिक जहाँ बाह्य उपस्थानशाला (सभागृह) मे सिहासन लगा था, वहाँ आया। पूर्व दिशा की तरफ मुख करके उस पर बैठा। अपने प्रमुख अधिकारियो को बुलाकर उसने इस प्रकार आदेश दिया–

"हे देवानुप्रियो !" तुम जाओ, राजगृह नगर के बाहर जो ये आराम (लताओ से सुशोभित), उद्यान (पत्र–पुष्प–फलो से युक्त), शिल्पशालाएँ, सभागृह, व्यापार के केन्द्र यावत् दर्भ आदि के कारखाने है, इनमे जो मेरे आज्ञाधीन अधिकारी है, उन्हे इस प्रकार कहो–

"हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भंभसार ने यह आज्ञा दी है-'पंचयाम धर्म के प्रवर्त्तक अन्तिम तीर्थंकर यावत् सिद्धगति को प्राप्त करने के इच्छुक श्रमण भगवान महावीर क्रमश. चलते हुए, गाँव-गाँव घूमते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए तथा सयम एव तप से अपनी आत्म-साधना करते हुए जब यहाँ पधारे, तब तुम भगवान महावीर को उनकी साधना के उपयुक्त, मर्यादा के अनुसार योग्य स्थान बताना और उन्हें उसमें ठहरने की आज्ञा देकर (भगवान महावीर के यहाँ पधारने का) प्रिय सवाद मेरे पास पहुँचाना।"

तब वे प्रमुख राज्य-अधिकारी पुरुष श्रेणिक राजा भभसार का उक्त कथन सुनकर हर्षित एवं परितुष्ट होते है, मन मे आनन्द तथा प्रसन्नता का अनुभव करते है। सौम्य मनोभाव व हर्षातिरेक से उनका हृदय खिल उठता है। उन्होंने हाथ जोड़कर सिर पर आवर्तन कर (हाथ को तीन बार घुमाकर) विनयपूर्वक कहा-"हे स्वामिन् ! आपके आदेशानुसार ही सब कुछ होगा।"

तदनन्तर वे राजप्रासाद से निकले। राजगृह के मध्य भाग से होते हुए वे नगर के बाहर गये। आराम यावत् घास के कारखानों मे राजा श्रेणिक के आज्ञाधीन जो प्रमुख अधिकारी थे, उन्हें राजा का आदेश सूचित किया-"श्रेणिक राजा को (भगवान महावीर के पधारने का) प्रिय सवाद कहे। (और कहे कि) आपके लिए यह सवाद प्रिय हो।" दो-तीन बार इस प्रकार कहकर वे वापस अपने स्थान को लौट गये।

1. At that time, during that period there was a city called Rajagriha At its outskirts, there was Gunasheel garden Shrenik was the ruler of Rajagriha The detailed description of the city, the garden and the king can be seen in *Aupapatik Sutra* King Shrenik was spending a pleasant life with his head queen Chelana

One day, king Shrenik took bath He decorated his body with clothes and ornaments [like a desire—fulfilling tree (Kalp Vriksh)]. He wore a rosary of Korantak flowers A splendid umbrella was spread on his head. Like the moon, he was loveable to every one He came to the place where his seat was earmarked in the assembly hall. He sat on it facing east He called his main officials and ordered–

"O loveable to god ! At the outskirt of Rajagriha, there are gardens full of creepers, leaves, flowers and fruits, picture halls, assembly halls, trade centres and factories There are persons who are under my control. You convey my order to them as under—

"O the blessed ! King Bimbasar (Shrenik) has thus ordered–The last *Tirthankar* Bhagavan Mahavir who has propounded five-fold *Dharma* and who has the desire to attain salvation is wandering through the villages. As and when during his wanderings and observing restraints and austerities, he reaches here, you offer him suitable place in accordance

with his spiritual practices and limitations and allow him to stay there. Further you convey to me the desired information about his arrival."

The head officials felt pleased at the above orders of king Shrenik Bimbasar. They felt ecstatic pleasure and happiness. Their happiness produced grandeur on their face. They clasped their hands, three times rotated their hands on their heads and humbly accepting the orders said—"O Lord ! Every thing shall be done according to your desire."

Thereafter, they came out of the palace. They came out of the city through the central road of Rajagriha. They conveyed the orders of the king to those in the garden and the like and in factories depending on grass who were under the overall control of king Shrenik. They further advised them—"Convey the pleasant message of arrival of Bhagavan Mahavir to king Shrenik and tell him that the said message may be pleasant for him " They repeated it two-three times and then returned to their place

श्रेणिक को सूचना INTIMATION TO KING SHRENIK

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीर आइगरे तित्थयरे जाव गामाणुगामं दूइज्जमाणे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग–तिय–चउक्क–चच्चर–चउम्मुह–महापह–पहेसु महया जणसद्दे जाव विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासइ।

तए णं महत्तरगा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता नामगोयं पुच्छंति, नाम–गोयं पुच्छित्ता नाम–गोयं पधारेंति, पधारित्ता एगओ मिलंति एगओ मिलित्ता एगंतमवक्कमंति एगंतमवक्कमित्ता एवं वयासी–

''जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया भंभसारे दंसणं कंखति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पीहेति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पत्थेति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं अभिलसति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया नाम–गोत्तस्सवि सवणयाए जाव विसप्पमाणहियए भवति।

से णं समणे भगवं महावीरे आदिगरे तित्थयरे जाव सव्वण्णू सव्वदंसी पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इह आगए, इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव रायगिहे नगरे बहिया गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सेणियस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेमो–''पियं भे भवतु'' त्ति कट्टु अण्णमन्नस्स वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलं परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी–

"जस्स णं सामी ! दंसणं कंखति, जाव से णं समणे भगवं महावीरे गुणसिलए चेइए जाव विहरति। एयण्णं देवाणुप्पियाणं पियं निवेदेमो। पियं भे भवतु।"

२. उस काल और उस समय मे पचयामधर्म के प्रवर्तक तीर्थकर भगवान महावीर ग्रामानुग्राम विचरते हुए यावत् आत्म-साधना करते हुए गुणशील उद्यान मे पधारे।

उस समय राजगृह नगर के त्रिकोण = तिराहे, चौराहे और चौक मे, चतुर्मुखी स्थानो मे, राजमार्गों में, लोगो के आवागमन से गलियो मे कोलाहल शब्द होने लगा। यावत् (उद्यान मे पहुँचकर) वे लोग हाथ जोडकर विनयपूर्वक भगवान महावीर की पर्युपासना करने लगे।

उस समय राजा श्रेणिक के प्रमुख अधिकारी श्रमण भगवान महावीर के पास आये। उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वन्दन-नमस्कार (गुणोत्कीर्तन करके सिर झुकाकर नमन) किया। नाम-गोत्र पूछकर स्मृति मे धारण किया और एकत्रित होकर एकान्त स्थान (एक तरफ) मे चले गये। वहाँ उन्होने परस्पर इस प्रकार बातचीत की-

"हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भभसार जिनके दर्शन करना चाहता है, जिनके दर्शनो की इच्छा करता है, जिनके दर्शनो की प्रार्थना करता है, जिनके दर्शनो की अभिलाषा करता है, जिनके नाम-गोत्र-श्रवण करके भी हृदय मे हर्षित होता है।

वे पचयामधर्म के प्रवर्त्तक तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनुक्रमश सुखपूर्वक गाँव-गाँव घूमते हुए यहाँ पधारे है, यहाँ विद्यमान है, यहॉ ठहरे है, यहाँ राजगृह नगर के बाहर गुणशील बगीचे मे यथायोग्य अवग्रह (सयम-मर्यादा के अनुसार स्थान व पाट आदि) ग्रहण कर सयम, तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान है।

हे देवानुप्रियो ! चले, श्रेणिक राजा को यह सवाद सुनाएँ और उन्हे कहे कि "आपके लिए यह संवाद प्रिय हो", इस प्रकार एक-दूसरे ने परस्पर कहा। वहाँ से वे राजगृह नगर के बीच मे होते हुए जहाँ श्रेणिक राजा था वहाँ आये। श्रेणिक राजा को हाथ जोडकर सिर पर आवर्त्तन करके अजलि को मस्तक से लगाकर जय-विजय शब्द बोलते हुए बधाया और इस प्रकार कहा-

"हे स्वामिन् ! जिनके दर्शनो की आप इच्छा करते है यावत् वे श्रमण भगवान महावीर स्वामी गुणशील उद्यान मे पधार गये है, वहाँ विराजित है-इसलिए हे देवानुप्रिय ! यह प्रिय सवाद आपसे निवेदन कर रहे है। यह सवाद आपके लिए प्रिय हो।"

2. At that time during that period, Tirthankar Bhagavan Mahavir, propounder of five-fold *Dharma*, wandering from village to village and practicing self-realization arrived at Gunasheel garden

At that time, there appeared a great noise at three way crossings, four-way crossings, highways and in the streets due to the movement of the people. After arrival at the garden, the people clasped their hands, humbly greeted Bhagavan Mahavir and started honouring him

At that time, the head official came to Bhagavan Mahavir, greeted him thrice, bowed to him in respect, praised him and after asking his name and gotra (caste) memorised it Later they collected at a lonely place. They talked among themselves in this manner—

"O the blessed ! Shraman Bhagavan Mahavir, propounder of five-fold asceticism, the Omniscient, who has perfect perception, he has come here after wandering from village to village He is present here. He is staying here He, after getting the place and bed according to his code of restraints, is engaging himself in restraints and austerities. Shrenik Bimbasar the king wants to have his *Darshan* He has a keen desire to see him. He prays for it and always thinks of it anxiously He feels overjoyed as and when he hears his name and sub–caste (*gotra*).

"O the blessed ! Let us go and give him this information. We may tell him that this information may be beneficial to him." Thus they talked among themselves From there, through Rajagriha city, they came to the place where king Shrenik was siting They greeted king Shrenik with folded hands and moved their hands three times around their head (as a mark of respect) and praising him said—

"Reverend Sir ! Shraman Bhagavan Mahavir whom you were keen to see has arrived at Gunasheel garden. He is staying there So, O the blessed ! We are conveying this auspicious information to you May it be beneficial to you"

श्रेणिक का दर्शनार्थ गमन DEPARTURE OF SHRENIK FOR SEEING BHAGAVAN

३. तए णं से सेणिए राया तेसिं पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाव विसप्पमाणहियए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ते पुरिसे सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेति, पडिविसज्जित्ता नगरगुत्तियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिहं नगरं सब्भिंतर–बाहिरियं आसिय–संमज्जियोवलित्तं" जाव कारवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि जाव पच्चप्पिणंति। तए णं से सेणिए राया बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी–

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय–गय–रह–जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ।" जाव से वि पच्चप्पिणइ।

तए णं से सेणिए राया जाण–सालियं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–

"भो देवाणुप्पिया ! खिप्पामेव धम्मियं जाणपवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह, उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।"

तए णं से जाणसालिए सेणियरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ, जाव विसप्पमाणहियए जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाणसालं अणुप्पविसइ; अणुप्पविसित्ता जाणगं पच्चुवेक्खइ, पच्चुवेक्खित्ता जाणं पच्चोरुभति, पच्चोरुभित्ता जाणगं संपमज्जति, संपमज्जित्ता जाणगं णीणेइ, णीणेत्ता जाणगं संवट्टेत्ति, संवट्टेत्ता दूसं पवीणेति, पवीणेत्ता जाणगं समलंकरेइ, जाणगं समलंकरित्ता जाणगं वरमंडियं करेइ, करित्ता दूसं पीहणेइ।

दूसं पीहणित्ता जाणाइं संवेढेइ, जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाहणसालं अणुप्पविसित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खइ, पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जइ, संपमज्जित्ता वाहणाइं अप्फालेइ, अप्फालेत्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणेत्ता दूसे पवीणेइ, पवीणेत्ता वाहणाइं समलंकरेइ, समलंकरित्ता वराभरणमंडियाइं करेइ, करेत्ता वाहणाइं जाणगं जोएइ, जोएत्ता वट्टमग्ग गाहेइ, गाहित्ता पओद–लट्ठिं पओद–धरे य सम्मं आरोहइ, आरोहइत्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव एवं वयासी–

"जुत्ते ते सामी ! धम्मिए जाणपवरे आदिट्ठे, भद्दं तव, आरूहाहि।"

३. उस समय श्रेणिक राजा उन पुरुषो से यह सवाद सुनकर, मन मे अवधारण कर हृदय मे हर्षित हुआ। फिर सिहासन से उठा। (राजमुकुट, शस्त्र व जूते आदि दूर हटाकर) जिस दिशा मे भगवान विराजमान थे उस दिशा मे श्रमण भगवान महावीर को वन्दन–नमस्कार किया। फिर उन सन्देशवाहक पुरुषो का सत्कार और सन्मान किया। उन्हे प्रीतिपूर्वक जीवन–निर्वाह योग्य विपुल प्रीतिदान (पुरस्कार) देकर विदा किया। फिर नगररक्षक को बुलाकर इस प्रकार कहा–

"हे देवानुप्रिय ! राजगृह नगर मे अन्दर और बाहर से सफाई करो ! अच्छी तरह जल से छिडकाव करो, लिपवाओ, स्वच्छ बनाओ और कार्य होने की मुझे सूचना दो।" उसके बाद राजा श्रेणिक ने सेनापति को बुलाकर कहा–

"हे देवानुप्रिय ! हाथी, घोडे, रथ और पदाति योद्धागण–इन चार प्रकार की सेनाओ को सुसज्जित करो।"

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने यानशाला (रथशाला) के अधिकारी को बुलाकर कहा–

"देवानुप्रिय ! श्रेष्ठ धार्मिक रथ को तैयार कर यहाँ उपस्थित करो और आज्ञानुसार हुए कार्य की मुझे सूचना दो।"

उस समय यानशाला का प्रबन्धक श्रेणिक राजा की आज्ञा सुनकर हर्षित होकर जहाँ यानशाला थी वहाँ आया। यानशाला में प्रवेश किया। यान (रथ) को देखा। यान को नीचे उतारा, प्रमार्जन किया। बाहर निकाला। एक स्थान पर खडा किया और उस पर ढँके हुए वस्त्र को हटाकर यान को अलकृत एव सुशोभित किया।

बाद मे जहाँ वाहनशाला थी वहाँ आया। वाहनशाला मे आकर वाहनो (बैलों या घोडो) को देखा। उनको हाथों से थपथपाया। उन पर बार–बार हाथ फिराया। उन्हे बाहर लाया। उन पर ढँके ओढाये हुए वस्त्र को दूर कर उन्हे भी अलकृत एव आभूषणो से मण्डित किया। उन्हे यान से जोडकर रथ को राजमार्ग पर खडा किया। चाबुक हाथ मे लिए हुए सारथी के साथ यान पर बैठा । वहाँ से वह श्रेणिक राजा के पास आकर हाथ जोडकर इस प्रकार बोला–

"स्वामिन् ! श्रेष्ठ धार्मिक यान तैयार करने के लिए आपने आदेश दिया था–वह यान तैयार है। यह यान आपके लिए कल्याणकर हो। आप इस पर बैठे।"

3. After hearing the above message from those officials, king Shrenik felt highly pleased He got up from his throne (After removing the crown, weapons and shoes) he bowed to Bhagavan Mahavir in the direction where he was present Thereafter he honoured the messengers and gave them gifts in large quantity suitable for their livelihood willingly, and then dispersed them Then he called the security officer of the city and said—

"O the blessed !" Get Rajagriha city cleaned from inside and also outside Sprinkle water, get at painted. Make it clean and then inform me " Thereafter, king Shrenik called the army chief and ordered—

"O the blessed ! Get ready four types of army namely that of elephants, horses, chariots and infantry"

Thereafter king Shrenik called the officer in-charge of chariots and ordered—

"O the blessed ! Get ready the best chariot meant for spiritual activities, bring it here and then inform me."

Then the manager of the chariot wing felt happy at these orders. He came to the chariot wing, entered there and closely examined the chariot He placed it on the ground, cleaned it, stationed it at a particular place, removed the cover and decorated it

Thereafter he came to the stable. He examined the horses and bullocks, patted them, moved his hand on their back repeatedly, brought them out, removed their cover and decorated them with suitable ornaments He attached them to the chariot and stationed it on the highway. He rode the chariot alongwith the driver having driving stick in his hand. Thus he came near king Shrenik and greeting him with his folded hands, he said–

"Me Lord ! You had asked me to get the Dharmik chariot ready The said chariot is ready Kindly sit on it May it be auspicious for you "

४. तए णं सेणिए राया भंभसारे जाणसालियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे जाव मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जाव कप्परुक्खे चेव अलंकिए विभूसिए णरिंदे जाव मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव चेल्लणादेवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चेल्लणादेविं एवं वयासी–

''एवं खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण वंदण णमंसण पडिपुच्छण पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदामो, नमंसामो, सक्कारेमो, सम्माणेमो, कल्लाणं, मंगलं, देवयं चेइयं पज्जुवासामो।

एतं णं इहभवे य परभवे य हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेयसाए, अणुगामियत्ताए भविस्सति।''

४. तब श्रेणिक राजा भभसार यानशाला के अधिकारी से श्रेष्ठ धार्मिक रथ ले आने का सवाद सुनकर एव अवधारण कर हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। पश्चात् (उसने) स्नानागार मे प्रवेश किया। वहाँ से अच्छे वस्त्र एवं आभूषण पहनकर कल्पवृक्ष के समान अलकृत एव विभूषित होकर वह श्रेणिक नरेन्द्र स्नानागार से बाहर निकला। फिर चेलणादेवी के पास गया। चेलणादेवी को इस प्रकार कहने लगा–

''हे देवानुप्रिये ! धर्म के प्रवर्त्तक तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी अनुक्रम से विहार करते यहाँ पधारकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए (गुणशीलचैत्य मे) विराजित है।

हे देवानुप्रिये ! धर्म के मूर्त्त रूप अरहतों के नाम–गोत्र श्रवण करने का ही महाफल होता है तो उनके दर्शन करने के लिए जाना, वन्दन–नमस्कार करना, सुख–साता पूछना, पर्युपासना करना, उनका एक भी धार्मिक वचन सुनना और उसका अर्थ ग्रहण करने के फल का तो कहना ही क्या है ? वह तो महाफलदायी होता है। इसलिए हे देवानुप्रिये ! चले, श्रमण भगवान महावीर को वन्दन–नमस्कार करे, उनका सत्कार–सम्मान करें, वे कल्याणकारक है, मगलदायक है, देवाधिदेव है, ज्ञान के मूर्त्त रूप है, अत· चलकर उनकी पर्युपासना करे।

उनकी यह पर्युपासना इहभव और परभव में हमारे लिए हितकारी, सुखकारी, क्षेमकारी (आनन्द), मोक्ष को देने वाली और भव–भव मे कल्याणकारी होगी।''

4. King Shrenik Bimbasar felt pleased and satisfied to hear that the *Dharmik* chariot has been brought Thereafter, he entered the bathroom. He put on good clothes, wore the ornaments and decorating himself like a desire-fulfilling tree, he came out He then came to queen Chelana Devi and said—

"O *Devanupriya* (beloved of gods) ! Shraman Bhagavan Mahavir, the propounder *Tirthankar* of *Dharma*, systematically going ahead in his

श्रेणिक-चेलना समवसरण में

चित्र परिचय-६ | Illustration No. 6
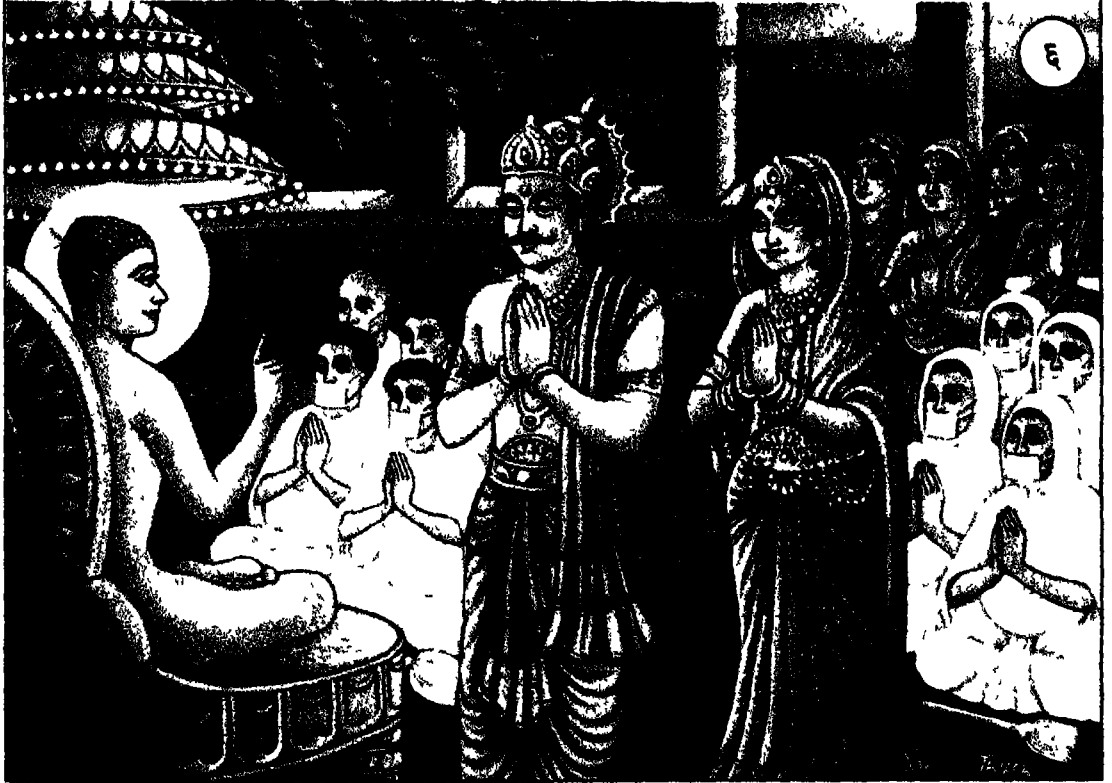
श्रेणिक-चेलना समवसरण में

१ भगवान महावीर राजगृह के गुणशील उद्यान मे पधारे। यह सवाद सुनकर श्रेणिक राजा तथा चेलना रानी आदि विशाल राज-परिवार के साथ प्रभु के दर्शन करने के लिए निकले।

२ समवसरण मे पहुँचकर राजा-रानी ने अत्यन्त भक्ति व हर्षोल्लास के साथ प्रभु की वन्दना की। धर्मदेशना सुनने के लिए प्रभु के समक्ष समवसरण मे बैठ गये।

श्रेणिक राजा तथा चेलना रानी के रूप सौन्दर्य तथा ऋद्धि वैभव एव मनुष्य सम्बन्धी सुख भोगो को देखकर कुछ श्रमणो के मन मे इस प्रकार की कामना तथा भोगाभिलाषा उत्पन्न हुई -

'अहो ! यह श्रेणिक राजा अपनी रानी के साथ बडे कमनीय सुख भोग रहा है। यह कितना सुखी है ? हमने प्रत्यक्ष देव तो नही देखे, परन्तु हमारे सामने तो यही साक्षात् देव जैसे सुख भोग रहा है। यदि हमारी चारित्र आराधना व तप सयम का कोई कल्याणकारी फल हो तो हमे भी अगले जन्म मे इस प्रकार के सुख-भोग प्राप्त हो।'

इसी प्रकार साध्वियाँ भी चेलना रानी को देखकर उसके मानवीय सुख ऐश्वर्य की सराहना करती हुई सोचती है 'यदि हमारे तप सयम, चारित्र की आराधना का कोई फल हो तो अगले जन्म मे हम भी रानी जैसे मानुषिक सुख भोग प्राप्त हो।

-दशा १०/५ ६ प १४९

SHRENIK AND CHELANA IN SAMAVASARAN

1 Bhagavan Mahavir arrives in the Gunasheel garden of Rajgriha On hearing this news king Shrenik and queen Chelana came out with their large retinue in order to pay homage to Bhagavan

2 On arriving in the Samavasaran the royal couple pays homage to Bhagavan with great devotion and happiness They sit down before Bhagavan to listen to his sermon

Looking at the beauty, wealth, grandeur and mundane comforts of king Shrenik and queen Chelana some Shramans had the desire and wish for such pleasures -

'Oh ! This king Shrenik is enjoying highly satisfying pleasures with his queen How happy he is ? We have not seen divine beings but he appears to be enjoying all pleasures like them If there is some beatific fruit of our ascetic conduct and austerities, may we also enjoy such pleasures in the next life '

In the same way Sadhvis also think, praising the mundane pleasures and grandeur of queen Chelana--'If there is some beatific fruit of our ascetic conduct and austerities, may we also, like the queen, enjoy such pleasures in the next life '

—Dasha 10/5 6, p 149

wanderings has arrived at Gunasheel garden engaging himself in spiritual restraints and austerities.

"O the blessed ! It is highly rewarding to hear the name and *gotra* of Omniscients (*Arihants*) who are living at present Therefore to see him, to bow to him, to enquire about his welfare, to serve him, to hear attentively even one word of his spiritual discourse and to know the true meaning of it must be immensely beneficial It is certainly very rewarding Therefore, O the blessed ! Let us go there, greet Bhagavan Mahavir, bow to him, honour him He is well-wisher of all He is auspicious for all He is god of the gods (*Devadhidev*). He is knowledge personified Let us worship him "

His service shall be beneficial to us, pleasant to us in the world and the life thereafter It shall lead to our welfare in many lives and grant us liberation.

५. तए णं सा चेल्लाणादेवी सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ जाव महत्तरग–विंदपरिक्खित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणियराया तेणेव उवागच्छइ।

तए णं से सेणियराया चेल्लणादेवीए सद्धिं धम्मियं जाणपवरं दुरूढे जाव जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव उवागच्छइ जाव पज्जुवासइ। एवं चेल्लणा वि जाव पज्जुवासइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रन्नो भंभसारस्स, चेल्लणादेवीए, तीसे य महइमहालयाए परिसाए, इसि–परिसाए, जइ–परिसाए, मुणि–परिसाए, मणुस्स–परिसाए, देव–परिसाए, अणेग–सयाए जाव धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया। सेणियराया पडिगओ।

५. चेलणादेवी श्रेणिक राजा से यह संवाद सुनकर चित्त मे अत्यन्त हर्षित एव सन्तुष्ट हुई। उसने श्रेणिक राजा के वचनो को विनयपूर्वक स्वीकार किया। फिर जहाँ स्नानगृह था वहाँ जाकर स्नान अभ्यगन आदि करके वस्त्र आभूषणों से विभूषित होकर बाह्य उपस्थानशाला (राजसभा) मे श्रेणिक राजा के समीप आई।

तपश्चात् श्रेणिक राजा चेलणादेवी के साथ उस श्रेष्ठ धार्मिक रथ मे बैठा। छत्र आदि धारण किये और चलकर गुणशील उद्यान मे आया, भगवान की पर्युपासना करने लगा। इसी प्रकार चेलणादेवी भी अपने दासी परिवार से घिरी हुई भगवान की पर्युपासना करने लगी।

उस समय श्रमण भगवान महावीर ने ऋषि, यति, मुनि, मनुष्य, देवो और अन्य सैकडो व्यक्तियो की महापरिषद् मे श्रेणिक राजा भभसार एवं चेलणादेवी को धर्म का स्वरूप कथन किया। धर्मकथा सुनकर परिषद् चली गई और राजा श्रेणिक भी अपने स्थान को चला गया।

5. Queen Chelana Devi felt extremely pleased in her mind at these words She respectfully accepted the sweet words of king Shrenik. Then she went to the bathroom, took bath and decorated her body with clothes and ornaments She then came to the assembly hall where king Shrenik was present.

Thereafter king Shrenik and queen Chelana Devi sat in that *Dharmik* chariot Umbrella was spread over them and then they came to Gunasheel garden King Shrenik started greeting, honouring and serving Bhagavan Mahavir

So did queen Chelana alongwith her maids

Then Bhagavan Mahavir explained the nature of *Dharma* to king Shrenik and queen Chelana in the large gathering of *rishis, yatis, munis,* human beings, celestial beings and hundreds of other persons After listening to the spiritual discourse, the gathering dispersed and king Shrenik came back to his place

साधु–साध्वियो का निदान–संकल्प A NIDAN (KEEN DESIRE) OF MONKS AND NUNS

६. तत्थ णं एगइयाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य सेणियं रायं चेल्लणं च देविं पासित्ताणं इमेयारूवे अज्झत्थिए, चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–

"अहो णं सेणिए राया महड्ढिए जाव महासुक्खे, जे णं ण्हाए जाव सव्वालंकार–विभूसिए, चेल्लणा देवीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरति। न मे दिट्ठा देवलोगंसि, सक्खं खलु अयं देवे। जइ इमस्स सुचरियस्स तव–नियम बंभचेरवासस्स कल्लाणे फल–वित्तिविसेसे अत्थि, तं वयमवि आगमेस्साइं इमाइं एयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगाइं भुंजमाणा विहरामो, से तं साहू।"

"अहो णं चेल्लणादेवी महिड्ढिया जाव महासुक्खा जा णं ण्हाया जाव सव्वालंकारविभूसिया सेणिएणं रण्णा सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगाइं भुंजमाणी विहरइ। न मे दिट्ठाओ देवीओ देवलोगंसि, सक्खा खलु इमा देवी। जइ इमस्स सुचिरयस्स तव–नियम–बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि। तं वयमवि आगमिस्साइं इमाइं एयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगाइं भुंजमाणीओ विहरामो, से तं साहू।"

"अज्जो" त्ति समणे भगवं महावीरे ते बहवे निग्गंथा निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी–

[प्र.] "सेणियं रायं, चेल्लणादेविं पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुपज्जित्था–अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए जाव से तं साहू; अहो णं चेल्लणा देवी महिड्ढिया जाव से तं साहू। से णूणं अज्जो ! अत्थे समट्ठे ?"

[उ.] हंता, अत्थि।

६. उस समय वहाँ (गुणशीलचैत्य मे) श्रेणिक राजा और चेलणादेवी को देखकर कुछ निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थिनियो के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन, इच्छा, प्रार्थना और मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ–

(निर्ग्रन्थ) "अहो ! यह श्रेणिक राजा अत्यन्त महान् ऋद्धि ऐश्वर्य-सम्पन्न यावत् सुखी है। यह स्नान कर आभूषणो से विभूषित होकर चेलणादेवी के साथ मानुषिक सुख भोग रहा है। हमने देवलोक के देव प्रत्यक्ष देखे नहीं है। हमारे सामने तो यही साक्षात् देव है। यदि हमारे चारित्र, तप, नियम, ब्रह्मचर्य-पालन एव तीन गुप्ति (समिति-गुप्ति) की सम्यक् प्रकार से की गई आराधना का कोई कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य में इस प्रकार के अभिलषित मानुषिक भोग भोगें तो श्रेष्ठ होगा।"

(निर्ग्रन्थियाँ)-"अहो ! यह चेलणादेवी अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी है यावत् बहुत सुखी है। वह स्नान करके सुन्दर वस्त्र एव अलकारो से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के साथ मानुषिक भोग भोग रही है। हमने देवलोक की देवियाँ नहीं देखी है। हमारे सामने तो यही साक्षात् देवी है। यदि चारित्र, तप, नियम एव ब्रह्मचर्य-पालन का कुछ विशिष्ट फल हो तो हम भी भविष्य मे ऐसे ही श्रेष्ठ मानुषिक भोग भोगती हुई विचरण करे हमारे लिए यही श्रेष्ठ होगा।"

(तब) श्रमण भगवान महावीर उन बहुत से निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थिनियाँ को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहने लगे-

[प्र.] "आर्यो ! श्रेणिक राजा और चेलणादेवी को देखकर तुम्हारे चित्त मे इस प्रकार के अध्यवसाय यावत् विचार उत्पन्न हुए-अहो ! श्रेणिक राजा महान् ऐश्वर्यशाली है यावत् हम भी भविष्य मे इसी प्रकार भोगो को भोगे। अहो चेलणादेवी महान् ऐश्वर्यशालिनी है, सुन्दरी है, अत्यन्त सुख भोग रही है और भविष्य मे हम भी इसी प्रकार सुख भोगे तो यह श्रेष्ठ होगा।' हे आर्यो ! क्या यह बात यथार्थ है ?

[उ.] (निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियो ने उत्तर दिया) हाँ भगवन् ! यह वृत्तान्त यथार्थ है।

6. After seeing king Shrenik and queen Chelana Devi in Gunasheel garden at that time, some monks and nuns thought, reflected, desired and prayed in their mind as under-

The monks thought "Ah ! This king Shrenik is extremely wealthy and happy He is enjoying human pleasures with his wife Chelana Devi after properly dressing and decorating himself-we have not directly seen the pleasures of heaven He is heavenly being personified before us. In case there is any auspicious reward of our ascetic conduct, austerities, restraints, celibacy and proper practice of three self-restraints (guptis and samitis) it shall be good if we enjoy human life like him in future "

The nuns contemplated-"Ah ! Queen Chelana Devi is extremely lucky and happy. She is enjoying sensual pleasures with king Shrenik after taking bath and beautifully dressing herself and wearing ornaments In case there is any auspicious reward of our ascetic conduct, austerities, restraints and practice of celibacy, it shall be good if we enjoy supreme human pleasures like her."

Then Shraman Bhagavan Mahavir called all those monks and nuns and addressed them as under–

[Q.] "The blessed ones ! After seeing king Shrenik and queen Chelana, you have contemplated thought and reflected–'Ah ! King Shrenik is very wealthy and so on. We should also enjoy such pleasures. Ah ! Queen Chelana is extremely rich and beautiful. She is enjoying pleasures of extremely high order. It shall be auspicious if we also enjoy similar pleasures in future.' O the blessed ! Is all this correct ?"

[Ans.] The monks and nuns replied—"Reverend Sir ! All this is true."

(१) निर्ग्रन्थ का मनुष्य (पुरुष) सम्बन्धी भोगों के लिए निदान **NIDAN OF MONKS FOR HUMAN PLEASURES**

७. (क) एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे, अणुत्तरे, पडिपुण्णे, केवले, संसुद्धे, णेआउए, सल्लकत्तणे, सिद्धिमग्गे, मुत्तिमग्गे, निज्जाणमग्गे, निव्वाणमग्गे, अवितहमविसंदिद्धे, सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे। इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिनिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स निग्गंथे सिक्खाए उवट्ठिए विहरमाणे, पुरा दिगिंछाए, पुरा पिवासाए, पुराऽसीतातवेहिं, पुरा पुट्ठेहिं विरूवरूवेहिं परीसहोवसग्गेहिं उदिण्णकामजाए यावि विहरेज्जा से य परक्कमेज्जा, से य परक्कममाणे पासेज्जा जे इमे–उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया। तेसिं णं अण्णयरस्स अतिजायमाणस्स वा निज्जायमाणस्स वा पुरओ महं दासी–दास–किंकर–कम्मकर–पुरिसा छत्तं भिंगारं गहाय निग्गच्छंति।

तयाणंतरं च णं पुरओ महाआसा आसवरा, उभओ तेसिं नागा नागवरा, पिट्ठओ रहा रहवरा, रहसंगेल्लिपुरिस पदातिं परिक्खित्तं। से य उद्धरिय–सेय–छत्ते, अब्भुगये भिंगारे, पग्गहिय तालियंटे, पवीयमाण–सेय–चामर–बालवीयणीए। अभिक्खणं–अभिक्खणं अतिजाइ य निज्जाइ य सप्पभा।

स पुव्वावरं च णं ण्हाए जाव सव्वालंकारविभूसिए, महति महालियाए कूडागारसालाए, महति महालयंसि सयणिज्जंसि दुहओ उण्णते मज्झे णत–गंभीरे वण्णओ सव्वरातिणिएणं जोइणा झियायमाणेणं, इत्थिगुम्मपरिवुडे महयाहत–नट्ट–गीय–वाइय–तंती–तल–ताल–तुडिय–घण–मुइंग–मुद्दल–पडुप्पवाइय–रवेणं उरालाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणे विहरति।

तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति–"भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो ? किं उवणेमो ? किं आहरेमो ? किं आचिट्ठामो ? किं भे हियइच्छियं ? किं ते आसगस्स सदति ?"

जं पासित्ता णिग्गंथे णिदाणं करेइ–"जइ इमस्स सुचरिय–तव–नियम–बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, तं अहमवि आगमिस्साए इमाइं एयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणे विहरामि से तं साहू।"

मोहग्रस्त निर्ग्रन्थों द्वारा निदान

चित्र परिचय-७

Illustration No. 7

मोहासक्त निर्ग्रन्थों द्वारा निदान

निर्ग्रन्थो के मोहपूर्ण काम भाव की अभिलाषा (निदान) जानकर भगवान महावीर उन्हे सम्बोधित करके प्रबोध देते हुए फरमाते है-

१ निर्ग्रन्थो ! कोई निर्ग्रन्थ ससार का त्यागकर सर्वज्ञ भाषित धर्म की अनुपालना करता हुआ अनेक प्रकार के कष्ट व परीषह सहता है। यदि कभी मोह सस्कारो के जागृत होने पर उसके चित्त मे काम- विकारो का प्रबल उदय हो जाये, उस समय वह किसी उच्च राजकुल मे उत्पन्न सुन्दर राजकुमार को देखे, जिसे सभी प्रकार के काम -सुख प्राप्त है। वह घर से बाहर निकलता है तो अनेक सेवक उसके आगे -पीछे शीतल जल की झारियाँ लिए चलते हों उसके साथ -साथ अनेक हाथी, अश्व -रथ व सैनिक चलते हो अनुचर सिर पर छत्र लिए पीछे- पीछे चलते हो, अनेक दासियाँ विविध प्रकार की भोजन सामग्री साथ लिए पीछे चलती हो।

२ वह राजकुमार रथ मे बैठा हो, उसके दोनो तरफ दासियों चँवर ढुलाती हो आगे हाथी व घोडे चलते हो। जब वह राजमहलो मे सोता है तो अतीव कोमल शय्या पर विश्राम करता है। सेवक हर समय सेवा के लिए उपस्थित रहते है।

३ जब वह राजसभा मे बैठता है, तो अनेक प्रकार के नृत्य सगीत उसके सामने होते है। जब कभी एक सेवक को बुलाता है तो अनेक दास-दासियाँ हाथ जोडकर सामने खडे होकर पूछते है- देवानुप्रिय ! कहो, आपको क्या चाहिए ?

भगवान फरमाते है इस प्रकार राजसी वैभव देखकर निदान करके अगले जन्म मे निदान द्वारा प्राप्त सुखो को भोगने वाले आत्मा को धर्म- प्राप्ति तो क्या, केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण करने का अवसर मिलना भी बहुत दुर्लभ है।

दशा १० ७ ५ ०६०

NIDAN BY COVETOUS NIRGRANTHS

Knowing of the wishes (nidan) of the covetous nirgranths for carnal pleasures Bhagavan Mahavir preaches them—

1 O Nirgranths ! A nirgranth renounces the world, follows the path shown by the Omniscient, and endures a variety of torments and afflictions At some point of time he is plagued by feelings of attachment and intense carnal perversions arise in his mind At that time he comes across some handsome prince from a royal family who enjoys all carnal pleasures When he comes out of his palace many servants move around him with flasks of cold water He is accompanied by many elephants, horses chariots and soldiers Attendants carrying umbrellas walk behind him Numerous maids carrying a variety of eatables follow him

2 That prince is sitting in a chariot Maids are waving whisks on both his flanks Elephants and horses move ahead of him When he sleeps in his palace he uses very soft bed Attendants are always in his service

3 When he sits in his court a variety of dance and music performances are presented When he calls one servant, many servants come to him and ask with joined palms—"Beloved of gods ! Please say what you need ?"

Bhagavan adds—A person who, after witnessing all this wishes for such pleasures and enjoys them when his wishes come true in next birth Such person hardly gets an opportunity to listen to the words of the religion propagated by the Omniscient, what to say of acquiring spirituality

—Dasha 10/7, p 153

७. (क) हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस धर्म का निरूपण किया है। यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, श्रेष्ठ है, प्रतिपूर्ण (समस्त गुणो से युक्त) है, अद्वितीय (संसार में इसके तुल्य दूसरा नही) है, शुद्ध (सर्वथा दोषरहित) है, न्यायसगत (तर्क–युक्ति आदि से सिद्ध) है, शल्यो (मिथ्यात्व व संशय आदि) को नष्ट करने वाला है, सिद्धि, मुक्ति, निर्याण (मोक्ष) एव निर्वाण (परम शान्ति) का यही मार्ग है, यही यथार्थ है, सदा शाश्वत है और सब दु:खो से मुक्त होने का यही उपाय है। इस सर्वज्ञप्रज्ञप्त धर्म की आराधना करने वाले सिद्ध–बुद्ध–मुक्त होकर निर्वाण (परम शान्ति को) प्राप्त होते है और समस्त दु:खो का अन्त करते है।

इस (निर्ग्रन्थ प्रवचन) धर्म की शिक्षा व अनुपालना के लिए उपस्थित होकर आराधना करता हुआ निर्ग्रन्थ यदि भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, वर्षा–धूप आदि अनेक प्रकार के परीषह–उपसर्गों से पीडित होने पर (पूर्व मोह सस्कारो के कारण) उसके चित्त मे काम विकारों का प्रबल उदय हो जाये (उससे प्रेरित हुआ) साथ ही संयम–साधना मे विचरण करते हुए वह विशुद्ध मातृ–पितृ पक्ष वाले उच्च कुलीन उग्रवंशीय या भोगवशीय राजकुमार आदि को (सुख भोगते हुए) देखे कि जब वे घर मे प्रवेश करते या निकलते हैं तो अनेक दास–दासी किंकर और कर्मकर पुरुष छत्र, झारी आदि लेकर उनके आगे–आगे चलते है।

उसके बाद उस राजकुमार के आगे उत्तम जाति के अश्व, दोनो ओर सुसज्जित गजराज और पीछे–पीछे श्रेष्ठ सुसज्जित रथ चलते है और पैदल चलते हुए अनेक दास–दासी उसके आगे–पीछे रहते है, कोई श्वेत छत्र ऊँचा उठाये हुए, कोई झारी लिए हुए, कोई ताड़पत्र का पखा लिए, कोई श्वेत चामर डुलाते हुए उनके साथ चलते है। इस प्रकार के ऐश्वर्य व वैभव के साथ वह बारम्बार गमनागमन करता है।

वह राजकुमार यथासमय स्नान कर यावत् सब अलकारो से विभूषित होकर विशाल कूटागारशाला (पर्वत शिखर पर बना राजप्रासाद) मे जहाँ रातभर दीपको की ज्योति जगमगा रही है और जहाँ अतीव कोमल मृदु–स्पर्श वाली दोनो ओर ऊँची, बीच में कुछ झुकी सुन्दर शय्या बिछी है। सुन्दर स्त्रियाँ उनके चारो ओर खडी है। वह उनके साथ बैठा हुआ कुशल नर्तको का नृत्य देखता है, गायकों का गीत, सगीत सुनता है और वाद्ययत्र, तत्री, तल–ताल, त्रुटित, घन, मृदग, मादल आदि उच्च शब्द करने वाले वाद्यो की मधुर ध्वनियाँ सुनता है। इस प्रकार वह उत्तम मानुषिक कामभोगो को भोगता रहता है।

जब वह किसी एक को बुलाता है तो चार–पाँच सेवक बिना बुलाये ही आकर सन्मुख उपस्थित हो जाते है और पूछते है कि "हे देवानुप्रिय ! कहिए हम क्या करे ? आपके लिए क्या लावें ? क्या खाद्य–पेय प्रस्तुत करें और आपके लिए क्या करे ? आपकी हार्दिक अभिलाषा क्या है ? आपके मुख को कौन–से पदार्थ स्वादिष्ट लगते है ? आपको क्या प्रिय है ?

उसके इन भोग सुखो को देखकर निर्ग्रन्थ निदान करता है कि "यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे तप, नियम एव ब्रह्मचर्य–पालन का कोई कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मै भी अगले भव में इस प्रकार से उत्तम मनुष्य सम्बन्धी काम–भोगो को भोगते हुए विचरण करूँ तो कितना अच्छा होगा।"

7. (a) "O the blessed ! I have propagated this *Dharma*—the path of liberation This word of *Nirgranth* (the totally detatched) is the only truth. It is supreme, full of all virtues unique in this world, faultless,

logically established, destroyer of thorns of wrong belief and one leading to liberation, salvation and supreme peace. It is real, permanent and the only method of getting liberation from the mundane world By practicing this *Dharma* propagated by the Omniscients people get perfect knowledge, achieve their goal and secure liberation They then get ecstatic peace and destroy all troubles

A monk who presents himself for knowledge of the sacred scriptures and its practice and later engages himself in such ascetic practices, he may, sometimes come across sufferings due to hunger, thirst, heat, cold, rain, sun and the like and (due to delusion causing thoughts) a desire of worldly enjoyments may arise in him Under its influence, while practicing restraints of a monk, he may see that many servants and employees carrying umbrella, water-pots and the like go in front of his relatives of high caste from the parental side or from the maternal side enjoying the worldly pleasures, and enter the house or come out of the house

Thereafter, horses of best breed go ahead of him (the relative-prince), the well decorated elephants move by his side as best decorated chariots move behind Many servants and maids moving on foot remain in front and the back Some of them are carrying high white umbrella, some are holding water-pot, some are holding fan of palm leaves, some are moving white *Chamars* (holy brooms) Thus he moves again and again with great pomp and show

That prince takes bath at the appropriate time, decorates his body with ornaments and the like and enjoys worldly pleasures of high order He sits in the royal palace at the top of the hall The light of the lamps shine there throughout the night A soft bed is lying there which is higher at the sides and a little bent in the middle Beautiful damsels are standing on all sides of the bed He watches with them the dance of expert dancers, listens the music and the high sound emanating from musical instruments, stringed instruments, palting instruments, drums and the like. Thus he enjoys worldly enjoyments and sensual pleasures.

When he calls any one of his servants, four or five servants come of their own and ask—"O Reverend Sir ! Kindly order us what we should do for you ? What should we bring for you ? What meals and drinks would you like to have ? What is the inner desire of your heart ? What would you like to eat ? What is to your taste ?"

On seeing these enjoyments (of his relatives), the monk makes a *nidan* as under—"In case there is any beneficial reward for my properly practiced austerities, restraints and principles of celibacy, I should also be blessed with such like worldly pleasures and enjoyments and it shall be really good for me if I shall move enjoying such pleasures."

निदान का कटु फल **BAD RESULT OF NIDAN**

(ख) एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथे णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय-अप्पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति महड्ढिएसु महज्जुइएसु महब्बलेसु महायसेसु महासुक्खेसु महाणुभागेसु दूरगईसु चिरट्ठितिएसु।

से णं तत्थ देवे भवइ महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। जाव से णं तओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं, अणंतरं चयं चइत्ता से जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया। तेसिं णं अन्नयरंसि कुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाति।

से णं तत्थ दारए भवइ, सुकुमालपाणिपाए, अहीणपडिपुण्णापंचिंदियसरीरे, लक्खण-वंजण-गुणोववेए, ससिसोमागारे, कंते, पियदंसणे, सुरूवे। तए णं से दारए उम्मुक्कबालभावे, विण्णाणपरिणयमित्ते, जोव्वणगमणुप्पत्ते सयमेव पेइयं दायं पडिवज्जति।

तस्स णं अतिजायमाणस्स वा, णिज्जायमाणस्स वा, पुरओ महं दासीदास-किंकरकम्मकरपुरिसा छत्तं भिंगारं गहाय निगच्छंति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति- "भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सदति?"

[प्र.] तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?

[उ.] हंता ! आइक्खेज्जा।

[प्र.] से णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] णो इणट्ठे समट्ठे। अभविए णं से तस्स धम्मस्स सवणयाए।

से य भवइ महिच्छे जाव दाहिणगामी नेरइए कण्हपक्खिए, आगमिस्साए दुल्लहबोहिए यावि भवइ।

तं एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूव पावए फलविवागे जं णो संचाएइ केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

(ख) हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ (इस प्रकार का) निदान करके उस निदान सम्बन्धी संकल्प की आलोचना (निन्दा-गर्हा) एव प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) किये बिना मृत्यु के समय देह छोडकर महान् ऋद्धि वाले, महाद्युति वाले, महाबल वाले, महायश वाले, महासुख वाले, महाप्रभा वाले, दूर व शीघ्र गमन की शक्ति वाले, दीर्घकालीन स्थिति वाले किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होता है।

वह वहाँ महान् ऋद्धि–सम्पन्न देव होता है यावत् देव सम्बन्धी भोगो को भोगता हुआ विचरता है। फिर वह वहाँ की आयु (आयुष्य कर्म), भव (देव आदि सम्बन्धी भव) और स्थिति (काल मर्यादा) के क्षय होने से उस देवलोक से च्युत होकर शुद्ध मातृ–पितृ पक्ष वाले उग्रकुल या भोगकुल मे से किसी एक कुल में पुत्र रूप मे उत्पन्न होता है।

वहाँ वह बालक सुकुमार हाथ–पैर वाला, शरीर तथा पाँचो इन्द्रियो से प्रतिपूर्ण, शुभ लक्षण–व्यजन–गुणों से युक्त, चन्द्रमा के समान सौम्य, कान्त–प्रिय दर्शन वाला और सुन्दर रूप वाला होता है। बाल्यकाल बीतने पर तथा बुद्धि का विकास होने पर वह बालक क्रमशः यौवन को प्राप्त होता है। उस समय वह स्वय पैतृक (पुरखो की) सम्पत्ति का अधिकारी बन जाता है।

फिर वह जब कहीं जाता–आता है तो आगे छत्र, झारी आदि लेकर अनेक दासी–दास–नौकर, चाकर चलते है यावत् एक को बुलाने पर उसके सामने चार–पाँच बिना बुलाये ही आकर खडे हो जाते हैं और (हाथ जोडकर) पूछते है कि "हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करे यावत् आपको कौन से पदार्थ अच्छे लगते है ?"

[प्र.] क्या इस प्रकार की ऋद्धि–सम्पन्न (सुख–भोग मे निमग्न) उस पुरुष को तप–सयम के मूर्त्त रूप श्रमण माहण प्रातः या सध्या दोनो समय केवलिप्ररूपित धर्म का उपदेश करते है ?

[उ.] हाँ, ऐसा सम्भव है।

[प्र.] क्या वह उस धर्म को सुनता है ?

[उ.] यह सम्भव नही है, क्योंकि वह उस धर्म को सुनने के योग्य नही है।

क्योकि वह उत्कट (असीम) इच्छाओ वाला, बडे–बडे आरम्भ–समारम्भ करने वाला धर्महीन होकर मृत्यु प्राप्त कर दक्षिण दिशावर्ती (महावेदना वाले) नरक मे कृष्ण पाक्षिक नैरयिक रूप मे उत्पन्न होता है, तथा भविष्य मे उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार उस निदानशल्य का यह अत्यन्त पापकारी कटु परिणाम है कि उस आत्मा मे केवलिप्रज्ञप्त धर्म को श्रवण करने की योग्यता/पात्रता भी नही रहती।

(b) "O the blessed monks ! After the *nidan*, that *nirgranth*, without repenting for it, without criticizing it, leaves his mortal body at the time of his death and is re-born as a celestial being in heaven He has great wealth, brightness, power, fame, pleasures, shine and energy of covering long distances quickly His life-span in the heaven is fairly long."

He is a celestial being having great wealth and enjoys the pleasures of heavenly existence After completing the life-span of heavenly existence, he takes birth in family of good status namely *Ugra kul* or *Bhog kul*.

There that child has soft hands and feet He has all the five sense organs and good signs on his body He possesses good qualities He is

beautiful like the moon, loveable, worthy to be seen and very attractive. After passing through the childhood, when his intellect develops and gradually he attains puberty, he becomes master of his parental property

Then wherever he goes, the servants, employees and the maids move ahead of him holding umbrella, water-pots and the like. When he calls any one of them four or five servants come to him on their own, greet him and ask— "O the blessed ! Please tell us what should we do for you ? What are the things you like ?"

[Q.] Does any *Shraman* who is practicing austerities and restraints of the spiritual order properly give a spiritual discourse of the *Dharma* propagated by the *Tirthankar* to that person who is deeply engaged in worldly enjoyments and pleasures ?

[Ans.] Yes, it is possible

[Q.] Does he attentively listen to it ?

[Ans.] It is not possible, because he is not fit to hearing spirituality (*Dharma*) He has unlimited desires. He engages himself in worldly activities involving great violence to living beings. He is devoid of true spirituality He after his death is re-born in hell in the south and as a hellish being of dark status. It is very difficult for him to attain right perception (or faith) in future

"O the long-living Monks ! This is the extremely dangerous result of that thorn of *nidan*. He does not have even the capability of hearing the true path of spirituality as propagated by *Kevalis* (Omniscient) "

(२) निर्ग्रन्थी का मनुष्य (स्त्री) सम्बन्धी भोगों के लिए निदान

NIDAN OF A NIRGRANTH (NUN) FOR SEXUAL ENJOYMENTS

८. (क) एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स निग्गंथी सिक्खाए उवट्ठिया विहरमाणी पुरा दिगिंछाए उदिण्ण काम जाया विहरेज्जा सा य परक्कमेज्जा, सा य परक्कममाणी पासेज्जा से जा इमा इत्थिया भवइ–एगा, एगजाया, एगाभरणपिहाणा, तेल्ल–पेला इव सुसंगोपिता, चेल–पेला इव सुसंपरिग्गहिया, रयणकरंडकसमाणी। तीसे णं अतिजायमाणीए वा, निज्जायमाणीए वा, पुरओ महं दासी–दास किंकर–कम्मकर–पुरिसा छत्तं भिंगारं गहाय निग्गच्छंति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति, "भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सदति ?"

जं पासित्ता निग्गंथी णिदाणं करेति-"जइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, तं अहमवि आगमिस्साए इमाइं एयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं कामभोगाइं भुंजमाणी विहरामि-से तं साहु।"

८. (क) हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस धर्म का प्रतिपादन किया है। यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है यावत् सब दु खो का अन्त करने वाला है।

इस धर्म की सम्यक् शिक्षा (ज्ञान) प्राप्त कर आराधना के लिए उपस्थित होकर आराधना करती हुई निर्ग्रन्थी पूर्व बुभुक्षा (भूख आदि कष्टो के सहने से) के कारण से उदीर्ण कामा होकर (काम-भोग की इच्छा जागृत होने पर) भी सयम मार्ग मे पराक्रम करती है, और पराक्रम करती हुई (कदाचित्) स्त्री गुणो से युक्त किसी एक ऐसी स्त्री को देखती है जो अपने पति की केवल एक मात्र प्राणप्रिया है। वह एक सरीखे सुन्दर (सुवर्ण या रत्नों के) आभरण एव वस्त्र पहने हुए है तथा तेल की कुप्पी, वस्त्रो की पेटी एव रत्लो के करडिये के समान सँभालने योग्य, सुरक्षा करने योग्य और प्यारी है। जब वह अपने घर के भीतर आती-जाती है तब उसके आगे-आगे छत्र, झारी लेकर अनेक दासी-दास, नौकर-चाकर चलते है यावत् एक को बुलाने पर चार-पाँच बिना बुलाये ही उसके सामने आकर खडे हो जाते है और पूछते है-"हे देवानुप्रिये ! कहो हम क्या करे ? आपको क्या प्रिय लगता है ? यावत् आपके मुख को कौन से पदार्थ अच्छे लगते है जिन्हे हम अर्पण करे ?"

उस सुख निमग्न स्त्री को देखकर निर्ग्रन्थी निदान करती है कि "यदि मेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से आचरित तप, नियम एवं ब्रह्मचर्य-पालन का कल्याणकारी कोई विशिष्ट फल हो तो मै भी आगामी भव मे इस प्रकार के उत्तम मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो को प्राप्त करूँ। उन्हे भोगते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।"

8. (a) "O the blessed *Shramans* ! I have propounded this *Dharma* This very word of *Nirgranth* (*Tirthankars*) is true It has the capability of ending all sufferings.

A nun gets proper coaching in it She practices it She bears the suffering caused by hunger and the like Later desire for worldly enjoyments arises in her but she makes effort to go ahead in the path of restraints. While doing so, she sometimes sees a woman possessing all the qualities of a female and who is affectionate to her husband She is beautifully dressed and properly decorated with ornaments of gold or jewels She is loveable like an oil-pot, box of clothes and jewellery box and worthy to be safely guarded When she moves in the house or comes out, many servants and maids move ahead of her holding umbrella, water-pots and the like When she calls any one of them, four or five maids come of their own and ask—"O the blessed ! Kindly order us what should we do ? What do you like ? What would you like to take so that we may bring those items for you ?"

मोहग्रस्त निर्ग्रन्थी द्वारा निदान

चित्र परिचय-८

Illustration No. 8
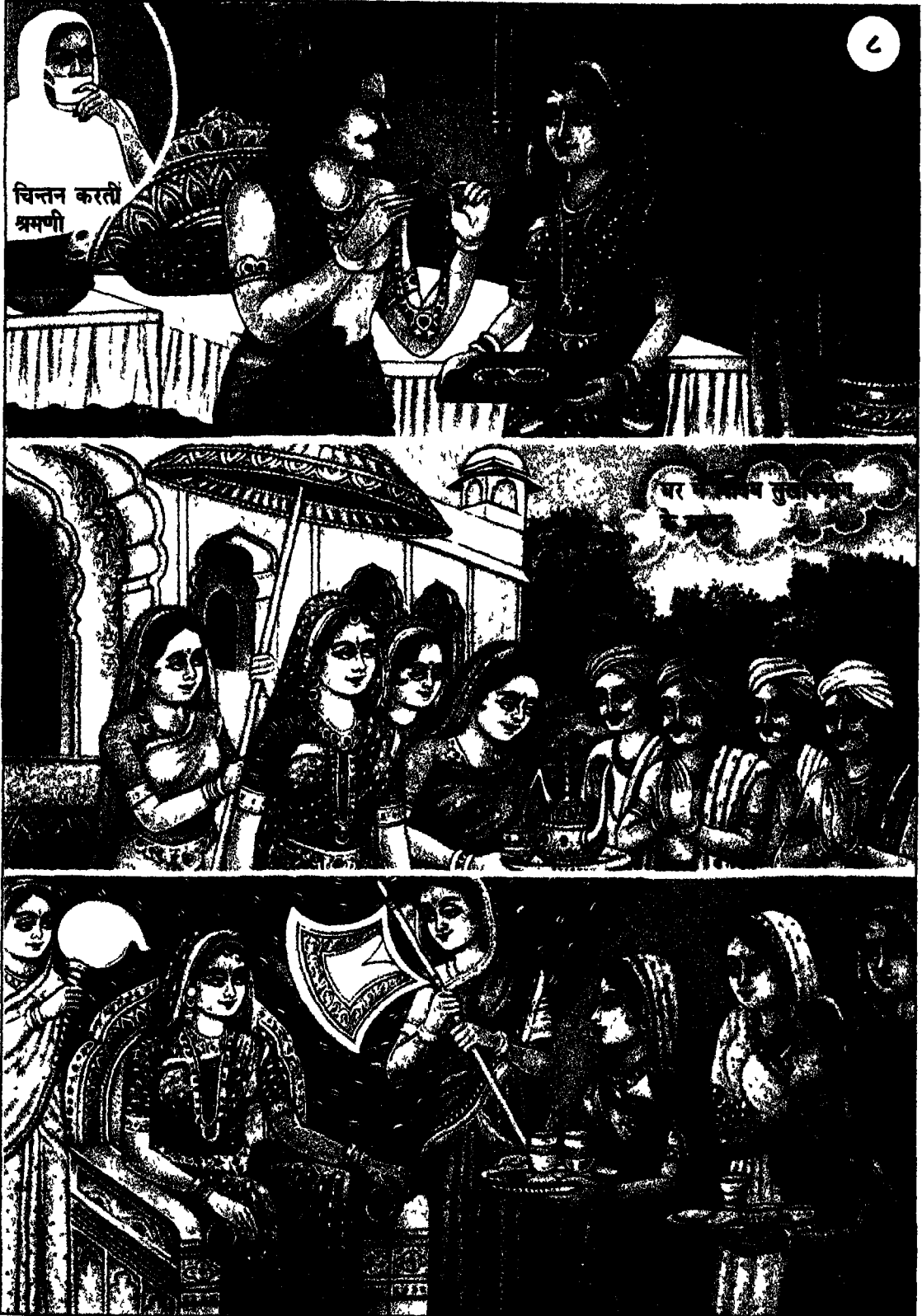
मोहासक्त निर्ग्रन्थी द्वारा निदान

भगवान महावीर ने उपस्थित निर्ग्रन्थियो (श्रमणियो) का सम्बोधित करके कहा

१ कोई निर्ग्रन्थी धर्म की सम्यक आराधना करती हुई परीषहो से पीडित होकर मन मे खेद खिन्न होती है, तथा उसके मन मे काम मोह का उदय होने पर कभी किसी ऐसी स्त्री (राजकुमारी) को देखती है, जो अपने पति की एक मात्र प्राणप्रिया है। पति उसे नाना प्रकार के वस्त्र, आभूषण देकर सदा प्रसन्न रखता है।

२ जव वह राजकुमारी अपने घर मे इधर उधर घूमती है तो अनेक दास-दासियाँ उसके आगे पीछे चलती है। जल की झारियाँ तथा भोजन की सामग्री आदि साथ लिए उसके सभी प्रकार के सुखो का ध्यान रखती है।

३ जब वह किसी एक को बुलाती है ता चार पॉच दासियॉ हाथो मे मधुर पेय, भोजन सामग्री आदि लेकर सन्मुख उपस्थित होती है और हर समय उसकी इच्छानुसार सुख-सुविधा उपस्थित करती रहती है।

भगवान ने फरमाया सुखोपभाग मे लीन ऐसी स्त्री को देखकर कोई निर्ग्रन्थी अगले जन्म मे ऐसे सुख भोग प्राप्त करने का निदान करती है। तो अगले भव मे उसे इच्छित सुख तो प्राप्त हो जाते है, परन्तु धर्म-प्राप्ति की बात तो क्या, केवलि भाषित धर्म का सुनने का सुअवसर भी उसे प्राप्त नही हो सकता।

दशा १०८ पृ १५७

NIDAN BY COVETOUS NIRGRANTHIS

Bhagavan Mahavir said to the present Nirgranthis (nuns)--

1 While doing right practice of religion, a nun is disturbed by torments and afflictions Fondness for carnal pleasures arises in her mind At such time she happens to see some princess who is the only beloved of her husband The husband always keeps her happy by giving her a variety of dresses and ornaments

2 When that princess moves about in her house many servants and maids move around her Carrying flasks full of sweet drinks, eatables and other things, they look after her comforts

3 When she calls one maid, four-five rush to her with drinks and food, and provide her all facilities

Bhagavan adds—A nun, after witnessing a woman engrossed in such comforts, wishes for such pleasures and her wishes come true in next birth Such person hardly gets an opportunity to listen to the words of the religion propagated by the Omniscient, what to say of acquiring spirituality

—Dasha 10/8, p 157

Seeing such a lady enjoying worldly pleasures a nun (*Nirgranthi*) makes a *nidan*—"In case there is any good, beneficial reward of my ascetic practices, principles, restraints and celibate conduct, I should get human sensual worldly enjoyments in my next life. I would feel happy passing my life in such enjoyments"

निदान का फल RESULT OF NIDAN

(ख) एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथी णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय अप्पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारा भवइ जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणी विहरति। जाव सा णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया एतेसिं णं अण्णयरंसि कुलंसि दारियत्ताए पच्चायाति। सा णं तत्थ दारिया भवइ सुकुमाला जाव सुरूवा।

तए णं तं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं, विण्णाणपरिणयमित्तं, जोव्वणगमणुप्पत्तं, पडिरूवेणं सुक्केणं पडिरूवस्स भत्तारस्स भारियत्ताए दलयंति। सा णं तस्स भारिया भवइ एगा, एगजाया, इट्ठा, कंता, पिया, मणुण्णा, मणामा, थेज्जा, वेसासिया, सम्मया, बहुमया, अणुमया रयणकरंडगसमाणा।

तीसे णं अतिजायमाणीए वा, निज्जायमाणीए वा पुरतो महं दासी–दास–किंकर–कम्मकर पुरिसा छत्तं, भिंगारं गहाय निग्गच्छंति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति–"भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सदति ?"

[प्र.] तीसे णं तहप्पगाराए इत्थियाए तहारूवे समणे वा माहणे वा उभयकालं केवलिपण्णत्तं धम्मं आइक्खेज्जा ?

[उ.] हंता ! आइक्खेज्जा।

[प्र.] सा णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] णो इणट्ठे समट्ठे। अभविया णं सा तस्स धम्मस्स सवणयाए।

सा य भवति महिच्छा जाव दाहिणगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमिस्साए दुल्लभबोहिया यावि भवइ।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स नियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे जं णो संचाएति केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

(ख) हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थी निदान करके उस निदान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) किये बिना जीवन के अन्तिम क्षणो मे देह त्यागकर किसी एक देवलोक में देव रूप मे उत्पन्न होती है तथा वहाँ पर दिव्य भोग भोगती हुई रहती है। वहाँ की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर वह उस देवलोक से च्युत होकर विशुद्ध मातृ–पितृ पक्ष वाले उग्रवंशी या भोगवंशी कुल मे से किसी एक उत्तम कुल मे बालिका रूप मे उत्पन्न होती है।

वहाँ वह बालिका अतीव सुकुमार यावत् सुरूप होती है। इसके अनन्तर वह बालिका बाल्यभाव से मुक्त होने पर तथा बुद्धि व ज्ञान से परिपक्व होने पर एव युवावस्था आने पर उसे उसके माता–पिता उस जैसे ही सुन्दर एव योग्य पति को अनुरूप दहेज के साथ पत्नी रूप मे देते है। उसका विवाह कर देते है। वह अपने पति की इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, अतीव मनोहर, धैर्य का स्थान, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत (अतीव मान्य) प्रेयसी एव वल्लभ, रत्न की पिटारी के समान प्यारी केवल एक मात्र भार्या होती है।

वह कही भी जाती-आती है तो उसके आगे छत्र, झारी लेकर अनेक दासी–दास, नौकर–चाकर चलते है। जब वह किसी एक को बुलाती है तो उसके सामने चार–पाँच बिना बुलाये ही आकर खडे हो जाते हैं और पूछते हैं कि "हे देवानुप्रिये ! कहो हम क्या करे ? आपकी क्या इच्छा है ? क्या आज्ञा है ? आपके मुख को कौन–से पदार्थ अच्छे लगते है ?"

[प्र.] क्या उस ऋद्धि–सम्पन्न (सासारिक सुखो मे निमग्न) स्त्री को तप–सयम के मूर्त्त रूप श्रमण–माहण दोनो समय केवलिप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश सुनाते है ?

[उ.] हाँ, सुनाते है।

[प्र.] क्या वह उस धर्म को श्रद्धापूर्वक सुनती है ?

[उ.] भते ! यह सम्भव नही है, क्योकि वह उस धर्मश्रवण के लिए योग्य नही है। (कारण उसके मन मे तीव्र भोगेच्छा होती है)

वह उत्कृष्ट अभिलाषाओ वाली मृत्यु प्राप्त कर दक्षिण दिशावर्ती नरक मे कृष्ण पाक्षिक नैरयिक रूप मे उत्पन्न होती है तथा भविष्य मे उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है। (धर्म का आचरण तो बहुत कठिन है)

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदानशल्य का यह पापकारी कटु परिणाम है कि वह आगामी भव मे केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण भी नही कर सकती है।

(b) "O blessed *Shramans* ! That nun (*Nirgranthi*) discards her mortal body in the last moments of her life-span without repenting for the *nidan* and cursing it. She is re-born as a celestial being in the heaven She enjoys heavenly pleasures there After completing that life-span she takes birth in a family of good status namely *Ugra* family or *Bhog* family as a female child " She is extremely beautiful and soft-skinned.

After passing through the youth, she attains puberty She has excellent intellect and knowledge Her parents, then select a handsome and suitable youth for her, and arrange her marriage with him They give sufficient material as dowry

She is loveable, affectionate, extremely beautiful, trustworthy to her husband. He takes her advice in ordinary matters and also in matters of

importance. He looks after her like a jewellery box. His entire affection and love is for her.

Whenever she goes anywhere, many servants and maids go ahead of her holding umbrella or the water-pots When she calls any one of them, four or five servants come to her and ask her—"O the blessed ! Please tell us what should we do ? What is your desire ? What is your command ? Which items of food do you like ?"

[Q.] Do the *Shramans*, who practice austerities and spiritual restraints according to the prescribe code, give her a spiritual discourse about true *Dharma* both the times ?

[Ans.] Yes. They do

[Q.] Will she listen to it with true faith ?

[Ans.] No, it is not possible, because she is not capable of it (as she has a keen desire for worldly pleasures in her mind)

She has unlimited desires After her death, she is re-born as a hellish beings of dark status in hells in the south. In future, it is very difficult for her to attain spiritual knowledge of true *Dharma* (the practice of spirituality is still more difficult).

"O blessed *Shramans* ! This is the bitter fruit of the thorn of *nidan* that in the succeeding life-span she is not able to listen to the code of spirituality as enunciated by *kevalis* "

(३) निर्ग्रन्थ का स्त्री होने के लिए निदान NIDAN OF A NIRGRANTH FOR BIRTH AS WOMAN

१. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स सिक्खाए निग्गंथे उवट्ठिए विहरमाणे पुरादिगिंछाए जाव से य परक्कममाणे पासेज्जा—से जा इमा इत्थिया भवति—एगा, एगजाया जाव किं तं आसगस्स सदति ? जं पासित्ता निग्गंथे निदाणं करेंति—

''दुक्खं खलु पुमत्तणए, जे इमे उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया, एतेसिं णं अण्णतरेसु उच्चावएसु महासमर—संगामेसु उच्चावयाइं सत्थाइं उरंसि चेव पडिसंवेदेंति। तं दुक्खं खलु पुमत्तणए, इत्थित्तणयं साहु।

''जइ इमस्स सुचरियस्स तवनियमबंभचेरवासस्स फलवित्तिविसेसे अत्थि, तं अहमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं उरालाइं इत्थिभोगाइं भुंजमाणे विहरामि—से तं साहु।''

एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथे णियाणं किच्चा तस्स ठाणस्स अणालोइय–अपडिक्कंते जाव अपडिवज्जित्ता आगमेस्साए दुल्लहबोहिए यावि भवइ।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूव पावए फलविवागे जं नो संचाएइ केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

९. हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस धर्म का निरूपण किया है। यही निर्ग्रन्थ–प्रवचन सत्य है, श्रेष्ठ है, परिपूर्ण है तथा इसी से सब दुःखो का अन्त किया जाता है।

कोई निर्ग्रन्थ इस केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उपस्थित हो विचरते हुए (पूर्वकालीन काम–बुभुक्षा के प्रबल उदय में आने से) एक किसी स्त्री को देखता है–जो अपने पति की केवल एक मात्र प्राणप्रिया है (कोई सपत्नी–सौत नहीं है) वह ऐश्वर्य में रमण करती हुई सुखभोग करती है। निर्ग्रन्थ उस स्त्री को देखकर निदान करता है–

"अहो ! पुरुष का जीवन दुःखमय है। क्योंकि जो ये विशुद्ध मातृ–पितृ पक्ष वाले उग्रवंशी या भोगवशी पुरुष है, वे किसी छोटे युद्ध व बडे महायुद्ध मे जाते है और छोटे–बडे शस्त्रो का प्रहार वक्षस्थल मे लगने पर वेदना से व्यथित होते हैं, (दुःख भोगते है)। अतः पुरुष का जीवन दुःखमय है और स्त्री का जीवन सुखमय है।

यदि मेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे इस तप–नियम एव ब्रह्मचर्य–पालन का विशिष्ट फल हो तो मै भी भविष्य मे स्त्री जीवन प्राप्त कर इन उत्तम भोगो को भोगता हुआ विचरण करूँ, तो अति श्रेष्ठ होगा।"

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थ इस प्रकार का निदान करके उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना मृत्यु प्राप्त करे तो उसे आगामी काल मे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदान का यह पापकारी परिणाम है कि वह केवलिप्ररूपित धर्म को भी नहीं सुन सकता है।

9. "O blessed *Shramans* ! I have propagated this *Dharma*. This is the only true word. It is the best It is complete. It has the capability of destroying all sufferings.

Sometimes a *Nirgranth* while practicing this code of spirituality as enunciated by *Tirthankars*, looks at a woman (in a fit of rising sexual urge of earlier period). He finds that the said woman is very much loved by her husband. She has no rival She fully enjoys worldly pleasures The *Nirgranth* then makes a *nidan* as under–

"Ah ! The life of a man is full of sufferings These men of pure *Ugra* family or *Bhog* family go to some small or major war They suffer pain when small or big weapon hits them at the chest (they suffer pain). So the life of a man is full of sufferings and the life of a woman is full of pleasures.

In case there is any important reward of my ascetic practices, spiritual restraints and conduct of celibacy, it shall be good if I attain the next life as a woman and spend my life in worldly enjoyments."

"O the blessed ! In case that *Nirgranth* dies in the state of that *nidan* and without repenting and criticising it, it is very difficult for him to attain right perception in next life."

"O the blessed ! This is the sinful result of that *nidan* that he cannot even listen to the code of spirituality propagated by *kevalis* (Omniscients)."

(४) निर्ग्रन्थी का पुरुष होने के लिए निदान NIDAN OF A NUN FOR BECOMING A MAN

१०. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स निग्गंथी सिक्खाए उवट्ठिया विहरमाणी जाव पुरा दिगिंछाए पुरा जाव उदिण्ण कामजाया वि विहरेज्जा, सा य परक्कमेज्जा, सा य परक्कममाणी पासेज्जा जे इमे उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया तंसिं णं अण्णयरस्स अइजायमाणे वा जाव किं तो आसगस्स सदति, जं पासित्ता निग्गंथी णिदाणं करेंति–

"दुक्खं खलु इत्थित्तणए, दुस्संचराइं गामंतराइं जाव सन्निवेसंतराइं। से जहानामए अंबपेसियाइ वा, मातुलिंगपेसियाइ वा, अंबाडगपेसियाइ वा, उच्छुखंडियाइ वा, संबलिफलियाइ वा बहुजणस्स आसायणिज्जा, पत्थणिज्जा, पीहणिज्जा, अभिलसणिज्जा। एवामेव इत्थिया वि बहुजणस्स आसायणिज्जा जाव अभिलसणिज्जा तं दुक्खं खलु इत्थित्तणए, पुमत्तणए णं साहु।"

"जइ इमस्स सुचरियस्स तवनियमबंभचेरवासस्स फलवित्तिविसेसे अत्थि, तं अहमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं उरालाइं पुरिसभोगाइं भुंजमाणी विहरामि–से तं साहु।"

एवं खलु समणाउसो ! णिग्गंथी णिदाणं किच्चा तस्स ठाणस्स आणालोइय अप्पडिक्कंता जाव पडिवज्जित्ता काले मासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोगेसु देवत्तारा उववत्तारा भवति। दुल्लहबोहिया यावि भवइ।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे, जं नो संचाएइ केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए।

१०. आयुष्मन् श्रमणो ! मैंने धर्म का प्रतिपादन किया है, यही निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है, यावत् इसकी आराधना करने वाले सब दुःखो का अन्त करते है।

उस केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत होकर निर्ग्रन्थी विचरती हुई कोई पूर्व बुभुक्षा (अनुपशान्त कामेच्छा) से उदीर्ण कामा होकर (काम का उदय होने पर) सयम मे पुरुषार्थ करती हुई किसी एक पुरुष को देखती है, जोकि विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाला उग्रवशी या भोगवशी है यावत् अनेक सेवक परिचारक (उसकी सेवा परिचर्या मे जुटे हुए) पूछते रहते हैं–"देवानुप्रिय ! आपको क्या चाहिए, क्या खाने की इच्छा है ?" इत्यादि। उसके सुख वैभव को देखकर वह निर्ग्रन्थी निदान करती है कि–

"स्त्री का जीवन अत्यन्त दु:खमय व कष्टमय है, क्योंकि स्त्रियो को एक गाँव से दूसरे गाँव में, एक सन्निवेश से दूसरे सन्निवेश में आना-जाना अत्यन्त कठिन है। जिस प्रकार आम, बिजोरा या आम्रातक (अंबाडा-जंगली आम Hogplum हागप्लम) की फाँकें, इक्षु-खण्ड और शाल्मलि की फलियाँ अनेक मनुष्यो के लिए आस्वादनीय (चखने योग्य), पाने योग्य, चाहना और अभिलाषा करने योग्य होती हैं, इसी प्रकार स्त्री का शरीर भी अनेक मनुष्यो के लिए आस्वादनीय यावत् अभिलषणीय होता है। इसलिए स्त्री का जीवन दु:खमय तथा कष्ट रूप है और पुरुष का जीवन सुखमय है।"

"यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे तप, नियम एव ब्रह्मचर्य-पालन का भविष्य में कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मै भी आगामी भव मे इस प्रकार के उत्तम पुरुष सम्बन्धी काम-भोगो को भोगते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।"

इस प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह निर्ग्रन्थी निदान करके उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना मृत्यु प्राप्त करके किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होती है, यावत् वह वहाँ से च्युत होकर किसी उत्तम कुल मे जन्म लेती है। वहाँ पूर्वोक्त सभी सुख-साधन तो प्राप्त होते है, परन्तु किसी श्रमण से धर्म सुनकर उसे धारण नही कर पाती। उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदान का यह पापकारी परिणाम है कि वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन भी नही सकती।

10. "O the blessed *Shramans* ! I have propounded *Dharma* This is true word of *Nirgranths* It is unique A person who practices it, eliminates all sufferings "

A nun with a keen desire of practicing the code of spirituality, during her wanderings under the influence of unsatisfied sexual desire of the past, while practicing ascetic restraints, sees a man who is of very good family from parental side He is of *Ugra kul* or *Bhog kul* Many servants are engaged in his service They ask him—"O the blessed ! What do you desire ? What would you like to eat ? And the like " Seeing these pleasures and enjoyments of that man, the *Nirgranthi* (nun) makes a *nidan* as under—

"The life a woman is extremely miserable and full of sufferings It is extremely difficult for a woman to go from one village to another, from one suburb to another. The pieces of mango, *bijaura*, hogplum, sugar-cane and the beans of *shalmali* tree are tasty to many people They like to get them. They desire them They are very keen for them. Similarly many men like the touch of and the enjoyment with the physical body of a woman They keenly desire for it Therefore, the life of a woman is full of suffering and that of a man is full of pleasures "

"In case there is any great reward for proper practice of my austerities, spiritual restraints and practice of celibacy, it shall be highly beneficial for me if in the next life-span I also enjoy sexual pleasures of worldly life of a man."

"O blessed *Shramans* ! That nun dies without repenting and cursing her *nidan*. She takes re-birth in the heaven as a celestial being in some family of good status such as *Ugra* family. She has all the means of worldly enjoyments there but she cannot accept any principle of true spirituality after listening to it. It is very difficult for her to get right perception (*Samyaktva*) "

"O the blessed ! This is the bitter fruit of '*nidan*' that she cannot even hear the code of spirituality propagated by *Tirthankars*."

(५) निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थी द्वारा परदेवी–परिचारणा का निदान NIDAN OF SEX WITH GODDESSES OF OTHERS

११. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते, इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

जस्स णं धम्मस्स निग्गंथो वा निग्गंथी वा सिक्खाए उवट्ठिए विहरमाणे जाव से य परक्कममाणे माणुस्सेहिं कामभोगेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा–"माणुस्सगा खलु कामभोगा अधुवा, अणितिया, असासया, सडण–पडण–विद्धंसणधम्मा। उच्चार–पासवण–खेलजल्ल–सिंघाणग–वंतपित्त–सुक्कसोणियसमुब्भवा। दुरूवउस्सास–निस्सासा, दुरंतमुत्तपुरीसपुण्णा, वंतासवा, पित्तासवा, खेलासवा, पच्छापुरं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा।"

"संति उड्ढं देवा देवलोयंसि। ते णं तत्थ अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेंति। अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेंति। अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेंति।"

"जइ इमस्स सुचरियस्स तव नियम बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि तं अहमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरामि–से तं साहु।"

एवं खलु समणाउसो ! णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा णियाणं किच्चा जाव देवे भवइ महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। से णं तत्थ अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ, अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्विय विउव्विय परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव पुमत्ताए पच्चायाति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति–"भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सयइ ?"

[प्र.] तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?

[उ.] हंता ! आइक्खेज्जा।

[प्र.] से णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] हंता ! पडिसुणेज्जा।

[प्र.] से णं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा ?

[उ.] णो तिणट्ठे समट्ठे। अभविए णं से तस्स धम्मस्स सद्दहणयाए।

से य भवति महिच्छे जाव दाहिणगामिए णेरइए कण्हपक्खिए आगमेस्साए दुल्लभबोहिए यावि भवति।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे—जं णो संचाएति केवलिपण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा, पत्तियत्तिए वा, रोइत्तए वा।

११. आयुष्मन् श्रमणो ! मैने धर्म का प्रतिपादन किया है। यही निर्ग्रन्थ–प्रवचन सत्य है यावत् इसका आराधन करने वाले सब दु.खो का अन्त करते है।

कोई निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उपस्थित हो विचरण करते हुए यावत् सयम मे पराक्रम करते हुए मनुष्य सम्बन्धी काम–भोगो से विरक्त हो जाये और वह यह सोचे कि "मानव सम्बन्धी काम–भोग अध्रुव (चचल) हैं, अनित्य (क्षणिक) है, अशाश्वत (अस्थायी) है, सडने–गलने वाले एवं नश्वर है। मल–मूत्र–श्लेष्म–मल (स्वेद)–वात–पित्त–कफ–शुक्र एव शोणितमय शरीर से उद्‌भूत है। दुर्गन्धयुक्त श्वासोच्छ्‌वास तथा मल–मूत्र से परिपूर्ण है। वात–पित्त और कफ के द्वार है। पहले या पीछे अवश्यमेव छोडने योग्य है।"

"जो ऊपर देवलोक मे देव रहते है, वे वहाँ अन्य देवो की देवियो को अपने अधीन करके उनके साथ विषय–सेवन करते है, स्वय ही अपनी विकुर्वित देवियो के साथ विषय–सेवन करते है और अपनी स्व–देवियो के साथ भी विषय सेवन करते है।"

"यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे इस तप, नियम एव ब्रह्मचर्य–पालन का विशिष्ट फल हो तो मै भी भविष्य मे इन उपर्युक्त दिव्यभोगो को भोगते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।"

आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थनी (कोई भी) निदान करके आयुष्य पूर्ण होने पर देव रूप मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ महाऋद्धि वाला देव होता है यावत् दिव्यभोगो को भोगता हुआ विचरता है–(१) वह देव वहाँ अन्य देवो की देवियो के साथ विषय–सेवन करता है। (२) स्वयं ही अपनी विकुर्वित देवियो के साथ, तथा (३)अपनी स्व-देवियो के साथ भी विषय–सेवन करता है।

वह देव उस देवलोक से आयु व स्थिति के क्षय होने पर यावत् (इस मनुष्य लोक मे उग्रकुल आदि किसी कुल में) पुरुष रूप में उत्पन्न होता है यावत् (सब प्रकार के काम–भोग सुख प्राप्त करता है) उसके द्वारा एक सेवक को बुलाने पर चार-पाँच आज्ञाकारी सेवक दास–दासी बिना बुलाये ही उठकर खडे हो जाते हैं और पूछते रहते है कि "हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करे ? आप क्या चाहते हैं ? आप को कौन–से पदार्थ अच्छे लगते है ?"

मोहग्रस्त निर्ग्रन्थ का चिन्तन

चित्र परिचय-९

Illustration No. 9

मोहासक्त निर्ग्रन्थ का चिन्तन

भगवान फरमाते है -

कोई निर्ग्रन्थ चारित्र धर्म का पालन करते हुए जब कष्टो से पीडित होता है तथा काम-मोह का उदय हो जाता है, तब वह सोचता है

१ पुरुष का जीवन बहुत ही कष्टमय है। कभी किसी सेना मे भर्ती हो गया तो रणभूमि मे शत्रु के शस्त्रो से घायल होकर मृत्यु भी प्राप्त कर सकता है, तथा घररूपी गाडी को चलाने के लिए उसे रात-दिन बैल की तरह जुते रहना पडता है।

२ जबकि स्त्री का जीवन बहुत सुखमय है। पति का प्यार व घर मे पूर्ण मान-सन्मान, सुख -सुविधा भोगती है।

मै भी अगले भव मे स्त्री-सुख प्राप्त करूँ तो अच्छा हो

दशा १०/९

मोहासक्त निर्ग्रन्थ का चिन्तन

३ किसी निर्ग्रन्थी के मन मे जब मोहोदय वश कामेच्छा जागृत होती है, तो वह सोचती है- अहो ! स्त्री का जीवन अत्यन्त भय व असुरक्षा से सत्रस्त रहता है। जैसे आम का फल देखकर हर कोई उसका स्वाद लेना चाहता है ईख के खेत को देखकर ईख तोडकर हर कोई चखने को ललचाता है। उसी प्रकार स्त्री को देखकर पर पुरुष उस पर कामुक दृष्टि से ललचाते रहते है। रास्ते चलती अकेली स्त्री को देखकर कामी पुरुष उसको परेशान करते रहते है। स्त्री का जीवन कितना भययुक्त तथा असुरक्षापूर्ण है। जबकि पुरुष निर्भय होकर पूर्ण मान-सम्मान के साथ जीता है। मै अगले भव मे पुरुष बनूँ तो अच्छा हो

भगवान फरमाते है इस प्रकार निर्ग्रन्थ स्त्री-सुख के लिए तथा निर्ग्रन्थी पुरुष-सुख के लिए यदि निदान करती है तो अगले भव मे उसे केवलि भाषित धर्म की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है।

-दशा १० १० पृ १६०

THOUGHTS OF A COVETOUS NIRGRANTH

Bhagavan says—

While doing ascetic practice, when a monk is disturbed by torments and fondness for carnal pleasures arises in his mind At such time he thinks—

1 Life of a man is very painful If he joins the army he may die in the battlefield wounded by attack from enemy Moreover, he has to work day and night like an ox to keep the cart of household running

2 On the other hand the life of a woman is full of happiness She enjoys the love of her husband as well as respect, honour and comforts in the household

It would be good if I too enjoy such comforts as a woman in the next birth

—Dasha 10/9

THOUGHTS OF A COVETOUS NIRGRANTHI

3 When fondness for carnal pleasures arises in the mind of a nun, she thinks—Oh ! The life of a woman is filled with fear and apprehension for security When seeing a mango everyone wants to taste it and seeing the crop of sugar-cane everyone covets to taste it In the same way when any man sees a woman he gives her a lustful and lecherous look When a woman walks alone on the way, lusty men torment her How fearful and insecure is the life of a woman ! On the other hand men live fearlessly and with respect and honour It would be good if I take rebirth as a man

Bhagavan adds—This way if a monk wishes for the happiness of a woman and a nun wishes for the happiness of a man, in their next birth, it is difficult for them to be blessed with the religion of the Omniscient

—Dasha 10/10 p 163

[प्र.] क्या इस प्रकार की ऋद्धि व ऐश्वर्य से युक्त उस पुरुष को तप-संयम के मूर्त रूप श्रमण माहन उभय काल केवलिप्रज्ञप्त धर्म कहते हैं ?

[उ.] हाँ, कहते हैं।

[प्र.] क्या वह धर्म को सुनता है ?

[उ.] हाँ, सुनता है।

[प्र.] क्या वह केवलिप्ररूपित धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति या रुचि करता है ?

[उ.] यह सम्भव नहीं है। क्योंकि (पूर्वकृत निदान के कारण) वह सर्वज्ञप्ररूपित धर्म पर श्रद्धा करने योग्य नहीं रहता है।

किन्तु वह (काम-भोग-ऐश्वर्य आदि की) उत्कट अभिलाषाएँ रखता हुआ मृत्यु प्राप्त कर दक्षिण दिशावर्ती नरक मे कृष्णपाक्षिक नैरयिक रूप में उत्पन्न होता है तथा भविष्य मे उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ होती है।

हे आयुष्मन श्रमणो ! निदान शल्य का यह पापकारी परिणाम है कि वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नही रख पाता है।

11. "O the blessed *Shramans* ! I have propounded *Dharma*. This alone is true as it is word of *Nirgranth*. Its practice can end all sufferings "

A monk or a nun engages himself or herself in practice of code of spirituality enunciated by *Tirthankars* and that of spiritual restraints Later on he or she becomes totally detached from sensual and sexual pleasures of a human being and thinks—"The sensual pleasures are transitory They are momentary. They are not permanent. They are likely to pollute and come to an end. Their source is the physical body which contains filth, urine, dirt of nose, phlegm, perspiration and blood. Its breath also contains bad smell It has openings for dirty substances It is certainly going to be discarded, sooner or later."

"Those who live in heaven as celestial beings, they overpower the goddesses belonging to other celestial beings and enjoy sexual pleasures with them They create goddesses through their own fluid body and enjoy sensual pleasures with them. They enjoy sex with their own goddesses, also

"In case there is any good reward of my ascetic practices, austerities and practice of celibacy, I should spend my next life-span enjoying sensual pleasures of heaven. I believe that it shall be most beneficial for me."

O the blessed *Shramans* ! Such a monk or nun, after '*nidan*' is born in the heaven as a celestial being after completing the present life-span He

has great wealth there. He spends his life enjoying heavenly pleasures and enjoyments—(1) That *deva* enjoys sexual pleasures with goddesses belonging to other *devas* (2) He enjoys sexual pleasures with goddesses created by him through his own fluid body (3) He enjoys sex with goddesses belonging to him.

After completing his life-span in the heaven, the said celestial being takes birth as a male child in *Ugra* family and the like in this world. He is blessed with all sorts of worldly enjoyments and pleasures. When he calls a servant, four or five servants and maids appear before him and ask—"O the blessed ! What should we do ? What do you like ? What are the things you like the most and so on "

[Q.] Does a *Shraman* fully experienced in austerities and ascetic practices deliver a spiritual discourse about *Dharma* propagated by *Tirthankar* to such a person who is having worldly wealth and grandeur ?

[Ans.] Yes, he does.

[Q.] Does he listen the *Dharma* ?

[Ans.] Yes, he does.

[Q.] Does he have faith, belief, keen desire in the *Dharma* propagated by *Kevalis* ?

[Ans.] No, it is not possible because he is not capable of right faith in the *Dharma* propagated by the *Kevalis* because of *nidan* in the earlier life-span.

He has keen desire for sensual and sexual pleasures and enjoyments. He dies in such a state and is re-born as a hellish being of dark category in the hells in the south And in future it is extremely difficult for him to attain right faith or right perception

"O the blessed *Shramans* ! It is the dangerous result of the thorn of *nidan* that he does not have faith, keen desire and curiosity for the *Dharma* propagated by the Omniscients "

(६) निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थी के द्वारा स्वदेवी–परिचारणा का निदान NIDAN OF SEX WITH ONE'S OWN GODDESSES

१२. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते जाव से य परक्कममाणे माणुस्सएसु कामभोगेसु निव्वेयं गच्छेज्जा, "माणुस्सगा खलु कामभोगा अधुवा जाव विप्पजहणिज्जा।"

"संति उड्ढं देवा देवलोयंसि। ते णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेंति। अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्वित्ता परियारेंति। अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेंति।"

"जइ इमस्स सुचरियस्स तवनियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, अहमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरामि–से तं साहु।"

एवं खलु समणाउसो ! णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा णियाणं किच्चा जाव देवे भवइ, महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

से णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ। अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्विय–विउव्विय परियारेइ। अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव पुमत्ताए पच्चायाति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति "भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो ? जाव किं ते आसगस्स सयइ ?"

[प्र.] तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?

[उ.] हंता ! आइक्खेज्जा।

[प्र.] से णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] हंता ! पडिसुणेज्जा।

[प्र.] से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा ?

[उ.] णो तिणट्ठे समट्ठे अण्णत्थरुई यावि भवति।

अण्णरुइमायाए से भवति–जे इमे आरणिया, आवसहिया, गामंतिया, कण्हूइरहस्सिया। णो बहुसंजया, णो बहुपडिविरया सव्व–पाण–भूय–जीव–सत्तेसु अप्पणो सच्चामोसाइं एवं विपडिवदंति–

अहं णं हंतव्वो, अण्णे हंतव्वा। अहं णं अज्जावेयव्वो, अण्णे अज्जावेयव्वा। अहं णं परियावेयव्वो, अण्णे परियावेयव्वा। अहं णं परिघेतव्वो, अण्णे परिघेतव्वा। अहं णं उवद्दवेयव्वो, अण्णे उवद्दवेयव्वा।

एवामेव इत्थिकामेहिं मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा जाव कालमासे कालं किच्चा अण्णयेरसु आसुरिएसु किव्विसिएसु ठाणेसु उववत्तारो भवंति। ततो विमुच्चमाणा भुज्जो एलमूयत्ताए पच्चायंति।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णिदाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागेणं णो संचाएति केवलिपण्णत्तं धम्मं सद्दहित्तए वा, पत्तिइत्तए वा, रोइत्तए वा।

१२. हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस धर्म का निरूपण किया है यावत् (कोई इस धर्म की आराधना के लिए) सयम की साधना मे पराक्रम करते हुए निर्ग्रन्थ मानव–सम्बन्धी काम–भोगो से विरक्त हो जाये और यह सोचे कि "मानव सम्बन्धी काम–भोग अध्रुव हैं यावत् त्याज्य हैं।"

"जो ऊपर देवलोक में देव हैं वे वहाँ अन्य देवों की देवियों के साथ विषय–सेवन नहीं करते है, किन्तु स्वयं की विकुर्वित देवियों के साथ विषय–सेवन करते है तथा अपनी देवियो के साथ भी विषय–सेवन करते है।"

"यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे इस तप–नियम एवं ब्रह्मचर्य–पालन का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मैं भी आगामी काल में इस प्रकार के दिव्यभोगों को भोगते हुए विचरण करूँ–तो यह श्रेष्ठ होगा।"

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी (कोई भी) निदान करके (आयुष्य पूर्ण होने पर) देव रूप में उत्पन्न होता है। वह वहाँ महाऋद्धि वाला देव होता है यावत् दिव्यभोगों को भोगता हुआ विचरता है।

वह देव वहाँ अन्य देवों की देवियों के साथ विषय–सेवन नहीं करता है, किन्तु स्वयं ही अपनी विकुर्वित देवियों के साथ विषय–सेवन करता है और अपनी देवियो के साथ भी विषय–सेवन करता है।

वह देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर यावत् किसी (महर्द्धिक कुल मे) पुरुष रूप में उत्पन्न होता है वहाँ अनेक प्रकार के काम–भोग भोगते हुए यावत् उसके द्वारा एक दास–दासी को बुलाने पर चार–पाँच बिना बुलाये ही उठकर खडे हो जाते है और पूछते रहते हैं कि "हे देवानुप्रिय ! कहो आपके लिए हम क्या करें, यावत् आपको कौन–से पदार्थ अच्छे लगते है ?"

[प्र.] इस प्रकार की ऋद्धि ऐश्वर्य व सुखो से सम्पन्न उस पुरुष को क्या तप–सयम के मूर्त्त रूप श्रमण माहण उभय काल केवलिप्रज्ञप्त धर्म कहते है ?

[उ.] हाँ, कहते है।

[प्र.] क्या वह सुनता है ?

[उ.] हाँ, सुनता है।

[प्र.] क्या वह (सुने हुए धर्म पर) श्रद्धा, (विश्वास) प्रतीति (सतुष्टि) एव रुचि (उसके प्रति आकर्षण) करता है ?

[उ.] यह सम्भव नही है, किन्तु वह अन्य दर्शन (अन्य धर्म परम्परा) मे रुचि रखता है।

वह अन्य दर्शन को स्वीकार कर इस प्रकार का आचरण करता है–जैसे कि ये पर्णकुटियो मे रहने वाले अरण्यवासी तापस और ग्राम के समीप की वाटिकाओ मे रहने वाले तापस तथा अदृष्ट होकर रहने वाले जो तांत्रिक है, असयत है, वे प्राण, भूत, जीव और सत्व की हिंसा से विरत नही है। वे सत्य–मृषा (मिश्रभाषा) का इस प्रकार प्रयोग करते है कि "मुझे मत मारो, दूसरो को मारो। मुझे आदेश मत करो, दूसरों को आदेश करो। मुझको पीड़ित मत करो, दूसरो को पीडित करो। मुझको मत पकड़ो, दूसरो को पकडो, मुझे भयभीत मत करो, दूसरों को भयभीत करो।"

इसी प्रकार वे स्त्री सम्बन्धी काम–भोगो में भी मूर्च्छित–ग्रथित, गृद्ध एव आसक्त होकर यावत् जीवन के अन्तिम क्षणो मे देह त्यागकर किसी असुरलोक मे किल्यिषिक देवस्थान मे उत्पन्न होते है।

वहाँ से वे देह छोडकर पुनः भेड़–बकरे के समान मनुष्यो मे मूक (मूक प्राणी) के रूप मे उत्पन्न होते है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदान का यह पापकारी परिणाम है कि वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करने की योग्यता भी नहीं रखता।

12. "O the blessed ! I have propagated this *Dharma*. A monk practices this *Dharma*. He goes ahead in ascetic restraints. He gets detached from sensual pleasures of human beings. He thinks—"Sensual pleasures and sexual enjoyments of human beings are bad and worthy to the discarded."

"The *devas* (celestial beings) in heavens do not enjoy sensual pleasures with goddesses of other gods. They have such enjoyments only with their own goddesses and with those created by them with their fluid body

"In case there is any good reward of my austerities, ascetic restraints or observance of celibacy in prescribed manner, it shall be good if I pass my next life-span enjoying sensual unique pleasures of such type as the *devas* enjoy"

O blessed *Shramans* ! Such a monk or nun, whatever the case may be, takes birth as a heavenly being (*deva*) after the present life-span under his '*nidan*'. He is a celestial being of great wealth and enjoys pleasures and sensual enjoyments of heavenly being.

That *deva* enjoys sensual and sexual pleasures and enjoyments with his own goddesses and the goddesses created by him with his own fluid body but he does not have such enjoyments with the goddesses of other *devas*.

After completing his life-span in the heaven, that *Deva* is born as a human being in a highly respectable family. He enjoys sensual pleasures of various types Whenever he calls a servant or maid, four or five servants appear before him and ask—"Reverend Sir ! Kindly order us what should we do for you ? What substance do you like ?"

[Q.] Do the *Shramans* preach to that respectable person engrossed in worldly enjoyments, the *Dharma* propagated by the Omniscient both the times ?

[Ans.] Yes, they do

[Q.] Does he listen to them ?

[Ans.] Yes, he does

[Q.] Does he have faith, belief, affection and keenness in the *Dharma* he has heard ?

[Ans.] No It is not possible But he has keen desire in other philosophers and their traditions.

He accepts other philosophy and conducts himself accordingly For instance, there are ascetics undergoing austerities who reside in huts

(*parnkuties*) in the jungle, in thatched huts near the village and *tantriks* who are not visible to the common men. They have no restraints. They have not avoided violence to immobile and two to five sensed mobile living beings. They use the language which is a mixture of truth and falsehood. They say—"Do not kill (or beat) me Kill (or beat) the others. Do not order me. Order others. Do not trouble me Trouble others. Do not catch me. Catch others. Do not terrorise me Terrorise others."

Similarly, they remain deeply attached to sensual pleasures and sexual enjoyments related to the woman In the end, after discarding the present physical body, they are reborn in the land of *Asuras* in *Kilvishik* (wretched) area.

After discarding that body (on completion of the assigned life-span), they get re-birth as a dumb animal like sheep or goat among men

O blessed *Shramans* ! This is the sinful result of that '*nidan*' that he does not have the capability of even having faith, affinity or inclination for the *Dharma* enunciated by Omniscients

(७) निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थी के द्वारा सहज दिव्यभोग का निदान

NIDAN OF NORMAL WORLDLY ENJOYMENTS BY NIRGRANTHS AND NIRGRANTHIS

१३. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते जाव से य परक्कममाणे माणुस्सएसु काम–भोगेसु निव्वेदं गच्छेज्जा–''माणुस्सग्गा खलु कामभोगा अधुवा जाव विप्पजहियव्वा। संति उड्ढं देवा देवलोगंसि। ते णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ, णो अप्पणो चेव अप्पाणं वेउव्विय–वेउव्विय परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ।''

''जइ इमस्स सुचरियतव–नियम–बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, अहमवि आगमेस्साए इमाइं एयारूवाइं दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरामि–से तं साहु।''

एवं खलु समणाउसो ! णिग्गंथो वा णिग्गंथी वा णियाणं किच्चा जाव देवे भवइ महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। से णं तत्थ णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ, णो अप्पणो चेव अप्पाणं विउव्विय–विउव्विय परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुंजिय–अभिजुंजिय परियारेइ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव पुमत्ताए पच्चायाति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि–पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति ''भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सयइ ?''

[प्र.] तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा।

[उ.] हंता ! आइक्खेज्जा।

[प्र.] से णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] हंता ! पडिसुणेज्जा।

[प्र.] से णं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा ?

[उ.] हंता ! सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा।

[प्र.] से णं सीलव्वय–गुणवय–वेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं पडिवज्जेज्जा ?

[उ.] णो तिणट्ठे समट्ठे, से णं दंसणसावए भवति।

अभिगयजीवाजीवे जाव अट्ठिमिज्जापेमाणुरागरत्ते "अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, एस परमट्ठे, सेसे अणट्ठे।"

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियायं पाउणइ, पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णियाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे–जं णो संचाएति सीलव्वय–गुणव्वय–वेरमण–पच्चक्खाण–पोसहोववासाइं पडिवज्जित्तए।

१३. हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस धर्म का प्ररूपण किया है। वह अनुत्तर धर्म है, उसके अनुसार सयम की साधना मे पराक्रम करते हुए निर्ग्रन्थ मानव सम्बन्धी काम–भोगों से विरक्त हो जाय और वह यह सोचे कि "मानव सम्बन्धी काम–भोग अध्रुव है यावत् त्याज्य हैं। जो ऊपर देवलोक मे देव है, वे वहाँ अन्य देवो की देवियो के साथ विषय–सेवन नही करते है तथा स्वय की विकुर्वित देवियो के साथ भी विषय–सेवन नही करते है, किन्तु अपनी स्व–देवियो के साथ काम–क्रीडा करते है।"

"यदि (मेरे द्वारा) सम्यक् प्रकार से आचरित इस तप–नियम एवं ब्रह्मचर्य–पालन का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मै भी आगामी काल मे इस प्रकार के दिव्यभोग भोगता हुआ विचरण करूँ–तो यह श्रेष्ठ होगा।"

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ (कोई भी) निदान करके यावत् वह देव रूप मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ महाऋद्धि वाला देव होता है यावत् दिव्यभोगो को भोगता हुआ विचरता है।

वह देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर यावत् किसी महर्द्धिक कुल मे पुरुष रूप मे उत्पन्न होता है। वहाँ उसके द्वारा किसी एक दास–दासी को बुलाने पर चार–पाँच दास–दासी बिना बुलाये ही उठकर खडे हो जाते है और पूछते रहते है कि "हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करे यावत् आपको कौन–से पदार्थ अच्छे लगते है ?"

[प्र.] इस प्रकार की ऋद्धि ऐश्वर्य व काम–भोगासक्त उस पुरुष को क्या तप–सयम के मूर्त्त रूप श्रमण माहण उभय काल केवलिप्रज्ञप्त धर्म कथन करते हैं।

[उ.] हाँ, करते है।

[प्र.] क्या वह धर्म सुनता है ?

[उ.] हाँ, वह सुनता है।

[प्र.] क्या वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखता है ?

[उ.] हाँ, वह केवलिप्रज्ञप्त धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि रखता है।

[प्र.] क्या वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास का पालन कर सकता है ?

[उ.] यह सम्भव नहीं है। वह केवल दर्शन–श्रावक होता है।

वह जीव–अजीव के यथार्थ स्वरूप का ज्ञाता होता है यावत् उसके अस्थि एवं मज्जा मे धर्म के प्रति अनुराग होता है। यथा–"हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही जीवन में इष्ट है। यही परमार्थ है। अन्य सब निरर्थक है।"

वह इस प्रकार अनेक वर्षों तक आगारधर्म की आराधना करता है और आराधना करके जीवन के अन्तिम क्षणों में किसी एक देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होता है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदान का यह पाप रूप परिणाम है कि वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास का अनुपालन नही कर सकता है।

13. O the blessed *Shramans* ! I have propounded this *Dharma* It is unique. The monk should engage himself with all efforts in the restraints according to this *Dharma* and detach himself from all sensual enjoyments and sexual pleasures of the human beings He should contemplate—

"The sensual pleasures and sexual enjoyments of human beings are transitory and worthy to be discarded The celestial beings in heaven do not have sex with the goddesses of other gods or the goddesses created by them through their own fluid body. They have sensual enjoyments only with their own goddesses

"In case there is any grand reward of austerities, restraints and celibacy practiced by me according to the prescribed code, I should spend my next life-span enjoying heavenly pleasures. It shall be extremely beneficial for me "

O blessed *Shramans* ! Thus any *nirgranth* who has made a '*nidan*' is born in heaven on a celestial being. He is a *deva* of great grandeur there and enjoys the heavenly pleasures Thus he spends his life-span there

After completing his life-span as *deva*, he takes birth as a man in a very rich and respectable family. When he calls any servant or maid, four or five servants appear before him and ask—"Reverend Sir ! Please tell us what should we do ? What do you like ?"

[Q.] Do the *Shramans* engaged in austerities and restraints preach *Dharma* (Spirituality) to such a person who is well to do and has all sorts

of comforts and who is attached to sensual pleasures and sexual enjoyments ?

[Ans.] Yes, they do.

[Q.] Does he listen to spirituality ?

[Ans.] Yes, he does.

[Q.] Does he have faith, affection and keen-ness for *Dharma* propagated by Omniscients ?

[Ans.] Yes, he has.

[Q.] Can he practice minor vows and supplementary vows of householders, other prescribed restraints and *paushadhopavas* (whole day fast without water) ?

[Ans.] No, it is not possible. He is only a *Darshan Shravak–Shravak* having right perception

He knows the true nature of living beings and non-living beings. He has deep faith in *Dharma* up to the core of his heart. He believes—"Only word of *Nirgranth* is desirabe in life. Only that leads to liberation. All else is useless."

He practices in this way the conduct of a householder as prescribed and reflecting in this way, he is finally re-born in heaven as a celestial being

O the blessed ! This is the sinful result of his *nidan* that he cannot practice the vows of a householder, the restraint and *paushadhopavas* properly

(८) श्रमणोपासक होने के लिए निदान **NIDAN OF BECOMING A SHRAMANOPASAK**

१४. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते जाव से य परक्कममाणे दिव्वमाणुस्सएहिं काम-भोगेहिं णिव्वेदं गच्छेज्जा–

"माणुस्सगा कामभोगा अधुवा जाव विप्पजहणिज्जा। दिव्वा वि खलु काम-भोगा अधुवा, अणितिया, असासया, चलाचलणधम्मा, पुणरागमणिज्जा पच्छा पुव्वं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा।"

"जइ इमस्स सुचरियतवनियमबंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, अहमवि आगमेस्साए जे इमे भवंति उग्गपुत्ता महामाउया, भोगपुत्ता महामाउया तेसिं णं अन्नयरंसि कुलंसि पुमत्ताए पच्चायामि, तत्थ णं समणोवासए भविस्सामि–अभिगयजीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरिस्सामि से तं साहु।"

एवं खलु समणाउसो ! निग्गंथो वा निग्गंथी वा णिदाणं किच्चा जाव देवे भवइ महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। जाव से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव पुमत्ताए पच्चायाति जाव तस्स

णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि-पंच अवुत्ता चेव अभुट्ठेंति "भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते आसगस्स सयइ ?"

[प्र.] *तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?*

[उ.] **हंता ! आइक्खेज्जा।**

[प्र.] **से णं पडिसुणेज्जा ?**

[उ.] **हंता ! पडिसुणेज्जा।**

[प्र.] **से णं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा ?**

[उ.] **हंता ! सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा।**

[प्र.] **से णं सीलव्वय जाव पोसहोववासाइं पडिवज्जेज्जा ?**

[उ.] **हंता ! पडिवज्जेज्जा।**

[प्र.] **से णं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वएज्जा ?**

[उ.] **णो तिणट्ठे समट्ठे।**

से णं समणोवासए भवति अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूणि वासाणि समणोवासगपरियागं पाउणइ; पाउणित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसि वा अणुप्पन्नंसि वा भत्तं पच्चक्खाएइ, भत्तं पच्चक्खाइत्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदित्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स नियाणस्स इमेयारूवे पावफलविवागे-जं नो संचाएति सव्वाओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

१४. हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने इस अनुत्तर धर्म का प्रतिपादन किया है यावत् सयम-साधना मे पराक्रम करता हुआ निर्ग्रन्थ, देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो से विरक्त हो जाने पर यो सोचे कि-

"ये मानव सम्बन्धी कामभोग क्षणिक हैं, अपवित्र हैं त्याज्य है। देव सम्बन्धी कामभोग भी अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत हैं, चलाचलस्वभाव वाले है, जन्म-मरण बढाने वाले है, आगे-पीछे अवश्य छोडने है।"

"यदि मेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से आचरित इस तप-नियम एव ब्रह्मचर्य-पालन का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मै भी भविष्य में जो ये विशुद्ध मातृ-पितृ पक्ष वाले उग्रवंशी या भोगवशी कुल है, वहाँ पुरुष रूप मे उत्पन्न होऊँ और श्रमणोपासक बनूँ। जीवाजीव के स्वरूप को जानूँ यावत् ग्रहण किये हुए तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।"

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी निदान करके यावत् मृत्यु प्राप्त करके देव रूप मे उत्पन्न होता है। वहाँ दिव्य भोगों को भोगता हुआ विचरता है। पश्चात् वह देव लोक से आयु क्षय

होने पर पुरुष रूप में उत्पन्न होता है। वहाँ पर उसके द्वारा किसी एक दास को बुलाने पर चार-पाँच दास-दासी बिना बुलाये ही उठकर खडे हो जाते है और पूछते रहते है-"हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करें यावत् वे उसकी सेवा में खड़े रहते हैं।"

[प्र.] क्या इस प्रकार की ऋद्धि से सम्पन्न उस पुरुष को तप-सयम के मूर्त्त रूप श्रमण माहण उभयकाल केवलिप्रज्ञप्त धर्म का उपदेश करते हैं?

[उ.] हाँ, करते हैं।

[प्र.] क्या वह धर्म को सुनता है?

[उ.] हाँ, धर्म को सुनता है।

[प्र.] क्या वह उस पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि करता है?

[उ.] हाँ, वह श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करता है?

[प्र.] क्या वह शीलव्रत यावत् पौषधोपवास स्वीकार करता है?

[उ.] हाँ, वह स्वीकार करता है।

[प्र.] क्या वह गृहवास को छोडकर अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करता है?

[उ.] यह सम्भव नही।

वह (निदान के वश) श्रमणोपासक होता है, जीवाजीव का ज्ञाता यावत् श्रमणों को प्रतिलाभित करता रहता है। इस प्रकार के आचरण से वह अनेक वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करता है। कदाचित् रोग उत्पन्न होने या न होने पर भक्त-प्रत्याख्यान (भोजन-त्याग) करता है, भक्त-प्रत्याख्यान करके अनेक भक्तो का अनशन पूर्ण करता है, पूर्ण तथा आलोचना एव प्रतिक्रमण द्वारा समाधि को प्राप्त होता है। जीवन के अन्तिम क्षणो मे देह छोडकर किसी देवलोक मे देव होता है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदानशल्य का यह पाप रूप परिणाम है कि वह गृहवास को छोडकर एव सर्वथा मुण्डित होकर अनगार प्रव्रज्या स्वीकार नही कर सकता है।

14. O the blessed ! I have propounded this unique *Dharma*. A monk who practices restraints with serious efforts should after detachment have few sensual enjoyments and sexual pleasures and think that—

"The sensual pleasures and sexual enjoyments are transitory, impure and worthy to be discarded. The sensual enjoyments relating to celestial beings are temporary, not permanent and transitory. They are by nature ephemeral. They increase the cycle of birth and death They are necessarily to be discarded sooner or later."

"In case there is any important result of my austerities, restraints, practice of principles of celibacy observed in the prescribed manner, I should take birth in respectable family, such as *Ugra* clan or *Bhog* clan as

a man and be a householder *Shramanopasak* It shall be good if I know there the true nature of living beings and non-living beings and spend my life-span practicing properly the vows of austerities I have accepted."

O blessed *Shramans* ! A monk or a nun, who has made such a '*nidan*' is born as a celestial being after the present life-span There he enjoys heavenly pleasures and enjoyments Thereafter, he is born as a man after completing his life-span as celestial being (in a respectable family) In that life when he calls a servant or a maid, four or five servants present themselves before him and ask—"Reverend Sir ! Kindly tell us what should we do They remain always in attendance to serve him."

[Q.] Do the *Shramans* engaged in austerities and restraints of a high order preach to that rich person both times the *Dharma* as propagated by the Omniscients ?

[Ans.] Yes, they do

[Q.] Does he listen to *Dharma* (Spirituality) ?

[Ans.] Yes, he does

[Q.] Does he have faith, affection and inner desire for such *Dharma* ?

[Ans.] Yes, he has

[Q.] Does he accept minor vows, supplementary vows and *Paushadhopavas* (as prescribed for householder devotee) ?

[Ans.] Yes, he does accept

[Q.] Does he accept monkhood after discarding life as householder ?

[Ans.] No, it is not possible

He becomes a *Shramanopasak* (due to *nidan*). He has knowledge of *Jiva* (living being), *Ajiva* (non-living) He attends to the monk and serves them

He practices code of *Shramanopasak* for many years He sometimes undertakens fast when he falls ill or even when he is not ill He sometimes fasts for many days. He repents for his faults and attains equanimity of mind through *pratikraman* (introspection of his faults). At the completion of the present life-span, he discards physical body and is re-born in heaven as a celestial being

O blessed *Shraman* ! This is the result of that sinful *nidan*, that he cannot accept monkhood by discarding his household and completely getting his head shaved.

(१) श्रमण होने के लिए निदान NIDAN FOR BECOMING A SHRAMAN

१५. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते जाव से य परक्कममाणे दिव्वमाणुस्सएहिं काम–भोगेहिं निव्वेयं गच्छेज्जा–"माणुस्समा खलु काम–भोगा अधुवा जाव विप्पजहणिज्जा। दिव्वा वि खलु काम–भोगा अधुवा जाव पुणरागमणिज्जा, पच्छापुव्वं च णं अवस्सं विप्पजहणिज्जा।"

"जइ इमस्स सुचरिय–तव–नियम–बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्तिविसेसे अत्थि, अहमवि आगमेस्साए जाइं इमाइं भवंति अंतकुलाणि वा पंतकुलाणि वा, तुच्छकुलाणि वा, दरिद्दकुलाणि वा, किवणकुलाणि वा, भिक्खागकुलाणि वा एएसि णं अण्णतरंसि कुलंसि पुमत्ताए पच्चायामि एस मे आया परियाए सुणीहडे भविस्सति, से तं साहु।"

एवं खलु समणाउसो ! णिग्गंथा वा णिग्गंथी वा णियाणं किच्चा जाव देवे भवइ, महड्ढिए जाव दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे विहरइ। जाव से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं जाव पुमत्ताए पच्चायाति जाव तस्स णं एगमवि आणवेमाणस्स जाव चत्तारि–पंच अवुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति "भण देवाणुप्पिया ! किं करेमो जाव किं ते *आसगस्स सयइ ?*"

[प्र.] तस्स णं तहप्पगारस्स पुरिसजायस्स तहारूवे समणे वा माहणे वा उभओ कालं केवलिपण्णत्तं धम्ममाइक्खेज्जा ?

[उ.] हंता, आइक्खेज्जा।

[प्र.] से णं पडिसुणेज्जा ?

[उ.] हंता, पडिसुणेज्जा।

[प्र.] से णं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा ?

[उ.] हंता, सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा।

[प्र.] से णं सीलव्वय–गुणव्वय–वेरमण–पच्चक्खाणं–पोसहोववासाइं पडिवज्जेज्जा ?

[उ.] हंता, पडिवज्जेज्जा।

[प्र.] से णं मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा ?

[उ.] हंता, पव्वइज्जा।

[प्र.] से णं तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा ?

[उ.] णो इणट्ठे समट्ठे।

से णं भवइ–से जे अणगारा भगवंतो इरियासमिया जाव बंभयारी। से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ। बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता आबाहंसि उप्पन्नंसि वा अणुप्पन्नंसि वा भत्तं पच्चक्खाएइ, भत्तं पच्चक्खाइत्ता, बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, बहूइं

भत्ताइं अणसणाइं छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते   हिपत्ते कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवति।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स णिदाणस्स इमेयारूवे पावए फल-विवागे जं नो संचाएइ तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेत्तए।

१५. हे आयुष्मन् श्रमणो ! मैने अनुत्तर धर्म का निरूपण किया है यावत् संयम की साधना में प्रयत्न करता हुआ निर्ग्रन्थ देव एवं मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगो से विरक्त हो जाए और वह यह सोचे कि "मानव जीवन के काम-भोग अध्रुव यावत् त्याज्य हैं। दिव्य काम-भोग भी अध्रुव यावत् भव-परम्परा (जन्म-मरण) बढाने वाले है तथा पहले या पीछे अवश्य छोडने हैं।"

"यदि सम्यक् प्रकार से आचरित मेरे इस तप-नियम एवं ब्रह्मचर्य-पालन का कल्याणकारी विशिष्ट फल हो तो मै भी भविष्य मे जो ये अन्तकुल, प्रान्तकुल (पिछडी जाति के कुल), तुच्छकुल (छोटे परिवार मे), दरिद्रकुल (धनहीन कुल), कृपणकुल (कजूस कुल) या भिक्षुकुल (भिक्षा माँगने वाला कुल) हैं, इनमे से किसी एक कुल मे पुरुष बनूँ जिससे मै प्रव्रजित होने के लिए सुविधापूर्वक गृहवास छोड सकूँ तो यह श्रेष्ठ होगा।"

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस प्रकार निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी निदान करके यावत् देव रूप मे उत्पन्न होता है। वह वहाँ महाऋद्धि वाला देव होता है। यावत् वह देव उस देवलोक से आयु क्षय होने पर उग्रकुल आदि मे पुरुष रूप मे जन्म लेता है। उसके द्वारा किसी एक दास-दासी को बुलाने पर चार-पाँच बिना बुलाये ही उठकर खडे हो जाते है और पूछते रहते है कि "हे देवानुप्रिय ! कहो हम क्या करे ? हमे आज्ञा दीजिए, आपको क्या प्रिय है ?"

[प्र.] क्या इस प्रकार की ऋद्धि से युक्त (सुख-भोग मे मग्न) उस पुरुष को तप-सयम के मूर्त्त रूप श्रमण माहण उभय काल केवलिप्ररूपित धर्म का कथन करते है ?

[उ.] हाँ, करते है।

[प्र.] क्या वह धर्म को सुनता है ?

[उ.] हाँ, वह सुनता है।

[प्र.] क्या वह उस पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि करता है ?

[उ.] हाँ, वह श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि करता है।

[प्र.] क्या वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण पच्चक्खाण, पौषध उपवास आदि को धारण कर सकता है ?

[उ.] हाँ, वह धारण कर सकता है।

[प्र.] क्या वह गृहवास का त्याग कर मुण्डित होता है एव अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करता है ?

[उ.] हाँ, वह अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करता है।

[प्र.] क्या वह उसी भव में सिद्ध हो सकता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर सकता है?

[उ.] यह बात सम्भव नहीं है।

वह अनगार भगवंत ईर्या समिति का पालन करने वाला यावत् ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला होता है। इस प्रकार के आचरण से वह अनेक वर्षों तक संयमपर्याय का पालन करता है। सयम-पर्याय का पालन करते हुए कदाचित् रोग उत्पन्न होने या न होने पर भी भक्त-प्रत्याख्यान (आहार-त्याग) करता है, भक्त-प्रत्याख्यान करके अनेक भक्तों का अनशन पूर्ण करता है, आलोचना एव प्रतिक्रमण द्वारा समाधि को प्राप्त होता है और जीवन के अन्तिम क्षणो मे देह त्यागकर किसी देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न होता है।

हे आयुष्मन् श्रमणो! उस निदानशल्य का यह पाप रूप परिणाम है कि वह उस भव से सिद्ध नही होता है यावत् सब दुःखों का अन्त नही कर पाता है।

15. O blessed *Shramans* ! I have propagated supreme *Dharma*. A *nirgranth* engaged in practice of spiritual restraints may get detached from sensual pleasures and sexual enjoyments pertaining to human beings and celestial beings He may then think as under—

"The sensual enjoyments and sexual pleasures of human life are temporary and worthy to be discarded The heavenly enjoyments are also temporary and they increase the cycles of birth and death. They have to be discarded sooner or later.

"In case any good beneficial reward exists for the rightly performed ascetic practices, austerities and celibate conduct, I may in next life take birth in a poor family, in backward class in a low class family, in a small family, in a spendthrift family or among beggars so that I may leave the household easily and become a monk It shall be the best for me."

O blessed *Shramans* ! After this contemplation of '*nidan*' the monk or nun concerned takes birth as a celestial being and that also of great wealth and splendour. After completing the life-span in heaven, he takes birth in *Ugra* family and the like as a man. When he calls any servant or maid, four or five servants appear before him without being called and ask—"Reverend Sir ! Tell us what should we do ? Kindly order us what would you like to be done ?"

[Q.] Do the *Shramans*, engaged in hard austerities and restraints, preach spirituality (*Dharma*) as propagated by Omniscient to such person who is completely absorbed in wealth, sensual pleasures and enjoyments ?

[Ans.] Yes, they do

[Q.] Does he listen to them ?

[Ans.] Yes, he does

[Q.] Does he have faith, interest and deep love in it ?

[Ans.] Yes, he does.

[Q.] Can he undertake vows of a Jain householder and *paushadhapauas* ?

[Ans.] Yes, he can

[Q.] Does he become a monk after discarding the household and getting his head shaved ?

[Ans.] Yes, he does.

[Q.] Can he attain liberation and end all suffering in that very life-span ?

[Ans.] No, it is not possible

That monk properly practices carefulness in movement (*Irya Samiti*) upto code of celibacy In this type of conduct, he spends many years of his monkhood

During his life of restraint in monkhood, he resorts to fasting for one day and even for many days when he falls ill or even when he is not ill He attains mental peace by repenting for his faults and self-introspection (*pratikraman*) During the last moments of his life, he discards the physical body and is born as a celestial being in heaven.

O blessed *Shramans* ! The sinful result of his thorn of *nidan* is that he cannot attain liberation in that very life-span and so on up to he cannot end all the worldly sufferings

निदानरहित तप से मुक्ति LIBERATION DUE TO AUSTERITIES WITHOUT NIDAN

१६. एवं खलु समणाउसो ! मए धम्मे पण्णत्ते इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। जस्स णं धम्मस्स सिक्खाए निग्गंथे उवट्ठिए विहरमाणे से य परक्कमेज्जा से य परक्कममाणे सव्वकामविरत्ते, सव्वरागविरत्ते, सव्वसंगातीते, सव्वहा सव्वसिणेहातिक्कंते सव्वचरित्तपरिवुडे।

तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं णाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं जाव अणुत्तरेणं परिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे केवलवर नाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा। तए णं से भगवं अरहा भवइ, जिणे, केवली, सव्वण्णू, सव्वभावदरिसी, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा–

आगई, गई, ठिई, चवणं, उववायं, भुत्तं, पीयं, कडं, पडिसेवियं, आवीकम्मं, रहोकम्मं, लवियं, कहियं, मणोमाणसियं। सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ।

से णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अप्पणो आउसेसं आभोएइ, आभोएत्ता भत्तं पच्चक्खाएइ, पच्चक्खाइत्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाइ छेदेइ, तओ पच्छा चरमेहिं ऊसास-नीसासेहिं सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

एवं खलु समणाउसो ! तस्स अणिदाणस्स इमेयारूवे कल्लाणे फलविवागे जं तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।

तए णं ते बहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोयंति पडिक्कमंति जाव अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति।

१६. आयुष्मन् श्रमणो ! मैने अनुत्तर धर्म का प्रतिपादन किया है। यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है यावत् इसका पालन करने वाले सब दुःखो का अन्त करते है। इस धर्म की आराधना के लिए उपस्थित होकर विचरता हुआ वह निर्ग्रन्थ तप-सयम मे पराक्रम करता हुआ तप-सयम की उग्र साधना करते समय काम-राग से सर्वथा विरक्त हो जाता है। सग स्नेह (आसक्ति) से सर्वथा रहित हो जाता है और सम्पूर्ण चारित्र की शुद्ध आराधना करता है।

उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र यावत् मोक्षमार्ग से अपनी आत्मा को भावित करते हुए उस अनगार भगवत को अनन्त, सर्वप्रधान, बाधा एवं आवरण से रहित, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उस समय वह अरहत भगवत जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो जाता है, वह देव, मनुष्य, असुर आदि लोक के पर्यायो को जानता है, यथा-

जीवो की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उत्पत्ति तथा उनके द्वारा खाये-पीये गये पदार्थों एव उनके द्वारा सेवित प्रकट एव गुप्त की गई सभी क्रियाओ को तथा वार्त्तालाप को, गुप्त वार्त्ता और मानसिक चिन्तन को, प्रत्यक्ष रूप से जानता-देखता है। वह सम्पूर्ण लोक मे स्थित सर्व जीवो के सर्व भावो को जानते-देखते हुए विचरण करता है।

वह इस प्रकार केवली रूप मे विचरण करता हुआ अनेक वर्षो की केवलिपर्याय का पालन कर अपनी आयु का अन्तिम भाग जानते हुए वह भक्त-प्रत्याख्यान करता है, भक्त-प्रत्याख्यान करके अनेक भक्तों का अनशन पूर्ण करता है। उसके बाद वह अन्तिम श्वासोच्छ्वास के द्वारा सिद्ध होता है यावत् सब दु खो का अन्त करता है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उस निदानरहित साधनामय जीवन का यह कल्याणकारक परिणाम है कि वह उसी भव से सिद्ध होता है यावत् सब दु.खो का अन्त करता है।

उस समय उन अनेक निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो ने श्रमण भगवान महावीर से इन निदानो का वर्णन सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार किया और पूर्वकृत निदानशल्यो की आलोचना-प्रतिक्रमण करके यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप स्वीकार किया।

16. O blessed *Shramans* ! I have propagated supreme *Dharma*. This word of Omniscient (*Nirgranth*) is the truth .. and so on up to... those who practice it in their life, they attain liberation and end all their suffering. The monk who comes forward to practice the *Dharma*, he during his wanderings engages himself with full force in austerities and restraints and during its hard practices, he detaches himself completely from sensual pleasures and sexual enjoyments. He is completely devoid of attachment and practices totally pure conduct.

While having knowledge, perception and conduct of excellent type and practicing the code relating to path of liberation, he attains infinite, supreme, unobstructed, complete Omniscience (*Keval Jnana*) He then becomes *Arhant Jin* (Complete Controller of Senses), *Kevali*, Omniscient, and has perfect perception (*Sarva-darshi*) He knows clearly the states of existence as celestial beings, human beings, *asura* (low-type gods) and the like

He directly knows the states of existence from where any living being comes in the present state and the state of existence he shall attain after the present life-span He knows the duration of their life-span, then descending for conception and then birth. He also knows the substances they have consumed or used directly or secretly He knows all their activities and their secret dialogue, their mental activity He knows and perceives all this clearly and directly He moves knowing all the thought–activities of all living beings in the entire world

Thus while moving as a *Kevali* (an Omniscient) he lives for many years and knowing that the end of his current life-span is very near, he discards all types of food and drinks for some period or the period which may last for many days (till his death) Thereafter, with the last breath in the present life-span, he attains liberation upto the fact that he ends all sufferings

O blessed *Shramans* ! This is the beneficial result of that spiritual life without *nidan*, that he becomes Siddha in that very life-span and so on up to.. ends all troubles

At that time, those numerous *nirgranths* and nuns after listening to detailed description of *nidans*, bowed to Shraman Bhagavan Mahavir. They did self-criticism and repentance for their earlier contemplated *nidnas*, *pratikraman* and so on up to .. acceptance of proper due *prayashchit* for it

निदान का स्वरूप और परिणाम NATURE OF NIDAN AND ITS RESULTS

आवश्यकादि आगमों में निदान को आत्मा का आभ्यंतर शल्य अर्थात् हृदय का कंटक कहा है। पाँव में लगा कंटक जैसे–शारीरिक समाधि भंग करता है और जब तक निकल न जाय या नष्ट न हो जाये तब तक खटकता रहता है, उसी प्रकार आलोचना प्रायश्चित्त के द्वारा निदानशल्य निकल न जाये या उदय में आकर नष्ट न हो जाये तब तक बोधि (सम्यक्त्व), चारित्र और मुक्ति के लाभ में बाधक बनकर खटकता है। अत. आत्म–शान्ति व मोक्ष–सुखो के इच्छुक मुमुक्षु को किसी भी प्रकार का निदान (संकल्प) नहीं करना चाहिए।

समवायांगसूत्र में बताया गया है कि वासुदेव पद को प्राप्त करने वाले सभी पूर्वभव में निदान करते हैं। सभी प्रतिवासुदेव पद वाले जीव भी पूर्वभव मे निदान करने वाले होते है। कोई–कोई चक्रवर्ती भी पूर्वभव में निदान करने वाले होते हैं। इनके सिवाय अन्य भी कई प्रकार के निदान होते है, यथा–किसी को दुःख देने वाला बनूँ, या इसका बदला लेने वाला बनूँ, मारने वाला बनूँ इत्यादि। उदाहरण के रूप मे श्रेणिक के लिए कोणिक का दु खदायक होना, वासुदेव का प्रतिवासुदेव को मारना, द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका को विनष्ट करना, द्रौपदी के पाँच पति होना व सयमधारण भी करना, ब्रह्मदत्त का चक्रवर्ती होना और सम्यक्त्व की प्राप्ति भी होना इत्यादि।

निदान भी मंद या तीव्र परिणामो से विभिन्न प्रकार के होते हैं। तीव्र परिणामो से निदान करने वाले जीव निदानफल को प्राप्त करके नरकगति को प्राप्त करते है और मद परिणामों से निदान करने वाले फल की प्राप्ति के बाद धर्माचरण करके सद्गति प्राप्त कर सकते है किन्तु मुक्त नही हो सकते। धर्म–प्राप्ति का निदान करने वाले भी उस निदान का फल प्राप्त कर लेते है किन्तु मुक्त नही हो सकते है। अत धर्म–प्राप्ति के लिए भी निदान करना निषिद्ध है।

इस दशा मे प्रारम्भ के चार निदानो मे कहा गया है कि सयम–साधना करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी के चित्त मे यदा–कदा भोगाकाक्षा उत्पन्न हो जाती है और वे मानव सम्बन्धी भोगो की प्राप्ति के लिए निदान (सकल्प) करते है। सयम तप के प्रभाव से सकल्प के अनुसार फल प्राप्त भी हो जाता है किन्तु उसका परिणाम यह होता है कि वह जीवनभर धर्मश्रवण के भी अयोग्य रहता है और काल करके नरक मे जाता है।

(१) प्रथम निदान मे निर्ग्रन्थ का पुरुष होना।

(२) दूसरे निदान मे निर्ग्रन्थी का स्त्री होना।

(३) तीसरे निदान मे निर्ग्रन्थ का स्त्री होना।

(४) चौथे निदान मे निर्ग्रन्थी का पुरुष होना, इन चारो निदानो में मानव–जीवन सम्बन्धी भोगाकाक्षा का निदर्शन है।

पाँचवे, छट्ठे और सातवे निदान मे देव सम्बन्धी भोगो की प्राप्ति के लिए निदान करने का कथन है। सकल्पानुसार भिक्षु या भिक्षुणी को देवगति की प्राप्ति हो जाती है तथा उसके बाद प्राप्त होने वाले मनुष्य–जीवन मे भी उसे भोग–ऋद्धि की प्राप्ति होती है।

(५) पाँचवे निदान वाला (अ) देवलोक मे स्वय की देवियो के साथ, (ब) स्वय की विकुर्वित देवियो के साथ, और (स) दूसरो की देवियो के साथ तीनो प्रकार दिव्यभोग भोगता है किन्तु उसके बाद वह मनुष्यभव पाकर धर्मश्रवण के अयोग्य होता है तथा काल करके नरक को जाता है।

(६) छट्ठे निदान वाला देवलोक में स्वय की देवियो के साथ तथा स्वय की विकुर्वित देवियो के साथ दिव्यभोग भोगता है। परकीय देवियो के साथ नही। बाद मे वह मनुष्य बनकर भी तापस–सन्यासी बनता है तथा काल करके असुरकुमार निकाय मे किल्विषिक देव रूप मे उत्पन्न होकर बाद में वह तिर्यक् योनि में भ्रमण करता है।

(७) सातवें निदान वाला देवलोक में केवल स्वयं की देवियों के साथ दिव्यभोग भोगता है, किन्तु विकुर्वित देवियों के साथ भोग नहीं भोगता और बाद में वह मनुष्य बनकर सम्यग्दृष्टि होता है, किन्तु निदान के कारण व्रत धारण नहीं कर सकता है।

आठवाँ और नवमाँ निदान श्रावक-अवस्था या साधु-अवस्था प्राप्त करने का है।

इस प्रकार नव निदानो के वर्णन के बाद अनिदान-अवस्था का वर्णन किया गया है। निदानरहित साधना करने वाला सर्वसंगातीत होकर उसी भव मे केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होता है।

इस दशा मे निदान करने के पश्चात् उसकी आलोचना करने के सम्बन्ध में स्थान-स्थान पर **आलोयंति-पडिक्कमंति**-आलोचना के सम्बन्ध में आलोना यावत् प्रतिक्रमण करने का कथन है। किसी भी दोष की आलोचना करना पहला प्रायश्चित्त है, किन्तु केवल आलोचना करना ही पर्याप्त नहीं होता। दोष-विशुद्धि की एक अष्टाग प्रक्रिया का वर्णन आगमों में आता है, जो इस प्रकार है-

(१) **आलोचना (आलोएज्जा)**-भूल से हुए अतिचार को वचन द्वारा प्रकट करना।

(२) **प्रतिक्रमण (पडिक्कमेज्जा)**-मिच्छामि दुक्कड बोलकर अपनी भूल का पश्चात्ताप करना।

(३) **निन्दा (निंदेज्जा)**-आत्मा की साक्षी से असदाचरण की निन्दा करना।

(४) **गर्हा (गरहेज्जा)**-गुरुजनो की साक्षी से दोष की निन्दा कर खेद प्रकट करना।

(५) **व्युत्सर्जन (विउट्टेज्जा)**-असदाचरण से निवृत्त होना।

(६) **विशुद्धि (विसोहेज्जा)**-दोष की विशुद्धि करना।

(७) **निवृत्त होने का संकल्प (अकरणयाए अब्भुट्टेज्जा)**-अकृत्य स्थान को पुन नही सेवन करने का दृढ सकल्प करना।

(८) प्रायश्चित्त (अहारिहे तवोकम्मं पायच्छित्त पडिवज्जेज्जा)-दोष के अनुरूप तप आदि प्रायश्चित्त स्वीकार करना।

इस प्रकार से प्रायश्चित्त तक के आठ अगो की क्रमिक प्रक्रिया पूरी करने पर आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

भगवान महावीर ने साधु-साध्वियो को निदान का दुष्फल बताकर उसकी निन्दा-गर्हा आदि कराकर प्रायश्चित्त देकर उसकी शुद्धि की। यह भाव दशमी दशा के अन्तिम १६वें सूत्र मे **अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति** के द्वारा प्रकट किया गया है।

इस प्रकार इस दशा मे निदान के कटु फल कहकर उसकी आलोचना करना तथा अनिदान संयम-साधना के लिए प्रेरणा दी गई है।

निदान के विषय मे यह सहज प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसी के सकल्प करने मात्र से उस ऋद्धि की प्राप्ति कैसे हो जाती है?

समाधान यह है कि किसी के पास रत्न या सोने-चाँदी का भण्डार है, उसे रोटी-कपडे आदि सामान्य पदार्थों के लिए बेच दिया जाये तो वे सहज ही प्राप्त हो सकते हैं। वैसे ही शाश्वत मोक्ष-सुख देने वाली तप-संयम की विशाल साधना के फल से मानुषिक या दैविक तुच्छ भोगो का प्राप्त होना कोई महत्त्व की बात नही है। इसे समझाने के लिए व्याख्याकारों ने एक दृष्टान्त भी दिया है-

एक किसान के खेत के पास किसी धनिक राहगीर ने दाल–बाटी–चूरमा बनाया। किसान का मन चूरमा आदि खाने के लिए ललचाया। किसान के माँगने पर भी धनिक ने कहा कि यह तेरा खेत र ्ले में दे दे तो मैं भोजन खिला दूँगा। किसान ने उसकी शर्त स्वाकीर कर ली। वह भोजन कर बडा आनन्दित हुआ।

जैसे हरे–भरे खेत के बदले एक बार मनचाहा भोजन मिलना कोई महत्त्व नही रखता, वैसे ही तप–संयम की मोक्षदायक साधना से एक–दो भव के भोग मिलना कुछ भी महत्त्व नही रखता।

किन्तु जैसे खेत के बदले भोजन खा लेने के बाद दूसरे दिन से वर्षभर तक किसान पश्चात्ताप से दु:खी होता रहता है, वैसे ही तप–सयम के फल से एक भव का सुख प्राप्त हो भी जाय किन्तु मोक्षदायक साधना खोकर नरकादि के दु.खो को प्राप्त करके प्राणी अन्त मे पश्चात्ताप ही करता है। अत. साधक को कभी भी कामनायुक्त तप या तप के सयम के बदले भोगाकाक्षा नही करनी चाहिए।

॥ दसमी दशा समाप्त ॥

॥ दशाश्रुतस्कन्ध समाप्त ॥

In *Agams* such as *Avashyak* and the like, *nidan* is stated to be an ınner thorn–a thorn ın the heart A thorn prıcked in the foot disturbs physıcal equanımıty and troubles tıll the time it ıs not taken out or destroyed. Sımılaıly the thorn of *nıdan* serves as an obstacle in attainment of rıght faıth, rıght knowledge and rıght conduct tıll the time ıt ıs not removed or dıstroyed, when it comes to the fore-front, through self-crıtıcısm and repentance Therefore, a person who keenly desires the ecstatıc pleasure of lıberatıon and complete peace of the self should not contemplate any nıdan

In *Samvayang Sutra*, ıt is mentioned that all those who attaın the status of *Vasudev* had contemplated a '*nıdan*' ın the prevıous lıfe and the same ıs the case wıth all *Pratı-Vasudev* Some *Chakravartıs* also contemplate a *nıdan* ın the prevıous lıfe There are many types of *nıdan* other than those mentıoned earlier namely–I should be one who could trouble the other, who may take revenge, who may kıll and the lıke The ıllustratıons are those of *Kaunık* causıng suffering to Shrenık, *Vasudev* kıllıng *Pratı–Vasudev*, Dvaıpayan Rishi destroyıng Dvarika, Draupadı havıng five husbands and later adopting lıfe of restraınts as nun, Brahmadatt becomıng a *Chakravartı* and later attaınıng rıght faıth also

Nidans are of dıfferent type due to the ıntensıty in contemplatıon at the time of '*nidan*' A lıvıng being who contemplates ın a mood of intense passion, takes bırth ın hell A person who contemplates *nıdan* in a moment of low passıon, attaıns spırıtual conduct after completıng the lıfe-span resulting from his nıdan He thereafter can get good state of exıstence but he cannot get liberation A person who makes nidan *that* he may gaın spırıtual conduct and get the reward accordıngly but he cannot get liberation. So one should not do any *nıdan* even for *Dharma*.

In this Dasha, it is mentioned in first four *nidans* (contemplations for a particular result of austerities and restraints) that sometimes a monk or a nun while practicing ascetic restraints has a sensual desire in his mind and then he or she does a *nidan* (contemplation in the mind) for attaining wealth and the like for human enjoyments He or she gets the result as contemplated due to the austerities and restraints practiced but its (damaging) result is that he or she remains incapable of listening to spiritual discourse throughout life and after death goes into hell.

(1) The first *nidan* (contemplation) is by a *nirgranth* that one may take re-birth as man.

(2) The second *nidan* is by a *nirgranthi* that she may be re-born as a woman

(3) The third *nidan* is by a *nirgranth* that he may take re-birth as a woman.

(4) The fourth *nidan* is by *nirgranthi* (nun) that she may be born as a man

All these fourth *nidans* indicate the desire for sensual enjoyments relating to human life

In the fifth, sixth and seventh *nidan* there is a mention of contemplation for getting pleasures and enjoyments relating to celestial living beings The monk or the nun gets re-birth in heaven according to the contemplation (*nidan*) and thereafter in the human life He gets wealth of sensual pleasures and enjoyments

(5) One who does fifth *nidan*, enjoys after his birth as celestial being the sensual pleasures and sexual enjoyments with his own goddesses, the goddesses created by him by his fluid body and the godesses of the other celestial living beings But after such enjoyment, when he takes birth as a man, he is incapable of listening to spirituality He takes birth in hell

(6) One who does *nidan* of sixth types enjoys sensual pleasures and sexual enjoyments after his re-birth as celestial living being with his own goddesses and the goddesses created by him with his own fluid body He however does not enjoy such pleasures with the goddesses of other celestial beings Later on he is re-born as a man, becomes a monk practicing austerities, and thereafter takes birth as a *Kilvishik Deva* (a celestial being of low category who commands no respect) among *Asur Kumars* After that he wanders in animal state of existence (for long).

(7) One who does *nidan* of the seventh type enjoys sensual pleasures and sexual enjoyments with his own goddesses but he does not have such

enjoyments with goddesses created by him with his own fluid body. Later on he is re-born as a man and gets right faith But he cannot undertake any vow due to his *nidan*.

The eighth and ninth *nidans* relate to attaining the life as a *Shravak* and as a monk respectively.

After detailed description of nine *nidans*, the state of being without *nidan* has been described. A person who practices austerities and restraints without all types of attachments and without *nidan* gets Omniscience in that very life-span and ultimately gets liberation.

In this *Dasha*, after *nidan*, there is mention of its criticism at every stage in the words—***"Aaloyanti-padikkamanti."*** In the context of criticism there is mention of introspection and repentance. The first *prayashchit* (repentance) is criticizing or cursing the fault but only cursing the fault is not sufficient for purifying or cleaning the fault. Eight-type activity is mentioned in *Agams* which is as under–

(1) **Alochana**—To express verbally one's fault that has been committed inadvertently.

(2) **Pratikraman (padikkaneya)**—To repent for one's fault by saying **'michhami dukkadum'.**

(3) **Ninda (nindeja)**—To condemn the bad conduct of one's own from the core of his heart.

(4) **Garha (garhejja)**—To condemn and express distress at one's fault in presence of one's spiritual teachers.

(5) **Viyutteja**—To avoid bad conduct.

(6) **Virohejja**—To cleanse one's fault.

(7) **Determination of discarding (Akaranayaye abhuthejja)**—To strongly decide not to do undesirable activity again.

(8) **Prayashchit (aharihe tavokammum payachhitt padivajjeja)**—To accept austerity or other punishment awarded to him in proportion to the fault committed

Thus after systematically passing through all the eight stages culminating at *prayashchit* (punishment accepted), the process of self–purification is completed.

Bhagavan Mahavir told the bad result of *nidan* to the monks and nuns. They, then, cursed it and criticized it in their self and before the spiritual master Thereafter the requisite punishment was awarded to them. Thus their soul was purified (of the sinful dirt accumulated due to

faults). This thought has been expressed in the sixteenth aphorism which runs as under—

"Aharihum payachhittum tavokummum padivajjanti."

Thus the sinful result of *nidan* has been described and thereafter one has been advised to curse the *nidan* and to practice spiritual restraints without contemplation of any *nidan*

A simple question arises about *nidan*—How a person gets desired wealth by sheer contemplation ?

It can be understood as under—A person has a great treasure of silver or gold In case he sells it for procuring clothes and provisions, he can easily get them in exchange Similarly it is not a bargain of great importance if he attains human or celestial enjoyments or sexual pleasures as a result of his austerities and ascetic restraints which could provide him ecstatic happiness of liberation. The commentators have given another example to explain it as under—

A rich traveller prepared delicious food (*dal bati-choorma*) near the field of a farmer The farmer keenly desired to have such food He begged for it The rich traveller replied that he can give it to the farmer if he gives his field in exchange for that food The farmer accepted the condition He enjoyed that food very much

Just as it is of no importance to get desired food in exchange of a fertile field having a good crop, similarly the sensual enjoyments of one or two life-span are of no importance compared with the ascetic practice of austerities and spiritual restraints that can provide liberation

The farmer took food in exchange of his field and thereafter since the following day he went on repenting for that deal throughout the year Similarly one may get worldly enjoyments in one life-span as a result of his austerities and restraints but ultimately such a person repents in the end when he gets sufferings of hell by losing (cheaply) the result of his austerities and restraints which could provide him liberation Therefore, a practitioner of spirituality should not do any austerities with a desire for sensual enjoyments. He should also not desire any sensual enjoyments or sexual enjoyments in exchange of his austerities or spiritual restraints

● END OF THE TENTH DASHA ●

● END OF THE DASHA SHRUT SKANDH ●

बृहत्कल्प सूत्र

BRIHAT-KALP SUTRA

प्राक्कथन

छेदसूत्रों की निर्युक्ति व चूर्णि के अनुसार दशाश्रुतस्कध, बृहत्कल्प और व्यवहार–ये तीनों आगम चतुर्दशपूर्वधर श्रुतकेवली आचार्य श्री भद्रबाहु ने प्रत्याख्यान पूर्व से उद्धृत किये हैं।

बृहत्कल्प मे श्रमणों के कल्प, आचार विधि, उत्सर्ग–अपवाद मार्ग, तप एव प्रायश्चित्त विधान आदि का वर्णन है। इसके छह अध्ययन है जिन्हे 'उद्देशक' कहा जाता है।

आचारांग, दशवैकालिक, भगवती, ठाणाग आदि आगमों में श्रमण आचार का जो वर्णन है, उसी आधार पर बृहत्कल्पसूत्र मे आचार–विषयक मुख्य विषयो को संकलित किया गया है।

प्रथम उद्देशक साधु के भिक्षा सम्बन्धी नियमो से प्रारम्भ होता है।

व्याख्या व विवेचन के बिना इस सूत्र का हार्द समझना कठिन है। अत· विवेचन मे भद्रबाहु स्वामी कृत निर्युक्ति तथा सघदास गणि कृत भाष्य के आधार पर उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म 'कमल' कृत हिन्दी विवेचन का सहारा लिया गया है।

INTRODUCTION

According to *Niryukti* and *Churni* (Commentaries), the three *Agams* namely *Dashashrut Skandh, Brihat-kalp* and *Vyavahar* have been derived from *Pratyakhyan Purva* by Shrut Kevali Acharya Bhadrabahu–the authority on fourteen *Purvas*

In *Brihat-Kalp*, there is detailed description of *kalp* (restraints), conduct, exceptions, austerities and procedure of prayashchit (punishment for transgressions) It has six chapters which are called *Uddeshaks*

The conduct of *Shraman* (Jain monk) has been stated in *Acharanga, Dashavaikalik, Bhagavati, Sthananga Agams* and from them the important matter relating to conduct of a *Shraman* has been compiled.

The first *Uddeshak* starts with the rules relating to seeking of alms by a *Shraman*.

It is difficult to understand this *Agam* without detailed explanation Therefore, in writing Hindi description *niryukti* of Bhadrabahu, *Bhashya* of Singhadas Gani and Hindi Commentary of Upadhyaya Muni Shri Kanhaiyalal Kamal has been taken into consideration. □□

प्रथम उद्देशक
FIRST UDDESHAK

साधु–साध्वी के प्रलंब–ग्रहण करने का विधि–निषेध
RULES REGARDING ACCEPTANCE AND REJECTION OF ALMS OFFERED TO SADHUS (MONKS) AND SADHVIS (NUNS)

१. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा आमे ताल-पलम्बे अभिन्ने पडिग्गाहित्तए।

२. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा आमे ताल-पलम्बे भिन्ने पडिग्गाहित्तए।

३. कप्पइ निग्गंथाणं पक्के ताल-पलम्बे भिन्ने वा अभिन्ने वा पडिग्गाहित्तए।

४. नो कप्पइ निग्गंथीणं पक्के ताल-पलम्बे अभिन्ने पडिग्गाहित्तए।

५. कप्पइ निग्गंथीणं पक्के ताल-पलम्बे भिन्ने पडिग्गाहित्तए; से वि य विहिभिन्ने, नो चेव णं अविहिभिन्ने।

१. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को **अभिन्न** (अखण्ड, शस्त्र–अपरिणत), **आम**–कच्चे ताल–प्रलम्ब ग्रहण करना नही कल्पता है।

२. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को **भिन्न**–(शस्त्र–परिणत) कच्चा ताल–प्रलम्ब ग्रहण करना कल्पता है।

३. निर्ग्रन्थो को खण्ड–खण्ड किया हुआ या **अखण्ड–पक्व** (शस्त्र–परिणत) ताल–प्रलम्ब ग्रहण करना कल्पता है।

४. निर्ग्रन्थियो को अखण्ड–पक्व (शस्त्र–परिणत) प्रचलित भाषा में ताल–प्रलम्ब ग्रहण करना नही कल्पता है।

५. निर्ग्रन्थियो को खण्ड–खण्ड किया हुआ पक्व (शस्त्र–परिणत) ताल–प्रलम्ब ग्रहण करना कल्पता है। वह भी विधिपूर्वक भिन्न (अत्यन्त छोटे–छोटे टुकड़े) हो तो ग्रहण करना कल्पता है, अविधि–भिन्न हो तो ग्रहण करना नही कल्पता है।

1. Jain monks and nuns should not accept complete, uncut, unripe fruit of palm tree and the like.

2. Jain monks and nuns can accept unripe fruit of a palm tree and the like in case that fruit has been cut by a weapon.

3. Jain monks can accept ripe (cut) fruit of palm tree and the like whether it is complete or cut into pieces.

4. Jain nuns cannot accept a complete fruit of a palm tree and the like even if any weapon has been used on it or it is ripe.

5. Jain nuns can accept ripe fruit of a palm tree and the like provided it is cut into very small pieces according to the procedure laid down in the scriptures. In case the said procedure has not been properly followed, they cannot accept it

विवेचन : सूत्र १-५ मे **'ताल-प्रलम्ब'** पद प्रतीकात्मक है। 'ताल' का अर्थ है ताड का वृक्ष। ताड वृक्ष खजूर व नारियल के वृक्षो की तरह का लगभग ६०-७० फुट ऊँचा, लम्बा होता है। सबसे ऊपर झुण्ड आकार मे फल लगते हैं। यह शुष्क प्रदेशो व समुद्र तटीय प्रदेशो मे बहुतायत से होता है। इसका फल पकने पर मीठा होता है, जिससे गुड, शक्कर व मदिरा (ताडी) बनाई जाती है। कहते है-ताड वृक्ष एक ही बार फलता है। लगता है जिस समय का यह वर्णन है उस समय मे पूर्व भारत मे यह बहुतायत मे उपलब्ध होता था। इसी कारण आगमों मे स्थान-स्थान पर 'ताल-प्रलम्ब' (ताल का फल) शब्द आता है। यहाँ पर 'ताल-प्रलम्ब' शब्द से केला, आम, अनार आदि सभी प्रकार के फलो को समझना चाहिए। भाष्यकार के अनुसार-'प्रलम्ब' शब्द से वृक्ष के मूल, कन्द, स्कन्ध से लेकर फल व बीज तक सभी दसो अवयवो का ग्रहण हो जाता है।

इन सूत्रो मे मुख्यत चार शब्द आये है-**'आम'** (अधपका या कच्चा), **'पक्व'** (पका हुआ) या शस्त्र-परिणत अचित्त, **'अभिन्न' 'अखण्ड'** (बिना टुकडे किया तथा शस्त्र-अपरिणत सचित्त) तथा **'भिन्न'** शस्त्र से खण्ड किया हुआ, तथा शस्त्र-परिणत अचित्त प्रासुक अर्थ अभीष्ट है।

सूत्र मे सर्वत्र **'कप्पइ'** (कल्पता है) क्रिया का प्रयोग हुआ है, जिसका साधु के आचार विधि से सम्मत, अनुज्ञात, उचित, योग्य करणीय आदि प्रसगानुसार अर्थ समझना चाहिए।

इन सूत्रो मे प्रयुक्त 'आम, पक्व, भिन्न एव अभिन्न' इन चारो पदो की भाष्य मे द्रव्य एव भाव से चौभगियाँ करके बताया है कि भाव से पक्व या भाव से भिन्न अर्थात् शस्त्र-परिणत ताल-प्रलम्ब हो तो भिक्षु को ग्रहण करना कल्पता है।

जो फल पककर वृक्ष से स्वय नीचे गिर पडता है अथवा पक जाने पर वृक्ष से तोड लिया जाता है, उसे द्रव्यपक्व कहते है। वह द्रव्यपक्व फल भी सचित्त-सजीव बीज, गुठली आदि से सयुक्त होता है। अत उसे जब शस्त्र से विदारित कर, गुठली आदि को दूरकर या जिसमे अनेक बीज है उसे अग्नि आदि मे पकाकर, उबालकर या भूनकर सर्वथा असदिग्ध रूप से अचित्त-निर्जीव कर लिया गया हो, तब वह भावपक्व शस्त्र-परिणत कहा जाता है एव ग्राह्य होता है।

इससे विपरीत-अर्थात् छेदन-भेदन किये जाने पर या अग्नि आदि मे पकाने पर भी अधपका होने की दशा मे उसके सचित्त रहने की सम्भावना हो तो वह भाव से अपक्व शस्त्र-अपरिणत माना जाता है एव अग्राह्य होता है।

अचित्त होते हुए भी अखण्ड या लम्बे खण्ड साध्वी को लेने के निषेध का कारण भाष्यकार ने इस प्रकार बताया है-

"अभिन्न-अखण्ड केला आदि फल का तथा शकरकद, मूला आदि कन्द का लम्बा आकार देखकर किसी निर्ग्रन्थी के मन मे विकार भाव जागृत हो सकता है। उनका आकार मन मे कामोत्तेजना का निमित्त बन सकता है। अतः निर्ग्रन्थी को अभिन्न फल या कन्द आदि लेने का निषेध किया गया है। साथ ही अविधिपूर्वक भिन्न कदली आदि फलो के, मूला आदि कन्दो के, ऐसे लम्बे खण्ड जिन्हे देखकर कामवासना का जागृत होना सम्भव हो, उन्हे लेने का भी निषेध किया है, किन्तु विधिपूर्वक भिन्न अर्थात् इतने छोटे-छोटे खण्ड किये हुए हो कि जिन्हे देखकर पूर्वोक्त विकारभाव जागृत न हो तो ऐसा फल या कन्द आदि साध्वी ग्रहण कर सकती है।"

Elaboration—In aphorism 1 to 5, the words *'taal pralamb'* (fruit of a palm tree) are mentioned only as an illustration *Taal* means a tree of the type of palm tree. A taal tree is about sixty to seventy feet high like a palm tree or a coco-nut tree. Its fruits are in clusters at the top. It is found in abundance on dry land and in regions near the sea bank Its fruit is very sweet when it is ripe, sugar and intoxicating drink is prepared from it. It is said that the *Taal* tree gives fruit only once It appears that during that period this tree was available in abundance in the eastern part of India. Therefore, in *Agams* the word *taal-pralamb* (fruit of palm tree), has been used frequently. The word *taal-pralamb* should be considered to denote banana, mango, pomegranate and all suchlike fruits According to the *Bhashyakar* (Commentator) the word *pralamb* denotes all the ten parts of a tree namely root, trunk, seed, fruit and the like

In these aphorisms, primarily four words are mentioned—**'Aam'** means unripe or partially ripe, **'Pakva'** means ripe or where weapon has been used and which has become lifeless, **'Abhinna'** or **'Akhand'** means that which has not been cut into pieces and **'Bhinna'** means that which has been cut into pieces or that which by use of weapon has become lifeless and worthy of being accepted by Jain monk.

The verb 'kappayi' has been mentioned frequently in this *Agam* It should be interpreted in context of the rules of the ascetic conduct, like in line with, proper, worthy, desired to be implemented as the case may be.

In the *Bhashya* (Commentary) the four words *aam, pakva, bhinna* and *abhinna* used in these *Sutras* have been explained in four different ways pertaining to *Dravya* (outward form) and *bhaava* (the inner meaning). A Jain monk can accept fruit of a palm tree or the like if it is really ripe or properly cut In other words it should have been properly transformed by an instrument.

A fruit which has become ripe and has fallen from the tree of its own or which has been plucked from the tree as it is ripe is called *Dravya-pakva*. That *dravya-pakva* fruit is still full of life It has seed or stone and the like. When it is cut with a weapon (knife) and the stone is removed from it or in case it has many seeds, when it is cooked or boiled or roasted in fire and made completely lifeless, it is called *bhaava-pakva* or transformed by weapon. In that condition it can be accepted by a Jain monk.

On the other hand, in case it is only partially cooked even after having been cut, pierced and cooked on fire and there is a possibility of life in it, it is considered *apakva* (not properly ripened or cooked) and not properly transformed by weapon. It, therefore, cannot be accepted by a Jain monk.

The reason for rejection by a Jain nun of a lifeless fruit which is not pierced or whose longer part is offered is as under according to the author of Bhashya .

Amorous feelings may arise in the mind of a nun on seeing the long shape of an unbroken or unpierced banana fruit or the like and radish or the like. That shape may cause sexual desire in the mind. So a *nirgranthi* (Jain nun) is prohibited from accepting an unpierced fruit or root. Also fruits like *banana* and the like cannot be accepted by a Jain nun in case they have been cut in an improper manner or the pieces made of such fruit and the radish are so long that the very sight of them may cause desire for sex in their mind due to that shape. But a *sadhvi* (Jain nun) can accept such fruit and the like if it is properly cut into small pieces that are not instrumental in causing sexual urge or mental distortion

ग्रामादि में साधु-साध्वी के निवास की कल्पमर्यादा **THE TIME LIMIT OF STAY OF A JAIN NUN IN A VILLAGE**

६. से गामंसि वा, नगरंसि वा, खेडंसि वा, कब्बडंसि वा, मडंबंसि वा, पट्टणंसि वा, आगरंसि वा, दोणमुहंसि वा, निगमंसि वा, आसमंसि वा, सन्निवेसंसि वा, संवाहंसि वा, घोसंसि वा, अंसियंसि वा, पुडभेयणंसि वा, रायहाणिंसि वा, सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथाणं हेमंत-गिम्हासु एगं मासं वत्थए।

७. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा, सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथाणं हेमंत-गिम्हासु दो मासे वत्थए। अंतो एगं मासं, बाहिं, एगं मासं। अंतो वसमाणाणं अंतो भिक्खायरिया, बाहिं वसमाणाणं बाहिं भिक्खायरिया।

८. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा, सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथीणं हेम-गिम्हासु दो मासे वत्थए।

९. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथीणं हेमंत-गिम्हासु चत्तारि मासे वत्थए। अंतो दो मासे, बाहिं दो मासे। अन्तो वसमाणीणं अंतो भिक्खायरिया, बाहिं वसमाणीणं बाहिं भिक्खायरिया।

६. निर्ग्रन्थों को, सपरिक्षेप और अबाहिरिक (१) ग्राम, (२) नगर, (३) खेट, (४) कर्बट, (५) मडंब, (६) पत्तन, (७) आकर, (८) द्रोणमुख, (९) निगम, (१०) आश्रम, (११) सन्निवेश,

(१२) सम्बाध, (१३) घोष, (१४) अशिका, (१५) पुटभेदन, और (१६) राजधानी में हेमन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में एक मास तक रहना कल्पता है।

७. (निर्ग्रन्थों को) सपरिक्षेप (परकोटे के भीतर बसे), सबाहिरिक (परकोटे के बाहर की बस्ती वाले) ग्राम यावत् राजधानी में एक मास ग्राम आदि के अन्दर और एक मास ग्रामादि के बाहर हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे दो मास तक रहना कल्पता है। ग्राम आदि के अन्दर रहते हुए अन्दर ही भिक्षाचरी करें। ग्राम आदि के बाहर रहते हुए बाहर ही भिक्षाचरी करे।

८. निर्ग्रन्थियो को सपरिक्षेप और अबाहिरिक ग्राम यावत् राजधानी मे हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे दो मास तक रहना कल्पता है।

९. निर्ग्रन्थियों को सपरिक्षेप और सबाहिरिक ग्राम यावत् राजधानी में हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में चार मास तक रहना कल्पता है। ग्राम आदि के अन्दर दो मास और ग्राम आदि के बाहर दो मास। ग्राम आदि के अन्दर रहते हुए अन्दर ही भिक्षाचर्या करे। ग्राम आदि के बाहर रहते हुए बाहर ही भिक्षाचर्या करे।

6. *Nirgranths* (Jain monks) can stay continuously for a period of one month in summer or winter in a colony located within the boundary wall of (1) a village, (2) a town, (3) *khait*, a settlement having earthen boundary wall (4) (*karbat*), a small settlement where taxes are charged (5) (*madamb*), (6) harbour (*pattan*), (7) settlement of mine-workers (*aakar*), (8) a town having two entries for transported goods (*dronamukh*), (9) a corporation, (10) an *ashram* of mendicants, (11) a temporary settlement of traders (*nivesh*), (12) a village located on the hill (*sambadh*), (13) *ghosh* (cattle-shed), (14) a settlement located in a part of the village (*anshika*), (15) a place reserved for opening boxes (*put-bhedan*) or (16) the capital

7. Jain monks can stay for one month in *saparikshep* (the settlement located within the boundary wall) and one month in the colony located outside the boundary wall (*Sabahirik*) of any such sixteen places namely village up to the capital in winter and in summer. When monks are staying within the boundary wall, they should seek alms only from the colony located within the boundary wall and when they are staying outside the boundary wall, they should go for alms only in the settlement located outside the boundary wall of the village and the like up to capital.

8. Jain nuns can stay upto a period of two months in summer and winter in a colony located within the boundary wall of the village up to the capital.

9. Jain nuns can stay for a total period of four months in summer or in winter in the vicinity of a village up to the capital–for two months in

the village up to capital and for two months outside the village up to capital. During the stay within the village, they should go for alms only in the village and during their stay outside the village, they should go for it in the settlement located outside the village.

विवेचन : (१) जिस ग्राम आदि के चारो ओर पाषाण, ईंट, मिट्टी, काष्ठ, बाँस या काँटों आदि का तथा खाई, तालाब, नदी, गर्त्त पर्वत का प्राकार–परकोटा हो और उस प्राकार के अन्दर ही घर बसे हुए हों, बाहर न हो तो उस ग्राम आदि को **'सपरिक्षेप'** और **'अबाहिरिक'** कहा जाता है।

(२) जिस ग्राम आदि के चारो ओर पूर्वोक्त प्रकार के प्राकारो मे से किसी तरह का प्राकार हो और उस प्राकार के बाहर भी घर बसे हुए हो, उस ग्राम आदि को **'सपरिक्षेप'** और **'सबाहिरिक'** कहा जाता है। उक्त दोनों प्रकार की बस्तियो मे साधु–साध्वियाँ ठहर सकते है।

वर्षाकाल मे चार मास तक ठहर सकते है किन्तु वर्षाकाल के अतिरिक्त आठ मास तक वे कहाँ कितने ठहरे ? इसका विधान उल्लिखित चार सूत्रो मे स्पष्ट है।

वहाँ रहते हुए भिक्षाचरी सम्बन्धी जो कथन है, उसका तात्पर्य यह है कि भिक्षु ग्रामादि के जिस विभाग मे रहे उसी विभाग मे गोचरी करे तो उसे प्रत्येक विभाग मे अलग–अलग कल्प काल तक रहना कल्पता है। किन्तु एक विभाग मे रहते हुए अन्य विभागो मे भी गोचरी करे तो उन विभागो मे अलग मासकल्प काल रहना नहीं कल्पता है।

सूत्र मे प्रयुक्त ग्रामादि शब्दो की व्याख्या इस प्रकार है–

(१) **ग्राम**–जहाँ अठारह प्रकार का कर लिया जाता है।

(२) **नगर**–जहाँ किसी प्रकार के कर नही लिए जाते है।

(३) **खेड या खेड़ा**–जहाँ मिट्टी का परकोटा हो।

(४) **कर्बट (कस्बा)**–जहाँ अनेक प्रकार के कर लिए जाते हो ऐसी छोटी बस्ती।

(५) **मडंब**–जिस ग्राम के चारो ओर ढाई कोस तक अन्य कोई ग्राम न हो।

(६) **पट्टण**–दो प्रकार के है–जहाँ जलमार्ग से माल आता हो वह **'जलपत्तन'** तथा जहाँ स्थलमार्ग से माल आता हो वह **'स्थलपत्तन'**।

(७) **आकर**–लोह आदि धातुओ की खानो मे काम करने वालो के लिए वही पर बसा हुआ ग्राम।

(८) **द्रोणमुख**–जहाँ जलमार्ग और स्थलमार्ग से माल आता हो ऐसा दो मुँह वाला नगर।

(९) **निगम**–जहाँ व्यापारियो आदि का समूह रहता हो।

(१०) **आश्रम**–जहाँ सन्यासी आदि तपश्चर्या करते हो।

(११) **निवेश (सन्निवेश)**–व्यापार हेतु विदेश जाने के लिए यात्रा करता हुआ सार्थवाह/व्यापारियों का समूह अथवा सभी प्रकार के यात्री जहाँ विश्राम के लिए पडाव डालते हो।

(१२) **सम्बाध**–जहाँ खेती करने वाले कृषक दूसरी जगह खेती करके पर्वत आदि विषम या ऊँचे स्थानों पर रहते हो अथवा व्यापारी दूसरी जगह व्यापार करके पर्वत आदि विषम स्थानो पर रहते हो, वह ग्राम।

(१३) घोष–जहाँ गायों का यूथ रहता हो। इसे गोकुल भी कहा जाता है।

(१४) अंशिका–ग्राम का आधा भाग, तीसरा भाग या चौथा भाग जहाँ आकर बसा हो वह 'बसति'।

(१५) पुटभेदन–अनेक दिशाओ से आये हुए माल की पेटियों का जहाँ भेदन (खोलना) होता हो।

(१६) राजधानी–जहाँ रहकर राजा शासन करता हो।

Elaboration—(1) A village and the like that has a boundary wall of stone, bricks, earth, wood, bamboo or thorns or ditch, tank, stream, mountains or hills surrounding it and the houses which are within that boundary wall is called **'Saparikshep'** or **'Abahirik'**

(2) In case the boundary wall exists as mentioned in (1) and the residential houses are both within the boundary wall and outside the boundary wall, it is called **'Saparikshep'** and **'Sabahirik'**. Jain monks and nuns can stay in the colonies of both the said types

They can stay continuously for four months in rainy season but where should they stay in the remaining eight months ? The rules for it have been laid down in the above mentioned four aphorisms.

The restriction regarding wandering for alms is based on the rule that he or she can stay in each of the settlement for the prescribed period separately provided he moves for alms only in the area where he is staying. In case while staying in one area, he or she goes to other areas also for alms, he or she cannot reckon that period of one month separately

The detailed meaning of the words used in the Sutra are as under .

(1) **Gram (Village)**—An area wherefrom taxes of eighteen types are charged.

(2) **Nagar (Town)**—An area wherefrom no taxes are charged

(3) **Khed or Kheda**—A settlement surrounded by an earthen boundary wall

(4) **Karbat (Small Colony)**—A small settlement wherefrom many types of taxes are charged

(5) **Madamb**—A village which has no other village in any direction upto a distance of eight kilometers (two and a half *Kos*).

(6) **Pattan (Harbour)**—They are of two types—*Jal-pattan* (where merchandise reaches by ship) and *Sthal-pattan* (where goods reach by land route)

(7) **Aakar**—A colony meant for those who work in iron mines and suchlike.

(8) **Dronamukh (Harbour)**—A town having two-entry points–one for goods reaching by sea-route and the second for goods arriving by land route.

(9) **Nigam (Corporation)**—The places where a large number of traders reside.

(10) **Ashram**—The place where monks and the like observe austerities

(11) **Nivesh (Sannivesh)**—The place where group of traders going to foreign countries or travellers of all type halt for sometime to take rest.

(12) **Sambaadh**—When farmers do farming at a place but reside on a mountain or on a high or uneven land or the traders who run business at a place reside on hill or uneven land, that place is called Sambaadh.

(13) **Ghosh (Cattle-shed)**—The place meant for large number of cattle. It is also called 'gokul'

(14) **Anshika**—A colony in the village where half, one-third or one-fourth of the inhabitants have settled

(15) **Put-bhedan**—The place where the boxes containing goods received from many directions are opened

(16) **Rajdhani (Capital)**—The place where the king resides and wherefrom he rules

ग्रामादि में साधु–साध्वी को एक साथ रहने का विधि–निषेध

RULES FOR SADHUS AND SADHVIS TO STAY AT THE SAME TIME OR NOT TO STAY AS SUCH IN A VILLAGE OR THE LIKE

१०. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा, एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमण-पवेसाए, नो कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए।

११. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा, अभिनिव्वगडाए, अभिनिद्दुवाराए अभिनिक्खमण-पवेसाए, कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए।

१०. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को, एक वगडा, एक द्वार और एक निष्क्रमण–प्रवेश वाले ग्राम यावत् राजधानी मे (भिन्न–भिन्न उपाश्रयो मे भी) समकाल (एक ही समय) निवास करना नही कल्पता है।

११. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो को, अनेक वगडा, अनेक द्वार और अनेक निष्क्रमण–प्रवेश वाले ग्राम यावत् राजधानी मे समकाल निवास करना कल्पता है।

10. In case a village up to a capital (sixteen places mentioned earlier) has only one section, gate for entrance or only one gate for exit, the Jain

अग्राह्य और ग्राह्य फल

चित्र परिचय-१०

Illustration No. 10
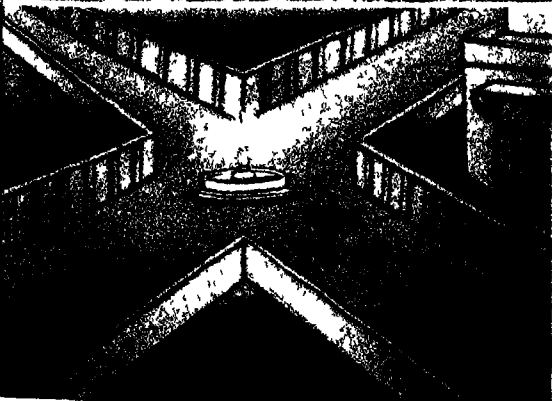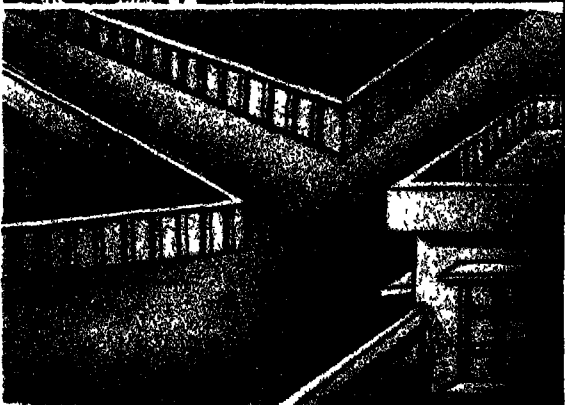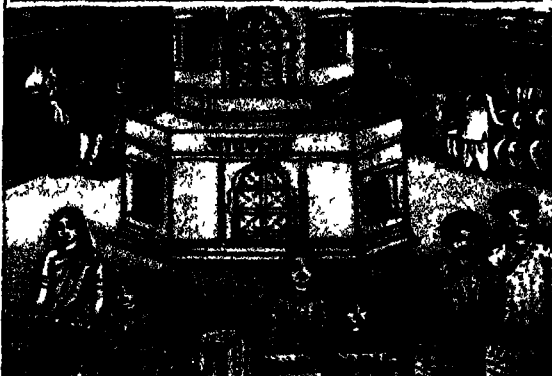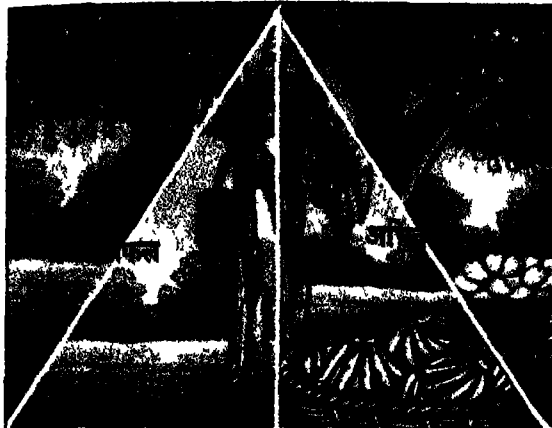
अग्राह्य और ग्राह्य फल

१ साधु साध्वी को आम = वृक्ष पर लगे कच्चे फल तथा अभिन्न = अखण्ड (अशस्त्र परिणत) फल चाहे कच्चे हो या पके हो, ग्रहण करना नही कल्पता।

२ भिन्न फल–जैसे केले व आम आदि को छीलकर टुकडे किये हो तो वे पक्व फल ग्रहण कर सकता है।

३ अशस्त्र परिणत–जो फल पका हुआ तो हो, परन्तु अभिन्न = अखण्ड है, जैसे–छिलका सहित आम तथा केला आदि वह (द्रव्य पक्व फल) ग्रहण करना नही कल्पता।

–*बृहत्कल्प, उ १ सू १ ४ पृ १९४*

निर्ग्रन्थी के लिए निषिद्ध आवास

आपण गृह = बाजार के बीच का भवन। रथ्यामुख = जिस भवन के सामने ही गली या सडक जाती हो, जहाँ निरन्तर आवागमन बना रहता हो। अन्तरापण–सामने दुकान तथा पीछे निवास वाला भवन। शृंगाटक–जहाँ तीन रास्ते मिलते हो, जो सिघाडे के आकार मे बना हो, ऐसा भवन। चतुष्क जिस भवन के सामने चार रास्ते आकर मिलते हो। चत्वर–जिस भवन के सामने के चौक मे पशु आदि बँधते हो, नीम आदि के वृक्ष लगे हो।

उक्त प्रकार के स्थानो पर लोगो का अधिक आना- जाना रहने की सम्भावना होने से साध्वियो के लिए ये स्थान ठहरने योग्य नही है। आवश्यक होने पर साधु ठहर सकते है।

बृहत्कल्प उ १ सू १२ १३ पृ २०१

NON-ACCEPTABLE AND ACCEPTABLE FRUITS

1 A monk or nun are not allowed to accept raw fruits still hanging on a tree as well as intact and uncut (abhinna) fruits whether they are raw or ripe

2 **Bhinna fruits**—If ripe fruits like banana and mango are peeled and cut to pieces they can be accepted

3 **Not cut by an instrument**—A fruit that is ripe but intact (abhinna), like an non-peeled mango or banana, cannot be accepted

—*Brihatkalp 1/1, 1, p 191*

PLACE OF STAY PROHIBITED FOR A NIRGRANTHI

Aapan griha = a house in the middle of a market **Rathyamukh** = a house with a road or street starting at its gate and where there is a regular traffic **Antarapan** = a house with a shop in front and residence at its back **Shringatak** = a house at the junction of three roads or a triangular house **Chatushk** = a house at the junction of four roads **Chatvar** = a house having a courtyard with trees and where cattle are tethered

As there is a possibility of frequent movement of people at aforesaid places, they are not suitable for the stay of nuns If necessary monks can stay there

—*Brihatkalp 1/12, 13, p 201*

monks (*nirgranths*) and Jain nuns (*nirgranthis*) should not stay there during the same period even in separate *Upashrayas*.

11. In case a village up to a capital has many gates for entrance and many gates for exit, Jain monks and nuns can stay in different Upashrayas during the same period.

विवेचन : ग्रामादि की रचना अनेक प्रकार की होती है, यथा-(१) एक (वगडा) विभाग (या मोहल्ला) वाले, (२) अनेक विभाग वाले, (३) एक द्वार वाले, (४) अनेक द्वार वाले, (५) एक मार्ग वाले, (६) अनेक मार्ग वाले।

द्वार एवं मार्ग में यह अन्तर है कि 'द्वार' समय-समय पर बन्द किये जा सकते हैं एवं खोले जा सकते हैं, किन्तु 'मार्ग' सदा खुले ही रहते हैं।

जो ग्राम केवल एक ही विभाग वाला हो और उसमें जाने-आने का मार्ग भी केवल एक ही हो, और ऐसे ग्रामादि में पहले भिक्षु ठहर चुके हों तो वहाँ साध्वियो को नही ठहरना चाहिए अथवा साध्वियाँ ठहरी हुई हों तो वहाँ साधुओं को नहीं ठहरना चाहिए।

जिस ग्रामादि में अनेक विभाग हों एव अनेक मार्ग हो तो वहाँ साधु-साध्वी दोनों एक साथ अलग-अलग उपाश्रयों में रह सकते है। कदाचित् एक विभाग या एक मार्ग वाले ग्रामादि में साधु-साध्वी दोनों विहार करते हुए पहुँच जायें तो वहाँ पर आहारादि करके विहार कर देना चाहिए अर्थात् अधिक समय वहाँ दोनो को निवास नहीं करना चाहिए।

ऐसे ग्राम यावत् राजधानी मे दोनो के ठहरने पर जिन दोषो के लगने की सम्भावना रहती है उनका वर्णन भाष्यकार ने विस्तारपूर्वक किया है। वह सक्षेप मे इस प्रकार है-

उच्चार-प्रस्रवण भूमि मे और स्वाध्याय भूमि में आते-जाते समय तथा भिक्षा के समय गलियो में या ग्राम के द्वार पर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों का बार-बार मिलन होने से एक-दूसरे के साथ ससर्ग बढता है और उससे राग-भाव की वृद्धि होती है। अथवा उन्हे एक ही दिशा मे एक ही मार्ग से जाते-आते देखकर जन-साधारण को अनेक आशकाएँ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

(i) एक वगडा में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो के उपाश्रयों के द्वार एक-दूसरे के आमने-सामने हो।

(ii) एक उपाश्रय के द्वार के पार्श्व भाग में दूसरे उपाश्रय का द्वार हो।

(iii) एक उपाश्रय के पृष्ठ भाग मे दूसरे उपाश्रय का द्वार हो।

(iv) एक उपाश्रय का द्वार ऊपर हो और दूसरे उपाश्रय का द्वार नीचे हो।

(v) निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय सम पंक्ति में हों।

तो भी जन-साधारण में अनेक आशंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं तथा उनके सयम की हानि होने की सम्भावना रहती है।

Elaboration—The villages and the like are formed in different ways namely .

(1) Those having one section or colony, (2) Those having many sections or colonies, (3) Those having one gate, (4) Those having many gates, (5) Those having one road, (6) Those having many roads.

The difference between a gate and a road is that the gate can be closed from time to time but the road remains open throughout.

In a village having only one settlement and only one street or road through which people enter and go out, if *Bhikshus* (Jain monks) are already staying nuns should not stay In case the nuns are already staying there, the monks should not stay there

A village has many divisions There are many road in it. Then monks and nuns can stay simultaneously in separate *Upashrayas*. In case during their wanderings, Jain monks and nuns reach a village or the like which has only one division or which has only one road, either of them should leave that place after taking their food and the like. In other words both of them should not stay together for a long time.

The author of *Bhashya* has narrated in detail the probable faults that are likely to be committed in case both monks and nuns stay in such a village up to the capital. They are briefly stated below

When monks and nuns go out for call of nature or for study or for collecting alms they may repeatedly come in contact with each other in the streets or at the gate of the village. Thus familiarity between them increases and it increases attachment. Further when the people see monks and nuns going on the same road and in the same direction, many types of doubt may arise in their mind In case—

(i) The door of the *Upashraya* of monk is just in front of the door of the *Upashraya* of nuns

(ii) The door of one *Upashraya* is by the side of that of the other *Upashraya*.

(iii) The door of one *Upashraya* is behind the other *Upashraya*.

(iv) The door of one *Upashraya* is below that of the other *Upashraya*.

(v) The two *Upashrayas* are in the same row

Then also common people may have many doubts and it may blemish their life of spiritual restraints.

१२. नो कप्पइ निग्गंथीणं (१) आवणगिहंसि वा, (२) रत्थामुहंसि वा, (३) सिंघाडगंसि वा, (४) तियंसि वा, (५) चउक्कंसि वा, (६) चच्चरंसि वा, (७) अन्तरावणंसि वा वत्थए।

१३. कप्पइ निग्गंथाणं आवणगिहंसि वा जाव अन्तरावणंसि वा वत्थए।

१२. निर्ग्रन्थियों को (१) आपणगृह, (२) रथ्यामुख, (३) शृंगाटक, (४) त्रिक, (५) चतुष्क, (६) चत्वर, अथवा (७) अन्तरापण मे रहना नही कल्पता है।

१३. निर्ग्रन्थो को आपणगृह यावत् अन्तरापण में रहना कल्पता है।

12. Jain nuns are prohibited from staying in a house or *Upashraya* located in—(1) *Apangrih* (a bazaar), (2) *Rathyamukh* (start of a street), (3) *Shringatak* (triangular place), (4) Tri-junction (*trik*), (5) Four-way crossing, (6) *Chatvar* (place where six or more streets meet), (7) *Antarapan* (Upashraya located on main road or when road is at the back or on both sides of it. When the shop is on one side and the residence is on the other side of a house, then also it is called *antarapan*).

13. Jain monks are allowed to stay in *Apangrih* up to *Antarapan*

विवेचन : (१) हाट-बाजार को 'आपण' कहते है। उसके बीच मे विद्यमान गृह या उपाश्रय 'आपणगृह' कहा जाता है।

(२) रथ्या का अर्थ गली या मोहल्ला है, जिस उपाश्रय या घर का मुख (द्वार) गली या मोहल्ले की ओर हो, वह 'रथ्यामुख' कहलाता है अथवा जिस घर के आगे से गली प्रारम्भ होती हो, उसे भी 'रथ्यामुख' कहते हैं।

(३) सिंघाडे के समान त्रिकोण स्थान को 'शृंगाटक' कहते हैं।

(४) तीन गली या तीन रास्तो के मिलने के स्थान को 'त्रिक' कहते है।

(५) चार मार्गों के समागम (चौराहे) को 'चतुष्क'।

(६) जहाँ पर छह या अनेक रास्ते आकर मिलते हो, अथवा अनेक रास्ते जाते हो, ऐसे स्थान को 'चत्वर' कहते है।

(७) अन्तरापण का अर्थ हाट-बाजार का मार्ग है। जिस उपाश्रय के एक ओर अथवा दोनो ओर बाजार का मार्ग हो, उसे 'अन्तरापण' कहते है। अथवा जिस घर के एक तरफ दुकान हो और दूसरी तरफ निवास हो उसे भी 'अन्तरापण' कहते हैं।

उक्त प्रकार के उपाश्रयो या घरों मे साध्वियों को नहीं रहना चाहिए। क्योंकि इन स्थानो मे अनेक मनुष्यो का आवागमन रहता है। उनकी शील-रक्षा में बाधाएँ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अत राजमार्ग या चौराहे आदि सूत्रोक्त स्थानों को छोड़कर गली के अन्दर या सुरक्षित स्थानो मे साध्वियों का रहना निरापद होता है। साधु को ऐसे स्थानों मे रहने में आपत्ति नही होने से सूत्र में विधान किया गया है। स्वाध्याय, ध्यान आदि सयम योगों मे बाधा आती हो तो साधु को भी ऐसे स्थानो मे नहीं ठहरना चाहिए।

Elaboration—The definations of seven places given in Hindi have been included in the English translation of the text.

Jain nuns should not stay in *Upashrayas* or houses of above-mentioned type. It is because many people move about at such places. Many difficulties may arise in proper security for them in practicing celibacy and prescribed code of conduct So it is safe for nuns to avoid highways, the crossings and the like locations as mentioned above. They should stay inside a lane or at properly secured places. Monks, however, do not face any hurdle at such places and therefore, they are allowed to stay there. In case a monk also finds any obstacles in his study, meditation and such other practices of spiritual restraints, they should also not stay there.

बिना द्वार वाले स्थान में साधु-साध्वी के रहने का विधि-निषेध

RULES REGARDING STAY OF MONKS AND NUNS AT A PLACE WITHOUT GATE

१४. नो कप्पइ निग्गंथीणं अवंगुयदुवारिए उवस्सए वत्थए। एगं पत्थारं अन्तो किच्चा, एगं पत्थारं बाहिं किच्चा, ओहाडिय चिलिमिलियागंसि एवं णं कप्पइ वत्थए।

१५. कप्पइ निग्गंथाणं अवंगुयदुवारिए उवस्सए वत्थए।

१४. निर्ग्रन्थियो को अपावृत (खुले) द्वार वाले उपाश्रय मे रहना नहीं कल्पता है। विशेष परिस्थितियों में निर्ग्रन्थियों को अपावृत द्वार वाले उपाश्रय मे द्वार पर एक प्रस्तार (पर्दा) भीतर करके और एक प्रस्तार बाहर करके इस प्रकार चिलिमिलिका (पर्दा लगाने का वस्त्र) बाँधकर उसमे रहना कल्पता है।

१५. निर्ग्रन्थों को अपावृत द्वार वाले उपाश्रय मे रहना कल्पता है।

14. Jain nuns are not allowed to stay in an *Upashraya* which has no doors on its gate. In special circumstances, however, they can stay there after fixing a curtain inside and another curtain outside the gate and tying them in the prescribed manner

15. Monks can stay in an *Upashraya* which has an open gate.

विवेचन : खुले द्वार वाले उपाश्रय में साध्वियों को ठहरने का जो निषेध किया है, उसका कारण यह है कि खुला द्वार देखकर रात्रि के समय चोर आदि आकर साध्वियों के वस्त्र-पात्रादि को ले जा सकते हैं। कामी पुरुष अथवा कुत्ते आदि भी घुस सकते हैं। किन्तु यदि किसी ग्रामादि में किवाडो वाला घर ठहरने को नहीं मिले और आपात स्थिति में खुले द्वार वाले घर में ठहरने का अवसर आवे तो बताया गया है कि अन्दर-बाहर इस तरह वस्त्र का पर्दा लगा दें कि सहज किसी की दृष्टि न पड़े और जाने-आने का मार्ग भी रहे।

भाष्य में द्वार को ढँकने की विधि इस तरह बताई गई है कि बाँस या खजूर की छिद्ररहित चटाई या सन-टाट आदि के परदे से द्वार को बाहरी ओर से और भीतरी ओर से भी बन्द करके ठहरना चाहिए। रात्रि के समय उन दोनों परदों को किसी खूँटी आदि से ऊपर, बीच में और नीचे इस प्रकार बाँधे कि बाहर से कोई पुरुष प्रवेश न कर सके। फिर भी सुरक्षा के लिए बताया गया है कि उस द्वार पर सशक्त साध्वी बारी-बारी से रातभर पहरा देवे तथा रूपवती युवती साध्वियों को गीतार्थ और वृद्ध साध्वियों के मध्य-मध्य में चक्रवाल रूप से स्थान देकर सोने की व्यवस्था गणिनी या प्रवर्तिनी को करनी चाहिए। गणिनी को सबके मध्य में सोना चाहिए और बीच-बीच में सबकी सँभाल करते रहना चाहिए।

खुले द्वार वाले स्थान में साधुओ को ठहरने का जो विधान है उसका कारण स्पष्ट है कि उनके उक्त प्रकार की सम्भावनाएँ कम ही रहती हैं।

Elaboration—Nuns are not allowed to stay in an *Upashraya* which has open gate because seeing the open gate, a thief can enter at night and steal clothes and pots of the nuns. Persons of bad character or dogs can also enter. In case no house is available in the village and the like which has proper doors fixed, and if in emergency nuns have to stay in a house with open entrance, they should fix curtains both inside and outside in such a way that the passers by are not able to look into inside and there remains a passage for movement of nuns.

In *Bhashya*, the method of covering the gate (entrance) has been narrated The entrance should be covered from inside and from outside with a bamboo net or a mat of palm leaves which does not contain any holes or with a jute curtain before the nuns stay there At night, both the curtains should be tied at the top, in the middle and at the bottom to pegs in such a way that no one is able to enter from outside Still for security reasons, physically strong nuns should guard throughout the night by rotation. The head nun or pravartini should make proper arrangement for proper rest of good-looking young nuns in between the experienced and old nuns. The head nun should sleep exactly in the middle of all nuns and occasionally take care of them

Monks are allowed to stay at a place, which has open entrance because the possibility of above mentioned mishaps in their case is very rare.

साधु-साध्वी को घटीमात्रक ग्रहण करने का विधि-निषेध

RULES FOR ACCEPTING OR REJECTING A GHATI-MATRAK BY MONKS AND NUNS

१६. कप्पइ निग्गंथीणं अन्तोलित्तं घडिमत्तयं धारित्तए वा परिहरित्त वा।

१७. नो कप्पइ निग्गंथाणं अन्तोलित्तं घडिमत्तयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा।

१६. निर्ग्रन्थियों को अन्दर की ओर लेपयुक्त घटीमात्रक रखना एव उसका उपयोग करना कल्पता है।

१७. निर्ग्रन्थों को अन्दर की ओर लेपयुक्त घटीमात्रक रखना एव उसका उपयोग करना नही कल्पता है।

16. Jain nuns can keep a ghati-matrak (a special type of pot) which is polished from inside and use it.

17. Monks are not allowed to keep ghati-matrak which is polished from inside and they cannot use such a pot.

विवेचन · आगम मे तीन प्रकार के मात्रक (एक प्रकार का बर्तन) रखने की आज्ञा है, यथा–

(१) उच्चारमात्रक (मल विसर्जन के लिए),

(२) प्रस्रवणमात्रक (मूत्र विसर्जन के लिए),

(३) खेलमात्रक (थूकने के लिए)।

घटीमात्रक एक प्रकार का प्रस्रवणमात्रक है। यद्यपि प्रस्रवणमात्रक तो साधु–साध्वी दोनो को रखना कल्पता है तथापि इस मात्रक का कुछ विशेष आकार होता है, उस आकार को बताने वाला "घटी" शब्द है जिसका टीकाकार ने इस प्रकार अर्थ किया है–**"घटीमात्रक"–घटीसंस्थानं मृन्मयभाजन विशेषं।**

घटिका (घडिगा) के आकार वाला एक प्रकार का मिट्टी का पात्र घटीमात्रक है। यह छोटी सुराही के आकार का होता है। जिस प्रकार तालप्रलम्ब या केला के लम्बे टुकडो मे पुरुष चिह्न का आभास होने के कारण साध्वी के लिए उनका निषेध किया गया है, उसी प्रकार घटी आकार वाले मात्रक के मुख से स्त्री–चिह्न का आभास होने के कारण साधु के लिए इसका निषेध किया गया है।

यह मिट्टी का होने से खुरदरा हो सकता है जो जल्दी न सूखने के कारण प्रस्रवण के उपयोगी नही होता है अत अन्दर चिकना बना करके ही साध्वी को रखना कल्पता है। वही पात्र अन्दर चिकना होने के कारण साधु के लिए आकार और स्पर्श दोनो से विकारजन्य हो सकता है। अत ऐसे ही मात्रक का यहाँ विधि–निषेध समझना चाहिए।

Elaboration—Agam allows monks and nuns to keep three types of matrak (a type of pot) :

(1) Uchhar-matrak (the pot to store stool),

(2) Prasravan-matrak (the pot to store and then discard urine),

(3) The pot for sputum (khel-matrak)

Ghati-matrak is a type of *prasravan-matrak* Although every monk or nun can keep a pot for urine, yet this pot (*ghati-matrak*) has a unique shape The word '*ghati*' indicates its shape. The Commentator has explained its meaning as under :

Ghati-matrak is an earthen pot of pitcher-like shape. It is like a small high-neck pitcher. Just as the palm fruit or long pieces of banana look like the private part of a man and so it cannot be accepted by a nun Similarly the mouth of a pitcher like pot looks like the private part of a woman and therefore the monks, are prohibited from keeping suchlike pot.

It is rough as it is made of earth. It cannot be used for urine as it does not dry up quickly. So it is made slippery from inside by polishing and then can be kept by nuns It is prohibited for monks because of its shape and inner surface being smooth and slippery. This description relates to such a vessel.

चिलिमिलिका ग्रहण करने का विधान

PROCEDURE FOR ACCEPTING MOSQUITO NET (CHEL-CHILIMILIKA)

१८. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चेलचिलिमिलियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा।

१८. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को चेल-चिलिमिलिका रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।

18. Monks and nuns can keep Chel-chilimilika (mosquito net) and use it

विवेचन : चिलिमिलिका देशी शब्द है, यह छोलदारी के आकार वाली एक प्रकार की वस्त्र-कुटी है। यह पाँच प्रकार की होती है-

(१) **सूत्रमयी**-कपास आदि के धागो से बनी हुई,

(२) **रज्जुमयी**-ऊन आदि के मोटे धागो से बनी हुई,

(३) **वल्कलमयी**-सन-पटसन आदि की छाल से बनी हुई,

(४) **दण्डकमयी**-बाँस व बेत से बनी हुई,

(५) **कटमयी**-चटाई से बनी हुई।

उक्त सूत्र मे वस्त्र से बनी चेल-चिलिमिली को रखने का विधान किया गया है, अन्य का नही। क्योकि वे भारी होने से विहार के समय साथ मे ले जाना सम्भव नही होता है। चिलिमिलिका का प्रमाण पाँच हाथ लम्बी, तीन हाथ चौडी और तीन हाथ ऊँची बताया गया है। इसके भीतर एक साधु या साध्वी का सरक्षण भलीभाँति हो सकता है। इस सूत्र मे धारण करने के लिए कही गई चिलिमिलिका से मच्छरदानी का कथन समझना चाहिए और सूत्र १४ मे एक प्रस्तार (चद्दर या पर्दा) द्वार के अन्दर एव एक बाहर बाँधकर बीच मे मार्ग रखने रूप चिलिमिलिका बनाना कहा गया है। वह दो पर्दों (चद्दरों) से बनाई गई चिलिमिलिका प्रस्तुत सूत्र की चिलिमिलिका (मच्छरदानी) से भिन्न है।

भाष्यकार के अनुसार प्रत्येक साधु और साध्वी एक-एक चिलिमिलिका रख सकते हैं। जिसका उद्देश्य यह है कि वर्षा आदि ऋतुओं में जबकि डांस, मच्छर, मक्खी, पतंगे आदि अनेक क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं, तब रात्रि के समय चिलिमिलिका के अन्दर सोने से उनकी विराधना नहीं होती। रोगी साधु की परिचर्या भी उसके लगाने से सहज मे होती है। मक्खी, मच्छर आदि के अधिक हो जाने पर आहार-पानी भी चिलिमिलिका लगाकर करने से उन जीवों की रक्षा होती है।

Elaboration—*Chilimilika* is a native word. It is hut of cloth and tent like in shape. It is of five types :

(1) **Sutramayi**—One made of threads of cotton and the like.

(2) **Rajjumayi**—One made of thick threads of wool.

(3) **Valkalmayi**—One made of jute-skin and the like

(4) **Dandakmayi**—One made of bamboo or cane

(5) **Katmayi**—One made of mat

In the above mentioned aphorism, there is provision of keeping mosquito net of cloth and not of anything else because others cannot be carried during wanderings as they are heavy The net should be five *haath* long, three *haath* wide and three *haath* high A monk or a nun can properly take rest under it. *Chilimilika* mentioned in this *Sutra* should be understood to be the mosquito net In aphorism 14, it is mentioned that to cover an open entrance, a chilimilika should be formed by tying the inside curtain and outside curtain and keeping a passage in between. That *chilimilika* is made of two curtains and is different from mosquito net

According to the author of *bhashya*, every monk and nun can keep one *chilimilika* each. The purpose behind it is that during rainy season when mosquitoes, flies, moths and suchlike minute living beings are in abundance, one avoids causing violence to them when one sleeps under a mosquito net A sick monk can also be properly attended to easily in it. Even while taking meals in a mosquito net, one protects the life of flies, mosquitoes and the like when they appear in abundance.

पानी के किनारे खड़े रहने आदि का निषेध AVOIDING STAY NEAR WATER

१९. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा दगतीरंसि, (१) चिट्ठित्तए वा, (२) निसीइत्तए वा, (३) तुयट्टित्तए वा, (४) निद्दाइत्तए वा, (५) पयलाइत्तए वा, (६) असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहरित्तए, (७) उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, (८) सज्झायं वा करित्तए, (९) धम्मजागरियं वा जागरित्तए, (१०) काउसग्गं वा ठाइत्तए।

१९. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को दकतीर (जल के किनारे) पर (१) खडा होना, (२) बैठना, (३) शयन करना, (४) निद्रा लेना, (५) ऊँघना, (६) अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार का खाना-पीना, (७) मल-मूत्र, श्लेष्म, नासामल आदि का परित्याग करना, (८) स्वाध्याय करना, (९) धर्मजागरिका (धर्मध्यान) करना, तथा (१०) कायोत्सर्ग कर स्थित होना नही कल्पता है।

19. Monks and nuns are not allowed to (1) stand, (2) sit, (3) lie down, (4) sleep, (5) doze, (6) take any type of food or drink, (7) discharge stool, urine, phlegmand nose-dirt, (8) to study, (9) study, and (10) to meditate in a stable posture near the bank of water (Dakteer).

विवेचन : नदी या सरोवर आदि जलाशय के जिस स्थान से ग्रामवासी या वनवासी लोग पानी भरके ले जाते हैं और जहाँ पर गाय, भैसें आदि पशु या जंगली जानवर पानी पीने को आते है, ऐसे स्थान को 'दकतीर' कहते है।

ऐसे स्थान पर साधु या साध्वी को उक्त क्रियाएँ करने का जो निषेध किया गया है, उसके अनेक कारण निर्युक्ति, भाष्य और टीका मे बताये हैं, उनमे से कुछ इस प्रकार हैं-

(१) जल भरने के लिए आने वाली स्त्रियो को साधु के चरित्र पर शका हो सकती है।

(२) पानी पीने के लिए आने वाले पशु-पक्षी डरकर बिना पानी पिये ही वापस लौट सकते है, उनको पानी पीने मे अन्तराय होती है।

(३) दुष्ट जानवर साधु पर आक्रमण कर सकते हैं।

(४) जल मे रहे जलचर जीव साधु को देखकर त्रस्त होते है।

(५) जल के किनारे पृथ्वी सचित्त होती है अत. पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना होती है।

(६) साधु के कच्चा पानी पीने की या ग्रहण करने की लोगों को शंका होती है, इत्यादि।

Elaboration—*Dakteer* is that place near a stream, pond or other water-body wherefrom the villagers or residents of forest carry drinking water; cows, buffaloes and suchlike animals or other wild animals come to drink water.

Many reasons have been stated in *niryukti, bhashya* and *tika* as to why monks and nuns have been prohibited from doing above mentioned activities at such place Some of them are as under ·

(1) Women who come to take water start suspecting the ethical conduct of the monk.

(2) Animals and birds who come there to drink water may go back out of fear without quenching their thirst. Thus it causes obstruction in their having the water.

(3) Dreadful animals may attack the monk.

(4) Acquatic animals may feel terrified to see the monk.

(5) The earth at the bank of water is full of life. So it may cause violence to earth-bodied living beings.

(6) People start doubting that the monk takes and drinks *sachitt* water (water that contains life).

सचित्र उपाश्रय में ठहरने का निषेध

PROHIBITION REGARDING STAY IN AN UPASHRAYA HAVING PICTURES

२०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सचित्तकम्मे उवस्सए वत्थए।

२१. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अचित्तकम्मे उवस्सए वत्थए।

२०. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को सचित्र (भित्ति चित्रो वाले) उपाश्रय मे रहना नही कल्पता है।

२१. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को चित्ररहित उपाश्रय मे रहना कल्पता है।

20. Monks and nuns are not allowed to stay in an *Upashraya* whose walls are painted with pictures.

21. Monks and nuns can stay in an *Upashraya* that does not have pictures

विवेचन : जिन उपाश्रयो की भित्तियो पर देव-देवियो, स्त्री-पुरुषो और पशु-पक्षियो के जोडो के अनेक प्रकार से क्रीडा करते हुए चित्र हो अथवा अन्य भी मनोरजक चित्र चित्रित हो, वहाँ साधु या साध्वी को नही ठहरना चाहिए, क्योकि उन्हे देखकर उनके मन मे विकार भाव जागृत हो सकता है तथा बारबार उधर दृष्टि जाने से स्वाध्याय, ध्यान, प्रतिलेखन आदि सयम-क्रियाओ में एकाग्रता भी नही रह सकती है।

Elaboration—Monks and nuns should not stay in those *Upashrayas* whose walls contain pictures of gods and goddesses, of men and women and of animals and birds in playing postures of different types or other type of attractive pictures and paintings. It is because by seeing them, ill thoughts may arise in their mind They may look at them again and again and thus they may lose concentration in study, meditation, and in exclusively attending various activities relating to spiritual restraints.

सागारिक की निश्रा लेने का विधान

PROVISION OF TAKING PROTECTION OF HOUSEHOLDER OF SAME FAITH

२२. नो कप्पइ निग्गंथीणं सागारिय-अनिस्साए वत्थए।

२३. कप्पइ निग्गंथीणं सागारिय-निस्साए वत्थए।

२४. कप्पइ निग्गंथाणं सागारिय-निस्साए वा अनिस्साए वा वत्थए।

२२. निर्ग्रन्थियों को सागारिक की अनिश्रा से रहना नही कल्पता है।

२३. निर्ग्रन्थियों को सागारिक की निश्रा से रहना कल्पता है।

२४. निर्ग्रन्थों को सागारिक की निश्रा या अनिश्रा से रहना कल्पता है।

22. Jain nuns are not allowed to stay without the protection from a householder of their faith

23. Nuns can stay in the protection of a householder of their faith.

24. Monks can stay if protection of a householder is available and also if such protection is not available.

विवेचन : जैसे वृक्षादि के आश्रय के बिना लता, पवन से प्रेरित होकर कम्पित और अस्थिर हो जाती है, उसी प्रकार उत्तरदायी सागारिक (शय्यातर) की निश्रा अर्थात् सुरक्षा मिले बिना श्रमणी भी क्षुभित एव भयभीत हो सकती है, उसके शील की रक्षा पुरुष की निश्रा से भलीभाँति हो सकती है। अत गुरुणी–प्रवर्तिनी से रक्षित होने पर भी श्रमणी को शय्यातर की निश्रा मे रहना आवश्यक बताया गया है।

किन्तु साधु प्राय सशक्त, दृढ चित्त एव निर्भय मनोवृत्ति वाला होता है तथा उसके ब्रह्मचर्य भग के विषय मे बलात्कार होना भी सम्भव नही रहता है। अत वह शय्यातर की निश्रा के बिना भी उपाश्रय मे रह सकता है।

Elaboration—A creeper can become unstable and trembling due to wind if it does not have the support of a tree Similarly a nun can feel dejected and terrified if she does not have protection from a responsible householder devotee. Her ascetic restraints can be properly practiced under the patronage and protection provided by a householder. Therefore, although a nun is secure under her teacher (*pravartini* or the chief), it is stated to be mandatory that she should stay under the security of a householder.

A monk, however, is powerful, strong-hearted and of fearless bent of mind One cannot forcibly damage his celibate conduct So he can stay in an *Upashraya* even without any protection from a householder

गृहस्थयुक्त उपाश्रय में रहने का विधि–निषेध

PROCEDURE REGARDING STAY IN UPASHRAYA WHERE HOUSEHOLDERS ALSO RESIDE

२५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारिए उवस्सए वत्थए।

२६. नो कप्पइ निग्गंथाणं इत्थि-सागारिए उवस्सए वत्थए।

२७. कप्पइ निग्गंथाणं पुरिस-सागारिए उवस्सए वत्थए।

२८. नो कप्पइ निग्गंथीणं पुरिस-सागारिए उवस्सए वत्थए।

२९. कप्पइ निग्गंथीणं इत्थि-सागारिए उवस्सए वत्थए।

२५. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को सागारिक (गृहस्थ के निवासयुक्त) उपाश्रय मे रहना नहीं कल्पता है।

२६. निर्ग्रन्थो को स्त्री-सागारिक (केवल स्त्रियों के निवासयुक्त) उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता है।

२७. निर्ग्रन्थो को पुरुष-सागारिक (केवल पुरुषो के निवासयुक्त) उपाश्रय मे रहना कल्पता है।

२८. निर्ग्रन्थियो को पुरुष-सागारिक (केवल पुरुषो के निवासयुक्त) उपाश्रय में रहना नही कल्पता है।

२९. निर्ग्रन्थियो को स्त्री-सागारिक (केवल स्त्रियो के निवासयुक्त) उपाश्रय मे रहना कल्पता है।

25. Monks and nuns are not allowed to stay in *Upashraya* where householder is residing (*Sagarik Upashraya*).

26. Jain monks are not allowed to stay in an *Upashraya* where only lady residents are residing

27. Monks (*Nirgranths*) can stay in an *Upashraya* where only male members are residing

28. Nuns (*Nirgranthis*) are not allowed to stay in a house where only male members of the household are residing

29. Nuns (*Nirgranthis*) can stay in an *Upashraya* where only ladies are residing.

विवेचन : सागारिक उपाश्रय दो प्रकार के होते है-द्रव्य-सागारिक और भाव-सागारिक।

जिस उपाश्रय मे स्त्री-पुरुष रहते हो अथवा स्त्री-पुरुषो के रूप भित्ति आदि पर चित्रित हो, काष्ठ, पाषाणादि की स्त्री-पुरुषो की मूर्तियाँ हो, उनके शृगार के साधन वस्त्र, आभूषण आदि रखे हो, जहाँ पर भोजन-पान की सामग्री रखी हुई हो, गीत, नृत्य, नाटक आदि होते हो, वह उपाश्रय स्व-स्थान मे द्रव्य-सागारिक है और पर-स्थान में भाव-सागारिक है।

स्व-स्थान और **पर-स्थान** का अर्थ यह है कि यदि उस उपाश्रय मे पुरुषो के चित्र, मूर्तियाँ हो और पुरुषो के ही नृत्य, नाटकादि होते हो तो वह साधुओ के लिए द्रव्य-सागारिक है और साध्वियो के लिए भाव-सागारिक है।

इसी प्रकार जिस उपाश्रय मे स्त्रियो के चित्र, मूर्ति आदि उक्त प्रसग हो तो वह उपाश्रय साधुओ के लिए **भाव-सागारिक** है और साध्वियो के लिए **द्रव्य-सागारिक** है। साधु और साध्वियो को इन दोनो ही प्रकार के उपाश्रयो में रहना उचित नही है।

यद्यपि प्रथम सूत्र मे द्रव्य और भाव-सागारिक उपाश्रयो मे रहने का जो स्पष्ट निषेध है वह उत्सर्ग मार्ग है, किन्तु ग्रामादि मे विचरते हुए साधु-साध्वियो को उक्त दोषरहित निर्दोष उपाश्रय ठहरने को न मिले तो ऐसी दशा में द्रव्य-सागारिक उपाश्रय में साधु या साध्वी ठहर सकते है। किन्तु भाव-सागारिक उपाश्रय मे नही ठहर सकते, यह शेष चार सूत्रो मे बताया है।

Elaboration—*Sagarik Upashraya* are of two types—*Dravya Sagarik* and *Bhaav Sagarik.*

Consider an *Upashraya* where only gents reside or on whose walls there are pictures or paintings depicting men. It has idols of men in wood or stone. Clothes and ornaments for upkeep of men are in it. The articles of food are also there. Songs and dances are also going on. A play is being enacted. That *Upashraya* is *Dravya-sagarik* for *Sva-sthan* (monks) and *bhaava-sagarik* for *Par-sthan* (nuns).

The words *Sva-sthan* and *Par-sthan* can be translated as follows. In case the *Upashraya* has pictures, idols, dances and acting postures of men only, it is *Dravya-sagarik* for monks and *Bhaava-sagarik* for *Sadhvis* (nuns).

Similarly an *Upashraya* which has pictures, dances and acting postures of women only, is *Bhaava-sagarik for Sadhus* and *Dravya-sagarik* for *Sadhvis*. It is not proper for monks and nuns to stay in both of these types of *Upashrayas*.

In the first aphorism, monks and nuns have been prohibited from staying in *Dravya-sagarik* and *Bhaava-sagarik Upashrayas*. But while wandering in villages and the like sometimes they are not able to find faultless *Upashraya* In such circumstances monks or nuns as the case may be can stay in *Dravya-sagarik Upashraya* but they cannot stay in *Bhaava-sagarik Upashraya* This fact has been stated in the other four *Sutras* (aphorisms) mentioned above.

प्रतिबद्ध शय्या में ठहरने का विधि-निषेध

RULES REGARDING STAYING OR NON-STAYING IN PRATIBADDH SHAYYA

३०. नो कप्पइ निग्गंथाणं पडिबद्ध-सेज्जाए वत्थए।

३१. कप्पइ निग्गंथीणं पडिबद्ध-सेज्जाए वत्थए।

३०. निर्ग्रन्थो को प्रतिबद्ध शय्या मे रहना नही कल्पता है।

३१. निर्ग्रन्थियो को प्रतिबद्ध शय्या में रहना कल्पता है।

30. Monks are not allowed to stay in *Pratibaddh Shayya.*

31. *Nirgranthis* (nuns) can stay in *Pratibaddh Shayya*

विवेचन : प्रतिबद्ध उपाश्रय दो प्रकार का होता है-(१) द्रव्य-प्रतिबद्ध, (२) भाव-प्रतिबद्ध।

(१) जिस उपाश्रय में छत व दीवारे गृहस्थ के घर से सम्बद्ध हो, उसे द्रव्य-प्रतिबद्ध उपाश्रय कहा गया है।

द्रव्य-प्रतिबद्ध उपाश्रय मे स्वाध्याय आदि की ध्वनि गृहस्थ को एव गृहस्थ के कार्यों की ध्वनि साधु को बाधक हो सकती है तथा एक-दूसरे के कार्यों में व्याघात भी हो सकता है।

(२) भाव-प्रतिबद्ध उपाश्रय चार प्रकार का होता है-

(i) जहाँ पर स्त्री और साधुओ के मूत्रादि करने का स्थान एक ही हो।

(ii) जहाँ स्त्री एव साधुओ के बैठने का स्थान एक ही हो।

(iii) जहाँ पर सहज ही स्त्री का रूप दिखाई देता हो।

(iv) जहाँ पर बैठने से आभूषण एवं मैथुन सम्बन्धी शब्द सुनाई देते हो।

भाव-प्रतिबद्ध उपाश्रय सयम एव ब्रह्मचर्य के भावो मे बाधक बन सकता है। अत. द्रव्य-भाव-प्रतिबद्ध शय्या मे ठहरना योग्य नही है।

यद्यपि उक्त दोष साधु-साध्वी दोनो के लिए समान है, फिर भी साध्वी के लिए सूत्र में जो विधान किया है वह अपवादस्वरूप है। क्योकि उन्हे गृहस्थ की निश्रायुक्त उपाश्रय मे ही ठहरना होता है। निश्रायुक्त उपाश्रय कभी अप्रतिबद्ध न मिले तो प्रतिबद्ध स्थान मे ठहरना उनको आवश्यक हो जाता है। ऐसे समय मे उन्हें किस विवेक से रहना चाहिए, इसकी विस्तृत जानकारी भाष्य से करनी चाहिए। विशेष परिस्थिति में कदाचित् साधु को भी ऐसे स्थान मे ठहरना पड जाये तो उसकी विधि भी भाष्य मे बताई गई है। उत्सर्ग (सामान्य) विधि से तो साधु-साध्वी को अप्रतिबद्ध शय्या मे ही ठहरना चाहिए। अपवाद (विशेष) विधि का विस्तृत वर्णन भाष्य से जान लेना चाहिए।

Elaboration—*Pratibaddh Upashrayas* are of two types—(1) *Dravya Pratibaddh*, and (2) *Bhaava-pratibaddh*.

(1) An *Upashrya* is called *Dravya Pratibaddh Upashraya* if its roof and walls are joining those of the residence of a householder.

(2) *Bhaava Pratibaddh Upashraya* is of four categories

(i) Where there is common place for ladies and monks for call of nature

(ii) Where there is only one common place for ladies and monks to sit

(iii) Where ordinarily ladies are visible to the monks

(iv) Where the noise of ornaments and amorous talk between men and women is audible

Bhaava Pratibaddh Upashraya can serve as a hurdle in practicing ascetic restraints and celibacy So it is not proper to stay in *Dravya-bhaava Pratibaddh Shayya*

Although the above mentioned drawbacks are identical for monks and nuns, yet the permission granted to *Sadhvis* in the above aphorism is an exception because they have to stay only in such an *Upashraya* which is properly guarded by the householder In case *non-pratibaddh Upashraya* is not available, it becomes necessary for them to stay in *pratibaddh Upashraya* In such circumstances what precautions should be distinctly observed by them can be understood in detail from the

निवास के लिए निषिद्ध स्थान

चित्र परिचय-११

Illustration No. 11

श्रमण-श्रमणी के लिए निषिद्ध आवास स्थान

१. **दकतीर**–जहाँ तालाब आदि का किनारा हो, पशु-पक्षी पानी पीते रहते हो, स्त्रियाँ जल भरने आती हो, श्रमण श्रमणी ऐसे स्थान पर न ठहरे, न खडे रहे, न ही बैठे। ऐसे स्थान से लौटकर चले जाये।

–बृह, उ १, सू १९, पृ २०९

२. **चित्रों वाला स्थान**–जिस स्थान, भवन आदि की दीवारो पर स्त्री–पुरुषो, देव–देवियो तथा पशु-पक्षियो आदि के जोडे व कामोत्तेजक मनोरजक चित्र बने हो, ऐसे स्थान पर भी नही ठहरे।

३. **प्रतिबद्ध स्थान**–जिस घर की एक छत के नीचे एक तरफ गृहस्थ रहता हो, उनका खाना-पीना बनता हो, ऐसे स्थान पर साधु को नही ठहरना चाहिए। किन्तु यदि उस छत के नीचे अलग-अलग कमरे बने हो तो विशेष परिस्थिति मे साध्वियाँ ऐसे स्थान पर ठहर सकती है।

बृह उ १ सू ३१, ३२ पृ २१५

PLACE OF STAY PROHIBITED FOR SHRAMAN-SHRAMANI

1. Daktir—At the bank of a lake or suchlike places where animals and birds come to drink water, women come to collect water, monks and nuns should neither stay, stand or sit They should turn back from such places

—Brihatkalp 1/19 p 209

2. Place with paintings—They should also not stay at places or houses where walls abound in entertaining and erotic paintings of men-women, gods-goddesses, animals and birds

3. Confined place—A monk should not stay in a house where living area and cooking area of a householder are confined under one roof However, if there are separate rooms for these activities then nuns can stay under exceptional circumstances

—Brihatkalp 1/31, 32, p 215

bhashya. In special circumstances if a monk also has to stay in such a place, the precautions to be observed by him have also been stated in the *bhashya*. Ordinarily monks and nuns should stay only in *apratibaddh Shayya*. The procedure to be adopted in exceptional circumstances can be learnt from *bhashya*

प्रतिबद्ध मार्ग वाले उपाश्रय में ठहरने का विधि-निषेध

RULES FOR STAYING OR NON-STAYING IN UPASHRAYA ON PRATIBADDH PASSAGE

३२. नो कप्पइ निग्गंथाणं गाहावइ-कुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं वत्थए।

३३. कप्पइ निग्गंथीणं गाहावइ-कुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं वत्थए।

३२. घर के बीच मे होकर जिस उपाश्रय में जाने-आने का मार्ग हो उस उपाश्रय में निर्ग्रन्थो को रहना नहीं कल्पता है।

३३. घर के बीच मे होकर जिस उपाश्रय मे जाने-आने का मार्ग हो उस उपाश्रय मे निर्ग्रन्थियो को रहना कल्पता है।

32. *Nirgranths* are not allowed to stay in an *Upashraya* in case the path leading to it is through a house.

33. *Nirgranthis* (Jain nuns) can stay in an *Upashraya* whose passage is through a house.

विवेचन : यदि कोई उपाश्रय ऐसे स्थान पर हो जहाँ कि गृहस्थ के घर के बीचोबीच होकर जाना-आना पडे और अन्य मार्ग नही हो, ऐसे उपाश्रय मे साधुओ को नही ठहरना चाहिए, क्योंकि गृहस्थ के अनेक प्रकार के कार्यकलापो के देखने से साधुओ का चित्त चचल या क्षुब्ध हो सकता है। अथवा घर मे रहने वाली स्त्रियाँ क्षोभ को प्राप्त हो सकती हैं। फिर भी साध्वियो को ठहरने का जो विधान सूत्र मे है, उसका अभिप्राय यह है कि निर्दोष निश्रायुक्त उपाश्रय न मिले तो ऐसे उपाश्रय मे साध्वियाँ ठहर सकती है।

Elaboration—Consider an *Upashraya* located at such a place that the path leading to it is through some residential house and there is no other passage to it Then the *Sadhus* should not stay there. It is because his mind may feel perturbed and spiritually dejected when he sees the householder engaged in various household activities The women in the house may also feel perturbed. *Sadhvis* are however, allowed to stay there as provided in this aphorism. When a faultless *Upashraya* in accordance with prescribed code is not available, they can stay in such an *Upashraya*

स्वयं को उपशान्त करने का विधान **RULE FOR KEEPING ONESELF IN EQUANIMITY**

३४. भिक्खु य अहिगरणं कट्टु, तं अहिगरणं विओसवित्ता, विओसवियपाहुडे--

(१) इच्छाए परो आढाएज्जा, इच्छाए परो णो आढाएज्जा।

(२) इच्छाए परो अब्भुट्ठेज्जा, इच्छाए परो णो अब्भुट्ठेज्जा।

(३) इच्छाए परो वंदेज्जा, इच्छाए परो णो वंदेज्जा।

(४) इच्छाए परो संभुंजेज्जा, इच्छाए परो णो संभुंजेज्जा।

(५) इच्छाए परो संवसेज्जा, इच्छाए परो णो संवसेज्जा।

(६) इच्छाए परो उवसमेज्जा, इच्छाए परो णो उवसमेज्जा।

जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा। तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] "उवसमसारं खु सामण्णं।"

३४. भिक्षु को चाहिए कि किसी के साथ अधिकरण (कलह) हो जाने पर उस कलह को उपशान्त करके स्वय सर्वथा कलहरहित हो जाये। जिसके साथ कलह हुआ है–

(१) वह भिक्षु इच्छा हो तो उसका आदर करे, इच्छा न हो तो आदर न करे।

(२) वह इच्छा हो तो उसके सन्मान मे उठे, इच्छा न हो तो न उठे।

(३) वह इच्छा हो तो उसे वन्दना करे, इच्छा न हो तो वन्दना न करे।

(४) वह इच्छा हो तो उसके साथ भोजन करे, इच्छा न हो तो न करे।

(५) वह इच्छा हो तो उसके साथ रहे, इच्छा न हो तो न रहे।

(६) वह इच्छा हो तो उपशान्त हो, इच्छा न हो तो उपशान्त न हो।

जो उपशान्त होता है उसके सयम की आराधना होती है। जो उपशान्त नही होता है उसके संयम की आराधना नही होती है। इसलिए अपने आपको तो उपशान्त कर ही लेना चाहिए।

[प्र.] भन्ते ऐसे क्यो कहा ?

[उ.] (हे शिष्य) **उपशम ही श्रमण–जीवन का सार है।**

34. In case any quarrel or dispute arises with any one, the *Bhikshu* should pacify it and make himself completely devoid of quarrelsome attitude It is immaterial that the person with whom the quarrel has occurred may

(1) respect him or may not respect him

(2) stand up in his honour or may not stand in his honour

(3) salute him or may not salute him

(4) may dine with or may not dine with him.

(5) may stay with him or may not stay with him.

(6) may be pacified or may not be pacified.

One who becomes pacified is a true practitioner of ascetic life. One who is not pacified is not a true practitioner of ascetic conduct. So one should always pacify oneself

[Q.] Reverend Sir ! Why is it so ?

[Ans.] O the blessed ! The essence of ascetic conduct is equanimity.

विवेचन : यद्यपि भिक्षु आत्म-साधना के लिए सयम स्वीकार कर प्रतिक्षण स्वाध्याय, ध्यान आदि संयम-क्रियाओ में अप्रमत्त भाव से विचरण करता है तथापि शरीर, आहार, शिष्य, गुरु, वस्त्र, पात्र, शय्या-सस्तारक आदि के प्रमाद एवं कषाय के कई निमित्त संयमी जीवन में उपस्थित होते रहते है। भाष्यकार ने कलह उत्पत्ति के कुछ निमित्त कारण इस प्रकार बताये है-

(१) शिष्यो के लिए, (२) उपकरणो के लिए, (३) कटु वचन के उच्चारण से, (४) भूल सुधारने की प्रेरणा देने के निमित्त से, (५) परस्पर सयमनिरपेक्ष चर्चा-वार्त्ता एवं विकथाओ के निमित्त से, (६) श्रद्धा-सम्पन्न विशिष्ट कुलो मे गोचरी करने या नहीं करने के निमित्त से इत्यादि।

कलह उत्पन्न होने के बाद भी सयमशील मुनि के सज्वलन (मंद) कषाय के कारण अशान्त अवस्था अधिक समय तक नहीं रहती है। वह सँभलकर आलोचना प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो जाता है।

किन्तु कभी कोई भिक्षु तीव्र कषायोदय मे आकर स्वेच्छावश उपशान्त न होना चाहे तब दूसरे उपशान्त होने वाले भिक्षु को यह सोचना चाहिए कि क्षमापना, शान्ति, उपशान्ति अपने ही वश में है, परवश नहीं। यदि योग्य उपाय करने पर भी दूसरा उपशान्त न हो और व्यवहार मे शान्ति भी न लावे तो उसके किसी भी प्रकार के व्यवहार से पुन अशान्त नहीं होना चाहिए। क्योकि स्वय के पूर्ण उपशान्त एव कषायरहित हो जाने से स्वय की आराधना हो सकती है और दूसरे के अनुपशान्त रहने पर उसकी ही विराधना होती है, दोनों की नहीं। अत भिक्षु के लिए यही जिनाज्ञा है कि वह स्वय पूर्ण उपशान्त हो जाये।

Elaboration—A *Bhikshu* accepts ascetic life in order to practice self-discipline. He spends every moment in various ascetic practices such as study of scriptures, meditation and the like diligently and cautiously Still many situations may arise in ascetic life when he is a bit indolent in respect of his body, his food, his disciple, his teacher, his clothes, his pots, his bed and the like due to slight carelessness or rise of passions. The author of *bhashya* has stated some causes that give rise to the quarrel. They are as follows :

(1) Due to disciples, (2) due to clothes and pots, (3) due to use of harsh words, (4) due to advising others to improve shortcoming, (5) due to discussion or talk not in line with ascetic code, (6) due to going or not going for collecting alms from good, devoted families.

Due to mild passions, the saint following ascetic conduct does not remain in a disturbed state of mind for a long time even after the quarrel or dispute arises. He quietens himself, criticises his misbehaviour, repents for it and thus purifies himself.

Sometimes due to rise of strong passions a *bhikshu* may not like to be pacified. Then the other *bhikshu* who is pacified should think that forgiveness, peace and equanimity is under one's own control and not under control of others. In case even after desired means, the other person does not get pacified and does not adopt peace in his behaviour, he should not feel perturbed by his conduct. He should understood that complete equanimity and freedom from passions is the real state of true ascetic conduct In case the other party remains unpacified, he pollutes his own ascetic discipline and not of both. So it is the order of the Lord that the *bhikshu* should keep himself always in state of equanimity or peace.

विहार सम्बन्धी विधि–निषेध RULES FOR WANDERINGS

३५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा वासावासासु चारए।

३६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हेमन्त–गिम्हासु चारए।

३५. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को वर्षावास में विहार करना नहीं कल्पता है।

३६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में विहार करना कल्पता है।

35. Monks and nuns are not allowed to wander from place to place in rainy season

36. Monks and nuns can move from place to place in summer and winter

विवेचन : वर्षाकाल मे पानी बरसने से भूमि सर्वत्र हरित तृणांकुरादि घास से व्याप्त हो जाती है। अन्य भी छोटे–बडे त्रस जीवो से पृथ्वी भर जाती है, अत सावधानीपूर्वक विहार करने पर भी उनकी विराधना होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त पानी बरसने से मार्ग मे पडने वाले नदी–नाले भी जल–पूर से प्रवाहित रहते हैं, जिन्हे पार करने मे बाधा हो सकती है। विहारकाल मे पानी बरसने से वस्त्र एवं अन्य उपधि के भीगने की भी सम्भावना रहती है, जिससे अप्काय की विराधना सुनिश्चित है, इत्यादि कारणों से वर्षाकाल में चार मास तक एक स्थान पर ही साधु–साध्वियो के रहने का विधान प्रथम सूत्र में किया गया है।

Elaboration—In rainy season the land becomes grassy throughout. The area becomes full of subtle and gross mobile living beings. So there is possibility of violence to them even when one moves cautiously Further, due to rain streams and rivulets falling on the way become completely full upto the top and a great difficulty may arise in crossing them. While

wandering in such a weather clothes and other equipment may also get drenched due to rain and in that case definitely there is violence to water-bodied living beings. Therefore, in the first aphorism, it has been laid down, that during rainy season, *Sadhus* and *Sadhvis* should remain stationed at one place for four months.

वैराज्य–विरुद्ध राज्य में गमनागमन निषेध PROHIBITION ON WANDERING IN LAND OF OPPOSITE RULER

३७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा वेरज्ज-विरुद्धरज्जंसि सज्जं गमणं, सज्जं आगमणं, सज्जं गमणागमणं करित्तए।

जो खलु निग्गंथो वा निग्गंथी वा वेरज्ज-विरुद्धरज्जंसि सज्जं गमणं, सज्जं आगमणं, सज्जं गमणागमणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वि अइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

३७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को वैराज्य और विरोधी राज्य मे शीघ्र जाना शीघ्र आना, और शीघ्र जाना-आना नही कल्पता है।

जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी वैराज्य और विरोधी राज्य मे शीघ्र जाना, शीघ्र आना और शीघ्र जाना–आना करते हैं तथा शीघ्र जाना–आना करने वालो का अनुमोदन करते है, वे दोनों (तीर्थंकर और राजा) की आज्ञा का अतिक्रमण करते हुए अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त स्थान के पात्र होते है।

37. Monks and nuns are not permitted to go, to come to or to wander about quickly in the land of the ruler who does not have good relations with the ruler where they are staying.

They should also not support or appreciate the conduct of such ascetics who wander like this as both of them are transgressing the order established by *Bhagavan* (*Tirthankar*) They are thus liable for punishment of *anudghatik chaturmasik* repentance

विवेचन : निर्युक्तिकार का सन्दर्भ देकर टीकाकार ने वैराज्य का अर्थ किया है–

(१) जिस राज्य में रहने वाले लोगों में पूर्व–पुरुषो से परम्परागत वैर चल रहा हो।

(२) जिन दो राज्यों में वैर उत्पन्न हो गया हो।

(३) जहाँ के मंत्री, सेनापति आदि प्रधान पुरुष राजा से विरुद्ध होकर उसे पदच्युत करने के षड्यन्त्र मे संलग्न हो।

(४) जहाँ का राजा मर गया हो या हटा दिया गया हो ऐसे अराजक राज्य को 'वैराज्य' कहते है।

(५) जहाँ पर दो राजाओं के राज्य में परस्पर गमनागमन प्रतिषिद्ध हो, ऐसे राज्यो को 'विरुद्ध राज्य' कहते है।

इस प्रकार के वैराज्य और विरुद्ध राज्य मे साधु–साध्वियो को विचरने का एव कार्यवशात् जल्दी–जल्दी आने–जाने से अधिकारी लोग साधु को चोर, गुप्तचर या षड्यन्त्रकारी जानकर वध, बन्धन आदि नाना प्रकार

के दु ख दे सकते हैं। अत ऐसे 'वैराज्य' और 'विरुद्ध राज्य' में गमनागमन करने वाला साधु राजा की मर्यादा का उल्लंघन तो करता ही है, साथ ही वह जिनेश्वर देव की आज्ञा का भी उल्लंघन करता है और इसी कारण वह चातुर्मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

निर्युक्तिकार सूत्र के 'गमन', 'आगमन' और 'गमनागमन' पदो की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि विशेष कारणों से उक्त प्रकार के 'वैराज्य', 'विरुद्ध राज्य' मे जाना-आना भी पडे तो पहले सीमावर्ती 'आरक्षक' से पूछे कि हम अमुक कार्य से आपके राज्य के भीतर जाना चाहते हैं, अत जाने की स्वीकृति दीजिये। यदि वह स्वीकृति देने में अपनी असमर्थता बताये तो उस राज्य के नगर-सेठ के पास सन्देश भेजकर स्वीकृति मँगावे। उसके भी असमर्थता प्रकट करने पर सेनापति से, उसके भी असामर्थ्य प्रकट करने पर मंत्री से, उसके भी असामर्थ्य जताने पर राजा के पास सन्देश भेजे कि "हम अमुक कारण-विशेष से आपके राज्य में प्रवेश करना चाहते हैं, अत जाने की स्वीकृति दीजिए और 'आरक्षक जनों' को आज्ञा दीजिए कि वे हमे राज्य में प्रवेश करने दें।" इसी प्रकार आते समय भी उक्त क्रम से ही स्वीकृति लेकर वापस आना चाहिए। गमनागमन के कुछ विशेष कारण इस प्रकार बताये है-

(१) यदि किसी साधु के माता-पिता दीक्षा के लिए उद्यत हो तो उनको दीक्षा देने के लिए।

(२) भक्तपान प्रत्याख्यान (समाधिमरण) का इच्छुक साधु अपने गुरु या गीतार्थ के पास आलोचना के लिए।

(३) रोगी साधु की वैयावृत्य के लिए।

(४) अपने पर क्रुद्ध साधु को उपशान्त करने के लिए।

इसी प्रकार के अन्य कारण उपस्थित होने पर उक्त प्रकार से स्वीकृति लेकर साधु 'वैराज्य' एव 'विरुद्ध राज्य' मे जा-आ सकते है।

Elaboration—Referring to the author of *niryukti*, the commentator has interpreted the word '*Vairajya*' as under ·

(1) The state inhabited by those who have traditional enmity with the ancestors of this state.

(2) Two states who have become inimical to each other

(3) The state whose minister, army chief and the like are against the ruler and are engaged in a plan to dethrone him.

(4) A state whose ruler has died or has been removed and no ruler has yet been appointed. It is called '*Vairajya*'.

(5) The two states which have no commercial dealings among themselves. Such states are called '*Viruddh rajya*'—mutually inimical states.

In case *Sadhus* or *Sadhvis* wander or go at short intervals due to any purpose to such areas which are states without ruler (*vairajya*) or inimical states (viruddh-rajya), the officials may think that such an

ascetic is a thief, spy or rebel and may kill him, chain him and cause him trouble in different ways. Therefore, such a *Sadhu* who wanders in *vairajya* or *viruddh-rajya* not only transgresses the rules of the state but also disobeys the commands of *Tirthanker* He, therefore, is liable for *Chaturmasik Anudghatic prayashchit.*

Explaining the meaning of words *'gaman'* (going), *'agaman'* (coming) and *'gamanagaman'* (going and coming) the author of *niryukti* states that sometimes for special reasons one may have to go to *'Vairajya'* or *'Viruddh-rajya'*. He should then seek permission in advance of the security guard telling him the purpose for which he wants to go there. In case the guard expresses his helplessness in granting the permission, he should try to get permission by sending a message to the councillor (noblemen—*nagar seth*) In case he also expresses his inability, he should seek permission from the army chief In case he also expresses his inability, he should seek permission from the minister. In case minister also expresses his helplessness, he should send message to the king that "we want to enter his kingdom for a special purpose and as such seek permission which may be granted and the security guards may be instructed to allow us to enter." Similarly on return, the permission should be taken in the same order Special reasons for going there may be as follows :

(1) The parents of a *Sadhu* may want to get initiated in monkhood and therefore, the *Sadhu* may have to go there to initiate them.

(2) A *Sadhu* keen for ultimate end of his life in a state of equanimity may desire to go to his spiritual master or elderly monk to repent and criticize his own shortcomings and faults.

(3) A *Sadhu* may like to go there to attend to some other monk who is ill

(4) A *Sadhu* may want to go there to pacify another monk who is angry with him

In case suchlike circumstances arise, a monk can go to *'Vairajya'* or *'Viruddh-rajya'* after securing proper permission in the manner above mentioned.

निमंत्रित वस्त्र आदि ग्रहण करने की विधि METHOD OF ACCEPTING CLOTHES AND THE LIKE

३८. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय आयरियपायमूले ठवेत्ता, दोच्चंपि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए।

३९. निग्गंथं च णं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा, निक्खंतं समाणं केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय आयरियपायमूले ठवित्ता दोच्चंपि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए।

४०. निग्गंथिं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय पवत्तिणीपायमूले ठवित्ता, दोच्चं पि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए।

४१. निग्गंथिं च णं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा, णिक्खंतिं समाणिं केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय पवित्तिणिपायमूले ठवेत्ता, दोच्चंपि उग्गहमणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए।

३८. गृहस्थ के घर में आहार के लिए गये हुए निर्ग्रन्थ को यदि कोई गृहस्थ वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेने के लिए कहे तो उन्हे "साकारकृत" ग्रहण कर, आचार्य के चरणो मे रखकर पुन. उनकी आज्ञा लेकर उन्हें अपने पास रखना और उनका उपयोग करना कल्पता है।

३९. विचारभूमि (मल–मूत्र विसर्जन–स्थान) या विहारभूमि (स्वाध्याय करने का योग्य स्थान) के लिए (उपाश्रय से) बाहर निकले हुए निर्ग्रन्थ को यदि कोई गृहस्थ वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेने के लिए कहे तो वस्त्रादि को "साकारकृत" ग्रहण कर उन्हे आचार्य के चरणो मे रखकर पुन· उनकी आज्ञा लेकर उन्हे अपने पास रखना और उपयोग करना कल्पता है।

४०. गृहस्थ के घर मे आहार के लिए प्रविष्ट निर्ग्रन्थी को यदि कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेने के लिए कहे तो उन्हे "साकारकृत" ग्रहण कर, प्रवर्तिनी के चरणो मे रखकर उनसे पुन आज्ञा लेकर उसे अपने पास रखना और उपयोग करना कल्पता है।

४१. विचार भूमि या स्वाध्याय भूमि के लिए (उपाश्रय से) बाहर जाती हुई निर्ग्रन्थी को यदि कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेने के लिए कहे तो उन्हे "साकारकृत" ग्रहण कर, प्रवर्तिनी के चरणो मे रखकर पुन आज्ञा लेकर उसे अपने पास रखना और उपयोग करना कल्पता है।

38. In case a householder offers cloth, pot, blanket or piece of cloth for cleaning the feet to a monk who has come to his house for collecting food, the monk should take it as *'Sakar-krit'* (subject to the permission of *Acharya* or head monk), and place it at the feet of the *Acharya* to seek his permission. He can keep those articles with him and use them only after the requisite permission has been granted

39. A monk has gone out from the *Upashraya* for discarding stool, urine and the like at a suitable place as prescribed (*vichar bhumi*) or for study of scriptures or self-study (*vihar bhumi*). If on his way, a householder offers him cloth, pot, blanket or piece of cloth for cleaning

the feet, he can accept it only on '*Sakar-krit*'. He should place it before the *Acharya* and seek his permission. After their permission, he can keep them with him and use them.

40. In case a householder offers cloth, pot, blanket or piece of cloth for cleaning the feet to a *nirgranthi* (Jain nun) who has entered his house to collect food, the nun should accept it only as '*Sakar-krit*'. She should place it before the *pravartani* (the head nun) and only after securing her permission, she can keep it and use it.

41. A *Sadhvi* has gone out from the *Upashraya* for discarding stool, urine and the like at suitable place as prescribed in the code or for self-study or study of scriptures at a suitable place. If on her way, a householder offers her cloth, pot, blanket or piece of cloth for cleaning feet, she can accept it only as '*Sakar-krit*'. She should place it before the *pravartini* and only after her permission has been obtained she can keep it and use it.

विवेचन : आचार्य से गोचरी की अनुज्ञा लेकर साधु भिक्षार्थ किसी गृहस्थ के घर मे जाता है, तब वहाँ गृहस्वामी भक्त-पान देकर वस्त्र, पात्रादि लेने के लिए कहे और भिक्षु को उनकी आवश्यकता हो तो यह कहकर लेना चाहिए कि **"यदि हमारे आचार्य आज्ञा देंगे तो इसे रखेंगे अन्यथा तुम्हारे ये वस्त्र, पात्रादि तुम्हें वापस लौटा दिये जायेंगे।"** इस प्रकार कहकर ग्रहण करने को **"साकारकृत"** ग्रहण करना कहा जाता है। साकारकृत कहकर ग्रहण करने का कारण यह है कि गोचरी के लिए आचार्यादि से आज्ञा लेकर जाने पर आहार ग्रहण की ही आज्ञा होती है, अत वस्त्रादि के लिए स्पष्ट कहकर अलग से आज्ञा लेना आवश्यक है। अन्यथा वह चोरी दोष का भागी होता है।

भाष्यकार आचार्यों ने कहा है-दाता द्वारा साधु को 'वस्त्र, पात्रादि' लेने के लिए कहने पर वह उसके पीछे रही उसकी भावना और उद्देश्य को भी समझे। यदि वस्तु निर्दोष हो और दाता की भावना पवित्र हो तो वह अपने आचार्य, गुरु या प्रवर्तक-प्रवर्तिनी की पुन. आज्ञा लेकर ग्रहण कर सकता है।

Elaboration—An ascetic goes out for collecting food from the householders only after seeking permission from his *Acharya*. In case the householder after giving food and water, offers cloth, pot and the like and the ascetic (*Bhikshu*) needs it, he should accept it only with the condition—"If my *Acharya* allows me to keep it, I shall keep it otherwise I shall return your cloth, pot and the like to you Accepting a thing with this prior condition is called accepting as *Sakar-krit* The reason for accepting as *Sakar-krit* is that at the time of going for *gochari* (collection of food), the permission of *Acharya* is obtained only for collecting food. So it is very important to seek permission for collecting cloth and the like by clearly expressing such a desire in the request Otherwise he shall be liable for fault of stealing.

The *Acharyas* who have authored *bhashyas* have stated that the monk should clearly study the feelings and the purpose the householder has in his mind in offering cloth, pot and the like. If the article offered is faultless and the sentiment of the donor is good, the monk or nun can accept them by again securing the permission of *Acharya*, spiritual master, *pravartak* or *pravartini* as the case may be.

आहारादि की गवेषणा का निषेध एवं अपवाद

PROHIBITION AND EXCEPTION IN SEEKING OF FOOD AND THE LIKE

४२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाले वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्तए। नऽन्नत्थ एगेणं पुव्वपडिलेहिएणं सेज्जासंथारएणं।

४३. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाले वा वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कम्बलं वा, पायपुंछणं वा पडिगाहेत्तए। नऽन्नत्थ एगाए हरियाहडियाए। सा वि य परिभुत्ता वा, धोया वा, रत्ता वा, घट्ठा वा, मट्ठा वा, संपधूमिया वा।

४२. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को रात्रि मे या विकाल (सूर्योदय व सूर्यास्त के समय) मे केवल एक पूर्व प्रतिलेखित शय्या-सस्तारक के अतिरिक्त अशन, पान, खादिम और स्वादिम लेना नही कल्पता है।

४३. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को रात्रि मे या विकाल मे केवल एक 'हृताहृतिका' के अतिरिक्त वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोछन लेना नही कल्पता है। वह यदि परिभुक्त, धौत, रक्त, घृष्ट, मृष्ट या सम्प्रधूमित भी कर दिया हो तो भी रात्रि में लेना कल्पता है।

42. During the period between sunrise to sunset monks and nuns can take only the bed already properly examined earlier and not any other thing including food, water and the like.

43. During the night or the period between sunrise and sunset the *nirgranths* and *nirgranthis* cannot accept cloth, pot, blanket or piece of cloth for cleaning feet except a *hritaahritika* (cloth and the like stolen earlier but later being returned to the monk). That cloth, pot, blanket or food-cloth can be take at night even if it has been used, washed, dyed, packed or incensed.

विवेचन : यद्यपि साधु का-उत्सर्ग (सामान्य) नियम तो यही है कि रात में किसी भी पदार्थ को ग्रहण नही करना चाहिए। किन्तु यह सूत्र अपवाद का प्ररूपक है। इसका कारण यह है कि विहार में मार्ग भूलने या मार्ग अधिक लम्बा निकल जाने आदि कारणों से स्थविरकल्पी भिक्षु सूर्यास्त बाद भी योग्य स्थान पर पहुँचकर ठहरते हैं तब उन्हें ठहरने के लिए मकान एवं जीवरक्षा आदि कारणो से पाट संस्तारक आदि रात्रि एवं विकाल मे ग्रहण करना आवश्यक हो जाता है।

कभी सूर्यास्त-पूर्व मकान मिल जाने पर भी आवश्यक पाट गृहस्थ की दुकान आदि से रात्रि के एक-दो घण्टे बाद भी मिलना सम्भव हो तो वह भी रात्रि मे ग्रहण किया जा सकता है।

सूत्र (४३) मे रात्रि मे वस्त्रादि ग्रहण करने का निषेध किया गया है किन्तु ग्रामानुग्राम विचरते समय कोई चोर आदि किसी साधु या साध्वी के वस्त्र, पात्र आदि छीनकर या उपाश्रय से चुराकर ले जावे। कुछ समय बाद उसे यह सद्बुद्धि आ जाये कि 'मुझे साधु या साध्वी का यह वस्त्र आदि चुराना या छीनना नही चाहिए था।' तदनन्तर वह सन्ध्या या रात के समय आकर दे जाये या साधु को दिखाई देने योग्य स्थान पर रख दे तो ऐसे वस्त्र आदि के ग्रहण करने को "**हृताहृतिका**" कहते है। पहले हरी गयी, पीछे आहृत की गयी वस्तु "हृताहृतिका" कही जाती है।

Elaboration—The ordinary rule is that a monk should not accept any thing at night. But this aphorism mentions an exception. It is because a *Sthavirkalpi bhikshu* may reach proper place of stay after sunset due to wandering astray or covering a long distance. Then it becomes necessary for him to accept place for stay and pot and bed for protecting life of living beings at night or during the period between sunrise and sunset.

Sometimes the place for stay becomes available before sunset but the requisite pot is available from the shop of the householder one or two hours after sunset He can accept the same in such circumstances.

In *Sutra* 43, a monk is prohibited from accepting cloth and the like at night But sometimes during the wanderings of the monk, a thief may snatch cloth, pot and the like of a monk or a nun or steal them from the *Upashraya*. In case good sense prevails after sometime and he thinks—'It was not good of me to snatch or steal the cloth and the like of a *Sadhu* or *Sadhvi*' Thereafter he comes at sunset or at night and delivers the same or places it at a place which is visible to the monk Acceptance of such a cloth and the like is called '*hritaahritika*' An article which has been lost first and later re-gained is called '*hritaahritika*'

विशेष शब्दों के अर्थ : परिभुक्त–उस वस्त्र आदि को ले जाने वाले ने यदि उसे ओढने आदि के उपयोग मे ले लिया हो। **धौत**–जल से धो लिया हो। **रक्त**–किसी रग में रग लिया हो। **घृष्ट**–वस्त्र आदि पर के चिह्न–विशेषो को घिसकर मिटा दिया हो। **मृष्ट**–मोटे या खुरदरे कपडे आदि को द्रव्य–विशेष से युक्त कर कोमल बना दिया हो। **सम्प्रधूमित**–सुगन्धित धूप आदि से सुवासित कर दिया हो।

इन उक्त प्रकारो मे से किसी भी प्रकार का वस्त्र आदि यदि ले जाने वाला व्यक्ति रात मे लाकर भी वापस दे तो साधु और साध्वी उसे ग्रहण कर सकते है।

MEANINGS OF SOME WORDS

Paribhukt—A cloth which has been brought in use as a cover or the like by the person who had taken it away. **Dhaut**—That which has been washed with water. **Rakt**—That which has been dyed **Ghrisht**—The cloth and the like whose special marks have been rubbed off. **Mrisht**—A

cloth and the like which was thick and rough but which has been made soft by certain process **Sampra-dhumit**—That which has been made fragrant with an incense.

In case the person who had taken away the pot and the like and after undergoing any of the processes mentioned above, comes at night and returns the same, the monk or nun can accept the same.

रात्रि मे गमनागमन का निषेध PROHIBITION OF WANDERING AT NIGHT

४४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाले वा अद्धाणगमणं एत्तए।

४५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा राओ वा वियाले वा संखडिं वा संखडिपडियाए एत्तए।

४४. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को रात्रि मे या विकाल में मार्ग–गमन करना नहीं कल्पता है।

४५. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को रात्रि मे या विकाल में संखडि के लिए सखडी–स्थल पर (अन्यत्र) जाना भी नही कल्पता है।

44. *Nirgranths* and *nirgranthis* are not allowed to wander at night or between sunrise and sunset.

45. Monks and nuns are not allowed to go at night to a *Sankhadi* (Place where food is being distributed)

विवेचन : रात्रि या सन्ध्याकाल में गमन करने पर ईर्यासमिति का पालन नही हो सकता है और उसका पालन न होने से सयम की विराधना तथा आत्म–विराधना होती है एव अनेक प्रकार के दोषो की सभावना रहती है।

दूसरे सूत्र मे संखडी में जाने का निषेध है। विशाल भोज या जीमनवार–विशेष को संखडी कहते है, उसमे मुख्य दिन आसपास के सभी ग्रामवासियो को आने के लिए निमन्त्रण दिया जाता है। उस क्षेत्र मे रहे हुए भिक्षु को उस दिन अन्यत्र कही भिक्षा प्राप्त होना दुर्लभ हो जाता है। ऐसी परिस्थिति मे आचाराग, श्रु २, अ १, उ २ के विधान अनुसार दो कोस के भीतर की सखडी में से जनसमूह के आने के पूर्व भिक्षु गोचरी ला सकता है।

अत. उक्त परिस्थिति में दो कोस के भीतर की सखडी मे से भिक्षा लाने के सकल्प से कोई भिक्षु सूर्योदय पूर्व अपने स्थान से निकलकर वहाँ सूर्योदय बाद भिक्षा ग्रहण करने हेतु जाना चाहे तो उसका प्रस्तुत सूत्र मे निषेध किया है।

Elaboration—In case one wanders at night or at sunset, he cannot observe strictly the rules of proper care in walking (*Irya Samiti*) Thus the restraints of ascetic conduct are not properly followed and this conduct affects self-discipline Further, there is possibility of many types of faults being committed.

In the second aphorism, one is prohibited from going to a *sankhadi* A grand feast or serving of food is called *Sankhadi* In it, on a particular day all the residents of the village in the neighbourhood are invited. So it

is difficult for a *bhikshu* to get food from any other house that day. In such circumstances, it has been laid down in *Acharanga*, Part II, Chapter 1, *Uddeshak* (lecture) 2 that a *bhikshu* can go for collecting alms to a *Sankhadi* before the general public goes there provided the *Sankhadi* is within two *Kos* (four miles) from his place of stay.

In the above said circumstances, a bhikshu may like to start from his place before sunrise with a desire to collect alms from the Sankhari, which is within four miles from his place Such a conduct has been forbidden in this Sutra.

रात्रि में अकेले जाने का निषेध PROHIBITION OF GOING ALONE DURING NIGHT

४६. नो कप्पइ निग्गंथस्स एगाणियस्स राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा। कप्पइ से अप्पबिइयस्स वा अप्पतइयस्स वा राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

४७. नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा। कप्पइ से अप्पबिइयाए वा अप्पतइयाए वा अप्पचउत्थीए वा राओ वा वियाले वा बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

४६. अकेले निर्ग्रन्थ को रात्रि मे या विकाल मे उपाश्रय से बाहर की विचार भूमि या विहार भूमि मे जाना–आना नही कल्पता है। उसे एक या दो साधुओ को साथ लेकर रात्रि मे या विकाल मे उपाश्रय की सीमा से बाहर की विचार भूमि या विहार भूमि मे जाना–आना कल्पता है।

४७. अकेली निर्ग्रन्थी को रात्रि मे या विकाल मे उपाश्रय से बाहर की विचार भूमि या विहार भूमि मे जाना–आना नही कल्पता है। एक, दो या तीन साध्वियो को साथ लेकर रात्रि मे या विकाल मे उपाश्रय से बाहर की विचार भूमि या विहार भूमि मे जाना–आना कल्पता है।

46. A monk is not allowed to go alone at night or between sunset and sunrise to *Vichar bhumi* (the land where stool and the like is to be discarded) or to *Vihar bhumi* (the place of study) located outside the *Upashraya* He can go there with one or two monks

47. A Jain nun is not allowed to go alone at night or between sunset and sunrise to *Vichar bhumi* or to *Vihar bhumi*, which is away from *Upashraya* She can, however, go there with one, two or three nuns.

विवेचन : रात्रि के समय या सन्ध्याकाल मे यदि किसी साधु को मल–मूत्र–विसर्जन के लिए तथा स्वाध्याय के लिए जाना आवश्यक हो तो उसे अपने स्थान से बाहर अकेला नही जाना चाहिए। उपाश्रय का भीतरी भाग एव उपाश्रय के बाहर सौ हाथ का क्षेत्र उपाश्रय की सीमा मे गिना गया है, उससे दूर (आगे) जाने की अपेक्षा से सूत्र में **'बहिया'** शब्द का प्रयोग किया गया है। रात्रि में अकेले जाने मे अनेक आपत्तियो एवं आशंका की सम्भावना रहती है। यथा–

(१) सर्प आदि के काटने से, मूर्च्छा आने से या कोई टक्कर लगने से कहीं गिरकर पड सकता है। (२) चोर, ग्रामरक्षक आदि पकड सकते हैं एवं मारपीट कर सकते है, इत्यादि अनेक कारणो से रात्रि मे अकेले भिक्षु को मल त्यागने एवं स्वाध्याय करने के लिए उपाश्रय की सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिए।

आचारांग आदि आगमो में विधान है मल-मूत्र आदि शरीर के स्वाभाविक वेगो को रोकना नहीं चाहिए। अत. रात्रि मे भी साधु को बाहर जाना पडता है तथा उपाश्रय में स्वाध्याय योग्य स्थान न होने पर स्वाध्याय हेतु रात्रि में बाहर गमनागमन किया जा सकता है। इस स्थिति मे उक्त नियम के अनुसार अकेला नहीं जाना चाहिए।

भाष्यकार ने बताया है कि कुछ विशेष परिस्थिति मे साथी साधुओ को सूचित करके सावधानी रखते हुए साधु अकेला भी जा सकता है। किन्तु साध्वियो को किसी प्रकार के अपवाद में भी अकेले जाना उचित नहीं है, अत. कोई विशेष परिस्थिति हो तो श्राविका या श्रावक को साथ मे लेकर जाना ही श्रेयस्कर होता है।

Elaboration—In case a monk has to go out at night or at sunset for discarding stool or for self-study, he should not go alone from his place of stay. The area within the *Upashraya* and upto hundred *haath* (a measure) is considered to be within its boundary. The word *'bahiya'* (beyond) is used to indicate the land beyond these limits Many troubles may arise if one goes alone at night namely ·

(1) One can fall down due to snake-bite, epilepsy or due to colliding against some thing. (2) Thieves or security guards of the village may catch him and beat him. In view of suchlike possibilities, a *bhikshu* should not go out alone at night from the *Upashraya* for discarding stool, for call of nature or for self-study.

It is mentioned in *Acharanga* and other *Agams* that one should not subdue the instinctive urges such as call of nature Therefore, a *Sadhu* may have to go out even at night. Further, in case there is no proper place for self-study in the *Upashraya*, a *Sadhu* can go out for it. In such a situation, keeping in view this rule, he should not go out alone

It has been stated by the commentator that in special circumstances a monk can go out after informing his fellow monks and observing necessary precautions. But it is not proper for nuns to go out alone under any circumstances. So in case any special situation arises, a nun should go only after having a male householder or a female householder (*Shravika*) to accompany her.

आर्यक्षेत्र में विचरण करने का विधान **PROCEDURE FOR WANDERING IN CULTURED LAND**

४८. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, पुरत्थिमेणं जाव अंग-मगहाओ एत्तए, दक्खिणेणं जाव कोसम्बीओ एत्तए, पच्चत्थिमेणं जाव थूणाविसया एत्तए, उत्तरेणं जाव कुणालाविसयाओ एत्तए। एयावयाव

कप्पइ, एयावयाव आरिए खेत्ते। नो से कप्पइ एत्तो बहिं, तेण परं जत्थ नाण-दंसण-चरित्ताइं उस्सप्पन्ति। त्ति बेमि।

४८. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को पूर्व दिशा मे अग-मगध तक, दक्षिण दिशा मे कोशाम्बी तक, पश्चिम दिशा मे स्थूणा देश तक और उत्तर दिशा मे कुणाल देश तक जाना कल्पता है। इतना ही आर्यक्षेत्र है। इससे बाहर जाना नहीं कल्पता है। तदुपरान्त जहाँ ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की वृद्धि होती हो वहाँ विचरण करे।

48. *Nirgranths* and *nirgranthis* can wander upto Magadh in Ang state in the east, Kaushambi in the south, Sthuna state in the west and Kunal state in the north. The area falling in between these limits is Arya Kshetra. They are not allowed to go beyond it. Other these, they should wander only in that area where there is likelihood of progress in right knowledge, right perception and right conduct.

विवेचन : इस भरतक्षेत्र के साढे पच्चीस आर्य देश प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे बताये है। उनके नाम इस प्रकार है-

(१) मगध, (२) अग, (३) बंग, (४) कलिंग, (५) काशी, (६) कौशल, (७) कुरु, (८) सौर्य, (९) पाचाल, (१०) जागल, (११) सौराष्ट्र, (१२) विदेह, (१३) वत्स, (१४) संडिब्भ, (१५) मलय, (१६) वच्छ (वतन), (१७) अच्छ, (१८) दशार्ण, (१९) चेदि, (२०) सिन्धु-सौवीर, (२१) सूरसेन, (२२) भृग, (२३) कुणाल, (२४) कोटिवर्ष, (२५) लाढ और (२५ ५) केकय अर्ध।

प्रकृत सूत्र मे इनकी सीमा रूप से, पूर्व दिशा मे-अग देश (राजधानी चम्पानगरी) से मगध देश (राजधानी राजगृह) तक, दक्षिण दिशा मे-वत्स देश (राजधानी कोशाम्बी) तक। पश्चिम दिशा में-स्थूणा देश तक। उत्तर दिशा मे-कुणाल देश (राजधानी श्रावस्ती नगरी) तक जाने का विधान साधु-साध्वियो के लिए किया गया है। इसका कारण यह बतलाया गया कि इन चारो दिशाओ की सीमा के भीतर ही तीर्थंकरो के जन्म निष्क्रमण आदि की महिमा होती है, यही पर केवलज्ञान-दर्शन को उत्पन्न करने वाले सर्वत्र-सर्वदर्शी तीर्थंकरादि महापुरुष धर्म का उपदेश देते है।

इसके अतिरिक्त यहाँ पर साधु-साध्वियो को निर्दोष, कल्पमर्यादानुसार भक्त-पान एवं उपधि सुलभता से प्राप्त हो सकती है और यहाँ के श्रावक जन या अन्य लोग साधु-साध्वियो के आचार-विचार के ज्ञाता होते हैं। अत उन्हे इन आर्यक्षेत्रो मे ही विहार करना चाहिए।

परिस्थितियो के परिवर्तन व धर्म-प्रभावना की विशेष सभावना को ध्यान मे रखकर अन्तिम सूत्राश मे यह कहा गया है कि **'क्षेत्रमर्यादा एवं कल्पमर्यादा इस प्रकार से होते हुए भी जब जहाँ विचरण करने से संयम गुणों का विकास हो वहीं विचरण करना चाहिए।'** आचाराग २, अ ३ मे इसका स्पष्ट उल्लेख है। इससे पता चलता है, उस काल की परिस्थिति के अनुसार यह सामान्य नियम है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—It has been mentioned in the first *pad* (chapter) of *Prajnapana Sutra* that only twenty five and a half states in *Bharat* are termed as *Arya* states They are as follows—

(1) Magadh, (2) Ang, (3) Bang, (4) Kaling, (5) Kashi, (6) Kaushal, (7) Kuru, (8) Saurya, (9) Panchal, (10) Jaangal, (11) Saurashtra, (12) Videh, (13) Vatsa, (14) Sandibbh, (15) Malay, (16) Vacch, (17) Achh, (18) Dasharn, (19) Chedi, (20) Sindhu-Sauvir, (21) Soor–Sen, (22) Bhring, (23) Kunal, (24) Kotivarsh, (25) Ladh, and (25.5) Ardh (Half) Kaikeya.

In the present aphorism, the limits in the east–from Ang state (its capital is Champa) to Magadh state (its capital is Rajagriha), in the south upto Vatsa state (its capital is Kaushambi), in the west upto Sthuna state and in the north upto Kunal state (its capital is Shravasti) have been earmarked for the movements of *Sadhus* and *Sadhvis* The reason for these limits is that the *Tirthankars* are born in the area within these limits, they initiate themselves in monkhood in this way area and they deliver spiritual discourse only in this area after attaining perfect knowledge (Omniscience) and perfect perception (*Keval Darshan*)

Further, monks and nuns can easily find faultless food and water in accordance with the procedure laid down in the spiritual code. The residents and the *Shravaks* (householder devotees) of this area are familiar about the spiritual learning and conduct of monks and nuns So they should wander only in *Arya Kshetra*

Keeping in view likely change in circumstances and special possibility of spiritual progress it is mentioned in the last aphorism that in spite of the limits about the area and period for wanderings, they (monks and nuns) should wander in such a way that it may result in development of their qualities of spiritual restraints It is clearly stated in *Acharanga*, Part II, Chapter 3 This fact indicates that this was the general rule at that time keeping in view the then prevailing circumstances

● FIRST UDDESHAK CONCLUDED ●

द्वितीय उद्देशक
SECOND UDDESHAK

धान्ययुक्त उपाश्रय में रहने के विधि-निषेध

PROVISION FOR STAYING NON-STAYING IN UPASHRAYA CONTAINING FOOD-GRAINS

१. उवस्सयस्स अंतोवगडाए (१) सालीणि वा, (२) वीहीणि वा, (३) मुग्गाणि वा, (४) मासाणि वा, (५) तिलाणि वा, (६) कुलत्थाणि वा, (७) गोधूमाणि वा, (८) जवाणि वा, (९) जवजवाणि वा, उक्खित्ताणि वा, विक्खित्ताणि वा, विइगिण्णाणि वा, विप्पइण्णाणि वा नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

२. अह पुण एवं जाणेज्जा-नो उक्खित्ताइं, नो विक्खित्ताइं, नो विइकिण्णाइं, नो विप्पइण्णाइं। रासिकडाणि वा, पुंजकडाणि वा, भित्तिकडाणि वा, कुलियाकडाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा, पिहियाणि वा। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हेमन्त-गिम्हासु वत्थए।

३. अह पुण एवं जाणेज्जा-नो रासिकडाइं, नो पुंजकडाइं, नो भित्तिकडाइं, नो कुलियाकडाइं। कोट्ठाउत्ताणि वा, पल्लाउत्ताणि वा, मंचाउत्ताणि वा, मालाउत्ताणि वा, ओलित्ताणि वा, विलित्ताणि वा, पिहियाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा वासावासं वत्थए।

१. उपाश्रय के भीतरी भाग (सीमा) में (१) शालि, (२) व्रीहि, (३) मूँग, (४) उडद, (५) तिल, (६) कुलथ, (७) गेहूँ, (८) जौ, या (९) ज्वार अव्यवस्थित रखे हो या जगह-जगह रखे हो, या बिखरे हुए हो या अत्यधिक बिखरे हुए हो तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को वहाँ **'यथालन्दकाल'** (क्षणभर) भी रहना नही कल्पता है।

२. यदि यह जाने कि ये शालि यावत् ज्वार आदि उपाश्रय मे उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, व्यतिकीर्ण और विप्रकीर्ण नही है। किन्तु राशिकृत, पुजकृत, भित्तिकृत, कुलिकाकृत, लाछित, मुद्रित या पिहित है तो हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे वहाँ रहना कल्पता है।

३. यदि यह जाने कि शालि यावत् ज्वार उपाश्रय के भीतर राशिकृत, पुजकृत, भित्तिकृत या कुलिकाकृत नहीं है, किन्तु कोठे मे या पल्य में भरे हुए हैं, मंच पर या माले पर सुरक्षित है, मिट्टी या गोबर से लिपे हुए है, ढँके हुए, चिह्न किये या मुहर लगे है तो साधु-साध्वी को वहाँ वर्षावास मे रहना कल्पता है।

1. *Nirgranths* and *nirgranthis* should not stay even for a moment (*Yathaland kaal*) in an *Upashraya* in case (1) paddy, (2) *vrihi*, (3) *moong*, (4) *urad*, (5) *til*, (6) *kulath*, (7) wheat, (8) barley or (9) *Jawaar* are lying scattered, are stored at many places or are kept improperly.

2. In case the monk or nun finds that paddy up to *Jawaar* in the *Upashraya* is not lying scattered, thrown aside or badly stored and that it is properly stored in round heaps (*rashi-krit*), in long heaps (*punj-krit*) or is stored along the wall (*bhitti-krit*) or is kept in square or round pots (*kulika-krit*) or it is kept in a heap and marked by ash and the like (*laanchhit*) or it is plastered with cow-dung covered and marked with a seal (*mudrit*) or covered with a bamboo mat, basket, plate or cloth (*pihit*), he or she can stay there during summer and winter.

3. In case the monk or nun comes to know that in the *Upashraya* the paddy up to *Jawaar* is not *rashi-krit, punji-krit, bhitti-krit* or *kulika-krit* but it is packed in earthen jars, in round bamboo pots (*palya*) and plastered at the top with earth or stored in big heaps (*machaan*) made of bamboo and plastered from outside with cow-dung and earth (*manch*) or is properly stored and the door of the upper storey is kept closed and that the said store-house is properly plastered with cow-dung and earth, is covered and earmarked with a seal, then the monks or nuns as the case may be can stay there for (four months) in rainy season

विवेचन : प्रस्तुत सूत्रो मे धान्य रखे हुए मकानो की तीन स्थितियो का कथन किया है-(१) प्रथम स्थिति है-जिस मकान मे सर्वत्र धान्य बिखरा हुआ हो, वह मकान पूर्णतया अकल्पनीय होता है। (२) दूसरी स्थिति है-जिस मकान मे धान्य व्यवस्थित रखा हुआ है उसमे हेमन्त या ग्रीष्म ऋतु मे विचरण करते हुए ठहरा जा सकता है। (३) तीसरी स्थिति है-जिस मकान मे धान्य सर्वथा व्यवस्थित रखा हुआ हो वहाँ चातुर्मास किया जा सकता है।

भाष्यकार के अनुसार यथालंदकाल तीन प्रकार का होता है। जघन्य-गीले हाथ की रेखाएँ सूखने मे जितना समय लगे उतना अत्यल्प समय। उत्कृष्ट-पाँच दिन-रात या २९ दिन। इनके बीच का समय मध्यम समझना चाहिए।

उक्त प्रकार के स्थान पर ठहरने से सचित्त आदि बीजो की विराधना होती है और धान्यो पर चलने से, फिसलने से, गिरने से आत्म-विराधना भी हो सकती है।

Elaboration—In the present aphorisms, three types of houses where food-grains are stored have been discussed—(1) The first state is of that house where the food-grain is scattered throughout That house is totally not acceptable for stay of monks and nuns (2) The second state is of that house where the grain is properly kept Here they can stay in summer and winter during their wanderings (3) The third state is of that house where the food-grain has been stored in a totally well-arranged manner. Monks and nuns can stay for chaturmas at such a place.

According to the author of *bhashya 'Yathaland Kaal'* is of three types. Its minimum duration is very little—the period taken by the lines of

water in a wet hand to dry up. Its maximum duration is five days and five nights or upto 29 days. The period in between these limits should be considered as medium period.

In case one stays at such a place, it causes violence to seeds that have the capacity to germinate (*Sachitt*). Further, in moving on food-grains, one may slip and fall down and thus disturb practices of self-realisation.

विशेष शब्दों के अर्थ : **अंतोवगडा**–उपाश्रय के भीतर ठहरने का स्थान। **राशिकृत**–गोलाकार राशि बनी हो। **पुंजकृत**–लम्बी राशि बनी हो। **भित्तिकृत**–भीत के सहारे रखे हो। **कुलिकाकृत**–मिट्टी के चौकोर या गोल पात्र में रखे हो। **लांछित**–एकत्र कर राख आदि से चिन्हित किये हो। **मुद्रित**–गोबर आदि से लिपे हों। **पिहित**–बाँस की चटाई, टोकरी, थाली, वस्त्र आदि से ढँके हों। **कोठा**–गोबर मिट्टी की बनी कोठी। **पल्या**–बाँस का बना गोलाकार पात्र जिस पर गोबर-मिट्टी का लेप किया हो। **मंच**–मचान पर बाँस की खपच्चियों से निर्मित जिस पर गोबर-मिट्टी लिपी हो। **माला गुप्त**–मकान के ऊपरी मंजिल के द्वार आदि को बन्द कर रखा हो।

प्राचीन समय मे धान्य आदि का उक्त विधियो से सुरक्षित भण्डार रखा जाता था।

MEANINGS OF SPECIAL WORDS

Antovagada—Place of stay in the *Upashraya*. **Rashi-krit**—Stored in shape of round heap. **Punj-krit**—Kept in shape of long heap. **Bhitti-krit**—Kept along the wall. **Kulika-krit**—Kept in round or square pots of earth. **Laanchhit**—Collected at one place and marked with earth and the like **Mudrit**—Plastered with cow-dung and the like. **Pihit**—Covered with bamboo mat, basket plate, cloth and the like. **Kotha**—A big storage made of clay and cow-dung **Palya**—A round pot made of bamboo and plastered from outside with clay and cow-dung. **Manch**—A bamboo tower plastered with clay and cow-dung for storage. **Mala gupt**—The door of upper storey of the storehouse kept closed.

In ancient times, the food-grains were stored in the above mentioned manner.

सुरायुक्त मकान में रहने का विधि-निषेध

PROVISION FOR STAYING OR NON-STAYING IN A HOUSE WHERE INTOXICANT DRINKS ARE STORED

४. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सुरा–वियड–कुम्भे वा, सोवीर–वियड–कुम्भे वा, उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, सेसन्तरा छेए वा परिहारे वा।

४. (नियम) उपाश्रय के भीतर सुरा–चावल आदि की पीठी से बनी मदिरा और सौवीर–(दाख, महुआ, खजूर आदि से बना मद्य) से भरे कुम्भ रखे हुए हो तो निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को वहाँ 'यथालन्दकाल' भी रहना नही कल्पता है।

(अपवाद) कदाचित् गवेषणा करने पर अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात रहना कल्पता है, किन्तु एक या दो रात्रि से अधिक रहना नहीं कल्पता है।

(प्रायश्चित्त) जो वहाँ एक या दो रात से अधिक रहता है, वह संतरा–छेद–मध्यावधि में हुए मर्यादा–उल्लघन रूप दोष के कारण दीक्षा–छेद या तप रूप यथोचित प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

4. (General Rule) Wine prepared from rice paste and the like (*Sura*) or wine prepared from grapes, *mahua*, palm fruit and the like (*Sauvir*) is stored in pitchers in an *Upashraya*. The monks and nuns are not allowed to stay there even for *Yathaland Kal* (a moment)

(Exception) In case even after strenuous efforts no other *Upashraya* is available for stay, they can halt there for a day or two but they are not permitted to stay there for more than one or two nights.

(Prayashchit—Expiation) Any monk or nun who stays there for more than one or two nights is liable for punishment of break in ascetic period or repentance in the form of austerities due to transgression of limits prescribed for the stay (*Santara Chhed*) in the intervening period.

जलयुक्त उपाश्रय में रहने का विधि–निषेध

PROVISION OF STAYING OR AVOIDING UPASHRAYA WHERE WATER IS STORED

५. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सीओदग–वियडकुम्भे वा, उसिणोदग–वियडकुम्भे वा, उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

५. (नियम) उपाश्रय के भीतर शीतोदक विकृत–अचित्त शीतल जल या उष्णोदक–विकृत–प्रासुक उष्ण जल के भरे हुए कुम्भ रखे हों तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को वहाँ 'यथालन्दकाल' भी रहना नही कल्पता है।

(अपवाद) कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात रहना कल्पता है, किन्तु एक या दो रात्रि से अधिक रहना नहीं कल्पता है।

(प्रायश्चित्त) जो वहाँ एक या दो रात से अधिक रहता है वह मर्यादा–उल्लंघन के कारण दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

5. (General Rule) In case pitchers containing cold *achitt* water or hot water, which is *prasuk* (worthy of being accepted by ascetics) is stored, monks or nuns cannot stay there even for *Yathaland Kaal* (very short duration).

(Exception) In case even after strenuous efforts, no other suitable *Upashraya* is available for stay, they can stay there for a night or two. But they cannot stay for a longer period than one or two nights

(Prayashchit—Expiation) The monk or nun who stays there for more than one or two nights transgresses the limits of the order and is therefore liable for break in the period of ascetic restraint or undertaking austerities as expiation (*prayashchit*).

अग्नि या दीपकयुक्त उपाश्रय में रहने के विधि-निषेध

PROVISION FOR STAYING OR AVOIDING UPASHRAYA WHERE FIRE OR LAMP IS LIT

६. उवस्सयस्स अंतोवगडाए, सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

७. उवस्सयस्स अंतोवगडाए, सव्वराइए पईवे दिप्पेज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

६. (नियम) उपाश्रय के भीतर सारी रात अग्नि जले तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को वहाँ 'यथालन्दकाल' भी रहना नही कल्पता है।

(अपवाद) कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात रहना कल्पता है, किन्तु एक या दो रात्रि से अधिक रहना नही कल्पता।

(प्रायश्चित्त) जो वहाँ एक या दो रात से अधिक रहता है, वह मर्यादा-उल्लघन के कारण दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

७. (नियम) उपाश्रय के भीतर सारी रात दीपक जले तो निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को वहाँ 'यथालन्दकाल' भी रहना नही कल्पता है।

(अपवाद) कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय मे एक या दो रात रहना कल्पता है, किन्तु एक या दो रात्रि से अधिक रहना नही कल्पता है।

(प्रायश्चित्त) जो वहाँ एक या दो रात से अधिक रहता है वह मर्यादा-उल्लंघन के कारण दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

6. (General Rule) In case fire burns throughout the night, monks or nuns are not allowed to stay there even for a short period.

(Exception) In case even after great efforts, no other suitable *Upashraya* is available, they can stay there for one or two nights. But under any circumstances, they cannot stay there for more than one or two nights.

(Prayashchit—Expiation) The monk or nun who stays there for more than one or two nights transgresses the limits prescribed and is, therefore, liable for break in the life of ascetic restraint or undergoing austerities as punishment (*prayashchit*)

7. (General Rule) In case a lamp burns throughout the night, monks or nuns are not allowed to stay there even for a short period.

(Exception) In case even after great efforts, no other suitable *Upashraya* is available, they can stay there for one or two nights But under any circumstances, they cannot stay there for more than one or two nights

(Prayashchit—Expiation) The monk or nun who stays there for more than one or two nights transgresses the limits prescribed and is, therefore, liable for break in the life of ascetic restraint or undergoing austerities as punishment (*prayashchit*)

विवेचन : जिस मकान मे सारी रात या दिन-रात अग्नि जलती हो, जैसे कुम्भकारशाला या लोहारशाला आदि में भिक्षु को ठहरना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण रात्रि या दिन-रात जहाँ दीपक जलता हो, वह स्थान भी अकल्पनीय है।

अग्नि या दीपक युक्त स्थान में ठहरने के दोष-

(१) अग्नि के या दीपक के निकट से गमनागमन करने मे अग्निकाय के जीवो की विराधना होती है। (२) हवा से कोई उपकरण अग्नि मे पडकर जल सकता है। (३) दीपक के कारण आने वाले त्रस जीवो की विराधना होती है। (४) शीत-निवारण करने का सकल्प उत्पन्न हो सकता है इत्यादि।

Elaboration—Consider a house such as brick-kiln of a potter or a kiln of a blacksmith where fire burns throughout the day and the night. A *bhikshu* is not permitted by the code to stay there. Similarly, he has to

discard that house where lamp is lit throughout the night or all the twenty-four hours.

Faults of staying in house that has fire or burning lamp—(1) Violence to fire-bodied living beings is caused when one moves near the fire or a burning lamp. (2) Any article may fall in the fire due to blowing wind and thus get burnt. (3) Due to burning lamps, mobile living beings such as moths may come near it and get burnt. (4) A feeling may arise in the mind to make use of fire for avoiding cold.

खाद्य–पदार्थयुक्त मकान में रहने के विधि–निषेध

RULES REGARDING STAY IN UPASHRAYA CONTAINING EATABLES

८. उवस्सयस्स अंतोवगडाए पिण्डए वा, लोयए वा, खीरं वा, दहिं वा, नवणीयं वा, सप्पिं वा, तेल्ले वा, फाणियं वा, पूवं वा, सक्कुली वा, सिहरिणी वा उक्खित्ताणि वा, विक्खित्ताणि वा, विइगिण्णाणि वा, विप्पइण्णाणि वा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

९. अह पुण एवं जाणेज्जा—नो उक्खित्ताइं, नो विक्खित्ताइं, नो विइकिण्णाइं, नो विप्पइण्णाइं। रासिकडाणि वा, पुंजकडाणि वा, भित्तिकडाणि वा, कुलियाकडाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा, पिहियाणि वा कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीणं वा हेमंत–गिम्हासु वत्थए।

१०. अह पुण एवं जाणेज्जा—नो रासिकडाइं जाव नो कुलियाकडाइं, कोट्ठाउत्ताणि वा, पल्लाउत्ताणि वा, मंचाउत्ताणि वा, मालाउत्ताणि वा, कुंभिउत्ताणि वा, करभिउत्ताणि वा, ओलित्ताणि वा, विलित्ताणि वा, पिहियाणि वा, लंछियाणि वा मुद्दियाणि वा कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा वासावासं वत्थए।

८. उपाश्रय के भीतर मे पिण्डरूप खाद्य, मावा आदि, दूध, दही, नवनीत, घृत, तेल, गुड, मालपुए, पूडी और श्रीखण्ड (आदि)–उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, व्यतिकीर्ण और विप्रकीर्ण हो तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को वहाँ 'यथालन्दकाल' रहना भी नहीं कल्पता है।

९. यदि यह जाने कि (उपाश्रय में पिण्डरूप खाद्य यावत् श्रीखण्ड) उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, व्यतिकीर्ण या विप्रकीर्ण नहीं है, किन्तु राशिकृत, पुजकृत, भित्तिकृत, कुलिकाकृत तथा लांछित, मुद्रित या पिहित है तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को वहाँ हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे रहना कल्पता है।

१०. यदि यह जाने कि (उपाश्रय के भीतर पिण्डरूप खाद्य यावत् श्रीखण्ड) राशिकृत यावत् कुलिकाकृत नहीं है, किन्तु कोठे मे या पल्य में भरे हुए है, मच पर या माले पर सुरक्षित है, कुम्भी या बोधी में धरे हुए हैं, मिट्टी या गोबर से लिप्त है, ढँके हुए, चिह्न किये हुए है या मुहर लगे हुए हैं तो वहाँ वर्षावास रहना कल्पता है।

8. A monk or nun cannot stay even for a short period (*Yathaland kaal*) in an *Upashraya* where eatables, milk, curd, milk products, butter, *ghee*, oil, sugar, *maalpuye, puris,* or *shrikhand* and the like are lying scattered, placed indifferently or are badly stored.

9. In case he or she knows that the eatables up to *shrikhand* are not lying scattered or badly stored but they are properly stored in round heaps, long heaps, stored along the wall or are kept in square or round pots or in a heap marked properly by ash and the like or the cover is plastered with cow-dung and round and marked with a seal, or are covered with bamboo mat, basket, plate or cloth, he or she can stay there during summer and winter.

10. In case he or she finds that the eatables up to *shrikhand* are not in heaps up to kept in round or square pots but they are packed in earthen jars, in round bamboo pots plastered with mud at the top or stored in big bamboo towers plastered from outside with cow-dung and mud or properly stored with the door of the upper storey kept closed and the storehouse is properly plastered with cow-dung and mud and covered and earmarked with a seal, the monk or nun can stay there for four months in rainy season.

विवेचन : खाद्य–पदार्थयुक्त उपाश्रय में ठहरने पर लगने वाले दोष–(१) खाद्य–पदार्थों वाले मकान मे कीडियो की उत्पत्ति ज्यादा होती है। (२) चूहे, बिल्ली आदि भी भ्रमण करते है। (३) असावधानी से पशु–पक्षी आकर खा सकते है। (४) उन्हे खाते हुए रोकने एव हटाने मे अन्तराय दोष लगता है एव न हटाने पर मकान का स्वामी रुष्ट हो सकता है अथवा साधु के ही खाने की आशका कर सकता है। (५) कभी कोई क्षुधातुर या रसासक्त भिक्षु का मन खाने के लिए चलित हो सकता है एव खा लेने पर अदत्त दोष लगता है। (६) खाद्य–पदार्थों की सुगन्ध या दुर्गन्ध से अनेक शुभाशुभ सकल्प हो सकते है, जिससे कर्मबन्ध होता है इत्यादि। *(भाष्यानुसार विवेचन, पृष्ठ १६४)*

Elaboration—Faults due to stay in Upashray containing eatables— (1) Ants germinate in large number in a house containing eatables (2) Cats and rats move there (3) Due to a little lack of care, animals and birds may eat the material. (4) When one stops them from eating, he incurs fault of causing obstruction (*Antaraya*) In case he does not stop them from eating, the owner of the house may get angry or he may doubt that the monk or the nun might have eaten it (5) Sometimes a starving *bhikshu* or one, who has attachment for taste, may think of eating that material. In case he or she actually eats it, he shall be liable of fault of stealing (6) Good or bad thoughts may arise in the mind due to good or bad smell coming out from eatables and these thoughts may cause *karmic* bondage *(see page 164 of Bhashya)*

धर्मशाला आदि में ठहरने का विधि–निषेध RULES FOR STAYING OR NON-STAYING IN DHARAMSHALA

११. नो कप्पइ निग्गंथीणं अहे आगमणगिहंसि वा, वियडगिहंसि वा, वंसीमूलंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, अब्भावगासियंसि वा वत्थए।

धान्यादि युक्त उपाश्रय

चित्र परिचय-१२

Illustration No. 12
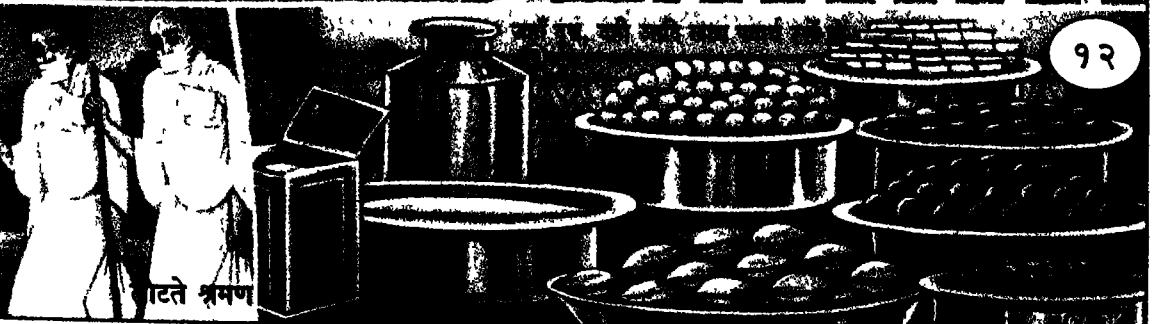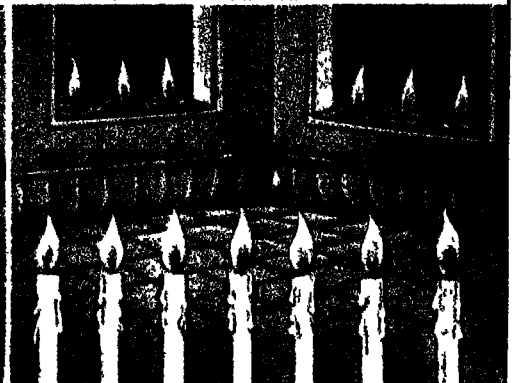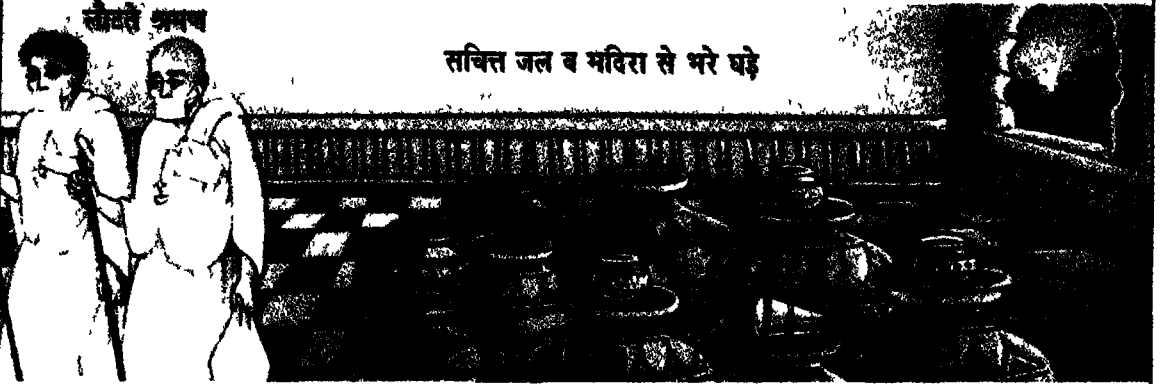
धान्यादि युक्त उपाश्रय

निम्न प्रकार के स्थान (उपाश्रय) रहने योग्य नही है। जैसे-

१ जिस स्थान के भीतर गेहूँ, चावल, मूँग, तिल आदि धान्य जमीन पर बिखरा पडा हो। जहाँ बाजरा, ज्वार, गेहूँ आदि टोकरियो मे, मिट्टी लिपे बर्तनो मे, मिट्टी की कोठियो मे या मचान आदि पर गोबर-मिट्टी से लिपी मुहरबन्द टोकरियो मे पडा हो, ऐसा सचित्त धान्ययुक्त स्थान।

२ जिस मकान के भीतर अनेक प्रकार की मदिरा व रस आदि के घडे भरे रखे हो तथा पीने के कच्चे पानी के घडे आदि भरे हुए रखे हो ।

बृह, उ २, सू ४, ५

३ जिस स्थान पर रातभर अग्नि जलती हो अथवा जहाँ दीपक आदि रातभर जलते रहते हो, ऐसे स्थान पर भी साधु साध्वी नही ठहरे।

बृह, उ २ सू ६ ७

४ जिस स्थान पर उपाश्रय के भीतर दूध, दही, पूडी, मिष्ठान्न आदि विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ बनाकर रखे हो, ऐसा स्थान भी साध्वी-साध्वी के ठहरने योग्य नही है।

बृह, उ २, सू ८, ९ पृ २३९

UPASHRYAYA WITH GRAINS

Following upashrayas (places of stay) are not suitable for monks and nuns—

1 Place where wheat, rice, pulses, sesame and other grains are scattered on the ground Where millet, wheat and other grains are stored in baskets, pots plastered with clay, earthen silos, lofts or other such places sealed with cow-dung and clay Any such place with sachit (with life) grains

2 A house where pitchers filled with a variety of wines and juices are stored Also where non-boiled drinking water is stored in pitchers

—Brihatkalp 2/4, 5

3 Monks and nuns should not stay at places where there is a fire or a lamp is burning throughout the night

—Brihatkalp 2/6, 7

4 Place where milk, curd, bread, sweets and other such eatables are stored after cooking, is not suitable for stay of monks and nuns.

—Brihatkalp 2/8, 9, p 239

१२. कप्पइ निग्गंथाणं अहे आगमणगिहंसि वा, वियडगिहंसि वा, वंसीमूलंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, अब्भावगासियंसि वा वत्थए।

११. निर्ग्रन्थियों को आगमनगृह में, चारों ओर से खुले घर में, छप्पर के नीचे अथवा बाँस की जालीयुक्त गृह में, वृक्ष के नीचे या आकाश के नीचे (खुले स्थानों मे) रहना नही कल्पता है।

१२. किन्तु निर्ग्रन्थों को उक्त स्थानों में रहना कल्पता है।

11. *Nirgranthis* (Jain nuns) are not allowed to stay in *Agamangrih* (common place of stay), in a house open from all the four sides, in a place which has only cover at the top, a house which has bamboo mesh all around, under a tree or under the sky.

12. *Nirgranths* (monks), however, can stay at such places (as mentioned in 11)

विवेचन : (१) आगमनगृह–जहाँ पर पथिको का आना–जाना हो ऐसे देवालय, सभा, धर्मशाला, सराय या मुसाफिरखाना आदि।

(२) विवृतगृह–केवल ऊपर से ढँके हुए और दो, तीन या चारो ओर से खुले स्थान।

(३) वंशीमूल–बाँस की चटाई आदि से ऊपर की ओर से ढँके और आगे की ओर से खुले ऐसे दालान, ओसरा, छपरी आदि। अथवा चौतरफ बाँस की जाली से युक्त स्थान।

(४) वृक्षमूल–वृक्ष का तल भाग है।

(५) अभ्रावकाश–खुला आकाश या जिसका अधिकांश ऊपरी भाग खुला हो।

ऐसे स्थान पर साध्वियो को किसी भी ऋतु मे नही ठहरना चाहिए क्योकि ये पूर्णत असुरक्षित स्थान है। विहार करते समय कभी सूर्यास्त का समय आ जाये और योग्य स्थान न मिले तो साध्वी को सूर्यास्त के बाद भी योग्य स्थान मे पहुँचना अत्यन्त आवश्यक होता है। साधुओ को सुरक्षित स्थान की इतनी आवश्यकता नही होती है। अत साधु उन स्थानो मे ठहर सकता है।

पूर्व सूत्र मे 'वियड' शब्द अचित्त अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है और प्रस्तुत सूत्र मे गृह के एक या अनेक दिशा मे खुले होने के अर्थ मे प्रयुक्त है।

Elaboration—(1) Agamangrih—A place where travellers ordinarily stay for a short period such as temples, general halls, *dharamshala*, rest-house, waiting hall.

(2) Vivritgrih—A place, which is, covered only at the top but is open from two, three or four sides

(3) Vanshimool—A place open from the front but covered with bamboo mat at the top, such as thatched hut or a place which has bamboo mesh on all sides.

(4) **Vrikshmool**—Place under a tree

(5) **Abhravakash**—Open sky or a place that is mostly open at the top

Sadhvis should not stay at such a place in any season because these places are totally insecure. In case during wanderings, a *Sadhvi* is not able to find a suitable place for stay and the sun has set, it is very important that she reaches a proper place of stay even after sunset. Sadhus do not have that much necessity of a secure place for stay. So he can stay there.

In the earlier aphorism, the word *'viyad'* was used to indicate *achitt* (lifeless) and in the present aphorism it is used to indicate a house open from one or more sides.

अनेक स्वामियों वाले मकान की आज्ञा लेने की विधि
PROCEDURE FOR TAKING PERMISSION OF A HOUSE OWNED BY MANY

१३. एगं सागारिए पारिहारिए।

दो, तिण्णि, चत्तारि, पंच सागारिया पारिहारिया। एगं तत्थ कप्पागं ठवइत्ता अवसेसे निव्विसेज्जा।

१३. मकान का एक स्वामी पारिहारिक होता है।

जिस मकान के दो, तीन, चार या पाँच स्वामी हो, वहाँ एक को कल्पाक (शय्यातर) मानकर के शेष को शय्यातर नही मानना चाहिए अर्थात् उनके घरो मे आहारदि लेने के लिए जा सकते है।

13. When a house is owned by one person, that person is *parihark* (one who has provided the house for stay)

When a house is owned by two, three, four or five persons, one of them should be considered as *Kalpaak* (*Shayyatar*—one who has offered place for stay) and the others should not be considered as such In other words, food and the like can be accepted from them

विवेचन : अगार का अर्थ है घर। घर या वसति के स्वामी को 'सागारिक' कहते हैं। सागारिक मनुष्य को ही शय्यातर, शय्याकर और शय्यादाता भी कहते हैं। जो साधु-साध्वियो को शय्या अर्थात् ठहरने का स्थान, वसति या उपाश्रय देकर अपनी आत्मा को संसार-सागर से तारता है, उसे शय्यातर कहते है। शय्या-वसति आदि को जो बनवाता है, उसे शय्याकर कहते हैं। जो साधुओ को ठहरने का स्थान रूप शय्या देता है, उसे शय्यादाता कहते हैं।

यहाँ शय्यातर घर का भक्त-पान ग्रहण करने का निषेध किया गया है, अत' उसे **प्रातिहारिक-पारिहारिक** (परिहरणीय) कहा गया है।

यदि किसी स्थानक या मकान के अनेक (मनुष्य) स्वामी हो तो वे सभी पारिहारिक होते है, अत उस स्थान के सभी स्वामियो मे से किसी एक को 'कल्पाक' (शय्यातर) स्थापित करके जिससे आज्ञा प्राप्त करे उसके घर

का भक्त–पान आदि ग्रहण नहीं करे। उसके सिवाय जितने भी स्वामी उस स्थानक या मकान के भागीदार या हिस्सेदार है, उनको शय्यातर रूप से न माने अर्थात् उनके घरो से आहार–पानी ग्रहण किया जा सकता है।

Elaboration—*Aagar* means a house. The owner of the house or flat is called *Sagarik*. A *Sagarik* can also be called *Shayyatar, Shayyakar* and *Shayyadata*. *Shayyatar* is that person who uplifts his soul (self) by offering place of stay, flat or *Upashraya* to monks or nuns. *Shayyakar* is that person who gets the house or the flat built. *Shayyadata* is that person who gives the place of stay to the monks or nuns.

Here ascetics have been forbidden from accepting food, water and the like from the house of *Shayyatar*. Therefore he is called *pratiharik* or *paariharik*.

In case many persons are the owner of a house or *Sthanak*, all of them shall be *paariharik*. Therefore one of them is accepted as *Kalpaak* or *Shayyatar* and after taking his permission for stay, food, water and the like should not be accepted from his house All other partners of that house should not be considered as *Shayyatar* In other words food, water and the like can be accepted from their houses.

शय्यातर पिंड ग्रहण के विधि–निषेध **PROCEDURE FOR ACCEPTING OR NON-ACCEPTING FOOD**

१४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारियपिण्डं बहिया अनीहडं असंसट्ठं वा संसट्ठं वा पडिगाहित्तए।

१५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं पडिगाहित्तए।

१६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारियपिण्डं बहिया नीहडं संसट्ठं पडिगाहित्तए।

१७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं कारित्तए।

१८. जे खलु निग्गंथो वा निग्गंथी वा सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं कारेइ कारंतं वा साइज्जइ। से दुहओ विइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१४. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को सागारिक पिण्ड (शय्यातर पिण्ड) जोकि बाहर नही निकाला गया है, वह चाहे अन्य किसी के आहार में संसृष्ट–मिश्रित किया हो या नही किया हो तो भी लेना नही कल्पता है।

१५. ·· यदि सागारिक पिण्ड बाहर तो निकाल दिया हो, किन्तु अन्य के आहार मे मिश्रित नहीं किया गया है तो लेना नहीं कल्पता है।

१६. ··· जो सागारिक पिण्ड घर के बाहर भी ले जाया गया है और अन्य के आहार मे मिश्रित भी कर लिया गया हो तो वह ग्रहण करना कल्पता है।

१७. घर से बाहर ले जाया गया सागारिक पिण्ड जो अन्य के आहार मे मिश्रित नहीं किया गया है, उसे मिश्रित कराना नही कल्पता है।

१८. जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी घर के बाहर ले जाये गये एवं अन्य के आहार मे अमिश्रित सागारिक पिण्ड को मिश्रित करवाता है या करवाने वाले का अनुमोदन करता है, वह लौकिक और लोकोत्तर दोनो मर्यादा का अतिक्रमण करता हुआ चातुर्मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

14. The food of *Shayyatar* has not been taken out. That food cannot be accepted by monks or nuns irrespective of the fact whether it is mixed or not mixed with other food.

15. The food of *Shayyatar* has been taken out but it has not been mixed with food of others That food cannot be accepted.

16. The food of *Shayyatar* has been taken out from the house and has been mixed in the food of others. Such a food can be accepted.

17. The food of *Shayyatar* has been taken out from the house but it has not been mixed with food of others. Monks or nuns are not allowed to get it mixed.

18. The monk or nun who gets such food mixed or appreciates or supports one who mixes it with food of others crosses the worldly limits and also the limits set by spiritual code. He is therefore liable for *Chaturmasik Anudghalik* expiation (*prayashchit*)

विवेचन : उक्त सूत्रो का आशय व्याख्याकारो ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–

जहाँ अनेक व्यक्तियो का आहार एक स्थान पर एकत्रित हो एव उनमे शय्यातर का भी आहारादि सम्मिलित हो तो वह आहार कहाँ, किस स्थिति मे अग्राह्य होता है और कैसा ग्राह्य होता है इत्यादि विधान किया गया है। क्रमशः पाँचों सूत्रों का आशय इस प्रकार है–

(सूत्र १) अनेक व्यक्ति का संयुक्त आहार–स्थान यदि शय्यातर के घर की सीमा मे हो और वहाँ शय्यातर का आहार अलग पडा हो अथवा सबके आहार मे मिला दिया गया हो तो भी साधु को ग्रहण करना नही कल्पता है।

(सूत्र २) अनेक व्यक्तियो का सम्मिलित आहार शय्यातर के घर की सीमा से बाहर हो एव वहाँ शय्यातर का आहार अलग रखा हो तो उसमें से लेना नहीं कल्पता है।

(सूत्र ३) किन्तु अन्य सभी के सम्मिलित आहार मे शय्यातर का आहार मिश्रित कर दिया गया हो और जिस हेतु से आहार सम्मिलित किया गया हो उन देवताओ का नैवेद्य निकाल दिया गया हो, ब्राह्मण आदि को जितना देना है उतना दे दिया गया हो, उसके बाद भिक्षु लेना चाहे तो ले सकता है। क्योंकि अब उस आहार मे शय्यातर के आहार का अलग अस्तित्व भी नहीं है एव उसका स्वामित्व भी नहीं रहा है अत. उस मिश्रित एवं शेष बचे आहार मे से भिक्षु को ग्रहण करने मे शय्यातर पिण्ड ग्रहण का दोष नही लगता है।

(सूत्र ४) विहार आदि किसी भी कारण से उक्त असंसृष्ट अमिश्रित-आहार को ग्रहण करने हेतु संसृष्ट मिश्रित करवाना भिक्षु को नहीं कल्पता है।

(सूत्र ५) उक्त असंसृष्ट आहार आदि को ससृष्ट करवाना सयम-मर्यादा से विपरीत है एवं लोगो को भी अविश्वसनीय होता है। अत· ऐसा करने पर भिक्षु लौकिक व्यवहार एवं संयम-मर्यादा का उल्लंघन करने वाला होता है, इसलिए उसे प्रायश्चित्त आता है।

Elaboration—The underlying idea of the above mentioned *Sutras* has been clarified by the commentators as follows :

When the food of many persons has been collected at one place and it includes the food of *Shayyatar*, then under what conditions it is not acceptable or acceptable by the monks. These conditions have been narrated systematically in the five aphorisms as under :

(Sutra 1) In case the joint food of many persons is within the limits of the house of *Shayyatar* and the food of *Shayyatar* is lying there separately or it has been mixed in the joint food of others, it cannot be accepted.

(Sutra 2) The joint food of many person is beyond the limits of the house of *Shayyatar* and the food of *Shayyatar* is also lying there separately. Then nothing can be accepted from there.

(Sutra 3) The food of *Shayyatar* has been mixed with the joint food of others. The purpose for which the food had been mixed has been fulfilled namely the food has been taken out from it for gods, the food has been given out of it to Brahmins and others to the extent it was earlier decided. Thereafter, *Bhikshu* can accept food from it if he so desires because that food has no separate ownership of *Shayyatar* any longer. He is no longer owner of it. So the *Bhikshu* does not incur any fault in accepting food from that mixed food which has been left out after serving others.

(Sutra 4) A Bhikshu is not allowed to get mixed *Asansrisht* food in order to convert it into *sansrisht* food for the purpose of accepting it during wandering and the like.

(Sutra 5) It is against the code of ascetic restraint to get converted *asansrisht* food into *sansrisht* food. Further it adversely affects faith of the people in saints. So by such an act, a *bhikshu* crosses the limits laid down for ordinary conduct and for ascetic restraints. He is therefore, liable for expiation (*prayashchit*).

PROCEDURE OF ACCEPTING/REJECTING FOOD BROUGHT TO OR SENT TO HOUSE OF SHAYYATAR

१९. सागारियस्स आहडिया सागारिएण पडिग्गहिया, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२०. सागारियस्स आहडिया सागारिए अपडिग्गहिया तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२१. सागारियस्स नीहडिया परेण अपडिग्गहिया, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२२. सागारियस्स नीहडिया परेण पडिग्गहिया, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१९. दूसरे घर से आये हुए आहार को सागारिक (शय्यातर) ने अपने घर पर ग्रहण कर लिया है और वह उसमे से साधु को दे तो लेना नहीं कल्पता है।

२०. दूसरे घर से आये हुए आहार को सागारिक ने अपने घर पर ग्रहण नही किया है और यदि आहार लाने वाला उस आहार में से साधु को दे तो लेना कल्पता है।

२१. सागारिक के घर से दूसरे घर पर ले जाये गये आहार को उस गृहस्वामी ने यदि स्वीकार नहीं किया है तो उस आहार मे साधु को दे तो लेना नही कल्पता है।

२२. सागारिक के घर से दूसरे घर ले जाये गये आहार को उस गृहस्वामी ने स्वीकार कर लिया है और यदि वह उस आहार में से साधु को दे तो लेना कल्पता है।

19. In case a *Shayyatar* has accepted the food brought from another one's house to his house, he is not allowed to give food out of it to the *Sadhu*

20. In case the food brought to his house has not been accepted by the *Sagarik* but the person who had brought the food from other's house offers it to the monk, the monk can accept it

21. Some food has been brought from the house of *Sagarik* to another person's house and the owner of that house has not accepted it as yet. In case he offers food out of it to the monk, the monk cannot accept it

22. Some food has been brought from the house of *Sagarik* to another house and the owner of that house has accepted it If the owner of that house offers out of it to the *Sadhu*, the *Sadhu* can accept it.

विवेचन : दूसरो के घर से शय्यातर के घर पर लाई जा रही खाद्य-सामग्री **'आहृतिका'** और शय्यातर की जो खाद्य-सामग्री अन्य के घर ले जाई जा रही हो वह **'निहृतिका'** कही गई है। ऐसी शय्यातर सम्बन्धी आहृतिका एवं निहृतिका सामग्री साधु किस स्थिति में ग्रहण कर सकता है, यह इन चार सूत्रों में बताया गया है।

पूर्व सूत्र १४-१८ मे शय्यातर का आहार अन्य अनेक लोगो के आहार के साथ अलग या मिश्रित शय्यातर के घर की सीमा में या अन्यत्र कहीं रखा हो, उसी का कथन है और इन १९-२२ सूत्रो में (१) शय्यातर के घर मे हो या अन्यत्र हो, (२) शय्यातर का हो या अन्य का हो, (३) दिया जाने वाला हो या

लिया जाने वाला हो, (४) वह आहार जब तक शय्यातर के स्वामित्व मे नही हुआ है या अन्य ने अपने स्वामित्व में ले लिया है तो उस आहार को ग्रहण किया जा सकता है और वह आहार जब तक शय्यातर के स्वामित्व में है या अन्य का लाया गया आहार उसने स्वीकार कर लिया है तो वह आहार साधु ग्रहण नहीं कर सकता है इत्यादि कथन है। दोनों प्रकरणों में यह अन्तर समझना चाहिए।

आहृतिका एवं निहृतिका बाँटने वाला जहाँ हो उस समय भिक्षु भी सहज रूप में वहाँ गोचरी के लिए भ्रमण करते हुए पहुँच जाये और बाँटने वाला या लेने वाला निमन्त्रण करे इस अपेक्षा से यह सूत्रोक्त कथन है।

Elaboration—*Ahritika* is that food which has been brought to the house of *Shayyatar* from the house of another. *Nihritika* is the food belonging to *Shayyatar* being brought to another house under certain conditions. Such a food belonging to *Shayyatar* whether it is *ahritika* or *nihritika* can be accepted by a monk under conditions that has been stated in these four Sutras.

In the earlier *Sutras* 14 to 18, the food belonging to *Shayyatar* whether kept with the food of other persons or separately has been discussed. In the present *Sutras* 19 to 22 there is discussion about the food (1) which is in the house of *Shayyatar* or at some other place, (2) belonging to *Shayyatar* or any other person, (3) being offered or being taken, (4) which has not yet come in the ownership of *Shayyatar* or which has been accepted by another. Such a food can be accepted by the monk. Up to the time the food is in the control of *Shayyatar* or the food brought by another person has been accepted by *Shayyatar*, it cannot be accepted by the *Sadhu*. In both the statements, this difference should be clearly understood.

The *Sutra* has been stated in context of a monk who incidentally reaches during his wandering for collection of alms at a place where someone is distributing the material, which is either *ahritika* or *nihritika*.

शय्यातर के अंशयुक्त आहार-ग्रहण का विधि-निषेध

RULE FOR ACCEPTING OR REJECTING FOOD WHICH HAS SOME PART BELONGING TO SHAYYATAR

२३. सागारियस्स अंसियाओ-(१) अविभत्ताओ, (२) अव्वोच्छिन्नाओ, (३) अव्वोगडाओ, (४) अनिज्जूढाओ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए।

२४. सागारियस्स अंसियाओ-विभत्ताओ, वोच्छिन्नाओ, वोगडाओ, निज्जूढाओ तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिगाहेत्तए।

२३. सागारिक तथा अन्य व्यक्तियों के संयुक्त आहारादि का यदि-(१) विभाग निश्चित नहीं किया गया हो, (२) विभाग न किया गया हो, (३) सागारिक का विभाग अलग निश्चित न किया गया हो,

(४) विभाग बाहर निकालकर अलग न कर दिया हो, ऐसे आहार मे से साधु को कोई दे तो लेना नहीं कल्पता है।

२४. सागारिक के अशयुक्त आहारादि का यदि-(१) विभाग निश्चित हो, (२) विभाग कर दिया हो, (३) सागारिक का विभाग निश्चित कर दिया हो, (४) उस विभाग को बाहर निकाल दिया गया हो तो शेष आहार में से साधु को कोई दे तो लेना कल्पता है।

23. In case the joint food material belonging to *Sagarik* and others—(1) has not been specifically earmarked, or (2) has not been divided, or (3) the part belonging to *Sagarik* has not been separately earmarked, or (4) the share of *Sagarik* has not been separated, the monk cannot accept anything out of it even if it is offered.

24. In case the share of *Sagarik* in the joint food material and the like—(1) has been clearly specified, or (2) has actually been divided, or (3) the share of *Sagarik* has been clearly decided and earmarked, or (4) that portion has been taken out, then *Sadhu* can accept if any food material is offered from the remaining food.

विवेचन : सूत्र मे प्रयुक्त पदो का अर्थ इस प्रकार है-

(१) **अविभक्त**-जब तक सागारिक का भाग उस सम्मिलित भोज्य-सामग्री मे से पृथक् रूप से निश्चित नही किया जाये, तब तक वह 'अविभक्त' है।

(२) **अव्यवच्छिन्न**-जब तक सागारिक के अश का सम्बन्ध-विच्छेद न हो जाय, तब तक वह 'अव्यवच्छिन्न' है।

(३) **अव्याकृत**-व्याकृत का अर्थ भाग के स्पष्टीकरण का है कि इतना अश तुम्हारा है और इतना अश मेरा है, जब तक ऐसा निर्धारण नही हो जाये तब तक वह 'अव्याकृत' कहलाता है।

(४) **अनिर्यूढ**-निर्यूढ का अर्थ 'निर्धारित अश से अलग करना' है। जब तक सागारिक का अश उस सम्मिलित भोजन मे से निकाल न दिया जाये, तब तक वह 'अनिर्यूढ' कहलाता है।

इस प्रकार पूरे सूत्र का समुच्चय अर्थ यह होता है कि शय्यातर सहित अनेक व्यक्तियो की खाद्य-सामग्री मे से सागारिक का अश जब तक अविभाजित है, अव्यवच्छिन्न है, अनिर्णीत है और अनिष्कासित है, तब तक उस भोजन के आयोजको मे से यदि कोई व्यक्ति साधु को कुछ अश देता है तो वह उनके लिए ग्राह्य नही है। किन्तु जब सागारिक का अश विभाजित, व्यवच्छिन्न, निर्धारित और निष्कासित हो जाता है, तब उस सम्मिलित भोज्य-सामग्री में से दिया गया भक्त-पिण्ड साधु के लिए ग्राह्य है और वह उसे ले सकता है।

पूर्व सूत्रो मे वर्णित ससृष्ट-असंसृष्ट आहार मे किसी का स्वामित्व नही रहता है और न वह विभक्त होता है। किन्तु प्रस्तुत सूत्रकथित आहार मे स्वामित्व भी होता है, वह विभक्त होकर शय्यातर को मिलने वाला भी होता है। इन दोनो प्रकरणो मे यह अन्तर है।

Elaboration—The words used in the aphorism have the following meanings :

(1) **Avibhakt**—The material is *avibhakt* up to the time the share of *Sagarik*, which is a part of the total food material, has not been specifically decided and earmarked.

(2) **Avyavachhinn**—It is *avyavachhedik* up to the time the part belonging to *Sagarik* has not been totally separated from it.

(3) **Avyakrit**—It is *avyakrit* up to the time the part belonging to each of the owners has not been clearly determined. It becomes *vyakrit* when the part belonging to each of the owners has been clearly determined.

(4) **Aniryudh**—It is *niryudh* when the part belonging to each owner has been separated from the whole It is *Aniryudh* up to the time the part belonging to each owner, although determined, has not been separated from the whole

The gist (total meaning) of this entire *Sutra* is that if out of the food material belonging to *Shayyatar* and others, any person out of those who have arranged that, offers any part of this food material to a *Sadhu*, he cannot accept it till the share belonging to *Sagarik* in it, is not separated, is not determined and has not been separated from it. When *Sagarik's* share has been divided, determined and separated and taken out from it, the food material offered from the remaining mixed material can be accepted by the monk as it is in accordance with the prescribed code

Nobody has the ownership of *Sansrisht* or *asanshrisht* food material mentioned in earlier *Sutras* Further it is not divided. But in case of food material mentioned in the present aphorism, there is the ownership and after division, the *Shayyatar* is going to have his share This is the difference between the two illustrations

पूज्य भक्त आहार ग्रहण करने का विधि-निषेध

RULES REGARDING ACCEPTING OR NON-ACCEPTING FOOD PREPARED BY RESPECTABLE PERSON

२५. सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए चेइए पाहुडियाए सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तं सागारिओ देइ, सागारियस्स परिजणो देइ तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

२६. सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए चेइए पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तं नो सागारिओ देइ, नो सागारियस्स परिजणो देइ, सागारियस्स पूया देइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

२७. सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए चेइए पाहुडियाए सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए, तं सागारिओ देइ, सागारियस्स परिजणो देइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

२८. सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए चेइए पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए, निसट्ठे अपाडिहारिए, तं नो सागारिओ देइ, नो सागारियस्स परिजणो देइ, सागारियस्स पूया देइ, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

२५. सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषो को सम्मानार्थ भोजन दिया हो, वह आहार पूज्य पुरुषों द्वारा सागारिक के उपकरणो (बर्तनों) मे बनाया गया हो और वह प्रातिहारिक हो, उस आहार में से यदि सागारिक अथवा उसके परिजन दे तो साधु को लेना नही कल्पता है।

२६. सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषो को सम्मानार्थ भोजन दिया हो, पूज्य पुरुषों द्वारा सागारिक के उपकरणो मे बनाया गया हो और प्रातिहारिक हो, उस आहार मे से न सागारिक दे और न सागारिक के परिजन दे, किन्तु सागारिक के पूज्य पुरुष दे तो भी साधु को लेना नही कल्पता है।

२७. सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषो को सम्मानार्थ भोजन दिया हो, पूज्य पुरुषो द्वारा वह आहार सागारिक के बर्तनो मे बनाया गया हो और अप्रतिहारिक हो, ऐसे आहार में से सागारिक दे या उसके परिजन दे तो साधु को लेना नही कल्पता है।

२८. सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषों को सम्मानार्थ भोजन दिया हो, पूज्य पुरुषो द्वारा वह आहार सागारिक के बर्तनों मे बनवाया गया हो और अप्रतिहारिक हो, ऐसे आहार मे से न सागारिक दे और न सागारिक के परिजन दे किन्तु सागारिक के पूज्य पुरुष दे तो लेना कल्पता है।

25. A *Sagarik* has given food material to his respectables They prepared food from it in the utensils of Sagarik and that food is pratiharik. In case the *Sagarik* or the members of his family offer food out of it to the *Sadhu*, the *Sadhu* should not accept it.

26. A *Sagarik* has given food material to his respectables as a matter of respect to them The respectables prepared food from it in the utensils of *Sagarik* and that food is *pratiharik* It is not offered by *Sagarik* or the members of his family to the monk. But the respectables of *Sagarik* offer it. Even then the *Sadhu* (monk) is not allowed to accept it

27. A *Sagarik* has given food material to his respectables as a matter of honour to them They have prepared food from it in the utensils of *Sagarik* and the food is *apratiharik* If *Sagarik* or the members of his family offers food out of it, the *Sadhu* is not allowed by the code to accept it.

28. A *Sagarik* has given food material to his respectables as a matter of respect. They have prepared food with it in the utensils of the *Sagarik* and it is *apratiharik*. It is not offered by *Sagarik* or the members of his family. But the respectables of *Sagarik* offer it The *Sadhu* can accept that food.

विवेचन : शय्यातर के रिश्तेदार, मेहमान, विद्यागुरु, स्वामी आदि पूज्य जनों के निमित्त से जो भक्त–पान बनाया जाता है, उसे पूज्य भक्त कहते है।

वह शय्यातर के घर से लाकर जहाँ पूज्य जन ठहरे हों वहाँ उन्हें भोजनार्थ दिया गया हो, बाजार आदि से मँगाकर पूज्य जनों के पास भेंट रूप भेजा गया हो, शय्यातर के बर्तनों में पकाया गया हो, उसके पात्र से निकाला गया हो और प्रातिहारिक हो अर्थात् पूज्य जनों को खिलाने के पश्चात् जो भोजन बचे, वह वापस लाकर सौंपना, ऐसा कहकर सेवक या कुटुम्बीजन के साथ भेजा गया हो, ऐसे सभी आहार पूज्य भक्त कहे जाते हैं।

इसी प्रकार सागारिक के पूज्य जनो के लिए बनाये गये या लाये गये वस्त्र-पात्र, कम्बलादि भी पूज्य उपकरण कहलाते हैं। ऐसे पूज्य जन-निमित्त वाला भक्त-पिण्ड और उपकरण शय्यातर स्वयं साधु के लिए दे, उसके स्वजन-परिजन दें या उक्त पूज्य जन दें तो भी साधु-साध्वी को वह आहार आदि लेना नहीं कल्पता है। क्योंकि शेष आहार पुन. शय्यातर को लौटाने का होने से उसमें शय्यातर के स्वामित्व का सम्बन्ध रहता है।

यदि वह आहार पूज्य जनो को अप्रातिहारिक दे दिया गया हो अर्थात् खाने के बाद शेष रहा आहार शय्यातर को पुन नही लौटाना हो तो वैसे आहार को ग्रहण किया जा सकता है।

यदि उस आहार को शय्यातर या उसके परिजन पुत्र, पौत्र, स्त्री, पुत्रवधू आदि दें तो नहीं लिया जा सकता है, किन्तु अन्य पूज्य जन आदि दें तो लिया जा सकता है। किन्तु विवाहित लडकियों के हाथ से वह आहार लिया जा सकता है।

Elaboration—The food and drinks prepared for relatives, guests, teacher, the master or other respectables of *Shayyatar* (the persons with whose consent *Sadhu* is staying in the house) is called pujya-bhakt.

That food has been brought from the house of *Shayyatar* and has been given to the respectables for consumption where they are staying. Food has been procured from bazaar and the like and then sent to the respectables as an offering in their honour. Food has been prepared in the utensils of Shayyatar or has been taken out from his utensils and is *pratiharik* In other words it has been sent through the servants or members of the family with the direction that after serving to the respectables, whatever remains that should be brought back to us. All such types of food is called *pujya-bhakt*.

Similarly clothes, pots, blankets and the like which have been prepared for the respectables of *Sagarik* are called *pujya-upakaran*. Such food, clothes and the like prepared for the respectables, if offered by *Shayyatar* himself or by his relatives or by the members of his family or by the respectables concerned, cannot be accepted by the *Sadhu*. It is because the food that shall be left (after serving the respectable) has to be returned to *Shayyatar* and as such it maintains ownership of the *Shayyatar*.

In case that food has been given to the respectables as *apratiharik* (the left over is not to be returned to *Shayyatar* after the respecctables have taken), it can be accepted by the monk if it is offered to him.

In case that food is offered by *Shayyatar*, his relatives, his son, his grandson, his wife or his daughter-in-law, it cannot be accepted by the *Sadhu*. But if it is offered by the other respectables or by the married daughter of *Shayyatar*, it can be accepted

साधु के कल्पनीय वस्त्र CLOTHES THAT A SADHU CAN KEEP

२९. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–इमाइं पंच वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा– (१) जंगिए, (२) भंगिए, (३) साणए, (४) पोत्तए, (५) तिरीडपट्टे नामं पंचमे।

२९. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को पाँच प्रकार के वस्त्र रखना और उनका उपयोग करना कल्पता है। यथा–(१) जागमिक, (२) भागिक, (३) शानक, (४) पोतक, (५) तिरीटपट्टक।

29. Monks and nuns can keep and use five types of clothes. They are—(1) *Jangamik*, (2) *Bhangik*, (3) *Shaanak*, (4) *Potak*, (5) *Tiritapattak*.

विवेचन : (१) **जांगमिक**–त्रस जीवो के लार व बालो से बने वस्त्र। (२) **भांगिक**–अलसी आदि की छाल से बने वस्त्र। (३) **शानक**–सन (जूट) से बने वस्त्र। (४) **पोतक**–कपास से बने वस्त्र। (५) **तिरीटपट्टक**–तिरीट (तिमिर) वृक्ष की छाल से बने वस्त्र।

ये पाँच प्रकार के वस्त्र साधु के लिए कल्पनीय है।

जगम का अर्थ त्रस जीव है। त्रस जीव दो प्रकार के होते है–(१) विकलेन्द्रिय, और (२) पचेन्द्रिय। कोशा, रेशम और मखमल विकलेन्द्रिय–प्राणिजवस्त्र हैं। इनका उपयोग साधु के लिए सर्वथा वर्जित है, क्योकि ये उन प्राणियो का घात करके निकाले गये धागो से बनते है।

पंचेन्द्रिय जीवो के चर्म से निर्मित वस्त्र भी साधु–साध्वी के लिए निषिद्ध है। किन्तु उनके केशो से निर्मित ऊनी वस्त्रो का उपयोग साधु–साध्वी कर सकते है। क्योंकि भेड आदि के केश काटने मे उन प्राणियो का घात नहीं होता है। अपितु ऊन काटने के बाद उनको हल्केपन का ही अनुभव होता है।

इन पाँच जाति के वस्त्रो मे से जब जहाँ जो सुलभ एव कल्पनीय प्राप्त हो उसे ग्रहण किया जा सकता है। प्राथमिकता सूती एव ऊनी इन दो को ही दी जानी चाहिए।

Elaboration—(1) Clothes prepared from the hair or saliva of mobile living beings are called *Jaangamik*. (2) Clothes prepared from the skin of *alsi* plant and the like are *Bhangik* (3) Clothes prepared from jute are *Shaanak*. (4) Cotton clothes are *Potak* (5) Clothes prepared from the skin of *tireet* or *timir* tree are called *Tiritapattak*

A *Sadhu* can accept these five types of clothes

Jangam means mobile living beings Mobile living beings are of two types—(1) *Vikalendriya* (those who have two, three or four senses), and (2) the five-sensed living beings. *Kosha*, silk and velvet are such clothes that have been prepared from *vikalendriya* living beings. Their use is

totally prohibited for a *Sadhu* because they are prepared from the thread produced by killing suchlike living beings.

The clothes prepared from the skin of five-sensed living beings are also prohibited for a *Sadhu*. But monks and nuns can use woollen clothes prepared from the hair of such animals and in cutting hair of sheep and the like, no violence is caused rather they feel light and more comfortable after the wool has been removed.

Out of the said five types of clothes, that which is available and is according to prescribed code of acceptance, can be taken by the *Sadhu* or *Sadhvi*. Preference, however, should be for cotton and woollen clothes only.

साधु के कल्पनीय रजोहरण **BROOM ACCEPTABLE TO MONKS**

३०. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहारित्तए वा, तं जहा–(१) ओण्णिए, (२) उट्टिए, (३) साणए, (४) वच्चाचिप्पए, (५) मुंजचिप्पए नामं पंचमे। त्ति बेमि।

३०. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को इन पाँच प्रकार के रजोहरणो को रखना और उनका उपयोग करना कल्पता है। यथा–(१) और्णिक, (२) औष्ट्रिक, (३) सानक, (४) वच्चाचिप्पक, तथा (५) मुजचिप्पक।

30. Monks and nuns can keep and use five types of holy broom (*rajoharan*) namely—(1) *Auranik*, (2) *Aushtrik*, (3) *Saanak*, (4) *Vachchachippak*, and (5) *Munjachippak*.

विवेचन : जिसके द्वारा धूलि आदि द्रव्य–रज और कर्म–मलरूप भाव–रज दूर की जाये उसे 'रजोहरण' कहते है। रजोहरण पाँच प्रकार का होता है–

(१) **और्णिक**–जो भेड आदि की ऊन से बनाया जाये वह 'और्णिक' है।

(२) **औष्ट्रिक**–जो ऊँट के बालो से बनाया जाय वह 'औष्ट्रिक' है।

(३) **शानक**–जो सन के वल्कल छाल आदि के रेशो से बनाया जाय वह 'शानक' है।

(४) **वच्चाचिप्पक**–वच्चा का अर्थ डाभ या घास है, उसे कूटकर और कर्कश भाग दूर कर बनाये गये रजोहरण को 'वच्चाचिप्पक' कहते है।

(५) **मुंजचिप्पक**–मुज को कूटकर तथा उसके कठोर भाग को दूर करके बनाये गये रजोहरण को 'मुजचिप्पक' कहते है। (सचित्र स्थानाग ५, उ २, पृष्ठ १९२ पर भी वर्णन है)

इन पाँचो मे पूर्व–पूर्व के कोमल होते है और उत्तर–उत्तर के कर्कश। अत. सबसे कोमल होने से और्णिक रजोहरण ही प्रशस्त या उत्तम माना गया है। उसके अभाव मे औष्ट्रिक और उसके अभाव में शानक रजोहरण उपलब्ध न हों तो वैसी दशा मे ही वच्चाचिप्पक और उसके भी अभाव मे मुंजचिप्पक रजोहरण ग्रहण करने का विधान है।

साधु-साध्वी के संयम की रक्षा के लिए तथा शारीरिक रज को दूर करने के लिए एक रजोहरण पास रखना आवश्यक होता है।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—*Rajoharan* is that article with which the physical dirt such as dust and the like, and mental dirt of *Karmic* matter is removed :

(1) Auranik—A *rajoharn* prepared from the wool of sheep.

(2) Aushtik—A *rajoharan* prepared from the hair of camel.

(3) Saanak—A *rajoharan* prepared from jute skin and its yarn.

(4) Vachchachippak—*Vachcha* means grass. It is beaten and after removing its roughness the *rajoharan* is prepared. That *rajoharan* is called *vachchachippak*.

(5) Munjachippak—*Munj* (a type of rough grass) is beaten and its roughness is removed The *rajoharan* prepared from it is called *Munjachippak*. (It has been described in *Sachitra Sthanang Sutra, Sthaan* 5, *Uddeshak* 2, page 192 also.)

Out of these five types, the softness is the maximum in the first one and gradually it decreases in the order. The softness decreases and roughness increases. In view of this, the *aurnik rajoharan*, which is the softest of all, is considered to be the best. In the absence of it, the *aushtrik* can be accepted and if *aushtrik* is not available, *saanak rajoharan* can be accepted. In case none of the said three types is available, only then *Vachchachippak* should be accepted and if that also is not available, *munjachippak rajoharan* can be taken

It is necessary for a monk or a nun to keep *rajoharan* for guarding self-restraint and for removing physical dirt.

● SECOND UDDESHAK CONCLUDED ●

तृतीय उद्देशक
THIRD UDDESHAK

उपाश्रय में खड़े रहने आदि का निषेध PROHIBITION OF STANDING AND THE LIKE IN UPASHRAYA

१. नो कप्पइ निग्गंथाणं, निग्गंथीणं उवस्सयंसि–(१) चिट्ठित्तए वा, (२) निसीइत्तए वा, (३) तुयट्टित्तए वा, (४) निद्दाइत्तए वा, (५) पयलाइत्तए वा, (६) असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारं आहारित्तए, (७) उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा परिट्ठवित्तए, (८) सज्झायं वा करित्तए, (९) झाणं वा झाइत्तए, (१०) काउसग्गं वा (करित्तए) ठाइत्तए।

२. नो कप्पइ निग्गंथीणं उवस्सयंसि चिट्ठित्तए वा जाव काउस्सग्गं वा ठाइत्तए।

१. निर्ग्रन्थो को निर्ग्रन्थियो के उपाश्रय मे–(१) खडे रहना, (२) बैठना, (३) लेटना, (४) निद्रा लेना, (५) ऊँघ लेना, (६) अशन, पान, खादिम, स्वादिम का आहार करना, (७) मल, मूत्र, कफ और नाक का मैल परठना, (८) स्वाध्याय करना, (९) ध्यान करना, तथा (१०) कायोत्सर्ग कर स्थित होना नहीं कल्पता है।

२. निर्ग्रन्थियो को निर्ग्रन्थो के उपाश्रय में कायोत्सर्ग तक सभी क्रियाएँ करना नही कल्पता है।

1. *Nirgranths* (Jain monks) are not allowed to—(1) stand, (2) sit, (3) lie down, (4) sleep, (5) doze (6) to take meals like food, water and the like, (7) discard stool, urine, sputum and other dirt sticking to the body, (8) to study, (9) meditate, or (10) to remain in stable posture of *Kayotsarg* in an *Upashraya* of Jain nuns (*nirgranthis*).

2. *Nirgranthis* (Jain nuns) are not allowed to do any of the above mentioned activities up to *Kayotsarg* in the *Upashraya* of *Nirgranths* (monks).

विवेचन : सामान्यत. साधुओ को साध्वियो के उपाश्रय मे तथा साध्वियो को साधुओ के उपाश्रय में नहीं जाना चाहिए। यदि किसी कारण से जाना पडे तो उन्हें खडे–खडे ही कार्य करके शीघ्र वापस लौट आना चाहिए। क्योंकि अधिक समय तक ठहरने पर लोगों मे नाना प्रकार की आशंकाएँ उत्पन्न होती हैं तथा जनापवाद भी होता है।

साध्वियों को साधु के पास स्वाध्याय सुनाने एवं परस्पर वाचना देने का व्यव., उ. ७ में तथा सेवा आदि कार्यों से भी एक–दूसरे के उपाश्रय मे आने–जाने का स्थानांगसूत्र मे विधान है। अतः स्वाध्याय आदि कार्य आगम विहित हैं।

Elaboration—Ordinarily *Sadhus* should not go to the *Upashraya* of *Sadhvis* and *Sadhvis* should not go to the *Upashraya* of *Sadhus*. In case for any purpose he or she has to go, he or she should do the desired

activity only while standing and return soon. It is because if they stay for a longer period, people may start to have many doubts, which may be matter of common ill-talk among the public.

There is a provision in *Vyavhar, uddeshak* 7 permitting *Sadhvis* to go to *Upashraya* of *Sadhus* for reciting scriptures and for spiritual dialogue According to *Sthananga Sutra* it is also allowed for purposes such as service and the like Therefore, studies and such like activities are allowed in scriptures

चर्म ग्रहण के विधि-निषेध RULE REGARDING ACCEPTING OF SKIN OR NOT ACCEPTING IT

३. नो कप्पइ निग्गंथीणं सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठित्तए।

४. कप्पइ निग्गंथाणं सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठित्तए, से वि य परिभुत्ते, नो चेव णं अपरिभुत्ते, से वि य पाडिहारिए, नो चेव णं अपाडिहारिए, से वि य एगराइए, नो चेव णं अणेगराइए।

५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा कसिणाइं चम्माइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अकसिणाइं चम्माइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

३. निर्ग्रन्थियो को रोम-सहित चर्म का उपयोग करना नहीं कल्पता है।

४. निर्ग्रन्थो को रोम-सहित चर्म का उपयोग करना कल्पता है। वह यदि भुक्त-काम मे लिया हुआ हो, नया न हो। पारिहारिक-लौटाया जाने वाला हो, न लौटाया जाने वाला नही हो तथा वह भी केवल एक रात्रि में उपयोग करने के लिए लाया जाय पर अनेक रात्रियो मे उपयोग करने के लिए न लाया जाये।

५. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को अखण्ड चर्म रखना या उसका उपयोग करना नही कल्पता है।

६. किन्तु ¨ चर्मखण्ड (छोटा चर्म) रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

3. *Nirgranthis* (Jain nuns) are not allowed to keep or use pelt that has hair or fur.

4. *Nirgranths* (monk) can use pelt having hair or fur provided it is not new and has been used and is to be returned by the monk after use It should not be one that is not to be returned Further such a skin can also be brought if it is to be used only for a night and not for many nights.

5. Monks and nuns are not allowed to keep or use full or one-piece pelt.

6. But they can keep a small piece of pelt and use it.

विवेचन : साधु-साध्वी की सामान्य उपधि मे वस्त्र, पात्र, कम्बल आदि का कथन मिलता है। चर्म के उपकरण सामान्य रूप से तो साधु-साध्वी को रखना नही कल्पता है, किन्तु रोग आदि के कारण चर्म रखना आवश्यक हो तो रोमरहित चर्मखण्ड रखना कल्पता है। चर्मखण्ड रखने का कारण यह है कि खून या मल आदि के कपडे बारम्बार धोने की परिस्थिति में चर्मखण्ड के उपयोग से सुविधा रहती है। रोगी को भी कष्ट कम होता है।

सरोमचर्म में तो जीवोत्पत्ति की आशंका रहती है, अत. वह साधु–साध्वियो के लिए अग्राह्य होता है। किन्तु किसी साधु के चर्मरोग या अर्श आदि के कारण बैठने में या सोने मे भी अत्यधिक पीडा होती हो तो रोमरहित चर्म की अपेक्षा रोम–सहित चर्म अधिक उपयोगी होता है, इसलिए विशेष कारण से उसके ग्रहण करने का विधान किया है। साथ ही जीवोत्पत्ति से होने वाली विराधना से बचने के लिए कुछ मर्यादाएँ बताई हैं, जैसे– लुहार, सुनार आदि जो दिनभर चर्म पर बैठकर अग्नि के पास काम करते है, उस सरोमचर्म में कुछ समय तक जीवोत्पत्ति की सम्भावना नही रहती है। अत. सदा काम आने वाले, सरोमचर्म को प्रातिहारिक रूप में ग्रहण करने की आज्ञा दी गई है। ज्यादा दिन रखने पर अग्नि की गर्मी न मिलने से उस सरोमचर्म में जीवोत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है। अत. अधिक दिन रखने का निषेध किया गया है। कुछ विशेष कारणो से साध्वियों को रोम–सहित चर्म रखना निषिद्ध है।

रोमरहित चर्मखण्ड रखने के अनेक कारण भाष्य में बताये हैं। जैसे–संधिवात में, अति शीतकाल एवं अति उष्णकाल मे न चल सकने पर, दृष्टि मन्द हो जाये या पैरो में छाले पड़ जाये इत्यादि कारणो से चर्मखण्ड रखे जा सकते है।

Elaboration—Among the ordinary equipment of a *Sadhu* or *Sadhvi* are clothes, pots, blanket and the like. He or she cannot ordinarily keep articles made of animal pelt or hide But sometimes due to illness and the like, it may become necessary to keep animal pelt. Then he or she can keep animal skin that has hair. It is because due to blood and dirt, it is easier to use and wash the animal pelt rather than washing clothes repeatedly The patient also experiences less trouble.

There is possibility of growth of living being in the pelt that has hair. So it cannot be accepted by monks and nuns But in case a monk feels extremely great pain in sitting or in sleeping due to skin disease or fistula, the use of pelt is more beneficial as compared to hide. Therefore, in special circumstances animal pelt can be accepted as provided in the code At the same time some restraints have been prescribed as a safe-guard from insect growth. For instance, a blacksmith or a goldsmith and the like sit throughout the day on animal pelt near the fire during the activities relating to their professions. So there is no longer any possibility of germination of living beings in that animal pelt for some time So acceptance of an animal pelt in common use of the person concerned by a monk is allowed. In case it is kept for a longer period by the *Sadhu*, there is again the possibility of growth of living organism in it as it no longer gets the warmth of the fire. So the monk is prohibited from keeping it for many days. Due to some special reasons, the *Sadhvis* have been prohibited from keeping animal pelt.

In the *bhashya*, many reasons have been narrated for keeping animal hide. For instance in *sandhivaat*, in extreme cold or extreme hot weather

or when eye-sight becomes poor or boils appear on feet, pieces of animal hide can be kept.

वस्त्र ग्रहण करने के विधि-निषेध RULES FOR ACCEPTING OR NON-ACCEPTING CLOTHES

७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा कसिणाइं वत्थाइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

८. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अकसिणाइं वत्थाइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

९. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अभिन्नाइं वत्थाइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

१०. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा भिन्नाइं वत्थाइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को कृत्स्न वस्त्र रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

८. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अकृत्स्न वस्त्र रखना या उपयोग करना कल्पता है।

९. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को अभिन्न वस्त्र रखना या उपयोग करना नहीं कल्पता है।

१०. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को भिन्न वस्त्र रखना या उपयोग करना कल्पता है।

7. Monks and nuns are not allowed to keep or use a *kritsna* (a costly) cloth.

8. Monks and nuns can keep or use a cloth which is not *kritsna* (costly).

9. Monks and nuns are not allowed to keep or use an *abhinna* cloth (a complete bolt or roll of cloth).

10. Monks and nuns are allowed to keep or use a *bhinna* cloth.

विवेचन : उक्त सूत्रों में कृत्स्न, अभिन्न तथा अकृत्स्न, भिन्न ये पद समानार्थक है। इस पर विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन करके भाष्यकार ने दोनों शब्दों की अलग-अलग व्याख्याएँ की है। कृत्स्न का सम्बन्ध वस्त्र के वर्ण (रग) तथा मूल्य से जोडा है तो अभिन्न का सम्बन्ध वस्त्र की लम्बाई-चौडाई के साथ। दोनो का सार यह है कि जो वस्त्र रंग से सफेद, अल्प मूल्य वाला, साधु-साध्वी के पहनने-ओढने के प्रमाण अनुसार, मर्यादा अनुसार सर्वत्र सुलभ हो। जिसमें चोरी जाने का डर, चुगी व सरकारी टैक्स आदि का झझट न हो। साधु जिस क्षेत्र मे विहार करता है उसी क्षेत्र में उसकी सहज सुलभता हो, तथा ऋतु आदि के अनुकूल हो। अर्थात् विदेशी बहुमूल्य तथा उपकरण-मर्यादा से अधिक न हो। अभिन्न का अर्थ है पूरा थान, भिन्न का अर्थ है वस्त्र का खण्ड, शाटिका, पछेवड़ी आदि के प्रमाणोपेत खड, कृत्स्न का अर्थ है बहुमूल्य व दुर्लभ, अकृत्स्न का अर्थ है सस्ता, सुलभ। *(विस्तृत विवेचन के लिए देखे-उपाध्याय कन्हैयालाल जी म कृत विवेचन, पृष्ठ १७९)*

Elaboration—In the above mentioned Sutras, the words *kritsna* and *abhinna* denote almost the same meaning. Similarly the words *akritsna* and *bhinna* denote the same meaning. The author of *bhashya* has studied them from different angles and thereafter interpreted them indicating the difference in their meaning. The word *kritsna* is used to indicate colour and the cost of the cloth while the word *abhinna* is in the

context of its length and breadth. The gist of these words is that monks and nuns can keep and use only that cloth which is white in colour, cheap in price, suitable in size for wearing and covering the body, easily available according to the prescribed code of ascetic restraints and there is no fear of its being stolen or of payment of any octroi or local taxes. It should be easily available in the area in which the monk is wandering and is suitable for use according to the weather. In other words, it should neither be foreign product nor very costly and it should not be more than the prescribed limit. *Abhinna* means full length of cloth as manufactured, *Bhinna* means a piece out of it, small piece or left over piece, *kritsna* means very costly or that which is not easily available, *Akritsna* means cheap and easily available. *(For detailed description see the commentary by Upadhyaya Kanhaiyalal ji Maharaj, page 179)*

अवग्रहपट्टक आदि धारण करने के विधि-निषेध RULES FOR USE AND NON-USE OF UNDERWEAR AND THE LIKE

११. नो कप्पइ निग्गंथाणं उग्गहणंतगं वा, उग्गहपट्टगं वा धारित्तए वा परिहरित्तए वा।

१२. कप्पइ निग्गंथीणं उग्गहणंतगं वा, उग्गहपट्टगं वा धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

११. निर्ग्रन्थो को अवग्रहानन्तक और अवग्रहपट्टक रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

१२. निर्ग्रन्थियो को अवग्रहानन्तक और अवग्रहपट्टक रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

11. The monks are not allowed to keep or use *Avagrahanantak* (underwear) and *Avagrahpattak* (the cloth covering the underwear).

12. *Nirgranthis* (Jain nuns) can keep and use *Avagrahanantak* and *Avagrahpattak*.

विवेचन : गुप्तांग ढकने वाले लँगोट या कौपीन को **अवग्रहानन्तक** कहते है और उसके ऊपर उसे आच्छादन करने वाले वस्त्र को **अवग्रहपट्टक** कहते है।

प्रथम सूत्र मे साधुओ के लिए इन दोनो का निषेध किया गया है और दूसरे सूत्र मे साध्वियो की स्त्री शरीर की स्थिति को देखते हुए इन दोनो के रखने और पहनने का विधान किया गया है।

भाष्यकार ने लिखा है कि यदि किसी साधु को भगन्दर, अर्श आदि रोग हो जाये तो उस अवस्था में अन्य वस्त्रों को रक्त-पीव से बचाने के लिए वह अवग्रहपट्टक रख सकता है।

साध्वियों को ऋतुकाल मे उक्त दोनो वस्त्रों को उपयोग में लाने और शेष काल मे समीप रखने का विधान है। विहार आदि मे शीलरक्षा के लिए भी इन उपकरणो का पहनना आवश्यक होता है। निर्युक्ति और भाष्यकार ने साध्वियों के लिए २५ प्रकार की उपधि रखने का निर्देश किया है। विशेष जिज्ञासु जनो को सभाष्य बृहत्कल्पसूत्र से जानना चाहिए।

Elaboration—The loin-cloth to cover the private parts of the body is called *avagrahanantak* and the cloth that covers it is called *Avagrahapattak*.

In the first *Sutra*, both of these have been prohibited for *Sadhus* and in the second *Sutra*, keeping in view the physical structure of *Sadhvis*, they are allowed to keep and use both of these clothes.

The author of *bhashya* has mentioned that in case a *Sadhu* suffers from a disease like *bhagandar* or *Arsh*, he can keep *avagrahpattak* in order to save other clothes from being spoilt by blood and impure matter.

The *Sadhvis* are allowed to use both such types of clothes during their menstrual periods and to keep them during the remaining time The use of such clothes becomes necessary during wandering in order to safeguard their celibacy and other code of ascetic restraints. The author of *niryukti* and *bhashya* has directed that *Sadhvis* can keep twenty-five types of articles (*Upadhi*) For more details the scholars may see *Brihatkalp Sutra* with commentary.

साध्वी को वस्त्र ग्रहण करने की विशेष विधि SPECIAL PROCEDURE FOR SADHVIS TO ACCEPT CLOTH

१३. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठाए चेलट्ठे समुप्पज्जेज्जा नो से कप्पइ अप्पणो निस्साए चेलं पडिग्गाहेत्तए। कप्पइ से पवत्तिणी—निस्साए चेलं पडिग्गाहित्तए।

नो य से तत्थ पवत्तिणी सामाणा सिया, जे से तत्थ सामाणे आयरिए वा, उवज्झाए वा, पवत्तए वा, थेरे वा, गणी वा, गणहरे वा, गणावच्छेइए वा, जं च अन्नं पुरओ कट्टु विहरइ। कप्पइ से तन्नीसाए चेलं पडिग्गाहेत्तए।

१३. गृहस्थ के घर मे आहार के लिए गई हुई निर्ग्रन्थियो को यदि वस्त्र की आवश्यकता हो तो अपनी निश्रा से वस्त्र लेना नही कल्पता है। किन्तु प्रवर्तिनी की निश्रा से वस्त्र लेना कल्पता है।

यदि वहाँ प्रवर्तिनी विद्यमान न हो तो जो आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर या गणावच्छेदक हो अथवा जिनकी प्रमुखता से विचरण कर रही हो, उनकी निश्रा से वस्त्र लेना कल्पता है।

13. In case *nirgranthis* (Jain nuns) who have gone to a house to collect food need cloth also, they cannot take it by their own will directly but they can take it with the permission of the *pravartini* (their chief).

In case the *pravartini* is not present there, they can take permission of *Acharya, Upadhyaya, pravartak, sthavir, gani, ganadhar, ganavachhedak* or the one under whose leadership they are wandering.

विवेचन : भाष्यकार ने बताया है, किसी साध्वी को वस्त्र की आवश्यकता हो तो उसे अपनी निश्रा से अर्थात् 'यह वस्त्र मै मेरे लिए ग्रहण कर रही हूँ। इस प्रकार कहकर गृहस्थ से वस्त्र लेना नही कल्पता है। किन्तु वह स्पष्ट शब्दो में कहे कि 'मैं प्रवर्तिनी की निश्रा से इसे ग्रहण करती हूँ, वे इसे स्वीकार कर किसी साध्वी को देंगी तो रखा जायेगा अन्यथा आपको वापस लौटा दिया जायेगा।' ऐसा कहकर ही वह गृहस्थ से वस्त्र को ग्रहण कर सकती है, अन्यथा नही। प्रवर्तिनी की अविद्यमानता मे आचार्यादि की निश्रा से वस्त्र ग्रहण किया जा सकता है।

Elaboration—The author of *bhashya* has stated that sometimes a *Sadhvi* needs a cloth. She is not allowed by the code of restraint to take it of her free will—in other words by saying to the householder who is giving it that she is taking it for her use. But she should clearly say that she is taking it subject to the permission of the *pravartini*. In case the *pravartini* accepts it and gives it to any *Sadhvi*, it shall be kept, otherwise it shall be returned to him (the donor) After telling in this manner, she can accept the cloth and not otherwise In the absence of the *pravartini*, the cloth can be taken subject to the permission of Acharya and the like

दीक्षा के समय ग्रहण करने योग्य उपधि ARTICLES–THAT CAN BE TAKEN AT THE TIME OF INITIATION

१४. निग्गंथस्स णं तप्पढमयाए संपव्वयमाणस्स कप्पइ रयहरण–गोच्छग–पडिग्गहमायाए तिहिं कसिणेहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए।

से य पुव्वोवट्ठिए सिया, एवं से नो कप्पइ रयहरण–गोच्छग–पडिग्गहमायाए तिहिं कसिणेहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए। कप्पइ से अहापरिग्गहिएहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए।

१५. निग्गंथीए य तप्पढमयाए संपव्वयमाणीए कप्पइ रयहरण–गोच्छग–पडिग्गहमायाए चउहिं कसिणेहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए।

सा य पुव्वोवट्ठिया सिया एवं से नो कप्पइ रयहरण–गोच्छग–पडिग्गहमायाए चउहिं कसिणेहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए। कप्पइ से अहापरिग्गहिएहिं वत्थेहिं आयाए संपव्वइत्तए।

१४. गृहवास त्यागकर सर्वप्रथम प्रव्रजित होने वाले निर्ग्रन्थ को रजोहरण, गोच्छक, पात्र तथा तीन अखण्ड वस्त्र लेकर प्रव्रजित होना कल्पता है।

यदि वह पहले दीक्षित हो चुका हो तो उसे रजोहरण, गोच्छक, पात्र तथा तीन अखण्ड वस्त्र लेकर प्रव्रजित होना नही कल्पता। है। किन्तु पूर्वगृहीत वस्त्रो को साथ लेकर प्रव्रजित होना कल्पता है।

१५. सर्वप्रथम प्रव्रजित होने वाली निर्ग्रन्थी को रजोहरण, गोच्छक, पात्र तथा चार अखण्ड वस्त्र लेकर प्रव्रजित होना कल्पता है।

यदि वह पहले दीक्षित हो चुकी हो तो उसे रजोहरण, गोच्छक, पात्र तथा चार अखण्ड वस्त्र लेकर प्रव्रजित होना नहीं कल्पता है। किन्तु पूर्वग्रहीत वस्त्रों को साथ लेकर प्रव्रजित होना कल्पता है।

14. A person who renounces the household and is going to be initiated in monkhood for the first time can take *rajoharan* (the broom), *gochhak*, pot and three full-lengths of cloth at the time of initiation.

In case he has already been initiated earlier, he is not allowed to accept (again) *rajoharan, gochhak,* pot and three clothes of full length. But he can get himself initiated with the clothes he had accepted at the time of earlier initiation into monkhood.

15. A woman who discards the household and is going to be initiated as nun for the first time can take *rajoharan, gochhak,* pot and four clothes of full-length at the time of initiation

In case she had already been initiated in the order earlier, she is not allowed to take *rajoharan, gochhak,* pots and four clothes of full-length (again) but she can take the clothes she had already received at the time of earlier initiation.

विवेचन : जो सर्वप्रथम दीक्षित हो रहा है उसे अपने अभिभावको द्वारा या सगे-सम्बन्धियों द्वारा दिये हुए रजोहरण, गोच्छक (प्रमार्जनिका), पात्र और तीन कृत्स्न वस्त्र लेकर दीक्षा लेना चाहिए। एक हाथ चौडे और चौबीस हाथ लम्बे थान को कृत्स्न वस्त्र माना जाता है। ऐसे तीन थान लेकर के दीक्षित हो सकता है। इसके पश्चात् जब उसकी बडी दीक्षा हो या किसी व्रत-विशेष में दूषण लग जाने पर या किसी महाव्रत की विराधना हो जाने पर पुन. दीक्षा के लिए आचार्य के सम्मुख उपस्थित हो तो वह अपने पूर्वगृहीत वस्त्र-पात्रादि के साथ ही दीक्षा ले सकता है, अर्थात् पहले के वस्त्र-पात्रादि को छोडकर नवीन वस्त्र-पात्रादि लेने की उसे आवश्यकता नही है।

Elaboration—One who is getting initiated in monkhood should take *rajoharan, gochhak* (cloth for cleaning pots or feet), pots and three pieces of cloth of full-length from those arranging his initiation or from his relatives. A piece of cloth, which is one *haath* wide and twenty four *haath* long is considered to be a *Kritsna* (full length) cloth He can get into monkhood with three such pieces of cloth. Thereafter, when his second *diksha* (*diksha* after probation period) is arranged, or when he presents himself before the *Acharya* to repent for any fault in code of restraint or in major vows and for being initiated again in the monkhood afresh, he can take the clothes, pots and the like with which he had been earlier initiated. In other words there is no need of discarding earlier clothes and pots and taking such material afresh

प्रथम-द्वितीय समवसरण में वस्त्र ग्रहण
ACCEPTING OF CLOTHES IN FIRST AND SECOND SAMVASARAN

१६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-पढमसमोसरणुद्देसपत्ताइं चेलाइं पडिगाहेत्तए।

१७. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-दोच्चसमोसरणुद्देसपत्ताइं चेलाइं पडिगाहेत्तए।

१६. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को प्रथम समवसरण मे वस्त्र ग्रहण करना नही कल्पता है।

१७. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को द्वितीय समवसरण मे वस्त्र ग्रहण करना कल्पता है।

16. Monks and nuns are not allowed to accept cloth in first *Samvasaran.*

17. Monks and nuns can accept cloth in second *Samvasaran.*

विवेचन : चातुर्मास करने के लिए साधु-साध्वियाँ किसी एक योग्य स्थान पर आकर स्थित होते हैं, अतः उसे प्रथम समवसरण कहा जाता है और वर्षाकाल या चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् का काल द्वितीय समवसरण कहा जाता है।

इसका अर्थ है-वर्षाकाल तक अर्थात् आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा से लेकर कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक गृहस्थों से वस्त्र ग्रहण करना नहीं कल्पता है। किन्तु वर्षाकाल के बाद दूसरे समवसरण में अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा से लेकर आषाढ शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त आठ मास तक जिस देश और जिस काल के अनुरूप उन्हें यदि वस्त्रो की आवश्यकता हो तो गृहस्थो से ले सकते है।

Elaboration—Monks and nuns station at some suitable place for four months during rainy season. This is called first *Samvasaran*. The period after the rainy season or after the completion of *chaturmas* is called second Samvasaran.

It means that upto the beginning of rainy season or from fifteenth bright day of Asadh up to fifteenth bright day of Kartik, cloth cannot be taken from any householder devotee. But after the rainy season, in the second *Samvasaran,* starting from first day of Margsheersh up to fifteenth bright day of Asadh—the period of eight months it can be taken according to the needs of time and place, from householders.

यथारत्नाधिक वस्त्र ग्रहण का विधान
RULES REGARDING ACCEPTANCE OF CLOTH BY SENIORS IN PERIOD OF INITIATION

१८. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-अहाराइणियाए चेलाइं पडिग्गाहित्तए।

१८. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को चारित्र-पर्याय के क्रम से वस्त्र ग्रहण करना कल्पता है।

18. Monks and nuns should accept the cloth according to their seniority in period of initiation.

विवेचन : सूत्र का अभिप्राय यह है कि जो साधु या साध्वी सबसे अधिक चारित्र-पर्याय वाले दीक्षा ज्येष्ठ हैं, उन्हें सर्वप्रथम वस्त्र, पात्र आदि अन्य उपधियाँ प्रदान करना चाहिए। तत्पश्चात् उनसे कम चारित्र-पर्याय वाले को और तदनन्तर उनसे कम चारित्र-पर्याय वाले को देना चाहिए।

Elaboration—The sum and substance of this *Sutra* is that to the monk or nun who is senior most in period of monkhood the cloth, pot and other articles of his or her need should be offered first of all. Thereafter, the offer should be made to other monks in the order of their respective seniority in period of initiation

यथारत्नाधिक शय्या-संस्तारक ग्रहण का विधान RULES REGARDING ACCEPTANCE OF BED BY SENIOR MONK

१९. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहारायणियाए सेज्जा-संथारए पडिग्गाहित्तए।

१९. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियों को चारित्र-पर्याय के क्रम से शय्या-सस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

19. *Nirgranths* and *nirgranthis* are required to accept *Upashraya,* bed and the like in the order of their respective period of monkhood.

विवेचन : शय्या का अर्थ वसति या उपाश्रय है अथवा अपने शरीर प्रमाण पाट आदि। वहाँ ठहरने पर साधुओं या साध्वियो के बैठने योग्य स्थान एवं ढाई हाथ प्रमाण पाट, घास आदि को संस्तारक कहा जाता है। इन्हें भी चारित्र-पर्याय अर्थात् बडे-छोटे के क्रम से ही ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ इतना और विशेष बताया गया है कि नवदीक्षित या अल्प आयु वाले साधु को रत्नाधिक साधु के समीप सोने का स्थान देना चाहिए। जो रात मे उसकी सार-सम्भाल कर सके। इसी प्रकार वैयावृत्य करने वाले साधु को ग्लान साधु के समीप स्थान देना चाहिए, जिससे वह रोगी साधु की यथासमय परिचर्या कर सके तथा शास्त्राभ्यास करने वाले शैक्ष साधु को उपाध्याय आदि, जिनके समीप वह अध्ययन करता हो, उनके पास स्थान देना चाहिए जिससे कि वह जागरण काल मे अपने पाठ-परिवर्तनादि करते समय उनसे सहयोग प्राप्त कर सके।

Elaboration—*Shayya* means *Upashraya* or the bed according to the size of their body After stationing in the *Upashraya*, the place required for sitting and the bed, hay and the like up to two and a half *haath* required by monks and nuns is called *Sanstarak*. Such things also should be accepted in the order of their seniority

Here it has been specially mentioned that the newly initiated monk or that monk who is of tender age, should be provided place to sleep near the senior monk who could look after him at night Similarly the monk who attends to the sick, should be given place near the sick monk so that he may attend to him when so required The monk who is studying scriptures should be provided place near *Upadhyaya* or the like from whom he is getting lessons in scriptures so that he can take help from him when he revises his lesson

कृतिकर्म करने का विधान **RULES REGARDING RESPECTING ELDERS**

२०. कप्पइ निग्गंथाण या निग्गंथीण वा-अहाराइणियाए किइकम्मं करेत्तए।

२०. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को चारित्र-पर्याय के क्रम से वन्दन करना कल्पता है।

20. *Nirgranths* and *nirgranthis* should bow to the other monks in the order of their seniority

विवेचन : प्रात एवं सायकाल प्रतिक्रमण आदि प्रारम्भ करने के पूर्व गुरुएव ज्येष्ठ मुनिजनों का जो विनय, वन्दन आदि किया जाता है, उसे **'कृतिकर्म'** कहते हैं। इसके दो भेद है-'अभ्युत्थान' और 'वन्दनक'।

आचार्य, उपाध्याय आदि गुरुजनो के एव दीक्षा-पर्याय मे ज्येष्ठ साधुओ के गमन-आगमन काल मे उठकर खडे होना **'अभ्युत्थान कृतिकर्म'** है। प्रात काल, सायकाल एवं प्रतिक्रमण करते समय तथा प्रश्न आदि पूछते समय गुरुजनों को वन्दना करना, हाथ जोडकर मस्तक पर अजलि लगाकर नमस्कार आदि करना **'वन्दनक कृतिकर्म'** है।

Elaboration—In the morning and in the evening before starting *Pratikraman* and the like, the respect, which is expressed towards the teacher or senior monks, is called *'Kritikarm'*. It is of two types—*'Abhyuthaan'* and *'Vandanak'*.

To stand up when *Acharya, Upadhyaya* or teachers or those senior in monkhood come or move about is called *Abhyuthaan Kritikarm*. To bow to the teachers with folded hands at the time of *Pratikraman* and at the time of asking any question is called *Vandanak Kritikarm*.

गृहस्थ के घर में ठहरने का निषेध PROHIBITION REGARDING STAYING IN THE HOUSE OF A HOUSEHOLDER

२१. नो कप्पइ निग्गंथाण व निग्गंथीण वा—अंतरगिहंसि—(१) चिट्ठित्तए वा, (२) निसीइत्तए वा, (३) तुयट्टित्तए वा, (४) निद्दाइत्तए वा, (५) पयलाइत्तए वा, (६) असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारमाहरित्तए, (७) उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, (८) सज्झायं वा करित्तए, (९) झाणं वा झाइत्तए, (१०) काउसग्गं वा ठाइत्तए।

अह पुण एवं जाणेज्जा—वाहिए, जराजुण्णे, तवस्सी, दुब्बले, किलंते, मुच्छेज्ज वा, पवडेज्ज वा एवं से कप्पइ अंतरगिहंसि चिट्ठित्तए वा जाव काउसग्गं वा ठाइत्तए।

२१. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को गृहस्थ के घर के भीतर–(१) ठहरना, (२) बैठना, (३) सोना, (४) निद्रा लेना, (५) ऊँघ लेना, (६) अशन, पान, खादिम, स्वादिम–आहार करना, (७) मल, मूत्र, खंकार, श्लेष्म परिष्ठापन करना, (८) स्वाध्याय करना, (९) ध्यान करना, (१०) कायोत्सर्ग कर स्थित होना नहीं कल्पता है।

किन्तु जो भिक्षु व्याधिग्रस्त हो, वृद्ध हो, तपस्वी हो, दुर्बल हो, थकान या घबराहट से युक्त हो, वह यदि मूर्च्छित होकर गिर पडे तो उसे गृहस्थ के घर मे ठहरना यावत् कायोत्सर्ग करके स्थित होना कल्पता है।

21. Monks and nuns are not allowed to (1) stay, (2) sit, (3) lie down, (4) sleep, (5) doze, (6) to take meals, (7) to discard stool, urine, dirt of the body and the like, (8) to study, (9) meditate, or (10) to stay in posture of *Kayotsarg* in the house of a householder.

But a monk who is suffering from disease, who is old, who is observing austerities, who is weak, who is feeling tired or nervous, and who falls down in unconscious state, he can stay up to do *Kayotsarg* in the house of a householder.

विवेचन : भाष्यकार ने इसी सन्दर्भ मे गृहस्थ के घर पर ठहरने के कुछ अन्य विशेष कारणो का भी उल्लेख किया है, जैसे औषधि के लिए घर में प्रवेश करने के पश्चात् पानी बरसने लगे, या किसी कारण आने–जाने का मार्ग अवरुद्ध हो जाये इत्यादि परिस्थितियों मे भी साधु गृहस्थ के घर मे ठहर सकता है।

Elaboration—The author of bhashya has mentioned some other special circumstances in this context when a monk can stay in the house of a householder. For instance, if it starts raining or the road gets blocked after the monk enters the house to collect alms, he can stay there during that period.

गृहस्थ के घर में वार्त्ता व धर्मकथा का विधान

RULES REGARDING CONVERSATION AND SPIRITUAL LECTURE IN RESIDENTIAL HOUSE

२२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अंतरगिहंसि जाव चउगाहं वा पंचगाहं वा आइक्खित्तए वा, विभावित्तए वा, किट्टत्तए वा, पवेइत्तए वा।

नन्नत्थ एगनाएणं वा, एगवागरणेण वा, एगगाहाए वा, एगसिलोएण वा; से वि य ठिच्चा, नो चेव णं अठिच्चा।

२२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को गृहस्थ के घर के भीतर चार या पाँच गाथाओं द्वारा कथन करना, उनका अर्थ करना, धर्माचरण का फल कहना एवं विस्तृत विवेचन करना नहीं कल्पता है।

किन्तु आवश्यक होने पर केवल एक उदाहरण, एक प्रश्नोत्तर, एक गाथा या एक श्लोक द्वारा कथन करना कल्पता है। वह भी खडे रहकर कथन करे, बैठकर नही।

22. Monks and nuns are not allowed to recite in the house of a householder four or five verses from scriptures, to express their meaning or to indicate the reward of spiritual activities and to explain it in detail.

But when necessary, he or she can recite there an illustration, answer to one question, a verse or one stanza He should say that also only while standing and not while sitting

२३. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अंतरगिहंसि, इमाइं पंच महव्वयाइं सभावणाइं आइक्खित्तए वा, विभावित्तए वा, किट्टित्तए वा, पवेइत्तए वा।

नन्नत्थ एगनाएण वा जाव एगसिलोएण वा; से वि य ठिच्चा, नो चेव णं अठिच्चा।

२३. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियो को गृहस्थ के घर मे भावना सहित पाँचो महाव्रतो का कथन, अर्थ-विस्तार या महाव्रताचरण के फल का कथन करना एव विस्तृत विवेचन करना नही कल्पता है।

किन्तु आवश्यक होने पर केवल एक उदाहरण यावत् एक श्लोक से कथन करना कल्पता है। वह भी खडे रहकर किन्तु बैठकर नहीं।

23. *Nirgranths* and *nirgranthis* are not allowed to explain five major vows including the thought reflection pertaining thereto, the detailed meaning and the result of observing five major vows. They are also not allowed to explain them in detail in the house of a householder.

But in case it becomes essential he can give one illustration or recite one verse from scriptures in the house of the layman and that also only while standing and not while sitting.

विवेचन : उक्त विधान के पीछे रहा भाव स्पष्ट करते हुए भाष्यकार लिखते हैं कि साधु को गृहस्थ के घर में अधिक समय नहीं रुकना चाहिए। यदि कोई बहुत आवश्यक प्रश्न व जिज्ञासा करे तो खडे-खडे ही अति संक्षिप्त उत्तर देकर निकल जाना चाहिए। गृहस्थ के घर में बैठने से अनेक प्रकार की शंका-कुशंका व दोषों की संभावना रहती है।

Elaboration—Clarifying the basic purpose behind the above rule, the author of *bhashya* mentions that a monk should not remain in the house of a layman for a long time. In case a person asks a very important question or raises a pertinent query, he should reply to it briefly while standing and then come out. There is possibility of various types of doubts, ill thoughts and faults in ascetic discipline if one sits in the house of a householder.

शय्या-संस्तारक लौटाने का विधान PROCEDURE REGARDING RETURNING PLACE OF STAY AND THE BED

२४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं सेज्जासंथारयं आयाए अपडिहट्टु संपव्वइत्तए।

२४. साधु-साध्वी ने गृहस्थ से जो प्रातिहारिक शय्या-संस्तारक ग्रहण किया है उसे उसके स्वामी को सौंपे बिना ग्रामान्तर गमन करना नहीं कल्पता है।

24. A monk or a nun is not allowed to go to another village without returning the place of stay and the bed to its owner from whom he had taken them.

विवेचन : यहाँ शय्या-संस्तारक पद उपलक्षण रूप हैं। वास्तव मे जो वस्तु प्रातिहारिक-वापस सौंपने को कहकर गृहस्थ के घर से साधु या साध्वी लाते हैं उसे उसके स्वामी को वापस सौप करके ही अन्यत्र विहार करना चाहिए। बिना लौटाये जाने पर साधु का अविश्वास या निन्दा आदि हो सकती है।

Elaboration—Here the words *Shayya Sanstarak* are just an illustration. In fact all those articles, which the monk had taken from a householder assuring him that they shall be returned after use, should be returned to the owner before the monk moves to another village. In case he moves away without returning the same, he loses the trust and he also becomes a subject of criticism.

२५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-सागारियसंतियं सेज्जासंथारयं आयाए अविकरणं कट्टु संपव्वइत्तए।

२६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–सागारियसंतियं सेज्जासंथारयं आयाए विकरणं कट्टु संपव्वइत्तए।

२५. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो का सागारिक का जो शय्या–संस्तारक ग्रहण किया गया है, उसे यथावस्थित किये बिना ग्रामान्तर गमन करना नही कल्पता है।

२६. सागारिक का शय्या–संस्तारक ग्रहण किया है, उसे व्यवस्थित करके ग्रामान्तर गमन करना कल्पता है।

25. *Nirgranths* and *nırgranthıs* should not move to another village without returning the place of stay, the bed and the like in the same state in which they were at the tıme when they were taken from householder.

26. The place of stay and the bed taken from *Sagaarık* (householder devotee) should be arranged in order before moving to another village

विवेचन : शय्यातर के भवन में जो शय्या–संस्तारक जहाँ पर जिस प्रकार से थे, उसी प्रकार से करके सौपने को 'विकरण' कहते है। व्यवस्थित करके न सौंपे तो इसे 'अविकरण' दोष कहते है।

इसका आशय यह है कि जो सामान लाया है उसे काम में लेने के बाद वापस साफ करके, अच्छी हालत में लौटा दे। यदि टूट–फूट हो जाये तो गृहस्थ को उसके विषय में बता देना चाहिए। पाट आदि जहाँ से लिए उन्हे वही पर वापस रख देना चाहिए ताकि गृहस्थ को किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नही मिले।

Elaboration—'*Vikaran*' ıs the return of place of stay and the bed to the owner ın the same condıtıon in which they were ın the house of the householder. In case they are not returned after arranging it in that order ın which ıt was taken; one commits fault of '*avıkaran*'

The purpose of its mention ın this verse is that the articles got from the householder should be returned to the owner, after properly cleaning them and bringing it back in good condition In case anything has broken, it should be clearly mentioned to the owner The pot and the bed should be placed at the same place from where they had been taken so that the householder does not get any opportunıty to complain about it.

खोए हुए शय्या–संस्तारक का अन्वेषण करे **SEARCH FOR LOST BED**

२७. इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारिए वा सागारियसंतिए वा सेज्जासंथारए विप्पणसेज्जा, से य अणुगवेसियव्वे सिया। से य अणुगवेसमाणे लभेज्जा तस्सेव पडिदायव्वे सिया।

से य अणुगवेसमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ दोच्चंपि उग्गहं अणुण्णवेत्ता परिहारं परिहरित्तए।

२७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों का प्रातिहारिक या सागारिक शय्या–संस्तारक यदि गुम हो जाये तो उसका उन्हें अन्वेषण करना चाहिए। अन्वेषण करने पर यदि मिल जाये तो उसी को दे देना चाहिए।

अन्वेषण करने पर कदाचित् न मिले तो पुनः आज्ञा लेकर अन्य शय्या-संस्तारक ग्रहण करके उपयोग में लेना चाहिए।

27. Monks and nuns should make a search for the bed that they have lost. In case it is recovered during the search, it should be handed over to the person to whom it belongs.

In case it is not found even after thorough search, another bed should be collected and used after taking the permission for the same again.

विवेचन : निर्युक्तिकार ने बताया है कि साधु गृहस्थ के घर से जो भी शय्या-संस्तारक आदि माँगकर लावे उसकी रक्षा के लिए सावधानी रखनी चाहिए और उपाश्रय को सूना नहीं छोड़ना चाहिए। यदि वह चोरी हो गया हो, कोई छीनकर ले गया हो तो उस विषय मे वापस प्राप्त करने का यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिए। इस पर भी न मिले या ले जाने वाले का पता न लगे तो जिस गृहस्थ के यहाँ से वह शय्या-संस्तारकादि लाया है उसको अपहरण की बात कहे। यदि वह किसी प्रकार से उसे वापस ले आवे तो उसको दूसरी बार आज्ञा लेकर उपयोग मे ले। यदि उसे भी वह न मिले तो दूसरे शय्या-संस्तारक की याचना करे।

Elaboration—The author of *niryukti* has mentioned that it is the responsibility of the monk to properly look after the bed he has collected from the householder He should never leave the *Upashraya* unattended. In case the bed has been stolen or someone has snatched it, he should make all possible efforts to get it back. In case he is not able to recover it or is not able to trace the whereabouts of the person who had taken it away, he should tell the entire matter to the person from whose house he had got the same In case that person is able to bring it back, he with due permission can use it. If he is not able to procure it, he should beg for another bed.

आगन्तुक श्रमणों को पूर्वाज्ञा में रहने का विधान

RULES FOR STAYING OF SHRAMANS ON THE BASIS OF EARLIER PERMISSION SECURED BY SHRAMANS

२८. जद्दिवसं च णं समणा निग्गंथा सेज्जासंथारयं विप्पजहंति, तद्दिवसं च णं अवरे समणा निग्गंथा हव्वमागच्छेज्जा, सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ अहालंदमवि उग्गहे।

२९. अत्थि या इत्थ केइ उवस्सयपरियावन्नए अचित्ते परिहरणारिहे, सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ, अहालंदमवि उग्गहे।

२८. जिस दिन श्रमण-निर्ग्रन्थ (पूर्व ग्रहीत स्थान से) शय्या-संस्तारक छोडकर विहार कर रहे हों उसी दिन या उसी समय दूसरे श्रमण-निर्ग्रन्थ आ जावें तो उसी पूर्व ग्रहीत आज्ञा से जितने भी समय रहना हो, शय्या-संस्तारक को ग्रहण करके रह सकते हैं।

२९. यदि उपयोग में आने योग्य कोई अचित्त उपकरण उपाश्रय में हो तो उसका भी उसी पूर्व की आज्ञा से जितने काल रहना हो, उपयोग किया जा सकता है।

28. In case other nirgranths arrive just at the time and the day when the *nirgranths* already staying at a particular place with due permission are going to leave, they can stay there and accept the bed on the basis of the permission obtained earlier as long as they desire.

29. In case any non-living thing is lying in the *Upashraya* and that is worthy of use by a monk, he can use it for the period he stays in that *Upashraya* on the basis of the permission already taken.

विवेचन : भाष्यकार के अनुसार पहले ठहरे हुए साधुओं के द्वारा ली गई आज्ञा में उनके साधर्मिक साधुओ के ठहरने की आज्ञा निहित रहती है। अत. उनके साथ कोई भी साधु कभी भी आकर ठहर सकते हैं। उनके लिए पुनः आज्ञा लेने की आवश्यकता नही होती है। यहाँ यथालन्दकाल का 'यथायोग्य कल्पानुसार समय' अर्थ समझना चाहिए।

यदि पहले ठहरे हुए साधुओं ने विहार कर मालिक को मकान सुपुर्द कर दिया हो, उसके बाद कोई साधु आवें तो उन्हे पुन आज्ञा लेना आवश्यक होता है। यदि मकान-मालिक ने साधुओ की संख्या; स्थान व समय की सीमा की शर्त के साथ आज्ञा दी हो, तो पुन आज्ञा लेना आवश्यक होता है।

Elaboration—According to 'the author of *bhashya*, the permission obtained by the monks already staying in the *Upashraya* includes permission of stay for the monks of the same fold who arrive there later. Therefore, any monk can come and stay with them. There is no need for them to seek permission of the owner again Here *Yathalandkaal* should be considered as the period according to the prescribed limit.

In case the monks who were earlier staying had given back the possession to the owner and left that place, the monks who come there later shall have to seek the permission of the owner afresh. In case the owner had given the permission of the house clearly mentioning the number of monks, the place and the period for which they can stay, it becomes essential to seek the permission again.

स्वामीरहित घर की पूर्वाज्ञा एवं पुनः आज्ञा

EARLIER PERMISSION AND LATER PERMISSION FOR A HOUSE NOT OWNED BY ANYONE

३०. से वत्थूसु-अव्वावडेसु, अव्वोगडेसु, अ-पर-परिग्गहिएसु, अमर-परिग्गहिएसु सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ अहालंदमवि उग्गहे।

३१. से वत्थूसु-वावडेसु, वोगडेसु, परपरिग्गहिएसु, भिक्खुभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि उग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया अहालन्दमवि उग्गहे।

३०. जो घर काम में न आ रहा हो, कुटुम्ब द्वारा विभाजित न हो, जिस पर किसी अन्य का प्रभुत्व न हो अथवा किसी देव द्वारा अधिकृत हो तो उसमें भी उसी पूर्वस्थित साधुओं की आज्ञा से जितने काल रहना हो, ठहरा जा सकता है।

३१. वही घर आगन्तुक भिक्षुओं को ठहरने के बाद में काम में आने लगा हो, कुटुम्ब द्वारा विभाजित हो गया हो या अन्य से परिगृहीत हो गया हो तो भिक्षु भाव अर्थात् संयम-मर्यादा के लिए जितने समय रहना हो उसकी दूसरी बार आज्ञा ले लेनी चाहिए।

30. A house is not being used or it has not be divided by the members of the family or it is not owned by anyone else or it is ın the charge of some celestial being. A *bhıkshu* can stay there as long as he likes with the permission of *Sadhus* who are already staying there.

31. In case the saıd house is beıng used by a layman after the departure of the monks, or has been divided by the family or has been taken by someone else then the *Bhikshu* in view of the restraints of his ascetic disciplıne should seek permissıon again for the period he wants to stay there.

विवेचन : विशेष शब्दों का अर्थ-(१) **अव्यापृत**-जो घर जीर्ण-शीर्ण होने से या गिर जाने से किसी के द्वारा उपयोग मे नही आ रहा हो। (२) **अव्याकृत**-जो घर अनेक स्वामियों का होने से किसी के द्वारा अपने अधीन नही किया गया हो। (३) **अपर-परिगृहीत**-जो घर गृहस्वामी ने छोड दिया हो और अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा ग्रहण नही किया हो वह बिना स्वामी का घर। (४) **अमर-परिगृहीत**-जो घर किसी कारण-विशेष से निर्माता के द्वारा छोड दिया गया है और जिसमे किसी यक्ष आदि देव ने अपना निवास कर लिया है। उक्त स्थान से साधु विहार कर अन्यत्र जाने वाले है, उस समय आने वाले साधुओ को उसमे ठहरने के लिए पुन आज्ञा लेने की आवश्यकता नही है।

आगन्तुक साधुओ के ठहरने पर देवता ने उस मकान को छोड दिया हो और उसके बाद उस मकान का कोई वास्तविक मालिक आ जावे तो वास्तविक मालिक की पुन आज्ञा लेना आवश्यक है। सयम-मर्यादा मे सूक्ष्म अदत्त का भी सेवन करना उचित नहीं होता है। अज्ञात मालिक के समय ली गई आज्ञा से ज्ञात मालिक के समय ठहरने पर अदत्त का सेवन होता है। अत वास्तविक मालिक के आ जाने पर उसकी आज्ञा ले लेना चाहिए।

Elaboration—Meaning of particular words—(1) Avyaprit—A house which ıs not beıng used by anyone due to ıts dılapıdated condition or as it has fallen **(2) Avyakrit—**A house which has not been ın the control of any partıcular person as it is owned by many. **(3) Apar-parigrihit—**A house that has been left by ıts owner and has not been taken by anyone else. It ıs called a house without any owner **(4) Amar-parigrihit—**A house that has been dıscarded by its owner due to any reason and in which some *Yaksha* or celestial being has made his abode. In case the monks are just going to leave that place and other monks come there, they need not seek permission of stay again.

In case the celestial being had left that place after the stay of the monks and thereafter the real owner of that house comes there, it is

essential to seek the permission again of the real owner. It is not proper in practice of ascetic restraint to make use of even a subtle thing, which is not properly given by its owner In case the permission has been obtained at the time when the owner is not known and one stays even when the real owner becomes known, that stay is a stay without permission. Therefore when the real owner comes, it is necessary to seek his permission for stay.

पूर्वाज्ञा से मार्ग आदि में ठहरने का विधान

PROCEDURE FOR STAYING ON THE WAY WITH EARLIER GRANTED PERMISSION

३२. से अणुकुड्डेसु वा, अणुभित्तीसु वा, अणुचरियासु वा, अणुफरिहासु वा, अणुपंथेसु वा, अणुमेरासु वा, सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ। अहालंदमवि उग्गहे।

३२. मिट्टी आदि से निर्मित दीवार के पास, ईंट आदि से निर्मित दीवार के पास, चरिका (कोट और नगर के बीच के मार्ग) के पास, खाई के पास, सामान्य पथ के पास, बाड या कोट के पास भी पहले ठहरे हुए साधुओ की आज्ञा से जितने काल रहना हो, ठहरा जा सकता है।

32. A monk can stay as long as he likes with the permission of the monks who are already staying if he wants to stay near the earthen wall, the brick wall, the boundary wall or the central road of the town, near the ditch, near the common path or near the fence.

विवेचन : मार्ग चलते हुए कोट आदि के किनारे या किसी के मकान की दीवार के पास ठहरना हो तो उसके मालिक की, राहगीर की अथवा शक्रेन्द्र की आज्ञा लेनी चाहिए। वहाँ ठहरे हुए साधुओ के उठने के पूर्व अन्य साधु आ जायें तो वे उसी आज्ञा मे ठहर सकते है। उनको पुन किसी की आज्ञा लेना आवश्यक नही है।

Elaboration—In case a monk wants to stay for sometime during his wandering at the edge of the boundary wall or near the wall of a house, he should seek permission of the owner of that house, the passers-by or of Shakrendra In case other monks come there before the departure of earlier stationed monks, they can stay there and it is not necessary for them to seek the permission of someone again

सेना के समीपवर्ती क्षेत्र में गोचरी जाने का विधान

PROCEDURE OF GOING FOR COLLECTION OF ALMS IN THE AREA NEAR AN ARMY CAMP

३३. से गामस्स वा जाव रायहाणीए वा बहिया सेण्णं सन्निविट्ठं पेहाए कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तद्दिवसं भिक्खायरियाए गंतूण पडिनियत्तए नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवाइणावेत्तए।

जो खलु निग्गंथे वा निग्गंथी वा तं रयणिं तत्थेव उवाइणावेइ, उवाइणावेंतं वा साइज्जइ। से दुहओ वि अइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

३३. ग्राम यावत् राजधानी के बाहर शत्रुसेना का पडाव हो तो निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को भिक्षाचर्या के लिए बस्ती में जाकर उसी दिन लौटकर आना कल्पता है किन्तु उन्हें वहाँ रात रहना नही कल्पता है।

जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी वहाँ रात रहते हैं या रात रहने वाले की अनुमोदना करते हैं, वे जिनाज्ञा और राजाज्ञा दोनो का अतिक्रमण करते हुए चातुर्मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त को प्राप्त होते है।

33. In case the army of the enemy is stationed outside the village or capital, the monks and nuns shall have to return to their place the same day after seeking alms. They are not allowed to stay there for the night.

Those *nirgranths* or *nirgranthis* who stay there for the night or support those who stay there for the night, they transgress the spiritual order and the order of the government. As such they are liable for *Chaturmasik Anudghatik* expiation (*prayashchit*).

विवेचन : आचाराग २/३ मे सेना के पडाव के निकट से साधु को गमनागमन करने का निषेध है और यहाँ विहारादि में अत्यन्त आवश्यक होने पर सेना के पडाव को पार कर ग्रामादि के भीतर गोचरी जाने का विधान है। इसका तात्पर्य यह है कि सेना के पडाव के समय मे जहाँ भिक्षाचरो को केवल भिक्षा लेकर आने की ही छूट हो और अन्यो के लिए प्रवेश बन्द हो तब भिक्षु को भिक्षा लेकर के शीघ्र ही लौट जाना चाहिए, अन्दर नही ठहरना चाहिए। अन्दर ठहरने पर राजाज्ञा एव जिनाज्ञा का उल्लघन होने से वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

Elaboration—According to *Acharang* 2/3, a monk is prohibited from wandering near an army camp. Here in case of very urgent need, a monk is allowed to go to the residential area of the village for collecting alms after passing through the army camp on the way. The underlying meaning is that in case the monks are allowed to go through the camp for collection of alms while the common man is not allowed, the *bhikshu* should return soon after collecting alms and he should not stay inside. In case he stays inside, he transgresses the spiritual order and order of the government So he is liable for prescribed *prayashchit*.

अवग्रह क्षेत्र का प्रमाण LIMIT OF AREA OF MOVEMENT

३४. से गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयेणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठित्तए।

३४. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को ग्राम यावत् सन्निवेश मे चारो ओर से एक कोस सहित एक योजन का अवग्रह ग्रहण करके रहना कल्पता है अर्थात् एक दिशा मे ढाई कोस जाना-आना कल्पता है।

34. A monk is allowed to stay in a village up to colony after fixing a limit of his movement up to one *Yojan* and one *Kos* in all directions In brief he can go only up to two and a half *Kos* in any direction.

विवेचन : यद्यपि गोचरी के लिए भिक्षु को अपने उपाश्रय से दो कोस तक ही जाना कल्पता है तथापि यहाँ ढाई कोस कहने का आशय यह है कि दो कोस गोचरी के लिए गये हुए भिक्षु को वहाँ कभी मल-मूत्र की बाधा हो जाये तो बाधा निवारण के लिए वहाँ से वह आधा कोस और आगे जा सकता है। तब कुल ढाई कोस एक दिशा में गमनागमन होता है। पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण यों दो-दो दिशाओ के क्षेत्र का योग करने पर पाँच कोस अर्थात् सवा योजन का अवग्रह क्षेत्र होता है। उसे ही सूत्र में सकोस योजन अवग्रह क्षेत्र कहा है।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Although a monk is allowed to go only upto two *Kos* (4 miles) from the *Upashraya* for collection of alms, still the purpose of mentioning two and a half *Kos* here is that in case he feels a natural urge and has to go for a call of nature at that time, he can go further upto half a *Kos* for that purpose So in these circumstances the movement in one direction is two and a half *Kos*. After totalling the limits in the east and west or in the north and south it comes to five *Kos* or one *Yojan* and a quarter. This limit is termed as *sakos yojan Avagreh Kshetra* in this *Sutra*.

● THIRD UDDESHAK CONCLUDED ●

चतुर्थ उद्देशक
FOURTH UDDESHAK

अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के स्थान **WHO DESERVE ANUDGHATIK PRAYASHCHIT**

१. तओ अणुग्घाइया पण्णत्ता, तं जहा–

(१) हत्थकम्मं करेमाणे, (२) मेहुणं पडिसेवमाणे, (३) राइभोयणं भुंजमाणे।

१. तीन व्यक्ति अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के योग्य होते हैं। यथा–

(१) हस्त–कर्म करने वाला, (२) मैथुन–सेवन (स्त्री के साथ सभोग) करने वाला, (३) रात्रि–भोजन करने वाला।

1. Three types of people (monks) are liable for *Anudghatic Prayaschit* (punishment) namely—

(1) One committing unnatural offence, (2) One who engages in sex with a woman, (3) One who takes meals at night.

विवेचन : जिस दोष की सामान्य तप से शुद्धि की जा सके, उसे **उद्घातिक** प्रायश्चित्त कहते हैं और जिस दोष की विशेष तप से ही शुद्धि की जा सके, उसे **अनुद्घातिक** प्रायश्चित्त कहते है।

सूत्र मे कथित तीनो ही दोष महापाप है। इनमे से दो का सम्बन्ध ब्रह्मचर्य महाव्रत के भग से है और अन्तिम रात्रिभक्त विरमण नामक छठे व्रत को भग करने वाला है। अत ये तीनो ही अनुद्घातिक प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

भगवतीसूत्र (श २५, उ ६, सूत्र १९५) में तथा उववाईसूत्र (३०) मे प्रायश्चित्त के दस भेद बताये हैं– (१) आलोचना, (२) प्रतिक्रमण, (३) तदुभय, (४) विवेक, (५) व्युत्सर्ग, (६) तप, (७) छेद, (८) मूल, (९) अनवस्थाय, (१०) पाराचिक। इनमे से यहाँ पर तप व छेद प्रायश्चित्त का प्रसग है जिनका वर्णन इस प्रकार है–

तप प्रायश्चित्त–प्रमाद–विशेष से अनाचार–सेवन करने पर उसकी शुद्धि के लिए गुरु द्वारा दिये तप का आचरण करना।

इसके दो भेद है–**उद्घातिम** अर्थात् लघु प्रायश्चित्त और **अनुद्घातिम** अर्थात् गुरु प्रायश्चित्त। इन दोनो के भी मासिक और चातुर्मासिक दो–दो भेद होते हैं। प्रायश्चित्त–सेवन की परिस्थिति के अनुसार इसके तीन भेद है–

(क) यदि राजसत्ता या प्रेतबाधा आदि से परवश होने पर व्रत–विराधना की जाती है, तो–

(१) लघु मास तप (उद्घातिम) प्रायश्चित्त में जघन्य ४, मध्यम १५ और उत्कृष्ट २७ एकासन करना आवश्यक होता है।

(२) गुरु मास तप (अनुद्घातिम) प्रायश्चित्त मे क्रमश· ४ नीवी, (विगयरहित रूक्ष भोजन), १५ नीवी और ३० नीवी करना आवश्यक है।

(३) लघु चातु र्मासिक तप में क्रमश ४ आयंबिल, ६० नीवी और १०८ उपवास करना आवश्यक है।

(४) गुरु चातुर्मासिक तप में क्रमश ४ उपवास, ४ बेले और १२० उपवास या ४ मास का दीक्षा छेद आवश्यक है।

(ख) यदि आतुरता से जानबूझकर व्रत-विराधना की जाती है, तो-

(१) लघु मास में जघन्य ४, मध्यम १५ और उत्कृष्ट २७ आयंबिल करना आवश्यक है।

(२) गुरु मास मे जघन्य ४, मध्यम १५ और उत्कृष्ट ३० आयंबिल करना आवश्यक है।

(३) लघु चातुर्मासिक मे जघन्य ४ उपवास, मध्यम ४ बेले और उत्कृष्ट १०८ उपवास करना आवश्यक है।

(४) गुरु चातुर्मासिक मे जघन्य ४ बेले, ४ दिन का दीक्षा-छेद, मध्यम में ४ तेले तथा ६ दिन का दीक्षा-छेद और उत्कृष्ट में १२० उपवास तथा ४ मास का दीक्षा-छेद आवश्यक है।

(ग) यदि मोहनीयकर्म के प्रबल उदय से व्रत की विराधना हुई है, तो-

(१) लघु मास प्रायश्चित्त मे जघन्य ४ उपवास, मध्यम १५ उपवास और उत्कृष्ट २७ उपवास करना आवश्यक है।

(२) गुरु मास प्रायश्चित्त मे जघन्य ४ उपवास, मध्यम १५ उपवास और उत्कृष्ट ३० उपवास करना आवश्यक है।

(३) लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त मे जघन्य ४ बेले, पारणे मे आयबिल, मध्यम में ४ तेले, पारणे मे आयंबिल और उत्कृष्ट १०८ उपवास और पारणे मे आयबिल करना आवश्यक है।

(४) गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त में जघन्य ४ तेले, पारणे मे आयबिल या ४० दिन का दीक्षा-छेद, मध्यम १५ तेले, पारणे में आयबिल या ६० दिन का दीक्षा-छेद और उत्कृष्ट १२० उपवास और पारणे में आयंबिल या मूल (नई दीक्षा) या १२० दिन का छेद प्रायश्चित्त आवश्यक है।

भगवान महावीर के शासन मे उत्कृष्ट प्रायश्चित्त छह मास का होता है, इससे अधिक प्रायश्चित्त देना आवश्यक हो तो दीक्षा-छेद का प्रायश्चित्त दिया जाता है। लघु छह मास मे १६५ उपवास और गुरु छह मास मे १८० उपवासों का विधान है।

प्रायश्चित्त देने वाले आचार्यादि शिष्य की शक्ति और व्रत-भग की परिस्थिति को देखकर यथायोग्य हीनाधिक प्रायश्चित्त भी देते है।

तप प्रायश्चित्त में **परिहार तप** प्रायश्चित्त भी एक भेद है। इसका वर्णन इसी उद्देशक के सूत्र ३१ के विवेचन में देखें।

छेद प्रायश्चित्त-अनेक व्रतों की विराधना करने वाले और बिना कारण अपवाद मार्ग का सेवन करने वाले साधु की दीक्षा का छेदन करना **'छेद प्रायश्चित्त'** है। यह प्रायश्चित्त भी छह मास का होता है। इससे अधिक प्रायश्चित्त देना आवश्यक होने पर मूल (नई दीक्षा-पुनर्दीक्षा का) प्रायश्चित्त दिया जाता है।

Elaboration—A fault in spiritual ascetic restraint that can be rectified by ordinary practice of austerity is called *udghatic prayashchit* A fault in spiritual discipline that can be purified only by special austerities is called one liable for *anudghatic prayashchit*

The three sins mentioned in this *Sutra* are major sins. Out of them two relate to the major vow of *brahmcharya* and the last one relates to breaking the sixth vow of avoiding taking meals at night. Therefore all the three deserve *Anudghatic prayashchit*

According to *Bhagavati Sutra* (*Shatak* 25, *Uddeshak* 6, *Sutra* 195) and *Uvavayi Sutra* (30) *prayashchit* is of ten types namely—(1) self-criticism (*alochana*), (2) recollecting sins and making a determination not to repeat them (*pratikraman*), (3) both of them (two above mentioned), (4) discerning attitude (*vivek*), (5) discarding attachment for the body (*vyutsarg*), (6) austerities (*tapa*), (7) reduction or break in the period of monkhood (*chheda*), (8) *mool*, (9) *anavasthaya*, and (10) *paranchik* Here we discuss only *tapa* (austerities) and *chheda* (break in period of initiation) as punishment (*prayashchit*).

Tapa prayashchit—It is to practice austerities as directed by the teacher as punishment for the fault in spiritual practice due to lack of proper discrimination, in order to cleanse that fault

It is of two types—*udghatim* which means minor punishment and *anudghatim* which means major punishment. These are again of two types each namely *masik* and *chaturmasik*. Again they are of three categories in the context of the circumstances in which the fault was committed—

(a) In case fault in the major vow has been committed due to the direction from the government or obstruction caused by a spirit, then *prayashchit* shall be of—

(1) *Laghumas tapa (udghatim) prayashchit*—It is essential to observe four *ekasanas* (taking meals only once in the day for 4 days) as minimum punishment, 15 as medium and 27 *ekasanas* as the maximum punishment.

(2) *Gurumas tapa (anudghatim) prayashchit*—It is essential to observe four *nivis* (a *nivi* is taking tasteless food that does not contain milk or milk products, *ghee*, butter or sugar) as minimum punishment, 15 as medium and 30 as maximum punishment.

(3) *Laghu-chaturmasik tapa*—It is essential to observe four *ayambils* (whereas only due food is taken which does not contain sugar or salt) as minimum punishment, 60 *nivis* as medium and 108 fasts as maximum punishment.

(4) *Guru chaturmasik prayashchit*—four fasts as minimum punishment, 4 fasts of two days each as medium and 120 fasts as maximum punishment. As an alternative, period of initiation is reduced by four months

(b) In case the fault has been committed due to zealous urge knowingly, then—

(1) in *laghumas* austerity as *prayashchit*, it is essential to observe 4 *ayambils* as minimum punishment, 15 as medium and 30 as maximum punishment

(2) in *gurumas* (*prayashchit*), it is essential to observe 4 *ayambils* as minimum austerity, 15 as medium and 30 as maximum

(3) in *laghu chaturmasik* expiation, 4 fasts as minimum, 4 fasts of two day each as medium and 108 fasts as maximum are to be practiced.

(4) in *guruchaturmasik* expiation, 4 fasts of two day each and 4 days reduction in period of monkhood is the minimum punishment, 4 fasts of three days each and 6 days reduction in period of initiation is medium and 120 days fast and 4 months reduction of period of initiation is the maximum punishment.

(c) In case the fault has been committed under the influence of deluding *Karma*, the punishment of—

(1) *laghumas prayashchit* is of 4 days fast as minimum, 15 days fast as medium and 27 days fast is the maximum punishment.

(2) *gurumasik prayashchit* prescribes 4 days fast as minimum, 15 days as medium and 30 days as maximum

(3) *laghu-chaturmasik prayashchit* prescribes 4 fasts of two days each followed by *ayambil* as mark of breaking the fast on each occasion as minimum, 4 times fasting for three days each followed by *ayambil* as mark of breaking each fast as medium and 108 days of fasting and *ayambil* when the fast is broken as the maximum *prayashchit*.

(4) *gurumasik prayashchit* prescribes minimum of 4 times fast of three days each followed by *ayambil* as mark of breaking fast in each occasion or 40 days reduction in period of initiation, as medium punishment 15 times three day fast each followed by *ayambil* in each case or 60 days reduction in period of initiation is practiced. As maximum punishment, 120 days fast and breaking every time with

ayambil or initiating afresh in monkhood or 120 days reduction in the period of monkhood is awarded.

In the spiritual discipline of Bhagavan Mahavir the maximum *prayashchit* is for six months. Therefore, in case it is essential to award punishment of greater period than that, fresh initiation in monkhood is awarded. In *laghu* six month the provision is of 165 fasts while in *guru* six months, it is of 180 fasts.

The *Acharya* or the like who awards the punishment, keeps in view the physical strength of his disciple and the circumstances in which the major vow was broken and reduces or increases the period of punishment accordingly at the time of announcing the award.

Parihar tapa prayashchit is also a type of *tapa prayashchit* It has been discussed in detail in *Sutra* 31 of this *Uddeshak*.

Chhed prayashchit—When a monk commits faults in many major vows and practices the exceptions mentioned in scriptures without any cogent reason, the period of initiation is reduced and this is called *Chhed prayashchit* This *prayashchit* is also for six months. In case it is essential to award punishment of longer period than that, then he is initiated in monkhood afresh and this is called *Mool prayashchit*.

पारांचिक प्रायश्चित्त के स्थान MONKS DESERVING PARANCHIK PRAYASHCHIT

२. तओ पारंचिया पण्णत्ता, तं जहा–

(१) दुट्ठे पारंचिए, (२) पमत्ते पारंचिए, (३) अन्नमन्न करेमाणे पारंचिए।

२. ये तीन पारांचिक प्रायश्चित्त के योग्य कहे गये है। यथा–

(१) दुष्ट पाराचिक, (२) प्रमत्त पाराचिक, (३) परस्पर मैथुनसेवी पाराचिक।

2. Three categories of monks deserve punishment of *paranchik prayashchit*. They are—(1) Bad *paranchik*, (2) Slack *paranchik*, (3) Those *paranchiks* who are involved in sex among themselves.

विवेचन : 'पाराचिक' शब्द का निरुक्त है–जिस प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्ध किया हुआ साधु संसार–समुद्र को पार कर सके। अथवा प्रायश्चित्त के दस भेदो में जो अन्तिम प्रायश्चित्त है और सबसे उत्कृष्ट है, उसे पारांचिक प्रायश्चित्त कहते है।

पारांचिक–अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त से भी जिसकी शुद्धि सम्भव न हो, ऐसे विषय, कषाय या प्रमाद की तीव्रता से दोष–सेवन करने वाले को जघन्य एक वर्ष और उत्कृष्ट बारह वर्ष तक गृहस्थ–वेश धारण कराया जाता है एवं साधु के सब व्रत–नियमो का पालन कराया जाता है। उसके पश्चात् नवीन दीक्षा दी जाती है, उसे पाराचिक प्रायश्चित्त कहते हैं।

इस सूत्र में पारांचिक प्रायश्चित्त के तीन स्थान कहे गये है। उनमे प्रथम (१) दुष्ट पाराचिक है। इसके दो भेद है–(i) कषायदुष्ट, और (ii) विषयदुष्ट।

(i) **कषायदुष्ट**–जो क्रोधादि कषायों की प्रबलतावश किसी साधु आदि का घात कर दे वह कषायदुष्ट है।

(ii) **विषयदुष्ट**–जो इन्द्रियो की विषयासक्तिवश साध्वी आदि स्त्रियों के साथ विषय–सेवन करे, उसे विषयदुष्ट कहते है।

(२) प्रमत्त पाराचिक पाँच प्रकार के होते है–

(i) **मद्य–प्रमत्त**–मदिरा आदि नशीली वस्तुओ का सेवन करने वाला।

(ii) **विषय–प्रमत्त**–इन्द्रियो का विषय–लोलुपी।

(iii) **कषाय–प्रमत्त**–कषायो की प्रबलता वाला।

(iv) **विकथा–प्रमत्त**–स्त्रीकथा, राजकथा आदि क्रियाएँ करने वाला।

(v) **निद्रा–प्रमत्त**–स्त्यानर्द्धि–निद्रा वाला। जो व्यक्ति घोर निद्रा मे से उठकर नहीं करने योग्य भयंकर कार्यों को करके पुन सो जाता है और जागने पर उसे अपने द्वारा किये गये दुष्कर कार्यों की कुछ भी स्मृति नही रहती है, ऐसे व्यक्ति को निद्रा–प्रमत्त कहते है।

(३) जो साधु किसी दूसरे साधु के साथ अनग–क्रीडा रूप मैथुन करता है, वे दोनो ही पाराचिक प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

इस प्रकार दुष्ट, प्रमत्त और परस्पर मैथुन–सेवी की शुद्धि पाराचिक प्रायश्चित्त से होती है।

Elaboration—The word *paranchik* means that *parayashchit* which is capable of purifying the monk who has committed grave fault and help him in crossing the mundane worldly ocean of birth and death It is the last among the ten types of *prayashchit* and the most severe It is called *paranchik prayashchit.*

Paranchik—A monk who cannot possibly be purified even with expulsion (*anavasthapya*) for some period, who has committed sin in an extreme state of sexual behaviour, passions or slackness, he is made to dress up himself as a householder for a minimum period of one year and a maximum period of twelve years In that state he has to follow all the vows and rules prescribed for a monk. Thereafter, he is initiated in monkhood afresh This is called *paranchik prayashchit.*

In this *Sutra*, three stages of *paranchik prayashchit* have been stated—

(1) The first of them is bad or sinful *paranchik* It is of two types (i) sinful due to passions, and (ii) sinful due to sexual enjoyment.

(i) Sinful due to passions—One who kills any monk under the dreadful influence of passion and the like is sinful due to passion (*Kashaya-dusht*)

(ii) Sinful due to sensual pleasures (Vishay-dusht)—One who enjoys sex with nuns and the like in a fit of deep attachment for sensual pleasures is sinful due to sensual pleasures

(2) The second type is slack *paranchık*. It is of five types—

(i) Slack due to intoxicants—One who takes wine and such like intoxicants.

(ii) Slack due to sensual pleasures—One who is keen to enjoy mundane sensual pleasures

(iii) Slack due to passions—One who is ın dreadful influence of passions.

(iv) Slack due to bad, worldly talk—One who engages himself in talk about women, government and the like

(v) Slack due to extremely deep sleep—One who takes *styanardhi* sleep—such a person gets up ın dreadful sleep, performs extremely dangerous actıvıties and again sleeps When he gets up he has no recollection of the evil acts performed by hım Such a person is called (*nıdra pramatt*) slack due to extremely deep sleep

(3) When a monk engages ın unnatural sex with another monk, both of them are liable for *paranchık prayashchıt.*

Thus a monk who is extremely sinful (*dusht*), extremely slack (*pramatt*) or who engage in sex with each other can be purified only by *paranchık prayashchıt*

अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के स्थान MONKS DESERVING ANAVASTHAPYA PRAYASHCHIT

३. तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) साहम्मियाणं तेणं करेमाणे, (२) अन्नधम्मियाणं तेणं करेमाणे, (३) हत्थादालं दलमाणे।

३. ये तीन अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त योग्य हैं। यथा–

(१) साधर्मिको की चोरी करने वाला, (२) अन्य धार्मिको की चोरी करने वाला, (३) अपने हाथों से प्रहार करने वाला।

3. Three types of monks deserve *anavasthapya prayashchıt.* They are—

(1) One who steals things of his own class, (2) One who steals things of those belonging to another class, (3) One who attacks physically.

विवेचन : भाष्यकार के अनुसार इस सूत्र का भावार्थ इस प्रकार है–

(१) जो साधु अपने समान धर्म वाले साधर्मी जनो के वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि की चोरी करता है, (२) जो अन्य धार्मिक जनो के अर्थात् बौद्ध, साख्य आदि मतो के मानने वाले साधु आदि के वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि की चोरी करता है, (३) जो अपने हाथ से दूसरे को ताडनादि करता है, मुट्ठी, लकडी आदि से प्रहार कर मारता है या मत्र-तत्र आदि से किसी को उत्पीडित या घात करता है। ये क्रियाएँ करने वाला अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

अनवस्थाप्य—चोरी तथा हिंसा आदि पाप करने पर जिसकी शुद्धि मूल प्रायश्चित्त (नई दीक्षा) से भी सम्भव न हो, उसे गृहस्थ-वेश धारण कराये बिना पुन दीक्षित न करना 'अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त' है। इसमें अल्प समय के लिए भी गृहस्थ-वेश धारण कराना आवश्यक होता है।

Elaboration—According to the author of *bhashya*, the underlying idea of this Sutra is as follows—

(1) A monk steals clothes, pots, books and the like of another monk who is also of the same order, (2) A monk steals clothes, pots, books and the like of monks belonging to the other faith such as Buddhists, Sankhyas and the like, and (3) A monk who beats another monk with his hands, with his fist or a wooden rod and the like or causes harm to him with magical activities The monk who engages himself in any of the above said activities deserves *anavasthapya prayashchit*

Anavasthapya—A monk whose sinful act such as that of stealing, violence and the like cannot be purified even with fresh initiation, he is made to dress himself as a householder and is not initiated in the monkhood afresh without that mandatory punishment It is *anavasthapya prayashchit*. In this *prayashchit* it is essential to dress him like a householder—may be for a very short period

दीक्षा आदि के अयोग्य तीन **PERSONS WHO ARE UNFIT FOR MONKHOOD**

४-९. तओ नो कप्पंति पव्वावेत्तए, तं जहा-(१) पण्डए, (२) वाइए, (३) कीवे।

एवं ५. मुण्डावेत्तए, ६. सिक्खावेत्तए, ७. उवट्ठावेत्तए, ८. संभुंजित्ते, ९. संवासित्तए।

४-९. ४ इन तीनो को प्रव्रजित करना नही कल्पता है, यथा-(१) पण्डक, (२) वातिक, (३) क्लीब।

इसी प्रकार ५. मुण्डित करना, ६ शिक्षित करना, ७. उपस्थापित करना, ८ एक मण्डली मे साथ बिठाकर आहार करना, तथा ९ उनको साथ रखना नही कल्पता है।

4-9. 4. The following three types of people cannot be initiated in monkhood. They are—(1) Eunuch by birth (*Pandak*), (2) One who is unable to control sex (*Vaatik*), (3) One who is without masculine strength (*Kleeb*), Similarly they are not to be, (5) head shaved, (6) taught scriptures, (7) re-established in monkhood, (8) allowed to sit with monks in group for taking food, and (9) kept in the company of monks.

विवेचन : (१) जो जन्म से नपुसक होता है, उसे 'पण्डक' कहते है। (२) जो वातरोगी है अर्थात् कामवासना का निग्रह करने मे असमर्थ होता है, उसे 'वातिक' कहते है। (३) असमर्थ या पुरुषत्वहीन कायर पुरुष 'क्लीव' कहे जाते है।

ये तीनों ही प्रकार के नपुसक दीक्षा देने के योग्य नहीं है, क्योंकि ऐसे व्यक्तियो को दीक्षित करने से जिनशासन का उपहास और निर्ग्रन्थ धर्म की निन्दा आदि अनेक दोष उत्पन्न होते है।

यदि पूरी जानकारी किये बिना उक्त प्रकार के नपुसको को दीक्षा दे दी गई हो और बाद मे उनका नपुसकपन ज्ञात हो तो उसे मुण्डित नही करे अर्थात् उनके केशो को लुचन नही करे। यदि केशलुंचन के पश्चात् ज्ञात हो तो उन्हे महाव्रतो मे उपस्थापित न करे अर्थात् बडी दीक्षा न दे। यदि बडी दीक्षा के पश्चात् ज्ञात हो तो उनके साथ संभोग—एक मण्डली मे बैठकर खान–पान न करे। यदि इसके पश्चात् ज्ञात हो तो संवास—उन्हें सोने–बैठने के स्थान पर एक साथ न सुलावे–बिठावे। अभिप्राय यह है कि उक्त तीनो प्रकार के नपुसक किसी भी प्रकार से दीक्षा देने योग्य नही है। कदाचित् दीक्षित हो भी जाय तो ज्ञात होने पर सघ मे रखने योग्य नही होते है।

Elaboration—(1) One who is eunuch by birth is called *Pandak*. (2) One who suffers from disturbed Vaat (air; one of the three body-humours). In other words one who is not able to control his urge for sex is *Vaatik*. (3) One who is not capable of masculine strength or who is coward is *Kleev*.

The persons of the above said three types are not fit for initiation in monkhood because the initiation of such person is going to make the spiritual order a mockery, may bring bad name to *Nirgranth Dharma* and cause many types of faults

In case such eunuchs and the like have already been initiated due to lack of full knowledge about them, their head should not be shaved when true facts have been known. In case true facts are known after the head has already been shaved, he should not be blessed with five major vows, which are given at the time of final initiation (*badi diksha*). In case the real facts are known only after the major vows have already been granted monks should not dine with him in the group (*Sambhog*) as prescribed in the order. In case the facts are known only after *Sambhog*, he should not be made to sit or sleep near other monks The underlying idea is that all the three types of *napunsaks* (eunuchs and the like) are not fit for any type of initiation In case they have already been initiated in monkhood, they are not fit to be kept in the order

वाचना देने के योग्यायोग्य **CAPABILITY OR NOT OF DELIVERING SPIRITUAL DISCOURSE**

१०. तओ नो कप्पंति वाइत्तए, तं जहा—

(१) अविणीए, (२) विगइ–पडिबद्धे, (३) अविओसवियपाहुडे।

११. तओ कप्पंति वाइत्तए, तं जहा–

(१) विणीए, (२) नो विगइ–पडिबद्धे, (३) विओसवियपाहुडे।

१०. इन तीन को वाचना देना नही कल्पता है, यथा–

(१) अविनीत को, (२) विकृति–प्रतिबद्ध को, (३) अनुपशात प्राभृत को।

११. इन तीनो को वाचना देना कल्पता है, यथा–

(१) विनीत को, (२) विकृति–अप्रतिबद्ध को, (३) उपशान्त प्राभृत को।

10. The monks of the following three categories are not fit to be given spiritual discourse—

(1) disobedient, (2) one having attachment for articles of consumption that cause slackness (*vikriti pratibadh*), (3) one who is always in fit of passion (*anupshaant prabhrit*)

11. The monks of the following three types are fit to attend spiritual discourse—

(1) Those who are humble and obedient, (2) Those who have no attachment for slackness, (3) One who has subdued his passions (*upshaant prabhrit*)

विवेचन : (१) **अविनीत**–जो विनयरहित है, आचार्य या दीक्षाज्येष्ठ साधु आदि के आने–जाने पर अभ्युत्थान, सत्कार–सम्मान आदि यथोचित विनय को नही करता है।

(२) **विकृति–प्रतिबद्ध**–जो दूध, दही आदि रसो मे अत्यधिक आसक्ति रखता है, इन रसो के नही मिलने पर सूत्रार्थ आदि के ग्रहण करने मे मन्द उद्यमी रहता है। उसके हृदय मे दी गई वाचना स्थिर नही रह सकती है।

(३) **अव्यवशमित प्राभृत**–अपराध करने पर जो अपराधी पर प्रचण्ड क्रोध करता है और क्षमा–याचना कर लेने पर भी बार–बार उस पर क्रोध प्रकट करता रहता है, जो हर समय क्रोध से भरा रहता है। ऐसे उग्र स्वभाव के व्यक्ति को भी वाचना देना व्यर्थ जाता है।

ये तीन प्रकार के साधु सूत्र–वाचना, अर्थ–वाचना और तदुभय–वाचना के अयोग्य है, क्योकि विनय से ही विद्या की प्राप्ति होती है, अविनयी शिष्य को विद्या पढाना व्यर्थ या निष्फल तो जाता ही है, प्रत्युत कभी–कभी दुष्फल भी देता है।

किन्तु जो विनय–सम्पन्न हैं, दूध, दही आदि विगयो के सेवन मे जिनकी आसक्ति नही है और जो क्षमाशील हैं, ऐसे शिष्यो को ही सूत्र की, उसके अर्थ की तथा दोनो की वाचना देना चाहिए, क्योंकि उनको दी गई वाचना श्रुत का विस्तार करती है, ग्रहण करने वाले का इहलोक और परलोक सुधारती है और जिनशासन की प्रभावना करती है। सूत्रोक्त दोष वाला भिक्षु संयम आराधना के भी अयोग्य होता है। उसे दीक्षा भी नहीं दी जा सकती है।

जो गच्छ–प्रमुख सूत्रोक्त विधि का पालन न करते हुए योग्य–अयोग्य के निर्णय किए बिना सभी को इच्छित वाचना देते हैं–निशीथ, उ. १९ के अनुसार प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

Elaboration—(1) Avineet—One who is disobedient, who does not offer due respect to the *Acharya* or seniors in monkhood and does not stand up when they pass by

(2) Vikriti-pratibadh—One who is extremely attached to milk, curd and the like and gets slack in spiritual lessons when he does not get such things. He is not able to retain the lesson given to him.

(3) Avyavashamit-prabhrit—One who becomes extremely angry with a person who commits any sin and keeps on expressing his anger again and again even after the other one has begged pardon; one who always remains in a fit of anger—it is of no use to give spiritual lessons to such a person of rude behaviour.

The above said three types of monks are not worthy of having lessons of *Sutras*, their meaning and of both because one can receive education only when he is humble It is of no use to teach an inobedient disciple. It all goes in vain, rather sometimes it causes a great loss.

On the other hand, such disciples who are obedient, who have no attachment for food such as milk, curd and the like that causes lethargy and ill thoughts, and who believe in forgiveness, should be taught lessons in scriptures, their meaning and both because such lessons help in developing the field of scriptural knowledge. It improves the present life and the life after death of one who gets his education. It also broadens the spiritual field of the order of *Jinas*. A *bhikshu* who has the above mentioned faults is unfit of practicing the spiritual discipline He cannot be initiated in the order.

Those monks who give lessons in scriptures to every one without determining earlier his fitness or non-fitness to receive such lesson without observing the procedure mentioned in the code of conduct of the order, are liable for *prayashchit* (requisite punishment) according to *Nisheeth Sutra, Uddeshak* 19.

शिक्षा–प्राप्ति के योग्यायोग्य के लक्षण SPECIAL TRAITS OF ONE FIT OR UNFIT FOR EDUCATION

१२. तओ दुस्सन्नप्पा पण्णत्ता, तं जहा–(१) दुट्ठे, (२) मूढे, (३) वुग्गाहिए।

१३. तओ सुसन्नप्पा पण्णत्ता, तं जहा–(१) अदुट्ठे, (२) अमूढे (३) अवुग्गाहिए।

१२. ये तीन दुःसज्ञाप्य (दुर्बोध्य) होते है, यथा–(१) दुष्ट, (२) मूढ (३) व्युद्ग्राहित,।

१३. ये तीन सुसज्ञाप्य (सुबोध्य) है, यथा–(१) अदुष्ट, (२) अमूढ, (३) अव्युद्ग्राहित।

12. Three types of disciples are unfit for education—(1) Insolent (*Dusht*), (2) Dull, (3) Those of wrong faith.

13. Three types of disciples are fit for education (*Susanjyapya*)—(1) humble, (2) brilliant, (3) Those of right faith

विवेचन : (१) 'दुष्ट'-जो शास्त्र की प्ररूपणा करने वाले गुरु आदि से द्वेष रखे अथवा यथार्थ प्रतिपादन किये जाने वाले तत्त्व के प्रति द्वेष रखे। (२) मूढ़-गुण और अवगुण के विवेक से रहित व्यक्ति। (३) व्युद्ग्राहित-विपरीत श्रद्धा वाले अत्यन्त कदाग्रही पुरुष।

ये तीनों ही प्रकार के व्यक्ति दुःसंज्ञाप्य है अर्थात् इनको समझाना बहुत कठिन होता है, इन्हें शिक्षा देने या समझाने से भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। अतः ये सूत्र-वाचना के पूर्ण अयोग्य होते हैं। इसके विपरीत जो द्वेषभाव से रहित है, अदुष्ट है, हित-अहित के विवेक से युक्त अमूढ़ है और अव्युद्ग्राहित सम्यक् श्रद्धा या कदाग्रह से मुक्त है, वे शिक्षा देने के योग्य होते हैं।

Elaboration—(1) Dusht—One who hates the teacher teaching the scriptures or does not like the philosophical essentials being properly established. **(2) Moodh (foolish, dull)**—One who is not capable of disseminating vice and virtue **(3) Vyudgrahit**—One who is extremely stubborn and has opposite belief.

The persons of all the three above mentioned types are *duh-sanjnapya*. In other words it is very difficult to make them understand the scriptures. Further, no useful purpose is served by teaching them or making them understand the essentials. So they are totally unfit for scriptural education. On the other hand those who are free from hatred, who are not insolent, who are wise and are capable of discriminating virtue and vice who are free from stubborn attitude they are fit for receiving education

ग्लान को मैथुनभाव का प्रायश्चित्त PRAYASHCHIT TO THE SICK FOR SEXUAL FEELING

१४. निग्गंथिं च णं गिलायमाणिं पिया वा भाया वा पुत्तो वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१५. निग्गंथं च गिलायमाणं माया वा भगिणी वा धूया वा पलिस्सएज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१४. ग्लान (रुग्ण) निर्ग्रन्थी के पिता, भ्राता या पुत्र (कोई भी पुरुष) गिरती हुई निर्ग्रन्थी को हाथ का सहारा दें, गिरी हुई को उठावें, स्वतः उठने-बैठने में असमर्थ को उठावें-बिठावे, उस समय वह निर्ग्रन्थी मैथुन-सेवन के परिणामों से पुरुष-स्पर्श का अनुमोदन करे, सुखानुभव करे, तो वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

१५. ग्लान निर्ग्रन्थ की माता, बहिन या बेटी (कोई भी स्त्री) गिरते हुए निर्ग्रन्थ को हाथ का सहारा दे, गिरे हुए को उठावे, स्वतः बैठने–उठने मे असमर्थ को उठावे–बिठावें, उस समय वह निर्ग्रन्थ मैथुन–सेवन के परिणामो से स्त्री–स्पर्श का सुखानुभव करे, तो वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

14. A father, brother or son of a sick *nirgranthi* (nun) lends support to her of his hand when she is falling, or picks her up when she has fallen or picks her up when she of her own is unable to sit or get up. In case that *nirgranthi* at that time has sexual feelings and supports the touch of the male member and feels pleasure in it, she is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

15. The mother, sister, daughter (or any other female member) lends support of her hand to sick *nirgranth* who is falling, or picks him up when he has fallen, or picks him up when he of his own is unable to sit or get up In case at that time the nirgranth has sexual feelings and supports the touch of the woman and takes pleasure in it, he is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

विवेचन : सामान्य नियम के अनुसार साध्वी के लिए पुरुष के शरीर का स्पर्श और साधु के लिए स्त्री के शरीर का स्पर्श ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए सर्वथा वर्जित है। बीमारी आदि के समय भी साध्वी की साध्वी और साधु की साधु ही परिचर्या करे, यही जिन–आज्ञा है। किन्तु कदाचित् ऐसा अवसर आ जाये कि कोई साध्वी दीर्घकालीन बीमारी व दीर्घ तप के कारण शरीर–बल क्षीण होने से कही पर आते या जाते हुए गिर जाय और उसे देखकर उस साध्वी का पिता, भाई या पुत्रादि अथवा कोई भी पुरुष उसे उठाए, बिठाए या अन्य प्रकार से शरीर–परिचर्या करे तब उसके शरीर के स्पर्श से यदि साध्वी के मन मे काम–विकार या स्पर्श सुख की भावना जागृत हो जाय।

इसी प्रकार बीमारी आदि से शक्तिहीन कोई साधु कही गिर जाये और उसकी माता, बहिन या पुत्री आदि कोई भी स्त्री उसे उठाये, उसकी सेवा परिचर्या करे, तब उसके स्पर्श से यदि साधु के मन मे काम–विकार जग जाय या उसके स्पर्श का सुखानुभव करे तो वह साधु अनुद्घातिक गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है। अनुद्घातिक की परिभाषा सूत्र १ के विवेचन मे की जा चुकी है।

Elaboration—As a common rule, it is totally prohibited that a nun touches the body of a man or a monk touches the body of a woman as be or she has to safeguard the vow of celibacy. At the time of illness a nun should serve a nun and a monk should serve a monk This is the order of *Jinas*. But sometimes a situation may arise when due to long illness or long practice of austerities, a nun may become weak and fall down while coming or going. Seeing it, her father, brother or son or any other man may pick her up, seat her or serve her physically in any other way. Then

due to physical touch sexual feelings or pleasure of physical touch may arise in the mind of nun.

Similarly, if a monk may become weak due to illness and the like and his mother, sister, daughter or any other woman may pick him up, seat him and serve him when he falls If his touch creates any sexeval feeling or sense of pleasure, that monk is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit* interpretation of *anudghatik prayashchit* has been done in commentary of *Sutra*-1

प्रथम प्रहर का आहार चतुर्थ प्रहर में रखने का निषेध

PROHIBITION OF TAKING MEALS IN FOURTH QUARTER COLLECTED IN FIRST QUARTER OF THE DAY

१६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा असणं वा जाव साइमं वा, पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहेत्ता, पच्छिमं पोरिसं उवाइणावेत्तए।

से य आहच्च उवाइणाविए सिया तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं अणुप्पदेज्जा, एगन्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

१६. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को प्रथम पौरुषी (प्रहर) मे ग्रहण किये हुए अशन यावत् स्वादिम को अन्तिम पौरुषी (चौथे प्रहर) तक अपने पास रखना नही कल्पता है।

कदाचित् वह आहार रह जाये तो उसे स्वयं न खाये और न अन्य किसी को देवे, किन्तु एकान्त और सर्वथा अचित्त स्थंडिल भूमि (एकान्त स्थान) का प्रतिलेखन एव प्रमार्जन कर उस आहार को परठ देना चाहिए।

यदि उस आहार को स्वय खाए या अन्य को दे तो वह उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

16. *Nirgranths* and *nirgranthis* are not allowed to keep with them upto the last quarter of the day any of the four types of food collected in the first quarter.

In case some food still remains he should neither eat it himself nor give it to anyone else. He should rather discard it at a lonely place, which is completely free from living beings after properly examining it discriminately and cleaning it.

In case he eats that food himself or gives it to anyone else, he is liable of *udghatik chaturmasik prayashchit.*

विवेचन : भाष्यकार ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि यह नियम स्थविरकल्पी साधु के लिए है। जिनकल्पी साधु को तो जिस प्रहर में वह गोचरी लावे उसी प्रहर में उसे खा लेना चाहिए। किन्तु जो सघ मे

रहने वाले स्थविरकल्पी साधु हैं, वे प्रथम प्रहर मे लायी गई गोचरी को तीसरे प्रहर तक सेवन कर सकते हैं। उसके पश्चात् सेवन करने पर वे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त के भागी होते है। इसमें संग्रह दोष व आसक्ति दोष के अतिरिक्त खाद्य-पदार्थ विकृत होने की भी संभावना रहती है, उसमे अनेक प्रकार के बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते है, जिससे विविध रोग हो सकते है।

सूत्र में चारो प्रकार के आहार का कथन है, इसलिए भिक्षु आहार के सिवाय पानी, फल, मेवे एव मुखवास भी चौथे प्रहर में नही रख सकते हैं। यदि चारों प्रकार के आहार दूसरे प्रहर मे लाये गये हों तो उन्हें चतुर्थ प्रहर तक रख सकते है और उपयोग मे ले सकते है। सार यह है कि किसी भी प्रकार का खाद्य-पेय तीन पहर से उपरांत खाने-पीने के काम मे नही लेना चाहिए।

Elaboration—While explaining this *Sutra*, the author of *bhashya* has stated that thıs rule is for *Sthavırkalpı* monks. A *jın-kalpi* monk should eat the food ın the very quarter of the day in which he collects it. But the *sthavırkalpı* monks ın the order can consume the food upto the third quarter, which they had collected ın the first quarter of the day. Thereafter they are lıable for *prayashchıt* as mentioned in the scriptures if they consume it. Here there is fault of collection, fault of attachment, and there ıs also possibilıty of the food materıal getting damaged. Many types of bacteria can germınate in ıt which can cause several types of diseases.

In the *Sutra*, there is mentıon of all the four types of food. So a *bhıkshu* cannot keep with him till fourth quarter even the water, dry fruıt or mouth freshner material, which he had collected in the first quarter In case the four types of food had been collected ın the second quarter, they can be kept till the fourth quarter and made use thereof. The gıst of thıs *Sutra* is that the consumable foods and drınks should not be used beyond the thırd quarter.

दो कोस से आगे आहार ले जाने का निषेध **PROHIBITION OF CARRYING FOOD BEYOND TWO KOS**

१७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा असणं वा जाव साइमं वा, परं अद्धजोयणमेराए उवाइणावेत्तए।

से य आहच्च उवाइणाविए सिया, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं अणुप्पदेज्जा, एगन्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

१७. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को अशन यावत् स्वादिम आहार अर्ध-योजन की मर्यादा से आगे रखना नही कल्पता है।

कदाचित् वह आहार रह जाये तो उस आहार को स्वयं न खाए और न अन्य को भी न दे, किन्तु एकान्त और सर्वथा अचित्त भूमि का प्रतिलेखन एव प्रमार्जन कर यथाविधि परठ देना चाहिए।

यदि उस आहार को स्वयं खाये या अन्य निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को दे तो उसे उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

17. Nirgranths and nirgranthis are not allowed to carry four types of food beyond half a *yojan*.

In case any food is left, he should not eat it himself nor give it to others He should discard it at a lonely place after properly cleaning that ground and ensuring that it is free from living beings.

In case he eats it himself or gives it to any other person (monks or nuns) he is liable of *udghatik chaturmasik prayashchit*.

विवेचन : उक्त विधान के अनुसार भिक्षु अपने उपाश्रय से दो कोस दूर के क्षेत्र से अशनादि ला सकता है एव विहार करके किसी भी दिशा मे दो कोस तक आहार-पानी आदि ले जा भी सकता है। किन्तु आगे भूल से ले भी जाये तो जानकारी होने पर उसे खाना या पीना नही कल्पता है, किन्तु परठ देना चाहिए। ऐसी जिनेश्वर देव की आज्ञा है। इस विधान के पीछे भी सग्रह दोष का कारण मुख्य लगता है।

Elaboration—According to the above rule, a *bhikshu* can bring food and the like from a place upto two *kos* from the *Upashraya* and carry it to any place upto two *kos* But in case inadvertently he carries it beyond that, he is not allowed to consume it when he comes to know that he has carried it beyond two *kos*. He should rather discard it This is the directive of *Tirthankar* The basic reason implied in this rule is the fault of unnecessary collection

अनेषणीय आहार की विधि PROCEDURE OF DEALING WITH NON-ACCEPTABLE FOOD

१८. निग्गंथेण य गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुप्पविट्ठेणं अन्नयरे अचित्ते अणेसणिज्जे पाणभोयणे पडिगाहिए सिया। अत्थि य इत्थ केइ सेहतराए अणुवट्ठावियए, कप्पइ से तस्स दाउं वा अणुप्पदाउं वा।

नत्थि य इत्थ केइ सेहतराए अणुवट्ठावियए, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगन्ते बहुफासए पएसे पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।

१८. गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाने पर भिक्षु बिना जानकारी के कोई दोषयुक्त अचित्त आहार-पानी ग्रहण कर ले तो वह आहार यदि कोई वहाँ अनुपस्थापित शैक्ष हो तो उसे एक बार मे या थोडा-थोडा करके कई बार मे दे देना चाहिए।

यदि कोई अनुपस्थापित शिष्य न हो तो उस अनेषणीय आहार को न स्वय खाये और न अन्य को दे किन्तु एकान्त और अचित्त स्थान का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर यथाविधि परठ देना चाहिए।

18. In case a *bhikshu* without proper knowledge collects *achitt* (lifeless) faulty food or water from the house of a householder, he should

give it in full or in small bits repeatedly to a newly initiated monk who has not yet accepted the major vows (*anupasthapit monk*).

In case no *anupasthapit* disciple is available there, he should neither eat it himself nor give it to another person. He should discard it at a lonely place, which is without living beings after properly examining it and cleaning it as provided in scriptures

विवेचन : इत्वरिक दीक्षा देने के पश्चात् जब तक यावज्जीवन की दीक्षा नही दी जाती है, तब तक उस नवदीक्षित साधु को 'अनुपस्थापित शैक्षतर' कहा जाता है। छोटी दीक्षा के पश्चात् बडी दीक्षा देकर महाव्रतों में उपस्थापित करने का जघन्य काल सात दिन और उत्कृष्ट काल छह मास माना गया है। ऐसे अनुपस्थापित नवदीक्षित साधु को असावधानी से आया हुआ अनेषणीय अचित्त आहार सेवन करने के लिए दिया जा सकता है। क्योंकि पुन उपस्थापन करना निश्चित्त होने से उसे उस आहार के खाने पर अलग से कोई प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता, उसी मे उसकी विशुद्धि हो जाती है।

Elaboration—A newly initiated monk is called *anupasthapit* disciple after his initiation till he is not initiated in monkhood for the entire life by granting him five major vows and the minimum intervening period is seven days while the maximum is six months. The *achitt* food, which is faulty and has been inadvertently collected, can be given to him. Since he is to be established in monkhood again as already declared, he is not liable for any *prayashchit* as a result of taking that food. He gets purified by the very initiation in monkhood for life through (*bari diksha*) acceptance of major vows

औद्देशिक आहार का कल्प्याकल्प **RESTRICTION RELATING TO AUDDESHIK FOOD**

१९. जे कडे कप्पट्ठियाणं, कप्पइ से अकप्पट्ठियाणं नो से कप्पइ कप्पट्ठियाणं।

जे कडे अकप्पट्ठियाणं, नो से कप्पइ कप्पट्ठियाणं, कप्पइ से अकप्पट्ठियाणं।

कप्पे ठिया कप्पट्ठिया, अकप्पे ठिया अकप्पट्ठिया।

१९. जो आहार कल्पस्थितो के लिए बनाया गया है, वह अकल्पस्थितों को लेना कल्पता है किन्तु कल्पस्थितो को लेना नही कल्पता है।

जो आहार अकल्पस्थितो के लिए बनाया गया है, वह कल्पस्थितो को लेना नहीं कल्पता है किन्तु अन्य अकल्पस्थितों को लेना कल्पता है।

जो कल्प मे स्थित हैं वे कल्पस्थित कहे जाते हैं और जो कल्प मे स्थित नही हैं वे अकल्पस्थित कहे जाते हैं।

19. *Akalpasthit* monks are allowed to take food, which has been prepared for *kalpasthit* monks but *kalpasthit* monks are not allowed to accept that food.

Kalpasthit monks are not allowed to accept food, which has been prepared for *akalpasthit* monks but *akalpasthit* monks other than those for whom that food has been prepared can accept that food.

Kalpasthit are those who are within *kalp* in their practice of monkhood. Those who are not within the *kalp* are *akalpasthit*.

विवेचन : आगमों मे साधु के दस प्रकार के कल्प (आचार) का विधान है। जैसे–

(१) **अचेलकल्प**–अमर्यादित वस्त्र तथा रंगीन वस्त्र न रखना, किन्तु मर्यादा के अनुसार सीमित तथा सफेद रंग का वस्त्र रखना और वह भी मूल्यवान चमकीले वस्त्र न हो, किन्तु अल्प मूल्य के सामान्य वस्त्र हो।

(२) **औद्देशिककल्प**–अन्य किसी भी साधर्मिक या सांभोगिक साधुओ के उद्देश्य से बनाया गया आहार आदि औद्देशिक दोष वाला होता है। ऐसे आहार आदि को ग्रहण नहीं करना।

(३) **शय्यातरपिंडकल्प**–शय्यादाता का आहारादि ग्रहण नहीं करना।

(४) **राजपिंडकल्प**–मूर्धाभिषिक्त राजाओ का आहारादि नही लेना।

(५) **कृतिकर्मकल्प**–रत्नाधिक को वन्दन आदि विनय–व्यवहार करना।

(६) **व्रतकल्प**–पाँच महाव्रतो का पालन करना अथवा चार याम का पालन करना। चार याम मे चौथे और पाँचवें महाव्रत का सम्मिलित नाम **'बहिद्धादाण'** है।

(७) **ज्येष्ठकल्प**–जिसकी बड़ी दीक्षा पहले हुई हो वह ज्येष्ठ कहा जाता है। साध्वियो के लिए सभी साधु ज्येष्ठ होते हैं। अत. उन्हें ज्येष्ठ मानकर वन्दना आदि यथोचित व्यवहार करना।

(८) **प्रतिक्रमणमकल्प**–नित्य नियमित रूप से यथासमय दैवसिक एव रात्रिक प्रतिक्रमण करना।

(९) **मासकल्प**–हेमंत–ग्रीष्म ऋतु मे विचरण करते हुए किसी भी ग्रामादि मे एक मास से अधिक नही ठहरना तथा एक मास ठहरने के बाद वहाँ दो मास तक पुन· आकर नहीं ठहरना। साध्वी के लिए एक मास के स्थान पर दो मास का कल्प समझना।

(१०) **चातुर्मासकल्प**–वर्षा ऋतु में चार मास तक एक ही ग्रामादि मे स्थित रहना किन्तु विहार नही करना। चातुर्मास के बाद उस ग्राम मे नही रहना एव आठ मास [बाद मे चातुर्मास काल आ जाने से बारह मास] तक पुन वहाँ आकर नही रहना।

ये दस कल्प प्रथम एव अन्तिम तीर्थंकर के साधु–साध्वियो को पालन करना आवश्यक होता है। अत वे **'कल्पस्थित'** कहे जाते है कल्पस्थित साधु औद्देशिक आहार नही ले सकते, किन्तु अकल्पस्थित मे एक के निमित्त बना हुआ आहार दूसरा ले सकता है। मध्यमवर्ती बाईस तीर्थंकरो के साधु–साध्वियो को चार कल्प का पालन करना आवश्यक होता है, शेष छह कल्पो का पालन करना आवश्यक नहीं होता। उन्हे **अकल्पस्थित** कहा गया है।

चार आवश्यक कल्प–(१) शय्यातरपिडकल्प, (२) कृतिकर्मकल्प, (३) व्रतकल्प, (४) ज्येष्ठकल्प।

छह ऐच्छिक कल्प–(१) **अचेल**–अल्प मूल्य या बहुमूल्य,रंगीन या स्वाभाविक, किसी भी प्रकार के वस्त्र अल्प या अधिक परिमाण मे इच्छानुसार या मिलें जैसे ही रखना।

(२) **औद्देशिक**–स्वयं के निमित्त बना हुआ आहारादि नहीं लेना किन्तु अन्य किसी भी साधर्मिक साधु के लिए बने आहारादि इच्छानुसार लेना।

(३)राजपिंड–मूर्धाभिषिक्त राजाओं का आहार ग्रहण करने मे इच्छानुसार करना।

(४) प्रतिक्रमण–नियमित प्रतिक्रमण इच्छा हो तो करना किन्तु पक्खी चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण अवश्य करना।

(५) मासकल्प–किसी भी ग्रामादि मे एक मास या उससे अधिक इच्छानुसार रहना या कभी भी वापस वहाँ आकर ठहरना।

(६) चातुर्मासकल्प–इच्छा हो तो चार मास एक जगह ठहरना किन्तु सवत्सरी के बाद कार्तिक सुदी पूनम तक एक जगह ही स्थिर रहना। उसके बाद इच्छा हो तो विहार करना, इच्छा न हो तो न करना। इन छह कल्पो का पालन करना उनकी इच्छा पर निर्भर है।

Elaboration—In Agams, ten types of *kalp* (conduct of a monk) is mentioned. It is as under—

(1) Achel Kalp—In practicing it, coloured clothes cannot be kept by a monk and the cloth should not be beyond prescribed limit. It should be white in colour and within prescribed limit in quantity. It should not be costly or bright It should rather be cheap and ordinary.

(2) Auddeshik Kalp—The food prepared for any monks who are of the same order or who can dine with the monks (*sambhogik*) for whom the food has been prepared is called faulty *auddeshik* food. Such food and the like should not be accepted.

(3) Shayyatarpind Kalp—The food and the like of the person who has given place for stay should not be accepted.

(4) Rajapind Kalp—The food from crowned kings should not be accepted

(5) Kritikarm Kalp—One should bow and be humble to senior monks.

(6) Vrat Kalp—A monk should properly practice five major vows or four major vows as the case may be In four major vows, the joint name of fourth and fifth vows is *bahidhadaan*.

(7) Jyeshth Kalp—The person who has been initiated earlier in monkhood is called senior (*Jyeshth*). In case of *Sadhvis* all the monks are senior. So believing them to be senior, they should pay due respect to them in their ascetic conduct.

(8) Pratikraman Kalp—To always practice at the prescribed time the *pratikraman* (the critical analysis of daily conduct) for activities of the day (*daivasik*) and activities of the night (*ratrik pratikraman*)

(9) Maas Kalp—A monk during his wanderings in summer should not stay in any village and the like for more than a month. After that stay of one month, he should not visit that place again for two months for stay. In case of nuns, the period of continuous stay should be considered as two months instead of one month

(10) Chaturmas Kalp—In rainy season a monk should stay in a village and the like for four months and should not move out from that village. Thereafter, he should not stay there any longer and for eight months he should not again come to that village (since the *chaturmas* starts thereafter, this period in fact is of twelve months).

It is essential for monks and nuns of first and the last *Tirhankars* to follow ten *Kalps*. So they are called *Kalpasthit*. They cannot accept *audeshik* food. But among *akalpasthit* monks, one can accept food that has been prepared for another. It is essential for monks and nuns of the other twenty two *Tirthankar* to practice four *Kalps* It is not essential for them to observe remaining six *Kalps*. They are called *Akalpasthit*.

Four essential *kalps* are—(1) *Shayyatarpind kalp*, (2) *Kritikarm kalp*, (3) *Vrat kalp*, (4) *Jyeshth kalp*.

Six optional *kalps* are—**(1) Achel**—To keep cheap, costly, coloured or natural clothes in small or large quantity according to one's need

(2) Auddeshik—Not to accept food specifically prepared for him but to accept according to ones need out of the food prepared for any other monk of the same order.

(3) Rajapind—To conduct oneself according to ones desire in case of food of crowned kings.

(4) Pratikraman—To do *pratikraman* (self-analysis) as prescribed if one so desires but it is mandatory to do fortnightly, *chaturmasik* and *samvatsarik pratikraman*.

(5) Maas Kalp—To stay in any village and like for a month or more as one desires and he can again come back to that village any time for stay.

(6) Chaturmas Kalp—He can stay at any place for four months if he so desires. But after *samvatsari* it is mandatory to stay at one place till bright fortnight of Kartik. Thereafter, he can go away from there if he so desires. If he does not want to move away, he may do so. The practice of these six *kalps* depends on their personal desire

श्रुतग्रहण के लिए अन्य गण में जाने का विधि–निषेध

PROCEDURE FOR GOING OR NOT GOING TO ANOTHER GANA FOR SCRIPTURAL STUDY

२०. (१) भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता–

(१) आयरियं वा, (२) उवज्झायं वा, (३) पवत्तयं वा, (४) थेरं वा, (५) गणिं वा, (६) गणहरं वा, (७) गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२१. गणावच्छेयए य गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए–

नो से कप्पइ गणावच्छेयत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

कप्पइ से गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए–

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२२. आयरिय–उवज्झाए य गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए–

नो से कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

कप्पइ से आयरिय–उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से वियरेजा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२०. (१) यदि कोई भिक्षु (विशेष श्रुत–ज्ञान की प्राप्ति के लिए) स्व–गण को छोड़कर अन्य गण मे जाना चाहे तो उसे–

(१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) प्रवर्त्तक, (४) स्थविर, (५) गणी, (६) गणधर, या (७) गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण में जाना नही कल्पता है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर अन्य गण को स्वीकार करना कल्पता है।

यदि वे आज्ञा दे तो अन्य गण में जा सकता है। यदि वे आज्ञा न दें तो अन्य गण में जाना नहीं कल्पता है।

२१. यदि गणावच्छेदक स्वयं विशेष श्रुत-ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्व-गण को छोडकर अन्य गण में जाना चाहे तो-

उसे अपने पद का त्याग किये बिना अन्य गण मे जाना नही कल्पता है।

अपने पद को त्याग करके अन्य गण मे जाना कल्पता है।

(तथापि) आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना उसे अन्य गण में जाना नहीं कल्पता है।

किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर अन्य गण मे जाना कल्पता है।

यदि वे आज्ञा दे तो अन्य गण में जा सकता है।

यदि वे आज्ञा न दें तो उसे अन्य गण में जाना नहीं कल्पता है।

२२. आचार्य या उपाध्याय यदि स्व-गण को छोडकर अन्य-गण में जाना चाहे है तो-

उन्हे अपने पद का त्याग किये बिना अन्य गण मे जाना नही कल्पता है।

अपने पद को त्याग करके अन्य गण मे जाना कल्पता है।

आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना उन्हें अन्य गण मे जाना नही कल्पता है।

किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर अन्य गण मे जाना कल्पता है।

यदि वे आज्ञा दे तो अन्य गण मे जा सकते है।

यदि वे आज्ञा न दे तो उन्हे अन्य गण मे जाना नही कल्पता है।

20. In case any *bhikshu* (in order to gain special knowledge of scriptures) wants to go to another *gana* (group) of monks after leaving the present group, he cannot go without the consent of—

(1) *Acharya*, (2) *Upadhyaya*, (3) *Pravartak*, (4) *Sthavir*, (5) *Gani*, (6) *Ganadhar*, or (7) *Ganavachhedak*. But, after informing *Acharya* or up to *Ganavachhedak* he can go if they allow.

In case they permit, he can go to another group, but if they do not allow, it is not proper for him to go to another group.

21. In case *Ganavachhedak* himself wants to go to another group for advanced scriptural knowledge—

He is not allowed to do so without resigning from the present group.

He can go only after resigning his post.

Still he cannot go there without informing Acharya upto *Ganavachhedak*.

But he can go there after informing *Acharya* up to *Ganavvachhedak*.

In case they allow, he can go to another group.

In case they do not permit, he is not allowed to go to another group.

22. In case the *Acharya* or *Upadhyaya* desires to go to another group after leaving his present group.

He is not allowed to do so without resigning from the present group.

He, however, can go after resigning his post.

He cannot go to another group without seeking consent of Acharya up to *Ganavachhedak*.

But after telling them he can go if they so permit.

If they allow, he can go to another group.

If they do not permit, he cannot go to another group.

विवेचन : सूत्र २० में यह विधान है कि यदि कोई साधु ज्ञानादि की प्राप्ति या विशेष सयम व तप की साधना हेतु अल्पकाल के लिए किसी अन्य गण के आचार्य या उपाध्याय की उपसपदा (निश्रा) स्वीकार करना चाहे तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आचार्य की स्वीकृति ले। आचार्य समीप में न हों तो उपाध्याय की, उनके अभाव मे प्रवर्त्तक की, उनके अभाव मे स्थविर की, उनके अभाव मे गणी की, उनके अभाव मे गणधर की और उनके अभाव मे गणावच्छेदक की स्वीकृति लेकर के ही अन्य गण मे जाना चाहिए। अन्यथा वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

अध्ययन आदि की समाप्ति के बाद पुन वह भिक्षु स्वगच्छ के आचार्य के पास आ जाता है। क्योंकि वह सदा के लिए नही गया है। सदा के लिए जाने का विधान आगे के सूत्रो में किया गया है।

सूत्र २१-२२ के अनुसार गणावच्छेदक आचार्य, उपाध्याय या आदि पदवीधर भी विशिष्ट अध्ययन हेतु अन्य आचार्य या उपाध्याय के पास जाना चाहे तो वे भी जा सकते हैं किन्तु गच्छ की व्यवस्था समुचित रूप मे चल सके, ऐसी व्यवस्था करके अन्य योग्य भिक्षु को अपना पद सौपकर और फिर उनकी आज्ञा लेकर के ही जा सकते है किन्तु आज्ञा लिए बिना वे भी नहीं जा सकते है। अध्ययन समाप्त होने पर पुन स्वगच्छ में आकर पद ग्रहण कर सकते हैं।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि आचार्यादि की स्वीकृति मिलने पर साधु तो अकेला भी विहार कर अन्य गण मे जा सकता है, किन्तु साध्वी अकेली नहीं जा सकती है। उसे स्वीकृति मिलने पर भी कम से कम एक अन्य साध्वी के साथ ही अन्य गण मे जाना चाहिए। विशेष यह है कि प्रवर्तिनी की आज्ञा भी लेना आवश्यक होता है।

आचार्य आदि सात पदो का स्वरूप इस प्रकार है-

(१) **आचार्य**-गण के अनुशास्ता। स्वय आचार का पालनकर्त्ता और दूसरों से पालन कराने वाले।

(२) **उपाध्याय**-द्वादशाग श्रुत के विशेषज्ञ शिष्यो को आगमों का अभ्यास कराने वाले।

(३) **प्रवर्त्तक**-सघ मे साधु-साध्वियों के सेवा-वैयावृत्य-विहार-अध्ययन आदि की व्यवस्था सँभालने वाले।

(४) स्थविर–जो उपदेश व शिक्षा के द्वारा साधु–साध्वियों को कर्त्तव्य–पालन व संयम में स्थिर रखने का प्रयास करे। वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध व दीक्षावृद्ध तीन प्रकार के स्थविर होते हैं।

(५) गणी–एक आचार्य के अनुशासन मे रहने वाले कुछ साधुओं के गण का स्वामी। एक आचार्य की निश्रा मे अनेक गणी होते है। साधु–साध्वियो के समूह को 'गण' कहते है।

(६) गणधर–समूह की शिक्षा–दीक्षा सम्बन्धी व्यवस्था रखने वाले।

(७) गणावच्छेदक–साधु सघ मे आहार–पानी, औषध, स्थान, प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था करने वाले। (सचित्र स्थानागसूत्र, सूत्र ७ में गणापक्रमण के सात कारणो का उल्लेख है)

Elaboration—In *Sutra* 20, there is a provision that in case a monk wants to accept the command of another *Acharya* or *Upadhyaya* for a short time in order to gain spiritual knowledge or for special ascetic restraints or practice of austerities, it is essential that he should first get consent of his *Acharya*. In case *Acharya* is not nearby, he can seek consent of *Upadhyaya*. If *Upadhyaya* is not available, he can seek consent of *Pravartak*, in his absence of *Sthavir*, in his absence of *Gani*, in his absence of *Ganadhar* and in his absence of *Ganavachhedak*. He can go only after obtaining consent otherwise he shall be liable for *prayashchit*

After completing the study and the like, that *bhikshu* again comes back to the *Acharya* of his original group because he had not gone from there for good The provision for going away forever is in succeeding *Sutras*.

According to *Sutras* 21 and 22, in case *Ganavachhedak, Acharya, Upadhyaya* or any other *bhikshu* holding a post wants to go to another *Acharya* or *Upadhyaya* for special study, he can go but he should hand over his charge (post) to another capable *bhikshu* so that the arrangements can run smoothly in his absence Further he can go only after obtaining their permission Without their permission, he also cannot go. After completing the study he can return to his group and take charge of his earlier post

Here it is to be specially noted that after the permission of *Acharya* and the like, a monk can go to another group alone but a *Sadhvi* (nun) cannot go alone. She shall have to take another nun with her even after the permission Further it is essential for her to take the permission of *pravartini* also.

The nature of seven posts namely *Acharya* and the like is given below—

(1) Acharya—Head of the group. He practices the ascetic restraints himself and ensures their practice by others.

(2) **Upadhyaya**—He is a specialist of twelve *Angas* an teaches Agam to disciples practic.

(3) **Pravartak**—He ensures proper arrangements for service, study, wandering and the like of monks and nuns in his group.

(4) **Sthavir**—He by his guidance and teaching tries to stabilize monks and nuns in performance of their ascetic duties and in remaining steadfast in practice of ascetic restraints.

(5) **Gani**—He is head of some monks who are under one *Acharya*. Many *ganis* are under one *Acharya* A group of Sadhus and Sadhvis is called a *gana*

(6) **Ganadhar**—The monk responsible for arrangements of initiation and study of a group is called *ganadhar*

(7) **Ganavachhedak**—The monk responsible for proper arrangements of collection of food, water, medicines, place of stay, *prayashchit* and the like in the order is called *ganavachhedak* (seven reasons of changing the group can be seen in *Sachhitra Sthanang Sutra, Sutra* 7).

सांभोगिक–व्यवहार के लिए अन्य गण में जाने की विधि

PROCEDURE OF GOING TO ANOTHER GROUP FOR JOINT ACTIVITIES

२३. (१) भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरत्तिए। नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जिताणं विहरित्तए।

(२) ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(३) जत्थुत्तरियं धम्मविणयं लभेज्जा एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो लभेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२४. (१) गणावच्छेइए गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। नो से कप्पइ गणावच्छेइयत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(२) नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(३) ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(४) जत्थुत्तरियं धम्मविणयं लभेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो लभेज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२५. (१) आयरिय–उवज्झाए य गणाओ अवक्कम्म इच्छेज्जा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। नो से कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से आयरिय–उवज्झायत्तं निक्खिवित्ताणं अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(२) नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(३) ते य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

(४) जत्थुत्तरियं धम्मविणयं लभेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। जत्थुत्तरियं धम्मविणयं नो लभेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं गणं संभोगपडियाए उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२३. (१) भिक्षु यदि स्व–गण से निकलकर अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार स्वीकार करना चाहे तो आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण के साथ उक्त व्यवहार करना नही कल्पता है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर उक्त व्यवहार किये जा सकते है।

(२) यदि वे आज्ञा दे तो अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार करे। यदि वे आज्ञा न दे तो उक्त व्यवहार नहीं करे।

(३) यदि वहाँ संयम धर्म की उन्नति होती हो तो अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु जहाँ सयम धर्म की उन्नति न होती हो, वहाँ उक्त व्यवहार करना नही कल्पता है।

२४. (१) गणावच्छेदक यदि स्व–गण से निकलकर अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार स्वीकार करना चाहे तो गणावच्छेदक पद का त्याग किये बिना उक्त व्यवहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु गणावच्छेदक का पद छोडकर अन्य गण के साथ उक्त व्यवहार कर सकता है।

(२) (तथापि) आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण के साथ साभोगिक व्यवहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर उक्त व्यवहार कर सकता है।

(३) यदि वे आज्ञा दें ते अन्य गण के साथ उक्त व्यवहार करें। यदि आज्ञा न दे तो नहीं करें।

(४) यदि वहाँ संयम धर्म की उन्नति होती हो तो अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार कर सकते हैं। किन्तु जहाँ संयम धर्म की उन्नति न होती हो तो उक्त व्यवहार नही करें।

२५. (१) आचार्य या उपाध्याय यदि स्व-गण से निकलकर अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार करना चाहें तो आचार्य, उपाध्याय पद का त्याग किये बिना उक्त व्यवहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु वे अपने पदो का त्याग करके उक्त व्यवहार कर सकते हैं।

(२) आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य गण के साथ उक्त व्यवहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर उक्त व्यवहार कर सकते हैं।

(३) यदि वे आज्ञा दें तो उक्त व्यवहार कर सकते हैं। यदि आज्ञा न दें तो अन्य गण के साथ उक्त व्यवहार नहीं करे।

(४) यदि वहाँ सयम धर्म की उन्नति होती हो तो अन्य गण के साथ साम्भोगिक व्यवहार कर सकते है, किन्तु जहाँ संयम धर्म की उन्नति न होती हो तो उक्त व्यवहार करना नही कल्पता है।

23. (1) In case a *bhikshu* wants to go from his group and stay and dine with another group, he is not allowed to do so without the permission of *Acharya* up to *Ganavachhedak* But after obtaining their consent, he can go and stay and dine with them.

(2) In case they allow, he can join them and in case they do not allow, he cannot

(3) In case there is likelihood of progress in ascetic discipline, one can mix with another group But in case there is no possibility of progress, he is not allowed to mix with them

24. (1) In case *Ganavachhedak* wants to go to another group to stay and dine with them, he is not allowed to do so without resigning his post. But after resigning the post he can go.

(2) Still one is not allowed to go and dine with another group without seeking permission of *Acharya* up to *Ganavachhedak*. But after their consent, he case do so

(3) In case they allow, he can go to that group If they do not allow, he should not go

(4) In case there is progress in ascetic discipline by going there, he can go and dine with them But if there is no progress in ascetic conduct, he should not go to them and mix with them

25. (1) In case *Acharya* or *Upadhyaya* wants to go away from his group and stay and dine with another group, he is not allowed to do so without resigning his post. But after resigning the post he can mix with them.

(2) One is not allowed to stay and dine with another group without seeking the consent of *Acharya* up to *Ganavachhedak*. But after obtaining their consent, he can mix with them

(3) In case they allow, he can stay and dine with them. In case they do not allow, he cannot mix with them.

(4) In case there is progress in ascetic discipline by going there, he can stay and dine with them. But if there is no such progress, he is not allowed to stay and mix with them.

विवेचन : साधु–मण्डली में एक साथ बैठना–उठना, खाना–पीना तथा अन्य दैनिक कर्त्तव्यों का एक साथ पालन करना 'संभोग' कहलाता है।

सभोग के बारह भेद इस प्रकार हैं–

(१) **उपधि**–वस्त्र–पात्र आदि उपकरणो को परस्पर देना–लेना।

(२) **श्रुत**–शास्त्र की वाचना देना–लेना।

(३) **भक्त–पान**–परस्पर आहार–पानी या औषध का लेन–देन करना।

(४) **अंजलि–प्रग्रह**–संयम–पर्याय में ज्येष्ठ साधुओ के पास हाथ जोडकर खडे रहना या उनके सामने मिलने पर मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ना।

(५) **दान**–शिष्य का देना–लेना।

(६) **निमन्त्रण**–शय्या, आहार, उपधि, शिष्य एव स्वाध्याय आदि के लिए निमत्रण देना।

(७) **अभ्युत्थान**–दीक्षा–पर्याय् में किसी ज्येष्ठ साधु के आने पर खडे होना।

(८) **कृतिकर्म**–अजलि–ग्रहण, आवर्तन, मस्तक झुकाकर हाथ जोडना एव सूत्रोच्चारण कर विधिपूर्वक वन्दन करना।

(९) **वैयावृत्य**–अंग–मर्दन आदि शारीरिक सेवा करना, आहार आदि लाकर देना, मल–मूत्र आदि परठना एवं ये सेवाकार्य अन्य भिक्षु से करवाना।

(१०) **समवसरण**–एक ही उपाश्रय में बैठना, सोना, रहना आदि प्रवृत्तियाँ करना।

(११) **सन्निषद्या**–एक आसन पर बैठना अथवा बैठने के लिए आसन देना।

(१२) **कथा–प्रबन्ध**–सभा में एक साथ बैठकर या खडे रहकर प्रवचन देना।

सांभोगिक आदि का अर्थ–एक गण के या अनेक गणो के जिन साधुओ में ये बारह ही प्रकार के व्यवहार परस्पर विहित होते हैं, वे 'साम्भोगिक' साधु कहे जाते हैं।

जिन साधुओं में 'भक्त–पान' के अतिरिक्त ग्यारह व्यवहार होते हैं, वे परस्पर 'अन्य–साम्भोगिक' साधु कहे जाते हैं। जिनका आचार–विचार लगभग समान होता है। वे 'समनोज्ञ' साधु कहे जाते है।

समनोज्ञ साधुओं के साथ ही ये ग्यारह या बारह प्रकार के व्यवहार किये जाते हैं किन्तु असमनोज्ञ अर्थात् पार्श्वस्थादि एवं स्वच्छंदाचारी के साथ ये बारह प्रकार के व्यवहार नहीं किये जाते। लोक–व्यवहार या अपवाद रूप में उनके साथ कुछ व्यवहार किये जा सकते हैं। उनका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। गृहस्थ के साथ ये सभी व्यवहार वर्जित हैं।

साध्वियो के साथ सामान्य स्थिति मे-(१) श्रुत, (२) अंजलि-प्रग्रह, (३) शिष्यदान, (४) अभ्युत्थान, (५) कृतिकर्म, (६) कथा-प्रबन्ध ये छह व्यवहार ही होते है। शेष छह व्यवहार विशेष परिस्थिति में किये जा सकते हैं।

इन सूत्रों में आज्ञा-प्राप्ति के बाद भी एक विकल्प अधिक रखा गया है-"जत्युत्तरियं धम्म-विणयं लभेज्जा एवं से कप्पइ।" इस वाक्य से यह सूचित किया गया है कि जब कोई साधु यह देखे कि इस संघ में रहते हुए, भाव-विशुद्धि के स्थान पर संक्लेश-वृद्धि हो रही है और इस कारण से मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की समुचित साधना नहीं हो रही है, तब वह अपने को संक्लेश से बचाने के लिए तथा ज्ञान-चारित्रादि की वृद्धि के लिए अन्य गण में, जहाँ पर कि अधिक धर्मलाभ की सम्भावना हो, जाने की इच्छा करे तो वह जिनकी निश्रा में रह रहा है, उनकी अनुज्ञा लेकर जा सकता है। किन्तु जिस गच्छ में जाने से वर्तमान अवस्था से संयम की हानि हो, वैसे गच्छ में जाने की जिनाज्ञा नही है। *(बृहत्कल्प भाष्य)*

Elaboration—To sit, dine and perform daily routine in the company of another group is called '*sambhog*'.

Sambhog is of twelve types—

(1) Upadhi—To exchange clothes, pots and the like among themselves

(2) Shrut—To deliver lecture on scripture or to attend lectures on it.

(3) Bhakt—To exchange food, water or medicine among themselves.

(4) Anjali-pragrah—To stand with folded hands before monk senior in period of initiation or to bow to them.

(5) Daan—To offer one's disciple to other or to accept from another.

(6) Nimantran (Invitation)—To invite for accepting bed, food, *upadhi*, disciple, or for study of scripture and the like.

(7) Abhyuthaan—To stand up on the arrival of a senior monk.

(8) Kritikarm—To bow in the prescribed manner uttering the relevant *Sutra* with folded hands and moving around in a circular manner (*aavartan*) bending forward the forehead.

(9) Vaiyavritya—To massage their body, to do physical service, to bring food for them, to discard their stool, urine and the like at proper place or to get these activities done through another *bhikshu*.

(10) Samvasaran—To stay, sleep and perform such like activities in the same *Upashraya*.

(11) Sannishadya—To sit on one platform or piece of cloth (*aasan*) or to offer it for sitting

(12) Katha-Prabandh—To sit or stand together in the congregation and deliver lecture on scriptures.

When the monks of one group do the above said activities with members of another group, they are called *'sambhogik'* monks.

Those monks who do not exchange food, water and the like but perform all the remaining eleven activities among themselves are called *'anya-sambhogik'*. Those monks of a group where thinking and conduct is almost similar to that of the members of another group are called *'Samanojna'*

The said eleven or twelve activities are performed with only *Samanojna* monks. But they are not performed with *asamanojna* monks, *parshavasth* and the like or those residing independent from the group. Some activities can be done with them as a matter of routine conduct or as an exception and there is no *prayashchit* for it All the said activities are totally prohibited with a householder.

In ordinary circumstances, only six activities namely—(1) *shrut*, (2) *anjali-pragreh*, (3) offering of disciple, (4) standing up on arrival of seniors, (5) *kritikaram*, and (6) *katha-prabhandh* can be done with Sadhvis. The remaining six activities can be performed only in special circumstances with them.

Even after obtaining the permission, there is another provision in these Sutras namely **"Jatthuttariyam dhamm vinayam labhejja evam se kappayi."** It is indicated through this *Sutra* that when a *Sadhu* feels that while remaining in this *Sangha*, his quarrelsome attitude is increasing instead of purification of his emotional attitude and, therefore, he is not able to properly practice knowledge, perception and conduct, then in order to protect himself from quarrelsome activity and for development in knowledge, conduct and the like he may go to another group where there is possibility of greater progress in *Dharmik* nature after securing permission from the head under whose guidance he is practicing his ascetic conduct. But where, by going to another groups there is decline in practice of ascetic discipline, he is not allowed to go. *(Vrihatkalp Bhashya)*

वाचना देने के लिए अन्य गण में जाने का विधि-निषेध

PROCEDURE OF GOING OR NOT GOING TO ANOTHER GROUP FOR LECTURE IN SCRIPTURES

२६. (१) भिक्खू य इच्छेज्जा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावेत्तए, नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय-उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(२) ते य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। ते य से नो वियरेज्जा एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(३) नो से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवेत्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से तेसिं कारणं दीवेत्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

२७. (१) गणावच्छेइए य इच्छेज्जा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए, नो से कप्पइ गणावच्छेइयत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(२) नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(३) ते य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(४) नो से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवेत्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से तेसिं कारणं दीवेत्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

२८. (१) आयरिय–उवज्झाए य इच्छेज्जा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए, नो से कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से आयरिय–उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(२) नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं वा जाव गणावच्छेइयं वा अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(३) ते य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। ते य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए।

(४) नो से कप्पइ तेसिं कारणं अदीवेत्ता अन्नं आयरिय–उवज्झायं उद्दिसावेत्तए। कप्पइ से तेसिं कारणं दीवेत्ता अन्नं आयरिय–उज्झायं उद्दिसावेत्तए।

२९. (१) भिक्षु यदि अन्य गण के आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए (या उनका नेतृत्व करने के लिए) जाना चाहे तो, अपने आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है। किन्तु अपने आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर जा सकते है।

(२) यदि वे आज्ञा दें तो उक्त कार्य से जा सकते हैं। यदि वे आज्ञा न दे तो जाना नहीं चाहिए।

(३) आचार्यादि को कारण बताये बिना, अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है। किन्तु उन्हे कारण बताकर जाना कल्पता है।

२७. (१) गणावच्छेदक यदि अन्य गण के आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए (या उनका नेतृत्व करने के लिए) जाना चाहें तो उसे अपना पद छोड़े बिना जाना नहीं कल्पता है। किन्तु अपना पद छोडकर जाना कल्पता है।

(२) अपने आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है। किन्तु उन्हें पूछकर वाचना देने के लिए जा सकते हैं।

(३) यदि वे आज्ञा दें तो अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना कल्पता है। यदि वे आज्ञा न दें तो जाना नही कल्पता है।

(४) उन्हें कारण बताये बिना, अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है, किन्तु कारण बताकर जाना कल्पता है।

२८. (१) आचार्य या उपाध्याय अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए (या उनका नेतृत्व करने के लिए) जाना चाहें तो उन्हें अपना पद छोडे बिना अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है। किन्तु अपना पद छोडकर जाना कल्पता है।

(२) उन्हें अपने आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछे बिना उक्त कार्य हेतु जाना नहीं कल्पता है। किन्तु आचार्य यावत् गणावच्छेदक को पूछकर जा सकते हैं।

(३) यदि वे आज्ञा दे तो अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना कल्पता है। यदि वे आज्ञा न दें तो जाना नही चाहिए।

(४) उन्हे कारण बताये बिना अन्य आचार्य या उपाध्याय को वाचना देने के लिए जाना नही कल्पता है, किन्तु कारण बताकर जाना कल्पता है।

26. (1) In case a *bhikshhu* wants to go to the *Acharya* or *Upadhyaya* of another group to teach him (or to lead them), he is not allowed to go without the permission of his *Acharya* up to *Ganavachhedak*. But after their permission, he can go.

(2) In case they allow, he can go for the above mentioned purpose. If they do not allow, he should not go.

(3) He is not allowed to go for teaching another *Acharya* or *Upadhyaya* without telling the purpose to his own *Acharya* and the like. But he can go after telling the purpose to them of his going there.

27. (1) If a *Ganavachhedak* and the like wants to go to teach the *Acharya* or *Upadhyaya* of another group (or to lead them), he is not allowed to do so without resigning his post. He (however) can go after resigning his post.

(2) He is not allowed to go for teaching another *Acharya* or *Upadhyaya* without seeking the consent of *Acharya* up to *Ganavachhedak* of his group. He can go with their consent.

(3) In case they allow, he can go to teach another *Acharya* or *Upadhyaya*. If they do not allow, he should not go

(4) He is not allowed to go to another *Acharya* or *Upadhyaya* for teaching them without telling the purpose to his *Acharya* and the like.

28. (1) In case *Acharya* or *Upadhyaya* wants to go to another *Acharya* for teaching them (or for leading them) he is not allowed to do so without resigning his post. He can go after resigning his post.

(2) They are not allowed to go for the above said purpose without the permission of their *Acharya* up to *Ganavachhedak*. He, however, can go if the permission has been granted by them

(3) He can go to teach another *Acharya* or *Upadhyaya* if they allow him. If they do not permit, he should not go.

(4) He is not allowed to go to teach another *Acharya* or *Upadhyaya* without telling his *Acharya* and the like the purpose of his going. But he can go after telling them the purpose of his going there.

काल-गत भिक्षु के शरीर को परठने की विधि

PROCEDURE OF DISCARDING THE BODY OF A DEAD BHIKSHU

२९. भिक्खू याराओ वा वियाले वा आहच्च वीसुंभेज्जा, तं च सरीरगं केइ वेयावच्चकरे भिक्खू इच्छेज्जा एगंते बहुफासुए पएसे परिट्ठवेत्तए।

अत्थि य इत्थ केइ सागारियसंतिए उवगरणजाए अचित्ते परिहरणारिहे कप्पइ से सागारिकडं गहाय तं सरीरगं एगंते बहुफासुए पएसे परिट्ठवेत्ता तत्थेव उवनिक्खिवियव्वे सिया।

२९. यदि कोई भिक्षु रात्रि में या विकाल मे कालधर्म को प्राप्त हो जाय तो उस मृत भिक्षु के शरीर को वैयावृत्य करने वाला साधु एकान्त मे सर्वथा अचित्त स्थान पर परठना (व्युत्सर्जित करना) चाहे तब-

यदि वहाँ उपयोग मे आने योग्य गृहस्थ का अचित्त उपकरण (अर्थात् शव को वहन करने योग्य काष्ठ-उपकरण) हो तो उसे प्रातिहारिक (पुनः लौटाने का कहकर) ग्रहण करे और उससे मृत भिक्षु के शरीर को एकान्त मे सर्वथा अचित्त स्थान पर परठकर उस वहन-काष्ठ को यथास्थान रख देना चाहिए।

29. In case, a *bhikshu* dies at night or at an odd time, the monk who was attending on him and serving him should discard it at a lonely place which is totally free from living beings.

In case any lifeless plank (the wooden plank on which a corpse in carried) belonging to a householder is available that can be used for carrying that dead body, he should take it telling him that it shall be returned after the needful is done. He should then carry that dead body on it and after discarding it at a lonely place, which is totally free from living beings; he should place that wooden plank at the place from where it had been taken.

विवेचन : भिक्षु जहाँ पर मासकल्प आदि रहा हो वहाँ उस निवासकाल मे यदि किसी साधु की अनशन के कारण, रोग आदि के कारण रुग्ण रोग साधु अथवा साँप आदि के काटने से मृत्यु हो जाये तो उस शव को वसति या उपाश्रय मे अधिक समय रखना उचित नहीं है, क्योंकि भाष्यकार कहते हैं कि जिस समय मरण हो उसी समय उस शव को बाहर कर देना चाहिए। अत वहाँ वैयावृत्य करने वाले साधु यदि चाहे तो वे रात्रि मे भी परठने योग्य भूमि पर ले जाकर परठ सकते है। परठने के लिए प्रातिहारिक उपकरण की याचना करने का सूत्र मे विधान किया गया है। अत. उस ग्रामादि मे या उपाश्रय मे वहनकाष्ठ या बाँस अथवा डोली आदि जो भी साधन मिल जाये उसका उपयोग किया जा सकता है एव पुन उस उपकरण को लौटाया जा सकता है।

जहाँ कोई शव का दाह-सस्कार करने वाले न हो वहाँ साधु इस सूत्रोक्त विधि के अनुसार कर सकता है, किन्तु जहाँ श्रावकसघ हो या अन्य श्रद्धालु गृहस्थ हो वहाँ वे सासारिक कृत्य समझकर कुछ लौकिक क्रियाएँ करे तो भिक्षु उससे निरपेक्ष रहते है।

भाष्यकार ने साधुओ को निवास-स्थान से दक्षिण-पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) शव के परठने के योग्य शुभ बतलायी है। उक्त दिशा मे परठने योग्य स्थान न मिले तो दक्षिण दिशा मे और उसमे भी योग्य स्थान न मिलने पर दक्षिण-पूर्व दिशा मे परठे। शेष सब दिशाएँ शव-परित्याग करने के लिए अशुभ बतलायी है।' उन अन्य दिशाओ मे शव परठने पर सघ मे कलह, भेद और रोगादि की उत्पत्ति होने की सम्भावना बनी रहती है।

यदि शव को रात्रि मे रखना पडे तो संघ के साधु रात्रिभर जागरण करते है, शव मे कोई भूत-प्रेत प्रविष्ट न हो जाये इसके लिए हाथ और पैर के दोनो अगुठो को डोरी से बाँध देते है, मुख-वस्त्र (मुँहपत्ति) से मुख को ढक देते है और अगुली के मध्य भाग का छेदन कर देते है, क्योंकि क्षत-देह मे भूत-प्रेतादि प्रवेश नही करते है।

शव को ले जाते समय आगे की तरफ पाँव करना, परठते समय मुँहपत्ति, रजोहरण, चोलपट्टक ये तीन उपकरण अवश्य रखना, इत्यादि बातो का भाष्य मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

Elaboration—Where a *bhikshu* is staying for a month or the like, some monk may die there due to fasting, disease or snake bite and the like. The dead body cannot be kept in the *Upashraya* or that place for long According to the author of *bhashya*, the dead body should be taken out immediately after the death Therefore, if the monks attending on the deceased so desire they can carry it to the proper place for discarding the dead body even at night and discard it there. There is a provision in the *Sutra* for begging the article for carrying the dead body as *pratiharik* (assurance of returning the same after the needful is done). So any

wooden carriage, bamboo or cart and the like whichever is available in the village and the like or in *upashraya* can be used for this purpose. After the needful is done, that article can be returned.

In case no one is available to cremate the dead body by burning, it can be disposed of in the manner mentioned above. But at the place where the organization of *Shravak* or any other householder devotee is available and they perform worldly rites considering it as their duty, the *bhikshu* remains un-involved in them.

According to the author of *bhashya*, the south-west direction from the place of stay is considered to be the best for discarding the corpse. In case suitable place is not available in that direction, it should be discarded in the south. In case suitable place is not available even there, it should be disposed in the south-east direction. All the other directions are considered improper for disposing the dead body. In case the dead body is disposed of in these directions, the dispute, division and the like may arise in the religious organization or some disease may possibly develop.

In case the dead body has to be kept for the night, the monks of the order remain awake throughout the night. They tie both the thumbs of the feet so that no ghost enters that dead body The mouth is covered with mouth-cloth (*mukhavastrika*) and the middle part of the finger is pierced because the ghosts do not enter a pierced body.

While carrying the dead body, the feet are kept in front. While disposing the dead body, the mouth cloth, the broom (*rajoharan*), *cholpattak*—these three articles must be kept. Such matters are explained in detail in the *bhashya*

कलह करने वाले भिक्षु से सम्बन्धित विधि-निषेध

RULES RELATING TO DEALING WITH QUARRELSOME BHIKSHU

३०. भिक्खू य अहिगरणं कट्टु तं अहिगरणं अविओसवेत्ता। नो से कप्पइ गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा। नो से कप्पइ बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

नो से कप्पइ गामाणुगामं दुइज्जित्तए, गणाओ वा गणं संकमित्तए, वासावासं वा वत्थए।

जत्थेव अप्पणो, आयरिय-उवज्झायं पासेज्जा बहुस्सुय-बब्भागमं, कप्पइ से तस्संतिए आलोइत्तए, पडिक्कमित्तए, निंदित्तए, गरिहित्तयए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अकरणाए अब्भुट्ठित्तए, अहारिहं तवोक्कम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जित्तए।

से य सुएण पट्ठविए आइयव्वे सिया, से य सुएण नो पट्ठविए नो आइयव्वे सिया। से य सुएण पट्ठविज्जमाणे नो आइयइ, से निज्जूहियव्वे सिया।

३०. यदि कोई भिक्षु (परस्पर) कलह करके उसे उपशान्त न करे तो उसे गृहस्थो के घरों मे भक्त-पान (गोचरी) के लिए जाना-आना नहीं कल्पता है। उसे उपाश्रय से बाहर स्वाध्याय भूमि में या उच्चार-प्रस्रवण भूमि मे तथा ग्रामानुग्राम विहार करना भी नहीं कल्पता है।

उसे एक गण से दूसरे गण मे सक्रमण करना और वर्षावास रहना नहीं कल्पता है।

किन्तु जहाँ अपने बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ आचार्य और उपाध्याय हों उनके समीप जाकर आलोचना करे, प्रतिक्रमण करे, निन्दा करे, गर्हा करे, पाप से निवृत्त हो, पापफल से शुद्ध हो, पुनः पापकर्म न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो और यथायोग्य तप रूप प्रायश्चित्त स्वीकार करे।

यह प्रायश्चित्त यदि श्रुतानुसार दिया जाये तो उसे ग्रहण करना चाहिए, किन्तु श्रुतानुसार न दिया जाये तो उसे ग्रहण नही करना चाहिए। यदि श्रुतानुसार प्रायश्चित्त दिये जाने पर भी जो स्वीकार न करे तो उसे गण से निकाल देना चाहिए।

30. In case some *bhikshu* does not subdue the quarrel he is not allowed to go to the houses of the householders for collecting food and water. He is not allowed to go out from the *Upashraya* for study or for call of nature or to start on wandering from village to village

He is not allowed to go to another group and spend rainy season there

He should go to a *bahu-shrut* (expert in scriptures) or *Acharya* or *Upadhyaya* who are well-versed in *Agams* and critically examine himself before them. He should do *pratikraman* there. He should criticize his bad activities, tell in detail to them and seclude himself from sins. He should purify himself by accepting punishment for his sins.

In case *prayashchit* (punishment) is awarded in proportion to the sin as prescribed in scriptures it should be accepted In case it is not according to the prescribed norm, it should not be accepted If the *bhikshu* does not accept the *prayashchit*, which is strictly according to the prescribed norm, he should be expelled from the *gana* (the organization).

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र का भाव यह है कि भिक्षुओ मे परस्पर कलह या कषाय उत्पन्न हो जाये तो सर्वप्रथम कषाय को उपशान्त करे। कषाय उपशान्त किये बिना वह गोचरी के लिए तो क्या, उपाश्रय से बाहर भी न जाये। उसके बाद आचार्य आदि जो भी बहुश्रुत वहाँ हो, उनके पास आलोचना (प्रायश्चित्त) करके कलह से निवृत्त होना आवश्यक है।

कभी दुराग्रह के कारण कषाय उपशान्त न करे, तब भी अनुशासन के लिए उसे आलोचना किये बिना प्रायश्चित्त दिया जा सकता है। यदि समझाने पर भी वह न समझे एव प्रायश्चित्त या अनुशासन स्वीकार न करे

तो उसे गच्छ से अलग कर देने का भी सूत्र में विधान किया है अर्थात् उसके साथ मांडलिक आहार एवं वन्दना आदि व्यवहार नहीं रखा जाता है।

सूत्र में विनय, अनुशासन एवं उपशान्ति के विधान के साथ ही एक न्यायसगत सूचना की गई है कि प्रायश्चित्त ग्रहण करने वाला भिक्षु बहुश्रुत हो एवं प्रायश्चित्त दाता निष्पक्ष भाव न रखकर आगम विपरीत प्रायश्चित्त उसे देने का निर्णय करे तो वह उस प्रायश्चित्त को अस्वीकार कर सकता है।

इस निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि सूत्र-विपरीत आज्ञा किसी की भी हो, उसे अस्वीकार करने से जिनाज्ञा की विराधना नहीं होती है। *(बृहत्कल्प भाष्य)*

Elaboration—The underlying idea in the present *Sutra* is that in case bitterness or quarrel arises between two or more *bhikshus* initial effort should be to subdue the passions. In the absence of it, he should not go out for collection of alms (food) He should not go out from *Upashraya* at all. Thereafter, he should go to *bahushrut* or *Acharya* and the like whosever is available there and after criticizing his activity in their presence, accepting the *prayashchit*, stop that quarrel which is very essential.

If due to his stubborn, nature, the *bhikshu* does not subdue his passions; the *prayashchit* (punishment) can be awarded to him even without his self-criticism in order to maintain discipline. In case he is not brought round even after great efforts and does not accept the *prayashchit* or code of discipline, there is a provision in the *Sutra* that he can be expelled from the organization. In other words, mutual code of respecting the seniors and dining together in group is not continued with him.

Although humility, discipline and subduing of passions is mentioned in this *Sutra*, yet another judicial approach is clearly indicated. In case the *bhikshu* who is to accept *prayashchit* is *bahushrut* and the one who is awarding the *prayashchit* is not impartial and decides to award *prayashchit* against the prescribed norm stated in *Agams*, he can refuse to accept that *prayashchit*.

This direction clearly indicates, that there is no transgression of the order of *Tirthankar* if any command, which is against the scriptures is not accepted *(Vrihatkalp Bhashya)*

परिहार-कल्पस्थित भिक्षु की वैयावृत्य

SERVICE OF A MONK UNDERGOING PRAYASHCHIT

३१. परिहारकप्पट्ठियस्स णं भिक्खुस्स कप्पइ आयरिय-उवज्झायाणं तद्दिवसं एगगिहंसि पिंडवायं दवावेत्तए। तेण परं नो से कप्पइ असणं वा जाव साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा कप्पइ से अन्नयरं वेयावडियं करेत्तए, तं जहा—

अट्टावणं वा, निसीयावणं वा, तुयट्टावणं वा, उच्चार–पासवण–खेल–जल्ल–सिंघाणाणं विगिंचणं वा विसोहणं वा करेत्तए।

अह पुण एवं जाणेज्जा; छिन्नावाएसु पंथेसु आउरे, झिंझिए, पिवासिए, तवस्सी, दुब्बले किलंते, मुच्छेज्ज वा, पवडेज्ज वा, एवं से कप्पइ असणं वा जाव साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा।

३१. परिहार कल्पस्थित भिक्षु जिस दिन परिहार तप स्वीकार करे उस दिन उसको आचार्य या उपाध्याय एक घर से आहार दिला दे, उसके बाद उसे अशन–पान–खादिम–स्वादिम एक बार या बार–बार देना नही कल्पता है, किन्तु आवश्यक होने पर वैयावृत्य करना चाहिए। जैसे कि–

परिहार–कल्पस्थित भिक्षु को उठना–बिठाना, करवट बदलवाना, उसके मल–मूत्र, श्लेष्म, कफ आदि परठना, मल–मूत्रादि से लिप्त उपकरणो को शुद्ध करना इत्यादि।

यदि आचार्य या उपाध्याय को पता चले कि यह ग्लान, बुभुक्षित, तृषाकुल, तपस्वी, दुर्बल एव क्लान्त होकर गमनागमनरहित मार्ग मे कही मूर्च्छित होकर गिर जायेगा तो उसे अशन यावत् स्वादिम देना या दिलवाना कल्पता है।

31. On the day of practicing *parihar* austerity, the *Acharya* or *Upadhhyaya* should get collected food for him from a house Thereafter he is not allowed to offer him food, water and the like once more or again and again But in case it is necessary he can be helped (physically attended to) in activities like—

Getting up, standing, changing side, discarding stool, urine and the like, cleaning clothes that have been spoiled by stool, urine and the like

In case *Acharya* or *Upadhyaya* comes to know that the said *bhikshu* because of his illness, starvation, thirst, austerities, weakness or fatigue is likely to become unconscious and fall on the way while going for collection of food and the like, it is permitted to provide him food and the like or to help him in collecting the same.

विवेचन : परिहार तप–प्रायश्चित्त स्वीकारने वाला साधु परिहार कल्पस्थित कहलाता है। निशीथसूत्र, उद्देशक ४ में भाष्यकार ने बताया है, जो गृहस्थो या साधुओ के साथ उग्र कलह करता है, सयम विराधना करता है या इतना बड़ा दोष–सेवन करता है कि उसे सघ या गण से बाहर करना पडे, उसे 'पारिहारिक' कहा जाता है। उस दोष का तप रूप मे प्रायश्चित्त स्वीकार करके प्रायश्चित्त के निमित्त तपश्चर्या करने वाला साधु भी 'पारिहारिक' कहा जाता है। आचार्य के अतिरिक्त गच्छ के सभी साधुओ के लिए वह परिहार्य होता है। गच्छ के अन्य साधु उसके साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करते। इसलिए उक्त सूत्रानुसार उसे केवल आचार्य–उपाध्याय ही गृहस्थों के घर से आहार–पानी दिलाते है, किन्तु यदि वह रुग्ण हो जाये तो गण के अन्य साधु भी उसकी वैयावृत्य कर सकते है। इस सूत्र का आशय यह प्रतीत होता है कि भले ही वह बडा दोष–सेवन कर चुका हो,

किन्तु वह आत्म-शुद्धि करना चाहता है, इसलिए गण के आचार्य आदि को उसके साथ संवेदनशीलता एव सहानुभूति रखकर पूर्ण समाधि पहुँचानी चाहिए।

Elaboration—A Sadhu who accepts the *prayashchit* of *parihar* austerities is called *parihar kalp sthit*. In *Nisheeth Sutra, Uddeshak* 4, the author of *bhashya* has stated that the monk who rudely quarrels with householders or monks, who transgresses the code of ascetic restraints or who commits such a grave fault that he has to be expelled from the organization or the group, he is called *pariharik* The monk who accepts the *prayashchit* of that fault in the form of practice of austerities and actually practices it is also a *pariharik*. He is *pariharik* for all the monks in the group except for *Acharya* The other monks of the group have no dealings with him. So, as provided in this *Sutra*, only *Acharya* or *Upadhyaya* help him in collecting alms from houses of householders. But in case he falls ill, the other monks in the organization can also attend to him The underlying idea is that although he has committed a very grave fault but since he wants to purify his self the *Acharya* and the like should be benevolent and helpful to him in remaining in a state of equanimity.

महानदी पार करने के विधि-निषेध PROCEDURE OF CROSSING A RIVER

३२. णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा— (१) गंगा, (२) जउणा, (३) सरयू, (४) एरावई (कोसिया), (५) मही।

अह पुण एवं जाणेज्जा एरावई कुणालाए जत्थ चक्किया एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा, एवं णं कप्पइ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा, तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा। जत्थ एवं नो चक्किया एवं णं नो कप्पइ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा, तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा।

३२. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को महानदी के रूप मे प्रसिद्ध और बहुत जल वाली ये पाँच महानदियाँ एक मास मे दो या तीन बार स्वयं जल मे प्रवेश करके पार करना या नौका आदि में बैठकर पार करना नही कल्पता है। वे ये हैं-(१) गंगा, (२) यमुना, (३) सरयू, (४) ऐरावती (कोशिक), और (५) मही।

किन्तु यदि यह पता चल जाये कि कुणाला नगरी के समीप जो ऐरावती नदी है वह एक पैर जल में और एक पैर स्थल (आकाश) में रखते हुए पार की जा सकती है तो उसे एक मास में दो या तीन बार उतरना या पार करना कल्पता है। यदि उक्त प्रकार से पार न की जा सके तो उस नदी को एक मास में दो या तीन बार उतरना या पार करना नही कल्पता है।

32. *Nirgranths* or *nirgranthis* are not allowed to cross the five famous rivers, which are always full of water two or three times in a month by entering therein or by boat. The rivers are—(1) Ganga, (2) Yamuna, (3) Saryu, (4) Airavati, and (5) Mahi.

But in case he comes to know that Airavati river, which is near Kunala town can be crossed by keeping one foot in water and the other in space, he is allowed to get into it or cross it two or three times in a month In case it cannot be crossed in this manner, he should not cross it or enter it two or three times in a month

विवेचन : जिन नदियो मे निरन्तर जल बहता रहता है और अगाध जल होता है वे 'महानदियाँ' कही जाती हैं। यहाँ दो विशेषण दिये है, महार्णव–जो बहुत गहरी हो, और महानदी–जो समुद्र के समान बहुत जल वाली हो। सूत्रोक्त पाँच के अतिरिक्त सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि अनेक नदियाँ है, उन सबका महार्णव और महानदी पद से संग्रह कर लिया गया है।

कुणाला नगरी के समीप बहने वाली ऐरावती नदी का निर्देश संकेत रूप है, अत जहाँ साधुगण मासकल्प या वर्षाकल्प से रह रहे हो और उस नगर के समीप भी कोई ऐसी उथली नदी हो, जिसका कि जल जघार्ध प्रमाण बहता हो तथा उसके जल मे एक पैर रखते हुए और एक पैर जल से ऊपर करते हुए चलना सम्भव हो तो साधु अन्य निर्दोष मार्ग के निकट न होने पर जा सकता है। *(सचित्र स्थानांगसूत्र, भाग २, स्थान ५, पृष्ठ १३८ पर भी पाँच महानदियो का वर्णन द्रष्टव्य है)*

Elaboration—The streams that continuously flow or that have immense water are called rivers. Here two adjectives have been mentioned namely *Maha-arnav* which means very deep and *mahanadi* which means one that has great quantity of water like a sea In addition to the five rivers mentioned in the *Sutra*, there are Sindhu (Indus), Brahmputra and many other rivers. They should also be considered in the category of Maha-arnav and Mahanadi.

The mention of Airavati *nadi* that flows near Kunala town is as an instance So the place where monks are staying for a month or for rainy season and there is a stream near it whose water is half knee-deep and it is possible to walk through it on feet, then a *Sadhu* can pass through it if no other faultless path is available. *(The description of 5 rivers in Sthanang Sutra, Part II, Sthan 5, page 138 is also worth reading).*

घास से ढकी हुई छत वाला उपाश्रय UPASHRAY THATCHED WITH HAY

३३. से तणेसु वा, तणपुंजेसु वा, पलालेसु वा, पलालपुंजेसु वा, अप्पंडेसु जाव मक्कडासंताणएसु, अहे सवणमायाए नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, तहप्पगारे उवस्सए हेमंत–गिम्हासु वत्थए।

३४. से तणेसु वा तणपुंजेसु वा, जाव मक्कडासंताणएसु उप्पिं सवणमायाए, कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए हेमंत–गिम्हासु वत्थए।

३५. से तणेसु वा, तणपुंजेसु वा जाव मक्कडासंताणएसु अहे रयणिमुक्कमउडेसु, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए।

३६. से तेणेसु वा, तणपुंजेसु वा जाव मक्कडासंताणएसु उप्पिं रयणिमुक्कमउडेसु, कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए।

३३. जो उपाश्रय तृण, तृणपुंज, पराल या परालपुंज से बना हो और जहाँ अडे या मकड़ी के जाले भी न हों, किन्तु उस उपाश्रय के छत की ऊँचाई कानों से नीची हो तो ऐसे उपाश्रय में निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को हेमन्त व ग्रीष्म ऋतु मे रहना नहीं कल्पता है।

३४. यदि पूर्वोक्त प्रकार के उपाश्रय की छत की ऊँचाई कानों से ऊँची हो तो ऐसे उपाश्रय में साधु–साध्वियों को हेमन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में रहना कल्पता है।

३५. यदि पूर्वोक्त प्रकार के उपाश्रय के छत की ऊँचाई खडे व्यक्ति के सिर से ऊपर उठे सीधे दोनों हाथों जितनी ऊँचाई से नीची हो तो ऐसे उपाश्रय मे साधु–साध्वियो को वर्षावास में रहना नहीं कल्पता है।

३६. यदि पूर्वोक्त प्रकार के उपाश्रय के छत की ऊँचाई खडे व्यक्ति के सिर से ऊपर उठे सीधे दोनों हाथो जितनी ऊँचाई से अधिक हो, तो ऐसे उपाश्रय में साधु–साध्वियों को वर्षावास में रहना कल्पता है।

33. *Nirgranths* and *Nirgranthis* are not allowed to stay during winter or summer in an *Upashraya* whose roof is less than the height upto ears even if that *Upashraya* is made of hay and there are no cobwebs or eggs in it.

34. In case the height of such *Upashraya* is more than the height upto ears of the monks or nuns concerned, they can stay there during summer or winter.

35. In case the height of such *Upashraya* is less than the height of the person standing with hands raised above the head, the monks or nuns should not stay there in rainy season.

36. If the height of such *Upashraya* is more than the height of monks or nuns with hands raised above the head, he or she can stay there for rainy season.

विवेचन : सूत्र ३३ मे **'अहे सवण मायाए'** शब्द का अर्थ–अध श्रवण मात्र–कान की ऊँचाई से कम ऊँचाई हो।

सूत्र ३५ में 'रत्नि-मुक्त-मुकुट' शब्द का अर्थ है-दोनो हाथो को ऊँचा करके अजलियों को मिलाने पर हाथ की आकृति मुकुट जैसे आकार की बन जाती हो। कम ऊँचाई वाले घास के मकान मे रहने से खडा होने पर हाथ के स्पर्श से घास के तिनके अथवा मिट्टी आदि के कण बार-बार नीचे गिरते रहते हैं तथा नीची छत वाले उपाश्रय में रहने पर उसे बार-बार झुकना पडेगा। वन्दना एव कायोत्सर्ग आदि मे बाधा पडेगी। इस कारण दोनों प्रकार के उपाश्रय निषिद्ध है। ऐसे उपाश्रय मे हेमंत-ग्रीष्म ऋतु मे १-२ रात्रि रहकर विहार कर देना चाहिए, किन्तु वर्षावास नही करना चाहिए। *(विशेष वर्णन उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म कृत विवेचन, पृष्ठ २२६ पर देखें)*

॥ चौथा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Meaning of word **'ahe savan mayaye'** in Sutra 33. It means that height is less than height upto ears.

In Sutra 35, the meaning of **'ratni-mukt-mukut'** is that when both the hands are raised upwards and the palms of the hands are clasped together, it looks like a crown. In case one stands in a house of lesser height the straw, earth and the like in particles shall fall down again and again when he stands and (inadvertently) touches it. In case the roof of the *Upashraya* is at lower level, he shall have to bend down again and again. It can cause obstruction in paying respect to seniors by bowing and also in *kayotsarg* and the like. So *Upashrayas* of both these types are prohibited During winter or summer, one should move away from such *Upashraya* after the stay of one or two nights He should never spend (four months of) rainy season there. *(For detailed description see commentary by Upadhyaya Kanhaiyalal ji Maharaj, page 226)*

● FOURTH UDDESHAK CONCLUDED ●

पाँचवाँ उद्देशक
FIFTH UDDESHAK

विकुर्वित दिव्य शरीर के स्पर्श से उत्पन्न मैथुनभाव का प्रायश्चित्त

PRAYASHCHIT OF SEXUAL URGE ARISING FROM THE TOUCH OF UNIQUE TEMPORAL BODY

१. देवे य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहिज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

२. देवे य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहिज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

३. देवी य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

४. देवी य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१. यदि कोई देव वैक्रिय शक्ति से स्त्री का रूप बनाकर निर्ग्रन्थ का आलिंगन करे और निर्ग्रन्थ उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो (मैथुन-सेवन नही करने पर भी) भावो से मैथुन-सेवन के दोष का भागी होता है। अत वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

२. यदि कोई देव वैक्रिय शक्ति से पुरुष का रूप बनाकर निर्ग्रन्थी का आलिंगन करे और निर्ग्रन्थी उसके स्पर्श की अनुमोदना करे तो (मैथुन-सेवन नही करने पर भी) भावो से मैथुन-सेवन के दोष की भागी होती है।

३. यदि कोई देवी स्त्री का रूप बनाकर निर्ग्रन्थ का आलिगन करे और निर्ग्रन्थ उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो (मैथुन-सेवन नहीं करने पर भी) भावो से मैथुन-सेवन के दोष को प्राप्त होता है।

४. यदि कोई देवी पुरुष का रूप बनाकर निर्ग्रन्थी का आलिंगन करे और निर्ग्रन्थी उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो (मैथुन-सेवन नही करने पर भी) भावो से मैथुन-सेवन के दोष को प्राप्त होती है।

उक्त चारों ही स्थितियो मे दोष पात्र साधु-साध्वी अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त के भागी होते है।

1. If a *deva* (celestial being) converts himself into a woman with his power and embraces a *nirgranth* and the *nirgranth* appreciates it, he is guilty of the fault of engaging in sex although he has not done so. So, he is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

2. If a celestial being converts himself into a man with his power and embraces a *nirgranthi* and she supports it, then she is guilty of the fault of engaging in sex emotionally although she has not done so.

3. If a goddess transforms herself into a woman and embraces a *nirgranth* and the *nirgranth* supports it, then he is guilty of the fault of engaging in sex emotionally although she has not actually enjoyed sex.

4. If a goddess transforms herself into a man and embraces a *nirgranthi* and she supports it, then that *nirgranthi* is guilty of the fault of engaging in sex emotionally although she has not actually enjoyed sex.

In case of the fault in the above said four states, the concerned *Sadhu* or *Sadhvi* is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit*

आगंतुक भिक्षु के प्रति कर्त्तव्य DUTY TOWARDS NEWLY ARRIVING BHIKSHU

५. भिक्खु य अहिगरणं कट्टु तं अहिगरणं अविओसवेत्ता इच्छेज्जा अन्नं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरत्तिए; कप्पइ तस्स पंच राइंदियं छेयं कट्टु परिणिव्वाविय-परिणिव्वाविय दोच्चं पि तमेवं गणं पडिनिज्जाएयव्वे सिया, जहा वा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।

५. कोई भिक्षु (अपने गण मे) कलह करके उसे उपशान्त किये बिना अन्य गण मे सम्मिलित होकर रहना चाहे तो उस गण के स्थविरों को चाहिए कि उसे पाँच दिन-रात की दीक्षा का छेद देकर और सर्वथा शान्त-उपशान्त करके पुनः उसी गण मे भेज दे अथवा जिस गण से वह आया है, उस गण को जिस प्रकार से प्रतीति (विश्वास) हो उसी तरह व्यवहार करे।

5. A *bhikshu* creates a quarrel in his group and without pacifying it, wants to join another group and stay there Then it is the duty of the *Sthavirs* of that group to reduce his period of monkhood by five days and completely pacify the said quarrel and thereafter to send him to the original group or deal with him according to the desired faith of the original group from where he had come.

विवेचन : भाष्यकार ने बताया है कि स्थविर उपदेश देकर कलहग्रस्त का क्रोध शान्त कर, उसे पाँच दिन-रात का छेद प्रायश्चित्त देकर वापस उसी गण मे लौटा दे। इससे उस गण के निर्ग्रन्थ भिक्षुओ को यह विश्वास भी हो जाता है कि अब इस निर्ग्रन्थ भिक्षु का क्रोध उपशान्त हो गया है।

यदि उपाध्याय तथा आचार्यादि क्रोधित होकर अन्य गण मे चले जाये तो उस गण के स्थविर उन्हे भी कोमल वचनों से प्रशान्त करें, और उपाध्याय का दस अहोरात्र प्रमाण, आचार्य का पन्द्रह अहोरात्र प्रमाण दीक्षा का छेदन कर उन्हें पूर्व के गण में लौटा दे।

कषाय का अत्यन्त हानिकारिक प्रभाव बताते हुए भाष्यकार ने कहा कि देशोनकोटि (करोड पूर्वकाल तक) तपश्चरण करके जिस चारित्र का उपार्जन किया है वह एक मुहूर्त्त प्रमाण काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाता है। अत· निर्ग्रन्थ भिक्षु को कषाय नहीं करना चाहिए। यदि कदाचित् कषाय उत्पन्न हो जाये तो उसे तत्काल शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

Elaboration—The author of *bhashya* has stated that the *Sthavir* by proper coaching should subdue the anger of the person affected by the

quarrel. He should award him *prayashchit* of reduction of the period of monkhood by five days and send him back to the original fold. Such an action creates faith in the mind of *bhikshus* of that fold that the anger of that *bhikshu* has totally subsided.

If the *Upadhyaya* or *Acharya* goes to another group in a fit of anger, the *sthavirs* of that group should pacify him with polite words and return him to the original group after reducing the period of monkhood by ten days in case of *Upadhyaya* and by fifteen days in case of *Acharya*.

Stating the extremely harmful effect of passions, the author of *bhashya* has mentioned that state of passion (*Kashaya*) for just a period of 48 minutes (one muhurat) destroys the merit collected as a result of practice of austerities for a period of little less than one crore *purva* (a *purva* is of 70,56,000 crore years). So a *bhikshu* should never be influenced by passions. In case a passion arises, he should try his best to subdue it immediately.

रात्रिभोजन के अतिचार का प्रायश्चित्त PRAYASHCHIT FOR FAULT OF MEALS AT NIGHT

६. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे संथडिए निव्वितिगिच्छे असणं वा जाव साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहरेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा–अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा णो अइक्कमइ।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

७. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे संथडिए विइगिच्छासमावण्णे असणं वा जाव साइमं वा पडिग्गाहित्ता आहारं आहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा–अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

८. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए निव्वितिगिच्छे असणं वा जाव साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा–अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

९. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए विइगिच्छासमावण्णे असणं वा जाव साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे अह पच्छा जाणेज्जा–अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

६. जिस भिक्षु ने सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा ली है, जो सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध मे सन्देहरहित है, और पूर्ण स्वस्थ–समर्थ है। वह अ शन यावत् स्वादिम ग्रहण कर आहार करता हुआ यदि यह जाने कि अभी सूर्योदय नही हुआ है अथवा सूर्यास्त हो गया है, तो उस समय जो आहार मुँह मे है, हाथ में है, पात्र में ही उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले, तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।

यदि उस आहार को वह स्वय खावे या अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो उसे रात्रिभोजन–सेवन का दोष लगता है। तब वह अनुद्घातिक (लघु) चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

७. पूर्वोक्त प्रतिज्ञा वाला भिक्षु यदि सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध मे सदिग्ध है किन्तु पूर्ण स्वस्थ व समर्थ है, वह अशन यावत् स्वादिम ग्रहण कर आहार करता हुआ यदि यह जाने कि अभी सूर्योदय नही हुआ है या सूर्यास्त हो गया है, तो उस समय जो आहार मुँह मे है, हाथ मे है, पात्र मे है उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

यदि उस आहार को वह स्वय खावे या अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो उसे रात्रिभोजन–सेवन का दोष लगता है। अत वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

८. जिस भिक्षु ने सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा ले रखी है तथा सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध मे असदिग्ध है, किन्तु असमर्थ है, वह भिक्षु अशन यावत् स्वादिम ग्रहण कर आहार करता हुआ यदि यह जाने कि सूर्योदय नही हुआ हैं, या सूर्यास्त हो गया है तो उस समय जो आहार मुँह मे है, हाथ में है, पात्र मे है उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

यदि उस आहार को वह स्वय खावे या अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो उसे रात्रिभोजन–सेवन का दोष लगता है। अत· वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

९. पूर्वोक्त प्रतिज्ञा वाला भिक्षु यदि सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध मे सदिग्ध है, असमर्थ है। वह अशन यावत् स्वादिम ग्रहण कर आहार करता हुआ यह जाने कि 'सूर्योदय नहीं हुआ है' या 'सूर्यास्त हो गया है' तो उस समय जो आहार मुँह मे है, हाथ मे है, पात्र मे है उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले तो वह जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

यदि उस आहार को वह स्वय खावे या अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो उसे रात्रिभोजन–सेवन का दोष लगता है। अत· वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

6. A *bhikshu* has taken a vow to go for collection of alms (food and the like) after sunrise and before sunset and he is free from any doubt about the time of sunrise and sunset and is totally capable of practicing the vow If at the time of taking the food which he has collected, he comes to know that the sun has not yet risen or the sun has already set, he should discard the food which is in his mouth, in his hand or in his pot and purify his mouth In that case he does not transgress the order established by *Jinas*.

In case he takes that food himself or offers it to another monk, he is guilty of the fault of taking meals at night. He is then liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

7. A *bhikshu* has undertaken the above said vow. He is doubtful about sunrise and sunset but is capable of practicing the vow. If while taking the food and the like which he has collected, he comes to know that the sun has not yet arisen or the sun has already set, he should discard the food which is in his mouth, in his hand or in his pot and clean his mouth. In that case he does not transgress the order established by *Jinas*.

In case he takes that food himself or offers it to another *bhikshu*, he is guilty of the fault of taking meals at night. He is then liable for undergoing *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

8. A *bhikshu* has taken a vow to collect food and the like only after sunrise and before sunset. He is confident about sunrise and sunset, but he is not capable In case while taking food and the like, he comes to know that the sun has not yet risen or the sun has already set, he should discard the food which is in his mouth or in his hand or in the pot and clean his mouth In that case he does not transgress the order established by *Jinas*

In case he takes that food himself or gives it to another *nirgranth*, he is guilty of fault of taking meals at night. So he is liable for undergoing *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

9. A *bhikshu* who has taken the above mentioned vow is doubtful about sunrise and sunset. He is uncapable. If at the time of taking food and the like which he has collected, he comes to know that the sun has not yet risen or the sun has already set, he should discard the food which he has in his mouth, in his hand or in his pot and clean his mouth. He, then, does not transgress the order of *Tirthankaras*.

In case he takes that food himself or gives it to another monk, he is guilty of the fault of taking meals at night and is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

विवेचन : प्रस्तुत इन चार सूत्रों में–प्रथम सूत्र स्वस्थ, समर्थ एव सन्देहरहित निर्ग्रन्थ की अपेक्षा से, द्वितीय सूत्र समर्थ किन्तु सन्देहशील निर्ग्रन्थ की अपेक्षा से, तृतीय सूत्र असस्तृत एव निर्विचिकित्स निर्ग्रन्थ की अपेक्षा से तथा चतुर्थ सूत्र असंस्तृत एव विचिकित्स निर्ग्रन्थ की अपेक्षा से है।

Elaboration—Out of the said four *Sutras*, the first one is in the context of a healthy, energetic and confident *nirgranth*, the second relates to sceptic but not tired monk, the third is about *asanstrit* (not capable, not healthy monk who takes sufficient food daily) monk who is also *nirvichikitsa* (confident about sunrise and sunset) while the fourth is in the context of *asanstrit* and *vichikitsa* monk

विशेष शब्दों के अर्थ–संस्तृत–समर्थ, स्वस्थ और प्रतिदिन पर्याप्त भोजन करने वाला भिक्षु। **असंस्तृत**–असमर्थ (थका हुआ) अस्वस्थ (रुग्ण) तथा तेला आदि तपश्चर्या करने वाला दुर्बल तपस्वी भिक्षु। **विचिकित्स**–सूर्योदय अथवा सूर्यास्त होने के विषय मे सशयग्रस्त भिक्षु। **निर्विचिकित्स**–'सूर्योदय हो गया है' या 'सूर्यास्त नही हुआ है'–इस प्रकार के निश्चय वाला निर्ग्रन्थ।

साधु–साध्वी विविध क्षेत्रो मे विहार करते है, उस समय मेघाच्छन्न आकाश मे सूर्य न दिखने पर सूर्योदय का भ्रम हो जाने से साथ चलने वाले सार्थवाह निर्ग्रन्थो या निर्ग्रन्थियो को आहार देना चाहे तो 'सूर्योदय हो गया है' इस प्रकार का निश्चय होने पर आहारादि ग्रहण कर उसका सेवन कर सकता है।

उसी समय बादल दूर हो जाये और उषाकालीन प्रभा दिख जाये या सूर्योदय होता हुआ दिख जाये तो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी को वह आहार परठ देना चाहिए। इसी प्रकार सूर्यास्त के विषय मे भी समझना चाहिए।

MEANING OF IMPORTANT WORDS

Sanstrit—Energetic, healthy monk who takes sufficient food and the like daily. **Asnstrit**—A tired, unhealthy, sick monk or an ascetic who has gone weak due to austerities and three day fast and the like **Vichikitsa**—A *bhikshu* who is doubtful about sunrise and sunset. **Nirvichikitsa**—A *bhikshu* who is fully confident about sunrise and sunset.

Sadhus and *Sadhvis* wander in different areas At that time sun is not visible because of clouds in the sky So a doubt arises about sunrise In case the accompanying householder, wants to give food to the monks or nuns, they can accept and eat it only if they are fully confident that the sun has arisen.

In case at that time, the clouds disappear and the dawn becomes visible and the monk or nun finds that sun is just rising, he or she should discard the food already collected Same should be understood in respect of sunset.

उद्‌गाल सम्बन्धी विवेक **DISCRIMINATION REGARDING OVEREATING**

१०. इह खलु निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा राओ वा वियाले वा सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेज्जा, तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ।

तं उग्गलित्ता पच्चोगिलमाणे राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१०. यदि किसी निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी को रात्रि मे या विकाल सूर्यास्त के पश्चात् संध्या समय मे पानी और भोजन सहित उद्‌गाल (डकार) आये तो उस समय वह उसे थूक दे और मुँह शुद्ध कर ने तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

यदि वह उद्‌गाल को निगल जावे तो उसे रात्रिभोजन-सेवन का दोष लगता है और वह अनुद्‌घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

10. In case a *nirgranth* or *nirgranthi* gets food or water in his or her mouth as a result of *Udgaal* (belching), at night or in the evening after sunset, he should spit it out and clean his mouth. In that case he does not transgresses the order established by the Jinas

If he devours that food, he is guilty of taking food at night and, therefore, is liable for *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

विवेचन . जब कभी कोई मात्रा से अधिक खा-पी लेता है, तब उसे डकार के साथ पेट का अन्न और पानी मुख मे आ जाता है, उसे उद्‌गाल कहते है। भिक्षु को कदाचित् रात मे या सायकाल मे उद्‌गाल आ जाये तो उसे थूककर वस्त्र आदि से मुख को शुद्ध कर लेना चाहिए। उस उद्‌गाल को वापस निगलना नहीं चाहिए। इससे यह शिक्षा भी सूचित होती है कि भोजन हमेशा ही मर्यादित मात्रा मे ही लेना चाहिए।

Elaboration—When a person takes meals and water in large quantity, he belches and some food and water comes to his mouth from the belly It is called *Udgaal*. In case a *bhikshu* gets Udgaal in night or in the evening after sunset, he should spit it out and clean his mouth with a piece of cloth. He should not devour that *Udgaal* (food). This instruction indicates that food should always be taken in limited quantity.

संसक्त आहार के खाने एवं परठने का विधान
PROCEDURE FOR TAKING OR DISCARDING FOOD MIXED WITH LIVING BEINGS

११. निग्गंथस्स य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स अंतो पडिग्गहंसि पाणाणि वा, बीयाणि वा, रए वा परियावज्जेज्जा, तं च संचाएइ विगिंचित्तए वा विसोहित्तए वा, तं पुव्वामेव विगिंचिय विसोहिय, तओ संजयामेव भुंजेज्ज वा, पिएज्ज वा।

तं च नो संचाएइ विगिंचित्तए वा, विसोहित्तए वा, तं नो अप्पणो भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।

११. गृहस्थ के घर में आहार-पानी के लिए गये हुए साधु के पात्र मे कोई प्राणी, बीज या सचित्त रज पड जाये और यदि उसे पृथक् किया जा सके, अथवा विशोधन (साफ) किया जा सके तो उसे पहले पृथक् कर दे या विशोधन कर दे, उसके बाद यतनापूर्वक खावे या पीवे।

यदि उसे पृथक् करना या विशोधन करना सम्भव न हो तो उसका न स्वयं उपभोग करे और न दूसरो को दे, किन्तु एकान्त और प्रासुक स्थडिल भूमि में प्रतिलेखन प्रमार्जन करके परठ दे।

11. A monk goes to a house for collecting food and water. If any living being, seed or dust having life falls in it and it is possible to separate it or clean it, he should first do so and then eat it.

If it is not possible to separate it or clean it, he should neither eat it himself nor offer it to others He should carry it to a lonely place and discard it on such a land which is free from living beings after properly examining it and cleaning it.

विवेचन : गोचरी के लिए जाने पर साधु या साध्वी को सर्वप्रथम आहार लेते समय ग्राह्य अन्नपिण्ड का निरीक्षण करना चाहिए कि यह शुद्ध है या नही ? यदि शुद्ध एव जीवरहित दीखे तो ग्रहण करे, अन्यथा नही। देखकर या शोध कर यतना से ग्रहण करते हुए उक्त अन्न-पिण्ड के पात्र मे दिये जाने पर पुन· देखना चाहिए कि पात्र में अन्न-पिंड देते समय कोई मक्खी आदि तो नही दब गई है, या ऊपर से आकर तो नही बैठ गई है, या अन्य कीडी आदि तो नही चढ गई है ? यदि साधु या साध्वी इस प्रकार सावधानीपूर्वक निरीक्षण न करे तो लघुमास के प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

निरीक्षण करने पर यदि उस आहार में त्रस प्राणी चलते-फिरते दीखे तो उन्हे यतना से एक-एक करके बाहर निकाल देना चाहिए। इसी प्रकार यदि आहार में मृत जीव दीखे या सचित्त बीजादि दीखे और उनका निकालना सम्भव हो तो विवेकपूर्वक निकाल देना चाहिए। यदि उनका निकालना सम्भव न हो जैसे शक्कर मे नमक, घेवर आदि में चींटियाँ तो उसे एकान्त निर्जीव भूमि पर परठ देना चाहिए। किन्तु ऐसा आहार खाना नही चाहिए। यह नियम जीव विराधना की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, आरोग्य की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व रखता है।

Elaboration—When a *Sadhu* or *Sadhvi* goes for collecting food and the like, he or she should first of all examine the food being offered whether it is pure or not ? If it is pure and free from living beings he should accept it, otherwise he should refuse it While accepting the food with proper care and discrimination, he or she should again examine the food and water in his pot that no fly has fallen in it and sunk down or has not sat on it or any ant has not come up to it. In case the *Sadhu* or *Sadhvi* does not observe these precautions strictly, he is guilty of *laghumas prayashchit*.

If on close examination, he finds that mobile living beings are there in that food, he should take them out carefully one by one. Similarly, if dead beings or seeds capable of germination and the like are noticed in that food and it is possible to take them out, he should take them out

carefully In case it is not possible to take them out just as salt mixed in sugar or ants in ghevar (a sweet that has tiny holes) he should discard it at a lonely place where there are no living beings. He should not eat that food. This rule is important in the context of violence to living beings. It is also important in the context of good health

सचित्त जल–बिन्दु गिरे आहार को खाने एवं परठने का विधान

PROCEDURE FOR TAKING OR DISCARDING FOOD HAVING LIVE WATER

१२. निग्गंथस्स य गाहाबइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स अंतो पडिग्गहंसि दए वा, दगरए वा, दगफुसिए वा परियावज्जेज्जा से य उसिणभोयणजाए परिभोत्तव्वे सिया। से य सीयभोयणजाए तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।

१२. गृहस्थ के घर में आहार–पानी के लिए गये हुए साधु के पात्र मे यदि सचित्त जल, जल–बिन्दु या जल–कण गिर जाये और वह आहार उष्ण हो तो उसे खा लेना चाहिए। वह आहार यदि शीतल हो तो न खुद खावे न दूसरो को दे किन्तु एकान्त और प्रासुक स्थडिल भूमि मे परठ देना चाहिए।

12. In case live water, live water drops or live water particle fall in the pot of a *bhikshu* when he is wandering for collection of food, he should eat that food if it is hot. In case that food is cold, he should neither take it himself nor give it to others. He should discard it at a lonely place, which is free from living beings

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र मे यह बताया गया है कि वर्षा से या अन्य किसी की असावधानी के ग्रहण किये हुए आहार पर सचित्त पानी या पानी की बूँदें अथवा बारीक छीटे उछलकर गिर जाये तो भिक्षु यह देखे कि वह आहार उष्ण है या शीतल ? यदि उष्ण है तो पानी की बूँदें अचित्त हो जाने से उस आहार को खाया जा सकता है। जैसे–खिचडी, दूध, दाल आदि गर्म पदार्थ।

यदि ग्रहण किया हुआ भोजन शीतल है तो उसे नही खाना चाहिए किन्तु परठ देना चाहिए। जैसे–खाखरा रोटी आदि।

भाष्यकार का कथन है–कभी–कभी शीतल आहार पर गिरी पानी की बूँदे भी कुछ समय बाद अचित्त हो जाती हैं, अत इसका विवेक स्वयं भिक्षु को ही करना चाहिए। निर्दोष आहार सेवन करे, सदोष आहार हो तो उसे एकान्त में परठ देना चाहिए।

Elaboration—It is mentioned in the present *Sutra* that sometimes live water or live water drops splash and fall on the accepted food due to rain or a little carelessness The *bhikshu* should then examine whether the food is hot or cold. In case it is hot, the water drops become lifeless and, therefore, the food can be taken, for instance hot *khichari*, milk, pulses and the like or any other hot preparation.

In case the accepted food is cold, it should not be taken. It should be discarded, for instance dry bread.

The author of *bhashya* states that sometimes the water drops fallen on cold food also become lifeless after sometime. So such a discrimination should be done by the *bhikshu* himself He should eat only that food which is faultless. He should discard the faulty food at a lonely place.

पशु–पक्षी के स्पर्शादि से उत्पन्न मैथुनभाव का प्रायश्चित्त

PRAYASHCHIT DUE TO SEXY FEELING ON TOUCH OF AN ANIMAL OR BIRD

१३. निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं व पासवणं वा विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा अन्नयरं इंदियजायं परामुसेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा हत्थकम्म–पडिसेवणपत्ता आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१४. निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा अन्नयरंसि सोयंसि ओगाहेज्जा तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

१३. रात्रि मे या विकाल वेला मे मल–मूत्र का परित्याग करते समय या शुद्धि करते समय किसी पशु–पक्षी से यदि निर्ग्रन्थी की किसी इन्द्रिय का स्पर्श हो जाये और उस स्पर्श का वह (यह सुखद स्पर्श है, इस प्रकार) मैथुनभाव से अनुमोदन करे तो उसे हस्तकर्म दोष लगता है। अत. वह अनुदूघातिक मासिक प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

१४. रात्रि मे या विकाल वेला मे मल–मूत्र का परित्याग करते या शुद्धि करते समय कोई पशु–पक्षी यदि निर्ग्रन्थी के किसी स्रोत का अवगाहन करे और उसका वह 'यह अवगाहन सुखद है' इस प्रकार मैथुनभाव से अनुमोदन करे तो (मैथुन–सेवन नहीं करने पर भी) उसे मैथुन–सेवन का दोष लगता है। अतः वह अनुदूघातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

13. A nun goes at night or in the evening after sunset for call of nature and while passing stool or urine some sense organ of the *nirgranthi* touches any animal or bird If she feels pleasure and supports it emotionally, she is guilty of unnatural sexual intercourse. She is, therefore, liable for *anudghatik masik prayashchit.*

14. A *nirgranthi* is discarding her stool or urine at night or in evening after sunset or is washing her private part thereafter. At that time some animal or birds accidentally enters her private part. She says, "That entry is pleasant to me." She supports or appreciates it in this way emotionally as sexual feeling. She is guilty of enjoying sex although actually she has not engaged herself in sex. So she is liable for undergoing *anudghatik chaturmasik prayashchit.*

विवेचन : ये दोनो सूत्र ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा की दृष्टि से हैं। प्रथम सूत्र का भाव है–रात के समय, या संध्या के झुरमुट अँधेरे के समय मल–मूत्र परित्याग करते समय कोई पशु–पक्षी साध्वी के अधोभाग के अंगो का स्पर्श कर

ले और साध्वी उस स्पर्श से मैथुन-सुख की अनुभूति करे, तो इससे हस्तकर्म दोष लगता है। इसका प्रायश्चित्त लघु मासिक तप है। यदि पशु-पक्षी गुह्य प्रदेश में प्रविष्ट हो जाये और उससे रति-सुख का अनुभव करे तो वह मैथुन प्रतिसेवन दोष की भागी होती है। उसकी शुद्धि के लिए गुरु चातुर्मासिक तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है।

Elaboration—These two *Sutras* are in the context of vigilance in practice of vow of *brahmcharya* (celibacy). The underlying idea of first *Sutra* is that at night or at the time of deep darkness in the evening, a nun goes for call of nature. If at that time an animal or bird touches her lower private parts and she experience sexual pleasure, she is guilty of unnatural intercourse. Its *prayashchit* is *laghumasik* austerity If the bird or that small creature enters the private part and she experiences great pleasure in it, she is guilty of the fault of sexual intercourse For its purification, she has to practice *guru chaturmasik* austerity.

साध्वी को एकाकी गमन करने का निषेध PROHIBITION FOR A SADHVI TO MOVE ALONE

१५. नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

१६. नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

१७. नो कप्पइ निग्गंथीए एगाणियाए गामाणुगामं दूइज्जित्तए, वासावासं वा वत्थए।

१८-१९. नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए होत्तए। नो कप्पइ निग्गंथीए अपाइयाए होत्ते।

१५. अकेली निर्ग्रन्थी को आहार के लिए गृहस्थ के घर मे आना-जाना।

१६. अकेली निर्ग्रन्थी को (विचार भूमि) शौच के लिए तथा विहार भूमि-स्वाध्याय के लिए उपाश्रय से बाहर आना-जाना।

१७. अकेली निर्ग्रन्थी को एक गाँव से दूसरे गाँव विहार करना तथा वर्षावास करना नही कल्पता है।

१८-१९. निर्ग्रन्थी को वस्त्ररहित होना एवं पात्ररहित रहना नही कल्पता है।

15. A *nirgranthi* is not allowed to go alone for collecting food.

16. A *nirgranthi* is not allowed to go alone for a call of nature outside the *Upashraya* or for study there.

17. A *nirgranthi* is not allowed to wander alone from one village to the other or to spend (four months of) rainy season alone.

18-19. A *nirgranthi* is not allowed to remain naked and without pots.

साध्वी को प्रतिज्ञाबद्ध होकर आसनादि करने का निषेध
PROHIBITION FOR A NUN TO OBSERVE VOW OF REMAINING IN A PARTICULAR POSTURE

२०. नो कप्पइ निग्गंथीए वोसट्ठकाइयाए होत्तए।

२१. नो कप्पइ निग्गंथीए बहिया गामस्स वा जाव रायहाणीए वा उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय–पगिज्झिय सूराभिमुहीए एगपाइयाए ठिच्चा आयावणाए आयावेत्तए। कप्पइ से उवस्सयस्स अंतोवगडाए संघाडियपडिबद्धाए पलंबियबाहुयाए समतलपाइयाए ठिच्चा आयावणाए आयावेत्तए।

२२. नो कप्पइ निग्गंथीए ठाणाइयाए होत्तए। २३. नो कप्पइ निग्गंथीए पडिमट्ठाइयाए होत्तए। २४. नो कप्पइ निग्गंथीए उक्कुडुयासणियाए होत्तए। २५. नो कप्पइ निग्गंथीए निसज्जियाए होत्तए। २६. नो कप्पइ निग्गंथीए वीरासणियाए होत्तए। २७. नो कप्पइ निग्गंथीए दण्डासणियाए होत्तए। २८. नो कप्पइ निग्गंथीए लगण्डसाइयाए होत्तए। २९. नो कप्पइ निग्गंथीए ओमंथियाए होत्तए। ३०. नो कप्पइ निग्गंथीए उत्ताणियाए होत्तए। ३१. नो कप्पइ निग्गंथीए अम्बखुज्जियाए होत्तए। ३२. नो कप्पइ निग्गंथीए एगपासियाए होत्तए।

२०. निर्ग्रन्थी को सर्वथा शरीर वोसिराकर रहना नही कल्पता है।

२१. निर्ग्रन्थी को ग्राम यावत् राजधानी के बाहर भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्य की ओर मुँह करके तथा एक पैर से खडे होकर आतापना लेना नही कल्पता है। किन्तु उपाश्रय के अन्दर पर्दा लगाकर के भुजाएँ नीचे लटकाकर दोनो पैरो को समतल करके खड़े होकर आतापना ले सकती है।

२२. निर्ग्रन्थी को खडे होकर कायोत्सर्ग करने का अभिग्रह करना। इसी प्रकार २३. एक रात्रि आदि प्रतिमाएँ धारण करने का अभिग्रह करना। २४. उत्कुटुकासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। २५. निषद्याओ से स्थित रहने का अभिग्रह करना। २६. वीरासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। २७. दण्डासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। २८. लकुटासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। २९. अधोमुखी सोकर स्थित रहने का अभिग्रह करना। ३०. उत्तानासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। ३१. आम्र–कुब्जिकासन से स्थित रहने का अभिग्रह करना। उक्त सभी आसन साध्वी के लिए निषिद्ध तथा अकल्पनीय है। ३२. निर्ग्रन्थी को एक पसवाडे से शयन करने का अभिग्रह करना नही कल्पता है।

20. A *nirgranthi* is not allowed to live in a manner wherein she totally discards care of her body.

21. A *nirgranthi* is not allowed to raise her arms in front of the sun and stand on one foot for bearing its heat outside the village up to the capital. But in the Upashraya she can take heat of the sun by keeping her feet close to each after and hanging her arms.

22. A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* (a self-imposed vow) that she will do *kayotsarg* while standing. **23.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* that she will observe *pratima* for entire night and the like. **24.** A *nirgranthi* is not allowed to undertake an *abhigrah* that she will remain in the posture of milking the cow. **25.** A *nirgranthi* is not allowed to undertake an *abhigrah* of remaining in sitting position. **26.** A *nirgranthi* is not allowed to undertake an *abhigrah* of remaining cross-

legged, each leg above the other (*Vir Asan*).**27.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* (self-imposed vow) of remaining straight like a stick (*Dandasan*). **28.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* of remaining in *Lakutasan*. **29.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* of sleeping lying with face downwards and remaining in that position. **30.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* of remaining in *Uttaanasan*. **31.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* of remaining in *Amra-Kubjasan*. All these postures are prohibited for a nun and therefore, they should not practice them. **32.** A *nirgranthi* is not allowed to practice an *abhigrah* of sleeping on one particular side.

विवेचन : सूत्र २२ से ३२ तक साध्वी के लिए निषिद्ध क्रियाओ का उल्लेख है। शरीर को सर्वथा वोसिराने का भाव यह है कि मनुष्य तिर्यंच या देव सम्बन्धी उपसर्ग सहन करने का अभिग्रह करना साध्वी के लिए निषिद्ध है।

साध्वी ग्रामादि के बाहर न जाकर अपने उपाश्रय के अन्दर रहकर सूत्रोक्त विधि से आतापना ले सकती है। समय निश्चित कर लम्बे काल के लिए खडे रहकर कायोत्सर्ग करना भी निषिद्ध है। भिक्षु की १२ प्रतिमाएँ, मोयपडिमा आदि प्रतिमाएँ, जो एकाकी रहकर की जाती हैं, वे भी साध्वी के लिए निषिद्ध हैं। समय निश्चित करके पाँच प्रकार के निषद्यासन से भी बैठना निषिद्ध है। पाँच प्रकार की निषद्या इस प्रकार है–

(१) **समपादपुता**–जिसमे दोनों पैर पुत–भाग जघाओ का स्पर्श करे, (२) **गो–निषद्यका**–गाय के समान बैठना। (३) **हस्तिशुण्डिका**–दोनो पुतों के बल बैठकर एक पैर हाथी की सूँड के समान उठाकर बैठना। (४) **पर्यंकासन**–पद्मासन से बैठना और (५) **अर्ध–पर्यंकासन**–अर्ध–पद्मासन अर्थात् एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखकर बैठना।

सूत्र २६ से ३३ तक कहे गये आठ आसन भी साध्वी को समय निश्चित करके नही करना चाहिए। इन आसनो का स्वरूप दशाश्रुतस्कध ७ में बताया जा चुका है।

भाष्यकार ने बताया है–ये सभी साधनाएँ व आसन आदि, समय सीमा निश्चित करके, तथा अभिग्रह धारण करके नहीं करनी चाहिए, किन्तु समय निर्धारित किये बिना उन आसनो से खडी रहे, बैठी रहे या सोये तो कोई दोष नही है।

वीरासन और गोदोहिकासन स्त्री की शारीरिक सरचना की दृष्टि से अनुकूल नही होते तथा इनके निषेध का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य की सुरक्षा की भावना है। साथ ही लौकिक व्यवहार की रक्षा करना भी।

Elaboration—*Sutra* 22 to 32 describes the activities prohibited for a *Sadhvi* (nun). The underlying idea of totally discarding care of the body is that she should not undertake an *abhigrah* (self-imposed vow) that she shall tolerate any trouble caused by man, animal or celestial beings

A *Sadhvi* can endure the sun as mentioned in scriptures in the *Upashraya* itself but not by going outside. She is also not allowed to practice *kayotsarg* by remaining standing for a very long period. She is not allowed to practice *pratimas* of a *bhikshu, moya pratima* and the like which can be practiced only in loneliness. After fixing the time, she is not allowed to sit in five postures for sitting. The said five types are as under—

(1) **Sampaadputa**—The posture wherein both the feet touch the thigh, (2) **Go-nishadyaka**—To sit like a cow, (3) **Hasti-shutika**—To sit on thighs or knees and raise one foot like the runk of an elephant, (4) **Paryankasan**—To sit in *padmaasan*, and (5) **Ardh-paryankasan**—To sit in *ardh-padmasan*. In other words, *to sit with one foot on the other.*

The eight *aasans* (physical postures) mentioned in *Sutras* 26 to *Sutra* 33 should not be practiced by a nun by fixing the time-limit. The nature of these *aasans* has been mentioned in seventh *Skandh* of *Dashashrut Skandh.*

The author of *bhashya* has mentioned that all the above said exercises and physical practices and the like should not be done by a *nirgranthi* by fixing time-limit and by observing an *abhigrah* (a self-imposed vow). But she does not incur any sin if she does those exercises in sitting, standing or lying down postures without fixing any time-limit

Veerasan and *godohikasan* are not suitable for a woman because of her physical structure. So the primary reason of prohibiting them is safe-guarding the vow of celibacy and also maintaining the worldly behaviour

आकुंचनपट्टक के धारण करने का विधि-निषेध **RULES FOR USING OR NOT USING AAKUNCHAN-PATTAK**

३३. नो कप्पइ निग्गंथीणं आकुंचणपट्टगं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

३४. कप्पइ निग्गंथाणं आकुंचणपट्टगं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

३३. निर्ग्रन्थियो को आकुचनपट्टक रखना या उपयोग मे लेना नही कल्पता है।

३४. निर्ग्रन्थो को आकुंचनपट्टक रखना या उपयोग मे लेना कल्पता है।

33. The *nirgranthis* are not allowed to keep or use an *aakunchan-pattak* (a special piece of cloth for tying waist and feet)

34. *Nirgranths* can keep and use aakunchan-pattak

विवेचन : 'आकुचनपट्टक' का दूसरा नाम '**पर्यस्तिकापट्टक**' है। यह चार अगुल चौडा एव शरीरप्रमाण जितना सूती वस्त्र का होता है। दीवार आदि का सहारा न लेना हो तब इसका उपयोग किया जाता है। जहाँ दीवार आदि पर उदई आदि जीवो की सम्भावना हो और वृद्ध ग्लान आदि को अवलम्बन लेकर बैठना आवश्यक हो तो इस पर्यस्तिकापट्ट से कमर को एव घुटने ऊँचे करके पैरों को बाँध देने पर आरामकुर्सी के समान अवस्था हो जाती है और दीवार का सहारा लेने के समान शरीर को आराम मिलता है।

पर्यस्तिकापट्टक लगाकर इस तरह बैठना गर्वयुक्त आसन होता है। साध्वी के लिए इस प्रकार बैठना शरीर-संरचना के कारण लोक-निन्दित होता है। साधु को भी सामान्यतया पर्यस्तिकापट्टक नही लगाना चाहिए, क्योंकि विशेष परिस्थिति में उपयोग करने के लिए यह औपग्रहिक उपकरण है।

Elaboration—*Aakunchan-pattak* is also called *paryastika-pattak*. It is a cotton cloth equal in length to the person's height and four *Anguls*

wide. It is used when one does not want to take support of the wall. In case there is possibility of growth of mobile or other living beings on the wall and it is necessary for an old sick monk to sit with its support, he ties his feet and waist with that piece of cloth (*paryastikapatt*) by raising his knees. His posture is then similar to an easy chair and he feels comfort similar to that of support of a wall.

To sit with *paryastika-pattak* in this state is a posture exhibiting pride. It is condemned by the public if a *Sadhvi* sits in such a state in view of her physical structure. A monk also should not ordinarily use a *paryastika-pattak* because its use is allowed only in exceptional circumstances.

अवलम्बनयुक्त आसन के विधि-निषेध

RULES FOR USING AND NOT USING SEAT WITH SUPPORT

३५. नो कप्पइ निग्गंथीणं सावस्सयंसि आसणंसि आसइत्तए वा तुयट्टित्तए वा।

३६. कप्पइ निग्गंथाणं सावस्सयंसि आसणंसि आसइत्तए वा तुयट्टित्तए वा।

३५. निर्ग्रन्थी को सावश्रय (अवलम्बनयुक्त) आसन पर बैठना या शयन करना नही कल्पता है।

३६. निर्ग्रन्थ को सावश्रय आसन पर बैठना या शयन करना कल्पता है।

35. A *nirgranthi* is not allowed to sit or sleep on a seat, which has some support.

36. A *nirgranth* can sit or sleep on a seat that has support.

विवेचन : इन सूत्रो मे अवलम्बनयुक्त कुर्सी जैसे-आसनो का वर्णन है। आवश्यक होने पर भिक्षु इन साधनो का उपयोग कर सकता है। इनके न मिलने पर पर्यस्तिकापट्ट का उपयोग किया जाता है। साध्वी को अवलम्बनयुक्त इन आसनो का निषेध किया गया है।

भाष्यकार के अनुसार साधु-साध्वी कभी सामान्य रूप से भी कुर्सी आदि उपकरण उपयोग में लेना आवश्यक समझे तो अवलम्बन लिए बिना वे उनका विवेकपूर्वक उपयोग कर सकते है। इन सभी निषेधो के पीछे ब्रह्मचर्य की दृष्टि तथा लोको मे गर्वयुक्त आसन प्रतीत होना मुख्य कारण है।

Elaboration—In these *Sutras* use of a seat with back-rest has been discussed. A *bhikshu* can use such seat if it is essential. If they are not available, he can use *paryastika-pattak*. A *Sadhvi* is prohibited from using seats that have support.

According to author of *bhashya* the monks and nuns can ordinarily use the articles that have no support in case they feel essential to use chair and the like discriminately. The underlying idea in all prohibitions is safe-guarding of celibacy and avoidance of flaunting snobbery.

सविसाण पीठ आदि के विधि-निषेध RULES FOR USING AND NOT USING WOODEN PLANK

३७. नो कप्पइ निग्गंथीणं सविसाणंसि पीढंसि वा फलगंसि वा आसइत्तए वा तुयट्टित्तए वा।

३८. कप्पइ निग्गंथाणं सविसाणंसि पीढंसि वा फलगंसि वा आसइत्तए वा तुयट्टित्तए वा।

३७. साध्वियों को सविषाण पीठ (बैठने की काष्ठ चौकी जिस पर सींग के आकार के छोटे-छोटे ऊँचे उठे हुए स्तम्भ लगे होते हैं आदि) या फलक (सोने का पाटा आदि) पर बैठना या शयन करना नहीं कल्पता है।

३८. साधुओं को सविषाण पीठ पर या फलक पर बैठना या शयन करना कल्पता है।

37. Sadhvis are not allowed to sit on a wooden seat (on which small raised horn-like pillars are fixed (*Sa-vishaan peeth*) or a plank for sitting and sleeping.

38. Monks can sit or sleep on *Savishaan* seat or plank.

सवृंत तुम्ब-पात्र के विधि-निषेध RULES FOR USE OF GOURD LIKE SANVRIT POT

३९. नो कप्पइ निग्गंथीणं सवेण्टयं लाउयं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

४०. कप्पइ निग्गंथाणं सवेण्टयं लाउयं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

३९. साध्वियों को सवृन्त अलाबु (डण्ठलयुक्त तुम्बी) रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

४०. साधुओं को सवृन्त अलाबु रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

39. *Sadhvis* are not allowed to keep and use *Savrint alabu*—a gourd with protruding stump.

40. Monks are allowed to keep and use *Savrint alabu*.

सवृंत पात्रकेसरिका के विधि-निषेध RULES FOR USING / NOT USING SANVRIT-PATRAKESERIKA

४१. नो कप्पइ निग्गंथीणं सवेण्टयं पायकेसरियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा।

४२. कप्पइ निग्गंथाणं सवेण्टयं पायकेसरियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा।

४१. साध्वियों को सवृन्त पात्रकेसरिका रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

४२. साधुओं को सवृन्त पात्रकेसरिका रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

41. *Sadhvis* are not allowed to keep and use *Sanvrit-patrakeserika*

42. Monks are allowed to keep and use *Savrint-patrakeserika*.

विवेचन : काठ या लकड़ी के एक सिरे पर वस्त्र-खण्ड को बाँधकर पात्र या तुंबी आदि के भीतरी भाग को पोंछने के या प्रमार्जन करने के उपकरण को 'सवृन्त पात्रकेसरिका' कहते हैं। ब्रह्मचर्य के बाधक कारणो की अपेक्षा से ही साध्वी को इसके रखने का निषेध किया गया है। जिस तरह साध्वी दण्डरहित प्रमार्जनिका रखती है, वैसे ही वह दण्डरहित पात्रकेसरिका भी रख सकती है।

Elaboration—A piece of cloth is tied at the end of a piece of wood or stick and it is used for cleaning inner surface of the pot or the gourd-like article. It is called *Savrint-patrakeserika*. *Sadhvis* are prohibited from its use as it disturbs practice of *brahmcharya*. Just as a *Sadhvi* can keep cleaning broom, which has no stick, similarly she can keep *patra-keserika* which has no stick

दण्डयुक्त पादप्रोंछन के विधि–निषेध RULES FOR USE OF FOOT CLOTH HAVING STICK

४३. नो कप्पइ निग्गंथीणं दारुदण्डयं पायपुंछणं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

४४. कप्पइ निग्गंथाणं दारुदण्डयं पायपुंछणं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

४३. निर्ग्रन्थी को दारुदण्ड वाला (काष्ठ की डंडी वाला) पादप्रोछन (पाँव की धूल आदि पोंछने का उपकरण) रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

४४. निर्ग्रन्थ को दारुदण्ड वाला 'पादप्रोछन' रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

43. A *nirgranthi* is not allowed to keep and use foot-towel (a piece of cloth used to clean dust from the feet) that has a stick.

44. A *nirgranth* can keep and use a foot-towel that has a wooden stick fixed.

परस्पर मोक आदान–प्रदान विधि–निषेध RULES FOR EXCHANGE OF URINE

४५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अन्नमन्नस्स मोयं आपिबित्तए वा आयमित्तए वा नन्नत्थ गाढाऽगाढेसु रोगायंकेसु।

४५. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को एक–दूसरे का मूत्र पीना या उससे मालिश करना नहीं कल्पता है, केवल उग्र रोग एवं आतको (आकस्मिक बीमारी) में कल्पता है।

45. Monks (*Nirgranths*) and *Nirgranthis* are not allowed to drink the urine of each other or to massage with it. It can be used only in dreadful illness or sudden disease

विवेचन : अनेक रोगो में गाय, बकरी आदि का तथा अनेक रोगो मे स्वय के मूत्रपान का चिकित्साशास्त्र मे विधान किया गया है। इन कारणो से कभी साधु–साध्वी को परस्पर मूत्र के आदान–प्रदान करने का भी प्रसंग आ सकता है। इसी अपेक्षा से सूत्र मे विधान किया गया है कि सामान्य स्थिति मे परस्पर लेन–देन करने का निषेध है, किन्तु वैद्य के परामर्श पर रक्तविकार, कोढ आदि कष्ट–साध्य रोगों मे अथवा सर्प–दंश या शीघ्र प्राणहरण करने वाले आतंक होने पर साधु और साध्वियों को मूत्र पीने की और शोथ आदि रोग होने पर उससे मालिश करने की छूट प्रस्तुत सूत्र में दी गई है।

Elaboration—In the literature relating to medical science there is a provision that in many types of diseases one's own urine can be used for curing the disease and in several diseases the urine of cow, goat and the

like can be used. In view of this sometimes a situation of exchanging urine by monks and nuns (*Sadhvis*) among themselves may arise. It is, therefore, provided in this *Sutra* that they are not permitted to exchange urine in ordinary circumstances. But on the advice of physician in diseases like blood cancer, leprosy and the like, which are difficult to be treated or in snake-bite or in a dreadful situation wherein one is likely to lose his life soon, the *Sadhus* and *Sadhvis* are allowed to drink urine and to massage with it in case of aedema.

आहार–औषध बासी रखने के विधि–निषेध

RULES FOR KEEPING OR NOT KEEPING FOOD AND MEDICINES OVER NIGHT

४६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासियस्स आहारस्स तयप्पमाणमेत्तमवि, भूइप्पमाणमेत्तमवि, तोयबिन्दुप्पमाणमेत्तमवि आहारमाहारेत्तए, नन्नत्थ गाढाऽगाढेसु रोगायंकेसु।

४७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासिएणं आलेवणजाएणं गायाइं आलिंपित्तए वा विलिंपित्तए वा, नन्नत्थ गाढाऽगाढेहिं रोगायंकेहिं।

४८. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पारियासिएणं तेल्लेण वा जाव नवणीएण वा गायाइं अब्भंगित्तए वा मक्खित्तए वा, नन्नत्थ गाढाऽगाढेहिं रोगायंकेहिं।

४६. निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियो को **परिवासित** (रात्रि मे रखा हुआ) आहार **त्वक्–प्रमाण** (तिल–तुष जितना) **भूति–प्रमाण** (एक चुटकी जितना) खाना तथा बिन्दु–प्रमाण जितना पानी भी पीना नही कल्पता है, केवल उग्र रोग एव आतंक मे कल्पता है।

४७. इसी प्रकार अपने शरीर पर सभी प्रकार के परिवासित लेपन एक बार या बार–बार लगाना नही कल्पता है।

४८. इसी भाँति अपने शरीर पर परिवासित तेल यावत् नवनीत को चुपडना या मलना नही कल्पता है। विशेष केवल उग्र रोग या प्राणघातक रोगातक की स्थिति मे कल्पता है।

46. *Nirgranths* and *nirgranthis* are not allowed to use food kept at night (*parivasit food*) even equivalent to a paddy seed (*tvak-praman*) or a pinch-full (bhooti-praman) or to drink a drop of water Only in a dreadful disease or serious situation they can use it.

47. Similarly, they are not allowed to use *parivasit* paste once or more on the body.

48. Similarly, they are not allowed to apply *parivasit* oil up to butter on the body or to massage with it. As an exception it is allowed in case of dreadful diseases or critical illness.

विवेचन : निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को खाने-पीने योग्य और लेपन-मर्दन करने योग्य पदार्थों का सचय करना तथा रात्रि मे उन पदार्थों का लाना, रखना एव उनका उपयोग करना उत्सर्ग मार्ग (सामान्य स्थिति) में सर्वथा निषिद्ध है और इन कार्यों के लिए प्रायश्चित्त का भी विधान है।

उग्र रोग या आतंक जैसी विशेष स्थिति आने पर पूर्वोक्त अत्यन्त आवश्यक पदार्थों के सचय करने का तथा रात्रि मे परिवासित रखने का एवं उनके उपयोग करने का अपवाद मार्ग मे ही विधान है।

इस सूत्र पर भाष्यकार लिखते हैं-गीतार्थ साधु यदि यह जान ले कि निकट भविष्य में उग्र रोग या आतंक होने वाला है, महामारी या सेनाओं के आतंक से गाँव खाली हो रहे है, स्थविर रुग्ण हैं, चलने मे असमर्थ है, आवश्यक औषधियाँ आसपास के गाँवो मे न मिलने के कारण दूर गाँवों से लाई गई हैं, इत्यादि कारणो से उक्त पदार्थों का सचय कर सकते है, रात्रि मे परिवासित रख सकते है एवं उनका (दिन मे) उपयोग भी कर सकते हैं।

आलेपन-शरीर मे जलन आदि होने पर सर्वांग में लेप करना।

विलेपन-मस्तक आदि विशिष्ट अग पर लेप करना।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को सौन्दर्य-वृद्धि के लिए किसी प्रकार के आलेपन-विलेपन का प्रयोग नही करना चाहिए। केवल रोगादि की शान्ति के लिए लेप्य पदार्थों का प्रयोग कर सकते है।

Elaboration—*Nirgranths* and *nirgranthis* are totally prohibited to keep a stock of eatables or articles used as paste or massage for the body, to bring such articles at night, to keep them and to use them in ordinary circumstances (*utsarg marg*) There is also a provision of *prayashchit* for such activities

The exception is only in case of dreadful illness and critical condition when the above said and extremely essential articles can be stored, kept at night and used in exceptional circumstances

The author of *bhashya* comments on this Sutra as under—In case a learned, experienced monk comes to know that a dreadful disease or calamity is going to appear in the near future or the villages are becoming empty due to plague or the terror created by armed forces and that the *Sthavir* is ill and unable to move and that the essential medicines have been brought from distant village as they were not able in the villages nearby, he can keep stock of such articles, store them at night and use them in the day

Aalepan—It means to apply paste on all parts of the body at the time of burning sensation and the like.

Vilepan—It means to apply on forehead and the like or on special parts of the body.

The monks and nuns should not use any type of *aalepan* or *vilepan* (paste) for increasing the beauty of the looks Such articles can be used only for pacifying disease and the like.

परिहारिक भिक्षु का दोष-सेवन एवं प्रायश्चित्त FAULT OF A PARIHARIK BHIKSHU AND ITS PRAYASHCHIT

४९. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, से य आहच्च अइक्कमेज्जा, तं च थेरा जाणिज्जा अप्पणो आगमेणं अन्नेसिं वा अंतिए सोच्चा, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नाम ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

४९. परिहारकल्पस्थित भिक्षु को यदि स्थविरों की वैयावृत्य के लिए तथा सघ आदि के अन्य अनिवार्य कारण से कहीं बाहर जाना पड़े और कदाचित् परिहारकल्प मे कोई दोष-सेवन करना पडे, यह वृत्तान्त स्थविर को ज्ञात होने पर वैयावृत्य से निवृत्त होने के बाद उसे अत्यल्प (साधारण) प्रस्थापना प्रायश्चित्त देना चाहिए।

49. In case a *bhikshu* undergoing *pariharık kalp* (as punishment for his sins), has to go out for servıce of *Sthavirs* or for an unavoidable purpose of the organisation and the *Sthavir* comes to know that he has committed some fault during that period, he should be awarded very minor *prayashchit* after he becomes free from service of *Sthavırs*

पुलाक-भक्त ग्रहण हो जाने पर गोचरी जाने का विधि-निषेध
PROCEDURE FOR COLLECTING FOOD AFTER COLLECTION OF PULAK BHAKT

५०. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठाए अन्नयरे पुलागभत्ते पडिग्गाहिए सिया सा य संथरेज्जा, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवेत्तए, नो से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसित्तए।

सा य न संथरेज्जा, एवं से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसित्तए।

५०. निर्ग्रन्थी आहार के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे और वहाँ यदि पुलाक-भक्त (अत्यन्त सरस आहार) प्राप्त हो जाये और यदि उस प्राप्त आहार से निर्वाह हो जाये तो उस दिन उसी आहार से काम चलाये, किन्तु दूसरी बार आहार के लिए गृहस्थ के घर में न जावे। यदि उस गृहीत आहार से निर्वाह न हो सके तो दूसरी बार आहार के लिए जाना कल्पता है।

50. A *nirgranthi* enters a house for collecting food. She gets very tasty food (*pulaak bhakt*) from there and she ıs able to meet her requirement with it. In that case she should live wıth that much food and should not go to the house second time for collecting food. In case she ıs not able to satisfy her hunger with that food, she ıs allowed to go agaın for collecting food.

विवेचन : 'पुलाक' शब्द का सामान्य अर्थ है-'असार पदार्थ', किन्तु यहाँ कुछ विशेष अर्थ लिया है। जिनके सेवन से संयम निस्सार हो जाये अथवा जिनशासन, संघ और धर्म की अवहेलना या निन्दा हो वे सब खाद्य-पदार्थ पुलाक-भक्त कहे जाते हैं। भाष्य में विस्तृत अर्थ करते हुए पुलाक-भक्त तीन प्रकार का बताया है-

(१) जिन धान्यों के खाने से शारीरिक शक्ति व बल आदि की वृद्धि न हो ऐसे शालि, बल्ल आदि 'धान्यपुलाक' कहे जाते है।

(२) लहसुन, प्याज आदि तथा लोंग, इलायची, इत्र आदि जिनकी उत्कट गन्ध हो, वे सब पदार्थ 'गन्धपुलाक' कहे जाते हैं।

(३) दूध, इमली का रस, द्राक्षारस आदि अथवा अति सरस, पौष्टिक एवं अनेक रासायनिक औषध–मिश्रित खाद्य–पदार्थ 'रसपुलाक' कहे जाते हैं। यहाँ रसपुलाक की अपेक्षा सूत्र का विधान समझना चाहिए।

'रसपुलाक' के अति सेवन से अजीर्ण अथवा उत्तेजना व उन्माद बढने की प्राय: सम्भावना रहती है। अत: उस दिन उससे निर्वाह हो सकता हो तो फिर भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए। यदि वह रस–पुलाकभक्त बहुत कम मात्रा मे हो और उससे निर्वाह न हो सके तो पुनः भिक्षा ग्रहण की जा सकती है। जो विधि निर्ग्रन्थी के लिए है, वही निर्ग्रन्थ के लिए भी है।

॥ पाँचवाँ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The ordinary meaning of word *pulaak* is an article, which has no useful element. But here it has some special meaning. All the eatables, the use of which pollute the ascetic restraint or brings the organisation, and order of *Tirthankar* and *Dharma* in criticism and bad name are called *pulaak-bhakt*. Explaining in detail its meaning in the *bhashya, pulaak-bhakt* has been stated to be of three types—

(1) The food grains consumption of which does not bring any improvement in physical energy Such paddy or corn is called *Dhanya-pulaak*.

(2) Garlic, onion and the like and cloves and cardamum which give out very pungent smell are called *gandh-pulaak*.

(3) Milk, tamarind juice, grape juice and the like which are very tasty, energetic and the food articles which contain mixture of many chemical products are called *ras-pulaak* Here the provision in the *Sutra* should be considered in the context of *ras-pulaak*.

Ordinarily, there is a possibility of indigestion or increase in peevishness or intoxication by consumption of *ras-pulaak* in large quantity. So in case he can pass that day with that much food, he should not go again for collecting food. In case that tasty food (*ras-pulaak*) is in very little quantity and he cannot live with it or satisfy hunger with it, the food can be collected again. The procedure prescribed for the *nirgranthi* applies to *nirgranths* also.

● FIFTH UDDESHAK CONCLUDED ●

छठा उद्देशक
SIXTH UDDESHAK

छह निषिद्ध वचन **SIX TYPES OF PROHIBITED WORDS**

१. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं वइत्तए, तं जहा–

(१) अलियवयणे, (२) हीलियवयणे, (३) खिंसियवयणे, (४) फरुसवयणे, (५) गारत्थियवयणे, (६) विओसवियं वा पुणे उदीरित्तए।

१. निर्ग्रन्थों निर्ग्रन्थियो को ये छह प्रकार के वचन बोलना नही कल्पता है। यथा–

(१) अलीक वचन, (२) हीलित वचन, (३) खिसित वचन, (४) परुष वचन, (५) गार्हस्थ्य वचन, (६) कलहकारक वचन का बार–बार कथन।

1. Monks and Nuns are not allowed to utter six types of words—

(1) False (*aleek*) words, (2) Insulting (*Heelit*) words, (3) Angry (*khinsit*) words or words that cause anger, (4) Rude (*parush*) words, (5) Words indicating earlier relationship at the time of life as householder (*garhasthya vachan*) such as calling as father, son, maternal uncle and the like, (6) Uttering such words again and again that may cause quarrel

विवेचन : (१) **अलीक वचन**–असत्य या मिथ्या भाषण। (२) **हीलित वचन**–दूसरे की अवहेलना करने वाला वचन। (३) **खिंसित वचन**–रोषपूर्ण कहे जाने वाले या रोष उत्पन्न करने वाले वचन। (४) **परुष वचन**–कर्कश, रूक्ष, कठोर वचन। (५) **गार्हस्थ्य वचन**–गृहस्थ–अवस्था के सम्बन्धियो को पिता, पुत्र, मामा आदि नामो से पुकारना। (६) **कलह–उदीरणा वचन**–क्षमा–याचनादि के द्वारा कलह उपशान्त हो जाने के बाद भी कलहकारक वचन कहना **'व्युपशमित–कलह–उदीरण वचन'** है।

Elaboration—(1) Aleek Vachan—False speech, **(2) Heelit Vachan**—Such words which insult others, **(3) Khinsit Vachan**—The words spoken in a fit of anger or those words that may cause bitterness, **(4) Parush Vachan**—Rude, harsh words, **(5) Garhasthya Vachan**—To call relatives by their relative status as father, son, maternal uncle and the like, **(6) Kaleh udeerna Vachan**—To utter quarrelsome words even after the quarrel has actually subsided by mutual exchange of forgiveness.

असत्य आक्षेपकर्त्ता को प्रायश्चित्त का विधान **PROVISION OF PRAYASHCHIT FOR FALSE ACCUSATION**

२. कप्पस्स छ पत्थारा पण्णत्ता, तं जहा–

(१) पाणाइवायस्स वायं वयमाणे, (२) मुसावायस्स वायं वयमाणे, (३) अदिन्नादाणस्स वायं वयमाणे, (४) अविरइवायं वयमाणे, (५) अपुरिसवायं वयमाणे, (६) दासवायं वयमाणे।

इच्चेए कप्पस्स छ पत्थारे पत्थरेत्ता सम्मं अप्पडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते सिया।

२. **कल्प**–साध्वाचार के छह विशेष प्रकार के **प्रस्तार**–प्रायश्चित्त स्थान होते है, यथा–(१) प्राणातिपात का आरोप लगाये जाने पर, (२) मृषावाद का आरोप लगाये जाने पर, (३) अदत्तादान का आरोप लगाये जाने पर, (४) ब्रह्मचर्य भंग करने का आरोप लगाये जाने पर, (५) नपुंसक होने का आरोप लगाये जाने पर, (६) दास होने का आरोप लगाये जाने पर।

संयम के इन विशेष प्रायश्चित्त स्थानों का आरोप लगाकर उसे सम्यक् प्रमाणित नहीं करने वाला साधु उसी प्रायश्चित्त स्थान का भागी होता है।

2. Kalp—There are six types of special modalities of *prayashchit* in conduct of ascetic discipline namely—(1) For accusation of causing violence to life, (2) For accusation of falsehood, (3) For accusation of stealing (*adattadan*), (4) For accusation of breaking the vow of *brahmcharya*, (5) For accusation that one is eunuch, (6) For accusation that one is a servant.

In case an ascetic accuses another person in any of the above said ways and is not able to properly prove this accusation, he is liable for prayashit of that very accusation.

विवेचन : भाष्यकार ने इनको विस्तारपूर्वक समझाया है–

(१) प्रथम प्रस्तार–यदि कोई निर्ग्रन्थ किसी एक निर्ग्रन्थ के सम्बन्ध मे आचार्यादि के सम्मुख उपस्थित होकर कहे कि "**अमुक निर्ग्रन्थ ने अमुक त्रस जीव का हनन किया है।**" आचार्यादि उसका कथन सुनकर अभियोग (आरोप) से सम्बन्धित निर्ग्रन्थ को बुलावे और उससे पूछे कि "क्या तुमने त्रस जीव की घात की है ?" यदि वह कहे कि "मैंने किसी जीव की घात नही की है।" ऐसी दशा मे अभियोग लगाने वाले निर्ग्रन्थ को अपना कथन प्रमाणित करने के लिए कहना चाहिए। यदि अभियोक्ता आरोप को प्रमाणित कर दे तो जिस पर जीवघात का आरोप लगाया है, वह दोषानुरूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

यदि अभियोक्ता अभियोग प्रमाणित न कर सके तो प्राणातिपात किये जाने पर दिये जाने वाले प्रायश्चित्त का भागी अभियोक्ता होता है।

(२–४) इसी प्रकार **द्वितीय प्रस्तार** मृषावाद, **तृतीय प्रस्तार** अदत्तादान और **चतुर्थ प्रस्तार** अविरतिवाद–ब्रह्मचर्यभग के अभियोग के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

(५) दीक्षा देने वाले आचार्यादि के सामने किसी निर्ग्रन्थ के नपुंसक होने का अभियोग लगाना **पंचम प्रस्तार** 'अपुरुषवाद' है।

(६) किसी निर्ग्रन्थ के सम्बन्ध मे "यह दास था या दासीपुत्र था", इस प्रकार का अभियोग लगाना **षष्ठ प्रस्तार** "दासवाद" है।

अभियोक्ता और दोष–सेवी यदि एक–दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगावें या उनमे वाद–प्रतिवाद हो जाये तो प्रायश्चित्त की मात्रा भी बढ जाती है। विशेष विवरण के लिए भाष्य देखना चाहिए। *[सचित्र स्थानागसूत्र, भाग २, पृ. २६० पर भी उक्त दोनों का वर्णन है।]*

Elaboration—The author of *bhashya* has explained it in detail—

(1) First category of *prayashchit* (*prastaar*)—In case a monk comes to *Acharya* and the like and levels an accusation against another monk that he has killed such and such mobile living being, the *acharya* and the like should call the concerned monk and ask him if he had done so. In case he replies that he has not killed any living being, he should ask the complainant to prove his accusation. If he proves his accusation, then the faulty monk (the accused) is liable for *prayashchit* according to his fault.

In case the accuser is not able to prove the accusation, he (the accusor) shall be liable for *prayashchit* described for causing violence to living beings.

(2-4) The same method should be adopted in case of accusation of falsehood (second *prastaar*), accusation of stealing (third *prastaar*) and accusation of breaking vow of *brahmacharya* (fourth prastaar).

(5) To level the allegation before the *Acharya* and the like who has initiated a *nirgranth* in monkhood that the said *nirgranth* is eunuch is fifth *prastaar—apurushavad.*

(6) To say about a nirgranth that he was a servant or that he was the son of a maid is sixth *prastaar daasvad.*

If the complainant and the accused level accusation against each other and a great dispute arises, the quantum of *prayashchit* shall increase. For more details one should study *bhashya*. *(Description is there in illustrated Sthanang Sutra, Part II, p 260 also)*

साधु–साध्वी के परस्पर कण्टक आदि निकालने का विधान PROCEDURE OF REMOVING THORN

३. निग्गंथस्स य अहे पःयंसि खाणू वा, कंटए वा, हीरए वा, सक्करे वा परियावज्जेज्जा, तं च निग्गंथे नो संचाएइ नीहरित्तए वा, विसोहेत्तए वा, तं निग्गंथी नीहरमाणी वा विसोहेमाणी वा नाइक्कमइ।

४. निग्गंथस्स य अच्छिंसि पाणे वा, बीये वा, रए वा परियावज्जेज्जा, तं च निग्गंथे नो संचाएइ नीहरित्तए वा विसोहेत्तए वा, तं निग्गंथी नीहरमाणी वा विसोहेमाणी वा नाइक्कमइ।

५. निग्गंथीए य अहे पायंसि खाणू वा, कंटए वा, हीरए वा, सक्करे वा परियावज्जेज्जा, तं च निग्गंथी नो संचाएइ नीहरित्तए वा विसोहेत्तए वा, तं निग्गंथे नीहरमाणे वा विसोहेमाणे वा नाइक्कमइ।

६. निग्गंथीए य अच्छिंसि पाणे वा, बीये वा, रए वा परियावज्जेज्जा, तं च निग्गंथी नो संचाइएइ नीहरित्तए वा विसोहेत्तए वा, तं निग्गंथे नीहरमाणे वा विसोहेमाणे वा नाइक्कमइ।

३. निर्ग्रन्थ के पैर के तलुवे में तीक्ष्ण शुष्क ठूँठ, कंटक, काँच या तीक्ष्ण पाषाण-खण्ड लग जावे और उसे वह (या अन्य कोई निर्ग्रन्थ) निकालने में या उसके अंश का शोधन करने में समर्थ न हो, (उस समय) यदि निर्ग्रन्थी निकाले या उसका विशोधन करे.....

४. तथा च निर्ग्रन्थ की आँख में मच्छर आदि सूक्ष्म प्राणी, बीज या रज गिर जावे और उसे वह (या अन्य कोई निर्ग्रन्थ) निकालने में या उसके सूक्ष्म अंश का शोधन करने में समर्थ न हो, (उस समय) यदि निर्ग्रन्थी निकाले या शोधन करे तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करती है।

५. निर्ग्रन्थी के पैर के तलुवे में तीक्ष्ण शुष्क ठूँठ, कंटक, काँच या पाषाण खण्ड लग जावे और उसे वह (या अन्य निर्ग्रन्थी) निकालने में या उनके सूक्ष्म अंश का शोधन करने में समर्थ न हो, (उस समय) यदि निर्ग्रन्थ निकाले या शोधे तो....

६. तथा च निर्ग्रन्थी की आँख में (मच्छर आदि सूक्ष्म) प्राणी, बीज या रज गिर जावे और उसे वह (या अन्य कोई निर्ग्रन्थी) निकालने में या उसके सूक्ष्म अंश का शोधन करने में समर्थ न हो, (उस समय) यदि निर्ग्रन्थ निकाले या शोधे तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।

3. In case a sharp thorn, piece of glass or a stone has gone deep in the foot of a *nirgranth* (Jain monk) and no other *nirgranth* is available there who could take it out or remove it and there a *nirgranthi* (Jain nun) pulls it out and dresses it, she does not transgress the order of *Jinas*.

4. A minute living being such as a mosquito, a small seed or dust particle enters the eye of a *nirgranth*. No other monk is available there who can remove it and cleanse it. At that time a *nirgranthi* removes it and cleanses it. Then she does not transgress the order of *Jinas*.

5. A sharp thorn, piece of wood, piece of glass or stone has gone deep in the foot of a Jain nun (*nirgranthi*). No other *nirgranthi* is available there who could remove it and cleanse it. In case a *nirgranth* (Jain monk) removes it and cleanses it, he does not transgress the order of *Jinas*.

6. A minute living being such as a mosquito, a seed or a dust particle has entered the eye of a *nirgranthi* No other *nirgranthi* is available there who could remove it and cleanse it. Then a *nirgranth* removes it and cleanses it He, then, does not transgress the order of *Jinas*.

विवेचन : निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी परस्पर एक-दूसरे के शरीर का स्पर्श न करे, यह उत्सर्ग मार्ग है। किन्तु पैर मे कटक आदि लग जाने पर एव आँख मे रज आदि गिर जाने पर अन्य किसी के द्वारा नही निकाले जा सकने की स्थिति मे निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी अपवाद मार्ग मे योग्य विधिपूर्वक एक-दूसरे के कण्टकादि निकाल सकते हैं। ऐसी स्थिति में एक-दूसरे के शरीर का स्पर्श होने पर भी वे प्रायश्चित्त के पात्र नहीं होते है।

Elaboration—It is the common code that *nirgranths* and *nirgranthis* should not touch the physical body of each other. But when a thorn like

substance hurts the foot or dust like minute things enter the eye and causes severe pain and no other ascetic of the same sex is available who could remove it, then following the exception as provided in the code, the monk and the nun can remove such substance from each other's body In this situation although one touches the body of the other, he is not liable for *prayashchit*.

साधु द्वारा साध्वी को अवलम्बन देने का विधान PROCEDURE OF MONK GIVING SUPPORT TO NUN

७. निग्गंथे निग्गंथिं दुग्गंसि वा, विसमंसि वा, पव्वयंसि वा पक्खलमाणिं वा पवडमाणिं वा गेण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। ८. निग्गंथे निग्गंथिं सेयंसि वा, पंकंसि वा, पणगंसि वा उदयंसि वा, ओकसमाणिं वा ओवुज्झमाणिं वा गेण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। ९. निग्गंथे निग्गंथि नावं आरोहमाणिं वा, ओरोहमाणिं वा गेण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १०. खित्तचित्तं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। ११. दित्तचित्तं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १२. जक्खाइट्ठं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १३. उम्मायपत्तं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १४. उवसग्गपत्तं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १५. साहिगरणं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १६. सपायच्छित्तं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १७. भत्तपाणपडियाइक्खियं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ। १८. अट्ठजायं निग्गंथिं निग्गंथे गिण्हमाणे वा अवलम्बमाणे वा नाइक्कमइ।

७. दुर्गम-(हिंसक जानवरो से व्याप्त) स्थान, विषम स्थान या पर्वत से फिसलती हुई या गिरती हुई निर्ग्रन्थी को निर्ग्रन्थ ग्रहण करता हुआ या सहारा देता हुआ जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

८. इसी प्रकार दल-दल, पक, पनक या जल मे गिरती हुई या डूबती हुई निर्ग्रन्थी को , ९. नौका पर चढती हुई या नौका से उतरती हुई निर्ग्रन्थी को , १०. विक्षिप्तचित्त वाली निर्ग्रन्थी को , ११. दिप्तचित्त वाली निर्ग्रन्थी को , १२. यक्षाविष्ट निर्ग्रन्थी को , १३. उन्माद-प्राप्त निर्ग्रन्थी को , १४. उपसर्ग-प्राप्त निर्ग्रन्थी को , १५. साधिकरण निर्ग्रन्थी को , १६. सप्रायश्चित्त निर्ग्रन्थी को , १७. भक्त-पानप्रत्याख्यात निर्ग्रन्थी को , ग्रहण करे या अवलम्बन दे , और १८. अर्थजात निर्ग्रन्थी को निर्ग्रन्थ ग्रहण (पकड ले) करे या अवलम्बन (सहारा या आश्रय) दे तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नही करता है।

7. A *nirgranthi* (Jain nun) is slipping or falling from a difficult path full of dangerous beasts from a zig-zag road or from a mountain. Then a *nirgranth* holds her or gives support to her In these conditions, he does not trespass the order of *Jinas*.

8. A *nirgranthi* is falling in marshy land, in mud, on moss, or in water and is drowning A monk holds her and lends support to her. He does not

साधु-साध्वी का स्पर्श कब विहित है ?

चित्र परिचय-१३	Illustration No. 13

विषम परिस्थिति में स्पर्श विहित

अनेक विषम परिस्थितियो मे साधु को साध्वी का तथा साध्वी को साधु का स्पर्श करना पडे, तब भी वह जिनाज्ञा के विरुद्ध नही है। जैसे–

१ विषम मार्ग मे चलते हुए पाँव मे तीक्ष्ण कटक, शूल, काँच आदि लग जाय और स्वय उसे निकालने मे समर्थ न हो तो साधु–साध्वी परस्पर एक–दूसरे की सहायता कर सकते है।

–बृह, उ ६, सू ५, ८

२ दुर्गम पहाडी स्थान पर हिंसक जानवर सामने आ जाय, अथवा पहाड से उतरते समय पॉव फिसल जाय तो साधु–साध्वी परस्पर एक–दूसरे को सहारा देकर पकड सकते है।

३ नाव पर चढते–उतरते समय सन्तुलन बिगडने पर गिरते हुए को साधु साध्वी परस्पर एक-दूसरे को सहारा दे सकते है।

४ यदि कोई एकाकी साधु (अथवा साध्वी) शोक, भय, मोह आदि मे उन्मादग्रस्त हो जाय, यक्षाविष्ट हो जाय उस अवस्था मे साध्वी साधु को, साधु साध्वी को पकडकर, बॉधकर अवलम्बन दे तो वे जिनाज्ञा का उल्लघन नही करते है।

बृह उ ६ सू ७ १८ पृ ३४१

TOUCHING IS ALLOWED IN DIFFICULT CIRCUMSTANCES

There are many difficult circumstances when touching of monk by nun and nun by a monk is not against the order of the Jina Such as—

1 While walking on an uneven path, a thorn is stuck in foot and it is not possible to take it out by his/herself then monk and nun can help each other

—Brihatkalp 6/5, 8

2 On a rugged hilly terrain when faced with a ferocious animal or when one slips while climbing downhill then monk and nun can hold and support each other

3 While boarding a boat if one loses his balance and is about to fall then monk and nun can hold and support each other

4. When a lonely monk (or nun) lose mental balance due to grief, fear, attachment or comes under influence of some evil spirit then a nun (or monk) holding, tying or supporting the effected monk (or nun) does not defy the order of the Jina

—Brihatkalp, 6/7, 18, p 341

transgress the order of *Jinas*. **9.** A monk lends support to a Jain nun in getting into a boat or in coming down from the boat. He does not transgress the order of *Jinas*. **10.** A monk lends support to a nun who has dejected mind. He does not transgress the order of *Jinas*. **11.** A monk lends support to a nun who is in a state of extraordinary happiness that is likely to cause harm. A monk lends support to her in bringing her to normal state. He does not transgress the order of *Jinas* **12.** A *nirgranthi* is being troubled by a ghost or a demon A monk helps her in removing that trouble. He does not transgress the order of *Jinas*. **13.** A *nirgranthi* is in a state of deep attachment. A *nirgranth* helps her in coming to the normal state. He does not transgress the order of *Jinas*. **14.** A *nirgranthi* is being troubled by a celestial being, a human being or an animal. A monk lends support to her in removing that trouble He is not guilty of transgressing the order of *Jinas*. **15.** A *nirgranthi* is deeply perturbed due to deep passions or quarrel. A monk helps her to come in normal state. He does not transgress the order of *Jinas* **16.** A *nirgranthi* is feeling restless due to the harsh punishment (*prayashchit*) awarded to her for her sins. A monk lends support to her in bearing that situation cooly. He does not transgress the order of *Jinas*. **17.** A *nirgranthi* has become extremely tired weak or feeble due to fasting for life. A monk lends her support to pass though that state (bravely). He does not transgress the order of *Jinas*. **18.** A *nirgranthi* is perturbed due to intense desire for having a disciple or for a post In case a *nirgranth* lends support to her in that situation, he does not transgress the order of *Jinas*.

विवेचन : सामान्य नियम के अनुसार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ परस्पर कभी भी एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करते। यदि करते है तो वे जिनाज्ञा का उल्लघन करते है। किन्तु उक्त सूत्रो मे कही गई परिस्थितियो मे निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ एक-दूसरे के सहायक बनकर सेवा-शुश्रूषा करे तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं-

(१) **क्षिप्तचित्त**-शोक या भय से भ्रमित चित्त। (२) **दिप्तचित्त**-हर्षातिरेक से भ्रमित चित्त। (३) **यक्षाविष्ट**-भूत-प्रेत आदि से पीडित। (४) **उन्माद-प्राप्त**-मोहोदय से पागल। (५) **उपसर्ग-प्राप्त**-देव, मनुष्य या तिर्यंच आदि के उपसर्ग से पीडित। (६) **साधिकरण**-तीव्र कषाय-कलह से अशात। (७) **सप्रायश्चित्त**-कठोर प्रायश्चित्त से चलचित्त। (८) **भक्त-पान-प्रत्याख्यात**-आजीवन अनशन से क्लांत, दुर्बल या क्षीणकाय। (९) **अर्थजात**-शिष्य या पद की प्राप्ति की इच्छा से व्याकुल।

उन्मत्त पिशाचग्रस्त, उपसर्ग-पीडित, भयग्रस्त निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ एक-दूसरे को सँभाले, कलह, विसवाद में संलग्न को हाथ पकडकर रोके। समाधिमरण करने वाली निर्ग्रन्थी की अन्य परिचारिका साध्वी के अभाव में सभी प्रकार की परिचर्या की व्यवस्था करे। उक्त परिस्थितियो में शरीर स्पर्श दोष नही है।

सूत्र मे केवल गिरती हुई निर्ग्रन्थी को निर्ग्रन्थ द्वारा सहारा देने आदि का कथन है। किन्तु कभी विशेष परिस्थिति में गिरते हुए साधु को साध्वी भी सहारा आदि दे सकती है, यह भी उपलक्षण से समझ लेना चाहिए

तथा किसी विशेष परिस्थिति मे साध्वियो से वह नही सँभाले जा सकें, तो साधु उसको सँभाल सकता है। सहयोग दे सकता है। *[सचित्र स्थानांगसूत्र, स्थान ५, भाग २, पृ १७३ पर पाँच कारणों का तथा स्थान ६ पर सूत्र २ में छह कारणों का कथन किया गया है।]*

Elaboration—According to the common rule, monks and nuns do not touch each other. In case they do so, they ignore the order of *Jina*. But in the circumstances mentioned above, the monks and nuns can be helpful to each other and while serving in these conditions they do not disobey the order of *Jinas*—

(1) Kshipt Chitt—A mind disturbed by sadness or fear. **(2) Dipt Chitt**—A mind disturbed due to extreme happiness. **(3) Yakshavisht**—A person troubled by ghost. **(4) Unmaad prapt**—A person mad in state of extreme attachment. **(5) Upsarg prapt**—A person troubled by celestial being, human being or animal and the like. **(6) Saadhikaran**—A person in perturbed state due to influence of extreme passion. **(7) Sprayashchit**—A person disturbed by harsh prayashchit (punishment). **(8) Bhakt paan pratyakhyan**—A person tired, weak or feeble because of life-long fasting **(9) Arthjaat**—A person disturbed due to desire for a disciple or a post

In case *nirgranths* and *nirgranthis* help each other to overcome such state of madness, ghost-affected state, sudden trouble (*Upsarg*) affected sate, or state of fear; and hold the hand to stop one who is engaged in quarrel or slandering, and make arrangements for attending to a *nirgranthi* who is in the state of equanimity desiring death in that state (*Samadhimaran*)—when no other *nirgranthi* is present there to look after her—one is not at fault in touching the body of the other.

In the *Sutras*, it is mentioned that a *nirgranth* can provide his support in order to save a *nirgranthi* who is falling But in exceptional circumstances even a *nirgranthi* (nun) can give support to a *nirgranth* who is falling. This should be understood as a corollary In case in special circumstances the *Sadhvis* are not able to hold him, the monk can also lend support He can help. *(In Sachitra Sthanang Sutra 5, Part II, p 173 five circumstances and at Sthaan 6, Sutra 2 six circumstances have been mentioned)*

संयमनाशक छह स्थान SIX ACTIVITIES THAT DESTROY ASCETIC RESTRAINT

१९. कप्पस्स छ पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—

(१) कोक्कुइए संजमस्स पलिमंथू, (२) मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू, (३) चक्खुलोलुए इरियावहियाए पलिमंथु, (४) तिंतिणिए एसणागोयरस्स पलिमंथू, (५) इच्छालोलुए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथु, (६) भिज्जानियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू। सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था।

१९. कल्प–साध्वाचार के छह पलिमंथु–सर्वथा घात करने वाले कारण है, यथा–

(१) **कौत्कुचित** : देखे बिना या प्रमार्जन किए बिना कायिक प्रवृत्ति करना, संयम का घातक है, (२) **मुखरता** : वाचालता, सत्य वचन का घातक है, (३) **चक्षु लोलुपता** : इधर–उधर देखते हुए गमन करना, ईर्यासमिति का घातक है, (४) **तिंतिणिकता** : आहारादि के अलाभ से खिन्न होकर चिढ़ना, एषणासमिति का घातक है, (५) **इच्छालोभ** : उपकरण आदि का अति लोभ, अपरिग्रह का घातक है, (६) **अभिध्या निदान करण** : लौकिक सुखों की कामना से निदान (तप के फल की कामना) करना, मोक्षमार्ग का घातक है। क्योंकि भगवान ने सर्वत्र अनिदानता–निस्पृहता प्रशस्त कही है।

19. These are six causes that totally destroy (*palımanthu*) the ascetic conduct (kalp).

(1) Kautkuchit—To do a physical activity without properly examining and cleaning is a destroyer of ascetic discıplıne. **(2) Mukharata**—Talking too much ıs a killer of Truth **(3) Chakshu lolupata**—To wander looking hither and thither is non-observance of *Irya-Samıtı*-the prescribed code for moving about. **(4) Tintinikata**—To feel dejected when one is not able to get food and then to become peevish in non-observance of *Eshna-Samıtı*, the prescribed code for collecting food and the like. **(5) Ichha lobh**—To be very greedy about the articles of monkhood destroys the vow of *aparıgreh*—non-attachment to the things. **(6) Abhidhya nidaan karan**—To have a strong desıre for worldly pleasures (*nidaan*) as a result of one's austeritıes carries one completely away from the path of salvatıon because *Bhagavan* has always termed non-attachment as a worthy state

छह प्रकार की कल्पस्थिति **SIX TYPES OF FOLLOWING ASCETIC CONDUCT**

२०. छव्विहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा–

(१) सामाइय–संजय–कप्पट्ठिई, (२) छेओवट्ठावणिय–संजय–कप्पट्ठिई, (३) निव्विसमाण–कप्पट्ठिई, (४) निव्विट्ठकाइय–कप्पट्ठिई, (५) जिणकप्पट्ठिई, (६) थेरकप्पट्ठिई।

२०. कल्प की स्थिति–आचार की मर्यादाएँ छह प्रकार की है। यथा–

(१) सामायिक चारित्र की मर्यादाएँ, (२) छेदोपस्थापनीय चारित्र की मर्यादाएँ, (३) परिहारविशुद्धि चारित्र मे तप वहन करने वाले की मर्यादाएँ, (४) परिहारविशुद्धि चारित्र में गुरुकल्प व अनुपरिहारिक

भिक्षुओ की मर्यादाएँ, (५) गच्छनिर्गत विशिष्ट तपस्वी जीवन बिताने वाले जिनकल्पी भिक्षुओं की मर्यादाएँ, (६) स्थविरकल्पी अर्थात् गच्छवासी भिक्षुओं की मर्यादाएँ।

20. The iimits of ascetic conduct (*Kalp Sthiti*) are of six types—namely—

(1) The prescribed restraints of *Samayik Charitra*. (2) The prescribed restraints of *Chhedopasthapaniya Charitra*. (3) The prescribed restraints of those monks who practice ascetic austerities during *parihar-vishudhi charitra*. (4) The prescribed limits of such *Bhikshus* in *parihar-vishudhi charitra* who are undergoing *guru-kalp* or *anupariharik*. (5) The prescribed limits of *Jinkalpi bhikshus* who are spending special life of hard austerities in the group (6) The restraints of Sthavirkalpis or Bhikshus who are in the group.

विवेचन : यहाँ 'कल्प' शब्द का अर्थ सयमी का आचार है। उसका पालन करना कल्पस्थिति कहा जाता है। निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो की समाचारी (मर्यादा) को भी कल्पस्थिति कहा जाता है। वह छह प्रकार की है। कल्पस्थिति का विशेष विवेचन सचित्र स्थानागसूत्र, भाग १, पृ २९४ पर किया जा चुका है। वहाँ देखना चाहिए।

॥ छट्ठा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Here '*kalp*' means the conduct of one observing ascetic restraints To follow such conduct is *kalp sthiti* The code of conduct of *nirgranths* and *nirgranthis* is also called *kalp-sthiti* It is of six types Detailed description of *kalp sthiti* has been given in *Sachitra Sthanang Sutra*, Part I, p 294 and can be seen there

● SIXTH UDDESHAK CONCLUDED ●

● BRIHATKALP SUTRA CONCLUDED ●

व्यवहार सूत्र

VYAVAHAR SUTRA

प्राक्कथन

बृहत्कल्पसूत्र की तरह व्यवहारसूत्र भी छेदसूत्र है। ये दोनों सूत्र परस्पर एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं, तथा दोनों के रचयिता श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी हैं।

भाष्यकार आचार्य के अनुसार ये दोनों सूत्र परस्पर सम्बद्ध होते हुए भी इनमें दो बातों का अन्तर भी है-(१) बृहत्कल्पसूत्र में मूल गुण व उत्तर गुणों के अतिचारो का वर्णन है तथा व्यवहारसूत्र में प्रायश्चित्त देने की विधि का वर्णन है। (२) कल्प मे सामान्य प्रायश्चित्तो का वर्णन है, व्यवहार में विशेष प्रायश्चित्त-प्रतिसेवना, सयोजना, आरोपणा एवं प्रतिकुंचना आदि के भेद से प्रायश्चित्त का कथन है। *(भाष्य गाथा १५३)*

व्यवहारसूत्र के १० उद्देशक हैं। इनमे श्रमण जीवन के आचार-व्यवहार की शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। पहले-दूसरे उद्देशक में तो प्रमाद आदि के कारण लगे दोषो की विशुद्धि हेतु विविध प्रायश्चित्तों का प्रकरण है। तृतीय उद्देशक मे गण व गच्छ से स्वतंत्र होकर विचरने के विषय मे मर्यादाएँ हैं, तथा आचार्य, उपाध्याय आदि पदवी की पात्रता के सम्बन्ध मे भी बताया है। चौथे उद्देशक मे आचार्य, उपाध्याय आदि की सेवा-साहचर्य सम्बन्धी वर्णन है। इस प्रकार आगे के सभी उद्दशेको मे श्रमणसघ, गण-गच्छ आदि के भीतर पारस्परिक आचार-मर्यादाओं के शुद्ध व्यवहार पर विविध दृष्टियो से चिन्तन है।

इस सूत्र के वर्णन से तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियो व रीतिरिवाज का भी पता चलता है।

व्यवहारसूत्र के समग्र अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि साधु जीवन मे व्यवहार की शुद्धि मुख्य है। यद्यपि शुद्धं लोक-विरुद्धं नाचरणीयं, न करणीयं-भले ही शुद्ध हो, किन्तु लोक-विरुद्ध हो तो ऐसा आचरण नही करना चाहिए और यदि कर लिया तो सरल मन से उसका प्रायश्चित्त आदि करके व्यवहार को सतत शुद्ध व आदर्श बनाये रखना चाहिए।

INTRODUCTION

Like *Brihat-kalp Sutra, Vyavahar Sutra* is also a *Chhed Sutra* Both these *Sutras* are believed to be complementary to each other and the author of them is Shrut Kevali Bhadrabahu Swami.

According to the commentator *(bhashyakar) Acharya*, although these two *Sutras* are closely related, still there are two points of difference—(1) In *Brihat-kalp Sutra*, there is the description of *atichars* (faults) in major vows or fundamental qualities and supplementary code of conduct,

while in Vyavahar procedure of awarding *prayashchit* has been narrated. (2) In *Kalp*, the general types of *prayashchit* have been described while in *Vyavahar* special types of *prayashchit* namely for committing a fault (*pratisevana*).

There are ten *Uddeshaks* in *Vyavahar Sutra*. Special attention is paid to the purity in ascetic conduct and ascetic behaviour. In the first and second *Uddeshaks* there is provision of various types of *prayashchit* for cleansing the sins committed due to slackness and the like. In the third *Uddeshak* the code relating to wandering independent of the *gana* or *gachha* (group) is laid down. The requisite capability for the post of *Acharya, Upadhyaya* and the like has also been enunciated therein. In the fourth *Uddeshak*, there is description concerning service and assistance to *Acharya, Upadhyaya* and the like. Similarly in the later *Uddeshaks*, there is discussion from different angles on chaste behaviour following the code relating to mutual dealings in the spiritual organisation (*Shraman Sangh*) *gana-gachha* (groups, sub-groups) and the like

A study of this *Sutra* gives an account of the then prevalent social, political and administrative conditions and the customs being followed.

A complete study of *Vyavahar Sutra* makes it crystal clear that purity of general behaviour is most important in ascetic life. An act which is pure but against the general behaviour, should not be performed. In case it has been done, *prayashchit* should be taken with a simple mental attitude and the behaviour should always be kept continuously chaste and ideal.

□□

प्रथम उद्देशक
FIRST UDDESHAK

मायाु–सहित तथा मायारहित एक बार दोष–सेवन का प्रायश्चित्त

PRAYASHCHIT OF A FAULT COMMITTED ONCE WITH CROOKEDNESS OR WITHOUT IT

१. जे भिक्खू मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं। २. जे भिक्खू दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं। ३. जे भिक्खू तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं।

४. जे भिक्खू चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं पलिउंचियं, आलोएमाणस्स पंचमासियं। ५. जे भिक्खू पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स छम्मासियं।

तेण परं पलिउंचिए वा, अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

१. जो भिक्षु एक बार मासिक **परिहार–स्थान** (एक मास के प्रायश्चित्त योग्य दोष) की **प्रतिसेवना** (दोष–सेवन) करके आलोचना करता है, तो उसे मायारहित आलोचना करने पर एक मास का और माया–सहित आलोचना करने पर दो मास का प्रायश्चित्त आता है। २. जो भिक्षु एक बार द्विमासिक परिहार–स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर द्विमासिक और माया–सहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है। ३. जो भिक्षु एक बार त्रैमासिक परिहार–स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो मायारहित आलोचना करने पर त्रैमासिक और माया–सहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

४. जो भिक्षु एक बार चातुर्मासिक परिहार–स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो मायारहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक और माया–सहित आलोचना करने पर पंचमासिक प्रायश्चित्त आता है। ५. जो भिक्षु एक बार पचमासिक परिहार–स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो मायारहित आलोचना करने पर पचमासिक और माया–सहित आलोचना करने पर छमासी प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया–सहित या मायारहित आलोचना करने पर भी वही छमासी प्रायश्चित्त आता है। (छह मास से अधिक प्रायश्चित्त का विधान नही है।)

1. A *bhikshu* who commits a fault deserving *prayashchit* of one month and narrates it criticising it. If the self-criticism is without any crookedness, he is liable for *prayashchit* of one month but if he narrates it with crookedness (not in a straight forward manner), he shall be liable

आलोचना

चित्र परिचय-१४

Illustration No. 14
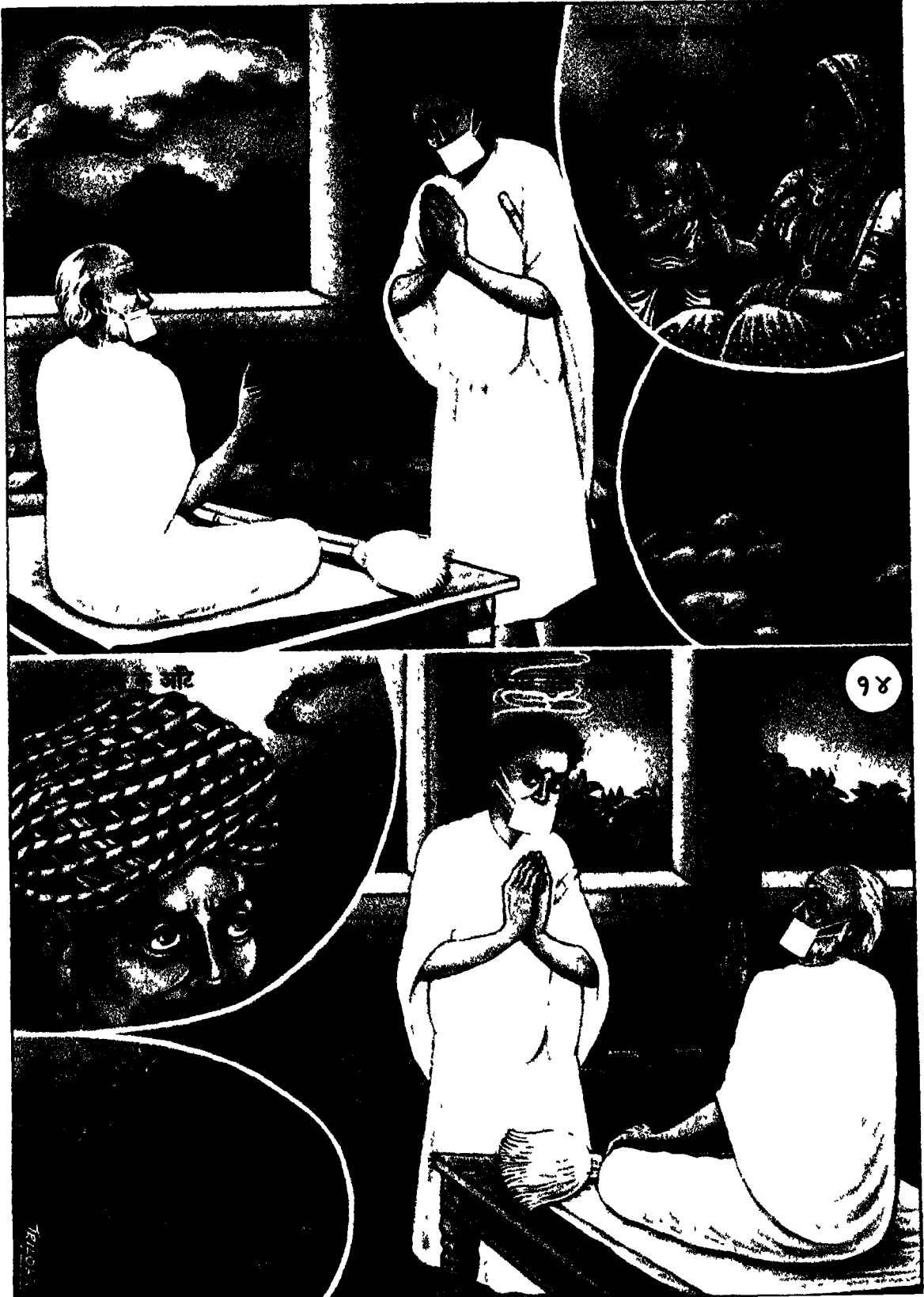
आलोचना करने में निष्कपटता व सकपट भाव

भगवान ने फरमाया है-

१ छद्मस्थ साधु या साध्वी प्रमाद के वश यदि कोई दोष सेवन कर ले तो गुरु के समक्ष अत्यन्त सरल भावपूर्वक, जैसे–माँ के सामने बालक सरल भाव से अपने मन की बात कहता है तथा जैसे बिल मे प्रवेश करता सर्प सीधा चलता है। उसी प्रकार सरल व सहज होकर गुरु के समक्ष सेवित दोष की आलोचना, प्रायश्चित्त कर लेने पर उसे जितना प्रायश्चित्त आगम मे विहित है उतना ही दिया जाता है।

२ यदि कोई साधु (या साध्वी) दोष सेवन करके, कपटपूर्वक मन मे शल्य रखते हुए, जैसे - पगडी या मूँज की रस्सी मे आँटे व गाँठे लगी रहती है तथा साँप जैसे आँटे लगाकर वक्र गति से चलता है, ऐसी वक्र कपटयुक्त मन स्थिति से कोई आलोचना करता है, तो उसे जितना सामान्य प्रायश्चित्त विहित है, उससे दुगुना प्रायश्चित्त दिया जाता है।

–व्यवहार उ १ सू १ ४ पृ ३४९

STRAIGHT AND DECEITFUL ATTITUDE IN SELF-CRITICISM

Bhagavan has said—

1 A chhadmasth monk or nun commits a fault due to negligence (or stupor) He or she does self-criticism before the teacher in a straight forward way, just as a child says everything to his mother without any guile or as a snake moves straight when entering its hole, then he or she is awarded only the prayashchit (punishment for repentance) exactly as prescribed in the Agams

2 A monk (or nun) commits some fault and does self-criticism obliquely and deceitfully, just like the twists and knots in a turban or a sisal rope or as the normal oblique and twisted movement of a snake, then he or she is awarded just the double of the prayashchit (punishment for repentance) prescribed in the Agams

—Vyavahar, 1/1, 4, p 349

for *prayashchit* of two months. **2.** A *bhikshu* has committed a fault which deserves *prayashchit* of two months and narrates it clearly, criticising his fault. If his self-criticism and narration of fact is without any crookedness, he is liable for *prayashchit* of two months. In case he does not narrate it in a straight forward manner, he is liable for *prayashchit* of three months. **3.** A *bhikshu* has committed a fault, which deserves a *prayashchit* of three months and narrates it in detail clearly criticising his fault If his self-criticism and narration of facts is without any crookedness, he is liable for *prayashchit* of three months. In case he does not narrate it clearly in a straight forward manner, he is liable for *prayashchit* of four months.

4. A bhikshu has committed a sin, which attracts a *Chaturmasik prayashchit*. He narrates his sin clearly in detail and criticises it. If his self-criticism and narration of facts is without any crookedness, he is liable for *chaturmasik prayashchit* In case he does not narrate it clearly and in a straight forward manner, he is liable for *prayashchit* of five months. **5.** A *bhikshu* has committed a sin, which attracts a *prayashchit* of five months If he narrates it without any crookedness he shall be liable for *prayashchit* of five months. If he narrates it with crookedness he shall attract *prayashchit* of six months.

Thereafter, a *bhikshu* who commits any sin (of more dreadful nature), he shall attract a *prayashchit* of six months and it is immaterial whether he narrates it in a straight forward manner or in a crooked manner. (There is no provision of *prayashchit* for more than six months)

अनेक बार दोष–सेवन का प्रायश्चित्त **PRAYASHCHIT OF FAULT COMMITTED SEVERAL TIMES**

६. जे भिक्खू बहुसो विमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं। ७. जे भिक्खू बहुसो वि दोमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स दोमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं। ८. जे भिक्खू बहुसो वि तेमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स तेमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं।

९. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं। १०. जे भिक्खू बहुसो वि पंचमासियं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं, पलिउंचियं आलोएमाणस्स छम्मासियं।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

११. जे भिक्खू मासियं वा जाव पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं वा जाव पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दो मासियं वा जाव छम्मासियं वा।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

१२. जे भिक्खू बहुसो वि मासियं वा जाव बहुसो वि पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स मासियं वा जाव पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स दो मासियं वा जाव छम्मासियं वा।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

६. जो भिक्षु अनेक बार मासिक परिहार-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर एक मास का और माया-सहित आलोचना करने पर द्वैमासिक प्रायश्चित्त आता है। ७. जो भिक्षु अनेक बार द्विमासिक परिहार-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर द्विमासिक और माया-सहित आलोचना करने पर त्रैमासिक प्रायश्चित्त आता है। ८. जो भिक्षु अनेक बार त्रैमासिक परिहार-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर त्रैमासिक और माया-सहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

९. जो भिक्षु अनेक बार चातुर्मासिक परिहार-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर चातुर्मासिक और माया-सहित आलोचना करने पर पचमासिक प्रायश्चित्त आता है। १०. जो भिक्षु अनेक बार पंचमासिक परिहार-स्थान का सेवन करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर पंचमासिक और माया-सहित आलोचना करने पर षट्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया-सहित या मायारहित आलोचना करने पर भी वही षट्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

११. जो भिक्षु मासिक यावत् पंचमासिक परिहार-स्थानो मे से किसी परिहार-स्थान की एक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर सेवन किये गये दोष के अनुसार मासिक यावत् पचमासिक प्रायश्चित्त आता है और माया-सहित आलोचना करने पर दोष के अनुसार द्विमासिक यावत् छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया-सहित या मायारहित आलोचना करने पर वही छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

१२. जो भिक्षु मासिक यावत् पंचमासिक इन परिहार-स्थानो में से किसी एक परिहार-स्थान की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर दोष के अनुसार मासिक यावत् पंचमासिक और माया-सहित आलोचना करने पर दोष के अनुसार द्विमासिक यावत् छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया-सहित या मायारहित आलोचना करने पर वही छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

6. A *bhikshu* commits *masik parihar-sthan* (a fault deserving *prayashchit* of one month) several times and criticises it. In case his self-criticism is without any crookedness, he is liable for *prayashchit* of one month but if his self-criticism is with crookedness, he shall liable for *prayashchit* of two months. 7. A *bhikshu* commits a fault again and again which attracts *prayashchit* of two months. In case he narrates and repents for it without any crookedness, he shall be liable for *prayashchit* of two months. If he narrates it with crookedness, he shall be liable for *prayashchit* of three months. 8. A *bhikshu* repeatedly commits a fault, which attracts *prayashchit* of three months. In case he criticises it in detail and without any crookedness, he shall be liable for *prayashchit* of three months. But if he narrates in a distorted manner, he shall be liable for *prayashchit* of four months.

9. A *bhikshu* repeatedly commits a sin, which attracts a *prayashchit* of four months. If he criticises it narrating it without any crookedness, he shall be liable for *prayashchit* of four months. But if he narrates it in a crooked manner, he is liable for *prayashchit* of six months. 10. A *bhikshu* repeatedly commits a sin, which attracts a *prayashchit* of five months. If he narrates it in all details and criticises his sin, he shall be liable for *prayashchit* of five months. But if he narrates it in a distorted manner, he shall be liable for *prayashchit* of six months.

For sins of higher order, a *bhikshu* is liable for *prayashchit* of six months and it is immaterial whether he narrates his sin with or without crookedness.

11. A *bhikshu* commits once a fault that attracts *prayashit* of one month up to five months and criticises his fault. In case he narrates it without crookedness, he shall be liable for *prayashchit* of one month up to five months according to the fault committed. But if he narrates it deceitfully in a distorted manner, he shall be liable for *prayashit* of two to six months in accordance with that fault.

In case of sins of higher nature, the *prayashchit* is for six months and it is immaterial that the sinner *bhikshu* narrates the facts clearly or in a distorted manner.

12. A *bhikshu* commits repeatedly a fault that attracts *prayashchit* of one month up to five months and every time narrates his fault and criticises it. In case he narrates it without crookedness, he shall be liable

for a *prayashchit* of one month upto five months. But if he narrates it in a distorted manner deceitfully, he shall be liable for *prayashchit* of two months upto six months.

In case of sins deserving higher *prayashchit*, it is immaterial whether the sinner narrates it clearly or in a distorted manner, he shall be liable for *prayashchit* of six months.

१३. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा साइरेग–चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा, साइरेग–पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा साइरेग–चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा साइरेग–पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं वा साइरेग पंचमासियं वा छम्मासियं वा।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

१४. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं वा, बहुसो वि साइरेग–चाउम्मासियं वा बहुसो वि पंचमासियं वा बहुसो वि साइरेग–पंचमासियं वा एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणस्स चाउम्मासियं वा, साइरेग–चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा, साइरेग–पंचमासियं वा, पलिउंचियं आलोएमाणस्स पंचमासियं वा, साइरेग–पंचमासियं वा छम्मासियं वा।

तेण परं पलिउंचिए वा अपलिउंचिए वा ते चेव छम्मासा।

१३. जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक (पंच मास से ऊपर दो–तीन दिन आदि का) इन परिहार–स्थानो मे से किसी एक परिहार–स्थान की एक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर सेवन किये दोष के अनुसार चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पंचमासिक और माया–सहित आलोचना करने पर सेवन किये दोष के अनुसार पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक या छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया–सहित या मायारहित आलोचना करने पर भी वही छहमासिक प्रायश्चित्त आता है।

१४. जो भिक्षु अनेक बार चातुर्मासिक या अनेक बार कुछ अधिक चातुर्मासिक, अनेक बार पंचमासिक या अनेक बार कुछ अधिक पचमासिक इन परिहार–स्थानो मे से किसी एक परिहार–स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर सेवित दोष के अनुसार चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक और माया–सहित आलोचना करने पर पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक या छह मासिक प्रायश्चित्त आता है।

इसके उपरान्त माया–सहित या मायारहित आलोचना करने पर वही छह मासिक प्रायश्चित्त आता है।

13. A bhikshu commits once a fault which attracts *prayashchit* of four months or a little more or of five months or a little more (say two-three

days more than five months). If he narrates his fault clearly and in all details, he shall be liable for *prayashchit* of four months or more or of five months or more according to the fault committed If he narrates it in a deceitful manner, he shall be liable for *prayashchit* of five months or more or of six months or a little more according to the fault committed.

In case of sins deserving higher *prayashchit*, one is liable for *prayashchit* of six months and it is immaterial whether he narrated it in all details or in a distorted manner.

14. A *bhikshu* repeatedly commits a fault which attracts a *prayashchit* of four months or a little more, or five months or a little more and every time narrates it in all details and criticises it. Then he shall be liable for *Chaturmasik prayashchit* or a little more or *prayashchit* of five months or a little more according to the fault committed But if he narrates the fault in a crooked and distorted manner, he shall be liable for *prayashchit* of five months or more or of six months or more according to the fault committed

In case of sins deserving higher *prayashchit*, one is liable for *prayashchit* of six months and it is immaterial whether he narrated it in all details or in a distorted manner.

१५. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा, साइरेग—चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा, साइरेग—पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

(१) पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (२) पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं, (३) पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (४) पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

(१) अपलिउंचिए अपलिउंचियं, (२) अपलिउंचिए पलिउंचियं, (३) पलिउंचिए अपलिउंचियं, (४) पलिउंचिए पलिउंचियं।

आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय (आरुहेयव्वे सिया।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१६. जे भिक्खू चाउम्मासियं वा, साइरेग—चाउम्मासियं वा, पंचमासियं वा, साइरेग—पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, पलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

(१) पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (२) पुव्वि पडिसेवियं पच्छा आलोइयं, (३) पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (४) पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

(१) अपलिउंचिए अपलिउंचियं, (२) अपलिउंचिए पलिउंचियं, (३) पलिउंचिए अपलिउंचियं, (४) पलिउंचिए पलिउंचियं। आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय (आरुहेयव्वे सिया)।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१५. जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक या कुछ अधिक पंचमासिक इन परिहार-स्थानो मे से किसी एक परिहार-स्थान की एक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर दोष के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप में स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिए। यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना (दोष-सेवन) करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

(१) पूर्व मे सेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (२) या पीछे आलोचना की हो, (३) पीछे से सेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (४) या पीछे से आलोचना की हो।

(१) मायारहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (२) या माया-सहित आलोचना की हो, (३) माया-सहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (४) अथवा माया-सहित आलोचना की हो।

इन चारो भंगों (विकल्पो) मे से किसी भी प्रकार के भग (विकल्प) से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित होकर (प्रायश्चित्त) वहन करते हुए भी पुनः किसी प्रकार का दोष-सेवन करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए।

१६. जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक इन परिहार-स्थानों मे से किसी एक परिहार-स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-सहित आलोचना करने पर सेवित दोष के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिए। यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त मे सम्मिलित कर देना चाहिए।

(१) पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (२) या पीछे आलोचना की हो, (३) पीछे से सेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (४) या पीछे से आलोचना की हो।

(१) मायारहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (२) या माया-सहित आलोचना की हो, (३) माया-सहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (४) अथवा माया-सहित आलोचना की हो।

इन चारों मे से किसी प्रकार के भंग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को संयुक्त करके पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप में स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुनः किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में आरोपित कर देना चाहिए।

15. A *bhikshu* commits once a *parihar-sthan* (a sin that attracts *prayashchit*) which is *chaturmasik* or more, or *panch-masik* or more. He narrates it in all details without deceit and criticises it He shall be liable for undertaking austerities (*parihar-tap*) as *prayashchit* according to the nature and severity of sin committed and getting service (*vaiyavritt*) as required. In case he commits a fault of any type even during his period of austerities practiced as *prayashchit*, his total *prayashchit* should also be added to the *prayashchit* earlier awarded.

(1) The fault committed earlier is narrated first and criticised first, (2) The fault committed earlier is narrated and criticised later, (3) The fault committed later is narrated and criticised earlier, (4) The fault committed later is narrated and criticised later.

(1) One may think of narrating his fault in all details and actually narrate and criticise it in all details without any deceit. (2) One may think of narrating his fault in all details and criticise it but narrate it deceitfully in a distorted manner and criticise it accordingly. (3) One may think of narrating his fault in a deceitful manner but actually narrate it in all details completely avoiding any crookedness. (4) One may think of narrating his fault in a deceitful manner and narrate it deceitfully and criticise or repent accordingly.

In case one narrates his fault in any of the above said ways, the *prayashchit* for all the faults he has committed should be totalled and then added to the *prayashchit* already awarded.

In case a *bhikshu* practices austerities as a result of *prayashchit* for his fault and during that period of austerities commits again a fault of any type, his total *prayashchit* should also be added to the *prayashchit* earlier awarded.

16. A *bhikshu* commits a fault which is liable for *chaturmasik prayashchit* or more or *panch-masik prayashchit* or more and then narrates it and repents for it but narrates its deceitfully and in distortion. He should be engaged in practice of austerities as *prayashchit* in accordance with his guilt, and during that practice of austerities he should be looked after as needed. In case even during the practice of austerities as *prayashchit*, he commits fault of any type, his total *prayashchit* should also be added to the *prayashchit* already awarded.

(1) He may narrate and criticise first the earlier committed fault. (2) He may narrate and criticise later the earlier committed fault. (3) He may narrate and criticise earlier the fault that has been committed only later. (4) He may narrate and criticise later the fault that has been committed later.

(1) One may resolve to narrate his fault in all details free from any distortion or deceit and actually narrate accordingly. (2) One may resolve to narrate his fault in all details free from any distortion or deceit but actually distorts it while narrating it in a state of deceit. (3) One may resolve to narrate his fault in a deceitful manner but actually narrates it in a straight forward manner free from any deceit or distortion. (4) One may resolve to narrate his fault deceitfully distorting the facts and narrate it accordingly.

Out of the above mentioned four ways, if a *bhikshu* narrates his fault in any one particular way, the *prayashchit* of the sins committed by him should be totalled and added to the *prayashchit* awarded earlier.

In case while practicing austerities relating to *prayashchit* awarded, he again commits a fault of any type which is liable for *prayashchit*, his total *prayashchit* should also be included in the *prayashchit* awarded earlier.

१७. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं वा, बहुसो वि साइरेग–चाउम्मासियं वा, बहुसो वि पंचमासियं वा, बहुसो वि साइरेग–पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, अपलिउंचिय आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

(१) पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (२) पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं, (३) पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (४) पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

(१) अपलिउंचिए अपलिउंचियं, (२) अपलिउंचिए पलिउंचियं, (३) पलिउंचिए अपलिउंचियं, (४) पलिउंचिए पलिउंचियं। आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय (आरुहेयव्वे सिया)।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१८. जे भिक्खू बहुसो वि चाउम्मासियं वा, बहुसो वि साइरेग–चाउम्मासियं वा, बहुसो वि पंचमासियं वा, बहुसो वि साइरेग पंचमासियं वा, एएसिं परिहारट्ठाणाणं अण्णयरं परिहारट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, पलिउंचियं आलोएमाणे ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं। ठविए वि पडिसेवित्ता से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

(१) पुव्विं पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (२) पुव्विं पडिसेवियं पच्छा आलोइयं, (३) पच्छा पडिसेवियं पुव्विं आलोइयं, (४) पच्छा पडिसेवियं पच्छा आलोइयं।

(१) अपलिउंचिए अपलिउंचियं, (२) अपलिउंचिए पलिउंचियं, (३) पलिउंचिए अपलिउंचियं, (४) पलिउंचिए पलिउंचियं। आलोएमाणस्स सव्वमेयं सकयं साहणिय (आरुहेयव्वे सिया)।

जे एयाए पट्ठवणाए पट्ठविए निव्विसमाणे पडिसेवेइ, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१७. जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पंचमासिक या कुछ अधिक पंचमासिक इन परिहार-स्थानों में से किसी एक परिहार-स्थान की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे मायारहित आलोचना करने पर सेवित दोष के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप में स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करनी चाहिए। यदि वह परिहार तप में स्थापित होने पर भी किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

(१) पूर्व में सेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (२) या पीछे आलोचना की हो, (३) पीछे से सेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (४) या पीछे आलोचना की हो।

(१) मायारहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (२) या माया-सहित आलोचना की हो, (३) माया-सहित आलोचना करने का सकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (४) या माया-सहित आलोचना की हो।

इनमे से किसी भी प्रकार के भग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को सयुक्त करके पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रायश्चित्त रूप परिहार तप में स्थापित होकर वहन करते हुए भी पुनः किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त मे आरोपित कर देना चाहिए।

१८. जो भिक्षु चातुर्मासिक या कुछ अधिक चातुर्मासिक, पचमासिक या कुछ अधिक पचमासिक इन परिहार-स्थानो मे से किसी एक परिहार-स्थान की अनेक बार प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो उसे माया-सहित आलोचना करने पर सेवित दोष के अनुसार प्रायश्चित्त रूप परिहार तप मे स्थापित करके योग्य वैयावृत्य करनी चाहिए। यदि वह परिहार तप मे स्थापित होने पर भी किसी प्रकार का दोष सेवन करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

(१) पूर्व मे प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (२) या पीछे आलोचना की हो, (३) पीछे से प्रतिसेवित दोष की पहले आलोचना की हो, (४) या पीछे आलोचना की हो।

(१) मायारहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (२) या माया-सहित आलोचना की हो, (३) माया-सहित आलोचना करने का संकल्प करके मायारहित आलोचना की हो, (४) या माया-सहित आलोचना की हो।

इनमे से किसी भी प्रकार के भग से आलोचना करने पर उसके सर्व स्वकृत अपराध के प्रायश्चित्त को संयुक्त करके पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

जो इस प्रस्थापना में प्रवृत्त अर्थात् प्रायश्चित्त रूप परिहार तप का वहन करते हुए पुनः किसी प्रकार की प्रतिसेवना करे तो उसका सम्पूर्ण प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रदत्त प्रायश्चित्त में सम्मिलित कर देना चाहिए।

17. A *bhikshu* repeatedly commits fault, which attracts *prayashchit* for four months or more, or five months or more, narrates it, criticises it and without any distortion in narrating states actual facts. He should be awarded *prayashchit* according to his fault and when he engages in austerities as included in *prayashchit*, he should be looked after and served as required. In case he commits any type of fault even during practice of austerities, his entire *prayashchit* should also be added to the *prayashchit* earlier awarded.

(1) He may narrate and criticise first for the fault actually committed earlier. (2) He may narrate only later for the fault committed earlier. (3) He may narrate earlier for the fault committed later. (4) He may narrate later the fault committed later.

(1) He may resolve to narrate his fault without any distortion and criticise it. (2) He may resolve to narrate his fault without any distortion but actually distort the facts in a deceitful manner. (3) He may resolve to narrate his fault in a deceitful manner but actually narrate it in all details free from any deceit (4) He may resolve to narrate his fault in a deceitful manner and actually narrate it distorting the facts.

In case he narrates his fault in any of the above said four ways and criticises it, the prayashchit of all his faults is totalled and then added to the earlier awarded prayashchit

One who while undergoing austerities as a result of this *prayashchit* again commits any fault, his entire *prayashchit* should also be added to the earlier awarded prayashchit.

18. A *bhikshu* repeatedly commits any one of the faults which attract *prayashchit* of four months or more, of five months or more and then narrates it and criticises it. In case he does it in a deceitful manner, he should be made to undergo *prayashchit* in the form of prescribed austerities in accordance with the gravity of the fault and he should be looked after In case during the practice of said austerities as a result of *prayashchit*, he again commits any type of fault, his entire *prayashchit* should also be added to earlier awarded *prayashchit*.

(1) One narrates and criticises earlier for the fault committed earlier, or (2) criticises later for the fault committed earlier, (3) narrates and criticises earlier for the fault committed later, or (4) criticises later for the fault committed later.

(1) One makes a resolve to narrate and criticise his fault without any distortion or deceit and actually does it in that manner. (2) One makes a resolve to narrate and criticise his fault without any distortion but narrates and criticises in a distorted and deceitful manner. (3) One decides to narrate and criticise his fault with distortion but actually narrates it in all details and without any distortions and criticises his fault. (4) One resolves to narrate and criticise his fault in a deceitful manner and does it accordingly.

In case one criticises his fault in any of the said four ways, the *prayashchit* for all the faults committed by him should be totalled by and added to the earlier awarded *prayashchit*.

In case while undergoing austerities as a result of that *prayashchit* one commits any fault again which attracts *prayashchit*, his total *prayashchit* should also be added to the earlier awarded prayashchit.

विवेचन : इन अठारह सूत्रों में आलोचना करने वाले की मनोवृत्ति के आधार पर कम या अधिक प्रायश्चित्त देने का विधान किया गया है।

साधु–साध्वी को सतत जागरूक रहकर अतिचाररहित सयम की शुद्ध आराधना करनी चाहिए, यह लक्ष्य है। किन्तु साधना के लम्बे काल में कभी (१) विवशता या असावधानी से, (२) कभी आतुरता या जल्दबाजी से, तथा (३) कभी मोह तथा आसक्ति के कारण किसी प्रकार के दोष का सेवन हो जाये अथवा करना पडे तो सरलतापूर्वक आलोचना व प्रायश्चित्त करके उसकी शुद्धि कर लेना चाहिए।

स्थानांग आदि सूत्रों मे भगवान ने कहा है–"ज्ञान–दर्शन–चारित्र में लगे दोषो की आलोचना–प्रायश्चित्त करने वाला इस भव मे तथा पर भव मे पूर्ण समाधि को प्राप्त होता है। आलोचना बिना किये सशल्य मरण प्राप्त करने वाला दीर्घ संसार भ्रमण करता है।"

स्थानांग १०, भगवती, शतक २५, औपपातिक और उत्तराध्ययन, अ १० आदि मे दस प्रकार का प्रायश्चित्त बताया है। उनमें पहला प्रायश्चित्त है आलोचना। फिर प्रतिक्रमण आदि १० प्रायश्चित्त का विस्तृत विधान है। उनमें छठा तप प्रायश्चित्त और सातवाँ छेद प्रायश्चित्त–प्रस्तुत सूत्र के साथ विशेष सम्बन्ध रखता है। तप प्रायश्चित्त में पौरुषी से लेकर छह मास के तप तक का प्रायश्चित्त होता है तथा दोषों को बार–बार सेवन करने पर या अधिक लोक–निन्दा होने पर छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है। इसमे एक दिन से लेकर छह मास तक की दीक्षा–पर्याय का छेदन (कटौती) किया जाता है। इन दोनों के सम्बन्ध में बृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक ४, सूत्र १ के विवेचन में विस्तार से लिखा जा चुका है।

प्रस्तुत सूत्रों मे आये **परिहार–स्थान** शब्द का अर्थ है, दोष–स्थान अथवा पाप–स्थान। **प्रतिसेवना** का अर्थ है–दोष का सेवन करने पर। **अपलिउंचिय**–अर्थात् सरल भाव से आलोचना करने पर जितना दोष होता है, उसी अनुसार प्रायश्चित्त आता है, किन्तु यदि **पलिउंचिय**–कपट या कुटिलतापूर्वक दोष को छिपाने का प्रयास करे, या बड़े दोष को कम बताये और आचार्य आदि उसके भावो को, भाषा को समझकर या दूसरो से सुनकर यह जान जाये तो उसे उसका कुछ अधिक प्रायश्चित्त दिया जाता है। अत. एक मास वाले को दो मास का, दो मास वाले को तीन मास का यो कुछ बढ़ाकर प्रायश्चित्त दिया जाता है।

कौन–सा दोष–मासिक, दो मासिक आदि कितने प्रायश्चित्त के योग्य हैं, इसका कथन निशीथसूत्र में किया गया है। वहाँ एक मासिक से छह मासिक परिहार–स्थानो का वर्णन है।

सूत्र १५ मे परिहार तप मे स्थापित करके उसकी योग्य वैयावृत्य करने का निर्देश है। इस विषय का विस्तृत विवेचन बृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक ४, सूत्र ३१ के विवेचन मे किया जा चुका है, वहाँ देखे।

इनमे विशेष महत्त्व की बात यह है कि दोष–विशुद्धि के लिए जहाँ प्रायश्चित्त दिया जाता है, वहाँ आवश्यक होने पर तप वहन करने वाले का वैयावृत्य भी किया जाता है। यह गुरुजनो की वत्सलता और सहृदयता का सूचक है। दोषी यदि आत्म–शुद्धि करना चाहता है तो उसके साथ भी उदार व संवेदनशील रहना चाहिए।

Elaboration—In these eighteen *Sutras*, there is the code of increasing or reducing the quantum of *prayashchit* to be awarded to the sinner taking note of his mental attitude

It is the goal of monks and nuns to practice ascetic restraints in a pure manner always remaining fully aware of their ascetic code. But during the long period of ascetic practice—(1) Sometimes due to helplessness or lack of due care, (2) Sometimes due to great anxiety or haste, and (3) Sometimes due to delusion and attachment he or she may commit any fault inadvertently or under duress. That faulty conduct should then be purified through straight-forward self-criticism stating and accepting the fault in all details and also accepting the *prayashchit* awarded.

In *Sthanang Sutra* and the like, *Bhagavan* has said—"A person who narrates in all details criticises and does *prayashchit* for the faults committed by him pertaining to right knowledge, right perception and right conduct attains a state of complete equanimity in this life and the life thereafter. A person who dies without narrating and repenting for his faults wanders in the mundane world (of life and death) for a very long period."

Ten types of *prayashchit* have been mentioned in *Sthanang* 10, *Bhagavati, Shatak* 25, *Aupapatik* and *Uttaradhyayan*, chapter 10 and the like. The very first *prayashchit* out of them is *Alochana* (narration of

facts and criticising for the fault). Thereafter *pratikraman* and the like have been mentioned in detail as ten types of *prayashchit*. The sixth *prayashchit* is austerities and the seventh is *Chhed* (reduction in ascetic life) and they have special correlation with the present *Sutra*. In *prayashchit* in the form of austerities, fasting for a quarter of the day (*paurushi*) upto fasting for six months has been provided. In case the faults are committed repeatedly or the fault brings a very bad criticism in the society, one is awarded *prayashchit* of *Chhed* (reduction in period of monkhood). Here the reduction can be from one day upto six months in ascetic life. Both these *prayashchit* have been narrated and discussed in detail in *Brihat-kalp Sutra, Uddeshak* 4, *Sutra* 1.

The word ***'parihar-sthan'*** in present *Sutras* means state of fault or state of sin. **'Pratisevana'**—means to commit a fault or a sin. **'Apaliunchiya'**—means that the *prayashchit* awarded is to the extent of the fault committed in case it is narrated, criticised and repented in a straight forwarded manner. But in case of **'paliunchiya'** which means that the sinner tries to conceal the facts and narrates the details of his fault deceitfully or in a distorted manner, or tries to show his major faults as minor faults and the *Acharya* and the like is able to understand his sentiments and the hidden meaning in his words or knows the reality through others, he awards a little more *prayashchit*. Thus the *prayashchit* is increased to two months from one month, to three months from two months and so on

It is mentioned in *Nisheeth Sutra* which fault deserves *prayashchit* of one month, two months and the like. There the categories from one month upto six months have been stated

In *Sutra* 15, it is mentioned that after awarding austerities as *prayashchit*, he should be properly looked after when he practices them The detailed explanation has been given in explanation of *Brihat-kalp Sutra, Uddeshak* 4, *Sutra* 31 and that may be seen

The matter of special importance is that although *prayashchit* is awarded for cleansing the fault or the sin committed, yet the sinner is looked after when necessary during the period he practices austerities as *prayashchit*. It indicates the affection and large-heartedness of spiritual masters. In case the sinner wants to cleanse his self of the sin, one should be broad-minded and helpful to him

१९. बहवे पारिहारिया बहवे अपारिहारिया इच्छेज्जा एगयओ अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइत्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइत्तए। कप्पइ णं थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइत्तए।

थेरा य णं वियरेज्जा, एवं णं कप्पइ एगयओ अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइत्तए। थेरा य णं णो वियरेज्जा, एवं नो कप्पइ एगयओ अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइत्तए। जो णं थेरेहिं अविइण्णे, अभिनिसेज्जं वा, अभिनिसीहियं वा चेइए, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

१९. अनेक पारिहारिक भिक्षु (दोष विशुद्धि के लिए तप वहन करने वाले) और अनेक अपारिहारिक (निर्दोषचर्या वाले) भिक्षु यदि एक साथ रहना या बैठना चाहें तो उन्हे स्थविर को पूछे बिना एक साथ रहना या एक साथ बैठना नही कल्पता है। स्थविर को पूछ करके ही वे एक साथ रह सकते हैं या बैठ सकते हैं।

यदि स्थविर आज्ञा दें तो उन्हे एक साथ रहना या एक साथ बैठना कल्पता है। यदि स्थविर आज्ञा न दें तो उन्हें एक साथ रहना या बैठना नही कल्पता है। स्थविर की आज्ञा के बिना वे एक साथ रहें या बैठें तो उन्हें मर्यादा उल्लंघन का दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त आता है।

19. In case many *pariharik bhikshus* (those who are practicing austerities to cleanse their faults) and many *apariharıks* (those who are undergoing ascetic-restraints faultlessly) want to live together or sit together, they are not allowed to do so without the permission of *Sthavirs*. They can stay together or sit together only after the *Sthavir* allows them.

In case *Sthavir* permits, they can live together or sit together In case *Sthavir* does not allow, they should not live together or sit together. In case they stay together or sit together without the permission of *Sthavir*, they are liable for *prayashchit* of reduction in period of ascetic life or of undergoing austerities since they have crossed the prescribed limits of ascetic-restraints.

विवेचन : परिहार तप करने वाले भिक्षु का आहार, विहार, स्वाध्याय, शय्या, निषद्या आदि सभी कार्य समूह में रहते हुए भी अलग-अलग होते है। अत किसी अपारिहारिक साधु को किसी विशेष कारण से पारिहारिक के साथ बैठना हो तो स्थविर आदि जो गण मे प्रमुख हो, उनकी आज्ञा लेना आवश्यक होता है।

पारिहारिक के साथ व्यवहार न रखने का कारण यह है कि वह अकेला रहकर विशेष कर्मनिर्जरा करता हुआ अपनी आत्म-शुद्धि करे और समूह में रहते हुए उस प्रायश्चित्त तप को वहन कराने का कारण यह है कि अन्य साधुओ को भी भय उत्पन्न हो, जिससे वे दोष-सेवन करने से बचते रहें।

Elaboration—Even when a *bhikshu* who is undergoing austerities as *prayashchit* lives in a group, his food, wandering, study, bed, seat and the like is separate from others. So in case an ascetic who has not committed any faults in ascetic discipline wants to sit with an ascetic who is undergoing austerities as *prayashchit*, due to any special reason, it is essential that he should take permission of *Sthavir* or the seniormost monk in the group.

The underlying idea is not to mix with *pariharik* (one who is practicing austerities as *prayashchit*) is that a monk should make special effort to discard his *karmas* by remaining in solitude for self-purification. The purpose for getting the austerities practiced in the group is that the other monks may have a fealing of fear so that they may safe-guard themselves from incurring any fault.

परिहारकल्पस्थित भिक्षु का वैयावृत्य के लिए विहार

MOVEMENT OF BHIKSHU PRACTICING AUSTERITIES AS PRAYASHCHIT FOR SERVICE OF NEEDY

२०. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य से सरेज्जा; कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए।

नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए, तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा–'वसाहि अज्जो ! एगरायं वा दुरायं वा।' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

२१. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य से नो सरेज्जा; कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए।

नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा–'वसाहि अज्जो ! एगरायं वा दुरायं वा।' एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

२२. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य से सरेज्जा वा, नो सरेज्जा वा, कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए जण्णं जण्णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तण्णं तण्णं दिसं उवलित्तए।

नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा, 'वसाहि अज्जो ! एगरायं वा दुरायं वा।' एवं कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए।

नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

२०. परिहारकल्प मे स्थित भिक्षु (स्थविर की आज्ञा से) अन्य किसी रुग्ण स्थविर की वैयावृत्य के लिए जाये उस समय स्थविर उसे परिहार तप छोड़ने की अनुमति दे तो उसे मार्ग के ग्रामादि में एक-एक रात्रि विश्राम करते हुए जहाँ पर साधर्मिक रुग्ण भिक्षु हो, वहाँ जाना कल्पता है।

मार्ग मे विचरण के लक्ष्य से (धर्म-प्रभावना के लिए) ठहरना नहीं कल्पता है, किन्तु रोगादि के कारण से रहना कल्पता है। कारण के समाप्त होने पर यदि कोई वैद्य आदि कहे कि "हे आर्य ! तुम यहाँ एक-दो रात और ठहरो।" तो उसे एक-दो रात और रहना कल्पता है, किन्तु एक-दो रात से अधिक रहना नहीं कल्पता है। जो वहाँ एक-दो रात्रि से अधिक रहता है, उसे उस मर्यादा-उल्लंघन का दीक्षा-छेद या तप प्रायश्चित्त आता है।

२१. परिहारकल्पस्थित भिक्षु (स्थविर की आज्ञा से) अन्यत्र किसी रुग्ण भिक्षु की वैयावृत्य के लिए जाये, उस समय यदि स्थविर उसे परिहार तप छोडने की अनुमति न दे तो परिहार तप वहन करते हुए तथा मार्ग के ग्रामादि में एक रात्रि विश्राम करते हुए जिस दिशा में रुग्ण साधर्मिक भिक्षु है उस दिशा मे जाना कल्पता है।

मार्ग में उसे विचरण के लक्ष्य से रहना नही कल्पता है, किन्तु रोगादि के कारणवश रहना कल्पता है। उस कारण के समाप्त हो जाने पर यदि कोई वैद्य आदि कहे कि "हे आर्य ! तुम यहाँ एक-दो रात और रहो।" तो उसे वहाँ एक-दो रात और रहना कल्पता है किन्तु एक-दो रात से अधिक रहना नही कल्पता है। जो वहाँ एक-दो रात्रि से अधिक रहता है उसे मर्यादा-उल्लघन का छेद या तप प्रायश्चित्त आता है।

२२. परिहारकल्पस्थित भिक्षु अन्यत्र किसी रुग्ण स्थविर की वैयावृत्य के लिए जाये, उस समय स्थविर उसे परिहार तप छोडकर जाने की स्वीकृति दे या न दे तो उसे मार्ग के ग्रामादि मे एक रात्रि विश्राम करते हुए और शक्ति हो तो परिहार तप वहन करते हुए (शक्ति न हो तो स्थविर की स्वीकृति लेकर परिहार तप छोडकर) जिस दिशा मे रुग्ण स्थविर हो, उस दिशा मे जाना कल्पता है।

मार्ग मे उसे विचरण के लक्ष्य से रहना नही कल्पता है, किन्तु रोगादि के कारण रहना कल्पता है। कारण के समाप्त हो जाने पर यदि कोई वैद्य आदि कहे कि "हे आर्य ! तुम यहाँ एक-दो रात और रहो।" तो उसे वहाँ एक-दो रात और रहना कल्पता है किन्तु एक-दो रात से अधिक रहना नही कल्पता है। जो वहाँ एक-दो रात्रि से अधिक रहता है उसे मर्यादा-उल्लघन का छेद या तप प्रायश्चित्त आता है।

20. When (with the permission of *Sthavir*) a *bhikshu* who is practicing austerities as *prayashchit* (parihar-kalp) goes for service of a sick *Sthavir* (senior monk), and the *sthavir* advises him to abandon the practice of austerities, he should reach the sick *bhikshu* of his order spending only one night each in the villages on the way for rest. The movement in this manner is allowed.

He should not stay on the way for wanderings (spreading the religion). But staying in case of illness and the like is allowed. If after the illness is cured, the doctor advises that he should stay for a day or two more, he can stay for a day or two but not more than that. One who stays more than one or two nights, he shall be guilty of crossing the limits of ascetic discipline and is therefore liable for *prayashchit* of reduction in ascetic life or the austerities as presented.

21. A *bhikshu* who is undergoing *prayashchit* for his fault goes to another place (with the permission of *Sthavir*) in order to serve a sick monk and the *Sthavir* does not allow him to abandon austerities (being practiced as *prayashchit*) during that period. He should then, practicing the austerities, go in the direction in which the sick monk is located resting for one night only in villages and the like that fall on that way.

He is not allowed to stay in the way for propagating the faith but in case of illness and the like he can stay. When that cause no longer exists, he can stay for one or two nights more in case his physician so advises. But in case he stays for more than one or two nights, he defies the code of ascetic restraints and shall be liable for *prayashchit* of reduction in his ascetic period or of undergoing austerities.

22. A bhikshu undergoing (*parihar-kalp*) austerities as *prayashchit* for his faults starts from his place to serve a sick monk. At that time the senior monk (*Sthavir*) may permit him to go after abandoning the practice of austerities or not abandoning the austerities. He is allowed to go in the direction in which the place of sick monk is located resting for a night in the villages and the like that come across on the way practicing the austerities as *prayashchit*. (In case he does not have requisite strength he can abandon austerities with the permission and consent of senior monk—*Sthavir*.)

He cannot stay on the way for propagating the faith, but in case of illness and the like, he can stay When that cause of stay no longer exists, he can stay for one or two nights more if his physician asks him to do so. But he cannot stay for more than one or two nights. One who stays for more than one or two nights disobeys the limits of ascetic restraints and is therefore liable for *prayashchit* of reduction in life of monkhood or austerities as prescribed.

विवेचन : पूर्व सूत्रों में परिहार तप करने वाले भिक्षु के साथ निषद्या (साथ रहने-बैठने) आदि के व्यवहार का निषेध एवं अपवाद कहा गया है। प्रस्तुत तीन सूत्रों में परिस्थितिवश पारिहारिक भिक्षु को स्थविर की सेवा के लिए भेजने का विधान किया है।

पारिहारिक भिक्षु अपने प्रायश्चित्त तप की आराधना करता हुआ भी सेवा में जा सकता है अथवा तप की आराधना छोड़कर भी जा सकता है। गंतव्य स्थान का जो सीधा मार्ग संयम-मर्यादा के अनुसार हो तो उसी से वैयावृत्य के लिए सीधा जाना चाहिए किन्तु अधिक समय व्यतीत करते हुए यथेच्छ मार्ग से नहीं जाना चाहिए।

Elaboration—In the earlier Sutra, sitting or staying with a *bhikshu* who is practicing austerities as *prayashchit* is prohibited and the exceptional state has also been mentioned. In these three *Sutras* there is provision of sending *pariharik bhikshu* (a *bhikshu* who undergoes austerities awarded to him as *prayashchit* for his sins) for the service of a *Sthavir* (senior monk) in view of that particular situation.

A *pariharik bhikshu* can go for serving the sick while undergoing his *prayashchit* austerities. He can also go there abandoning his austerities. He should go for service by the straight path following his normal ascetic restraints. He should not go by the path of his choice (when straight path is available) and should not spend more time on the way than what is absolutely necessary.

अकेले विचरने वाले का गण में पुनरागमन RETURN OF A LONELY MONK TO THE GROUP

२३. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेय-परिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२४. गणावच्छेइए य गणाओ अवक्कम्म एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेय-परिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२५. आयरिय-उवज्झाए य गणाओ अवक्कम्म एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेय-परिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२३. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर एकलविहारचर्या (अकेला विहार) धारण करके विचरण करे, बाद में वह पुनः उसी गण में सम्मिलित होकर रहना चाहे तो पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एव प्रतिक्रमण करना चाहिए तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे उसे स्वीकार करना चाहिए।

२४. यदि कोई गणावच्छेदक गण से निकलकर एकलविहारचर्या धारण करके विचरण करे और बाद में वह पुनः उसी गण में सम्मिलित होकर रहना चाहे तो उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करना चाहिए तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे उसे स्वीकार करना चाहिए।

२५. यदि कोई आचार्य या उपाध्याय गण से निकलकर एकलविहारचर्या धारण करके विचरण करे और बाद में वह पुनः उसी गण में सम्मिलित होकर रहना चाहे तो उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करना चाहिए तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे उसे स्वीकार करना चाहिए।

23. A bhikshu has left his group and wanders alone with a resolve of solitary movement. Later he wants to join his earlier group and live with them. Then he should completely introspect in all details his earlier state (of lonely wanderings) and repent for the faults if any committed. The *Acharya*, after listening to all the details of his earlier life may award him *prayashchit* in the form of reduction in ascetic life or *prayashchit-* austerities and he should accept that award.

24. In case a *ganavachhedak* leaves his group and wanders alone and later he desires to join that group again, he should make self-criticism in all details of the entire ascetic life spent alone, do *pratikraman* (self-introspection before the seniors) and accept the *prayashchit* awarded to him in the form of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities by the *Acharya* after listening his detailed self-criticism.

25. An *Acharya* or *Upadhyaya* leaves his group and wanders alone. Later he wants to return to the same group and live with it. He should, then make self-introspection of his past lonely ascetic life, narrate it in all details, make self-criticism and *pratikraman*. The *Acharya*, should, after listening to his self-criticism award *prayashchit* in the form of reduction in ascetic life-span or *prayashchit* austerities and he should accept the same.

विवेचन : इन तीन सूत्रों में गण से निकलकर एकाकी विहारचर्या करने वाले भिक्षु, गणावच्छेदक और आचार्य, उपाध्याय का कथन है। ये एकलविहारी भिक्षु यदि एकाकी विहारचर्या छोडकर पुन गण मे सम्मिलित होना चाहें तो उनको गण मे सम्मिलित किया जा सकता है, किन्तु उनको एकाकी विहारचर्या में लगे दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है और गच्छ-प्रमुख उनके एकाकी विचरण का प्रायश्चित्त तप या दीक्षा-छेद जो भी दे उसे स्वीकार करना भी आवश्यक होता है।

आगमों में एकलविहार दो प्रकार का बताया है-

(१) **अपरिस्थितिक**-प्रतिमाओं को धारण करने वाले भिक्षुओ का अकेला रहना केवल कर्मनिर्जरा हेतु होता है, वह अपरिस्थितिक एकलविहार है।

प्रतिमा धारण करने वाले भिक्षु गच्छ के आचार्य की आज्ञा लेकर आदर-सहित एकलविहार करते हैं, अतः ये आचार्य की सम्पदा में गिने जाते हैं। ये नौ पूर्व के ज्ञाता होते है। आठ महीनों में प्रतिमा पूर्ण करने के बाद सम्मानपूर्वक गण में लौट आते हैं।

(२) सपरिस्थितिक—शारीरिक व मानसिक कारणो से, प्रकृति की विषमता से अथवा पूर्णतया संयम-विधि का पालन न कर सकने आदि विविध कारणो से जो स्वेच्छावश एकलविहार धारण किया जाता है, वह 'सपरिस्थितिक एकलविहार' है।

सपरिस्थितिक एकलविहारचर्या वाला भिक्षु आचार्य की सम्पदा मे नहीं गिना जाता है। उसका गच्छ से निकलना आज्ञा से अथवा आदरपूर्वक नहीं होता है, किन्तु सघ की उदासीनता या विरोधपूर्वक होता है।

अगीतार्थ, अबहुश्रुत और अव्यक्त का एकलविहार एकान्त निषिद्ध है। संयम में शिथिल, अजागरूक एवं क्रोध, मान आदि कषायों की अधिकता वाले भिक्षु का एकलविहार अप्रशस्त है एवं वह निंदित एकलविहार कहा गया है।

ये प्रशस्त-अप्रशस्त कोई भी एकाकीविहारी भिक्षु पुन गच्छ में आकर रहना चाहे तो उचित परीक्षण करके एवं योग्य प्रायश्चित्त देकर गच्छ में रखा जा सकता है। यह तीनो सूत्रों का सार है।

Elaboration—In these three *Sutras*, there is the discription of a *bhikshu, ganavachhedak, Acharya* and *Upadhyaya* who wanders alone leaving his group. In case that lonely *bhikshu* wants to abandon his lonely wanderings and join the earlier group again, he can do so but it is essential that he should narrate, criticise and repent for all the faults committed during lonely wanderings and accept the *prayashchit* awarded to him by the head of the group for his lonely wanderings which may be in the form of *prayashchit*-austerities or reduction in the ascetic life-span

In the *Agams*, lonely wanderings of an ascetic are of two types—

(1) Aparisthitik—It is spending of ascetic life alone by a *bhikshu* who is practicing *pratimas* (special ascetic restraints) purely for shedding *karmas*.

The *bhikshu* who practices *pratimas* takes proper permission of his *Acharya* and honourably wanders alone So, it is counted as ascetic wealth of the *Acharya*. They are expert in nine *purvas*. They return to their group honourably after completing the practice of *pratimas* in eight months.

(2) Saparisthitik—When one adopts lonely ascetic life due to physical or mental conditions, difference in nature or inability to follow the code of ascetic discipline in entirety and the like voluntarily, it is termed as *Saparisthitik ekalvihar*

A *bhikshu* who wanders alone as *Saparisthitik bhikshu* is not included in the wealth of the *Acharya*. His exit from the group is not with the permission of the head of the group and in an honourable way. But it is in a passive way or in opposition to the attitude of the organisation.

The lonely wandering of a *bhikshu* who is not experienced, who is not well-educated in scriptures and who is not clear in his knowledge is prohibited. It is demeritorious when a *bhikshu* who is weak in ascetic conduct, who is not discerning and in whom there is great influence of passions like anger, ego and the like wanders alone It is called condemnable lonely wanderings.

In case any *bhikshu* who was wandering alone whether his wandering was meritorious or not wants to return to his earlier group, he can be allowed after proper examination and after awarding him the *prayashchit* he deserves. This is in nut-shell the gist of these three *Sutras*.

पार्श्वस्थ–विहारी आदि का गण में पुनरागमन RETURN OF PARSHVASTH BHIKSHU TO THE GROUP

२६. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म पासत्थविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि य इत्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२७. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म अहाछंदविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि य इत्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२८. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म कुसीलविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि य इत्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२९. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म ओसन्नविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि य इत्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

३०. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म संसत्तविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, अत्थि य इत्थ सेसे, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

२६. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर **पार्श्वस्थविहारचर्या** को अगीकार करके विचरे और बाद मे वह पार्श्वस्थविहार छोडकर उसी गण मे सम्मिलित होकर रहना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो (पूर्ण रूप में नष्ट–भ्रष्ट न हुआ हो) तो पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे, उसे स्वीकार करना चाहिए।

२७. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर **यथाछन्दविहारचर्या** अगीकार करके विचरे और बाद मे वह यथाछन्दविहार छोडकर उसी गण में सम्मिलित होकर रहना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो तो

वह उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दें, उसे स्वीकार करना चाहिए।

२८. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर कुशीलविहारचर्या को अंगीकार करके विचरे और बाद मे वह कुशीलविहार छोडकर उसी गण में सम्मिलित होकर रहना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो तो वह उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे, उसे स्वीकार करना चाहिए।

२९. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर अवसन्नविहारचर्या को अंगीकार करके विचरे और बाद मे वह अवसन्नविहार छोड़कर उसी गण मे सम्मिलित होकर रहना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो तो वह उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे, उसे स्वीकार करना चाहिए।

३०. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर संसक्तविहारचर्या को अगीकार करके विचरे और बाद मे वह ससक्तविहार को छोडकर उसी गण मे सम्मिलित होकर रहना चाहे तो यदि उसका चारित्र कुछ शेष हो तो वह उस पूर्व अवस्था की पूर्ण आलोचना एव प्रतिक्रमण करे तथा आचार्य उसकी आलोचना सुनकर जो भी दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त दे, उसे स्वीकार करना चाहिए।

26. A *bhikshu* leaves his group and wanders and preaches following *Parshvasth* conduct (a conduct wherein he does not make sincere efforts for right knowledge, perception and conduct) He, however, later wants to join his earlier group. In case he still possesses some ascetic virtues of the order (he has not completely destroyed the ascetic conduct), he should first narrate, criticise and repent for all the faults committed in his earlier way of life and do *pratikraman* (resolve not to do it again) for it He should accept *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities, whatsoever is awarded to him by the *Acharya* after listening in detail the faults committed.

27. A bhikshu leaves his group and wanders and preaches practicing *Yathachhand* ascetic conduct. He, however, later wants to join his earlier group. If he still possesses some ascetic virtues of the order, he should first narrate, criticise and repent for all the faults committed in earlier period and do *pratikraman* for the same. Thereafter he should accept the *prayashchit* given to him by the *Acharya* after listening in detail his faults whether that *prayashchit* is reduction in ascetic period or in form of *prayashchit*-austerities

28. A *bhikshu* leaves his group and wanders practicing *Kusheel* ascetic conduct He, however, later wants to join the original group. If he still possesses some ascetic virtues of the order, he should narrate,

criticise, repent and do *pratikraman* for all the faults committed in earlier period and accept the *prayashchit* given to him by the *Acharya* for his faults. It may be the *prayashchit* of reduction in period of monkhood or *prayashit*-austerities

29. A bhikshu leaves his group and wanders practicing *Avasanna* ascetic conduct. Later, he wants to join the earlier group. If he still possesses some ascetic virtues of the order, he should criticise and repent for all the faults committed earlier. The *Acharya* shall award him *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities after listening in detail his faults and he should accept the same.

30. A *bhikshu* leaves his group and adopts *Sansakt* ascetic conduct Later, he desires to join the earlier group If he still possesses some ascetic virtues of the order, he should criticise repent and do *pratikraman* for all the faults committed in the earlier period and the *Acharya*, after listening to the details may award him *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities, which he should accept.

विवेचन : पार्श्वस्थविहारी के लिए गण मे सम्मिलित करने के जो नियम आदि है, वे ही यथाच्छन्दविहारी आदि के लिए है। उक्त पाँचो सूत्रो में नियम समान ही है। अर्थात् पार्श्वस्थ आदि जब पुन· गच्छ में आना चाहे तब उनकी दूषित प्रवृत्तियो के द्वारा सयम पूर्ण नष्ट न हुआ हो अर्थात् कुछ भी सयम के गुण शेष रहे हो तो उन्हे तप या छेद का प्रायश्चित्त देकर गच्छ मे सम्मिलित किया जा सकता है। सयम शेष रहने का कथन पूर्व सूत्रो मे नही है, इसमे अन्य सभी विधान दोनो जगह समान हैं।

इन सूत्रो मे प्रायश्चित्त के लिए तप या छेद का वैकल्पिक विधान किया गया है अर्थात् किसी एकलविहारी या पार्श्वस्थ आदि को तप प्रायश्चित्त देकर गच्छ मे सम्मिलित किया जा सकता है और किसी को दीक्षा–छेद का प्रायश्चित्त भी दिया जा सकता है।

पार्श्वस्थ आदि शब्दो का सक्षिप्त अर्थ इस प्रकार है–

(१) **पार्श्वस्थ**–जो ज्ञान–दर्शन–चारित्र की आराधना मे पुरुषार्थ नही करता है, अपितु उनके अतिचारो एव अनाचारो मे प्रवृत्ति करता है।

(२) **यथाछंद**–स्वेच्छाचारी जो आगम–विपरीत मनमानी प्ररूपणा या आचरण करता है।

(३) **कुशील**–जो विद्या, मत्र, निमित्त–कथन या चिकित्सा आदि सयमी जीवन के निषिद्ध कार्य करता है।

(४) **अवसन्न**–जो संयम–समाचारी के नियमो से विपरीत या अल्पाधिक आचरण करता है।

(५) **संसक्त**–उन्नत आचार वालो के साथ उन्नत आचार का पालन करता है और शिथिलाचार वालो के साथ शिथिलाचारी हो जाता है। 'जैसा संग वैसा रंग' पर आचरण करने वाला।

सयम में दोष लगाने के कारण उक्त पार्श्वस्थ आदि शिथिलाचारी कहे जाते हैं।

किन्तु जो भिक्षु किसी अनिवार्य परिस्थिति से विवश होकर दोष–सेवन करता है, बाद मे विशेष परिस्थिति से निवृत्त होने पर सदोष प्रवृत्तियों का प्रायश्चित्त लेकर दोषो की शुद्धि कर लेता है, वह "शिथिलाचारी

पार्श्वस्थादि" नही कहा जाता है, किन्तु आगम की भाषाओ मे उसे बकुश या प्रतिसेवना निर्ग्रन्थ एवं शुद्धाचारी कहा जाता है। *(आचार्य श्री घासीलाल जी म कृत भाष्य, पृ ४०)*

शुद्धाचारी एवं शिथिलाचारी का निर्णय करने मे एक विकल्प यह भी ध्यान मे रखने योग्य है कि सयम की जिन मर्यादाओ का आगमो मे स्पष्ट कथन है, उनका जो बिना किसी विशेष कारण के भी उचित पालन नहीं करता है उसे तो शिथिलाचारी कहा जा सकता है, किन्तु आगमो मे जिन मर्यादाओं का कथन नहीं है, जो परम्परा से प्रचलित है या गच्छ समुदाय या व्यक्ति के द्वारा निर्धारित एवं आचरित हैं, ऐसी समाचारी के न पालने से किसी को शिथिलाचारी मानना उचित नहीं है।

पार्श्वस्थ आदि महाविदेह क्षेत्र मे भी होते है एवं सभी तीर्थंकरो के शासन में होते हैं। इन पार्श्वस्थ आदि मे भी यथाछन्द साधु अपना और जिनशासन का अत्यधिक अहित करने वाला होता है।

Elaboration—The rules for allowing an ascetic who has practiced *Yathachhand* ascetic conduct are the same, which govern one who had practiced *Parshavasth* ascetic conduct. In all the above said five *Sutras* rules are the same. In other words when a *Parshavasth* and the like wants to join the earlier group again, and his ascetic conduct has not been completely destroyed by his faulty way of life—say he still possesses some ascetic attributes, he can be allowed to join the group after awarding him the *prayashchit* of austerities or reduction in ascetic life-span. The mention of some ascetic discipline still existing is in these *Sutras* and not in earlier *Sutras*. The other provisions are the same in both.

In these *Sutras* there is an alternative provision for austerities or *Chhed*. In other words one who wanders alone or is a *Parshavasth* or the like, he can be allowed to join the group after awarding him *prayashchit*-austerities. To some *prayashchit* of reduction in period of initiation can also be awarded as *prayashchit*.

Briefly, the meaning of words *Parshvasth* and others is as under—

(1) **Parshvasth**—One who is not making efforts in practicing right knowledge, perception and conduct But commits minor and major faults (*atichar* and *anachar*) in ascetic discipline.

(2) **Yathachhand**—One who wanders independently and interprets the scriptures according to his own will

(3) **Kusheel**—One who engages in activities such as special powers, mantras, telling methods of curing physical ailments and the like which are prohibited in ascetic conduct.

(4) **Avasanna**—One who behaves against the prescribed code of ascetic conduct or does follow a bit more or a bit less than the one prescribed.

(5) Sansakt—One who practices good ascetic conduct with these who practice good conduct and faulty ascetic conduct in the company of those who follow faulty ascetic conduct.

In view of the faults creeping in ascetic discipline, the above mentioned, *parshavasth* and the like are called those who follow faulty ascetic conduct.

In case a *bhikshu* commits a fault in any unavoidable situation and when he is free from that special situation he purifies his faults (or sins) by accepting the *prayashchit* in lieu thereof, he is not called one of faulty conduct or *parshvasth* and the like. In the *Agamic* language he is called *bakush* or *pratisevana nirgranth* and one who is practicing pure conduct *(Acharya Shri Ghasilal ji M in Bhashya, pp. 40)*

It is worthy of keeping in mind while deciding whether a monk is practicing faultless conduct or a faulty conduct that the monk who without any special reason does not properly practice the ascetic restraints clearly mentioned in *Agams* can be called a monk of faulty conduct. But it is not proper to call a monk as one of faulty conduct who does not practice these rules or restraints which are prevalent by tradition or which have been introduced by any *gachh*, group or person and being followed as such but which are not mentioned in Agams

Parshavasth monks are there even in Mahavideh area and in the era of all the *Tirthankars*. Even among these *parshavasth* monks and the like, one who is *yathachhand* is more harmful for himself and for the religious order.

अन्यलिंग ग्रहण के बाद गण में पुनरागमन

RETURN TO THE GROUP AFTER ACCEPTING ANOTHER FAITH

३१. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म परपासंडपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नत्थि णं तस्स तप्पत्तियं केइ छेए वा परिहारे वा, नन्नत्थ एगाए आलोयणाए।

३१. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर (किसी विशेष परिस्थितिवश) अन्यलिग को धारण करके विहार करे और कारण समाप्त होने पर पुनः स्वलिंग को धारण करके गण मे सम्मिलित होकर रहना चाहे तो उसे लिंग–परिवर्तन का, आलोचना के अतिरिक्त दीक्षा–छेद या तप रूप कोई प्रायश्चित्त नही आता है।

31. If any *bhikshu* (due to any special situation) leaves his group and practices another faith in another uniform and after that situation disappears wants to accept earlier group, he is not liable for any

prayashchit of reduction in period of monkhood or *prayashchit*-austerities except criticism, repentance and detailed narration of his faults.

विवेचन : सामान्य नियम के अनुसार यदि कोई भिक्षु कषाय के वश गण को छोड़कर अन्यलिंग (जैनेतर साधु का वेश) धारण करता है एव कुछ समय पश्चात् पुन स्वगच्छ में आना चाहता है तो उसे दीक्षा–छेद या मूल दीक्षा आदि प्रायश्चित्त देकर ही गच्छ मे सम्मिलित किया जा सकता है। किन्तु प्रस्तुत सूत्र में जो दीक्षा–छेद आदि प्रायश्चित्त का निषेध किया गया है, उसका आशय कुछ भिन्न है।

(१) असह्य उपद्रवों से उद्विग्न होकर कोई भिक्षु भाव–सयम की रक्षा के लिए द्रव्यलिंग (वेश–भूषा) का परिवर्तन करता हो, अथवा (२) किसी देश का राजा आर्हतधर्म से एवं निर्ग्रन्थ श्रमणो से द्वेष रखता हो, उस क्षेत्र मे किसी भिक्षु को जितने समय रहना हो या उस क्षेत्र को विहार करके पार करना हो, तब वह लिंग (वेश) परिवर्तन करता है। किन्तु संयम में दोष नहीं लगाता है, परिस्थिति अनुकूल होने पर पुन स्वलिंग को धारण कर गच्छ के साधुओ के साथ रहना चाहता है तब उसे लिग–परिवर्तन के लिए केवल आलोचना प्रायश्चित्त के सिवाय कोई छेद या तप प्रायश्चित्त नही दिया जाता है। क्योंकि इसमें संयम की शिथिलता नही, परिस्थितिजन्य विवशता ही कारण है। वह अपना चारित्र निर्दोष रखता है। *(आधार श्री घासीलाल जी म कृत भाष्य, पृ ४३)*

भगवतीसूत्र (श २५, उ ७) मे गृहस्थलिग एव अन्यलिग मे छेदोपस्थापनीयचारित्र का जो कथन है, वह भी इसी अपेक्षा से है। अन्य विशेष जानकारी के लिए सूत्र २३ का विवेचन देखे।

Elaboration—According to the general rule, if a *bhikshu* leaves his group in a fit of passions and adopts the uniform of a *Sadhu* other than a Jain *Sadhu*; but sometime later if he wants to come to his earlier group he can be included in the group after awarding him the *prayashchit* of reduction in period of ascetic life or of *prayashchit*-austerities but in the present *Sutra* the *prayashchit* of reduction in ascetic period and the like is prohibited The underlying idea is somewhat different

(1) A *bhikshu* in a state of unbearable troubles changes his uniform of monkhood in order to safeguard his ascetic mental outlook, or (2) The ruler of a country dislikes the *Dharma* propagated by *Tirthankars* and the *Nirgranth Shramans* In that situation a *bhikshu* changes his dress of Jain monk for the period of his stay in that area or for the time that he shall have to spend in crossing that area. He, however, does not commit any fault relating to ascetic discipline when the situation becomes normal He again adopts the dress of Jain monk and wants to live with the group of his monks His *alochana*, narration of facts in all details and repenting for faults in that period is considered sufficient and he is not awarded the *Chhed prayashchit* or *prayashchit*-austerities. It is because his action does not depict any fault in ascetic life and he had to act in a state of helplessness caused by the then prevailing situation. He maintains his ascetic conduct faultless.

The description of *Chhedopasthapaniya* conduct in household state or in any other uniform as mentioned in ***Bhagavati Sutra*** (***Shatak*** 25, ***Uddeshak*** 7) is also in this context. For special study, see explanation of *Sutra* 23.

संयम छोड़कर जाने वाले का गण में पुनरागमन

RETURN OF MONK WHO HAD EARLIER LEFT THE ASCETIC LIFE

३२. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म ओहाविज्जा, से य इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, नत्थि णं तस्स तप्पत्तियं केई छेए वा परिहारे वा, नन्नत्थ एगाए छेओवट्ठावणियाए।

३२. यदि कोई भिक्षु गण से निकलकर संयम का त्याग कर दे और (गृहस्थ वेश या अन्य मुनि का वेश धारण कर ले) बाद में वह उसी गण को स्वीकार कर रहना चाहे तो उसके लिए केवल 'छेदोपस्थापना' (नई दीक्षा) प्रायश्चित्त है, इसके अतिरिक्त उसे दीक्षा-छेद या परिहार तप आदि कोई प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता है।

32. A *bhikshu* discards his life of ascetic restraints of Jain monk (he becomes a householder or adopts the dress of monk of other faith). Sometime later he wants to accept the same *gana* (group) again. The *prayashchit* prescribed for him is only *Chhedopasthapana*, which means initiating afresh in the order In lieu of it, he cannot be awarded any other *prayashchit* such as reduction in period of monkhood or *parihar* austerities and the like.

विवेचन : भाष्यकार ने गण छोडने व सयम त्यागने के अनेक संभावित कारण बताये है। जैसे-(१) परीषह-उपसर्ग नही सह सके, (२) भिक्षुओ मे परस्पर कलह हो जाये, (३) अथवा इन्द्रिय-विषयासक्त हो जाये-

तब वह सयम छोडकर गृहस्थलिग धारण कर लेता है, वही कभी पुन सयम स्वीकार करना चाहे और उसे दीक्षा देना लाभप्रद प्रतीत हो तो उसे पुन· दीक्षा दी जा सकती है। किन्तु उसे गच्छ एव संयम त्यागने सम्बन्धी प्रवृत्ति का अन्य कोई प्रायश्चित्त नही दिया जाता है, क्योंकि पुन नई दीक्षा देने से ही उसका पूर्ण प्रायश्चित्त हो जाता है।

Elaboration—The author of *bhashya* has mentioned many possible reasons for leaving the religious group (of monks) and discarding ascetic discipline. For instance-(1) He is not able to bear the troubles accruing in ascetic life and troubles caused by men, animals or gods, (2) A quarrel may arise between *bhikshus*, or (3) He may become attached to the sensual pleasures.

Under these conditions he discards ascetic uniform and adopts the dress of a householder. In case he later wants to accept ascetic life, and it appears useful to initiate him in the order, he can be initiated again. But he is not awarded any other *prayashchit* for leaving the group because fresh initiation includes the entire *prayashchit*.

३३. (१) भिक्खू य अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता इच्छेज्जा आलोएत्तए, जत्थेव अप्पणो आयरिय-उवज्झाए पासेज्जा तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(२) नो चेव णं अप्पणो आयरिय-उवज्झाए पासेज्जा, जत्थेव संभोइयं साहम्मियं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(३) नो चेव णं संभोइयं साहम्मियं बहुस्सुयं बब्भागमं पासेज्जा, जत्थेव अन्नसंभोइयं साहम्मियं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(४) नो चेव णं अन्नसंभोइयं साहम्मियं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, जत्थेव सारूवियं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(५) नो चेव णं सारूवियं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, जत्थेव समणोवासगं पच्छाकडं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(६) नो चेव णं समणोवासगं पच्छाकडं पासेज्जा बहुस्सुयं बब्भागमं, जत्थेव सम्मं भावियाइं चेइयाइं पासेज्जा, तस्संतिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

(७) नो चेव णं सम्मं भावियाइं चेइयाइं पासेज्जा, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणीए वा पाईणाभिमुहे वा उदीणाभिमुहे वा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वएज्जा-

"एवइया मे अवराहा, एवइक्खुत्तो अहं अवरद्धो" अरिहंताणं सिद्धाणं अन्तिए आलोएज्जा जाव अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा।

३३. (१) भिक्षु किसी अकृत्यस्थान (अकरणीय दोष) का सेवन करके उसकी आलोचना करना चाहे तो जहाँ पर अपने आचार्य या उपाध्याय को देखे, वहाँ उनके समीप आलोचना करे यावत् (प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा आदि) यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करे।

(२) यदि अपने आचार्य या उपाध्याय न मिले तो जहाँ पर साम्भोगिक (एक मण्डली में बैठकर आहार करने वाले) साधर्मिक साधु मिले जोकि बहुश्रुत एव बहुआगमज्ञ हो, उनके समीप आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करे।

(३) यदि साम्भोगिक साधर्मिक बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ साधु भी न मिले, तो जहाँ पर अन्यसाम्भोगिक साधर्मिक साधु मिले-"जो बहुश्रुत हो और बहुआगमज्ञ हो", वहाँ उसके समीप आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करे।

(४) यदि अन्य साम्भोगिक साधर्मिक बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ साधु न मिले तो जहाँ पर सारूप्य साधु मिले, जो बहुश्रुत हो और बहुआगमज्ञ हो, वहाँ उसके समीप आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप कर्म स्वीकार करे।

(५) यदि सारूप्य, बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ साधु न मिले तो जहाँ पर पश्चात्कृत (सयम-त्यागी) श्रमणोपासक मिले, जो बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ हो, वहाँ उसके समीप आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपःकर्म स्वीकार करे।

(६) यदि पश्चात्कृत बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ श्रमणोपासक न मिले तो जहाँ पर सम्यक् भावित ज्ञानी पुरुष (समभावी, ज्ञानी, विवेकी; सम्यग्दृष्टि व्यक्ति) मिले तो वहाँ उसके समीप आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपःकर्म स्वीकार करे।

(७) यदि सम्यक् भावित ज्ञानी पुरुष न मिले तो ग्राम यावत् राजधानी के बाहर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके दोनो हाथ जोडकर मस्तक के आवर्तन करे और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोले–

"इतने मेरे दोष है और इतनी बार मैंने इन दोषों का सेवन किया है" इस प्रकार बोलकर अरिहन्तों और सिद्धों के समक्ष आलोचना करे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तप·कर्म स्वीकार करे।

33. (1) In case a *bhikshu* after committing a fault, which he should not have done, wants to criticise it and repent for it, he should do it before his *Acharya* or *Upadhyaya* whoever comes across He should do *alochana* (critical self-introspection of faults), *pratıkraman*, condemn it and also narrate it before others (*garha*). He should then accept whatever *prayashchıt* is awarded to him.

(2) In case *Acharya* or *Upadhyaya* is not available he should contact monks of his order who dine with him, and who are learned ın scriptures (*bahushrut, bahu-agamajna*). He should narrate his faulty conduct to him in all details and accept the *prayashchit* awarded to hım.

(3) In case even a *bahushrut, bahu-agamajna* monk of his order is not available, he should go to a *bahushrut* who has expert knowledge of *Agams* but who is of another group of the same order and state all faults in his ascetic discıpline and accept whatever *prayashchıt*- austerities are awarded to him.

(4) In case *bahushrut* and expert in knowledge of *Agams* who is of the same faith and can dine with their group is not available, he should go to a *sarupya* monk who is *bahushrut* and expert in knowledge of *Agams*, and narrate his faults of ascetic life in detail before him and accept the *prayashchit* which is granted to him.

(5) In case *sarupya, bahushrut* and expert monk in *Agam* is not available, he should contact *pashchat-krit Shramanopasak* (one who has left ascetic life) but who is *bahushrut* and has expert knowledge of *Agams*, and narrate faults of his ascetic life before him ın all details. He should then accept whatever *prayashchit* as austerities is awarded to him.

(6) In case *pashchat-krit, bahushrut,* expert in *Agams Shramanopasak* is not available, he should contact *Samyak bhavıt Jnanı* person (one who is impartial, has expert knowledge of scriptures, discerning and has right perception) and narrate faults of ascetic life in all details to him and accept austerities as *prayashchit* which are awarded to him.

(7) In case *Samyak bhavıt Jnani* person is not available, he should stay outside the village up to capital facing east or north with folded hands, move the hands around touching the forehead, and say as under—

"My faults are these and I have committed them so many times." Thereafter, he should narrate his faults and repent for them believıng that he is saying in front of *Arıhants* and *Sıddhas* up to accept *prayashchit* austerities as prescribed for those faults

विवेचन : संयमसाधना करते हुए परिस्थितिवश या प्रमादवश कभी श्रमणधर्म की मर्यादाओ का उल्लंघन करने वाले अकृत्य स्थान का आचरण हो जाये तो शीघ्र ही जागरूक होकर अप्रमत्तभाव से आलोचना करना सयम जीवन का आवश्यक अंग है। यह आभ्यन्तर तपरूप प्रायश्चित्त का प्रथम भेद है।

आलोचना किसके समक्ष करनी चाहिए, प्रस्तुत सूत्र मे इसका एक क्रम बताया गया है। तात्पर्य यह है कि जहाँ तक सम्भव हो आगम मे कथित इसी क्रम से आलोचना करनी चाहिए। आलोचना करने के इच्छुक भिक्षु को सर्वप्रथम अपने आचार्य या उपाध्याय के पास आलोचना करनी चाहिए। यदि किसी कारण से आचार्य-उपाध्याय का योग सम्भव न हो अर्थात् वे रुग्ण हो या दूर हो एव स्वय का आयु अल्प प्रतीत हो तो फिर साभोगिक आदि के क्रम से जो उपलब्ध हो, उनके पास आलोयणा करनी चाहिए। सारूप्य का अर्थ है, समान वेश-भूषा वाले। उनका आचार कैसा भी क्यो न हो, यदि वे बहुश्रुत आदि गुणो से युक्त हों तो उनके पास आलोयणा की जा सकती है। बहुश्रुत का अर्थ है अनेक आगम व छेदसूत्रो का ज्ञाता। बहुआगमज्ञ का अर्थ है अनेक आगमो का सूत्र व अर्थ ज्ञाता। (श्री घासीलाल जी म कृत भाष्य, पृ)

कभी उपरोक्त व्यक्ति भी न मिले तो ग्रामादि के बाहर निर्जन स्थान मे उच्च स्वर से अरिहंतों या सिद्धों को स्मृति में रखकर उनके सामने आलोचना करनी चाहिए एव स्वयं ही यथायोग्य प्रायश्चित्त ग्रहण कर लेना चाहिए। विशेष शब्दो का अर्थ-

(१) **आलोएज्जा**-अतिचार आदि को वचन से प्रकट करे।

(२) **पडिक्कमेज्जा**-मिथ्या दुष्कृत लेकर-अपनी भूल स्वीकार करे।

(३) **निंदेज्जा**-आत्मसाक्षी से असदाचरण की निन्दा करे अर्थात् अन्तर्मन मे खेद प्रकट करे।

(४) **गरहेज्जा**-गुरुसाक्षी से असदाचरण की निन्दा करे, खेद प्रकट करे।

(५) **विउट्टेज्जा**-असदाचरण से निवृत्त हो जाये।

(६) **विसोहेज्जा**-आत्मा को शुद्ध कर ले अर्थात् असदाचरण से पूर्ण निवृत्त हो जाये।

(७) **अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा**-उस अकृत्य को पुन सेवन नही करने के लिए दृढ संकल्प करे।

(८) **अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जेज्जा**-उस दोष के अनुरूप तप आदि प्रायश्चित्त स्वीकार करे।

आलोचना का यह सम्पूर्ण क्रम है। आलोचना से लेकर प्रायश्चित्त स्वीकार करने तक आठ चरणों की सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी करने पर ही आत्म-विशुद्धि होती है एवं तभी आलोचना करना सार्थक होता है।

सूत्र में "सम्मं भावियाइं चेइयाइं" शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है-"तस्याप्यभावे-यत्रैव सम्यग् भावितानि-जिनवचनवासितांतः करणानि देवतानि पश्यति तत्र गत्वा तेषामंतिके आलोचयेत्।"-श्रमणोपासक के अभाव मे जिनवचनो से जिनका हृदय सुवासित है, ऐसे देवता को देखे तो उसके पास जाकर अपनी आलोचना करे।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'चेइय' शब्द का अर्थ मूर्तिपूजक समुदाय "अरिहंत भगवान की मूर्ति" भी करते हैं, किन्तु यह टीकाकार के अर्थ से विपरीत है तथा पूर्वापर सूत्रों से विरुद्ध भी है। क्योंकि टीकाकार ने यहाँ अन्त करण शब्द का प्रयोग किया है, वह मूर्ति में नहीं हो सकता है। सूत्र मे सम्यक् भावित चैत्य का अभाव होने पर अरिहंत सिद्धों की साक्षी के लिए गाँव आदि के बाहर जाने का कहा है। यदि अरिहंत चैत्य का अर्थ मन्दिर होता तो मन्दिर में ही अरिहंत सिद्ध की साक्षी से आलोचना करने का कथन होता, गाँव के बाहर जाने के अलग विकल्प देने की आवश्यकता ही नही होती। अत 'चेइय' शब्द का प्रस्तुत प्रकरण मे 'ज्ञानी या समझदार पुरुष' ऐसा अर्थ करना ही उपयुक्त लगता है। भाष्य के अनुसार-चैत्यमत्तः करणे न रागो न चेष्टाई स्व-पर गुणावगुण विवेकज्ञा। *(घासीलाल जी म , पृ ४७)*

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—While practicing ascetic discipline, in case a *Shraman*, in view of compelling circumstances or due to slackness, conducts in such a way that he ignores the limits prescribed for ascetic conduct, it is essential in ascetic life that he should be awakened and without any slackness or distortion do self-criticism (alochana) of his faults. This is the first category of inner *prayashchit* austerities.

In this *Sutra* it is mentioned in order the person before whom one should do self-criticism of his faults. In a nutshell, to the extent it is possible, the self-criticism (*alochana*) of spiritual faults should be done in this order. A *bhikshu* who desires to do self-criticism (*alochana*) for his faults should first of all do it before *Acharya* or *Upadhyaya* In case due to any reason, it is not possible to contact *Acharya* or *Upadhyaya*, in other words if they are ill or they are at a great distance and one's span of life appears to be very little, he should do *alochana* before *Sambhogik* and the like whosever is available in the order mentioned above. *Saroop* means one whose dress is the same. His conduct may be of any type but in case he is equipped with the attributes, *alochana* can be done before him. *Bahushrut* means one who has studied many *Agams* and *Chhed Sutras. Bahu-agamajna* means one who knows *Sutras* and the meanings of many *Agams*. *(Shri Ghasilal ji Maharaj, Bhashya, pp. ...)*

In case the above said person is also not available, he should go to a lonely place outside the village and the like and remembering *Arihants* and *Siddhas* make *Alochana* before them in a loud voice and take necessary *prayashchit* himself

The meanings of special words are as under—

(1) **Aloejja**—To verbally express faults (*atichar*) and the like.

(2) **Padikkameja**—To accept one's faults, or bad activity done in a state of wrong belief.

(3) **Nindejja**—To criticise one's bad conduct in state of self-introspection. In other words to express sorrow from the core of one's heart.

(4) **Garhejja**—To criticise one's bad conduct in presence of the spiritual master, to feel sorry for one's such activities

(5) **Viyutteja**—To be free from bad conduct.

(6) **Visohejja**—To cleanse one's self. In other words to be completely free from bad conduct

(7) **Akaranayaye abbhutheja**—To make strong resolve not to repeat the undesirable act

(8) **Achariham tavokammam payachhitam padivajjejja**—To accept *prayashchit* in the form and the like according to his fault or sin.

This is the complete order in doing *alochana*. There are eight stages namely from *alochana* up to accepting *prayashchit* and only then there is self-purification and only then *alochana* is meaningful.

In *Sutra* the phrase **'Sammam bhaviyaim cheiyaim'** has been used It has been interpreted by the commentator, as under—that in case a *Shrmanopasak* is not available, be should go to such a god who has faith in the word of *Tirthankar* and do *alochana* before him.

In the present Sutra, the word **'Cheiya'** is interpreted by the idol—worshipping community as the idol of *Arihant*. But it is opposite to the interpretation by the commentator and is against the *Sutras* interpreted in conjunction. The commentator has used the word *antah-karan* (the heart) while an idol does not have a heart In the *Sutra* it is mentioned that in the absence of properly made chaitya, one should go out of the village for doing *alochana* in presence of *Arihant* or *Siddhas*. In case the meaning of *Arihant Chaitya* had been a temple, it could be mentioned as doing *Alochana* in temple in presence of *Arihant* or *Siddhas* and there was no necessity of going out of the village So translating **'cheiya'** as learned person is the proper interpretation. *(Ghasilal ji Maharaj, pp. 47)*

● FIRST UDDESHAK CONCLUDED ●

द्वितीय उद्देशक
SECOND UDDESHAK

साधर्मिकों के परिहार तप का विधान **RULE OF PARIHARIK AUSTERITIES OF MONKS OF SAME ORDER**

१. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति, एगे तत्थ अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं।

२. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति, दो वि ते अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, एगं तत्थ कप्पागं ठवइत्ता एगे निव्विसेज्जा, अह पच्छा से वि निव्विसेज्जा।

३. बहवे साहम्मिया एगयओ विहरंति, एगे तत्थ अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं।

४. बहवे साहम्मिया एगयओ विहरंति, सव्वे वि ते अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा, एगं तत्थ कप्पागं ठवइत्ता अवसेसा निव्विसेज्जा, अह पच्छा से वि निव्विसेज्जा।

५. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू गिलाएमाणे अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा।

से य संथरेज्जा, ठवणिज्जं ठवइत्ता करणिज्जं वेयावडियं।

से य नो संथरेज्जा, अणुपरिहारिएणं तस्स करणिज्जं वेयावडियं।

से य संते बले अणुपरिहारिएणं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जेज्जा, से वि कसिणे तत्थेव आरुहेयव्वे सिया।

१. दो साधर्मिक साधु एक साथ विचरते हो और उनमें से यदि एक साधु किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना (दोष-सेवन) करके आलोचना करे तो उसे प्रायश्चित्त तप मे स्थापित करके साधर्मिक भिक्षु को उसकी वैयावृत्य (सेवा) करनी चाहिए।

२. दो साधर्मिक साधु एक साथ विचरते हों और वे दोनो ही किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करें तो उनमें से एक को कल्पाक (अग्रणी-प्रमुख) स्थापित करे और एक परिहार तप रूप प्रायश्चित्त को वहन करे। प्रथम साधु का प्रायश्चित्त पूर्ण होने के बाद वह अग्रणी भी प्रायश्चित्त को वहन करे।

३. बहुत से साधर्मिक साधु एक साथ विचरते हों, उनमे एक साधु किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे तो (उनमे जो प्रमुख स्थविर हो वह) उसे प्रायश्चित्त तप वहन करावे और दूसरे भिक्षु को उसकी वैयावृत्य के लिए नियुक्त करे।

४. बहुत से साधर्मिक साधु एक साथ विचरते हों और वे सब किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करें तो उनमे से किसी एक को अग्रणी स्थापित करके शेष सब प्रायश्चित्त वहन करे। उनका पूर्ण होने के बाद वह अग्रणी साधु भी प्रायश्चित्त वहन करे।

५. परिहार तप रूप प्रायश्चित्त वहन करने वाला भिक्षु यदि रुग्ण होने पर किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना कर आलोचना करे तो,

यदि वह परिहार तप करने मे समर्थ हो, तो आचार्यादि उसे परिहार तप रूप प्रायश्चित्त दे और उसकी आवश्यक सेवा करावें।

यदि वह समर्थ न हो, तो आचार्यादि उसकी वैयावृत्य के लिए अनुपारिहारिक भिक्षु को नियुक्त करें।

यदि वह पारिहारिक भिक्षु सक्षम होते हुए भी अनुपारिहारिक भिक्षु से वैयावृत्य करावे तो उसका प्रायश्चित्त भी पूर्व प्रायश्चित्त के साथ आरोपित करना चाहिए।

1. Two Jain monks of same order are moving together. In case one of them commits a sin but undertakes self-censure, the other monk should engage him in austerities as *prayashchit* for the said fault and then serve him.

2. Two Jain monks of the same order are wandering together. Both of them commit a sin and later undertake self-censure Then one of them should be established as senior monk (*kalpcak*) and the other one should practice *pariharik* austerities as *prayashchit*. After the conclusion of *prayashchit* of that monk, the senior monk should also undergo the *prayashchit* (for his sin).

3. Many Sadhus of the same order are passing their spiritual ascetic life together. One of them commits a sin and later undergoes self-censure for it Then the seniormost monk should ensure that he practices *prayashchit*-austerities. He should also appoint anothor *bhikshu* for his service.

4. Many Jain monks of the same order are spending the ascetic life together. All of them commit a sin and later self-ensure themselves for the same. Then one of them should be appointed as the head monk and all others should practice *prayashchit*. When their *prayashchit* is concluded, the head monk should practice *prayashchit*-austerities.

5. A *bhikshu* is undergoing *parihar*-austerities as prayashchit for some fault committee in the state of illness

In case he is capable of practicing *parihar*-austerities, the *Acharya* or the like should award him requisite *prayashchit* and ensure his service which is essential.

In case he is not capable of practicing *parihar*-austerities, the *Acharya* or the like should appoint a *bhikshu* to assist him and attend to him.

In case he is capable of undergoing *parihar*-austerities but gets himself served by another *bhikshu* as assistant, the *prayashchit* for this fault should also be added to the *prayashchit* for earlier committed sin.

विवेचन : इस सूत्र के उद्देशक १ में एवं बृहत्कल्प, उ. ४ के सूत्र ३१ मे आचार्यादि के नेतृत्व मे परिहार तप के सम्बन्ध में तथा तप वहन करने की विधि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

विचरण करने वाले दो साधर्मिक भिक्षु यदि गीतार्थ (आगमज्ञाता) हैं और आचार्य आदि के नेतृत्व के बिना स्वतंत्र विचरण कर रहे हो, उनमे से किसी एक साधु को किसी दोष की शुद्धि के लिए परिहार तप वहन करना हो तो दूसरा गीतार्थ भिक्षु उसका **अनुपारिहारिक** (सहायक) एव **कल्पाक** (प्रमुखता करने वाला अथवा कल्प स्थित) बनता है।

यदि दोनो ने एक साथ दोष सेवन किया है और दोनो को शुद्धि के लिए परिहार तप वहन करना है तो एक भिक्षु के तप पूर्ण करने के बाद दूसरा भिक्षु तप वहन कर सकता है। अर्थात् दोनो एक साथ परिहार तप नही करे, क्योंकि एक को कल्पाक या अनुपारिहारिक (सहायक) रहना आवश्यक होता है। यही बात सूत्र ३-४ मे अनेक साधर्मिको के सम्बन्ध मे कही है।

पाँचवे सूत्र मे यह विशेष कथन है कि यदि पारिहारिक भिक्षु कुछ रुग्ण है एव उसने कोई दोष का सेवन किया है तो उस दोष सम्बन्धी प्रायश्चित्त की आरोपणा भी पूर्व तप मे सम्मिलित कर देनी चाहिए। यदि वह तप वहन करने मे समर्थ न हो तो वह तप करना रोक दे और पुन. सक्षम होने के बाद उस प्रायश्चित्त को वहन करके पूर्ण कर ले।

सामान्य नियम के अनुसार परिहार तप वाला भिक्षु किसी का सहयोग एव सेवा आदि नही ले सकता। किन्तु रुग्ण या अशक्त हो जाये तो वह सेवा करवा सकता है। आचार्य आदि को उसकी सेवा की व्यवस्था करवानी चाहिए। परन्तु स्वस्थ सशक्त होने के बाद भी यदि वह सेवा करवाता है तो उसका भी उसे प्रायश्चित्त आता है। इस विधान से यह पता चलता है कि दोष-शुद्धि के लिए तप जितना अनिवार्य है, चित्तसमाधि के लिए सेवा भी उतनी ही अनिवार्य है।

संथरेज्जा का अर्थ है, समर्थ हो, **ठ्वणिज्जं** अर्थात् स्थापनीय, परिहार तप में स्थापित करने योग्य।

Elaboration—A detailed description of undergoing *parihar*-austerities under the leadership of *Acharya* and the like and the procedure of practicing those austerities has been given in first *Uddeshak* of this *Sutra* and aphorism 31 of *Uddeshak* 4 of *Brihat-kalp Sutra*.

Two *bhikshus* of the same order are learned in *Agams*. They are wandering independent of the supervision of *Acharya* and the like. One of them has to practice *parihar*-austerities for cleansing his sin. Then the other *bhikshu*, learned in *Agams*, becomes his help (*anupariharik*), senior or responsible for ensuring proper practice of his *prayashchit* austerities (*Kalpak* or *Kalp-Sthit*).

In case both the *bhikshus* have committed the sin together and both of them have to undergo *parihar*-austerities for its purification, one of them can practice austerities first and after he completes *prayashchit*-austerities, the other *bhikshu* can undergo his *prayashchit*-austerities. In other words, both of them should not practice *parihar*-austerities simultaneously because it is essential that one should remain as supervisor or helping hand. This very fact is stated in aphorisms 3 and 4 in the context of many monks of the same order.

In the fifth aphorism it has been specially mentioned that in case a *pariharik* (guilty) *bhikshu* is a bit ill, and he has committed a fault, the *prayashchit* or punishment for that fault should also be added to the *prayaschit* austerities awarded to him for earlier faults. In case he is not in a position to undergo those austerities, he should stop the austerities and when he becomes capable of practicing the said austerities, he should practice them and complete his *prayashchit*.

As a common code, a *bhikshu* undergoing *parihar*-austerities cannot take assistance or service of any one. But when he is ill or weak, he can get service of others In case he gets service even after he becomes healthy he is liable for *prayashchit* due to this attitude. This rule indicates that service is essential for equanimity of the mind to the same extent as austerity is essential for cleansing the sin committed.

Santharejja means capable. *Thavanijjam* means one who is capable of undergoing *parihar* (or prayashchit) austerities

रुग्ण भिक्षुओं को गण से निकालने का निषेध PROHIBITION OF EXPELLING A SICK MONK

६. परिहारकप्पट्ठियं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

७. अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

८. पारंचियं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

९. खित्तचित्तं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव ते रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहार पट्ठवियव्वे सिया।

१०. दित्तचित्तं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

११. जक्खाइट्ठं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छ तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१२. उम्मायपत्तं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१३. उवसग्गपत्तं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छ तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१४. साहिगरणं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१५. सपायच्छित्तं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१६. भत्त–पाण–पडियाइक्खियं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए नस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव तओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

१७. अट्ठजायं भिक्खुं गिलायमाणं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेयइस्स निज्जूहित्तए, अगिलाए तस्स करणिज्जं वेयावडियं जाव नओ रोगायंकाओ विप्पमुक्को, तओ पच्छा तस्स अहालहुसए नामं ववहारे पट्ठवियव्वे सिया।

६. परिहारतप रूप प्रायश्चित्त वहन करने वाला भिक्षु यदि रोगादि से पीडित हो जाये तो गणावच्छेदक को उसे गण से बाहर करना नही कल्पता है, किन्तु जब तक वह रोग–आतंक से मुक्त न

हो जाय, तब तक उसकी अग्लानभाव से वैयावृत्य करनी चाहिए। बाद में गणावच्छेदक उस पारिहारिक भिक्षु को यथालघुष्क (अत्यल्प) प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करे।

७. **अनवस्थाप्य भिक्षु** (नवमे प्रायश्चित्त को वहन करने वाला साधु) यदि रोगादि से पीड़ित हो जाय (उस प्रायश्चित्त को वहन न कर सके) तो गणावच्छेदक को उसे गण से बाहर करना नही कल्पता है, किन्तु जब तक वह रोग-आतक से मुक्त न हो जाय, तब तक उसकी अग्लान भाव से वैयावृत्य करनी चाहिए। बाद में गणावच्छेदक उसको यथालघुष्क प्रायश्चित्त देवे।

८. इसी प्रकार **पारंचित भिक्षु** (दसवाँ प्रायश्चित्त वहन करने वाला साधु) यदि रोगादि से पीडित हो जाये तो उसे गण से बाहर करना नही कल्पता है, किन्तु उसकी अग्लान भाव से वैयावृत्य करनी चाहिए। रोगमुक्त होने पर गणावच्छेदक उसे यथालघुष्क प्रायश्चित्त देवे।

९. **विक्षिप्तचित्त** (अत्यन्त शोक या भय से ग्रस्त) ग्लान भिक्षु को रुग्ण अवस्था मे गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। रोगमुक्त होने पर उसे गणावच्छेदक प्रायश्चित्त प्रदान करे।

१०. **दिप्तचित्त** (हर्षातिरेक से भ्रमित चित्त) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। जब तक वह रोग-आतक से मुक्त न हो जाय तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके बाद उसे अत्यल्प प्रायश्चित्त देवे।

११. **यक्षाविष्ट** (भूत-प्रेतादि ग्रस्त) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतक से मुक्त न हो जाय, तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। बाद मे उसे अत्यल्प प्रायश्चित्त मे प्रस्थापित करे।

१२. **उन्माद-प्राप्त** (मोहोदय से पागल) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतक से मुक्त न हो जाय तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। बाद मे उसे अत्यल्प प्रायश्चित्त देवे।

१३. **उपसर्ग-प्राप्त** (देव-पशु व राजादि के उपसर्ग से पीडित) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतक से मुक्त न हो तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। बाद मे उसे अत्यल्प प्रायश्चित्त देवे।

१४. **कलहयुक्त** (तीव्र कषायादि से ग्रस्त) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नही कल्पता है। जब तक वह रोग-आतक से मुक्त न हो तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके बाद अत्यल्प प्रायश्चित्त देवे।

१५. **प्रायश्चित्त-प्राप्त** (किसी बडे दोष-सेवन का प्रायश्चित्त वहन करने वाला) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नहीं कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतंक से मुक्त न हो जाय तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके बाद अत्यल्प प्रायश्चित्त देवें।

१६. भक्त प्रत्याख्यानी (आजीवन अनशन स्वीकार किया हुआ) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नहीं कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतक से मुक्त न हो जाय तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके बाद उसे अत्यल्प प्रायश्चित्त मे प्रस्थापित करे।

१७. प्रयोजनाविष्ट (शिष्य-प्राप्ति व पद-लिप्सा आदि की आकाक्षा वाला) ग्लान भिक्षु को गण से बाहर निकालना नहीं कल्पता है। जब तक वह उस रोग-आतक से मुक्त न हो जाय तब तक उसकी अग्लान भाव से सेवा करनी चाहिए। उसके बाद अत्यल्प प्रायश्चित्त मे प्रस्थापित देवे।

6. In case a Jain monk who is undergoing *parihar*-austerities as *prayashchit* falls ill, he is not allowed to be expelled from the group by the *ganavachhedak*. He should rather be attended to without any remorse till he becomes cured Thereafter the *ganavachhedak* should cleanse that *pariharik* monk by awarding him very nominal (*yathalaghushk*) *prayashchit*.

7. In case of a Jain monk who is undergoing ninth (*anavasthapya*) *prayashchit* falls ill, it is not proper for *ganavachhedak* to expel him from the group (as he is not in a position to practice that *prayashchit*). He should be attended to properly without any dejection till he is fully cured or becomes free from that calamity. Thereafter, he should be awarded very nominal (*yathalaghushk*) *prayashchit*

8. Similarly if a *paranchit bhikshu* who is undergoing tenth *prayashchit* falls ill, it is not proper to expel him from the group He should be attended to properly without any remorse When he becomes free from disease, *ganavachhedak* should award him very nominal (*yathalaghushk*) *prayashchit*.

9. A *bhikshu* who is in a state of extreme dejection or fear (*vikshipt chitt*) should not be expelled from the group when he is ill. He should be attended to properly without any feeling of contempt *Ganavachhedak* should award him *prayashchit* only when he becomes free from disease.

10. A *bhikshu* who is in a disturbed condition due to extreme happiness (*dipt chitt*) should not be expelled from the group in that state. He should be properly attended till he becomes free from that diseased or disturbed condition Thereafter, he should be awarded very nominal *prayashchit*.

11. In case a *bhikshu* is affected by some spirit (*yakshavisht*), he should not be expelled from the group. He should rather be properly looked after till he becomes free from that diseased or disturbed state. Thereafter, he should be awarded very nominal *prayashchit*.

12. In case a *bhikshu* is mad due to delusion or attachment (*unmaad prapt*), he should not be expelled from the group. He should rather be attended to properly till he is completely cured. Thereafter, he should be awarded very nominal *prayashchit*.

13. In case a *bhikshu* is ill and in a tormented state (due to demon, animal or the ruler), he should not be expelled from the group. He should rather be served till he becomes totally free from that troubled state. Thereafter, he should be awarded a very nominal *prayashchit*.

14. In case a *bhikshu* is ill and in a state of extreme passion, he should not be expelled from the group He should rather be attended to properly till he becomes free from that state. Thereafter, he should be awarded very nominal *prayashchit*

15. In case a *bhikshu* is undergoing *prayashchit* for same major fault in his ascetic conduct (*prayashchit prapt*) and is ill, he should not be expelled from the group. He should rather be attended to properly and willingly till he becomes cured of that illness Thereafter, he should be awarded very nominal *prayashchit*.

16. A bhikshu who has taken a vow of fasting throughout life (*bhakt pratyakhyani*) and is ill should not be expelled from the group He should rather be looked after properly without any feeling of remorse till he becomes free from that illness. Thereafter, he should be awarded a very nominal *prayashchit*.

17. A bhikshu has a keen desire for having a disciple or a post and the like. He should not be expelled from the group if he is ill. He should rather be properly attended to till he is completely cured Thereafter, he should be awarded a very nominal *prayashchit*

विवेचन : इन सूत्रो मे बारह प्रकार की विभिन्न अवस्थाओ वाले भिक्षुओ का कथन है। ये सभी भिक्षु अपनी उन अवस्थाओं के साथ-साथ यदि रुग्ण भी हो तो भाष्यकार ने इन सब पर बहुत ही विस्तार से प्रकाश डाला है। जैसे-क्षिप्त चित्त का अर्थ किया है-चित्त की रुग्णता। इसके तीन कारण बताये है-

(१) अनुराग-किसी प्रिय व्यक्ति का वियोग।

(२) भय-भय के अनेक कारण हैं, कुछ प्रत्यक्ष भय भी होते है, कुछ अप्रत्यक्ष काल्पनिक भय (फोबिया)। भय के प्रसंग में सोमिल ब्राह्मण का उदाहरण दृष्टव्य है।

(३) अपमान-सम्पत्ति का नष्ट होना, या पराजित अथवा असफल (अनुत्तीर्ण) हो जाना आदि।

दिप्तचित्त का अर्थ किया है–अत्यधिक हर्ष के कारण असम्बद्ध प्रलाप करना। आकस्मिक लाभ व हर्ष से मानसिक सन्तुलन खो बैठना। *(विस्तार के लिए देखें–भाष्य गाथा १०८० से ११५० तक)* गण व्यवस्था के जिम्मेदार गीतार्थ गणावच्छेदक का यह कर्त्तव्य होता है कि वह उस भिक्षु की सेवा की उपेक्षा न करे और न ही उसे उस अवस्था में गच्छ से अलग करे, किन्तु अन्य सेवाभावी भिक्षुओ के द्वारा उसकी अग्लान भाव से सेवा करवावे।

भाष्य के अनुसार अग्लान भाव का अर्थ है–रुचिपूर्वक या उत्साहपूर्वक सेवा करना, अथवा स्वय का कर्त्तव्य समझकर सेवा करना।

इन सूत्रो मे कथित विधान से तीन महत्त्वपूर्ण बाते प्रकट होती है–(१) सेवा का महत्त्व, (२) ग्लान के प्रति अनुकम्पा भाव, तथा (३) सघ की प्रतिष्ठा का विचार।

निज्जूहित्तए–शब्द का अर्थ है–रुग्ण अवस्था में गण से बाहर न निकाले। सेवा की उपेक्षा न करे, अपितु व्यवस्था करे।

यथालघुष्क प्रायश्चित्त का अर्थ : लघु प्रायश्चित्त पाँच दिन का होता है जिसे विगयो का त्याग करके पूर्ण किया जाता है। अथवा कारण से यतनापूर्वक दोष का सेवन करने पर, अत्यल्प मर्यादा भग करने पर, पर–वश अवस्था में मर्यादा भग हो जाने पर केवल आलोचना प्रायश्चित्त मात्र से उसकी शुद्धि की जा सकती है अर्थात् उसे तपरूप प्रायश्चित्त नही दिया जाता है। प्रथम आलोचना प्रायश्चित्त होने से इसे **'यथालघुष्क'** अर्थात् सर्वजघन्य प्रायश्चित्त कहा जाता है।

इन सूत्रो मे आचार्य उपाध्याय का निर्देश न करके गणावच्छेदक का निर्देश किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि गच्छ मे सेवा एव प्रायश्चित्त के कार्यों की प्रमुख जिम्मेदारी गणावच्छेदक की होती है। *(आधार : हिन्दी विवेचन, पृ २१४)*

Elaboration—In these aphorisms there is the description of *bhikshu* in twelve different states. In case such *bhikshus* are also ill, the treatment for them has been stated in detail by the commentator. For instance *kshipt chitt* has been interpreted as mental sickness. It is due to three reasons—

(1) Anurag—Separation from loved person.

(2) Fear—There are many causes of fear. Some are direct and some are indirect and imaginary In the context of fear, the illustration of Somil Brahmin is worth studying.

(3) Insult—Due to loss of wealth, or defeat or failure in examination and the like.

The word *dipt chitt* has been interpreted as to talk irrelevant in a state of extreme happiness. One may lose mental balance due to accidental gain or extreme joy (*For details see verse 1080 to 1150 in bhashya*). It is the duty of *ganavachhedak* who is learned in *Agams* and is responsible for proper administration of the group that he should not

ignore proper service needed for that monk. He should also not expel him from the group in that state. He should ensure that he is properly attended to by other *bhikshu* engaged for that purpose.

In the *bhashya 'aglan-bhav'* has been interpreted as serving willingly and with zeal or considering it as one's duty

These important issues emerge from the rules stated in these aphorisms–(1) Importance of service, (2) Compassion towards the sick, and (3) Importance of honour of the group.

The word **'Nijjuhittaye'** means not to expel one who is in ill state Need of proper attention should not be ignored, rather proper arrangement for it should be ensured.

Meaning of Yathalaghusk Prayashchit—*Laghu prayashchit* is of five days which is completed by discarding *vigayas* (elements that strengthen the physical body In case due to some genuine reason a fault is committed in a state of discrimination, or digression in ascetic-restraint is very minor, or the regression in ascetic discipline is in a situation beyond one's control, that fault is cleansed just by the *prayashchit* of censuring oneself. In other words he is not awarded the *prayashchit* of undergoing austerities Since *alochana* (self-censure) is the very first (elementary) *prayashchit*, it is called *yathalaghushk* or the very minimum *prayashchit*.

In these aphorsim, there is mention of *ganavachhedak* and not of *Acharya* or *Upadhyaya* This fact clearly indicates that the primary responsibility of service or activities relating to *prayashchit* in a group (*gachh*) is that of *ganavachhedak* (*Based on Hindi commentary, pp 294*)

अनवस्थाप्य और पारांचिक भिक्षु की उपस्थापना

RE-ESTABLISHING AN ANAVASTHAPYA OR PARANCHIK BHIKSHU

१८. अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

१९. अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

२०. पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं नो कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

२१. पारंचियं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए।

२२. अणवट्ठप्पं भिक्खुं पारंचियं वा भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा, कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावित्तए, जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।

१८. (सामान्य स्थिति में) अनवस्थाप्य नामक नवम प्रायश्चित्त के पात्र भिक्षु को गृहस्थ वेश धारण कराए बिना पुनः संयम में उपस्थापन करना (दीक्षा देना) गणावच्छेदक को नहीं कल्पता है।

१९. (किन्तु) अनवस्थाप्य भिक्षु को गृहस्थ वेश धारण कराके पुनः संयम मे उपस्थापन करना कल्पता है।

२०. पारंचित नामक दसवें प्रायश्चित्त के पात्र भिक्षु को गृहस्थ वेश धारण कराये बिना पुनः सयम मे उपस्थापन करना गणावच्छेदक को नहीं कल्पता है।

२१. (किन्तु) पारंचित भिक्षु को गृहस्थ वेश धारण करवाकर पुन· संयम में उपस्थापन करना कल्पता है।

२२. (विशेष परिस्थिति मे) अनवस्थाप्य भिक्षु को और पारंचित भिक्षु को गृहस्थ का वेश धारण कराके या गृहस्थ का वेश धारण कराये बिना भी पुन· संयम मे उपस्थापित करना कल्पता है, यदि उससे गण का हित होता दीखे।

18. Ordinarily a *bhikshu* who is liable for the ninth *anavasthapya prayashchit* is not inntiated in the monkhood by the *ganavachhedak* without dressing him up as a householder first.

19. He, however, can be initiated in the order after dressing him up first as householder.

20. A *bhikshu* who is liable for the tenth *paranchit prayashchit* for his sin cannot be initiated in monkhood by the *ganavachhedak* without dressing him first as a householder.

21. He can be initiated in the order after first dressing him up as a householder.

22. However under special circumstances a *bhikshu* who is *anavasthapya* or *paranchit* because of his sins can again be initiated in monkhood after getting him dressed as a householder or without getting him dressed up as a househoder in case it is in the interest of the group (*gana*).

विवेचन : नौवे और दसवे प्रायश्चित्त योग्य भिक्षु को विधान के अनुसार जघन्य छह मास, उत्कृष्ट बारह वर्ष तक का विशिष्ट तप रूप प्रायश्चित्त दिया जाता है और उस तप के पूर्ण होने पर उसे एक बार गृहस्थ का वेश धारण करवाया जाता है। तत्पश्चात् उसे उपस्थापना अर्थात् छेदोपस्थापनीय चारित्र दिया जाता है। यह सामान्य नियम है।

बाईसवें सूत्र में विशेष परिस्थिति व अपवाद का कथन किया गया है, जिसका भाव यह है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति को गृहस्थ नही बनाना ही उचित लगे तो गणावच्छेदक अपने निर्णयानुसार वैसा भी कर सकता है। भाष्यकार ने गृहस्थ न बनाने के कुछ खास कारण इस प्रकार बताये हैं–

(१) जिसने किसी राजा को जिनशासन के अनुकूल बनाया हो।

(२) उस प्रायश्चित्त प्राप्त भिक्षु या आचार्य के अनेक शिष्यो का आग्रह हो।

(३) उस प्रायश्चित्त के सम्बन्ध मे दो गणो मे विवाद हो इत्यादि।

Elaboration—According to the spiritual code, a *bhikshu* who is liable for ninth or tenth *prayashchit* for his sins is awarded special austerities for a minimum period of six months and the maximum period of twelve years After completion of said austerities, he has to dress up once as a househoder. Thereafter, he is established in the order through *chhedopasthapaniya charitra*. This is the common rule.

In the twenty second aphorism, there is a mention of special situation or an exception The underlying idea is that in case it is considered proper not to dress up a notable monk as a householder, the *ganavachhedak* can do so according to his judgment The commentator has stated some special reasons for not dressing up as a householder and they are as under–

(1) One who has converted a ruler as a follower of Jain faith

(2) In case many disciples of that *bhikshu* or *Acharya* who has been awarded *prayashchit* so insist

(3) In case there is difference of opinion between two groups about the nature of *prayashchit*.

अकृत्यसेवन का आक्षेप एवं उसके निर्णय करने की विधि

ALLEGATION OF SIN AND PROCEDURE OF REACHING A DECISION

२३. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति, एगे तत्थ अन्नयरं अकिच्चट्ठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा–अहं णं भंते ! अमुगेणं साहुणा सद्धिं इमम्मि कारणम्मि पडिसेवी।

से य पुच्छियव्वे ! किं पडिसेवी, अपडिसेवी ?

से य वएज्जा–"पडिसेवी" परिहारपत्ते। से य वएज्जा–"नो पडिसेवी" नो परिहारपत्ते। जं से पमाणं वयइ से पमाणाओ घेयव्वे।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] सच्चपइन्ना ववहारा।

२३. दो साधर्मिक (एक गच्छ के साधु) एक साथ विचरते हों, उनमे से एक साधु किसी अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना (दोष–सेवन) करके आलोचना करे–(यथा)–"हे भगवन् ! मैने अमुक साधु के साथ अमुक कारण होने पर दोष का सेवन किया है।"

(उसके इस प्रकार कहने पर) दूसरे साधु से पूछना चाहिए–"क्या तुमने दोष–सेवन किया है या नही ?"

यदि वह कहे कि मैंने दोष–सेवन किया है तो वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है। यदि वह कहे कि मैंने दोष–सेवन नहीं किया है तो वह प्रायश्चित्त का पात्र नहीं है और जो भी प्रमाण दे, उनके आधार पर निर्णय करना चाहिए।

[प्र.] (भगवन् !) ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[उ.] सत्य बोलने की प्रतिज्ञा वाले भिक्षुओ के सत्य कथन पर व्यवहार (प्रायश्चित्त) निर्भर होता है।

23. Two Jain monks of the same group (*gachha*) pass their ascetic life together. One of them commits a fault in his ascetic discipline and does censure by uttering—"O *Bhagavan* ! I have committed a fault under a particular situation with such and such monk".

In view of the said statement the ganavchhedak should ask the second monk—"Have you committed the fault or not ?"

In case he replies that he has committed the fault, he is liable for *prayashchit* In case he replies that he has not committed the fault, then he is not liable for *prayashchit* The matter should be decided on the basis of the evidence produced.

[Q.] (Bhagavan !) What is its basis ?

[Ans.] *Prayashchit* is based on the true statement of those *bhikshus* who have taken a vow to speak the truth.

विवेचन : भाष्य एव टीका में इस विषय पर विस्तार से चिन्तन किया गया है। साथ–साथ विचरने वाले दो साधुओं मे कोई एक साधु दूसरे साधु को भी दोष–सेवन करने वाला बताये तो ऐसा कहने मे उस साधु का दूसरे साधु के प्रति द्वेषभाव हो सकता है या दीक्षा–पर्याय में उसे किसी से छोटा बनाने का क्षुद्र सकल्प भी हो सकता है। इसलिए वह असत्य आक्षेप करता है और अपने आक्षेप को सत्य सिद्ध करने के लिए वह स्वय भी दोषी बनकर आलोचना करने का दिखावा करता है। इस प्रकार छल करके दूसरे साधु को कलकित करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति मे शास्त्रकार ने विवेकपूर्वक निर्णय करने के निम्न उपाय बताये है–

(१) आलोचना सुनने वाला गीतार्थ भिक्षु अन्य भिक्षु से जब तक पूर्ण जानकारी प्राप्त न कर ले तब तक उसे किसी प्रकार का निर्णय नही करना चाहिए।

(२) यदि पूछने पर अन्य भिक्षु दोष–सेवन करना स्वीकार नही करे और कुछ स्पष्टीकरण करे तो उसे सावधानीपूर्वक सुनना चाहिए।

(३) तदनन्तर आक्षेप लगाने वाले से या दोष से सम्बन्धित सभी पक्षो की जानकारी करना चाहिए।

(४) फिर उन दोनों के कथन एवं प्रमाणों पर पूर्ण विचार करके निर्णय करना चाहिए।

(५) कोई प्रबल प्रमाण न हो तो दोष-सेवन को अस्वीकार करने वाले भिक्षु को किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नहीं देना चाहिए।

आक्षेपकर्त्ता ने वास्तव मे दोष-सेवन किया हो या न किया हो तो भी असत्य आक्षेप करने पर उसे उस दोष-सेवन का प्रायश्चित्त दिया जाता है। यदि आलोचना करने वाला सत्य कथन कर रहा हो, किन्तु अन्य भिक्षु अपना दोष स्वीकार न करे और आलोचक उसे प्रमाणित भी न कर सके, तब भी दोष अस्वीकार करने वाले को कोई प्रायश्चित्त नही दिया जा सकता। क्योंकि भिक्षु सत्य वचन की प्रतिज्ञा वाले होते हैं। अत. स्वय के स्वीकार करने पर ही उसे प्रायश्चित्त दिया जा सकता है। प्रमाण के बिना केवल किसी के कहने से उसे प्रायश्चित्त नहीं दिया जा सकता है। कदाचित् दोष प्रमाणित होने पर भी सम्बन्धित भिक्षु उसे स्वीकार न करे तो प्रायश्चित्तदाता गच्छ के अन्य गीतार्थ भिक्षुओं की सलाह लेकर उसका प्रायश्चित्त घोषित कर सकते हैं एवं प्रायश्चित्त को अस्वीकार करने पर उसे गच्छ से अलग भी कर सकते है।

सदिग्धावस्था में अर्थात् सम्यक् प्रकार से निर्णय न होने पर दोषी व्यक्ति को प्रायश्चित्त नहीं देना चाहिए। *ऐसा करने मे प्रायश्चित्तदाता को कोई दोष नही लगता है, किन्तु दोषी व्यक्ति स्वय ही अपनी सयमविराधना के* फल को प्राप्त कर लेता है।

दोष-सेवन प्रमाणो से सिद्ध हो जाये एवं स्पष्ट निर्णय हो जाये तो दोषी के अस्वीकार करने पर भी प्रायश्चित्त देना अनिवार्य हो जाता है, अन्यथा गच्छ मे अव्यवस्था फैल जाती है और लोक-निन्दा भी होती है। अत गीतार्थ भिक्षुओ को एव गच्छ-प्रमुखो को विवेकपूर्वक सूत्रोक्त प्रायश्चित्त देने का निर्णय करना चाहिए। यही इस सूत्र का आशय है। *(आधार उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म कृत विवेचन, पृ २१६)*

इस सूत्र का उक्त विधान वर्तमान न्याय-प्रणाली के सिद्धान्तो से बहुत मेल खाता है।

Elaboration—This matter has been discussed in detail in the *bhashya* and the commentary. In case two monks are wandering together and one of them states that his companion monk is also guilty, it can be due to a feeling of hatred against that monk or it can be with a callous view to turn him junior in monkhood. Therefore he levels false allegation and in order to prove his allegation, he pretends to do self-censure presenting himself also as a sinner Thus he in a deceitful manner wants to accuse the other monk. In such a situation, the author of *Agam* has laid down the following guidelines for discerningly deciding the matter—

(1) The learned *bhikshu* who is listening to the self-criticism should not take a decision till he gets information about all the facts from the other *bhikshu*.

(2) In case when asked, the other *bhikshu* does not accept the fault and gives any clarification, his statement should be carefully listened to (and looked into).

(3) Thereafter evidence should be collected from the complainant and from all those who are in any way concerned with the alleged fault.

(4) Then the statements of both the sides and the evidence collected should be carefully examined. Only then the decision should be announced.

(5) In case there is no strong evidence to prove the guilt, the *bhikshu* who has not admitted the allegation levelled against him should not be awarded any *prayashchit*.

The complainant is awarded *prayashchit* for the fault of levelling false allegation irrespective of the fact whether he has in reality committed any sin or not in his ascetic discipline. In case the person-levelling allegation is speaking the truth but the other *bhikshu* is not accepting his sin and the complainant is not able to prove his allegation, even then the one who is not admitting his fault cannot be awarded any *prayashchit* because every *bhikshu* has taken a vow of speaking the truth. He can, therefore, be awarded *prayashchit* only if he admits his fault. Simply on the basis of an allegation a person cannot be awarded *prayashchit* unless it is proved by evidence. In case even when the fault has been well established, the concerned *bhikshu* does not admit it, the monk responsible for awarding *prayashchit* can pronounce his fault and convict him after consulting other *bhikshus* who are learned in *Agams*. If he rejects the *prayashchit*, he can even be expelled from the group (*gachha*)

In case of doubt or in other words when the sin is not properly established, the accused should not be awarded any *prayashchit*. By doing so, the person responsible for awarding *prayashchit* does not commit any fault but the sinner himself reaps the fruit of the fault committed by him in ascetic discipline.

In case the fault is established by cogent evidence and is clearly proved, it becomes essential to award *prayashchit* to the accused even if he does not accept it Otherwise it may cause disorder in the administrative set up and also lead to public criticism. Therefore, the learned *bhikshu* and the head of the group (*gachha*) should always decide to award *prayashchit* as described in the spiritual code. This is the purport of this aphorism (*Basis : Commentary by Shri Kanhaiyalal Ji Maharaj, pp. 296*)

The above-said procedure is broadly in line with the present code of jurisprudence.

२४. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म ओहाणुप्पेही वजेज्जा, से य अणोहाइए इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, तत्थ णं थेराणं इमेयारूवे विवाए समुप्पज्जित्था–

'इमं भो ! जाणह किं पडिसेवी, अपडिसेवी ?'

से य पुच्छियव्वे–'किं पडिसेवी, अपडिसेवी ?'

से य वएज्जा–'पडिसेवी' परिहारपत्ते। से य वएज्जा–'नो पडिसेवी' नो परिहारपत्ते। जं से पमाणं वयइ से पमाणाओ घेयव्वे।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] सच्चपइन्ना ववहारा।

२४. यदि कोई साधु संयम त्यागने की इच्छा से गण से निकलकर चला जाये और बाद मे (विचार बदल जाने से) असंयम का सेवन किये बिना ही वह लौटकर आ जाये और पुनः अपने गण मे सम्मिलित होना चाहे तो (गण में लेने के सम्बन्ध मे) स्थविरो में यदि इस प्रकार विवाद उत्पन्न हो जाये कि–

क्या तुम जानते हो–यह प्रतिसेवी (दोषी) है या अप्रतिसेवी (निर्दोष है) ?

ऐसी स्थिति मे स्थविरों को उस भिक्षु से ही पूछना चाहिए–"क्या तुम प्रतिसेवी हो या अप्रतिसेवी ?"

यदि वह कहे कि "मै प्रतिसेवी हूँ।" (मैने दोष–सेवन किया है) तो वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है। यदि वह कहे कि "मै प्रतिसेवी नही हूँ।" तो वह प्रायश्चित्त का पात्र नही होता, और जो वह प्रमाण देवे उनसे निर्णय करना चाहिए।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[उ.] सत्य प्रतिज्ञा वाले भिक्षु होते है, अतः उनके सत्य कथन पर व्यवहार चलता है।

24. A *Sadhu* with a desire to discard ascetic life leaves the group (*gana*) and later due to a change in his mind, comes back without committing any fault relating to ascetic discipline and desires to join the group again. In case there arises a dispute in the learned monks (*Sthavirs*) about allowing him to join the group and the point in issue is whether the ***bhikshus*** know that he has committed a fault or not then the *Sthavirs* should ask him.

"Have you committed fault in ascetic discipline or are you innocent ?"

In case he replies that he is guilty, he is liable for *prayashchit* In case he replies that he is not guilty, he is not liable for any *prayashchit* and the matter should be decided on the basis of the evidence laid by him.

[Q.] *Bhagavan* ! Why is it so ?

[Ans.] *Bhikshus* have taken a vow of speaking the truth So the system works on the basis of their true statement.

विवेचन : इस सूत्र से सम्बन्धित कुछ वर्णन सयम छोडने के कारण तथा पुन· गण मे सम्मिलित करने के परीक्षण आदि का कथन प्रथम उद्देशक के सूत्र २३ तथा ३२ में आ चुका है। वह चंचल चित्त वाला भिक्षु पुन उसी दिन आ सकता है, एक–दो रात्रि व्यतीत करके भी आ सकता है और अनेक दिनों के बाद भी लौटकर आ सकता है।

गण से बाहर जाकर विचारो में परिवर्तन आ जाने से पुन· सयम त्यागने के सकल्प से लौटकर आने वाला भिक्षु अपने विचार–परिवर्तन का एव उनके कारणो का स्पष्टीकरण करके गच्छ में रहना चाहे तो यदि गच्छ के गीतार्थ स्थविरो को यह सन्देह हो कि यह इस अवधि में किसी न किसी दोष का सेवन करके आया होगा, तो गच्छ–प्रमुख उस भिक्षु को पूछे या अन्य किसी से जानकारी करके निर्णय लेवे। यदि प्रामाणिक जानकारी न मिले तो उस भिक्षु के उत्तर के अनुसार ही निर्णय करना चाहिए अर्थात् वह दोष–सेवन करना स्वीकार करे तो उसे उसका प्रायश्चित्त देवे। यदि वह दोष स्वीकार न करे तो किसी के सन्देह करने मात्र से उसे प्रायश्चित्त नहीं देना चाहिए। किन्तु सयम त्यागने के सकल्प का एवं उस सकल्प से अन्यत्र जाने का उसे यथोचित प्रायश्चित्त दिया जा सकता है एव उसे गच्छ मे सम्मिलित किया जा सकता है।

Elaboration—Some details relating to causes of discarding ascetic life and the examination at the time of again taking him in the group and the like concerning this aphorism has already been mentioned in aphorism 23 and 32 of first *Uddeshak*. That *bhikshu* of wavering mind can return on the same day, after one or two days and even after many days.

A *bhikshu* leaves his group but later due to a change in his mental attitude, he comes back discarding his earlier decision of leaving the group (*gana*). He clearly states the change in his mind and the reason for this change and expresses his desire to stay (or join) in the group. In case the learned *Sthavirs* of the group have a suspicion that he might have committed some fault in ascetic discipline, then the head of the group should seek clarification from him or from someone else about the real facts and than decide the matter. In case he is not able to have reliable knowledge about the true facts, he should decide the issue on the basis of the reply of that *bhikshu*. In other words, he should award him *prayashchit* if he admits his fault. If he does not admit his fault, he should not be awarded *prayashchit* merely on doubt. He however, can be awarded *prayashchit* for his earlier decision to discard ascetic life and of going elsewhere with that mental attitude Thereafter he can be permitted to join the group (*gachha*).

२५. एगपक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ आयरिय-उवज्झायाणं इत्तरियं दिसं वा अणुदिसं वा उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा, जहा वा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।

२५. एकपक्षीय अर्थात् एक ही आचार्य के पास दीक्षा और श्रुत ग्रहण करने वाले भिक्षु को अल्पकाल के लिए अथवा यावज्जीवन के लिए आचार्य या उपाध्याय पद पर स्थापित करना या उसे धारण करना कल्पता है अथवा परिस्थितिवश कभी जिसमे गण का हित हो वैसा भी किया जा सकता है।

25. A *bhikshu* who has been initiated by an *Acharya* and who has learnt scriptures from that very *Acharya* is called *ek-pakshiya bhikshu.* He can be installed on the post of *Acharya* or *Upadhyaya* for a short period or for life. He can have such post and keeping note of the situation and the interest of the group such an action can be taken.

विवेचन : सघ की सुव्यवस्था बराबर बनी रहे, इसके लिए आचार्य उपाध्याय को अपनी उपस्थिति में ही योग्य आचार्य और उपाध्याय की नियुक्ति कर देना चाहिए।

अल्पकालिक पद -नियुक्ति के कारण इस प्रकार है-

(१) वर्तमान आचार्य अपनी विशिष्ट रोग की चिकित्सा करने के लिए अथवा विशिष्ट तप-साधना करने के लिए सघभार से मुक्त होना चाहे।

(२) अन्य आचार्य-उपाध्याय के पास जाकर विशेष श्रुत अध्ययन करना चाहे या उन्हे अध्ययन कराने एव सहयोग देने जाना हो।

(३) पद योग्य भिक्षु का आवश्यक अध्ययन अपूर्ण हो, इत्यादि परिस्थितियो मे अल्पकालिक पद दिया जाता है।

जीवनपर्यन्त पद-नियुक्ति के कारण-

(१) आचार्य-उपाध्याय को अपना मरण-समय निकट होने का ज्ञान होने पर।

(२) अतिवृद्ध या दीर्घकालीन असाध्य रोग हो जाने पर।

(३) जिनकल्प आदि कोई विशिष्ट साधना करने के लिए, इत्यादि परिस्थितियो मे आचार्य पद योग्य भिक्षु को जीवनपर्यन्त के लिए पद दिया जाता है।

सूत्र मे कहे गये 'एकपाक्षिक' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है-

एकपाक्षिक दो प्रकार का होता है-(१) श्रुत से, (२) प्रव्रज्या से।

जिसने एक गुरु के पास वाचना ग्रहण की हो अथवा जिसका श्रुतज्ञान आदि आचार्यादि के समान हो, वह **श्रुत से एकपाक्षिक।**

जो एक ही कुल, गण एव सघ मे प्रव्रजित होकर स्थिरता से रहा हो वह **प्रव्रज्या से एकपाक्षिक** कहा जाता है।

Elaboration—An *Acharya* or *Upadhyaya* should appoint suitable monk as *Acharya* or *Upadhyaya* during his lifetime so that the organisation may run well.

The reasons for appointment for a short period are as under—

(1) The *Acharya* in office may desire to be free from the responsibility of running the organisation for treatment of his particular illness or for undertaking special ascetic austerities.

(2) He may like to have deeper study of scriptures under the guidance of another *Acharya, Upadhyaya* or he may have to go to teach scriptures to others or to assist them on the study.

(3) The *bhikshu* who deserves that post has not yet completed his studies

Reasons for installing at the post for life are as follows–

(1) When the *Acharya, Upadhyaya* feels that he is at the fag end of his life

(2) When he is pretty old or he has been suffering since long from an incurable disease

(3) When he wants to undertake special ascetic practices such as *Jin-kalp* and the like

The interpretation of the word '*Ek-pakshik*' mentioned in the aphorism is as under–

Ek-pakshik is if two types–(1) In respect of scriptural knowledge, (2) In respect of initiation in monkhood.

A monk is *ek-pakshik* in respect of scriptural knowledge if he has learnt scriptures from one master or whose scriptural knowledge is equivalent to that of the *Acharya* and the like.

A *bhikshu* is *ek-pakshik* in respect of initiation in monkhood who after initiation in a group, clan or organisation has remained stable in monkhood in that organisation.

पारिहारिक और अपारिहारिकों के परस्पर व्यवहार MUTUAL DEALINGS BETWEEN PARIHARIK AND APARIHARIK

२६. बहवे पारिहारिया बहवे अपारिहारिया इच्छेज्जा एगयओ एगमासं वा, दुमासं वा, तिमासं वा, चाउमासं वा, पंचमासं वा, छम्मासं वा वत्थए, ते अन्नमन्नं संभुंजंति, अन्नमन्नं नो संभुंजंति, मासंते, तओ पच्छा सव्वे वि एगयओ संभुंजंति।

२७. परिहारकप्पट्ठियस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ असणं वा जाव साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा। थेरा य णं वएज्जा–'इमं ता अज्जो ! तुमं एएसिं देहि वा अणुप्पदेहि वा।' एवं से कप्पइ दाउं वा, अणुप्पदाउं वा।

कप्पइ से लेवं अणुजाणावेत्तए, 'अणुजाणह भंते ! लेवाए' एवं से कप्पइ लेवं समासेवित्तए।

२८. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू सएणं पडिग्गहेणं बहिया अप्पणो वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य णं वएज्जा–'पडिग्गाहेहि अज्जो !–अहं पि भोक्खामि वा पाहामि वा', एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

तत्थ से नो कप्पइ अपरिहारिएणं परिहारियस्स पडिग्गहंसि असणं वा जाव साइमं वा भोत्तए वा पायए वा। कप्पइ से सयंसि वा पडिग्गहंसि, सयंसि वा पलासगंसि, सयंसि वा कमण्डलंसि, सयंसि वा खुब्भगंसि, सयंसि वा पाणिंसि उद्धट्टु–उद्धट्टु भोत्तए वा पायए वा।

एस कप्पो अपरिहारियस्स परिहारियाओ।

२९. परिहारकप्पट्ठिए भिक्खू थेराणं पडिग्गहेणं बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य णं वएज्जा–'पडिग्गाहेहि अज्जो ! तुमंपि पच्छा भोक्खसि वा पाहिसि वा', एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

तत्थ से नो कप्पइ परिहारिएणं अपरिहारियस्स पडिग्गहंसि असणं वा जाव साइमं वा भोत्तए वा पायए वा।

कप्पइ से सयंसि वा पडिग्गहंसि, सयंसि वा पलासगंसि, सयंसि या कमण्डलंसि, सयंसि वा खुब्भगंसि, सयंसि वा पाणिंसि उद्धट्टु–उद्धट्टु भोत्तए वा पायए वा।

एस कप्पो परिहारियस्स अपरिहारियाओ।

२६. अनेक पारिहारिक (दोष–सेवन करने वाले) और अनेक अपारिहारिक (निर्दोष) भिक्षु यदि एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह मास पर्यन्त एक साथ रहना चाहे तो पारिहारिक भिक्षु पारिहारिक भिक्षु के साथ और अपारिहारिक भिक्षु अपारिहारिक भिक्षु के साथ बैठकर आहार कर सकते है, किन्तु पारिहारिक भिक्षु अपारिहारिक भिक्षु के साथ बैठकर नही कर सकते। वे सभी (पारिहारिक और अपारिहारिक) भिक्षु छह मास तप के और एक मास पारणे का बीतने पर एक साथ बैठकर आहार कर सकते है।

२७. अपारिहारिक भिक्षु को पारिहारिक भिक्षु के लिए अशन यावत् स्वादिम आहार देना या निमंत्रण करके देना नही कल्पता है। यदि स्थविर कहे कि "हे आर्य ! तुम इन पारिहारिक भिक्षुओ को यह आहार दो या निमंत्रण करके दो।" तो स्थविरो के ऐसा कहने पर उसे आहार देना या निमत्रण करके देना कल्पता है।

परिहारकल्प–स्थित भिक्षु यदि लेप (घृतादि विकृति) लेना चाहे तो स्थविर की आज्ञा प्राप्त करना चाहिए–"हे भगवन् ! मुझे घृतादि विकृति लेने की आज्ञा प्रदान करे।" यदि स्थविर आज्ञा प्रदान करे तो उसे घृतादि विकृति का सेवन करना कल्पता है।

२८. परिहारकल्प मे स्थित भिक्षु अपने पात्र लेकर अपने लिए आहार लेने जावे और तब उसे यदि स्थविर कहे कि–"हे आर्य ! मेरे योग्य आहार–पानी भी लेते आना, मैं भी खाऊँगा–पीऊँगा।" ऐसा कहने पर उसे स्थविर के लिए आहार लाना कल्पता है।

(किन्तु) वहाँ अपारिहारिक स्थविर को, पारिहारिक भिक्षु के पात्र में अशन यावत् स्वादिम खाना-पीना नहीं कल्पता है। किन्तु उसे अपने ही पात्र मे, पलासक (ढाक के पत्तों का दोना) मे, जल-पात्र में, दोनों हाथ की अंजलि से दोना बनाकर या एक हाथ में ले-लेकर खाना-पीना कल्पता है।

यह अपारिहारिक भिक्षु का, पारिहारिक भिक्षु की अपेक्षा से आचार कहा गया है।

२९. परिहारकल्प में स्थित भिक्षु स्थविर के पात्रो को लेकर उनके लिए आहार-पानी लाने को जावे, तब स्थविर उसे कहे-"हे आर्य ! तुम अपने लिए भी साथ मे ले आना और बाद में खा लेना, पी लेना।" ऐसा कहने पर वह स्थविर के पात्रो मे अपने लिए भी आहार-पानी ला सकता है।

वहाँ अपारिहारिक स्थविर के पात्र में पारिहारिक भिक्षु को अशन यावत् स्वादिम खाना-पीना नहीं कल्पता है। किन्तु उसे अपने ही पात्र में, पलासक मे, कमण्डलु में, दोनों हाथ में या एक हाथ मे ले-लेकर खाना-पीना कल्पता है।

यह पारिहारिक भिक्षु का अपारिहारिक भिक्षु की अपेक्षा से आचार है।

26. In case many *parıharık bhikshus* (these who have committed fault in ascetic discipline) want to live with many *aparıharık bhıkshus* (those who have not committed any fault) for a period of one, two, three, four, five or six months, then *parıharık bhikshu* can sit for taking meals with *pariharık bhikshu* and *aparıharık bhikshus* with *apariharik bhıkshus*. *Parıharık bhıkshus* cannot sit to dine with *aparıharik bhikshus*. After completing the period of six months of austerities and one month in between of taking food, they (*parıharık* and *apariharik*) can dine together.

27. A faultless (*aparıharik*) monk is neither allowed to give food, water and the like to a faulty (*parıharık*) monk nor to invite him for it. In case *Sthavırs* (Senior monks) direct him—"O the blessed ! You give food to these *parıharik* monks or invite them to food" then in view of the said directive of the *Sthavirs* he can give food to them or invite them for having food.

In case a *bhıkshu* who is undergoing *parihar-kalp* (*prayashchit* for his fault) wants to have *ghee* and the like (the *lape*) he should seek permission of the *Sthavir* by saying—"Reverend Sir ! Kindly grant me permission to have *ghee* and the like." In case the *Sthavirs* grant him the permission, he can have *ghee* and the like.

28. A *bhikshu* who is undergoing *parıhar-kalp* goes to collect food in his pot. In case a *Sthavır* tells him—"O the blessed ! You bring suitable food and water for me also. I shall also take it, then he can bring food for that *Sthavir* also.

But a faultless (*aparıharik*) *Sthavır* ıs not allowed to take food, water and the like in the pot of a *parıharık bhikshu*. He can take it only in his pot, in a pot made of *dhak* leaves, ın the pot meant for water, or in the cup made by joining his hands or taking in one hand and then eating or drinking ıt

This ascetic conduct is of a faultless (*aparıharik*) *bhıkshu* ın the context of a *parıharik bhikshu*.

29. A bhikshu undergoing *pariharakalp* goes to collect alms for a *Sthavır* carrying pots of the *Sthavır*; then the *sthavır* tells him—"O *Arya* ! You bring food for yourself also alongwith and take it later on." In such circumstances he can bring food and the lıke for to hımself also.

विवेचन : सूत्र २६ से २९ तक मे परिहार तप करने वाले भिक्षुओ के साथ अपारिहारिक भिक्षुओ के आहार सम्बन्धी व्यवहार की चर्चा है। जिस पर भाष्यकार का स्पष्टीकरण इस प्रकार समझना चाहिए–

एक मास तक परिहार तप करने वाला भिक्षु एक मास तप पूर्ण होने तक अलग आहार करता है और पाँच दिन पारणे की अपेक्षा अलग आहार करता है, उसके बाद वह एक मण्डली मे बैठकर आहार करता है।

इसी प्रकार दो मास परिहार तप वाला भिक्षु दो मास और दस दिन तक अलग आहार करता है। तीन मास तप वाला भिक्षु तीन मास और पन्द्रह दिन, चार मास तप वाला भिक्षु चार मास और बीस दिन, पाँच मास तप वाला भिक्षु पाँच मास और पच्चीस दिन, छह मास तप वाला भिक्षु छह मास और तीस दिन (एक मास) तक अलग आहार करता है। इस प्रकार परिहार तप की समाप्ति के एक मास बाद पारिहारिक–अपारिहारिक सभी एक साथ आहार करते है।

परिहार तप करने वाला भिक्षु अपना आहार स्वय लाता है, उसे किसी से आहारादि लेना नही कल्पता है, यह सामान्य विधान है।

यदि वह तप करता हुआ अशक्त हो जाये तो उस स्थिति मे स्थविर अन्य भिक्षुओ को कहे कि "हे आर्यो ! तुम इस परिहारी भिक्षु को आहार दो या निमंत्रण करो।" ऐसा कहने पर उसे (केवल) आहार दिया जा सकता है। यदि स्वास्थ्य के कारण उसे घृतादि विगय की आवश्यकता हो तो वह पुन स्थविर की आज्ञा मिलने पर विगय–सेवन कर सकता है, किन्तु केवल आहार देने की आज्ञा से विगय–सेवन नही कर सकता।

किसी अपारिहारिक स्थविर की वैयावृत्य में रहने वाला पारिहारिक भिक्षु स्थविर के लिए और अपने लिए आहार लेने अलग–अलग जाता है, यह सामान्य विधान है।

किन्तु कभी किसी कारण से स्थविर आज्ञा दे तो अपने पात्रो में अपने आहार के साथ उनके लिए भी आहारादि ला सकता है और उनके पात्रो मे उनके आहार के साथ अपना आहार भी ला सकता है। ऐसा करने में उसके रूक्ष आहार में कोई विगय का लेप लग जाये तो वह स्थविर की आज्ञा से खा सकता है।

सूत्र मे उन भिक्षुओ के आहार करने की यह मर्यादा कही गई है कि वे परस्पर किसी के पात्र मे आहार न करें, किन्तु अपने पात्र में या हाथ मे लेकर फिर खावे।

भिक्षु का शरीर संयम और तप मे सहायक होता है, अतः इसे आहार देना आदि प्रवृत्ति करना आवश्यक है। अनासक्त भाव से स्व-शरीर हेतु की गई प्रवृत्ति भी निर्जरा का हेतु है, अत सूत्र में "अप्पणो वेयावडियाए" अर्थात् "अपनी वैयावृत्य के लिए" इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

॥ दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In aphorisms 26 to 29, the conduct of faultless (*aparıharik*) *bhikshu* relating to food with those who are undergoing *parıhar* austerities (for theır fault) has been discussed. The clarification of the commentator in this context is as under—

A *bhikshu* who is undergoing *parihar* austerities for one month dines separately till he completes those austerities of one month and also for five days of taking food ın between (the days of breaking fast). Thereafter, he starts taking food in the group

A *bhıkshu* who is undergoing *parıhar* austerities for two months dines separately tıll he completes the austerities for two months and also for ten days of taking food in between. A bhikshu undergoing parihar austerities for three months dınes separately for three months and fifteen days. A *parıhar bhıkshu* undergoing austerities for four months dines separately for four months and twenty days A *bhikshu* undergoing *parihar* austerities for five months dines separately for five months and twenty five days, whıle one undergoing austerities for six months dines separately for six months and thirty days. Thus one month after the conclusıon of *parıhar* austerities both *parihanık* and *aparıharık* monks can dıne together ın a group.

It is the common rule that the monk who is undergoıng *parıhar* austerities collects food himself and cannot take food from any other monk.

In case while undergoing *parihar* austerities he becomes weak and in that condition, the *Sthavır* asks other *bhıkshu*—"O the blessed ! You give food to this *parıharık* monk or invite him for it." Only then food can be given to him. In case due to ill health be needs *ghee* and the like (that strengthless the body) he can have it only after the permission of *Sthavir* to take *ghee* and the like If the permissıon ıs only for food he cannot take *ghee* and the like.

It is the common rule that a *parıharık bhıkshu* who is in the service of an *apariharik bhikshu* goes to collect food for *Sthavır* and for himself separately.

But if due to any reason the *Sthavır* allows him to collect food and the like for him alongwith the food for himself in his pots, then he can bring food for *Sthavirs* also. If the *Stahvır* directs that he can bring food for *Sthavır* in *Sthavır's* pots and simultaneously for himself in his pots, then he can act accordingly. In case while doing so, some strengthening matter (*Vigaya)* touches the dry food in hıs pot, he can consume it with the permission of the *Sthavır*.

Such is the restriction stated in the code regarding taking food with those monks that they should not dıne from the pot of another *bhıkshu*. They should dine only from theır own pot or after taking the food in the hand.

The physical body of a monk assısts in practice of ascetic restraınts and austerities. It is, therefore, essential to provide it food and the lıke. Any activity performed for the body in an attıtude of non-attachment also results in shedding of *karmas* So ın this aphorism **'Appano Veyavadiyaye'** has been used which means for ones own service (or care).

● SECOND UDDESHAK CONCLUDED ●

तृतीय उद्देशक
THIRD UDDESHAK

गणधारण की योग्यता FITNESS FOR THE POST OF HEAD OF A GROUP (GANA)

१. भिक्खू य इच्छेज्जा गणं धारेत्तए, भगवं च से अपलिच्छन्ने एवं से नो कप्पइ गणं धारित्तए, भगवं च से पलिच्छन्ने, एवं से कप्पइ गणं धारेत्तए।

२. भिक्खु य इच्छेज्जा गणं धारेत्तए, नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता गणं धारेत्तए। कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता गणं धारेत्तए, थेरा य से वियरेज्जा एवं से कप्पइ गणं धारेत्तए, थेरा य से नो कप्पइ गणं धारेत्तए।

जं णं थेरेहिं अविइण्णं गणं धारेइ से सन्तरा छेए वा परिहारे वा, जे साहम्मिया उट्ठाए विहरंति, नत्थि णं तेसिं केइ छेए वा परिहारे वा।

१. यदि कोई भिक्षु गण को धारण करना (अर्थात् साधुओं के समूह का प्रमुख बनना) चाहे और वह शिष्य-परिवार तथा सूत्रज्ञान आदि योग्यता से रहित हो तो उसे गण धारण करना नहीं कल्पता है। यदि वह भिक्षु सूत्रज्ञान आदि योग्यता से युक्त हो तो उसे गण धारण करना कल्पता है।

२. यदि योग्य भिक्षु गण धारण करना चाहे तो उसे स्थविरों की अनुमति के बिना गण धारण करना नही कल्पता है। यदि स्थविर अनुज्ञा प्रदान करें तो गण धारण करना कल्पता है। यदि स्थविर अनुज्ञा प्रदान न करे तो गण धारण करना नही कल्पता है।

यदि कोई स्थविरो की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना ही गण धारण करता है तो वह उस मर्यादा-उल्लंघन के कारण दीक्षा-छेद या तप प्रायश्चित्त का पात्र होता है, किन्तु जो साधर्मिक साधु उसकी प्रमुखता मे विचरते है वे दीक्षा-छेद या तप प्रायश्चित्त के पात्र नही होते हैं।

1. In case a monk wants to become the head of a group but he does not have a family of disciples and is not well-read in *Agams* and the like, he is not allowed to become the head of the group. In case he is learned in scriptures and the like, he can become head of the group (*gana*).

2. In case a *bhikshu* wants to be the head of a group (*gana*), he is not allowed to do so without the consent of *Sthavirs*. In case *Sthavirs* grant him the permission, he can be the head of the group. In case *Sthavirs* do not grant the permission, he should not become the head of the group.

In case a monk declares himself as the head of the group without the consent of the *Sthavirs*, he is liable for *prayashchit* of break or reduction in period of initiation in monkhood or *prayashchit*-austerities due to crossing the limits laid down in the code. But those monks who belong to the same order and pass their ascetic life under his headship, they are

not liable for *prayashchit* of reduction in period of initiation or *prayashchit*-austerities

विवेचन : इस सूत्र मे गण धारण करने के इच्छुक श्रमण के लिए उसकी योग्यता आदि का विधान है। जो श्रमण साधु-समूह का प्रमुख या अग्रणी (सिंघाडपति) बनना चाहे वह पलिच्छन्न-अर्थात् शिष्य-सम्पदा और श्रुत-सम्पदा, दोनों से युक्त होना चाहिए। आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग तथा निशीथसूत्र के मूल एव अर्थ का ज्ञाता हो वह श्रुत-सम्पन्न कहा जाता है।

दूसरे सूत्र मे बताया है, वह पलिच्छन्न श्रुत-सम्पदायुक्त भिक्षु भी सघ के स्थविरों (गणी, गणधर, आचार्य, उपाध्याय आदि पदवीधरों) की अनुमति-स्वीकृति लेकर ही समूह-प्रमुख बन सकता है। उन्हें बिना पूछे अथवा उनकी आज्ञा के विपरीत बनने पर वह गण की मर्यादा का उल्लघन करता है। मर्यादा उल्लंघन करने वाला तप प्रायश्चित्त अथवा दीक्षा-छेद का पात्र होता है। किन्तु उसकी प्रमुखता मे विचरने वाले अन्य साधु किसी दोष के भागी नही होते हैं। उन्हे कोई प्रायश्चित्त नहीं आता। से संतरा छेए वा परिहारे वा-द्वारा व्याख्याकार कहते है-वह अपने अपराध के लिए छेद अथवा परिहार तप के प्रायश्चित्त का पात्र होता है। साधु के लिए जो विधान है, वही साध्वी के लिए भी है।

Elaboration—In this aphorism, there is a provision of requisite qualification of a *bhikshu* who wants to become the head of a group The monk who wants to be chief of the ascetic organisation or head of a group of monks, he should have both (*palichhann*) the group of disciples and the wealth of scriptural knowledge A monk who is well read in *Avashyak, Dashavaikalik, Uttaradhyayan, Acharanga* and *Nisheeth Sutra*–both the text and the meaning thereof is called one having scriptural knowledge

It is mentioned in the second aphorism that even a *palichhann bhikshu* (one equipped with wealth of disciples and of scriptural knowledge) can become the head of the group or the organisation of monks only after obtaining the consent of *Sthavirs (Gani, Ganadhar, Acharya, Upadhyaya* and the like holding various posts in the organisation). In case he becomes the head without telling them or against their order, he transgresses the code of ascetic discipline. Such a monk who overlooks the limits laid down in the code is liable for *prayashchit*-austerities or reduction in period of initiation. But the monks who are in his fold or under his stewardship, are not liable for any fault and, therefore, they are not awarded any *prayashchit*. The commentator interprets the provision. **'Se Santara Chheye vaa pariharey vaa'** as that he is liable for *prayashchit* of reduction in period of initiation or for *prayashchit*-austerities for his sin. The provision for a Jain nun is the same as that for a Jain monk.

PROVISION REGARDING FITNESS FOR POST OF UPADHYAYA ETC.

३. तिवासपरियाए समणे निग्गंथे—आयारकुसले, संजमकुसले, पवयणकुसले, पण्णत्तिकुसले, संगहकुसले, उवग्गहकुसले, अक्खयायारे, अभिन्नायारे, असबलायारे, असंकिलिट्ठायारे, बहुस्सुए बब्भागमे, जहण्णेणं आयारप्पकप्पधरे, कप्पइ उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

४. सच्चेव णं से तिवासपरियाए समणे निग्गंथे नो आयारकुसले, नो संजमकुसले, नो पवयणकुसले, नो पण्णत्तिकुसले, नो संगहकुसले, नो उवग्गहकुसले, खयायारे, भिन्नायारे, सबलायारे, संकिलिट्ठायारे, अप्पसुए, अप्पागमे नो कप्पइ उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

५. पंचवासपरियाए समणे णिग्गंथे—आयारकुसले, संजमकुसले, पवयणकुसले, पण्णत्तिकुले, संगहकुसले, उवग्गहकुसले, अक्खयायारे, अभिन्नायारे, असबलायारे, असंकिलिट्ठायारे, बहुस्सुए, बब्भागमे, जहण्णेणं दसा—कप्प—ववहारधरे, कप्पइ आयरिय—उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

६. सच्चेण णं से पंचवासपरियाए समणे निग्गंथे—नो आयारकुसले, नो संजमकुसले, नो पवयणकुसले, नो पण्णत्तिकुसले, नो संगहकुसले, नो उवग्गहकुसले, खयायारे, भिन्नायारे, सबलायारे, संकिलिट्ठायारे, अप्पसुए, अप्पागमे नो कप्पइ आयरिय—उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

७. अट्ठवासपरियाए समणे निग्गंथे—आयारकुसले, संजमकुसले, पवयणकुसले,पण्णत्तिकुसले, संगहकुसले, उवग्गहकुसले, अक्खयायारे, अभिन्नायारे, असबलायारे, असंकिलिट्ठायारे, बहुस्सुए, बब्भागमे, जहण्णेणं ठाण—समवाय—धरे, कप्पइ आयरियत्ताए उवज्झायत्ताए गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्तए।

८. सच्चेव णं से अट्ठवासपरियाए समणे णिग्गंथे नो आयारकुसले नो संजमकुसले, नो पवयणकुसले, नो पन्नत्तिकुसले, नो संगहकुसले, नो उवग्गहकुसले, खयायारे, भिन्नायारे, सबलायारे, संकिलिट्ठायारे, अप्पसुए अप्पागमे, नो कप्पइ आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्तए।

३. तीन वर्ष की दीक्षा–पर्याय वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ यदि–(१) आचारकुशल, (२) सयमकुशल, (३) प्रवचनकुशल, (४) प्रज्ञप्तिकुशल, (५) सग्रहकुशल, और (६) उपग्रह करने मे कुशल हो, तथा (७) अक्षत–चारित्र वाला, (८) अभिन्न–चारित्र वाला, (९) अशबल–चारित्र वाला, और (१०) असंक्लिष्ट आचार वाला हो, (११) बहुश्रुत, एवं (१२) बहुआगमज्ञ हो अर्थात् कम से कम आचार–प्रकल्प का धारक हो तो उसे उपाध्याय पद देना कल्पता है।

४. वही तीन वर्ष की दीक्षा–पर्याय वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ यदि–(१) आचार, (२) सयम, (३) प्रवचन, (४) प्रज्ञप्ति, (५) संग्रह, और (६) उपग्रह में कुशल न हो, तथा (७) क्षत, (८) भिन्न, (९) शबल, और (१०) संक्लिष्ट आचार वाला हो, (११) अल्पश्रुत, एवं (१२) अल्प आगमज्ञ हो तो उसे उपाध्याय पद देना नहीं कल्पता है।

५. पाँच वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ यदि आचारकुशलता आदि ... पूर्वोक्त गुणो वाला हो, यावत् बहुआगमज्ञ हो एवं कम से कम दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प एवं व्यवहारसूत्र का धारक (सूत्र व अर्थ के रहस्यों का ज्ञाता) हो तो उसे आचार्य या उपाध्याय पद देना कल्पता है।

६. वही पाँच वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ यदि आचार आदि ... गुणो से हीन हो, अल्पश्रुत और अल्प आगमज्ञ हो तो उसे आचार्य या उपाध्याय पद देना नही कल्पता है।

७. आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ यदि आचार आदि ... पूर्वोक्त गुणो से युक्त हो, बहुआगमज्ञ हो एव कम से कम स्थानाग-समवायागसूत्र का अर्थ सहित जानकार हो तो उसे आचार्य, उपाध्याय और गणावच्छेदक पद देना कल्पता है।

८. वही आठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ यदि आचार आदि ... उक्त गुणों से हीन या अल्पश्रुत और अल्प आगमज्ञ हो तो उसे आचार्य, उपाध्याय तथा गणावच्छेदक पद देना नहीं कल्पता है।

3. A monk having an experience of three years of ascetic life can be appointed as *Upadhyaya* if he is expert in ascetic conduct, expert in ascetic discipline, expert in spiritual discourse, expert in *prajnapti*, expert in collecting essentials, expert in doing *upagrah*, and who has unblemished ascetic conduct, the conduct without any reduction (due to *prayashchit*), faultless conduct, and a conduct which is free from any tribulations and who is learned in scriptures (*bahushrut*) and in *Agams*. In other words one who possesses at least the code of *Achar-prakalp*.

4. In case a monk has an experience of three years of ascetic life but is not meticulous in conduct, ascetic restraint, spiritual discourse *prajnapti*, collecting essentials, and in *upagrah* and has a conduct which is blemished, reduced in period of monkhood due to *prayashchit*, spotted of major fault, and derogatory and who has only a little knowledge of scriptures and *Agams*. Such a monk cannot be appointed as *Upadhyaya*.

5. In case a monk has a period of five years of monkhood and all the qualities of steadfastness in conduct and the like up to above-mentioned attributes and is expert in knowledge of scriptures and has studied at least *Dashashrut Skandh, Brihat-kalp* and *Vyavahar Sutra* (Knowledge of underlying idea of *Sutras* and their meaning), he can be appointed as *Acharya* or *Upadhyaya*

6. In case a monk has a period of five years of monkhood to his credit but is devoid of the above–said qualities of good conduct and the like and has only a little knowledge of scriptures and *Agams*, he cannot be appointed as *Acharya* or *Upadhyaya*.

7. A monk has a period of eight years of ascetic life to his credit. In case he has all the above-mentioned qualities of being expert in ascetic conduct and the like, has knowledge of *Agams*, at least of *Sthananga* and *Samavayanga Sutra* including their meaning, he can be appointed to the posts of *Acharya, Upadhyaya* and *ganavachhedak*.

8. A monk has a period of eight years of ascetic life to his credit. In case he does not have the above-mentioned qualities of being expert in ascetic conduct and the like or he has little knowledge of scriptures and *Agams*, he cannot be appointed as *Acharya, Upadhyaya* or *ganavachhedak*.

विवेचन : गच्छ या गण (संघ) मे अनेक साधु-साध्वियाँ होते हैं। उनके अध्ययन, आचार शुद्धि व सेवा आदि की व्यवस्था को उचित रूप मे सचालन करने के लिए अनेक जिम्मेदार पदवीधरों का होना भी आवश्यक है। कम से कम आचार्य और उपाध्याय इन दो पदवीधरो का होना तो अत्यावश्यक है।

इन पदवीधरो की योग्यता क्या, कैसी होनी चाहिए इस विषय मे उक्त सूत्रों में तथा उसके आधार पर भाष्य व टीका मे बहुत विस्तृत चर्चा है। सक्षेप मे उसका सार इस प्रकार है-

दीक्षा-पर्याय-दीक्षा की ज्येष्ठता व दीर्घकालीनता के अनुसार अनुभव, क्षमता, योग्यता तथा प्रभावशीलता का विकास होता है। उपाध्याय का काम मुख्य रूप से गण मे ज्ञान का विस्तार करना है। अतः उनकी दीक्षा-पर्याय कम से कम तीन वर्ष, आचार्य की पाँच वर्ष तथा गणावच्छेदक की कम से कम आठ वर्ष होनी चाहिए। आचार्य गण के अनुशास्ता भी होते है तथा शिष्यों को सूत्र व अर्थ की वाचना देने में भी समर्थ होते है। गणावच्छेदक आचार्य को गण सम्बन्धी चिन्ताओ से मुक्त रखते है। बाल, वृद्ध, तपस्वी व रुग्ण साधु-साध्वियो की सेवा, विचरण, वस्त्र-पात्र आदि वितरण व प्रायश्चित्त आदि का उत्तरदायित्व उन्हीं का होता है। अन्य गुणों का सक्षिप्त भाव इस प्रकार है-

१. **आचारकुशल**-ज्ञानाचार; ज्ञान-प्राप्ति आदि की सब विधियो के पारंगत, गण मे विनय, सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओ मे जो कुशल होता है, वह आचारकुशल है।

२. **संयमकुशल**-सत्रह प्रकार के शुद्ध सयम का पालन करने तथा दूसरो से पालन करवाने मे निपुण (दक्ष) तथा इन्द्रियविजयी होना सयमकुशलता है।

३. **प्रवचनकुशल**-जो जिनवचनो के समस्त रहस्यो का ज्ञाता एवं कुशल उपदेष्टा हो, वह प्रवचनकुशल है। जिसकी वाणी दूसरो को सद्बोध देने व जिनधर्म की प्रभावना करने मे सक्षम हो।

४. **प्रज्ञप्तिकुशल**-लौकिक शास्त्र, वेद, पुराण आदि एव स्व-सिद्धांत का जिसने सम्यक् प्रकार से अध्ययन कर लिया है, वह कुदर्शन का परित्याग कराने में समर्थ एव स्व-सिद्धांतो को समझाने मे कुशल भिक्षु "प्रज्ञप्तिकुशल" है।

५. **संग्रहकुशल**-द्रव्य से उपधि, शिष्यादि का और भाव से श्रुत एव अर्थ तथा गुणो का आत्मा में सग्रह करने में जो कुशल होता है।

६. **उपग्रहकुशल**-बाल, वृद्ध, रोगी, तपस्वी, असमर्थ साधु-साध्वियों को शय्या, आसन, उपधि, आहार, औषध आदि की उपलब्धि कराने, सघ मे सेवा-व्यवस्था आदि से सबकी सार-सँभाल रखने में जो निपुण होते है।

७. अक्षत–आचार–परिपूर्ण निर्दोष आचार का पालन करने वाला।

८. अभिन्नाचार–किसी प्रकार के अतिचारों का सेवन न करके पाँचो आचारों का परिपूर्ण पालन करने वाला।

९. अशबलाचार–विनय, व्यवहार, भाषा, गोचरी आदि में दोष न लगाने वाला अथवा शबल दोषों से रहित आचरण वाला।

१०. असंक्लिष्ट आचार–इहलोक-परलोक सम्बन्धी सुखो की कामना न करने वाला अथवा क्रोधादि का त्याग करने वाला सक्लेशरहित भिक्षु। "क्षत–आचार" आदि शब्दों का अर्थ इनसे विपरीत समझ लेना चाहिए।

११. बहुश्रुत–बहुआगमज्ञ–अनेक सूत्रो एव उनके अर्थों को जानने वाला 'बहुश्रुत या बहुआगमज्ञ' कहा जाता है। आगमो मे इन शब्दो का भिन्न-भिन्न अपेक्षा से प्रयोग हुआ है। यथा–(१) गम्भीरता, विचक्षणता एवं बुद्धिमत्ता आदि गुणो से युक्त। (२) अनेक सूत्रो का अभ्यासी (बहुआगमज्ञ)। (३) छेदसूत्रो में पारंगत (बहुश्रुत)। (४) आचार एवं प्रायश्चित्त विधानो मे कुशल।

जो अल्प बुद्धि, अत्यधिक भद्र, अल्प अनुभवी एव अल्प आगम–अभ्यासी होता है, वह 'अबहुश्रुत अबहुआगमज्ञ' कहा जाता है।

१२. आचार–प्रकल्पधर–यह शब्द आगमो मे अनेक स्थानो पर अनेक बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। भाष्यकार के तथा अन्य अनेक आगमो के सन्दर्भों पर चिन्तन करने वाले उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म के अनुसार इसका भाव है–"आचारागसूत्र तथा निशीथसूत्र का ज्ञाता। आचाराग मे आचार सम्बन्धी विधान है, निशीथ मे उसका भग करने के प्रायश्चित्त का कथन है।"

सूत्र ३-४ में उपाध्याय पद योग्य भिक्षु के लिए इसके अध्ययन करने का और अर्थ सहित कण्ठस्थ धारण करने का विधान है। इसके कण्ठस्थ न होने पर वह उपाध्याय पद पर स्थापित करने के अयोग्य कहा गया है।

१३. दसा–कप्प–ववहारधरे–सूत्र ५-६ मे आचार्य पद के योग्यायोग्य का कथन करते हुए जघन्य पाँच वर्ष की दीक्षा–पर्याय एवं अन्य बहुश्रुत पर्यंत के सभी गुणो को कहकर कम से कम तीन छेदसूत्रो को धारण करना आवश्यक कहा है। ये तीन सूत्र है–'दसा' से दशाश्रुतस्कधसूत्र, 'कप्प' से बृहत्कल्पसूत्र और 'ववहार' से व्यवहारसूत्र। ये तीनों सूत्र चौदह पूर्वी प्रथम भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित (निर्यूढ) है।

१४. ठाण–समवायधरे–सूत्र ७-८ मे गणावच्छेदक पद के योग्यायोग्य भिक्षु का कथन करते हुए आठ वर्ष की दीक्षा–पर्याय एवं बहुश्रुत पर्यंत के सभी गुणो को कहकर कम से कम ठाणागसूत्र और समवायागसूत्र को कण्ठस्थ धारण करना आवश्यक कहा है।

(१) उपाध्याय के लिए–१. आवश्यकसूत्र, २ दशवैकालिकसूत्र, ३ उत्तराध्ययनसूत्र, ४. आचारागसूत्र, ५ निशीथसूत्र; यो कम से कम पाँच सूत्रो को कण्ठस्थ धारण करना अनिवार्य है।

(२) आचार्य के लिए–१ आवश्यक, २ दशवैकालिक, ३ उत्तराध्ययन, ४ आचाराग, ५ निशीथ, ६ सूत्रकृतांग, ७ दशाश्रुतस्कन्ध, ८. बृहत्कल्प, ९. व्यवहारसूत्र; यो कम से कम कुल ९ सूत्रो को कण्ठस्थ धारण करना आवश्यक है।

(३) गणावच्छेदक के लिए–उपर्युक्त ९ और ठाणांगसूत्र, समवायांगसूत्र, यो कम से कम ग्यारह सूत्रो को कण्ठस्थ धारण करना अनिवार्य है। *(व्यवहारसूत्र विवेचन, पृ ३१५-३२०)*

Elaboration—There are many monks in a *gachha* (group) or *gana* (spiritual organisation). It is essential to have many responsible monks appointed to the post for making suitable arrangement for studies of monks, their leading life of a unblemished conduct and their service and the like so that everything is in order. It is extremely important to fill the two posts of *Acharya* and *Upadhyaya*.

The above aphorisms lay down the qualities and capabilities necessary for these posts and in the *bhashya* and the commentary there is a detailed discussion on the basis of said aphorism. The sum and substance of the discussion is as follows–

Period of Monkhood—The experience, capability, fitness and effectiveness develops with the seniority in initiation and longevity in the period of monkhood The primary responsibility of *upadhyaya* is to extend knowledge of scriptures in the *gana* (group or the organisation). So his period of monkhood should be at least three years, the period of monkhood of *Acharya* should be at least of five years and in case of *ganavachhedak* it should be at least eight years An *Acharya* is the administrator of the organisation He is also capable of teaching *Sutras* and their meaning to his disciples. A *ganavachhedak* keeps the *Acharya* free from worries relating to the organisation (*gana*). He is responsible for ensuring proper attention to the newly initiated monks, the old monks, monks observing austerities, the monks and nuns who are suffering from any disease. He is also responsible for their wanderings, the pots, clothes and the like and their proper distribution and also for awarding *prayashchit* and the like for committing faults in ascetic discipline. The other qualities in brief are as under—

1. Acharkushal—Expert in ascetic conduct. One who knows all the methods of processing knowledge and the like. One who is expert in making suitable arrangements relating to service and ensures proper respect of each other in the organisation (*gana*).

2. Sanyamkushal—One who practices meticulously seventeen types of ascetic discipline himself and is well-trained in ensuring its practice by others.

3. Pravachankushal—One who knows well the interpretation of the word of *Tirthankars* and is expert in scriptural lectures. One whose method of addressing others is capable of transmitting right knowledge to others and in spreading true *Dharma*.

4. Prajnaptikushal—One who has properly studied worldly texts, *Vedas, Puranas* and the like and also the philosophy of *Jinas*. He is expert in making others to discard wrong perception or faith and properly understand the right knowledge and the real philosophy such a monk is called *prajnapti kushal.*

5. Sangrehkushal—One who is practically expert in collecting disciples and the material needed for properly leading the ascetic life and from the real point of view is expert in enshrining scriptural knowledge, its real meaning and qualities mentioned there in his self.

6. Upagrahkushal—One who is expert in ensuring that the newly initiated, the old, the diseased, those undergoing austerities and the incapables get the bed, the bedding, the relevant material for ascetic life, the food, the medicine and the like they need. He further ensures proper arrangements of service in the organisation and proper attention of every one in the fold

7. Akshatachar—One whose ascetic conduct is totally faultless.

8. Abhinnachar—One who has not practiced any type of digression in the ascetic discipline and who meticulously practices five types of ascetic behaviour in full.

9. Ashabalachar—One who does not commit any fault in practice of humility, in daily behaviour, in use of language and in collecting food and the like. One whose conduct is free from major (*shabal*) faults.

10. Asanklishtachar—One who does not have any desire for worldly pleasures in the present life and in the life thereafter. A monk who has discarded all the passions namely anger and the like. The meaning of the word *'Kshatachar'* should be understood as opposite to the above-said.

11. Bahushrut-Bahu Agamajna—One who has thoroughly studied many scriptures and their interpretations is called *bahushrut* or *Agamajna*. In *Agams* these words have been used in different contexts namely—(1) One who possesses various qualities such as serenity, sharp intellect, wisdom and the like, (2) One who has repeatedly studied many scriptural texts (*bahu Agamajna*), (3) One who has expert knowledge of *Chhed Sutras* (*bahu shrut*), (4) One who is expert in the knowledge about ascetic conduct and the procedure laid down for *prayashchit*.

One who has low intellect, who has very little experience, who is too simple and who has very shallow knowledge of *Agams* is called *Abahushrut, Abahu Agamajna.*

12. Acharprakalpadhar—This word has been used in the *Agams* frequently in different context. According the author of *bhashya* and Upadhyaya Shri Kanhaiyalal ji Maharaj who has reflected on it with reference to many *Agams*, its interpretation is—"One who has thorough knowledge of *Acharang Sutra* and *Nisheeth Sutra*. In *Acharang Sutra* the code relating to ascetic conduct has been laid and in *Nisheeth Sutra* there is detailed description of the *prayashchit* for incurring fault in the practice of ascetic conduct.

In aphorism 3 and 4 there is a provision that a *bhikshu* who is fit to be appointed as *Upadhyaya* should study them and memorise them including their meaning. In case he is not able to memorise them, he is unfit for the post of *Upadhyaya*.

13. Dasa-kapp-Vavahardhare—In aphorisms 5 and 6 while discussing fitness or not for the post of *Acharya*, it is mentioned that he should have at least five years experience of ascetic life and the above-said qualities up to being a *bahushrut*. Further it is essential that he should have deep knowledge of at least three *Chhed Sutras*. These three *sutras* are *Dashashrut Skandh (Dasa), Brihat-kalp Sutra (kapp)* and *Vyavahar Sutra (Vavahar)*. All these *Sutras* were authored by first Bhadrabahu Swami who had knowledge of fourteen *purvas*.

14. Thaan Samavayadhare—In aphorisms 7 and 8 while discussing the qualities of a *bhikshu* for determining his fitness or not for the post of *ganavachhedak*, it is clearly stated that he should have at least eight years experience of ascetic life, all the above-said qualities upto being a *bahushrut* and must have memorized at least *Sthananga Sutra* and *Samvayanga Sutra*.

(1) For the post of *Upadhyaya*, one must essentially have memorized at least five *Sutras* namely—*Avashyak Sutra, Dashavaikalik Sutra, Uttaradhyayan Sutra, Acharanga Sutra* and *Nisheeth Sutra*.

(2) For the post of *Acharya*, it is essential that one must have memorized at least nine *Sutras* namely—*Avashyak Sutra, Dashavaikalik Sutra, Uttaradhyayan Sutra, Acharanga Sutra, Nisheeth Sutra, Sutra Kritanga, Dashashrutskandh, Brihat-kalp* and *Vyavahar Sutra*.

(3) For the post of *ganavachhedak*, it is essential that one has memorized at least eleven *sutras* namely—the nine above : mentioned, *Thananga Sutra* and *Samvayanga Sutra*. (*Commentary of Vyavahar Sutra, pp 315-320*)

अल्प दीक्षा–पर्याय वाले को पद देने का विधान

PROVISION OF ASSIGNING A POST TO MONK OF BRIEF INITIATION PERIOD

९. निरुद्धपरियाए समणे निग्गंथे कप्पइ तद्दिवसं आयरिय–उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

[प्र.] से किमाहु भंते।

[उ.] अत्थि णं थेराणं तहारूवाणि कुलाणि, कडाणि, पत्तियाणि, थेज्जाणि, वेसासियाणि, सम्मयाणि, सम्मुइकराणि, अणुमयाणि, बहुमयाणि भवंति। तेहिं कडेहिं, तेहिं पत्तिएहिं, तेहिं थेज्जेहिं, तेहिं वेसासिएहिं, तेहिं सम्मएहिं, तेहिं सम्मुइकरेहिं, तेहिं अणुमएहिं, तेहिं बहुमएहिं। जं से निरुद्धपरियाए समणे निग्गंथे कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए तद्दिवसं।

१०. निरुद्धवासपरियाए समणे णिग्गंथे कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए, समुच्छेयकप्पंसि। तस्स णं आयारपकप्पस्स देसे अवट्ठिए, से य अहिज्जिस्सामि त्ति अहिज्जेज्जा, एवं से कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

से य अहिज्जिस्सामि त्ति नो अहिज्जेज्जा, एवं से नो कप्पइ आयरिय–उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

९. निरुद्ध (अल्प या अत्यल्प) दीक्षा–पर्याय वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ जिस दिन दीक्षित हो, उसी दिन उसे आचार्य या उपाध्याय पद देना कल्पता है।

[प्र.] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[उ.] स्थविरो के द्वारा तथारूप से (१) भावित, (२) प्रीतियुक्त, (३) स्थिर, (४) विश्वस्त, (५) सम्मत, (६) प्रमुदित, (७) अनुमत, और (८) बहुमत अनेक कुल होते है। उन भावित, प्रीतियुक्त, स्थिर, विश्वस्त, सम्मत, प्रमुदित, अनुमत और बहुमत कुल से दीक्षित जो निरुद्ध (अल्प) पर्याय वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ है, उसे उसी दिन आचार्य या उपाध्याय पद देना कल्पता है।

१०. आचार्य या उपाध्याय के कालधर्म–प्राप्त (मरण) हो जाने पर निरुद्ध (अल्प) वर्ष पर्याय वाले श्रमण–निर्ग्रन्थ को आचार्य या उपाध्याय पद देना कल्पता है। उसके आचार–प्रकल्प का कुछ अंश अध्ययन करना शेष हो और वह अध्ययन पूर्ण करने का संकल्प रखकर पूर्ण कर ले तो उसे आचार्य या उपाध्याय पद देना कल्पता है।

किन्तु यदि वह शेष अध्ययन पूर्ण करने का सकल्प रखकर भी उसे पूर्ण न करे तो उसे आचार्य या उपाध्याय पद देना नहीं कल्पता है।

9. A monk who has brief and very brief period of monkhood (*niruddh*) to his credit, he can be assigned the post of *Acharya* or *Upadhyaya* even on the very day of his initiation.

[Q.] '*Bhagavan* ! What is the underlying reason for it ?

[Ans.] There are many families which are truly influenced, devoted, stabilized in philosophical thought, trustworthy, agreeable, ecstatically

pleased depending upon and mostly depending upon *Sthavirs*. In case a person from such families gets initiated in monkhood, he can be appointed as *Acharya* or *Upadhyaya* on the very day of initiation although his period of monkhood is very nominal (*niruddh*).

10. When an *Acharya* or *Upadhyaya* dies, a monk of a very little period of monkhood can be appointed at that post. In case he has yet to complete study of some part of the code of ascetic conduct (*Achar prakalp*) and he is with a strong determination of completing its study, he can be appointed as *Acharya* or *Upadhyaya*.

But if he is not able to complete it even after a strong will to complete it, he cannot be appointed *Acharya* or *Upadhyaya*.

विवेचन : पूर्व के सूत्र ३ से ८ तक मे आचार्य पद देने योग्य भिक्षु के गुणो का वर्णन करते हुए उत्सर्ग विधि (सामान्य नियम) का कथन किया गया है। इन ९-१० दो सूत्रो मे दीक्षा-पर्याय एव श्रुत-अध्ययन सम्बन्धी अपवाद विधि (विशेष परिस्थिति) का कथन किया है। अर्थात् पूर्व सूत्रों में उपाध्याय एवं आचार्य पद के लिए कम से कम तीन वर्ष एवं पाँच वर्ष की दीक्षा-पर्याय का होना अनिवार्य कहा गया है और इन सूत्रों मे उसी दिन के दीक्षित भिक्षु को या सूत्र कथित वर्षों से कम वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को अथवा आवश्यक श्रुत-अध्ययन अपूर्ण हो ऐसे भिक्षु को भी परिस्थितिवश आचार्य-उपाध्याय पद देने का विधान किया है।

इन सूत्रो का तात्पर्य यह है कि यदि किसी मे सूत्रोक्त पद के योग्य अन्य सभी गुण हो तो किसी विशेष परिस्थिति मे श्रुत-धारण की या दीक्षा-पर्याय की अपूर्णता को नगण्य किया जा सकता है, क्योंकि अन्य सभी गुण विद्यमान होने से श्रुत और दीक्षा-पर्याय की कमी की पूर्ति तो पद देने के बाद भी हो सकती है।

नौवे सूत्र मे उसी दिन के दीक्षित भिक्षु को पद देने का कथन करते हुए उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखकर कहा है कि ऐसे गुण-सम्पन्न कुलों से दीक्षित होने वाले भिक्षु को उसी दिन पद देने में कोई बाधा नही है।

भाष्यकार के अनुसार इन सूत्रों मे दो प्रकार की गण-स्थिति को लक्ष्य में रखकर कथन किया गया है-

(१) गण मे रहे हुए साधुओ में सर्वानुमत एव अनुशासन-व्यवस्था सँभालने योग्य कोई भी साधु नहीं हो, उस समय किसी योग्य भावित कुल के प्रतिभा-सम्पन्न दीक्षित व्यक्ति को पद दिया जा सकता है।

(२) गण मे दीर्घ दीक्षापर्याय वाले एवं श्रुतसम्पन्न साधुओं में कोई भी पद-योग्य नहीं हो, किन्तु अल्पपर्याय वाला एवं अपूर्ण श्रुत ज्ञान वाला भिक्षु योग्य हो तो ऐसी परिस्थितियों में उसे पद पर नियुक्त किया जा सकता है।

नवदीक्षित भिक्षु के आवश्यक पारिवारिक गुण

१. **भावित**-धर्मभावना से भावित कुल। २. **पत्तियाणि**-विनय-सम्पन्न कुल। ३. **थेज्जाणि**-गच्छ में प्रीति होने से गच्छ के कार्य-सम्पादन में प्रमाणभूत। ४. **वेसासियाणि**-गच्छ के समस्त साधुओं के विश्वास योग्य। ५. **सम्मयाणि**-संघ के अनेक कार्यों में इष्ट/सम्मत। ६. **सम्मुइकराणि**-गच्छ में उत्पन्न क्लेश को शान्त करके गच्छ को प्रसन्न रखने वाले। ७. **अणुमयाणि-बहुमयाणि**-गच्छ में रहने वाले बाल, ग्लान, वृद्ध आदि सभी को मान्य, बहुमान्य आदेय वचन वाले। ८. **तेहिं कडेहिं जाव तेहिं बहुमएहिं**-ऐसे भावित यावत् सबको मान्य परिवार वाले

सदस्यों में से कोई दीक्षा लेने वाला भिक्षु हो तो उसे उसी दिन दीक्षा देकर आचार्य-उपाध्याय पद दिया जा सकता है। *(विस्तृत जानकारी के लिए हिन्दी विवेचन, देखें-पृ ३२२-३२४)*

Elaboration—In the earlier aphorisms 3 to 8 while narrating the qualities of a *bhikshu* who is fit to be appointed as *Acharya*, the general rule has been enunciated In the two aphorisms namely aphorism 9 and 10 the period of monkhood and the provision relating to study has been stated which is meant for exceptional situation In other words, in earlier aphorisms it has been made compulsory that the person to be appointed as *Upadhyaya* should have monkhood period of at least three years and for the post of *Acharya* of at least five years But in these aphorisms there is a provision of appointing a newly initiated *bhikshu* on the very day of initiation or one with a lesser period of monkhood than the one stated in earlier aphorisms as *Acharya* or *Upadhyaya* in exceptional circumstances in view of that particular situation although he has not completed the study of scriptures as required for such posts

The essence of these aphorisms is that in case a monk has all the qualities required for the post of *Acharya* or *Upadhyaya* his non-completion of prescribed scriptural study and required period of monkhood can be ignored in exceptional circumstances It is because when he fulfils all other qualifications, the scriptural study and the gap in required life of monkhood can be completed by him even after holding that post.

In the ninth aphorism, keeping in view the family background of the monk concerned it has been provided that he can be offered the post on the very day of initiation. In case a person is being initiated in monkhood from families that are worthy (in philosophical thought and conduct), there is no bottleneck in offering him the post (of *Acharya* or *Upadhyaya*) on that very day.

According to the author of *bhashya*, the description in these aphorisms is on the basis of two types of situation in the *gana* (group)—

(1) No monk, is available in the group, who is acceptable to all the members of the group, to be appointed to that post and who is capable of running the administration. In such a situation, the post can be offered to an illustrious newly initiated monk who is coming from a devoted praiseworthy family.

(2) No monk out of those who have long period of monkhood and rich study of scriptures is fit for holding the post but a monk who has only a

very brief period of monkhood to his credit and whose study of scriptures is also not complete is capable of providing good administration. In that situation, he can be appointed to that post.

Essential family qualities of a newly initiated Monk (1) *Bahvit*—A family of rich spiritual tradition, (2) *Pattiyani*—Humility, (3) *Thejjani*—Expert in performing gachha activities due to congeniality, (4) *Vesasiyani*—Trustworthy of all the monks, (5) *Samsuayani*—Respected in many activities of the organization, (6) *Samnuikarani*—Expert in pacifying disputes and keeping all happy, (7) *Anumayani-vahumayani*—Talking humbly to diseased, old and the like, (8) *Tehim kadehim java tehim bahumayehim*—In case from any such families or these acceptable and respected by all, a person gets initiated, he can be appointed *Acharya* or *Upadhyaya* on that way day.

आचार्य के नेतृत्व बिना रहने का निषेध
PROHIBITION OF REMAINING WITHOUT LEADERSHIP OF AN ACHARYA

११. निग्गंथस्स णं नव-डहर-तरुणस्स आयरिय-उवज्झाए वीसुंभेज्जा, नो से कप्पइ अणायरिय-उवज्झाइए होत्तए। कप्पइ से पुव्वं आयरियं उद्दिसावेत्ता तओ पच्छा उवज्झायं।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] दु-संगहिए समणे निग्गंथे, तं जहा-१. आयरिएण य, २. उवज्झाएण य।

१२. निग्गंथीए णं नव-डहर-तरुणीए आयरिय-उवज्झाए, पवत्तिणी य वीसुंभेज्जा, नो से कप्पइ अणायरिय-उवज्झाइयाए अपवित्तिणियाए होत्तए। कप्पइ से पुव्वं आयरियं उद्दिसावेत्ता तओ उवज्झायं तओ पच्छा पवत्तिणिं।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] ति-संगहिए समणी निग्गंथी, तं जहा-१. आयरिएण य, २. उवज्झाएण य, ३. पवत्तिणीए य।

११. नवदीक्षित, बालक या तरुण निर्ग्रन्थ के आचार्य और उपाध्याय की यदि मृत्यु हो जाए तो उसे आचार्य और उपाध्याय के बिना रहना नही कल्पता है। उसे पहले आचार्य की और बाद मे उपाध्याय की निश्रा (अधीनता) स्वीकार करके ही रहना चाहिए।

[प्र.] हे भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[उ.] श्रमण-निर्ग्रन्थ को (१) आचार्य, और (२) उपाध्याय; इन दो के नेतृत्व में ही रहना चाहिए।

१२. नवदीक्षिता, बालिका या तरुणी निर्ग्रन्थी के आचार्य, उपाध्याय और प्रवर्तिनी की यदि मृत्यु हो जाये तो उसे आचार्य, उपाध्याय और प्रवर्तिनी के बिना रहना नही कल्पता है। उसे पहले आचार्य की, बाद में उपाध्याय की और पश्चात् प्रवर्तिनी की निश्रा (अधीनता) स्वीकार करके ही रहना चाहिए।

[प्र.] हे भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ?

[उ.] श्रमणी-निर्ग्रन्थी-(१) आचार्य, (२) उपाध्याय, और (३) प्रवर्तिनी; इन तीन के नेतृत्व में ही रहती है।

11. In case the *Acharya* or *Upadhyaya* of a newly initiated monk, a monk with insufficient scriptural knowledge or of a young monk dies, he is not allowed to pass on his life of monkhood without an *Acharya* or *Upadhyaya*. He should first accept guardianship of an *Acharya* and thereafter of an *Upadhyaya*.

[Q.] *Bhagavan* ! Why is it so ?

[Ans.] A Jain monk should always remain under the leadership of the two namely *Acharya* and *Upadhyaya*.

12. In case the *Acharya, Upadhyaya* or the head nun (*pravartini*) of a newly initiated nun, a nun with insufficient scriptural knowledge or of a young nun dies, she is not to pass on her further period of ascetic restraint without (the leadership of) an *Acharya, Upadhyaya* or head nun (*pravartini*). She should first accept guardianship of an *Acharya*, thereafter of an *Upadhyaya* and later of the head nun (*pravartini*).

[Q.] *Bhagavan* ! Why is it so ?

[Ans.] A Jain nun always remains only in the guardianship of *Acharya, Upadhyaya* and the *pravartini*.

विवेचन : नव, डहर, तरुण की व्याख्या भाष्य मे इस प्रकार की है–

तिवरिसो होइ नवो, आसोलसगं तु डहरगं बेंति।
तरुणो चत्तालीसो, सत्तरि उण मज्झिमो, थेरओ सेसो॥ (व्यवहारभाष्य, गाथा १५७७)

तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय पर्यंत नवदीक्षित कहा जाता है। चार वर्ष से लेकर सोलह वर्ष की उम्र पर्यंत डहर-बाल (किशोर), सोलह वर्ष की उम्र से लेकर चालीस वर्ष पर्यंत तरुण और सत्तर वर्ष मे एक कम अर्थात् उनसत्तर (६९) वर्ष पर्यंत मध्यम (प्रौढ) कहा जाता है। सत्तर वर्ष से आगे शेष सभी वय वाले स्थविर कहे जाते हैं। (व्यव , उ. १०; ठाणं, अ. ३ के अनुसार) साठ वर्ष वाले को स्थविर कहा जाता है।

उक्त दोनों सूत्रों का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक गच्छ मे चाहे गच्छ छोटा हो या बडा हो, आचार्य, उपाध्याय दो पदवीधर होना आवश्यक है। क्योंकि आचार्य के नेतृत्व से इनकी संयम-समाधि रहती है और उपाध्याय के नेतृत्व से इनका आगमानुसार व्यवस्थित अध्ययन होता है।

इसी प्रकार साध्वियाँ भी चाहे ५-१० हों, जिनके कोई आचार्य, उपाध्याय या प्रवर्तिनी न हो या उन्होंने किसी परिस्थिति से गच्छ का त्याग कर दिया हो और उनमें नव, डहर, तरुण, साध्वियाँ हों तो उन्हें भी किसी आचार्य और उपाध्याय की निश्रा स्वीकार करना आवश्यक है एव अपनी प्रवर्तिनी नियुक्त करना भी आवश्यक है। अन्यथा उनका विहार भी आगम-विरुद्ध है।

आगम के इस विधान से यह भी सूचित होता है कि तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय और चालीसवें वर्ष की उम्र के पहले किसी भी प्रकार का एकलविहार या गच्छ-त्याग करना उचित नहीं है और वह आगम-विपरीत है।

Elaboration—The interpretation of *Nav, Dahar* and *Tarun* in the *bhashya* is as under—

A monk upto three years of monkhood to his credit is called newly initiated (*nav dikshit*). A monk is called *dahar* if his period of monkhood is in the range of four years to sixteen years. He is called *tarun* if his period if monkhood is from sixteen years upto forty years and he is called *praudh* (experienced) if his period of monkhood is more than forty years till he is sixty nine years. All the monks beyond seventy years are called *Sthavirs*. (According to *Vyavahar Sutra Uddeshak* 10 and *Thananga* Chapter 3) a monk whose age is sixty years is called *Sthavir*.

The purport of these two aphorisms is that it is essential for every *gachha* (group) to have two posts namely of *Acharya* and *Upadhyaya* irrespective of the fact whether the number of its members is small or large. It is because they can undergo life of ascetic equanimity under the guardianship of an *Acharya* and their scriptural study can progress smoothly under the guidance of *Upadhyaya*.

Similarly Jain nuns who have discarded their group (*gachha*) due to any reason and among whom there are newly initiated *dahar* and *tarun* nuns, it is essential that they should accept the guardianship of an *Acharya* and a *Upadhyaya* in case they do not have any *Acharya, Upadhyaya* or *pravartini* among them. It is also essential that they should appoint their pravartini. In case they do not follow this rule, their movement and passing on of ascetic life is against the code laid down in *Agams* even if their number is five to ten.

This provision in the *Agams* indicates that for a monk who has just three years of monkhood to his credit and who has not completed forty years of age, it is not proper to discard his group (*gachha*) and to move alone. His such conduct is against the *Agamic* code.

अब्रह्मसेवी को पद देने के विधि-निषेध

PROCEDURE OF OFFERING/PROHIBITING A POST OF MONK INVOLVED IN SEX RELATED SIN

१३. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं बीइक्कंतेहिं चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स, उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स, एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१४. गणावच्छेइए य गणावच्छेयत्तं अनिक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१५. गणावच्छेइए य गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं बीइक्कंतेहिं चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स, एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१६. आयरिय-उवज्झाए य आयरिय-उवज्झायत्तं अनिक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१७. आयरिय-उवज्झाए य आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता मेहुणधम्मं पडिसेवेज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं बीइक्कंतेहिं चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स, एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१३. यदि कोई भिक्षु गण को छोडकर (गण से बाहर होकर) मैथुन-सेवन करे तो उसे उक्त कारण से तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या उसको धारण करना नही कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथा वर्ष प्रारम्भ होने पर यदि उसकी वासना शान्त हो जाए, मैथुन की प्रवृत्ति से निवृत्त, मैथुन-सेवन से ग्लानि प्राप्त और पूर्ण रूप से विकाररहित हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

१४. यदि कोई गणावच्छेदक अपना पद छोडे बिना मैथुन-सेवन करे तो उसे उक्त कारण से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या इसे धारण करना नहीं कल्पता है।

१५. यदि कोई गणावच्छेदक अपना पद छोडकर मैथुन-सेवन करे तो उसे तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथे वर्ष में प्रवेश करने पर यदि वह उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत और निर्विकार हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

१६. यदि कोई आचार्य या उपाध्याय अपने पद को छोडे बिना मैथुन-सेवन करे तो उसे यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

१७. यदि कोई आचार्य या उपाध्याय अपने पद को छोडकर मैथुन-सेवन करे तो उसे तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथे वर्ष में प्रवेश करने पर यदि वह उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत और निर्विकार हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

13. In case a *bhikshu* leaving his group engages himself in sex, he cannot be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for three years. He cannot be on such post for that period.

After the expiry of three years and the beginning of the fourth year, if his sexual urge subsides, his sexual activity completely comes to an end and he despises engaging in sex and becomes completely free from any suchlike instinct, he can be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* or he can accept such post.

14. In case a *ganavachhedak* without leaving his post engages in sex, he can not be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout his life due to that fault nor he can remain on any such post.

15. A *ganavachhedak* after leaving his post engages in sex. Then he can neither be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for a period of three year nor he can remain on any such post during that period.

After the expiry of the period of three years and the start of the fourth year if his sexual urge subsides, ends and he despises engaging in sex and becomes totally void of sexual instinct, he can be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* or he can hold any such post.

16. In case any *Acharya* or *Upadhyaya* without leaving his post engages in sex he cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* nor he can hold any such post throughout his life.

17. In case any *Acharya* or *Upadhyaya* after resigning his post engages in sex, he cannot be appointed for three years on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* nor he can hold any such post during that period.

After the expiry of three years and with the beginning of fourth year if his sexual urge subsides, ends and he starts despising engagement in sex and becomes totally void of sexual instinct, then he can be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* and he can hold any such post.

विवेचन : प्रश्न होता है-निशीथ, उ. ६-७ में ब्रह्मचर्य महाव्रत मे अतिचार एवं अनाचार लगाने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है और यहाँ केवल आचार्य आदि पदवियाँ न देने के रूप मे प्रायश्चित्त कहे गये हैं। इसका क्या अर्थ है?

समाधान है–

मैथुन–सेवन करने वाले को निशीथसूत्रोक्त गुरुचौमासी प्रायश्चित्त तो आता ही है; साथ ही वह तीन वर्ष या उससे अधिक वर्ष अथवा जीवनभर के लिए आचार्यादि पद के अयोग्य हो जाता है, यह इन सूत्रो में विशेष रूप से कहा गया है।

जो भिक्षु सयम–वेश मे रहते हुए स्त्री के साथ एक बार या अनेक बार मैथुन–सेवन कर लेता है तो वह आचार्य आदि पदो के योग्य गुणों से सम्पन्न होते हुए भी कम से कम तीन वर्ष तक पद धारण करने के अयोग्य हो जाता है। मैथुन–सेवन के बाद या प्रायश्चित्त से शुद्धि कर लेने के पश्चात् सर्वथा मैथुन भाव से निवृत्त हो जाता है और तीन वर्ष पर्यन्त वह निष्कलंक जीवन व्यतीत करता है, तो उस भिक्षु की अपेक्षा से यह जघन्य मर्यादा है।

आचार्य, उपाध्याय या गणावच्छेदक आदि गच्छ में एव समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठित होते हैं तथा ये अन्य साधु–साध्वियो के लिए आदर्श रूप होते हैं। पद पर प्रतिष्ठित होने से इन पर जिनशासन का विशेष दायित्व होता है। उपलक्षण से इन तीन के अतिरिक्त प्रवर्त्तक, प्रवर्तिनी आदि पदों के लिए भी समझ लेना चाहिए।

इन पदवीधरो के द्वारा पद पर रहते हुए मैथुन–सेवन करना अक्षम्य अपराध है। संघ की विशेष हीलना होती है। अत· बिना किसी विकल्प के जीवनभर वे किसी भी पद को धारण नहीं कर सकते। पद–प्राप्ति की अर्हता मे यह विशेष नैतिक मर्यादा है।

इससे तथा आचारागसूत्र मे कथित विधानो से यह भी स्पष्ट होता है कि दीक्षा लेने के पश्चात् मोह की प्रबलतावश यदि कोई ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सके तो उसे साधु–जीवन को व सघ को कलंकित करने के बजाय गृहस्थ–जीवन अपनाकर धर्माराधना करना श्रेयस्कर है।

प्रस्तुत सूत्र मे आए उद्दिसित्तए और धारित्तए; इन दो पदो का आशय यह है कि अब्रह्मसेवी भिक्षु को पद पर नियुक्त नहीं करना चाहिए और यदि जानकारी के अभाव मे कोई उसको पद पर नियुक्त कर भी दे तो स्वय उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। यह उसका भी कर्त्तव्य है।

Elaboration—A question arises–In *Nısheeth Sutra, Uddeshak* 6 to 7, it is stated that one who commits a mınor (*atıchar*) or major fault (*anachar*) in his major vow of celibacy, he shall be liable for *guru–chaumasi prayashchit* (reduction in period of monkhood) but here the *prayashchit* mentioned is only of offering or not offering the post of *Acharya* and others. Why is it so ?

Clarification is as under—

A monk who engages in sex is liable for *guru–chaumasi prayashchit* as mentioned in *Nisheeth Sutra.* Simultaneously he becomes unfit for the posts of *Acharya* and others for a period of three years or more or for the entire life (as detailed above). This has been specially mentioned in these aphorisms.

A *bhikshu* in ascetic uniform engages in sex with a woman once or many times. In view of it he becomes unfit for holding the post of

Acharya and others for at least a period of three years even if he possesses all other characteristics necessary for such posts. In case after engaging in sex and undergoing *prayashchit* for cleansing his sin he totally discards sexual instinct, and spends faultless life for a period of three years, then this is the minimum period of restriction in the context of that *bhikshu*.

Acharya, Upadhyaya or *ganavachhedak* command a very great respect in the group (*gachh*) and in the society. They are ideal for other monks and nuns. They have a great responsibility of administration in the order of *Jinas* in view of the post they hold. As a corollary, it should also be understood in respect of posts other than the said three namely those of *pravartak, pravartini* and others.

The sin of sex committed by them while holding such posts is such which cannot be pardoned So without any exception, they cannot hold any post throughout life. This is a special ethical requirement in consonance with the desired post.

It is evident from it and from the provision in *Acharanga Sutra* that after initiation in monkhood, in case an ascetic cannot practice the major vow of *brahmcharya* due to strong instinct of attachment (or delusion), it is better for him to adopt the life of a householder and practice *Dharma* as such rather than bringing bad name to the life of monkhood and the organisation as a whole

The words **uddisithiye** and **dharithiye** in the present aphorism mean that a *bhikshu* who engages in sex should not be appointed on a post and in case due to lack of such knowledge, some such monk is appointed on a post, he should not accept it. It is also one of his duties.

संयम त्यागकर जाने वाले को पद के विधि-निषेध

PROCEDURE OF APPOINTING OR NOT A MONK AT A POST WHO LEFT AFTER LEADING ASCETIC LIFE

१८. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं वीइक्कंतेहिं चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स, उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१९. गणावच्छेइए य गणावच्छेइयत्तं अनिक्खिवित्ता ओहाएज्जा, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२०. गणावच्छेइए य गणावच्छेइयत्तं निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं वीइक्कंतेहि, चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स, उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२१. आयरिय-उवज्झाए य आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२२. आयरिय-उवज्झाए य आयरिय-उवज्झायत्तं निक्खिवित्ता ओहाएज्जा, तिण्णि संवच्छराणि तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

तिहिं संवच्छरेहिं वीइक्कंतेहि चउत्थगंसि संवच्छरंसि पट्ठियंसि ठियस्स, उवसंतस्स, उवरयस्स, पडिविरयस्स, निव्विगारस्स एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१८. यदि कोई **भिक्षु गण एवं संयम का परित्याग करके** और वेश को छोडकर के चला जाए और बाद मे पुनः दीक्षित हो जाए तो उसे उक्त कारण से तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथे वर्ष मे प्रवेश करने पर यदि वह उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत और निर्विकार हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना तथा धारण करना कल्पता है।

१९. यदि कोई **गणावच्छेदक अपना पद छोड़े बिना सयम** का परित्याग करके और वेश छोडकर चला जाए और बाद मे पुन. दीक्षित हो जाए तो उसे उक्त कारण से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

२०. यदि कोई **गणावच्छेदक अपना पद छोड़कर** तथा संयम का परित्याग करके और वेश छोडकर चला जाए और बाद मे पुन. दीक्षित हो जाए तो उसे उक्त कारण से तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथे वर्ष मे प्रवेश करने पर यदि वह उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत और निर्विकार हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

२१. यदि कोई **आचार्य या उपाध्याय अपना पद छोड़े बिना** सयम का परित्याग करके और वेश छोड़कर चला जाए और बाद में पुनः दीक्षित हो जाए तो उसे उक्त कारण से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

२२. यदि कोई **आचार्य या उपाध्याय अपना पद छोड़कर के** तथा सयम और वेश का परित्याग करके चला जाए और बाद में पुनः दीक्षित हो जाए तो उसे उक्त कारण से तीन वर्ष पर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर और चौथे वर्ष में प्रवेश करने पर यदि वह उपशान्त, उपरत, प्रतिविरत और निर्विकार हो जाए तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

18. A *bhikshu* leaves after discarding the ascetic life, the ascetic uniform and his group (*gana*). Later he again gets initiated in monkhood. Then due to these facts, he can neither be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for a period of three years nor he can hold any such post during the said period.

After the expiry of three years and the start of the fourth year, if he becomes subdued in passions or free from them, despises the life of non-restraint and becomes faultless, he can be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* and he can hold such post.

19. A *ganavachhedak* without resigning his post leaves the ascetic life and ascetic uniform. Later he again gets initiated in monkhood. He, in view of his above-said act, cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout his life nor he can hold any such post during his life.

20. A *ganavachhedak*, after resigning his post discards ascetic life and ascetic dress and goes away. Sometime later he again gets initiated in monkhood. Then due to these facts he cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for a period of three years nor he can hold any such post during the said period.

After the expiry of three years and the beginning of the fourth year, if his passions subside and he becomes free from them and starts despising life of non-restraint and becomes void of faulty attitude, he can be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* or he can hold such post.

21. An *Acharya* or *Upadhyaya* without resigning his post leaves the ascetic life and ascetic dress. Sometime later he again gets initiated in monkhood Then in view of the said facts he cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout his life nor he can hold such post.

22. An *Acharya* or *Upadhyaya*, after resigning his post discards his ascetic life and ascetic uniform and goes away. Sometime later, he again gets initiated in monkhood. Then in view the said facts, he cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for a period of three years nor he can hold any such post during that period.

After the expiry of three years and the beginning of the fourth year, if he becomes quiet, free of passions, faultless and one having hatred toward life of non-restraint, he can be appointed to the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* or he can hold such post.

विवेचन : भाष्यकार ने लिखा है–संयम के त्यागने में परीषह या उपसर्ग आदि कई कारण हो सकते हैं। ब्रह्मचर्य और महाव्रत पालन की अक्षमता का भी कारण हो सकता है। अथवा गण में परस्पर कलह आदि कारण से भी कोई छोड सकता है।

किसी भी कारण से संयम त्यागने वाला यदि पुन दीक्षा ग्रहण करे तो उसे भी तीन वर्ष तक या जीवनपर्यन्त पदवी नहीं देने का वर्णन यह सूचित करता है कि जिसने जीवनपर्यन्त के लिए ग्रहीत व्रतों का भंग करके अपनी विश्वसनीयता तथा व्रतनिष्ठा तोड दी है, वह गण में पुनः पद धारण करने के योग्य नहीं है।

Elaboration—The commentator states that their can be many causes namely troubles and turbulations in ascetic life inspiring one to leave the life of ascetic discipline. The cause may also be incapability in meticulously practicing the vow of *brahmcharya* or any other major vow. Someone may leave the ascetic life due to internal dispute in the group and the like.

In case of a monk who gives up ascetic life due to any reason and again gets initiated after some time, the clause that he cannot be appointed on any post for a period of three years or throughout life indicates that the person who had accepted major vow for the whole life has lost his reliability and faith in the vows by breaking the said vows. He is no longer suitable to hold a post in the organisation (*gana*).

पापजीवी बहुश्रुतों को पद देने का निषेध **PROHIBITION OF GIVING POST TO SINFUL BAHUSHRUTS**

२३. भिक्खु य बहुस्सुए बब्भागमे बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२४. गणावच्छेइए य बहुस्सुए बब्भागमे बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२५. आयरिय-उवज्झाए य बहुस्सुए बब्भागमे बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२६. बहवे भिक्खुणो बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तेसिं तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२७. बहवे गणावच्छेइया बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तेसिं तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२८. बहवे आयरिय-उवज्झाया बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी, जावज्जीवाए तेसिं तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२९. बहवे भिक्खुणो बहवे गणावच्छेया बहवे आयरिय-उवज्झाया बहुस्सुया बब्भागमा बहुसो बहुआगाढागाढेसु कारणेसु माई मुसावाई, असुई, पावजीवी जावज्जीवाए तेसिं तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

२३. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ भिक्षु अनेक प्रगाढ़ कारणों के उपस्थित होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोले या अपवित्र पापाचरणो से जीवन व्यतीत करे तो उसे उक्त कारणो से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२४. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ गणावच्छेदक अनेक प्रगाढ़ कारणों के उपस्थित होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोले या अपवित्र पापाचरणो से जीवन व्यतीत करे तो उसे उक्त कारणों से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२५. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ आचार्य या उपाध्याय अनेक प्रगाढ कारणों के होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोले या अपवित्र पापाचरणों से जीवन व्यतीत करे तो उसे उक्त कारणों से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२६. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ अनेक भिक्षु अनेक प्रगाढ कारणो के होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोले या अपवित्र पापाचरणो से जीवन व्यतीत करे तो उन्हें उक्त कारणों से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२७. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ अनेक गणावच्छेदक अनेक प्रगाढ कारणों के होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोलें या अपवित्र पापाचरणों से जीवन व्यतीत करें तो उन्हें उक्त कारणो से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२८. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ अनेक आचार्य, उपाध्याय अनेक प्रगाढ कारणो के होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोलें या अपवित्र पापाचरणो से जीवन व्यतीत करें तो उन्हे उक्त कारणों से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

२९. बहुश्रुत, बहुआगमज्ञ अनेक भिक्षु, अनेक गणावच्छेदक या अनेक आचार्य, उपाध्याय बहुत से प्रगाढ़ कारणों के होने पर यदि बार-बार मायापूर्वक मृषा बोले या अपवित्र पापाचरणों से जीवन व्यतीत करें तो उन्हें उक्त कारणों से यावज्जीवन आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

23. A *bhikshu* who is well-read in scriptures and *Agams* tells lies in a deceptive manner again and again or leads the ascetic life in a faulty way when several hard situations arise. Then due to such a conduct, it is

not allowed to offer him the post of *Acharya* up to *ganavachedak* throughout his life nor can he hold any such post.

24. A *ganavachhedak* who is well-read in scriptures and *Agams* tells lies in a deceitful manner again and again or leads the ascetic life in a faulty state in many hard situations. Then due to such a conduct, it is not allowed to offer him the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout his life nor can he hold any such post.

25. An *Acharya* or *Upadhyaya* who is highly learned in scriptures and *Agams* tell lies in deceitful manner frequently or leads the ascetic life in unclean sinful state Then due to the said facts, he cannot be appointed to the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout life nor can he hold any such post.

26. Many *bhikshus* who are learned in scriptures and *Agams* tell lies in a deceitful manner repeatedly in several hard situations or lead an unclean ascetic conduct in a sinful manner. Then because of these facts, they cannot be appointed on the post of *Acharya* upto *ganavachhedak* nor can they hold any such post throughout life.

27. Many *ganavachhedaks* who are all learned in scriptures and Agams tell lie in a deceitful manner repeatedly in several hard situations or lead an unclean sinful ascetic life. Then because of these facts they can neither hold the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* nor any such a post can be offered to them throughout life.

28. Many *Acharyas* or *Upadhyayas* who are all learned in scriptures and *Agams*, due to several hard reasons speak falsely in a deceitful manner again and again or lead an unclean sinful ascetic life. Then due to the said facts, they can neither hold post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout their life nor any such post can be offered to them.

29. Many scholarly *bhikshus*, *ganavachhedaks*, *Acharyas*, *Upadhyayas* due to several strong reasons utter falsely in a deceitful manner again and again or lead an unclean sinful ascetic life. Then due to the said facts they can neither hold the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout their life nor can they be offered any such post.

विवेचन : इन सूत्रों में प्रयुक्त बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ विशेषणों का तात्पर्य यह है कि बहुश्रुत भिक्षु जिनशासन के जिम्मेदार व्यक्ति होते हैं। इनके द्वारा बडे दोषों का सेवन जिनशासन की अत्यधिक अवहेलना का कारण होने से उनकी भूल अक्षम्य होती है, जिससे उन्हे प्रायश्चित्त रूप में जीवनभर के लिए धर्मशासन के पद

से मुक्त रखने का विधान किया गया है। अतः इन सूत्रों में कहे गये आचरणों को करने वाले बहुश्रुत भिक्षु आदि को जीवनभर आचार्य यावत् गण-प्रमुख बनकर विचरण करने का कोई अधिकार नहीं रहता है। अल्पज्ञ और अल्पश्रुत भिक्षु तो इन पदवियों के योग्य भी नहीं होता। अतः उनके लिए इस विधान की आवश्यकता ही नहीं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है, अल्पज्ञ व अल्पश्रुत की अपेक्षा आगमज्ञ का दोष-सेवन अधिक अब ही निंदा का कारण बनता है।

सूत्र में 'बहुत बार' और 'बहु आगाढ़ कारण' इन दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतः एक बार उक्त आचरण करने पर यह सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नहीं आता है, किन्तु उसे केवल तप प्रायश्चित्त ही दिया जाता है। बहु आगाढ़ अर्थात् अनेक प्रबल कारणों के बिना ही यदि उक्त भिक्षु इन दोषों का सेवन करे तो उसे दीक्षा-छेद रूप प्रायश्चित्त आता है।

सारांश यह है कि अनेक बार दोष-सेवन करने पर और अनेक प्रगाढ़ कारण होने पर ही यह प्रायश्चित्त समझना चाहिए।

पूर्व के १३ से २२ दस सूत्रों मे भी आचार्य आदि पदवी के सम्बन्ध मे प्रायश्चित्त रूप विधि-निषेध किये गये है और इन २३-२९ सात सूत्रों मे भी यही वर्णन है। दोनो के कथन मे अन्तर यह है कि वहाँ ब्रह्मचर्य-भंग या वेश त्यागने की अपेक्षा से वर्णन है और यहाँ प्रथम, द्वितीय या पंचम महाव्रत सम्बन्धी दोषो की अपेक्षा वर्णन है। अर्थात् जो भिक्षु झूठ, कपट, प्रपच, दूसरो के साथ धोखा, असत्य दोषारोपण आदि आचरणो का बार-बार सेवन करता है या तन्त्र, मन्त्र आदि से किसी को कष्ट देता है अथवा विद्या, मन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक कर्म आदि का प्ररूपण करता है, ऐसे भिक्षु को सूत्र मे "पापजीवी" कहा है। वह कलुषित चित्त और कुशील आचार के कारण सभी प्रकार की प्रमुखता या पदवी के सर्वथा अयोग्य हो जाता है।

॥ तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The meaning of the adjectives *bahushrut* and *bahu Agamajna* used in these aphorisms is that *bahushrut* (learned in scriptures) *bhikshus* are considered responsible persons in the order of *Jinas*. Any major fault committed by them brings on extremely bad name to the organization. So their fault cannot be pardoned. As such, in the form of *prayashchit* a provision has been made in the code that they shall be disallowed throughout their life any post in the spiritual order. Therefore the learned *bhikshus* who lead a way of life as mentioned in these aphorisms have no right to be *Acharya* up to head of a group throughout their ascetic life. A *bhikshu* who has scanty knowledge of scriptures or *Agams* is obviously not fit for such posts. So there is no need of any such provision in the code for them. Another reason can be that the faulty conduct of scholarly monk is more condemnable than that of one who has very little knowledge of scriptures and *Agams*.

In the aphorism the words *'bahut baar'* and *'bahu agadh kaaran'* have been used. So one is not liable for said *prayashchit* if he commits

the fault only once In that case he is awarded only *prayshchit* austerities. *Bahu Agadh* means without strong reasons. If the said *bhikshu* without strong reasons commits said faults he is liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood (*Diksha Chhed*).

In brief, this *prayashchit* is applicable only when sin is committed repeatedly and there are strong reasons for such a conduct.

In the earlier ten aphorisms namely aphorism 13 to 22, there are provisions of *prayashchit* relating to the post of *Acharya* and others whether to allow them or not. Again in seven aphorisms 23 to 29, the same thing has been discussed. The difference in the two versions is that the earlier narration is in the context of breaking the vow of *brahmcharya* or discarding the ascetic dress while in the later seven aphorisms it is in the context of faults committed in practicing first, second or fifth major vows (*Mahavrat*) In other words a *bhikshu* who tells lies, adopts crooked behaviour, deceives others or levels false allegations and behaves in such a manner repeatedly he is called '*paap-jeevi*' in this aphorism. He, because of his polluted mind and bad conduct, is totally unfit for all types of headship or posts.

● THIRD UDDESHAK CONCLUDED ●

चतुर्थ उद्देशक
FOURTH UDDESHAK

आचार्यादि के साथ रहने वाले निर्ग्रन्थों की संख्या NUMBER OF NIRGRANTHS WITH ACHARYA AND OTHERS

१. नो कप्पइ आयरिय-उवज्झायस्स एगाणियस्स हेमंत-गिम्हासु चारए।

२. कप्पइ आयरिय-उवज्झायस्स अप्पबिइयस्स हेमंत-गिम्हासु चारए।

३. नो कप्पइ गणावच्छेइयस्स अप्पबिइयस्स हेमंत-गिम्हासु चारए।

४. कप्पइ गणावच्छेइयस्स अप्पतइयस्स हेमंत-गिम्हासु चारए।

१. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में आचार्य या उपाध्याय को अकेला विहार करना नहीं कल्पता है।

२. (किन्तु) आचार्य या उपाध्याय को एक साधु को साथ लेकर विहार करना कल्पता है।

३. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में गणावच्छेदक को एक साधु के साथ विहार करना नहीं कल्पता है।

४. (किन्तु) दो अन्य साधुओं को साथ लेकर विहार करना कल्पता है।

1. An *Acharya* or *Upadhyaya* is not allowed to move alone in summer or winter.

2. An *Acharya* or *Upadhyaya*, however, can wander in the company of one monk.

3. A *ganavachhedak* is not allowed to wander alone in summer or winter.

4. He however, can wander with two monks.

५. नो कप्पइ आयरिय-उवज्झायस्स अप्पबिइयस्स वासावासं वत्थए।

६. कप्पइ आयरिय-उवज्झायस्स अप्पतइयस्स वासावासं वत्थए।

७. नो कप्पइ गणावच्छेइयस्स अप्पतइयस्स वासावासं वत्थए।

८. कप्पइ गणावच्छेइयस्स अप्पचउत्थस्स वासावासं वत्थए।

५. वर्षाकाल में आचार्य या उपाध्याय को एक साधु के साथ रहना नहीं कल्पता है।

६. (किन्तु) उनको अन्य दो साधुओं के साथ रहना कल्पता है।

७. वर्षाकाल में गणावच्छेदक को दो साधुओं के साथ रहना नहीं कल्पता है।

८. (किन्तु) अन्य तीन साधुओ के साथ रहना कल्पता है।

5. An *Acharya* or *Upadhyaya* is not allowed to spend ascetic life with only one monk in rainy season.

6. He, however, can pass that period in the company of two monks.

7. A *ganavachhedak* is not allowed to pass ascetic life with only two monks in rainy season

8. He, however, can pass that period in the company of three monks.

९. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा बहूणं आयरिय-उवज्झायाणं अप्पबिइयाणं, बहूणं गणावच्छेइयाणं अप्पतइयाणं कप्पइ हेमंत-गिम्हासु चारए, अन्नमन्नं निस्साए।

१०. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा बहूणं आयरिय-उवज्झायाणं अप्पतइयाणं, बहूणं गणावच्छेइयाणं अप्पचउत्थाणं कप्पइ वासावासं वत्थए अन्नमन्नं निस्साए।

९. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे अनेक आचार्यों या उपाध्यायो को ग्राम यावत् राजधानी मे अपनी-अपनी निश्रा मे एक-एक साधु को और अनेक गणावच्छेदकों को दो-दो साधुओं को रखकर विहार करना कल्पता है।

१०. वर्षा ऋतु मे अनेक आचार्यों या उपाध्यायो को ग्राम यावत् राजधानी मे अपनी-अपनी निश्रा मे दो-दो साधुओ को और अनेक गणावच्छेदको को तीन-तीन साधुओ को रखकर रहना कल्पता है।

9. In summer and winter, many *Acharyas* and *Upadhyayas* can wander in village up to capital having one monk each under their charge and *ganavachhedaks* are allowed to wander with two monks each under their charge

10. In rainy season, many *Acharyas* or *Upadhyayas* can wander in villages up to capital having two monks each under their charge and *ganavachhedaks* are allowed to wander with three monks each.

विवेचन : साधु के विहार के सम्बन्ध मे सामान्यत आगमो मे यह विधान है कि अव्यक्त (नवदीक्षित) तथा अपरिपक्व अल्प दीक्षा-पर्याय वाले अनुभवहीन तथा अल्प आगमज्ञ साधु को स्वतंत्र एकाकी विचरण नही करना चाहिए। उसके स्वतत्र विचरण के अनेक दुष्परिणामो का उल्लेख भी आचारांग १/५/४ मे तथा सूत्रकृताग १/१४/३-४ मे मिलता है। साथ ही यह भी वर्णन है कि व्यक्त, परिपक्व तथा गीतार्थ भिक्षु चाहे तो अनेक प्रकार की प्रतिमाएँ, जिनकल्प की साधना तथा चित्त-समाधि व सयम-समाधि के लिए एकलविहार कर सकता है।

प्रस्तुत सूत्रो मे आचार्य, उपाध्याय तथा गणावच्छेदक के लिए विशेष विधान है कि ये तीनों पद गण के जिम्मेदार पद है तथा आचार्य आदि बाह्य-आभ्यन्तर ऋद्धि-सम्पन्न होते है। इन पदवीधरों का गण मे विशेष महत्त्व होता है तथा संघ व समाज मे भी इनसे विशेष प्रभावना होती है। अत उनकी गरिमा की दृष्टि से आचार्य-उपाध्याय को शेष काल में कम से कम दो ठाणा, चातुर्मास काल में तीन ठाणा तथा गणावच्छेदक को शेष काल मे तीन ठाणा व चातुर्मास काल में कम से कम चार ठाणा के साथ रहना चाहिए।

सूत्र ९-१० मे यह भी कहा है कि कहीं अनेक आचार्य-उपाध्याय साथ हों तब भी प्रत्येक आचार्य-उपाध्याय तथा गणावच्छेदक को अपनी-अपनी निश्रा में शास्त्र-कथित मर्यादा के अनुसार स्वतंत्र रूप मे साधुओं के साथ रखना चाहिए।

आचार्य-उपाध्याय संघ के प्रतिष्ठित पदवीधर होते हैं तथा गणावच्छेदक आचार्य के नेतृत्व मे कार्यवाहक का काम करते हैं। अत. उनकी प्रतिष्ठा व शोभा की दृष्टि से साथ ही सेवा व व्यवस्था की दृष्टि से यह विधान किया गया है। *(व्यवहार भाष्य)*

Elaboration—About the wandering of a Jain monk, generally the provisions in *Agams* is that a newly initiated (*avyakt*) monk and an inexperienced monk with a very small period of monkhood or a monk who has only a very little knowledge of *Agams* should not wander alone independently. We find description of many bad results of their independent wanderings in *Acharanga* 1/5/4 and in *Sutra Kritanga* 1/14/3–4. Simultaneously, it has been mentioned that a monk who is well-read, experienced and of transparent conduct can wander alone for practice of various types of austerities (*pratimas*), practice of *Jin-kalp* conduct and for equanimity of mind and equanimity in ascetic discipline.

In the present aphorisms, there is a special provision for *Acharya*, *Upadhyaya* and *ganavachhedak* that these three are responsible posts in the *gana* (group) The *Acharya* and the others possess outer and inner wealth. The holders of these posts have a great importance in the group (*gana*) and the *sangha*, and the society flourishes under their patronage. Therefore, in view of their status, an *Acharya* should stay with at last two monks in the normal period and with three monks in the rainy season (the period of *chaturmas*) while *ganavachhedak* can stay with a least three monks in the normal period and with four monks during *chaturmas*.

In aphorisms 9 and 10 it is further classified that in case many *Acharyas* and *Upadhyayas* are staying together, then each and every *Acharya, Upadhyaya* and *ganavachhedak* should keep with him at least the minimum number of monks separately as laid down in the code.

Acharyas and *Upadhyayas* hold the most honourable position in the spiritual organization (*Sangha*) while *ganavachhedaks* perform their duties under the overall charge of *Acharya*. So this provision is made in the code keeping in view their status and their importance.

अग्रणी साधु के काल करने पर शेष साधुओं का कर्त्तव्य DUTIES OF MONKS AT THE DEATH OF A SENIOR

११. गामाणुगामं दूइज्जमाणे भिक्खू जं पुरओ कट्टु विहरइ, से य आहच्च वीसुंभेज्जा, अत्थि य इत्थ अण्णे केइ उवसंपज्जणारिहे से उवसंपज्जियव्वे।

नत्थि य इत्थ अण्णे केइ उवसंपज्जणारिहे तस्स य अप्पणो कप्पाए असमत्ते कप्पइ एगाराइयाए पडिमाए जण्णं-जण्णं दिसं अण्णे साहम्मिया विहरंति तण्णं-तण्णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा–"वसाहि अज्जो ! एगरायं वा, दुरायं वा", एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ से संतरा छेए वा परिहारे वा।

१२. वासावासं पज्जोसविओ भिक्खू जं पुरओ कट्टु विहरइ से य आहच्च वीसुंभेज्जा, अत्थि य इत्थ अण्णे केइ अवसंपज्जणारिहे से उवसंपज्जियव्वे।

नत्थि य इत्थ अण्णे केइ उवसंपज्जणारिहे तस्स य अप्पणो कप्पाए असमत्ते कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए जण्णं–जण्णं दिसं अण्णे साहम्मिया विहरंति तण्णं–तण्णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठयंसि परो वएज्जा–"वसाहि अज्जो ! एगरायं वा, दुरायं वा" एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए, नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जे तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

११. भिक्षु, जिनको प्रमुख मानकर ग्रामानुग्राम विहार कर रहा हो और वह (प्रमुख) यदि कालधर्म–प्राप्त हो जाय तो शेष भिक्षुओ में जो भिक्षु योग्य हो, उसकी निश्रा में रहना चाहिए।

यदि अन्य कोई भिक्षु नेतृत्व करके योग्य न हो और स्वय (रत्नाधिक) ने भी कल्प–आचारप्रकल्प का अध्ययन पूर्ण न किया हो तो उसे मार्ग मे विश्राम के लिए एक रात्रि ठहरते हुए जिस दिशा में अन्य स्वधर्मी विचरतें हों, उस दिशा मे जाना चाहिए। मार्ग मे उसे विचरने के लक्ष्य से ठहरना नही चाहिए। यदि रोगादि का कारण हो तो अधिक ठहर सकता है।

रोगादि के समाप्त होने पर यदि कोई कहे कि "हे आर्य ! एक या दो रात और ठहरो।" वह एक या दो रात ठहर सकता है, किन्तु एक या दो रात से अधिक ठहरना नही चाहिए। जो भिक्षु वहाँ (कारण समाप्त होने के बाद) एक या दो रात से अधिक ठहरता है, वह मर्यादा–उल्लघन के कारण दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

१२. भिक्षु, जिनको प्रमुख मानकर वर्षावास में रह रहा हो और वह यदि कालधर्म–प्राप्त हो जाय तो शेष भिक्षुओं में जो भिक्षु योग्य हो उसकी निश्रा मे रहना चाहिए।

यदि अन्य कोई भिक्षु योग्य न हो और स्वयं (रत्नाधिक) ने भी आचारप्रकल्प का अध्ययन पूर्ण न किया हो तो उसे मार्ग में विश्राम के लिए एक–एक रात्रि ठहरते हुए जिस दिशा मे अन्य स्वधर्मी हो उस दिशा में जाना चाहिए। मार्ग मे उसे विचरने के लक्ष्य से नहीं ठहरना चाहिए। यदि रोगादि का कारण हो तो अधिक ठहर सकता है।

रोगादि के समाप्त होने पर यदि कोई कहे कि "हे आर्य ! एक या दो रात ठहरो।" तो एक या दो रात और ठहर सकता है। किन्तु एक या दो रात से अधिक ठहरना नहीं कल्पता है। जो भिक्षु एक या दो रात से अधिक ठहरता है, वह मर्यादा–उल्लंघन के कारण दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

11. Jain monks wander from village to village under the supervision of the head monk. In case the head monk dies, the other monks should move under the charge of that monk (out of them) who is capable to guide them.

In case no other monk is capable to lead them and the said monk has also not completed his study of *Kalp* (*Brihat-kalp sutra*), he should go in the direction in which other monks of the same order are staying spending the night on the way when necessary for rest. He should not stay in the way for propagating the faith but in case he falls sick, he can stay for longer period.

If after the illness is cured, someone requests him—"O the blessed ! Kindly stay for one or two nights more". Then he can stay for one or two nights more. But he is not allowed to stay beyond that period. If a *bhikshu* stays for a longer period than one or two nights (after the illness is totally cured) he is liable for *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities as he has ignored the limits laid down in the code.

12. In case during *chaturmas*, the *bhikshu* under whose leadership the other *bhikshus* are passing their ascetic life dies they should stay under the leadership of that *bhikshu* (out of them) who is capable to lead them.

In case no such *bhikshu* is available and the senior *bhikshu* has not yet completed his study of *Acharkalp*, he should go in the direction in which other monks of his faith are staying spending a night each for rest where necessary. He should not stay in the way for the purpose of spreading the faith but in case of illness and the like, he can stay for a longer period.

In case after the illness and the like no longer exists, someone requests him—"O the blessed ! Kindly stay for a day or two more", he can stay for one or two day more. But he should not stay beyond that period Any *bhikshu* who stays beyond one or two nights, he is liable for *prayashchit* of reduction in the period of ascetic life (*Diksha Chhed*) or *prayashchit*-austerities as he has transgressed the limits.

विवेचन : प्रस्तुत दोनो सूत्रों का भाव यह है कि विचरण करने वाले या चातुर्मास करने वाले साधुओ को सदा ही एक गीतार्थ व योग्य संघाड़ा-प्रमुख जिसे कल्पाक अर्थात् 'गणधर' भी कहा जाता है, उनकी निश्रा मे ही रहना चाहिए। यदि संघाडा-प्रमुख कालधर्म को प्राप्त हो जाय और अन्य शेष साधुओ मे कोई श्रुत-सम्पन्न प्रमुख पद धारण करने योग्य न हो तो चाहे चातुर्मास काल ही क्यो न हो, जिस क्षेत्र में योग्य साधर्मिक गीतार्थ भिक्षु हों उनके निकट पहुँच जाना चाहिए। मार्ग मे भी एक या दो रात विश्रांति लेने के लिए रुक सकते है, उससे अधिक नही।

इसका सार यही है कि योग्य नेतृत्व के अभाव में अगीतार्थ भिक्षुओ को अधिक दिन स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।

Elaboration—The central idea of these two aphorisms is that the monks who wander about spreading the mission or who are staying for *Chaturmas* should always do so under the effective supervision of an experienced monk or the monk heading the group who is also called *Kalpak* or *Gandhar*. In case the head monk dies and no other among the remaining monks is so much learned in scriptures and capable as to hold the post of headship, then even during *Chaturmas* they should go in the direction in which capable *bhikshu* of the same order is staying. On the way he can stay for one or two nights for rest as necessary but not beyond that.

The central idea is that *bhikshus* who are not experienced and well-read in scriptures (*ageetarth*) should not stay independently in the absence of suitable and capable leadership

ग्लान आचार्यादि के द्वारा पद देने का निर्देश

DIRECTION OF HANDING OVER ONE'S POST BY ACHARYA AND OTHERS IN CASE OF ILLNESS

१३. आयरिय-उवज्झाए गिलायमाणे अन्नयरं वएज्जा-"अज्जो ! ममंसि णं कालगयंसि समाणंसि अयं समुक्कसियव्वे।" से य समुक्कसणारिहे समुक्कसियव्वे, से य नो समुक्कसणारिहे नो समुक्कसियव्वे,

अत्थि य इत्थ अण्णे केइ समुक्कसणारिहे से समुक्कसियव्वे। नत्थि य इत्थ अण्णे केइ समुक्कसणारिहे से चेव समुक्कसियव्वे, तंसि च णं समुक्किट्ठंसि परो वएज्जा-"दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जो ! निक्खिवाहि !" तस्स णं निक्खिवमाणस्स नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा।

जे साहम्मिया अहाकप्पेणं नो उट्ठाए विहरंति सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा।

१३. रोगग्रस्त आचार्य या उपाध्याय किसी प्रमुख साधु से कहे कि "हे आर्य ! मेरे कालधर्म प्राप्त होने पर अमुक साधु को मेरे पद पर स्थापित करना।" यदि आचार्य द्वारा निर्दिष्ट वह भिक्षु उस पद पर स्थापन करने योग्य हो तो उसे स्थापित करना चाहिए। यदि वह उस पद पर स्थापन करने योग्य न हो तो उसे स्थापित नहीं करना चाहिए।

यदि संघ में अन्य कोई भी साधु उस पद के योग्य हो तो उसे स्थापित करना चाहिए। यदि संघ में अन्य कोई भी साधु उस पद के योग्य न हो तो आचार्य द्वारा निर्दिष्ट साधु को ही उस पद पर स्थापित कर देना चाहिए। उसको उस पद पर स्थापित करने के बाद कोई गीतार्थ साधु कहे कि "हे आर्य ! तुम इस पद के योग्य नही हो। अतः इस पद को छोड़ दो।" (ऐसा कहने पर) यदि वह उस पद को छोड़ दे तो दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र नहीं होता है।

जो साधर्मिक साधु कल्प के अनुसार उसे आचार्यादि पद छोड़ने के लिए न कहे तो वे सभी साधर्मिक साधु उक्त कारण से दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

13. An *Acharya* or *Updahyaya* during the course of his illness tells a senior monk—"O the blessed ! You appoint such and such monk on my post when, I die." Then that *bhikshu* should be appointed on that post if he is fit for holding that post. If he is not fit for that post, he should not be appointed as such

In case some other monk in the organization is capable for that post, he should be appointed If after his appointment as such on that post, a learned (*geetarth*) monk says—"O the blessed ! You are not fit for this post. So you should resign this post," and he leaves that post accordingly; then he is not liable for any *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities.

Those monks of the same order who do not ask him to leave the post of *Acharya* and others as provided in the *kalp*, are all liable for *prayashchit* of reduction in ascetic period or *prayashchit*-austerities.

विवेचन : रुग्ण अवस्था मे किसी आचार्य ने अपना अन्तिम समय निकट जानकर गण के प्रमुख साधुओ को आचार्य बनाने के लिए जिसके नाम का निर्देश किया है, वह योग्य भी हो सकता है और अयोग्य भी हो सकता है। अर्थात् उनका कथन रुग्ण होने के कारण या अन्यथा भाव के कारण सकुचित दृष्टिकोण वाला भी हो सकता है। अत उनके कालधर्म प्राप्त हो जाने पर "आचार्य या उपाध्याय पद किसको देना"-इसके निर्णय की जिम्मेदारी गच्छ के शेष साधुओ की होती है, जिसका भाव यह है कि यदि आचार्य-निर्दिष्ट श्रमण तीसरे उद्देशक (सूत्र १-८) मे कही गई सभी योग्यताओ से युक्त है तो उसे ही पद पर नियुक्त करना चाहिए, दूसरा कोई विकल्प आवश्यक नही है। यदि वह शास्त्रोक्त योग्यता से सम्पन्न नही है और गण के अन्य श्रमण योग्य हैं तो आचार्य-निर्दिष्ट श्रमण को पद देना अनिवार्य न समझकर उस योग्य श्रमण को ही पद पर नियुक्त करना चाहिए।

यदि अन्य कोई भी योग्य नही है तो आचार्य-निर्दिष्ट श्रमण योग्य हो अथवा योग्य न भी हो, तथापि उसे ही आचार्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। कदाचित् अन्य अनेक श्रमण भी पद के योग्य है और वे आचार्य-निर्दिष्ट श्रमण से रत्नाधिक भी है किन्तु यदि आचार्य-निर्दिष्ट श्रमण योग्य है तो प्राथमिकता की दृष्टि से उसे ही आचार्य बनाना चाहिए।

आचार्य-निर्दिष्ट या अनिर्दिष्ट किसी भी योग्य श्रमण को अथवा कभी परिस्थितिवश अल्प योग्यता वाले श्रमण को पद पर नियुक्त करने के बाद यदि यह अनुभव हो कि गच्छ की व्यवस्था अच्छी तरह नही चल रही है, साधुओ की सयम-समाधि एवं बाह्य वातावरण क्षुब्ध हो रहा है, गच्छ मे अन्य योग्य भिक्षु तैयार हो गये हैं तो गच्छ के स्थविर या प्रमुख साधु-साध्वियाँ आदि मिलकर आचार्य को पद त्यागने के लिए निवेदन करके अन्य योग्य को पद पर नियुक्त कर सकते है। ऐसी स्थिति मे यदि वे पद त्यागना न चाहे या अन्य कोई साधु उनका पक्ष लेकर आग्रह करे तो वे सभी प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

इस सूत्रोक्त आगम-आज्ञा को भलीभाँति समझकर सरलतापूर्वक पद देना, लेना या छोडने के लिए निवेदन करना आदि प्रवृत्तियाँ करनी चाहिए, किन्तु अपने-अपने विचारो की सिद्धि के लिए निन्दा, द्वेष, कलह या सघ-भेद आदि अनुचित अयोग्य तरीकों से पद छुड़ाना या चालाकी से पद प्राप्त करने की कोशिश करना उचित नही है।

Elaboration—In state of illness if any *Acharya* comes to know that his end is very near and suggests to the senior monks the name of one who should be made *Acharya*, that monk may be fit for the post or he may be unfit for it. In other words due to state of illness or due to any other reason his viewpoint may be short-sighted. So after his death, the responsibility as to who should he made *Acharya* or *Upadhyaya* is the responsibility of the remaining monks of the group (*gachha*). The basic reason is that in case the monk mentioned by the *Acharya* fulfils all the qualifications mentioned in aphorisms 1 to 8 in the third *Uddeshak*, he should be appointed on that post and it is not necessary to seek another solution. If he does not fulfil the conditions mentioned in the scriptures and other monk in the group fulfils those conditions, then considering that it is not a compulsion to appoint only the monk so directed by the *Acharya*, that monk who fulfils the requisite qualifications should be appointed to that post.

In case no other monk fulfils the requisite qualifications, the monk named by the *Acharya* should be appointed to the post of *Acharya* irrespective of the fact whether he is capable or not In case any other *Shraman* fulfils the conditions and the monk named by the *Acharya* also fulfils the requisite qualifications for the post, the monk named by the *Acharya* should be preferred and appointed to the post of *Acharya*

After installing the monk named by the *Acharya* or in view of a particular situation any other monk with lesser qualifications who fulfils requisite conditions is appointed at the post of *Acharya*, if it is experienced that the administration of the group (*gachha*) is not in good shape, the ascetic equanimity is adversely affected due to external environment and another *bhikshu* in the group is now fulfilling the requisite conditions for the post of *Acharya*, the Sthavirs or senior monks and nuns in the group may jointly request the said Acharya to relinquish his post. Thereafter they can appoint any other capable monk as *Acharya*. In such a situation if the said *Acharya* does not want to relinquish his post or any other monk takes his sides and insists (that he should not relinquish) then all of them are liable for *prayashchit*.

After properly understanding the provisions as mentioned in the *Agams*, in a normal way the post should be filled or the request should be made for accepting a post or for relinquishing a post. But in order to prove one's point of view one should not make use of improper methods

such as criticism of the organization, hatred, of creating quarrel or dispute in the organization to get the post relinquished in a clever manner or to make such an attempt which is not proper.

संयम त्यागकर जाने वाले आचार्यादि के द्वारा पद देने का निर्देश

DIRECTION FOR A POST BY THE ACHARYA WHO RELINQUISHES ASCETIC LIFE

१४. आयरिय–उवज्झाए ओहायमाणे अन्नयरं वएज्जा–"अज्जो ! ममंसि णं ओहावियंसि समाणंसि अयं समुक्कसियव्वे।" से य समुक्कसणारिहे समुक्कसियव्वे, से य नो समुक्कसणारिहे नो समुक्कसियव्वे। अत्थि य इत्थ अण्णे केइ समुक्कसणारिहे से समुक्कसियव्वे।

तं सि च णं समुक्किकट्ठंसि परो वएज्जा–"दुस्समुक्किकट्ठं ते अज्जो ! निक्खिवाहि।" तस्स णं निक्खिवमाणस्स नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा। जे साहम्मिया अहाकप्पेणं नो उट्ठाए विहरंति। सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा।

१४. संयम का परित्याग करके जाने वाले आचार्य या उपाध्याय किसी प्रमुख साधु से कहे कि "हे आर्य ! मेरे चले जाने पर अमुक साधु को मेरे पद पर स्थापित करना।" तो यदि आचार्य–निर्दिष्ट वह साधु उस पद पर स्थापन करने योग्य हो तो उसे स्थापित करना चाहिए। यदि वह उस पद पर स्थापित करने योग्य न हो तो उसे स्थापित नहीं करना चाहिए। यदि सघ मे अन्य कोई साधु उस पद के योग्य हो तो उसे स्थापित करना चाहिए। यदि सघ में अन्य कोई भी साधु उस पद के योग्य न हो तो आचार्य–निर्दिष्ट साधु को ही उस पद पर स्थापित करना चाहिए।

उसको उस पद पर स्थापित करने के बाद यदि गीतार्थ साधु कहे कि "हे आर्य ! तुम इस पद के अयोग्य हो, अत इस पद को छोड दो।" (ऐसा कहने पर) यदि वह उस पद को छोड दे तो दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र नहीं होता है। जो साधर्मिक साधु कल्प के अनुसार उसे आचार्यादि पद छोडने के लिए न कहें तो वे सभी साधर्मिक साधु उक्त कारण से दीक्षा–छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

14. If an *Acharya* or *Upadhyaya* while relinquishing his post due to any reason asks any senior monk—"O the blessed ! After my departure appoint such and such monk on my post." Then in case the monk so mentioned fulfils requisite qualifications for the post of *Acharya*, he should be installed as *Acharya*. If he is not fit for that post, he should not be installed as *Acharya*. In case another monk in the organisation is fit for that post, that monk should be installed as *Acharya*. If no other monk in the organisation is fit for the post, the monk named by the said *Acharya* should be installed as *Acharya*.

If after installing that monk as *Acharya*, the senior learned (*geetarth*) monk-tells him—"O the blessed ! You are not fit for this post. So you

should relinquish this post " Then if he relinquishes his post, he is not liable for any *prayashchit* of reduction in ascetic period or of *parayashchit*-austerities. However, the monks of the same order who according to code mentioned in *Kalp* (*Brihat-kalp Sutra*) do not ask the *Acharya* to relinquish the post they all are liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood or of *prayashchit* austerities.

विवेचन : पूर्व सूत्रों मे रुग्ण या मरणासन्न आचार्य-उपाध्याय द्वारा निर्दिष्ट उत्तराधिकारी का सूचन था। इन सूत्रों मे किसी कारणवश सयम त्यागकर जाने वाले आचार्यादि का सूचन है। बाकी कथन एक समान ही हैं।

Elaboration—In earlier aphorisms the case of a successor to the post named by a sick *Acharya* or *Upadhyaya* or by one who is on deathbed was discussed In the present aphorism there is mention of an *Acharya* who due to any circumstances relinquishes ascetic life Remaining version is almost the same

उपस्थापना (बड़ी दीक्षा) के विधान PROCEDURE OF UPASTHAPANA (MAJOR INITIATION)

१५. आयरिय-उवज्झाए सरमाणे परं चउराय-पंचरायाओ कप्पागं भिक्खुं नो उवट्ठावेइ कप्पाए, अत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए नत्थि से केइ छेए वा परिहारे वा।

णत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

१६. आयरिय-उवज्झाए असरमाणे परं चउराय-पंचरायाओ कप्पागं भिक्खुं नो उवट्ठावेइ कप्पाए, अत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए नत्थि से केइ छेए वा परिहारे वा।

णत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

१७. आयरिय-उवज्झाए सरमाणे वा असरमाणे वा परं दसराय कप्पाओ कप्पागं भिक्खुं नो उवट्ठावेइ कप्पाए, अत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए नत्थि से केइ छेए वा परिहारे वा।

णत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए, संवच्छरं तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं उद्दिसित्तए।

१५. आचार्य या उपाध्याय स्मरण होते हुए भी बडी दीक्षा के योग्य (कल्पाक) भिक्षु को चार-पाँच रात के बाद भी बडी दीक्षा मे उपस्थापित न करे (कारण-) उस समय यदि उस नवदीक्षित के कोई पूज्य पुरुष की बडी दीक्षा होने मे देर होती हो तो उन्हे दीक्षा-छेद या तप रूप कोई प्रायश्चित्त नही आता है।

यदि उस नवदीक्षित के बड़ी दीक्षा लेने योग्य कोई पूज्य पुरुष न हो तो उन्हे चार-पाँच रात्रि उल्लंघन करने का छेद या तप रूप प्रायश्चित्त आता है।

१६. आचार्य या उपाध्याय स्मरण में न रहने से बडी दीक्षा के योग्य भिक्षु को चार-पाँच रात के बाद भी बडी दीक्षा मे उपस्थापित न करे, उस समय यदि वहाँ उस नवदीक्षित के कोई पूज्य पुरुष की बडी दीक्षा होने में देर हो तो उन्हें दीक्षा-छेद या तप रूप कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है।

यदि उस नवदीक्षित के बडी दीक्षा लेने योग्य कोई पूज्य पुरुष न हो तो उन्हे चार-पाँच रात्रि उल्लंघन करने का दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त आता है।

१७. आचार्य या उपाध्याय स्मृति मे रहते हुए या स्मृति में न रहते हुए भी बड़ी दीक्षा के योग्य भिक्षु को दस दिन के बाद बडी दीक्षा मे उपस्थापित न करे, उस समय यदि उस नवदीक्षित के कोई पूज्य पुरुष की बडी दीक्षा होने मे देर हो तो उन्हे दीक्षा-छेद या तप रूप कोई प्रायश्चित्त नही आता है।

यदि उस नवदीक्षित के बडी दीक्षा के योग्य कोई पूज्य पुरुष न हो तो उन्हे दस रात्रि उल्लंघन करने के कारण एक वर्ष तक आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद पर नियुक्त करना नहीं कल्पता है।

15. An *Acharya* or *Upadhyaya* even if he knows that the newly initiated monk is qualified for initiation in major monkhood, does not do so even after four or five days and if at that time the initiation in major monkhood of someone senior to the said newly initiated monk is delayed, then in such a situation he (*Acharya*) is not liable for any *prayashchit* of (*Diksha Chhed*) reduction in period of monkhood or of *prayashchit*-austerities.

In case there is no such person senior to the newly initiated who is due for major initiation and four or five days have passed in excess than the due date, the *Acharya* or *Upadhyaya* is liable for *chhed prayashchit* or *prayashchit*-austerities

16. An *Acharya* or *Upadhyaya* does not remember the due date As such he does not initiate in major monkhood the newly initiated who is due for it even after four or five days If the major initiation of a senior member from the family of the newly initiated is pending, in such a situation the *Acharya* or *Upadhyaya* is not liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood or *prayashchit*-austerities

In case no senior person from the family of the newly initiated is due for major initiation and four or five days have passed in excess of the due date for major initiation, the *Acharya* or *Upadhyaya* is liable for *prayashchit* of reduction in monkhood period or of *prayashchit*-austerities.

17. In case an *Acharya* or *Upadhyaya* while recollecting or not-recollecting the due date does not initiate in major monkhood the newly initiated who is fit for major monkhood, even after ten days have passed after the due date and major initiation of some senior member from the family of the newly initiated is due after some time, he (the *Acharya* or *Upadhyaya*) is not liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood or of *prayashchit*-austerities.

In case none from the family of the newly initiated is due for major initiation and major initiation of the newly initiated is delayed by ten days, he cannot be appointed on the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* for a year.

विवेचन : प्रथम एव अन्तिम तीर्थंकर के शासन मे भिक्षुओं को सामायिक चारित्र रूप दीक्षा देने के बाद छेदोपस्थापनीय चारित्र रूप बडी दीक्षा दी जाती है। उसकी जघन्य कालमर्यादा सात अहोरात्र की है अर्थात् काल की अपेक्षा नवदीक्षित भिक्षु सात रात्रि के बाद कल्पाक (बडी दीक्षा के योग्य) कहा जाता है और गुण की अपेक्षा आवश्यकसूत्र सम्पूर्ण अर्थ एवं विधि सहित कंठस्थ कर लेने पर, जीवादि का एवं समिति-गुप्ति का सामान्य ज्ञान कर लेने पर, दशवैकालिकसूत्र के चार अध्ययन की अर्थ सहित वाचना लेकर कठस्थ कर लेने पर एव प्रतिलेखन आदि दैनिक क्रियाओ का कुछ अभ्यास कर लेने पर 'कल्पाक' कहा जाता है। उत्कृष्ट काल मर्यादा छह मास की है।

इस प्रकार कल्पाक (बडी दीक्षा योग्य) होने पर एवं अन्य परीक्षण हो जाने पर उस नवदीक्षित भिक्षु को बडी दीक्षा (उपस्थापना) दी जाती है। उक्त योग्यता-सम्पन्न कल्पाक भिक्षु को सूत्रोक्त समय पर बडी दीक्षा न देने पर आचार्य-उपाध्याय को प्रायश्चित्त आता है।

इस प्रायश्चित्त विधान से यह स्पष्ट होता है कि किसी को नई दीक्षा या बडी दीक्षा देने का अधिकार आचार्य या उपाध्याय को ही होता है एव उसमे किसी प्रकार की त्रुटि होने पर उस त्रुटि का प्रायश्चित्त भी उन्हें ही आता है।

यहाँ इन तीन सूत्रो मे बडी दीक्षा के निमित्त से तीन विकल्प कहे गये है-

(१) विस्मरण से कालमर्यादा-उल्लंघन,

(२) स्मृति होते हुए मर्यादा-उल्लघन,

(३) विस्मरण या अविस्मरण से विशेष मर्यादा-उल्लघन।

यदि मर्यादा-उल्लघन का उचित कारण विद्यमान हो तो उसका कोई प्रायश्चित्त नही है। किन्तु अकारण मर्यादा उल्लघन करने पर उसका प्रायश्चित्त लेना आवश्यक है।

यहाँ बडी दीक्षा के विधान एव प्रायश्चित्त में एक छूट और भी कही गई है, वह यह कि उस नवदीक्षित भिक्षु के माता-पिता आदि कोई भी माननीय या उपकारी पुरुष हो और उनके कल्पाक होने मे देर हो तो उनके निमित्त से उसको बड़ी दीक्षा देने में छह मास तक की भी प्रतीक्षा की जा सकती है और उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है।

ठाणागादि आगमो में सात रात्रि का जघन्य शैक्षकाल कहा गया है। अत. योग्य हो तो भी सात रात्रि पूर्ण होने के पूर्व बडी दीक्षा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि उस समय तक वह शैक्ष एवं अकल्पाक कहा गया है। छह मास का "उत्कृष्ट शैक्षकाल" कहा गया है। अतः माननीय पुरुषो के लिए बडी दीक्षा रोकने पर भी छह मास का उल्लघन नही करना चाहिए।

Elaboration—During the administrative periods of the first and the last *Tirthankar*, after the first initiation as *Samayik charitra*, the second major initiation as *chhedopasthapaniya charitra* is conducted. The minimum period between the two initiations in monkhood is seven days. In other words a newly initiated is called *Kalpak* (one fit for second

initiation or major initiation). Only after seven days in the context of time-period while in the context of qualities of monkhood he should totally memorise *Avashyak Sutra* including its meaning and the procedures, first four chapters of *Dashvaikalik Sutra* after properly understanding the meaning thereof from his teacher and he should have common knowledge of *Jiva* and the like (the nine essentials) and of *Samitis* and *guptis* (non-activities). He should also have some practice of examining (pots and clothes) and also of daily routine. He is then called *kalpak*–one fit for second (major) initiation. The maximum time-period between two initiations is six months.

Thus when the newly initiated becomes *kalpak* (fit for second initiation) and his other tests are completed, he is granted second (major) initiation in monkhood (*upasthapana*). In case such a *kalpak bhikshu* is not granted second initiation in time, as laid down in the code, the *Acharya* or *Upadhyaya* (responsible for it) is liable for *prayashchit*.

It is evident from this provision of *prayashchit* in the code that it is the responsibility of *Acharya* or *Upadhyaya* to newly initiate a person or to grant him second initiation (*badi-diksha*). In case of any shortcoming in following the code, he (*Acharya* or *Upadhyaya*) is liable for *prayashchit* for this fault.

In these three aphorisms, three different situations have been discussed with reference to second initiation. They are as under—

(1) To overlook the due date due to loss of memory.

(2) To overlook the due date while keeping in memory the facts.

(3) To overlook special time limits due to loss of memory or not due to loss of memory.

In case there are special reasons for overlooking the prescribed time-period, one is not liable for any *prayashchit*. But if without cogent reasons the time-limit is ignored, the *Acharya* or *Upadhyaya* is liable for *prayashchit* and it is essential that he should undergo it.

Here one more exception has been provided in the provisions for second initiation. That exception is that the mother, father or any respectable or reverend person from the family of the newly initiated or in some context known to him is due after some time to be *kalpak*, then the second initiation (*badi Disha*) can be delayed for a period upto six months and the *Acharya* or *Upadhyaya* is not liable for any *prayashchit* on this account.

In *Thananga Sutra* and other *Agams* the minimum period of first initiation (the period between first and second initiation) is mentioned as seven days. Thus the second initiation can be allowed only after seven days even if the newly initiated fulfils all other conditions because up to that period he is known as newly initiated and *Akalpak*. The maximum period (*Utkrisht Shaiksh kaal*) is six months. Therefore due to second initiation of any respectable from the family, the second initiation of the newly initiated should not be delayed by more than six months.

***अन्य गण में गये भिक्षु का विवेक* PRUDENCE OF A MONK WHO ACCEPTS ANOTHER GANA**

१८. भिक्खू य गणाओ अवक्कम्म अण्णं गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरेज्जा, तं च केइ साहम्मिए पासित्ता वएज्जा–कं अज्जो ! उवसंपज्जित्ताणं विहरसि ? जे तत्थ सव्वराइणिए तं वएज्जा। राइणिए तं वएज्जा 'अह भंते ! कस्स कप्पाए ?' जे तत्थ सव्व–बहुस्सुए तं वएज्जा, जं वा से भगवं वक्खइ तस्स आणा–उववाय–वयण–निद्देसे चिट्ठिस्सामि।

१८. विशिष्ट श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए यदि कोई भिक्षु अपना गण छोडकर अन्य गण को स्वीकार कर विचर रहा हो तो उस समय उसे यदि कोई स्वधर्मी भिक्षु मिले और पूछे कि "हे आर्य ! तुम किसकी निश्रा मे विचर रहे हो ?" तब वह उस गण में जो दीक्षा मे सबसे बडा हो उसका नाम बताए। यदि रत्नाधिक पुन: पूछे कि–'हे भदन्त ! किस बहुश्रुत की प्रमुखता मे रह रहे हो ?' तब उस गण मे जो सबसे अधिक बहुश्रुत हो उसका नाम बताए तथा वे जिनकी आज्ञा मे रहने के लिए कहे, उनकी ही आज्ञा एव उनके समीप मे रहकर उनके ही वचनो के निर्देशानुसार मै रहूँगा ऐसा कहे।

18. A *bhikshu* leaves his fold and enters another fold (*gana*) in order to have special knowledge of *Agams*. In case any monks of his very order (*Dharma*) meets him and asks—"O the blessed ! In whose headship you are passing your monkhood ?" Then he should tell the name of that monk who is the senior most in period of monkhood in that fold. If the senior monk again asks—"O the blessed ! Who is your *bahushrut* leader ?" Then he should tell the name of that *bahushrut* who is the most learned in *Agams* in that fold. He should remain under the charge of that monk who is named by that *bahushrut* and he should say that he shall remain under his control and near him and shall spend his period of monkhood as directed by him

विवेचन : भाष्यकार के अनुसार इस सूत्र का भाव इस प्रकार है–

कोई अध्ययनशील भिक्षु किसी भी अन्य गच्छीय भिक्षु की अध्यापन-कुशलता की ख्याति सुनकर या जानकर उस गच्छ मे अध्ययन करने के लिए गया हो। वहाँ विचरण करते हुए कभी कोई पूर्व गच्छ का साधर्मिक भिक्षु गोचरी आदि के लिए भ्रमण करते हुए मिल जाए और वह पूछे कि–

"हे आर्य ! तुम किसकी निश्रा (आज्ञा) मे विचरण कर रहे हो?" तब उत्तर मे वहाँ जो रत्नाधिक आचार्य, गुरु या बहुश्रुत के दीक्षित पिता आदि हों उनका नाम बताये। किन्तु जब प्रश्नकर्त्ता को सतोष न हो कि इनसे तो अधिक ज्ञानी संत अपने गच्छ में भी हैं, फिर अपना गच्छ छोड़कर इनके गच्छ में क्यो गया है? अत सही जानकारी के लिए पुनः प्रश्न करे कि "हे भगवन् ! आपका कल्पाक कौन है? अर्थात् किस प्रमुख की आज्ञा में आप विचरण एवं अध्ययन आदि कर रहे हो, इस गच्छ में कौन अध्यापन मे कुशल है?" इसके उत्तर मे जो वहाँ सबसे अधिक बहुश्रुत हो अर्थात् सभी बहुश्रुतो में भी जो प्रधान हो और गच्छ का प्रमुख हो, उनके नाम का कथन करे। सार यह है कि जिस गच्छ में जिनकी आज्ञा मुख्य हो तथा जो बहुश्रुत हो, उनका नाम कभी छिपाना नही चाहिए।

Elaboration—According to the commentator the central idea of this aphorism is as under—

A *bhikshu* engaged in studies of *Agams* learns that a *bhikshu* of another group is expert in teaching *Agams*. He then goes to that group for such studies. Thus in case any *bhikshu* of the earlier group meets him during wanderings for collection of food and the like, and asks—

"O the blessed ! Under whose supervision you are passing the time ?" Then he should tell the name of the senior *Acharya*, his teacher or the initiated father of a bahushrut. In case that monk is not satisfied with the reply, he feels that in the original group also there are monks who are more learned in *Agams*. Therefore why he had gone to another group leaving his original group ? He, therefore, in order to know the real facts asks another question—"O the blessed ! Who is your *Kalpak* (senior monk) ? In other words under whose overall leadership you are studying and passing your monkhood and who is the expert in teaching Agams in that group ? Then he should tell the name of that monk who is the seniormost among all the scholarly monks (*bahushruts*). In other words, he should tell the name of that who is the head of that group and the chief among all the *bahushruts*. The central idea is that one should never conceal the name of that monk whose order is the most important in the group (*gachha*) and who is *bahushrut* (learned in scriptures).

अभिनिचारिका में जाने के विधि-निषेध **PROCEDURE OF GOING /NOT GOING TO ABHINICHARIKA**

१९. बहवे साहम्मिया इच्छेज्जा एगयओ अभिनिचारियं चारए नो णं कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिनिचारियं चारए, कप्पइ णं थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिनिचारियं चारए।

थेरा य से वियरेज्जा—एवं णं कप्पइ एगयओ अभिनिचारियं चारए। थेरा य से नो वियरेज्जा—एवं नो कप्पइ एगयओ अभिनिचारियं चारए।

जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे एगयओ अभिनिचारियं चरंति, से सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

१९. अनेक साधर्मिक साधु एक साथ 'अभिनिचारिका' करना चाहें तो स्थविर साधुओं को पूछे बिना उन्हें एक साथ 'अभिनिचारिका' करना नहीं कल्पता है, किन्तु स्थविर साधुओं से पूछ लेने पर उन्हे एक साथ 'अभिनिचारिका' करना कल्पता है।

यदि स्थविर साधु आज्ञा दे तो उन्हें 'अभिनिचारिका' करना कल्पता है। यदि स्थविर साधु आज्ञा न दें तो उन्हे 'अभिनिचारिका' करना नहीं कल्पता है।

यदि स्थविरों से आज्ञा प्राप्त किये बिना 'अभिनिचारिका' करे तो वे दीक्षा-छेद या परिहार-प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

19. Many monks of the same order want to go for *abhinicharika* together Then they are not allowed to do so without the permission of *Sthavirs*. But after telling *Sthavirs* they can go together for *abhinicharika*.

In case the *Sthavirs* permit, they can go for *abhinicharika* If the *Sthavir* does not permit then they are not allowed to go for *abhinicharika*.

In case they go for abhinicharika without securing the permission of the *Sthavirs*, they are liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood or *parihar-prayashchit*.

विवेचन : आचार्य-उपाध्याय जहाँ मासकल्प ठहरे हो, शिष्यो को सूत्रार्थ की वाचना देते हो, वहाँ ग्लान या तप से कृश साधुओ को गोदुग्धादि विगयो की प्राप्ति सुलभ न हो, और निकट किसी गोपालक (ग्वालो की) बस्ती (व्रजिक) मे उसकी सुलभता हो तो उस विगय-प्राप्ति के लिए वहाँ जाए तो उनकी चर्या को 'अभिनिचारिका गमन' कहा गया है।

किसी भी भिक्षु को या अनेक भिक्षुओं को ऐसे दुग्धादि की सुलभता वाले क्षेत्र मे जाना हो तो गच्छ प्रमुख आचार्य या स्थविर आदि की आज्ञा लेना आवश्यक होता है। वे आवश्यक लगने पर ही उन्हे अभिनिचारिका में जाने की आज्ञा देते है अन्यथा मना कर सकते हैं। *(विशेष वर्णन देखे-हिन्दी विवेचन, पृ ३५०)*

Elaboration—*Acharya* or *Upadhyaya* is staying at a place to spend a month there. He teaches scriptures to his disciples. There are sick monks or those who have gone very weak due to practice of austerities. Cow-milk and such like strengthening food (*Vigaya*) is not easily available there. There is a colony of cowherds in the neighbourhood and such food is easily available there. So they go there to collect such food. This is called going for *Abhicharika*.

In case any *bhikshu* or many *bhikshus* want to go to a place where milk and the like is easily available, then it is very essential that he or they should first obtain the permission of the seniormost *Acharya* or *Sthavir* of that group. They grant such permission only if it is absolutely

necessary, otherwise they refuse it. (*For special description, see Hindi Commentary, pp 350*)

चर्या-प्रविष्ट एवं चर्या-निवृत्त भिक्षु के कर्तव्य DUTIES OF CHARYA-PRAVISHT AND CHARYA-NIVRITT BHIKSHU

२०. चरियापविट्ठे भिक्खू जाव चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, सच्चेव आलोयणा, सच्चेव पडिक्कमणा, सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ अहालंदमवि ओग्गहे।

२१. चरियापविट्ठे भिक्खू परं चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

भिक्खुभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि ओग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया। कप्पइ से एवं वदित्तए, 'अणुजाणह भंते ! मिओग्गहं अहालंदं धुवं नितियं वेउट्टियं।' तओ पच्छा काय-संफासं।

२२. चरियानियट्टे भिक्खू जाव चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, सच्चेव आलोयणा, सच्चेव पडिक्कमणा, सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ, अहालंदमवि ओग्गहे।

२३. चरियानियट्टे भिक्खू परं चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

भिक्खूभावस्स अट्ठाए दोच्चं पि ओग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया।

कप्पइ से एवं वइत्तए-'अणुजाणह भंते ! मिओग्गहं अहालंदं धुवं नितियं वेउट्टियं।' तओ पच्छा काय-संफासं।

२०. चर्या मे प्रविष्ट भिक्षु यदि चार-पाँच रात की अवधि मे स्थविरों को देखे (मिले) तो उन भिक्षुओ को वही (पहले ली हुई) आलोचना, वही प्रतिक्रमण और कल्पपर्यंत रहने के लिए वही अवग्रह की पूर्वानुज्ञा रहती है।

२१. चर्या में प्रविष्ट भिक्षु यदि चार-पाँच रात के पश्चात् स्थविरों को देखे (मिले) तो वह पुनः आलोचना-प्रतिक्रमण करे और आवश्यक दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त में उपस्थित हो।

भिक्षु भाव (सयम की सुरक्षा) के लिए उसे दूसरी बार अवग्रह की अनुमति लेनी चाहिए। वह इस प्रकार प्रार्थना करे कि "हे भदन्त ! मितावग्रह मे विचरने के लिए, कल्प अनुसार करने के लिए, ध्रुव नियमों के लिए अर्थात् दैनिक क्रियाएँ करने के लिए आज्ञा दे तथा पुनः आने की अनुज्ञा दीजिए।" इस प्रकार कहकर वह उनके चरण का स्पर्श करे।

२२. चर्या से निवृत्त कोई भिक्षु यदि चार-पाँच रात की अवधि मे स्थविरों को देखे (मिले) तो उसे वही आलोचना वही प्रतिक्रमण और कल्प पर्यन्त रहने के लिए वही अवग्रह की पूर्वानुज्ञा रहती है।

२३. चर्या से निवृत्त भिक्षु यदि चार-पाँच रात के पश्चात् स्थविरों से मिले तो वह पुनः आलोचना-प्रतिक्रमण करे और आवश्यक दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त में उपस्थित हो।

भिक्षुभाव (संयम की सुरक्षा) के लिए उसे दूसरी बार अवग्रह की अनुमति लेनी चाहिए। वह इस प्रकार से प्रार्थना करे कि "हे भदन्त ! मुझे मितावग्रह की, यथालन्दकल्प की ध्रुव, नित्य क्रिया करने की और पुनः आने की अनुमति दीजिए।" इस प्रकार कहकर वह उनके चरणों का स्पर्श करे।

20. A *bhikshu* is *charya-pravisht* (still within the period for which he had sought permission for a specific praxis from his teachers). He during that period meets *Sthavirs* within four or five days. Then the permission already granted to him persists for the purpose of self-censure, *pratikraman* and stay.

21. A *bhikshu* is *charya-pravisht*. He meets *Sthavirs* after four-five days (and the period for which permission had been obtained from Sthavirs had already passed) Then he should do self-censure for his faults and *pratikraman*. He should seek from them the necessary *prayashchit* of reduction of period of monkhood or undertaking austerities as the case many be.

For safe-guard of his ascetic discipline, he should seek the permission again of *avagrah*. He should request—"O Reverend Sir ! Kindly grant me permission for *mit-avagrah*, doing activities according to *kalp*, practicing daily specified routine and to again return after that limited period" Thereafter, he should touch their feet.

22. A *bhikshu* has returned from his wandering (*charya nivritt*) He meets the *Sthavirs* within a period of four or five days. Then the permission already obtained applies for staying for *kalp*, his self criticism and *pratikraman*.

23. A *bhikshu* has returned from his wandering (*charya nivritt*). He meets the *Sthavirs* after a period of four-five days. Then he should again do self-criticism, *pratikraman* and undertake *prayashchit* of reduction in period of monkhood or undergoing austerities as the case may be

For safe-guard of his ascetic discipline he should seek again the permission of *Avagrah* (staying in the supervision of elders). He should in this manner request—"Reverend Sir ! Kindly grant me permission for *mit-avagreh, yathaland-kalp,* practicing daily specified routine and for returning to the fold thereafter." After saying so, he should touch their feet.

विवेचन : प्रस्तुत चार सूत्रो मे 'चरिका' शब्द के दो अर्थ किए गये हैं–(१) सूत्र १९ में कथित व्रजिकागमन अथवा (२) विदेश या दूर देश गमन।

(१) **प्रविष्ट**–गुरुजनों से जितने समय की आज्ञा प्राप्त हुई है, उतने समय के भीतर व्रजिका में रहा हुआ या दूर देश एवं विदेश की यात्रा में रहा हुआ भिक्षु **चर्या–प्रविष्ट** है।

(२) निवृत्त–व्रजिका–विहार से वापस आया हुआ या दूर देश के विचरण से लौटकर आया एवं पुन आज्ञा लेकर आसपास मे विचरण करने वाला भिक्षु चर्या–निवृत्त है।

इन सूत्रों में चर्या–प्रविष्ट एवं चर्या–निवृत्त चरिका वाले आज्ञा–प्राप्त भिक्षु को विनय–व्यवहार का विधान किया गया है, जिसमे ४–५ दिन की मर्यादा की गई है। इन मर्यादित दिनों के पूर्व गुरु आचार्य आदि का पुनः मिलने का अवसर प्राप्त हो जाय तो पूर्व की आज्ञा से ही विचरण किया जा सकता है किन्तु इन मर्यादित दिनो के बाद अर्थात् १०–२० दिन से या कुछ महीनो से मिलने का अवसर प्राप्त हो तो पुनः सूत्रोक्त विधि से आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

Elaboration—In the said four aphorisms, the word *charika* has been interpreted in two different ways—(1) In aphorism 19 it means going to a suburb, or (2) going to a foreign country or a state, which is far away.

(1) Pravisht—A monk who remains in an area (*vrajika*) or in a far away state or in foreign travel for that period only for which he had got permission from his spiritual teachers is called *charya pravisht.*

(2) Nivritt—A monk who has come back from his wandering or who has returned from the distant state where he had gone and after securing the permission of his spiritual masters wanders in the areas close to it is called *charya nivritt.*

In these aphorisms there is provision of normal behaviour of a *bhikshu* who is *chariya-pravisht* or *charya-nivritt* and who has already taken permission of (his spiritual masters). There is a provision of allowing only for four or five days extension. In case before this limited period expires the teacher or the spiritual master *Acharya* happens to meet him, he can go in his wandering with the permission already granted by his teacher. But after that limited period, in other words after 10-20 days or after some months if he meets his *guru*, then he should seek his permission in the manner as laid down in the *Sutra*.

शैक्ष और रत्नाधिक का व्यवहार

NORMAL DEALINGS BETWEEN NEWLY INITIATED AND THE SENIOR MONK

२४. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति, तं जहा–सेहे य, राइणिए य। तत्थ सेहतराए पलिच्छन्ने, राइणिए अपलिच्छन्ने, सेहतराएणं राइणिए उवसंपज्जियव्वे, भिक्खोववायं च दलयइ कप्पागं।

२५. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति, तं जहा–सेहे य, राइणिए य। तत्थ राइणिए पलिच्छन्ने सेहतराए अपलिच्छन्ने। इच्छा राइणिए सेहतरागं उपसंपज्जेज्जा, इच्छा नो उवसंपज्जेज्जा, इच्छा भिक्खोववायं दलेज्जा कप्पागं, इच्छा नो दलेज्जा कप्पागं।

२४. दो साधर्मिक भिक्षु एक साथ विचरते हों, यथा–अल्प दीक्षा–पर्याय (शैक्ष) वाला और अधिक दीक्षा–पर्याय वाला (रत्नाधिक)। उनमे यदि (शैक्ष–) अल्प दीक्षा–पर्याय वाला श्रुत–सम्पन्न तथा शिष्य–सम्पन्न हो और अधिक दीक्षा–पर्याय वाला न श्रुत–सम्पन्न हो, तथा शिष्य–सम्पन्न न हो तो भी अल्प दीक्षा–पर्याय वाले को अधिक दीक्षा–पर्याय वाले की विनय वैयावृत्य करना, आहार लाकर देना, समीप में रहना और अलग विचरने के लिए शिष्य देना इत्यादि कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।

२५. दो साधर्मिक भिक्षु एक साथ विचरते हों, यथा–अल्प दीक्षा–पर्याय वाला और अधिक दीक्षा–पर्याय वाला। उनमें यदि अधिक दीक्षा–पर्याय वाला श्रुत–सम्पन्न तथा शिष्य–सम्पन्न हो और अल्प दीक्षा–पर्याय वाला श्रुत–सम्पन्न तथा शिष्य–सम्पन्न न हो तो अधिक दीक्षा–पर्याय वाला इच्छा हो तो अल्प दीक्षा–पर्याय वाले की वैयावृत्य करे, इच्छा न हो तो न करे। इच्छा हो तो आहार लाकर दे, इच्छा न हो तो न दे। इच्छा हो तो समीप में रखे, इच्छा न हो तो न रखे। इच्छा हो तो अलग विचरने के लिए शिष्य दे, इच्छा न हो तो न दे।

24. Two monks are living together. One of them is of short initiation period (*shaiksh*) while the other has a longer period of initiation than the first one (*ratnadhik*) The *shaiksh* is learned in scriptures and has disciples while *ratnadhik* is neither learned in scriptures nor has any disciple. Still the *shaiksh* should be humble towards *ratnadhik*. He should serve him, he should collect food for him, he should stay near him and give a monk out of his disciples to him if he (*ratnadhik*) wants to propagate the mission separately He should perform all such duties meticulously.

25. Two monks are living together. One of them has a short period of initiation (*shaiksh*) while the other has longer period than that (*ratnadhik*). The senior monk (*ratnadhik*) is learned in scriptures and has wealth of disciples while the junior monk (*shaiksh*) is neither learned in scriptures nor has any disciples Then the senior monk may serve the junior or may not serve him if he does not want to do it He may collect food for him or may not collect food for him He may keep him (*shaiksh*) near him or may not keep him nearby. He may give him a disciple for wanderings separately or may not give

विवेचन : भाष्यकार आचार्य का कथन है कि यह कथन यहाँ कर्त्तव्य एव अधिकार की अपेक्षा से किया गया है। अल्प दीक्षा–पर्याय वाले को बडो की सेवा परिचर्या करनी चाहिए, किन्तु रत्नाधिको के लिए यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। सेवा की आवश्यकता होने पर तो रत्नाधिक को भी शैक्ष की यथायोग्य सेवा करना या करवाना आवश्यक होता है। न करने पर वह प्रायश्चित्त का पात्र होता है। अत सूत्रोक्त विधान सामान्य स्थिति की अपेक्षा से है, ऐसा समझना चाहिए।

Elaboration—According to commentator *Acharya*, this provision is in the context of rights and duties. A junior monk (*shaiksh*) should serve

the seniors but in case of seniors it all depends on their desire. When there is a real need of attendance, it is essential even for the senior monk to attend to the junior monk as required or make arrangements for it. In case he does not do it, he is liable for *prayashchit*. So it should be understood that the above said permission as mentioned in the aphorism is in the context of normal situation.

रत्नाधिक को अग्रणी मानकर विचरने का विधान **TO MOVE ABOUT CONSIDERING RATNADHIK AS HEAD**

२६. दो भिक्खुणो एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२७. दो गणावच्छेइया एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२८. दो आयरिय-उवज्झाया एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२९. बहवे भिक्खुणो एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

३०. बहवे गणावच्छेइया एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

३१. बहवे आयरिय-उवज्झाया एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

३२. बहवे भिक्खुणो बहवे गणावच्छेइया, बहवे आयरिय-उवज्झाया एगयओ विहरंति, नो णं कप्पइ अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। कप्पइ णं अहाराइणियाए अण्णमण्णं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

२६. दो भिक्षु एक साथ विचरते हो तो उन्हें परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ में विचरना नही कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

२७. दो गणावच्छेदक एक साथ विचरते हो तो उन्हे परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ में विचरना नहीं कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

२८. दो आचार्य या दो उपाध्याय एक साथ विचरते हों तो उन्हे परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ मे विचरना नहीं कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

२९. बहुत से भिक्षु एक साथ विचरते हों तो उन्हें परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ में विचरना नहीं कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

३०. बहुत से गणावच्छेदक एक साथ विचरते हो तो उन्हें परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ में विचरना नही कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

३१. बहुत से आचार्य या उपाध्याय एक साथ विचरते हो तो उन्हें परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ में विचरना नहीं कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर साथ विचरना कल्पता है।

३२. बहुत से भिक्षु, बहुत से गणावच्छेदक और बहुत से आचार्य या उपाध्याय एक साथ विचरते हों तो उन्हें परस्पर एक-दूसरे को समान स्वीकार कर साथ विचरना नही कल्पता है। किन्तु रत्नाधिक को अग्रणी स्वीकार कर विचरना कल्पता है।

26. Two *bhikshus* live and wander together. They are not allowed to do so considering themselves equal in status. They should move about accepting the senior one the leader among them

27. Two *ganavachhedaks* live and stay together. They are not allowed to move together considering themselves as equal in status. They should move together accepting the senior one as the leader among them.

28. Two *Acharyas* or two *Upadhyayas* are living and staying together. They are not allowed to move together considering themselves as equal in status. They should move about only after accepting senior *Acharya* as the leader or the head of the group

29. Many *bhikshus* live and wander together. They are not allowed to do so considering themselves as equal. They should move together only after accepting the seniormost in monkhood as their head or the leader.

30. Many *ganavachhedaks* are living and wandering together They are not allowed to move about considering themselves as equal in status They should move about together only after accepting the senior among them as their leader or the head.

31. Many *Acharyas* or many *Upadhyayas* are living and moving about together. They are not allowed to do so. They are allowed to move together only after accepting the seniormost in monkhood among them as their leader or the head.

32. Many *bhikshus*, many *ganavachhedaks*, many *Acharyas* and many *Upadhyayas* are living and moving about together. They are not allowed to do so. They can move together only after accepting the one who is the seniormost among them in monkhood as their leader.

विवेचन : सूत्र २६ से ३२ तक का कथन विनय मूल धर्म की श्रेष्ठता का सूचक है। दो या अनेक भिक्षु यदि एक साथ रहें अथवा एक साथ विचरण करें भले ही वे अनेक दृष्टियों से समान हैं और तब वे किसी को बड़ा न मानें अर्थात् आज्ञा लेना, वन्दन करना आदि कोई भी विनय एवं समाचारी का व्यवहार न करे तो उनका इस प्रकार साथ रहना उचित नहीं है। किन्तु उन्हें किसी एक रत्नाधिक साधु की प्रमुखता स्वीकार करके उनके साथ विनय-व्यवहार रखते हुए रहना चाहिए और प्रत्येक कार्य उनकी आज्ञा लेकर ही करना चाहिए।

यह विधान एक मांडलिक आहार करने वाले साम्भोगिक साधुओं की अपेक्षा से है, ऐसा समझना चाहिए।

यदि कभी अन्य साम्भोगिक साधु, आचार्य, उपाध्याय या गणावच्छेदक का किसी ग्रामादि में एक ही उपाश्रय मे मिलना हो जाय और कुछ समय साथ रहने का प्रसंग आ जाय तो उचित विनय-व्यवहार और प्रेम-सम्बन्ध के साथ रहा जा सकता है, किन्तु सूत्रोक्त उपसम्पदा (नेतृत्व) स्वीकार करने का विधान यहाँ नहीं समझना चाहिए। यदि अन्य साम्भोगिक के साथ विचरण या चातुर्मास करना हो अथवा अध्ययन करना हो तो उनकी भी अल्पकालीन उपसम्पदा (नेतृत्व) तथा उचित विनय-व्यवहार स्वीकार करके ही रहना चाहिए।

॥ चौथा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The aphorisms 26 to 32 indicate that only humility in conduct indicates the supreme behaviour in spirituality. In case two *bhikshus* live together, they may be equal from many points of view. Even then it is not proper for them to live together unless they accept one as their head, take permission from him, greet him, be humble towards him and follow the code of conduct with respect to seniors in dealings with him. They should live together after accepting the leadership of some senior monk and dealing with him as their leader. They should do every activity only after getting his permission.

It should be understood that this provision is in respect of those monks who can live together and dine together

In case any monk, *Acharya, Upadhyaya* or *ganavachhedak* who are *Sambhogik* (who can dine together) meet in an *upashraya* and there arises a chance for them to stay together for sometime then they can do so showing affection and deal with each other with due humility but it should not be understood as a provision in the code to accept leadership (upsampada). In case one has to move about or spend a *chaturmas* or do studies with other *Sambhogik* then they should also accept leadership for a short period and mutual humility in dealings.

● FOURTH UDDESHAK CONCLUDED ●

पाँचवाँ उद्देशक
FIFTH UDDESHAK

प्रवर्तिनी आदि के साथ विचरने वाली निर्ग्रन्थियों की संख्या

THE NUMBER OF NUNS ACCOMPANYING PRAVRTINI AND OTHERS

१. नो कप्पइ पवत्तिणीए अप्पबिइयाए हेमंत–गिम्हासु चारए।

२. कप्पइ पवत्तिणीए अप्पतइयाए हेमंत–गिम्हासु चारए।

३. नो कप्पइ गणावच्छेइणीय अप्पतइयाए हेमंत–गिम्हासु चारए।

४. कप्पइ गणावच्छेइणीए अप्पचउत्थाए हेमंत–गिम्हासु चारए।

५. नो कप्पइ पवत्तिणीए अप्पतइयाए वासावासं वत्थए।

६. कप्पइ पवत्तिणीए अप्पचउत्थाए वासावासं वत्थए।

७. नो कप्पइ गणावच्छेइणीए अप्पचउत्थाए वासावासं वत्थए।

८. कप्पइ गणावच्छेइणीए अप्पपंचमाए वासावासं वत्थए।

९. से गामंसि वा जाव रायहणिंसि वा बहूणं पवत्तिणीणं अप्पतइयाणं बहूणं गणावच्छेइणीणं अप्पचउत्थाणं कप्पइ हेमंत–गिम्हासु चारए अण्णमण्णं नीसाए।

१०. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा बहूणं पवत्तिणीणं अप्पचउत्थाणं बहूणं गणावच्छेइणीणं अप्पपंचमाणं कप्पइ वासावासं वत्थए अण्णमण्णं नीसाए।

१. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में प्रवर्तिनी साध्वी को, एक अन्य साध्वी को साथ लेकर विहार करना नही कल्पता है।

२. (किन्तु) कम से कम अन्य दो साध्वियाँ साथ लेकर विहार करना कल्पता है।

३. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु मे गणावच्छेदिनी को अन्य दो साध्वियाँ साथ लेकर विहार करना नहीं कल्पता है।

४. (किन्तु) अन्य तीन साध्वियो को साथ लेकर विहार करना कल्पता है।

५. वर्षावास मे प्रवर्तिनी को अन्य दो साध्वियो के साथ रहना नही कल्पता है।

६. (किन्तु) कम से कम अन्य तीन साध्वियों के साथ रहना कल्पता है।

७. वर्षावास में गणावच्छेदिनी को अन्य तीन साध्वियो के साथ रहना नहीं कल्पता है।

८. (किन्तु) अन्य चार साध्वियो के साथ रहना कल्पता है।

९. हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में अनेक प्रवर्तिनियों को ग्राम यावत् राजधानी में अपनी-अपनी निश्रा में दो-दो अन्य साध्वियो को साथ लेकर और अनेक गणावच्छेदिनियों को, तीन-तीन अन्य साध्वियों को साथ लेकर विहार करना कल्पता है।

१०. वर्षावास मे अनेक प्रवर्तिनियो को अपनी-अपनी निश्रा मे तीन-तीन अन्य साध्वियो को साथ लेकर और अनेक गणावच्छेदिनियो को चार-चार अन्य साध्वियों को साथ लेकर रहना कल्पता है।

1. A Jain *Pravartini* is not allowed to move about in summer and winter with only one other nuns.

2. She can move about with two Jain nuns.

3. A Jain nun who is *ganavachhedini* is not allowed to move about in summer and winter with only two other Jain nuns.

4. She, however, can move with three Jain nuns

5. A *pravartini* is not allowed to stay during *chaturmas* with only two nuns

6. She can stay during *chaturmas* with at least three *Sadhvis*.

7. A Jain nun who is *ganavachhedini* is not allowed to stay during *chaturmas* with only three Jain nuns.

8. She can stay with at least four *sadhvis* during *chaturmas*

9. In summer and winter, many *pravartinis* can move about in village up to capital having at least two nuns each under their charge and many *ganavachhedini* nuns can move about having three nuns each under their charge.

10. During *chaturmas* many *pravartinis* can stay having at least three nuns each under their charge and many *ganavachhedini sadhvis* can stay having four nuns each under their charge.

विवेचन : बृहत्कल्प, उद्देशक ५ में साध्वी को अकेली रहने का निषेध है और यहाँ प्रवर्तिनी को दो के साथ विचरने का निषेध है। अत प्रवर्तिनी को शेष काल मे दो साध्वियो को साथ लेकर और चातुर्मास मे तीन साध्वियो को साथ मे रखकर विचरना चाहिए।

गणावच्छेदिनी प्रवर्तिनी की प्रमुख सहायिका होती है। यह प्रवर्तिनी की आज्ञा से साध्वियो की व्यवस्था, सेवा, प्रायश्चित्त आदि सभी कार्यों की देख-रेख करती है। अतः गणावच्छेदिनी अन्य तीन साध्वियो को साथ लेकर विचरे और चार अन्य साध्वियो को साथ मे रखकर चातुर्मास करे।

यद्यपि आगम विधान के अनुसार दो साध्वियाँ साथ में विचरण कर सकती हैं या चातुर्मास कर सकती हैं। किन्तु वर्तमान सप्रदायों की समाचारियो के विधानानुसार दो साध्वियों का विचरण एवं चातुर्मास करना निषिद्ध माना जाता है। अन्य विवेचन चौथे उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए।

Elaboration—In *uddeshak* 5 of *Brihat-kalp Sutra* a nun is not allowed to stay alone while here a *pravartini* is not allowed to move about with only two nuns. So a *pravartini* should move about with at least two nuns during the period other than *chaturmas* and during *chaturmas* she should move about only with at least three nuns.

A *ganavachhedini* nun is the chief assistant of the *pravartini*. With the permission of *pravartini*, she looks after all the duties namely suitable arrangement for all the nuns, their service and their *prayashchit* and the like. So a *ganavachhedini* nun should move about with at least three nuns and spend *chaturmas* with at least four nuns.

Although according to code mentioned in *Agam*, two Jain nuns can move together or stay for *chaturmas*, yet according to the code of conduct of the group now in existence, the movement or stay for *chaturmas* of two *sadhvis* is prohibited. The remaining description should be considered as in fourth *uddeshak*.

अग्रणी साध्वी के काल करने पर साध्वी का कर्त्तव्य DUTIES OF A NUN WHEN HEAD NUN DIES

११. गामाणुगामं दूइज्जमाणी णिग्गंथी य जं पुरओ काउं विहरइ, सा य आहच्च वीसुंभेज्जा अत्थि य इत्थ काइ अण्णा उवसंपज्जणारिहा सा उवसंपज्जियव्वा।

नत्थि य इत्थ काइ अण्णा उवसंपज्जणारिहा तीसे य अप्पणो कप्पाए असमत्ते एवं से कप्पइ एगराइयाए पडिमाए जण्णं-जण्णं दिसं अण्णाओ साहम्मिणीओ विहरंति तण्णं-तण्णं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा-'वसाहि अज्जे ! एगरायं वा दुरायं वा', एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जा तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ सा सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

१२. वासावासं पज्जोसविया णिग्गंथी य जं पुरओ काउं विहरइ, सा य आहच्च वीसुंभेज्जा, अत्थि य इत्थ काइ अण्णा उवसंपज्जणारिहा सा उवसंपज्जियव्वा।

नत्थि य इत्थ काइ अण्णा उवसंपज्जणारिहा तीसे य अप्पणो कप्पइ असमत्ते एवं से कप्पइ एगराइयाए पडिमाए जण्णं-जण्णं दिसं अण्णाओ साहम्मिणीओ विहरंति तण्णं-तण्णं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए। कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा-'वसाहि अज्जे ! एगरायं वा दुरायं वा', एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए। जा तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ सा सन्तरा छेए वा परिहारे वा।

११. ग्रामानुग्राम विहार करती हुई साध्वियाँ, जिसको अग्रणी मानकर विहार कर रही हों उनके कालधर्म प्राप्त होने पर शेष साध्वियों में जो साध्वी योग्य हो, उसकी निश्रा में रहना चाहिए।

यदि अन्य कोई साध्वी नेतृत्व करने योग्य न हो और स्वयं भी निशीथ आदि का अध्ययन पूर्ण न करने के कारण कल्पाक (संघाड़ा प्रमुख) होने के योग्य न हो तो उसे मार्ग में एक-एक रात्रि ठहरते हुए जिस दिशा में अन्य साधर्मिणी साध्वियाँ विचरती हो, उस दिशा मे जाना चाहिए। मार्ग में उसे विचरने के लक्ष्य से ठहरना नहीं कल्पता है। यदि रोगादि का कारण हो तो ठहरना कल्पता है।

रोगादि के समाप्त होने पर यदि कोई कहे कि "हे आर्ये ! एक या दो रात और ठहरो।" तो उन्हें एक या दो रात और ठहरना कल्पता है। किन्तु एक या दो रात से अधिक ठहरना नहीं कल्पता है। जो साध्वी एक या दो रात से अधिक ठहरती है, वह मर्यादा-उल्लंघन के कारण दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

१२. वर्षावास में रही हुई साध्वियाँ जिसको अग्रणी मानकर रह रही हो उसके कालधर्म प्राप्त होने पर शेष साध्वियो मे जो साध्वी योग्य हो, उसकी निश्रा मे रहना चाहिए।

यदि अन्य कोई साध्वी नेतृत्व करने योग्य न हो और स्वयं ने भी आचार-प्रकल्प का अध्ययन पूर्ण न किया हो तो उसे मार्ग मे एक-एक रात्रि ठहरते हुए जिस दिशा में अन्य साधर्मिणी साध्वियाँ विचरती हो, उस दिशा मे जाना चाहिए। मार्ग में उसे विचरने के लक्ष्य से ठहरना नही कल्पता है। यदि रोगादि का कारण हो तो ठहरना कल्पता है।

रोगादि के समाप्त होने पर यदि कोई कहे कि "हे आर्य ! एक या दो रात और ठहरो।" तो उसे एक या दो रात और ठहरना कल्पता है। किन्तु एक या दो रात से अधिक ठहरना नहीं कल्पता है। जो साध्वी एक या दो रात से अधिक ठहरती है, वह मर्यादा-उल्लघन के कारण दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

11. In case while nuns are moving from village to village, the nun whom they have accepted as their head nun in that group dies, the remaining nuns should remain under the supervision of that nun whom they consider capable of their leadership.

In case no other nun is capable of leading them and they themselves are also not fit to be head of the group as they have not completed the study of *Nisheeth Sutra* and others, then they should move in the direction in which other *Sadhvis* of their order are moving about spending only a night each on their way where necessary. They should not stay in the way for the purpose of propagating the mission. They can, however, stay in case of illness.

If after the illness is cured, someone requests them—"O the blessed ! Kindly stay for a day or two more." Then they can stay for one or two

nights more, but they are not allowed to stay for more than one or two nights A nun who stays for more than one or two nights, crosses the limits laid down and is therefore liable for *paryashchit* of reduction in period of monkhood or *prayashchit*-austerities.

12. If the nun accepted as head nun in the group dies, the remaining nuns should stay under supervision of the nun who is fit for that post

If no other nun is fit to lead them and they have also not completed their study of *Achar-Prakalp*, they should go in the direction in which other nuns of same order are staying having a night's rest on the way where necessary. They can stay longer in case of illness

After cure of illness if someone says—"O the blessed ! Kindly stay for a night or two then they can stay for one or two nights In case she stays for more than one or two nights, she is liable for *prayashchit* of reduction of period of monkhood or *prayashcit* austerities due to crossing the limits laid down.

विवेचन : चौथे उद्देशक के ग्यारहवे-बारहवे सूत्र मे अग्रणी साधु के कालधर्म-प्राप्त हो जाने का वर्णन है और यहाँ अग्रणी साध्वी के कालधर्म-प्राप्त हो जाने का वर्णन है। अन्य साध्वी को प्रमुख बनने या बनाने का अथवा विहार करने का विवेचन चौथे उद्देशक के समान समझना चाहिए।

Elaboration—In the eleventh and twelfth aphorism of the fourth *uddeshak*, there is the description concerning the death of the head monk while here the death of head nun has been discussed The description relating to fitness for being the head or selection of the head or of moving (from village to village) should be considered similar to the one as mentioned in *uddeshak* four.

प्रवर्तिनी के द्वारा पद देने का निर्देश THE ORDER OF A PRAVARTINI GRANTING A POST

१३. पवत्तिणी य गिलायमाणी अन्नयरं वएज्जा–"मए णं अज्जे ! कालगयाए समाणीए इयं समुक्कसियव्वा।" सा य समुक्कसिणारिहा समुक्कसियव्वा, सा य नो समुक्कसिणारिहा नो समुक्कसियव्वा।

अत्थि य इत्थ अण्णा काइ समुक्कसिणारिहा सा समुक्कसियव्वा। नत्थि य इत्थ अण्णा काइ समुक्कसिणारिहा सा चेव समुक्कसियव्वा। ताए च णं समुक्किट्ठाए परा वएज्जा–"दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जे। निक्खिवाहि" ताए णं निक्खिवमाणाए नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा।

जाओ साहिम्मणीओ अहाकप्पं नो उट्ठाए विहरंति सव्वासिं तासिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा।

१४. पवत्तिणी य ओहायमाणी अन्नयरं वएज्जा–"मए णं अज्जे ! ओहावियाए समाणीए इयं समुक्कसियव्वा।" सा य समुक्कसिणारिहा समुक्कसियव्वा, सा य नो समुक्कसिणारिहा नो समुक्कसियव्वा।

अत्थि य इत्थ अण्णा काइ समुक्कसिणारिहा सा समुक्कसियव्वा। नत्थि य इत्थ अण्णा काइ समुक्कसिणारिहा सा चेव समुक्कसियव्वा। ताए च णं समुक्किट्ठाए परा वएज्जा–"दुस्समुक्किट्ठं ते अज्जे! निक्खिवाहि" ताए णं निक्खिवमाणाए नत्थि केइ छेए वा परिहारे वा।

जाओ साहिम्मणीओ अहाकप्पं नो उट्ठाए विहरंति सव्वासिं तासिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा।

१३. रुग्ण प्रवर्तिनी किसी प्रमुख साध्वी से कहे कि "हे आर्ये ! मेरे कालधर्म प्राप्त होने पर अमुक साध्वी को मेरे पद पर स्थापित करना।" यदि प्रवर्तिनी द्वारा निर्दिष्ट वह साध्वी उस पद पर स्थापन करने योग्य हो तो उसे स्थापित करना चाहिए। यदि वह उस पद पर स्थापन करने योग्य न हो तो उसे स्थापित नही करना चाहिए।

यदि समुदाय मे अन्य कोई साध्वी उस पद के योग्य हो तो स्थापित करना चाहिए। यदि समुदाय मे अन्य कोई भी साध्वी उस पद के योग्य न हो तो प्रवर्तिनी-निर्दिष्ट साध्वी को ही उस पद पर स्थापित करना चाहिए। उसको उस पद पर स्थापित करने के बाद कोई गीतार्थ साध्वी कहे कि "हे आर्ये ! तुम इस पद के अयोग्य हो। अत. इस पद को छोड दो।" (ऐसा कहने पर) यदि वह उस पद को छोड दे तो वह दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र नहीं होती है।

जो स्वधर्मिणी साध्वियाँ कल्प (उत्तरदायित्व) के अनुसार उसे प्रवर्तिनी आदि पद छोडने के लिए न कहे तो वे सभी स्वधर्मिणी साध्वियाँ उक्त कारण से दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

१४. सयम-परित्याग कर जाने वाली प्रवर्तिनी किसी प्रमुख साध्वी से कहे कि "हे आर्ये ! मेरे चले जाने पर अमुक साध्वी को मेरे पद पर स्थापित करना।" यदि वह साध्वी उस पद पर स्थापन करने योग्य हो तो उसे उस पद पर स्थापन करना चाहिए। यदि वह उस पद पर स्थापन करने योग्य न हो तो उसे स्थापित नही करना चाहिए।

यदि समुदाय मे अन्य कोई साध्वी उस पद के योग्य हो तो स्थापित करना चाहिए। यदि समुदाय में अन्य कोई भी साध्वी उस पद के योग्य न हो तो प्रवर्तिनी-निर्दिष्ट साध्वी को ही उस पद पर स्थापित करना चाहिए। उसको उस पद पर स्थापित करने के बाद कोई गीतार्थ साध्वी कहे कि "हे आर्ये ! तुम इस पद के अयोग्य हो। अतः इस पद को छोड दो।" (ऐसा कहने पर) यदि वह उस पद को छोड़ दे तो वह दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र नही होती है।

जो स्वधर्मिणी साध्वियाँ कल्प (उत्तरदायित्व) के अनुसार उसे प्रवर्तिनी आदि पद छोडने के लिए न कहें तो वे सभी स्वधर्मिणी साध्वियाँ उक्त कारण से दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त की पात्र होती हैं।

13. A *pravartını* who is ill asks a senior nun—"O the blessed ! After my death, appoint such and such nun on my post." In case that nun is fit to be appointed as *pravartını*, she should be appointed on that vacant post. In case she is not fit to be appointed as such, she should not be so appointed.

In case in the group, another nun is fit to be appointed to that post, she should be appointed. If no other nun is fit to be appointed to that

post, the nun pointed out by the *pravartini* should be appointed to the post. In case after that nun is installed on the post of *pravartini*, some learned nun says—"O the blessed ! You are not fit for this post. So you should resign this post." In that case, she is not liable for any *prayashchit* of reduction in period of monkhood or *prayashchit*-austerities if she resigns.

The nuns of the same order who do not ask her to resign the post of *pravartini* and the like, all of them shall be liable for *prayashchit* of reduction of period of monkhood or of *prayashchit*-austerities.

14. A *pravartini* is leaving the ascetic life and advises a senior nun— "O the blessed ! After my departure instal such and such nun on my post." If that nun is fit for the post she should be appointed. In case she is not fit for the post, she should not be appointed

In case in the group, another nun is fit to be appointed to that post, she should be appointed as such. If no other nun in the group is fit to be appointed to that post, the nun suggested by the *pravartini* should be appointed to that post. In case after she has been installed on the post, some senior nun learned in Agams, tells—"O the blessed ! You are not fit for this post So you should resign this post " If at that time she resigns her post, she is not liable for any *prayashchit* of reduction in period of monkhood or *prayashchit*-austerities

The nuns of the same order who according to their responsibility do not ask her to resign the post, they all shall be liable for reduction in the period of monkhood or *prayashchit*-austerities because of the said fault.

विवेचन : आचार्य अपने गच्छ के सम्पूर्ण साधु-साध्वियो के धर्मशासक होते है। अत उनका विशिष्ट निर्णय तो सभी साध्वियो को स्वीकार करना होता ही है, अर्थात् उनके निर्देशानुसार प्रवर्तिनी पद पर किसी साध्वी को नियुक्त किया जा सकता है, किन्तु सामान्य विधान की अपेक्षा सूत्रानुसार साध्वियाँ या प्रवर्तिनी आदि भी अन्य योग्य साध्वी को प्रवर्तिनी आदि पद पर नियुक्त कर सकती है। यह इन सूत्रो से स्पष्ट होता है।

Elaboration—The *Acharya* is the administrator of all the monks and nuns in the group (*gachha*). So all the nuns have to accept his special decision. In other words any nun can be appointed to the post of *pravartini* according to his direction. But in the context of common code, the nuns or *pravartini* and the like can appoint any capable nun to the post of *pravartini* as provided in the scriptures. This is quite evident from these aphorisms.

आचारप्रकल्प—विस्मृत को पद देने का विधि—निषेध
PROCEDURE OF APPOINTING OR NOT ONE WHO HAS FORGOTTEN ACHAR-PRAKALP

१५. निग्गंथस्स णं नव—डहर—तरुणस्स आयारकपप्पे नामं अज्झयणे परिब्भट्ठे सिया, से य पुच्छियब्वे—"केण ते कारणेण अज्जो ! आयारपकप्पे नामं—अज्झयणे परिब्भट्ठे ? किं आबाहेणं उदाहु पमाएणं ?"

से य वएज्जा—"नो आबाहेणं, पमाएणं", जावज्जीवं तस्स तप्पत्तियं नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

से य वएज्जा—"आबाहेणं, नो पमाएणं, से य संठवेस्सामि त्ति" संठवेज्जा एवं से कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा। से य "संठवेस्सामि" त्ति नो संठवेज्जा, एवं से नो कप्पइ आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१६. निग्गंथीए णं नव—डहर—तरुणियाए आयारपकप्पे नामं अज्झयणे परिब्भट्ठे सिया, सा य पुच्छियव्वा—"केण भे कारणेणं अज्जे ! आयारपकप्पे नामं—अज्झयणे परिब्भट्ठे ? किं आबाहेणं उदाहु पमाएणं ?"

सा य वएज्जा—"नो आबाहेणं, पमाएणं", जावज्जीवं तीसे तप्पत्तियं नो कप्पइ पवत्तिणित्तं वा गणावच्छेइणित्तं वा उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

सा य वएज्जा—"आबाहेणं, नो पमाएणं, सा य संठ्पेस्सामि त्ति" संठवेज्जा एवं से कप्पइ पवत्तिणित्तिं वा गणावच्छेइणित्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा। सा य "संठवेस्सामि" त्ति नो संठवेज्जा, एवं से नो कप्पइ पवत्तिणित्तिं वा गणावच्छेइणित्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१५. नवदीक्षित, बाल एवं तरुण निर्ग्रन्थ के यदि आचारप्रकल्प (आचाराग–निशीथसूत्र) का अध्ययन विस्मृत हो जाए तो उसे पूछा जाए कि "हे आर्य ! तुम किस कारण से आचारप्रकल्प–अध्ययन को भूल गए हो, क्या किसी रोग आदि कारण से भूले हो या प्रमाद से ?"

यदि वह कहे कि "किसी रोगादि कारण से नही अपितु प्रमाद से विस्मृत हुआ है।" तो उसे उक्त कारण से जीवनपर्यन्त आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

यदि वह कहे कि "अमुक रोगादि कारण से विस्मृत हुआ है–प्रमाद से नहीं। अब मैं आचारप्रकल्प पुनः कण्ठस्थ कर लूँगा।" ऐसा कहकर कण्ठस्थ कर ले तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है। यदि वह आचारप्रकल्प को पुनः कण्ठस्थ कर लेने को कहकर भी कण्ठस्थ न करे तो उसे आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

१६. नवदीक्षित, बाल एव तरुण निर्ग्रन्थी को यदि आचारप्रकल्प–अध्ययन विस्मृत हो जाए तो उसे पूछना चाहिए कि "हे आर्ये ! तुम किस कारण से आचारप्रकल्प–अध्ययन भूल गई हो, क्या किसी कारण से भूली हो या प्रमाद से ?"

यदि वह कहे कि "किसी कारण से नही अपितु प्रमाद से विस्मृत हुआ है।" तो उसे उक्त कारण से जीवनपर्यन्त प्रवर्तिनी या गणावच्छेदिनी पद देना या धारण करना नहीं कल्पता है।

यदि वह कहे कि "अमुक कारण से विस्मृत हुआ है-प्रमाद से नही। मै पुनः आचारप्रकल्प को कण्ठस्थ कर लूँगी।" ऐसा कहकर कण्ठस्थ कर ले तो उसे प्रवर्तिनी या गणावच्छेदिनी पद देना या धारण करना कल्पता है। यदि वह आचारप्रकल्प को पुन कण्ठस्थ कर लेने को कहकर भी कण्ठस्थ न करे तो उसे प्रवर्तिनी या गणावच्छेदिनी पद देना या धारण करना नही कल्पता है।

15. In case a newly initiated monk, a monk of a few years of monkhood (*baal*) or a young (*tarun*) monk forgets his study of *Achar-prakalp* (*Acharang* and *Nisheeth Sutra*), then he should be asked—"O the blessed ! What is the reason for your having forgotten *Achar-prakalp*. Have you forgotten due to some illness or due to any slackness.'

In case he replies—"I have not forgotten it due to any illness I have forgotten it due to my slackness (*pramad*)" Then he should not be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* throughout his life nor he should hold any such post.

If he says—"I have forgotten it due to such and such illness and not due to any slackness." I shall now memorize *Achar-prakalp* again and after saying so he actually memorizes it, then he can be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* and he can hold such post In case he is not able to memorize even after assuring to do so, he cannot be offered the post of *Acharya* up to *ganavachhedak* nor he can hold any such post."

16. In case a newly initiated nun, a nun of a few years of life of ascetic restraint or a young (*tarun*) nun forgets her study of *Achar-prakalp*, then she should be asked—"O the blessed ! what is the reason for your having forgotten the *Achar-prakalp* Have you forgotten it due to some illness or it is due to any slackness ?"

In case she replies—"I have not forgotten it due to any illness. I have forgotten it due to my slackness." Then she should not be offered the post of *pravartini* or *ganavachhedini* throughout her life nor she should hold any such post

If she says—"I have forgotten it due to such and such illness and not due to any slackness I shall now memorise *Achar-prakalp* again." and after saying so, she actually memorises *Achar-prakalp*, then she can be offered the post of *pravartini* or *ganavachhedini* and she can hold such post. In case she is not able to memorise even after such an assurance,

she cannot be offered the post of *pravartini* or *ganavachhedini* nor she can hold any such post.

विवेचन : तीसरे उद्देशक के तीसरे सूत्र में तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को "आचारप्रकल्प" कण्ठस्थ धारण करने का कहा गया है और इन सूत्रों में प्रत्येक श्रमण-श्रमणी को आचारप्रकल्प कण्ठस्थ करना एव उसे कण्ठस्थ रखना आवश्यक कहा गया है। साथ ही गच्छ के प्रमुख श्रमणो का यह कर्त्तव्य बताया गया है कि वे समय-समय पर यह जाँच भी करते रहे कि किसी श्रमण को आचारप्रकल्प विस्मृत तो नही हो रहा है। यदि विस्मृत हुआ है तो उसके कारण की जानकारी करनी चाहिए।

सूत्र मे यह भी कहा गया है कि आचारप्रकल्प को भूलने वाला श्रमण या श्रमणी यदि नवदीक्षित है, बालवय या तरुणवय वाला है तो उसे सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। वह प्रायश्चित्त दो प्रकार का है, यथा—

(१) किसी कारणवश भूलने पर पुन कण्ठस्थ करने तक वह किसी भी पदवी को धारण नहीं कर सकता तथा (सिंघाडा-प्रमुख) बनकर विचरण भी नहीं कर सकता।

(२) यदि वह प्रमादवश भूल जाता है तो वह जीवनपर्यन्त किसी पदवी को धारण नही कर सकता तथा सिघाडा-प्रमुख बनकर विचरण भी नही कर सकता।

"आचारप्रकल्प" से यहाँ आचाराग और निशीथसूत्र का निर्देश किया गया है। ये दोनो ही श्रमण आचार व व्यवहार शुद्धि के प्रमुख आधार सूत्र हैं। अत. इन्हे प्रत्येक श्रमण को कण्ठस्थ रखना चाहिए। आचारप्रकल्प का धारक भिक्षु ही जघन्य गीतार्थ या जघन्य बहुश्रुत कहा गया है। वही स्वतंत्र विहार या गोचरी के योग्य होता है। *(आधार हिन्दी विवेचन, पृ ३६५)*

Elaboration—According to third aphorism in third *uddeshak*, a *shraman* having three year period of monkhood to his credit should have in his memory the entire *Achar-prakalp* But in the present aphorisms for every monk and nun it is essential to memorise *Achar-prakalp* and retain the same in memory Simultaneously, it is the duty of senior monks that they know and then examine whether any one of them has forgotten *Achar-prakalp*. If any one has forgotten it, they should try to know its causes.

It is also mentioned in the *Sutra* that in case the monk or nun who has forgotten *Achar-prakalp* is newly initiated, is of tender age or is of young age then he is liable for *prayashchit* as mentioned in the *Sutra*. That *prayashchit* is of two types namely—

(1) In case he forgets due to some reason, he cannot hold any post till he does not memorise it again. He cannot even be head of any group during his wanderings.

(2) If he forgets due to slackness, he cannot hold any post throughout his life and he cannot move about as head of any small group.

Here *Achar-prakalp* means Acharang and Nisheeth Sutra. These two are the most important *Agams* for purity of ascetic conduct and mutual behaviour. So every *shraman* should memorise them. A *bhikshu* who holds in his memory the *Achar-prakalp* is the least learned (*geetarth*) and the least *bahushrut*. Only such an ascetic is capable of independent wandering or independently going for collecting food.

स्थविर के लिए आचारप्रकल्प के पुनरावर्तन करने का विधान
PROVISION OF REVISION OF ACHAR-PRAKALP BY STHAVIR

१७. थेराणं थेरभूमिपत्ताणं आयारपकप्पे नामं अज्झयणे परिब्भट्ठे सिया, कप्पइ तेसिं संठवेत्ताण वा, असंठवेत्ताण वा आयरियत्तं वा जाव गणावच्छेइयत्तं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१८. थेराणं थेरभूमिपत्ताणं आयारपकप्पे नामं अज्झयणे परिब्भट्ठे सिया, कप्पइ तेसिं सन्निसण्णाण वा, संतुयट्टाण वा, उत्ताणयाण वा, पासिल्लयाण वा आयरपकप्पं नामं अज्झयणं दोच्चंपि तच्चंपि पडिपुच्छित्तए वा, पडिसारेत्तए वा।

१७. कोई स्थविर वृद्ध अवस्था के कारण यदि आचारप्रकल्प-अध्ययन विस्मृत हो जाए (और पुन: कण्ठस्थ करे या न करे) तो भी उन्हें आचार्य यावत् गणावच्छेदक पद देना या धारण करना कल्पता है।

१८. कोई स्थविर वृद्ध अवस्था के कारण यदि आचारप्रकल्प-अध्ययन विस्मृत हो जाए तो उन्हे बैठे हुए, लेटे हुए, उत्तानासन से सोये हुए या पार्श्व भाग से शयन किये हुए भी आचारप्रकल्प-अध्ययन दो-तीन बार पूछकर स्मरण करना और पुनरावृत्ति करना कल्पता है।

17. A *Sthavir* due to old age may forget what he had studied in *Achar-prakalp* (and he may or may not memorise it again). Even then he can be appointed *Acharya* up to *ganavachhedak* or hold such a post.

18. If a *Sthavir* due to old age forgets *Achar-prakalp* then he is allowed to recollect it (or memorise) it while sitting, lying down or sleeping on one side or sleeping flat by asking two-three times and by revising it.

परस्पर आलोचना करने के विधि-निषेध PROCEDURE OF DOING/NOT DOING MUTUAL SELF-CENSURE

१९. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो णं कप्पइ अण्णमण्णस्स अंतिए आलोइत्तए।

अत्थि य इत्थ णं केइ आलोयणारिहे कप्पइ णं तस्स अंतिए आलोइत्तए। नत्थि य इत्थ णं केइ आलोयणारिहे एवं ण कप्पइ अण्णमण्णस्स अंतिए आलोइत्तए।

१९. जो साधु और साध्वियाँ साम्भोगिक है, उन्हें परस्पर एक-दूसरे के समीप आलोचना करना नहीं कल्पता है।

यदि स्व-पक्ष में (अपने गण में) कोई आलोचना सुनने योग्य (आचार्य-उपाध्याय या प्रवर्तिनी) हो तो उनके समीप ही आलोचना करना कल्पता है। यदि स्व-पक्ष में आलोचना सुनने योग्य कोई न हो तो साधु-साध्वी को परस्पर आलोचना करना कल्पता है।

19. Those monks and nuns who are *Sambhogik* (can dine together), they can self-censure before each other.

In case, *Acharya, Upadhyaya* or *pravartini* is available in one's group who is capable of listening to the self-censure, then one is allowed to do self-censure before him. In case no such person is available, then the monk and the nuns can self-censure (their ascetic conduct) before each other.

विवेचन : बृहत्कल्पसूत्र के चौथे उद्देशक मे बारह प्रकार के सांभोगिक व्यवहारो का वर्णन करते हुए उत्सर्ग विधि से साध्वियो के साथ छह सांभोगिक व्यवहार रखना कहा गया है। तदनुसार साध्वियो के साथ एक मांडलिक आहार का व्यवहार नही होता है तथा कारण के बिना उनके साथ आहारादि का लेन-देन भी नही होता है, तो भी वे साधु-साध्वी एक आचार्य की आज्ञा मे होने से और एक गच्छ वाले होने से वे साभोगिक कहे जाते हैं।

ऐसे सांभोगिक साधु-साध्वियों के लिए भी आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि परस्पर करना निषिद्ध है, अर्थात् साधु अपने दोषो की आलोचना, प्रायश्चित्त आचार्य, उपाध्याय, स्थविर आदि के पास ही करे और साध्वियाँ अपनी आलोचना, प्रायश्चित्त प्रवर्तिनी, स्थविरा आदि योग्य श्रमणियो के पास ही करें, यह विधि मार्ग या उत्सर्ग मार्ग है।

अपवाद मार्ग के अनुसार किसी गण में साधु या साध्वियों मे कभी कोई आलोचना श्रवण के योग्य न हो या प्रायश्चित्त देने योग्य न हो तब परिस्थितिवश साधु स्वगच्छीय साध्वी के पास आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त कर सकता है और साध्वी स्वगच्छीय साधु के पास आलोचना आदि कर सकती है।

Elaboration—In the fourth *uddeshak* of *Brihat-kalp Sutra* while describing twelve types of mutual dealings, it has been stated that as a general rule dealing with nuns can be maintained for six months. According to it a monk cannot dine in a group with nuns and, without any special reason, the food and the like cannot be mutually offered. Even then, as the monks and nuns are under the overall control of one *Acharya*, and in one *gachha*, they are called *sambhogik*.

Even for such *sambhogik* monks and nuns it is prohibited to mutually do self-censure, *pratikraman, prayashchit* and the like. In other words a monk should do self-censure and *prayashchit* for his faults before the *Acharya, Upadhyaya, sthavir* and the like and the nuns should do it only before *pravartini, sthavira* (senior learned nun) and such nuns who are capable of listening to it (and awarding *prayashchit*). This is the normal procedure.

As an exception, if no monk or nun in their respective group is available who is capable of listening to self-censure or of awarding *prayashchit*, then due to this particular situation, a monk can do self-censure, *pratikraman* and *prayashchit* (repentance for his faults) before a nun of his *gachha* (order) and a nun can do it before a monk of her *gachha*.

परस्पर सेवा करने का विधि-निषेध PROCEDURE OF DOING/NOT DOING MUTUAL SERVICE

२०. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो णं कप्पइ अण्णमण्णेणं वेयावच्चं कारवेत्तए।

अत्थि य इत्थ णं केइ वेयावच्चकरे कप्पइ णं तेणं वेयावच्चं कारवेत्तए। नत्थि य इत्थ णं केइ वेयावच्चकरे, एवं णं कप्पइ अण्णमण्णेणं वेयावच्चं कारवेत्तए।

२०. जो साधु और साध्वियाँ साभोगिक हैं, उन्हें परस्पर एक-दूसरे की वैयावृत्य करना नही कल्पता है।

यदि स्व-पक्ष मे कोई वैयावृत्य करने वाला हो तो उसी से वैयावृत्य कराना कल्पता है। यदि स्व-पक्ष में वैयावृत्य करने वाला कोई न हो तो साधु-साध्वी को परस्पर वैयावृत्य करना कल्पता है।

20. Monks and nuns who are *sambhogik* cannot do service (*vaiyavritya*) of each other.

In case some one is available in the group who can serve, then one should get service of that one. In case none is available in the group who can serve then a monk can do service of a nun and a nun can do of a monk

विवेचन : साधु-साध्वी के संयम हेतु शरीर सम्बन्धी और उपकरण सम्बन्धी जो भी आवश्यक कार्य हो वह प्रथम तो स्वय ही करना चाहिए और कभी कोई कार्य साधु-साधुओ से और साध्वियाँ-साध्वियो से भी करवा सकती है, यह विधिमार्ग है।

रोग आदि कारणो से या किसी आवश्यक कार्य के करने मे असमर्थ होने से परिस्थितिवश विवेकपूर्वक साधु-साध्वी परस्पर भी अपना कार्य करवा सकते हैं। यह अपवाद मार्ग है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विशेष परिस्थिति के बिना साधु-साध्वी को परस्पर कोई भी कार्य नही करवाना चाहिए। विशेष परिस्थिति मे निम्न सेवा-कार्य कराये जा सकते है-

(१) आहार-पानी लाकर देना या लेना अथवा निमत्रण करना।

(२) वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों की याचना करके लाकर देना या स्वय के याचित उपकरण देना।

(३) उपकरणो का परिकर्म कार्य-सींना, जोडना, रोगान आदि लगाना।

(४) वस्त्र, रजोहरण आदि धोना।

(५) रजोहरण आदि उपकरण बनाकर देना।

(६) प्रतिलेखन आदि कर देना।

इत्यादि अनेक कार्य यथासम्भव समझ लेने चाहिए। इन्हें आगाढ परिस्थितियों के बिना परस्पर करना-करवाना साधु-साध्वियों को नहीं कल्पता है एवं करने-करवाने पर गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

तात्पर्य यह है कि साथ में रहने वाले साधु जो सेवा-कार्य कर सकते हों तो साध्वियो से नहीं कराना चाहिए, उसी प्रकार साध्वियो को भी जब तक अन्य साध्वियाँ करने वाली हो तब तक साधुओं से अपना कोई भी कार्य नही करवाना चाहिए। *(भाष्यानुसार हिन्दी विवेचन, पृ ३७०)*

Elaboration—Whatever are the necessary duties in respect of body and the material, a monk or nun is supposed to do, he/she should primarily perform himself/herself in order to safeguard ascetic discipline. Sometimes a nun may get it done from other nun or monk from other monk. This is the normal procedure laid down in the code.

If due to illness and the like, a monk or a nun is not capable of discharging essential duties relating to his/her own person, they (monk and nun) can get it done mutually with prudence in view of that particular situation. This is an exception. Thus it is evident that without any special situation, monks and nuns should not get any work done from each other. In special circumstances, the following activities relating to service can be got done.

(1) To bring food and water or to invite for it.

(2) To collect cloth, pot and the like for them and then to give it to them or to give such things to the needy monk while they have been actually collected for themselves.

(3) To do needy repair of articles (cloth, pot etc) such as stitching, joining, colouring and the like.

(4) To wash clothes, broom and the like.

(5) To prepare holy broom and the like and then to give them to the needy.

(6) To conduct meticulous examinations of articles for them.

Suchlike works may be clearly understood as far as possible. The monks and nuns are not allowed to do suchlike things or to get done among themselves in the absence of extremely abnormal circumstances. If they do it or get it done (in normal situation) they are liable for *guruchaumasi prayashchit.*

In brief it means that if the nearby monks can do the activities relating to service, they should not get it done from nuns. Similarly the nuns should not get their work done from monks if other nuns who can do that job are available

२१. निग्गंथं च णं राओ वा वियाले वा दीहपुट्ठो लूसेज्जा, इत्थी वा पुरिसस्स ओमावेज्जा, पुरिसो वा इत्थीए ओमावेज्जा, एवं से कप्पइ, एवं से चिट्ठइ, परिहारं च से नो पाउणइ, एस कप्पो थेर–कप्पियाणं।

एवं से नो कप्पइ, एवं से नो चिट्ठइ, परिहारं च से पाउणइ, एस कप्पे जिणकप्पियाणं।

२१. यदि किसी निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी को रात्रि या विकाल (सन्ध्या) में सर्प डस ले और उस समय कोई स्त्री निर्ग्रन्थ की और पुरुष निर्ग्रन्थी की सर्पदंश–चिकित्सा करे तो इस प्रकार उपचार कराना उनको कल्पता है। इस प्रकार उपचार कराने पर भी उनकी निर्ग्रन्थता में दोष नहीं आता तथा वे प्रायश्चित्त के पात्र नही होते हैं। यह स्थविरकल्पी साधुओं का आचार है।

जिनकल्प वालो को इस प्रकार उपचार कराना नहीं कल्पता है, इस प्रकार उपचार कराने पर उनका जिनकल्प नहीं रहता है और वे प्रायश्चित्त के पात्र होते है। यह जिनकल्पी साधुओं का आचार है।

21. If at night or at sunset, a snake bites a monk or a nun and at that time a woman treats a monk or a man treats a nun then there is nothing bad about it. They do not commit any fault in their ascetic restraints on this account and they are not liable for any *prayashchit* This is the ascetic conduct of *Sthavirkalpi* monks

The ascetic practicing *Jin-kalp* conduct are not allowed to get treatment in this manner. If they get such treatment they lose their *Jin-kalp* conduct and are liable for *prayashchit*. This is the ascetic conduct of *Jin-kalpi* monks.

विशेष–प्रस्तुत सूत्रविधान के अनुसार स्थविरकल्पी की सयमसाधना शरीर–सापेक्ष या शरीर–निरपेक्ष दोनो प्रकार की होती है, किन्तु जिनकल्प–साधना शरीर–निरपेक्ष ही होती है। उसमे स्वेच्छा का कोई विकल्प नही रहता है।

॥ पाँचवाँ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—According to the present provision in the code, the ascetic practice of *Sthavirkalp* ascetic is of both the types in the context of taking due care of the body and in not taking care of the body at all or ignoring any care of the body. But the ascetic practice of *Jin-kalpi* ascetics is totally ignoring care of the body. In there case there is no exception and one's desire has no part to play.

● FIFTH UDDESHAK CONCLUDED ●

छट्ठा उद्देशक
SIXTH UDDESHAK

स्वजन-परिजन-गृह में गोचरी जाने का विधि-निषेध

PROCEDURE OF COLLECTING FOOD FROM FAMILY MEMBERS AND OTHERS

१. भिक्खु य इच्छेज्जा नायविहिं एत्तए, नो से कप्पइ से थेरे अणापुच्छित्ता नायविहिं एत्तए। कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता नायविहिं एत्तए। थेरा य से वियरेज्जा, एवं से कप्पइ नायविहिं एत्तए। थेरा य से नो वियरेज्जा, एवं से नो कप्पइ नायविहिं एत्तए। जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे नायविहिं एइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

नो से कप्पइ अप्पसुयस्स अप्पागमस्स एगाणियस्स नायविहिं एत्तए। कप्पइ से जो तत्थ बहुस्सुए बब्भागमे तेण सद्धिं नायविहिं एत्तए।

तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे, पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे, कप्पइ से चाउलोदणे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे, पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं कप्पइ से दोवि पडिगाहित्तए। तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं नो से कप्पइ दो वि पडिगाहित्तए।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए। जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते नो ने कप्पइ पडिगाहित्तए।

१. भिक्षु यदि स्वजनो के घर गोचरी जाना चाहे तो स्थविरो से पूछे बिना स्वजनो के घर जाना नहीं कल्पता है। स्थविरों से पूछकर जाना कल्पता है। स्थविर यदि आज्ञा दे तो स्वजनों के घर जाए, स्थविर यदि आज्ञा न दे तो स्वजनो के घर पर नही जाए। स्थविरों की आज्ञा के बिना यदि स्वजनों के घर जाए तो वे दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

अल्पश्रुत और अल्पआगमज्ञ अकेले भिक्षु और अकेली भिक्षुणी को स्वजनों के घर जाना नहीं कल्पता है। किन्तु समुदाय मे जो बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ भिक्षु हों, उनके साथ स्वजनों के घर जाना कल्पता है।

ज्ञातिजन के घर में भिक्षा के लिए जाने वाले निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के वहाँ जाने से पहले चावल रँधे हुए हो और दाल पीछे से पके तो चावल लेना कल्पता है, किन्तु दाल लेना नही कल्पता है। वहाँ आगमन से पूर्व दाल पकी हुई हो और चावल पीछे से रँधे तो दाल लेना कल्पता है, किन्तु चावल लेना नहीं कल्पता है। वहाँ आगमन से पूर्व दाल और चावल दोनों रँधे हुए हों तो दोनो लेने कल्पते है और दोनों बाद में रँधे हों तो दोनों लेने नहीं कल्पते है।

इस प्रकार ज्ञातिजन के घर भिक्षु के आगमन से पूर्व जो आहार अग्नि आदि से दूर रखा हुआ हो, वह लेना कल्पता है। जो आगमन के बाद में अग्नि से दूर रखा गया हो, वह लेना नहीं कल्पता है।

1. In case a *bhikshu* wants to go to the home of his relatives, he is not allowed to do so without prior permission of *Sthavirs*. In case the *Sthavir* allows, he can go to the houses of his relatives. If the *Sthavir* does not permit, he should not go there. In case he goes to these families without the permission of the *Sthavir*, he is liable for *pryaashchit* of reduction in ascetic period of monkhood or of *prayashchit*-austerities.

A *bhikshu* or nun who has little knowledge of Scriptures and of *Agams* is not allowed to go alone to the houses of his relatives. But he or she can go there with such a *bhikshu* in the group who is well read in scriptures (*bahushrut*) and in *Agams* (*Agamajna*).

A monk goes to the houses of his relatives for collection of food. If the rice is already cooked but the pulses get ready only after his arrival then he is allowed to take rice but not the pulses. In case the pulse is already cooked but the rice gets properly cooked only after his arrival, he can take rice but not the pulses. In case both rice and the pulses are already cooked before his arrival, he can accept both. If both pulses and rice get cooked only after his arrival, he can take none of them

Thus, from the house of his relative, a *bhikshu* can take only that food which is placed away from the fire before his arrival The food which is kept away from the fire after his arrival cannot be accepted by him.

विवेचन : जो भिक्षु बहुश्रुत है, वह गुरुजनो से आज्ञा प्राप्त करने के बाद स्वयं की प्रमुखता से ज्ञातिजनों के घरों में भिक्षार्थ जा सकता है, किन्तु जो भिक्षु अबहुश्रुत है एव अल्प दीक्षा-पर्याय वाला (तीन वर्ष से कम) है, वह आज्ञा प्राप्त करके भी स्वय की प्रमुखता से नही जा सकता, किन्तु किसी बहुश्रुत भिक्षु के साथ ही अपने ज्ञातिजनो के घर जा सकता है। सूत्र मे 'णायविहिं' शब्द का प्रयोग सूचित करता है कि ज्ञातिजनो के घर किसी भी प्रयोजन से जाने मे उक्त सूत्र मर्यादा का पालन करना चाहिए।

इस सूत्राश में यह बताया गया है कि पारिवारिक लोगों के घर मे गोचरी के लिए प्रवेश करने के बाद कोई भी खाद्य पदार्थ निष्पादित हो या चूल्हे पर से चावल-दाल या रोटी-दूध आदि कोई भी पदार्थ हटाया जाए तो उसे नहीं लेना चाहिए। उस पदार्थ के हटाने मे साधु का निमित्त हो या न हो, ज्ञातिजनों के घरो मे ऐसे पदार्थ अग्राह्य हैं। वहाँ घर मे प्रवेश करने के पहले ही जो पदार्थ निष्पन्न हो या चूल्हे पर से उतरा हुआ हो, वही लेना चाहिए।

अपरिचित या अल्प-परिचित घरो मे उक्त पदार्थ लेने का सूत्र मे निषेध नहीं है। इसका कारण यह है कि अनुरागी ज्ञातिजन आदि भक्तिवश कभी साधु के निमित्त भी वह प्रवृत्ति कर सकते हैं जिससे अग्निकाय की विराधना होना सम्भव है, किन्तु अल्प-परिचित या अल्पानुरागी घरों में उक्त दोष की सम्भावना नहीं रहती है।

Elaboration—A *bhikshu* is *bahushrut* He, after securing the permission of his spiritual masters, can go to the houses of his relatives for collecting food because of his study in *Agams*. But a *bhikshu* who is

not a *bahushrut*, whose period of initiation is small (less than three years), he cannot go to the houses of his relatives alone even after securing the permission of his spiritual masters. He can go to the houses of his relatives only with a *bahushrut bhikshu*. The use of word '*nayavihin*' indicates that while going to houses of the members of his family for any purpose he should strictly follow the guidelines mentioned in the *Sutra*.

In the summary of this aphorism it has been mentioned that in case any food is prepared or removed from the stove after his arrival which may be rice, pulse or bread and the like then it shall not be taken It is immaterial whether that article has been removed because of the monks or not, but such material is not acceptable from the house of the family members. Only those articles which are already in cooked form before the monk/nun enters the house or has been removed already from the stove, can be taken

There is no prohibition in this aphorism of taking food and the like from those houses which are not familiar or which have become familiar only recently The underlying idea is that relatives, because of their worldly affection can out of sheer devotion do such an activity, in respect of a Sadhu, in which there is possibility of violence to fire-bodied living beings. But there is no possibility of such a fault being committed in those houses, which are not familiar.

आचार्य आदि के अतिशय **SPECIAL ATTRIBUTES OF AN ACHARYA**

२. आयरिय-उवज्झायस्स गणंसि पंच अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा-

(१) आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए निगिज्झिय-निगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा नाइक्कमइ। (२) आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चार-पासवणं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नाइक्कमइ। (३) आयरिय-उवज्झाए पभू वेयावाडियं, इच्छा करेज्जा, इच्छा नो करेज्जा। (४) आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगओ वसमाणे नाइक्कमइ। (५) आयरिय-उवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगओ वसमाणे नाइक्कमइ।

३. गणावच्छेइयस्स णं गणंसि दो अइसेसा पण्णत्ता, तं जहा-

(१) गणावच्छेइए अंतो उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगओ वसमाणे नाइक्कमइ। (२) गणावच्छेइए बाहिं उवस्सयस्स एगरायं वा दुरायं वा एगओ वसमाणे नाइक्कमइ।

२. गण में आचार्य और उपाध्याय के पाँच अतिशय होते हैं, यथा-

(१) आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के अन्दर धूल से भरे अपने पैरों से आकर के कपड़े से पोंछें या प्रमार्जन करें तो मर्यादा (जिनाज्ञा) का उल्लंघन नहीं होता है। (२) आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के अन्दर मल-मूत्रादि का त्याग व शुद्धि करें तो मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता है। (३) सशक्त आचार्य या उपाध्याय इच्छा हो तो सेवा के कार्य करें और इच्छा न हो तो न करें, फिर भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता है। (४) आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के अन्दर किसी विशेष कारण से यदि एक-दो रात अकेले रहें तो भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता है। (५) आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर किसी विशेष कारण से यदि एक-दो रात अकेले रहें तो भी मर्यादा का उल्लघन नहीं होता है।

३. गण मे गणावच्छेदक के दो अतिशय होते है, यथा-

(१) गणावच्छेदक उपाश्रय के अन्दर (किसी विशेष कारण से) यदि एक-दो रात अकेले रहें तो मर्यादा का उल्लंघन नही होता है। (२) गणावच्छेदक उपाश्रय के बाहर (किसी विशेष कारण से) यदि एक-दो रात अकेले रहे तो मर्यादा का उल्लघन नही होता है।

2. There are five special attributes of an *Acharya* and *Upadhyaya*. They are—

(1) In case an *Acharya* or *Upadhyaya* enters the *upashraya* with feet besmeared with dust and wipes it or cleans it with a cloth, he does not disobey the order of *Jinas*. (2) In case an *Acharya* goes for call of nature in the *upashraya* itself and cleans the relevant part of his body, he does not disobey the limitations. (3) A healthy *Acharya* or *Upadhyaya* can do an act of service if he so likes and may not do it if he has no desire for it. Still he does not transgress limitations of ascetic conduct. (4) In case an *Acharya* or *Upadhyaya* stays in the *upashraya* alone for any special reason, for one or two nights he does not transgress limitations laid in the code. (5) In case an *Acharya* or *Upadhyaya* spends one or two nights alone out of *upashraya* due to any special reason, he does not disobey limits laid down in the code.

3. There are two special attributes of a *ganavachhedak* in the group namely—

(1) In case a *ganavachhedak* stays in the *upashraya* alone for one or two nights (due to any special reason), he does not transgress limit laid down in the code. (2) In case a *ganavachhedak* stays alone out of *upashraya* for a night or two (due to any special reason), he is not guilty of ignoring limits laid down in the code.

विवेचन : आचारकल्प की कुछ विशेषताओं का यहाँ "अतिशय" शब्द से निर्देश किया गया है। स्थानांगसूत्र के पाँचवे (पृ. १७५ पर) और सातवें स्थान (पृ. ३२२) में भी आचार्य-उपाध्याय के पाँच और सात अतिशय

बताये हैं। वहाँ पाँच अतिशय तो प्रस्तुत सूत्र के समान हैं और सातवें स्थान के दो विशेष हैं, यथा- (१) उपकरणातिशय, और (२) भक्तपानातिशय।

सूत्रोक्त पाँच अतिशयों का तात्पर्य इस प्रकार है-

(१) आचार्य आदि उपाश्रय के भीतर भी पाँव का प्रमार्जन कर शुद्धि कर सकते हैं। (२) ग्रामादि के बाहर शुद्ध योग्य स्थंडिल के होते हुए भी वे उपाश्रय से संलग्न स्थंडिल में मल त्याग कर सकते हैं। (३) गोचरी आदि अनेक सामूहिक कार्य या वस्त्र-प्रक्षालन आदि सेवा के कार्य वे इच्छा हो तो कर सकते हैं अन्यथा शक्ति होते हुए भी अन्य से करवा सकते हैं। (४-५) विद्या-मन्त्र आदि के पुनरावर्तन हेतु अथवा अन्य किन्हीं कारणों से वे उपाश्रय के किसी एकान्त भाग मे अथवा उपाश्रय से बाहर अकेले एक या दो दिन रह सकते हैं। इन विद्या-मन्त्रों का उपयोग गृहस्थ हेतु करने का आगम में निषेध है तथापि साधु-साध्वी के लिए वे कभी इनका उपयोग कर सकते हैं।

गणावच्छेदक के अन्तिम दो अतिशय द्वितीय सूत्र में अलग से कहने का तात्पर्य यह है कि प्रथम तीन अतिशय गणावच्छेदक के लिए आवश्यक नहीं होते हैं, क्योंकि गणावच्छेदक-पद ऋद्धि-सम्पन्न पद न होकर कार्यवाहक पद हैं। अत उनके लिए अन्तिम दो अतिशय ही पर्याप्त हैं।

Elaboration—Some specialities of *Achar-kalp* have been pointed here as '*Atishaya*' In *Sthananga Sutra* at fifth *sthan* (*pp. 175*) and at seventh *sthan* (*pp. 332*) also five and seven *atishayas* respectively of *Acharya* and *Upadhyaya* have been narrated. Out of them five *atishayas* are the same as mentioned in the present aphorism while two *atishayas* of seventh *sthan* are special. They are—(1) *Upkaranatishaya*, and (2) *Bhaktpaanatishaya*

The underlying idea of five *atishayas* mentioned in the scriptures is as under—

(1) An *Acharya* and others can clean the feet even in the *upashraya.* (2) He can go for call of nature in the vacant land adjoining the *upashraya* even if proper land for such purpose is available outside the village. (3) He can do many joint activities or activities relating to service such as washing of clothes or of attending to others if he so desires. Otherwise even if he has requisite strength, he can get such work done from others. (4-5) He can go out of the *upashraya* in order to revise some lessons, aphorisms or for some other reasons and stay there for a night or two alone or practice it in a lonely part of the *upashraya*. The use of these special powers and *mantras* for the benefit of a householder is prohibited in the *Agams*. But for monks and nuns they can be used any time.

The last two special attributes of a *ganavachhedak* have been mentioned separately in the second aphorism because the first three

attributes are not necessary for a *ganavachhedak* as his post is an acting one and not of special importance. So the last two attributes are sufficient in his case.

अगीतार्थों के रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त

RULES REGARDING STAY OF NON-LEARNED—THE PROHIBITION AND PRAYASHCHIT

४. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा (सन्निवेसंसि वा) एगवगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए (उवस्सए) नो कप्पइ बहूणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए।

अत्थि याइं केइ आयारपकप्पधरे, नत्थि णं केइ छेए वा परिहारे वा। नत्थि याइं णं केइ आयारपकप्पधरे से संतरा छेए वा परिहारे वा।

५. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा (सन्निवेसंसि वा) अभिनिव्वगडाए अभिनिदुवाराए अभिनिक्खमण-पवेसाए (उवस्सए) नो कप्पइ बहूणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए।

अत्थि याइं केइ आयारपकप्पधरे, जे तत्तियं रयणिं संवसइ, नत्थि णं केइ छेए वा परिहारे वा। नत्थि याइं णं केइ आयारपकप्पधरे जे तत्तियं रयणिं संवसइ, सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा परिहारे वा।

४. ग्राम यावत् राजधानी मे (सन्निवेश में) एक प्राकार (परकोटा) वाले, एक द्वार वाले और एक निष्क्रमण-प्रवेश वाले उपाश्रय मे अनेक अकृतश्रुत (अल्पज्ञ) भिक्षुओ को एक साथ रहना नही कल्पता है।

यदि उनमे कोई आचारप्रकल्पधर हो तो वे (अल्पज्ञ) दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र नही होते है। यदि उनमें कोई आचारप्रकल्पधर न हो तो वे मर्यादा-उल्लघन के कारण दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र होते है।

५. ग्राम यावत् राजधानी मे (सन्निवेश) मे अनेक प्राकार वाले, अनेक द्वार वाले और अनेक निष्क्रमण-प्रवेश वाले उपाश्रय में अनेक अकृतश्रुत (अल्पज्ञ) भिक्षुओ को एक साथ रहना नही कल्पता है।

यदि कोई आचारप्रकल्पधर तीसरे दिन उनके साथ रहे तो वे दीक्षा-छेद या तप रूप प्रायश्चित्त के पात्र नही होते है। यदि कोई आचारप्रकल्पधर तीसरे दिन भी वहाँ नही रहता हो तो उन सभी को उस मर्यादा-उल्लघन का तप या छेद प्रायश्चित्त आता है।

4. Many *bhikshus* who are not learned in scriptures (*akrit*) are not allowed to live in an *upashraya* which has only one boundary wall, one gate or only one entrance-cum-exit, in a village up to capital or suburb (*sannivesh*).

If out of them any one is observing *Achar-prakalp* then he is not liable for *prayashchit* of reduction in ascetic period or of *prayashchit*-austerities.

5. Many *bhikshus* who are not well-read in scriptures are not allowed to stay and live together in an *upashraya* which has many boundary

walls, many gates and many entrances and exits, in a village up to capital or in suburb (sannivesh).

If any monk well read in *Achar-prakalp* stays with them on the third day, then they are not liable for any *prayashchit* of reduction in period of monkhood or of *prayashchit*-austerities. If even on the third day no one well read in *Achar-prakalp* stays with them, then all of them are liable for *prayashchit* of reduction in period of monkhood or of *prayashchit*-austerities due to bye-passing the limits laid down for ascetic restraints.

विवेचन : इन सूत्रो मे आचारांग एवं निशीथसूत्र अर्थ सहित कण्ठस्थ धारण नहीं करने वाले अबहुश्रुत भिक्षुओ को "**अगडसुय**"-अकृतश्रुत कहा गया है। अर्थात् प्रमुख बनकर विचरण करने की योग्यता प्राप्ति के लिए (आवश्यक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आचाराग और निशीथसूत्र) का अध्ययन एव कण्ठस्थ धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हे कण्ठस्थ कर अर्थज्ञान प्राप्त नहीं करने वाला भिक्षु आगमिक शब्दों में "**अगडसुय**" कहा गया है।

प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है कि किसी ग्रामादि में ऐसे अकृतसूत्री भिक्षुओ को छोडकर बहुश्रुत भिक्षु विहार कर जाए तो अगीतार्थ भिक्षुओ को वहाँ एक साथ रहना भी नही चाहिए।

इसी विषय को उपाश्रय की अवस्थिति की दृष्टि से दो विकल्प बताए है-

(१) यदि उपाश्रय मे निकलने का तथा उसमें प्रवेश करने का मार्ग एक ही हो तो वहाँ अगीतार्थों को एक दिन भी रहना नही कल्पता है। (२) यदि उस उपाश्रय में जाने-आने के अनेक मार्ग हों तो अगीतार्थों को एक या दो दिन रहना कल्पता है। तीसरे दिन रहने पर उन्हें प्रायश्चित्त आता है।

शास्त्रकार का आशय यह प्रतीत होता है-अनेक अल्पश्रुत अगीतार्थ साथ रहने में भी उनके सयम की हानि ही अधिक सम्भव है। अत किसी योग्य गीतार्थ बहुश्रुत के साथ रहना चाहिए।

Elaboration—In these aphorisms, those *bhikshus* who are not well read in scriptures and who have not memorized *Acharanga* and *Nisheeth Sutra* including the meaning thereof are called *Agadsuya-akritsuya*. In other words it is very essential to study and memorise *Avashyak, Uttaradhyayan, Dashavaikalik, Acharanga* and *Nisheeth Sutra* in order to gain the capability of passing the ascetic life as head of a group. A *bhikshu* who has not memorized these *Sutras* and has not learnt their meaning is called *Agadsuya* in *Agamik* language

In the present aphorism it is mentioned that in case a *bahushrut bhikshu* moves away from a village leaving such *(akrit) bhikshus* behind who are not learned in said *Sutras*, then those *bhikshus* who are not proficient in scriptures (*ageetarth*) should not live together.

In the context of *upashraya*, two different states have been narrated—

(1) In case there is only one common entrance-cum-exit in that *upashraya*, then the *bhikshus* who are not learned in *Agams* (*ageetarth*) should not stay there even for a day. (2) In case there are many entrances and exits in that *upashraya*, then the (*ageetarth*) *bhikshus* who are not learned in *Agams* can stay there for a day or two. In case they stay for the third day, they are liable for *prayashchit*.

The author of the scripture appears to be of the view that there is a great possibility of loss in ascetic restraints even when many *bhikshus* who have a little knowledge of scriptures (*ageetarth*) stay together. So they should stay only with such a monk who is well read in scriptures.

अकेले भिक्षु के रहने का विधि-निषेध RULE REGARDING A BHIKSHU STAYING ALONE

६. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा (सन्निवेसंसि वा) अभिनिव्वगडाए अभिनिदुवाराए अभिनिक्खमण-पवेसणाए (उवस्सए) नो कप्पइ बहुसुयस्स बब्भागमस्स एगाणियस्स भिक्खुस्स वत्थए, किमंग पुण अप्पसुयस्स अप्पागमस्स।

७. से गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा (सन्निवेसंसि वा) एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमण-पवेसाए (उवस्सए) कप्पइ बहुसुयस्स बब्भागमस्स एगाणियस्स भिक्खुस्स वत्थए, उभओ कालं भिक्खुभावं पडिजागरमाणस्स।

६. ग्राम यावत् राजधानी (सन्निवेश) मे अनेक वगडा वाले, अनेक द्वार वाले और अनेक निष्क्रमण-प्रवेश वाले उपाश्रय मे अकेले बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ भिक्षु को भी रहना नही कल्पता है, अल्पश्रुत और अल्पआगमज्ञ अकेले भिक्षु को रहना कैसे कल्प सकता है ? अर्थात् नही कल्पता है।

७. ग्राम यावत् राजधानी (सन्निवेश) मे एक वगडा वाले, एक द्वार वाले, एक निष्क्रमण-प्रवेश वाले उपाश्रय में अकेले बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ भिक्षु को दोनो समय सयमभाव की जागृति रखते हुए रहना कल्पता है।

6. A *bhikshu* is not allowed to stay alone in a village up to capital which has many *vagadas*, many gates and many entrances and exits even if he is well read in scriptures and *Agams*. So how can a *bhikshu* who has a little knowledge of scriptures and *Agams* can stay there. In other words, he is not allowed to stay there.

7. A *bhikshu* who is well read in scriptures and *Agams* and is staying alone in an *upashraya* which has only one boundary wall, one gate and one entrance-cum-exit situated in a village up to capital should remain vigilant in his ascetic restraints both the times.

विवेचन : इन दोनो सूत्रो के भाव से यह फलित होता है कि–

(१) जो भिक्षु बहुश्रुत है, उसे एकाकी विचरण करते हुए अनेक द्वार एव अनेक मार्ग वाले उपाश्रय में निवास नहीं करना चाहिए। (२) किन्तु एक द्वार, एक मार्ग वाले उपाश्रय मे वह बहुश्रुत भिक्षु रह सकता है। (३) एकलविहारी (गीतार्थ) भिक्षु को उभयकाल (सोते और उठते समय अथवा दिन मे और रात्रि में) वैराग्य एवं संयम गुणों को पुष्ट करने वाली धर्म-जागरणा से धर्म-भावना की वृद्धि करते हुए रहना चाहिए। (४) अल्पश्रुत अल्पआगमज्ञ–अगीतार्थ भिक्षु को किसी भी प्रकार के उपाश्रय मे अकेला नहीं रहना चाहिए।

गीतार्थ बहुश्रुत भिक्षु को अकेला रहने का विधान तो इस सूत्र मे तथा अन्य आगमों मे भी स्पष्ट है, तथापि किस उपाश्रय में निवास करना या न करना अथवा किस तरह जागरूक रहना, यह विधान करना इन सूत्रों का आशय प्रतीत होता है।

विभिन्न प्रकार के उपाश्रयो मे गीतार्थ भिक्षु के अकेले रहने पर अथवा अनेक अगीतार्थों के रहने पर किन-किन दोषों की सम्भावना रहती है, यह समझने के लिए जिज्ञासुओं को भाष्य का अवलोकन करना चाहिए। इस आशय का कुछ स्पष्टीकरण आगे के सूत्रों मे स्वय आगमकार ने किया है।

Elaboration—It is evident from these two aphorisms that—

(1) A *bahushrut bhikshu* should not stay during his wanderings in an *upashraya* which has many doors and many passages. (2) But that *bahushrut* can stay in an *upashraya* which has only one door and one approach. (3) A *bhikshu* who is learned in *Agams* and is moving alone should continue increasing his religious aspirations through scriptural awakening both the times (while sleeping and while getting up or during day and during night) that may strengthen his non-attachment (towards worldly activities) and the quality of ascetic restraints. (4) A *bhikshu* who is not well read in scriptures and *Agams* should not stay alone in any type of *upashraya*.

In this *Sutra* and in other *Agams* also it is mentioned that when a monk learned in scriptures can stay alone, still the purport of these aphorisms appears to be to make a provision in which *upashraya* he should stay and in which *upashraya* he should not stay or how he should be remain vigilant (in ascetic discipline).

In order to understand which faults can possibly occur in case a *bhikshu* learned in scriptures stays alone in different types of *upashrayas* or when many *bhikshus* who are not well read in scriptures stay in an *upashraya*, the research scholars should study *bhashya* The author of *Agams* has himself, to a certain extent, clarified this purpose in the aphorisms ahead.

शुक्र-पुद्‌गल निकालने का प्रायश्चित्त PRAYASHCHIT FOR DISCHARGE OF SEMEN

८. जत्थ एए बहवे इत्थीओ य पुरिसा य पण्हावेंति, तत्थ से समणे निग्गंथे अन्नयरंसि अचित्तंसि सोयंसि सुक्कपोग्गले निग्घाएमाणे हत्थकम्मपडिसेवणपत्ते आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

९. जत्थ एए बहवे इत्थीओ य पुरिसा य पण्हावेंति, तत्थ से समणे णिग्गंथे अन्नयरंसि अचित्तंसि सोयंसि सुक्कपोग्गले निग्घाएमाणे मेहुणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

८. जहाँ पर ये अनेक स्त्री-पुरुष मैथुन-सेवन करते हैं, वहाँ जो श्रमण निर्ग्रन्थ हस्तकर्म के संकल्प से किसी अचित्त स्रोत मे शुक्र-पुद्‌गल निकाले तो उसे अनुद्‌घातिक मासिक प्रायश्चित्त आता है।

९. जहाँ पर ये अनेक स्त्री-पुरुष मैथुन-सेवन करते है, वहाँ जो श्रमण निर्ग्रन्थ मैथुन-सेवन के सकल्प से किसी अचित्त स्रोत मे शुक्र-पुद्‌गल निकाले तो उसे चातुर्मासिक अनुद्‌घातिक प्रायश्चित्त आता है।

8. Many men and women engage in sex at a place. At that place if a Jain monk with a strong attitude of committing unnatural sex discharges his semen in any non-living thing, then he is liable for *anudghatik prayashchit*

9. Many men and women engage in sex at a place. If a monk with an attitude of enjoying sex, discharges his semen in any non-living thing then he is liable for *chaturmasik anudghatik prayashchit.*

विवेचन : पिछले चार सूत्रो में भिक्षु को एकाकी रहने या न रहने सम्बन्धी कथन किया गया है और यहाँ इन दोनो सूत्रों मे ब्रह्मचर्य व्रत भग का सम्बन्ध है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए भी अपरिपक्व अल्पज्ञ भिक्षुओ को अकेला रहना बहुत घातक सिद्ध हो सकता है और आगमज्ञ गीतार्थ साधु का भी अकेले रहने की स्थिति मे मन डाँवाडोल होना बहुत सम्भव है। अत अगीतार्थ को तो कभी अकेला नही रहना चाहिए और गीतार्थ को भी प्रसगोपात्त रहना पडा तो तप-संयम व वैराग्य की भावना से धर्म जागरण मे विशेष प्रयत्नशील रहना चाहिए।

गच्छ या समूह में रहने से लज्जा आदि अनेक कारणो से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा होती है तथा उसे वैराग्य, स्वाध्याय आदि की प्रेरणा भी मिलती रहती है। मैथुन का संकल्प व विकारोत्तेजना से ब्रह्मचर्य स्खलित करने पर उक्त प्रायश्चित्त का विधान है।

Elaboration—In the earlier four aphorisms there is the description regarding a monk staying alone or not staying alone The present two aphorisms relate to breaking the vow of *brahmcharya*. Thus it is evident that even for safe-guarding *brahmcharya* raw *bhikshus* who are not well read in *Agams* can be in great trouble if they stay alone. There is possibility of disturbance in the mind of a well read monk if he stays alone. So a monk who is not well read in *Agams* should never stay alone.

In case a monk learned in *Agams* has to stay alone in any situation, he should make special effort to remain in a state of spiritual awakening with deep contemplation for strengthening austerities, ascetic restraints and non-attachment.

When one is in a *gachha* or in a group, the vow of celibacy (*brahmcharya*) is protected due to many reasons including shame (involved in sex). So one gets inspiration for engaging in ascetic discipline and scriptural study. The above said provision is to deal with care where the vow of *brahmcharya* is affected by the strong intention of engaging in sex or by a polluting attitude.

अन्य गण से आये हुए को गण में सम्मिलित करने का निषेध

PROHIBITION OF ACCEPTING ONE WHO HAS COME FROM ANOTHER GROUP

१०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, निग्गंथिं अण्ण गणाओ आगयं खुयायारं, सबलायारं, भिन्नायारं, संकिलिट्ठायारं तस्स ठाणस्स अणालोयावेत्ता अपडिक्कमावेत्ता, अनिंदावेत्ता, अगरहावेत्ता, अविउट्टावेत्ता, अविसोहावेत्ता, अकरणाए अणब्भुट्ठावेत्ता, अहारिहं पायच्छित्तं अपडिवज्जावेत्ता उवट्ठावेत्तए वा, संभुंजित्तए वा, संवसित्तए वा तीसे इत्तरियं दिसं वा अणुदिसं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

११. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, निग्गंथं अन्न गणाओ आगयं खुयायारं जाव संकिलिट्ठायारं, तस्स ठाणस्स अणालोयावेत्ता जाव अहारिहं पायच्छित्तं अपडिवज्जावेत्ता उवट्ठावेत्तए वा, संभुंजित्तए वा, संवसित्तए वा तस्स इत्तरियं दिसं वा अणुदिसं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१०. अन्य गण से आई हुई निर्ग्रन्थी यदि खण्डित, शबल, भिन्न और संक्लिष्ट आचार वाली हो तो उसे जब तक सेवन किये हुए दोष की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, व्युत्सर्ग एवं आत्म-शुद्धि न करा ले और भविष्य मे पुन पापस्थान-सेवन न करने की प्रतिज्ञा कराके दोषानुरूप प्रायश्चित्त स्वीकार न करा लें तब तक निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को उसे पुन· चारित्र में उपस्थापित करना, उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार करना और साथ मे रखना नही कल्पता है तथा उसे अल्पकाल के लिए दिशा या अनुदिशा का निर्देश करना या धारण करना भी नहीं कल्पता है।

११. अन्य गण से आया हुआ निर्ग्रन्थ यदि खण्डित यावत् संक्लिष्ट आचार वाला हो तो उसे सेवन किये हुए दोष की आलोचना यावत् दोषानुरूप प्रायश्चित्त स्वीकार न करा ले तब तक निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को उसे पुनः चारित्र में उपस्थापित करना, उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार करना और साथ में रखना नहीं कल्पता है तथा उसे अल्पकाल के लिए दिशा या अनुदिशा का निर्देश करना या धारण करना भी नहीं कल्पता है।

10. In case a nun who has come from another group has malicious, bad, faulty character, she should first do self-censure, *pratikraman*, condemn, and openly curse the faults she had committed earlier. Thus

she should cleanse herself and take an oath that she shall not incur such faults in future. She should accept *prayashchit* for her faults. Up to the time all this is done, it is not allowed to re-establish her in saintly conduct, to mix with her and to allow her to join the group. It is not allowed till then to direct her or guide her even for a short period.

11. In case a monk has come from another *gana* (group), has malicious, bad, faulty and condemnable character, he should first do self-censure, *partikraman* (self-introspection), condemn and openly curse the faults he had committed earlier. Thus he should cleanse himself and should take an oath that he shall not incur such faults again. He should accept *prayashchit* for those faults. Up to the time all this is done, it is not allowed for monk and nuns to re-establish him in monkhood, to mix with him and to allow him to join their group. It is not allowed till then to direct him or to guide him in that conduct even for a short period.

विवेचन : ब्रह्मचर्यभंग आदि बडे दोष के कारण कोई साधु-साध्वी स्वत गच्छ छोडकर किसी अन्य गच्छ वालो के पास आये अथवा गच्छ वालो के द्वारा गच्छ से निकाल दिये जाने पर आये तो उसे कब, कैसे रखना इसका विधि-निषेध प्रस्तुत दो सूत्रो मे है।

॥ छट्ठा उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—A *Sadhu* or a *Sadhvi* comes to another group after leaving the earlier due to the grave faults committed in practicing the vow of celibacy and the like or due to the fact that he or she has been expelled from the original group. These two *sutras* enunciate the rules and procedures when and how he or she should be dealt with.

● SIXTH UDDESHAK CONCLUDED ●

सातवाँ उद्देशक
SEVENTH UDDESHAK

अन्य गण से आई साध्वी के रखने में परस्पर पृच्छा

QUESTIONING OF A NUN COMING FROM ANOTHER GROUP

१. जे निग्गंथा व निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो कप्पइ निग्गंथीणं निग्गंथे अणापुच्छित्ता निग्गंथिं अन्नगणाओ आगयं खुयायारं जाव संकिलिट्ठायारं तस्स ठाणस्स अणालोयावेत्ता जाव अहारिहं पायच्छित्तं अपडिवज्जावेत्ता पुच्छित्तए वा, वाएत्तए वा, उवट्ठावेत्तए वा, संभुंजित्तए वा, संवसित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

२. कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीओ आपुच्छित्ता वा, अणापुच्छित्ता वा, निग्गंथीं अन्नगणाओ आगयं खुयायारं जाव संकिलिट्ठायारं तस्स ठाणस्स आलोयावेत्ता जाव पायच्छित्तं पडिवज्जावेत्ता पुच्छित्तए वा, वाएत्तए वा, उवट्ठावेत्तए वा, संभुंजित्तए वा, संवसित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा, तं च निग्गंथीओ नो इच्छेज्जा, सयमेव नियं ठाणे।

१. जो साम्भोगिक निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ हैं, वहाँ उनके पास कोई अन्य गण से खण्डित यावत् संक्लिष्ट आचार वाली निर्ग्रन्थी आए तो निर्ग्रन्थ (आचार्य-उपाध्याय) को पूछे बिना और उसके पूर्व में सेवन किये हुए दोष की आलोचना यावत् दोषानुरूप प्रायश्चित्त स्वीकार कराये बिना उससे प्रश्न पूछना, उसे वाचना देना, चारित्र में पुन: उपस्थापित करना, उसके साथ बैठकर भोजन करना और साथ में रखना नहीं कल्पता है (यहाँ तक कि) उसे अल्पकाल के लिए आचार्य आदि की निश्रा का निर्देश करना या धारण करना भी नहीं कल्पता है।

२. निर्ग्रन्थ के समीप यदि कोई अन्य गण से खण्डित यावत् सक्लिष्ट आचार वाली निर्ग्रन्थी आए तो निर्ग्रन्थियो (प्रवर्तिनी) को पूछकर या बिना पूछे भी सेवित दोष की आलोचना यावत् दोषानुरूप प्रायश्चित्त स्वीकार कराके उससे प्रश्न पूछना, उसे वाचना देना, चारित्र मे पुनः उपस्थापित करना, उसके साथ बैठकर भोजन करने की और साथ रखने की आज्ञा देना कल्पता है तथा उसे अल्पकाल की दिशा या अनुदिशा (आचार्यादि की निश्रा) का निर्देश करना या धारण करना कल्पता है, किन्तु यदि निर्ग्रन्थियाँ उसे न रखना चाहें तो उसे चाहिए कि वह पुनः अपने गण मे चली जाए।

1. *Sambhogic* monks and nuns are not allowed to have any dealings with a nun of malicious, bad, faulty and commendable character if she comes to them. She should first self-censure, do *pratikaraman*, condemn and curse her faults and accept *prayashchit* awarded to her for her faults. Till then, one is not allowed to ask any question from her, to teach her, to re-establish her in the Order, to dine with her or to mix with her. Further, the permission of *Acharya* or *Upadhyaya* should be

informed first and his permission should be obtained. Till then one is not allowed to call her even for a short time that she is under the over all direction of Acharya and the like or allow her to join the group.

2. A nun has malicious, bad, faulty and condemnable character. She comes to a monk. He should then after inquiring from nuns (*pravartini*) or without inquiring from her, make that nun to self- censure, hate, codemn her faults and accept *prayaschit* for her faults. Thereafter, question can be asked from her and she can be taught sermons. She can be re established in monkhood and she can be allowed to dine with them and mix with them She can be given directions and named a disciple of a particular Acharya even for a short period. However, if the nuns do not want to keep her with them, she should go back to her original group.

विवेचन : छठे उद्देशक के सूत्र १०-११ मे खण्डित आचार वाले निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के अन्य गण से आने पर उसके आलोचना प्रायश्चित्त करने का विधान किया गया है और प्रस्तुत दो सूत्रों मे केवल साध्वी के आने पर साम्भोगिक श्रमण या श्रमणी को पूछने सम्बन्धी विधान है।

यदि निर्ग्रन्थी के पास ऐसी साध्वी आये तो वह अपने साम्भोगिक साधुओं को अर्थात् आचार्य, उपाध्याय आदि को पूछकर, उनकी आज्ञा होने पर ही उस साध्वी को रख सकती है, तथा अन्य व्यवहार कर सकती है। किन्तु पूछे बिना, ऐसी साध्वी के साथ सूत्रोक्त कार्य करना या निर्णायक उत्तर देना नहीं कल्पता है। आचार्य आदि यदि अन्यत्र हों तो उनकी आज्ञा प्राप्त होने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।

यदि निर्ग्रन्थ के पास अर्थात् आचार्यादि के पास ऐसी साध्वी आए तो वे उसके लिए साध्वियो को अर्थात् प्रवर्तिनी को पूछकर निर्णय ले सकते है अथवा कभी (किसी कारणवश) बिना पूछे भी निर्णय कर उस साध्वी को प्रवर्तिनी के सुपुर्द कर सकते है और उस साध्वी के इत्वरिक (अल्पकालिक) आचार्य, उपाध्याय या प्रवर्तिनी की निश्रा का निर्देश भी कर सकते है।

Elaboration—Aphorism 10 & 11 indicate the procedure regarding self censure and *prayaschit* due to a monk or nun of faulty, condemnable, malicious character who comes from another group In the present two *aphorisms there is provision regarding questions that Sambhogik* monk or nun should ask from such a nun.

In case such a nun comes to a *nirgranthi*, then she should first inform *Sambhogik* monks namely *Acharya, Upadhyaya* and the like. If they allow, only then she can keep that *Sadhvi* and have dealings with her. She is not allowed to have dealings with her or to convey her definite decision without such permission. In case, *Acharya* and the like is at some other place, she should wait for his orders.

In case such a *Sadhvi* comes to the *Acharya* and the like, he can take a decision after inquiring from *Sadhvis* (*pravartini*). In peculiar

circumstances, he can take a decision even without such an enquiry and hand her over to the *pravartini*. He can direct that the said *Sadhvi* shall be for a short period under the charge of such and such *Acharya*, *Upadhyaya* or *pravartini*.

सम्बन्ध-विच्छेद करने सम्बन्धी विधि-निषेध RULES ABOUT EXPULSION

३. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो णं कप्पइ निग्गंथाणं पारोक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए। कप्पइ णं पच्चक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए।

जत्थेव अण्णमण्णं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा-"अहं णं अज्जो ! तुमए सद्धिं इमंमि कारणम्मि पच्चक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेमि।" से य पडितप्पेज्जा, एवं से नो कप्पइ पच्चक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए। से य नो पडितप्पेज्जा, एवं से कप्पइ पच्चक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए।

४. जे निग्गंथा य निग्गंथीओ य संभोइया सिया, नो णं कप्पइ निग्गंथीणं पच्चक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए। कप्पइ णं पारोक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए।

जत्थेव ताओ अप्पणो आयरिय-उवज्झाए पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा-"अहं णं भंते ! अमुगीए अज्जाए सद्धिं इमम्मि कारणम्मि पारोक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेमि।" सा य पडितप्पेज्जा, एवं से नो कप्पइ पारोक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए। सा य नो पडितप्पेज्जा एवं से कप्पइ पारोक्खं पाडिएक्कं संभोइयं विसंभोगं करेत्तए।

३. जो निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ साम्भोगिक हैं, उनमें निर्ग्रन्थ को परोक्ष मे साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके विसम्भोगी करना (गण से बाहर निकलना) नहीं कल्पता है, किन्तु प्रत्यक्ष में साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसम्भोगी करना कल्पता है।

जब एक-दूसरे से मिले तब इस प्रकार कहे कि "हे आर्य ! मै अमुक कारण से तुम्हारे साथ साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके तुम्हें विसम्भोगी करता हूँ।" इस प्रकार कहने पर वह यदि (अपने दोष का) पश्चात्ताप करे तो प्रत्यक्ष मे भी उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसम्भोगी करना नहीं कल्पता है। यदि वह पश्चात्ताप न करे तो प्रत्यक्ष मे उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसम्भोगी करना कल्पता है।

४. जो निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियाँ साम्भोगिक हैं, उनमे निर्ग्रन्थी को प्रत्यक्ष मे साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके विसम्भोगी करना नहीं कल्पता है। किन्तु परोक्ष में साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसंभोगी करना कल्पता है।

जब वे अपने आचार्य या उपाध्याय की सेवा मे पहुँचे तब उन्हे इस प्रकार कहें कि "हे भते ! मैं अमुक आर्या के साथ अमुक कारण से परोक्ष रूप मे साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसम्भोगी करना चाहती हूँ।" तब वह निर्ग्रन्थी यदि (आचार्य-उपाध्याय के समीप अपने सेवित दोष का)

पश्चात्ताप करे तो उसके साथ परोक्ष मे भी साम्भोगिक व्यवहार बन्द करना व उसे विसम्भोगी करना नहीं कल्पता है। यदि वह पश्चात्ताप न करे तो परोक्ष में उसके साथ साम्भोगिक व्यवहार बन्द करके उसे विसम्भोगी करना कल्पता है।

3. If *Nirgranth* and *Nırgranthıs* are *Sambhogik*, it is not allowed to expel the monk (*Visambhogik*) from the *gana* (group) and *stopping Sambhogık* treatment with him indirectly. But directly stopping *Sambhogik* treatment with him, he can be expelled from the group (declared *Visambhogik*).

When they meet each other, one should say—"O the blessed ! I, due to such and such reason, am stopping *Sambhogik* treatment (living together) with you and declare you *Visambhogık*." If ın reply to it, he repents for his fault then it is not allowed to stop *Sambhogik* treatment with him and treat him as *Visambhogık* (expelled from the group). If he does not repent (for his fault), one is allowed to directly stop *Sambhogık* dealings with him and treat him as *Visambhogik*.

4. If monks and nuns are *Sambhogik*, then a nun (*Nırgranthi*) is not allowed to be *Visambhogik* with others stoppıng directly *Sambhogık* dealing. But she is allowed to be *Visambhogik* with the other indirectly stopping *Sambhogik* dealings

When they reach near their *Acharya* or *Upadhyaya*, they should say—"O the blessed ! I, due to such and such reason want to ındırectly stop *Sambhogik* dealings with such and such nun and be *Visambhogık* in dealing wıth her."

विवेचन : इन दो सूत्रों मे साम्भोगिक व्यवहार के विच्छेद करने की विधि बताई गई है। भिक्षु को यदि भिक्षु के साथ व्यवहार बन्द करना हो तो उसके समक्ष उसके द्वारा सेवित दोषों का स्पष्ट कथन करते हुए वे व्यवहार बन्द करने को कह सकते हैं। सूत्र में प्रयुक्त "भिक्षु" शब्द से यहाँ "आचार्य" समझना चाहिए। क्योंकि आचार्य ही गच्छ के अनुशास्ता होते है। उन्हे जानकारी दिए बिना किसी भी साधु को अन्य साधु के साथ व्यवहार बन्द करना उचित नहीं है।

साध्वियो को साधु के समक्ष अर्थात् आचार्यादि के समक्ष निवेदन करना आवश्यक होता है, किन्तु आचार्यादि साधु-साध्वियों की सलाह लिए बिना ही किसी भी साधु-साध्वी को असाम्भोगिक कर सकते हैं।

भिक्षु विसंभोग किए जाने वाले साधुओं के समक्ष आचार्यादि को कहें और साध्वियाँ विसभोग की जाने वाली साध्वियों की अनुपस्थिति में आचार्यादि से कहें। तब वे उनसे पूछताछ करें, यह दोनों सूत्रों में आये प्रत्यक्ष और परोक्ष-विसंभोग का तात्पर्य है।

इस प्रकार निवेदन के पश्चात् सदोष साधु या साध्वी अपने दोषों का पश्चात्ताप करके सरलता एव लघुता धारण कर ले तो उसे प्रायश्चित्त देकर उसके साथ सम्बन्ध रखा जा सकता है। पश्चात्ताप न करने पर सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाता है।

Elaboration—In these two aphorisms, the procedure of stopping *Sambhogik* treatment has been narrated. In case a *bhikshu* wants to stop dealings with another *bhikshu*, he can do so clearly narrating the faults committed by that *bhikshu*. In this aphorism the word *bhikshu* should be understood to mean *Acharya* because the *Acharya* alone is the administrator of the group (*gachha*). Without informing him (the *Acharya*), it is not proper for any monk of the *gachha* to stop dealing with another monk (of the same *gachha*).

It is essential for nuns to inform *Acharya* and the like but *Acharya* and the like can declare a monk or a nun as *Asambhogik* without consulting monks and nuns.

A *bhikshu* should inform the *Acharya* in the presence of those monks who are to be made *Visambhogik* while the nuns should inform the *Acharya* in the absence of the nuns whom they want to be declared *Visambhogik*. Then the *Acharya* should enquire into the matter. This is the interpretation of direct and indirect *Visambhog*.

If after such information, the monk or nun who has committed the fault repents for the said faults in ascetic discipline and thus becomes humble and straight forward, then after awarding *prayashchit* to him/her, normal dealings can be maintained with him/her. In case he/she does not repent for the faults, the dealings with him/her should be stopped forthwith.

प्रव्रजित करने आदि के विधि-निषेध PROCEDURE OF INITIATION (IN MONKHOOD)

५. नो कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीं अप्पणो अट्ठाए पव्वावेत्तए वा, मुंडावेत्तए वा, सेहावेत्तए वा, उवट्ठावेत्तए वा, संवसित्तए वा, संभुंजित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

६. कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथिं अन्नेसिं अट्ठाए पव्वावेत्तए वा जाव संभुंजित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

७. नो कप्पइ निग्गंथीणं निग्गंथं अप्पणो अट्ठाए पव्वावेत्तए वा जाव संभुंजित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

८. कप्पइ निग्गंथीणं निग्गंथं अण्णेसिं अट्ठाए पव्वावेत्तए वा जाव संभुंजित्तए वा, तीसे इत्तरियं दिसं वा, अणुदिसं वा, उद्दिसित्तए वा, धारेत्तए वा।

५. निर्ग्रन्थी (साध्वी) को अपनी शिष्या बनाने के लिए प्रव्रजित करना, मुंडित करना, शिक्षित करना, चारित्र मे पुनः उपस्थापित करना, उसके साथ रहना और साथ बैठकर भोजन करने के लिए

निर्देश करना निर्ग्रन्थ को नहीं कल्पता है तथा इत्वरिक–अल्पकाल के लिए उसके दिशा (आचार्य) या अनुदिशा (उपाध्याय व प्रवर्तिनी) की (निश्रा का) निर्देश करना एवं उसे धारण करना नहीं कल्पता है।

६. दूसरों की शिष्या बनाने के लिए किसी निर्ग्रन्थी को प्रव्रजित करना यावत् साथ बैठकर भोजन करने के लिए निर्देश करना निर्ग्रन्थ को कल्पता है तथा अल्पकाल के लिए उसकी दिशा या अनुदिशा का निर्देश करना एवं उसे धारण करना कल्पता है।

७. निर्ग्रन्थ (साधु) को अपना शिष्य बनाने के लिए प्रव्रजित करना यावत् साथ बैठकर भोजन करने के लिए निर्देश करना निर्ग्रन्थी को नही कल्पता है तथा अल्पकाल के लिए उसकी दिशा या अनुदिशा का निर्देश करना एवं उसे धारण करना नहीं कल्पता है।

८. निर्ग्रन्थ को अन्य का शिष्य बनाने के लिए प्रव्रजित करना, साथ बैठकर भोजन करने के लिए निर्देश करना निर्ग्रन्थी को कल्पता है तथा अल्पकाल के लिए उसकी दिशा या अनुदिशा का निर्देश करना एव उसे धारण करने के लिए अनुज्ञा देना कल्पता है।

5. A *Nirgranth* (monk) is not allowed to initiate, get shaved, educate, initiate again in ascetic conduct, or to direct a nun to stay with him or to dine with him in order to make her his disciple. He is also not allowed to direct that for a short period she shall be under the supervision of such and such *Acharya* (*disha*) or such and such *Upadhyaya* or *pravartini* (*anudisha*) nor can he keep her as such.

6. A *nirgranth* is allowed to initiate up to direct a nun for dining with him in order to make her as disciple of other nun He is allowed to direct that for a short period she shall be under the supervision of *Acharya* or *Upadhyaya* and he can keep her as such.

7. A *nirgranthi* (Jain nun) is not allowed to initiate, up to direct a monk to dine with her in order to make him as her disciple. She is also not allowed to direct that for a short period, he shall be under the supervision of such and such *Acharya* and such and such Upadhyaya nor she can keep her as such.

8. A *nirgranthi* (nun) is allowed to initiate upto direct a monk to dine with her in order to make him a disciple of another monk. She can also direct that he will be for a short period under the supervision of such and such *Acharya or Upadhyaya* and can grant her permission for it.

विवेचन : सामान्य विधानानुसार साधु की दीक्षा आचार्य, उपाध्याय के द्वारा एव साध्वी की दीक्षा आचार्य, उपाध्याय या प्रवर्तिनी के द्वारा दी जाती है। तथापि कभी कोई गीतार्थ मुनि किसी भी साधु या साध्वी को दीक्षित कर सकता है। उसी प्रकार कोई भी गीतार्थ श्रमणी किसी भी साधु या साध्वी को दीक्षित कर सकती है। किन्तु उन्हें आचार्य की आज्ञा लेना आवश्यक होता है।

किसी भी साधु को दीक्षित करना हो तो आचार्य, उपाध्याय के लिए दीक्षित किया जा सकता है और साध्वी को दीक्षित करना हो तो आचार्य, उपाध्याय या प्रवर्तिनी के लिए दीक्षित किया जा सकता है। किन्तु साधु अपने लिए साध्वी को और साध्वी अपने लिए साधु को दीक्षित नहीं कर सकती। इस नियम का उल्लंघन करने से जिनशासन की अवहेलना होती है।

Elaboration—As a general rule a monk is initiated in monkhood by an *Acharya* or *Upadhyaya* and a nun is initiated by the *Acharya*, *Upadhyaya* or *pravartini*. However a monk who is learned in *Agams* can initiate a monk or a nun in ascetic conduct. Similarly a nun who is learned in *Agams* can initiate any monk or nun. But it is essential that they should take permission of *Acharya*.

In case a monk is to be initiated he can be initiated in monkhood for an *Acharya* or *Upadhyaya* In case a nun has to be initiated, she can be initiated for *Acharya, Upadhyaya* or *pravartini*. But a monk cannot initiate a nun for himself nor a nun can initiate a monk for herself. Deviation from this rule, brings disgrace to the administration of *Jinas*.

विशेष शब्दों के अर्थ : पव्वावेत्तए = दीक्षित करना। मुंडावेत्तए = लुचन करना। सिक्खावेत्तए = शिक्षित करना। ग्रहण शिक्षा में दशवैकालिकसूत्र पढाना। आसेवन शिक्षा में आचारविधि वस्त्र-परिधान आदि कार्यों की विधि बताना। उवट्ठावेत्तए = बडी दीक्षा देना। संभुंजित्तए = आहारादि देना। संवासित्तए = साथ रखना।

MEANING OF IMPORTANT WORDS

Pavvettaye—To initiate in monkhood **Mundovettaye**—To shave the head. **Sikkhavettaye**—To educate. To teach *Dashavaikalik*, the procedure regarding clothes, their upkeep. **Uvatthavettaye**—To initiate in major asceticism **Sambhunjittaye**—To give food and the like. **Samvasittaye**—To keep him along.

दूरवर्ती गुरु आदि को निर्देश करके दीक्षा का विधि-निषेध

PROCEDURE OF INITIATING OR NOT IN OVERALL DIRECTION OF A GURU AT A FAR AWAY PLACE

९. नो कप्पइ निग्गंथीणं विइकिट्ठियं दिसं वा अणुदिसं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

१०. कप्पइ निग्गंथाणं विइकिट्ठियं दिसं वा अणुदिसं वा उद्दिसित्तए वा धारेत्तए वा।

९. निर्ग्रन्थियों को दूरस्थ (बहुत दूर रही हुई) प्रवर्तिनी या गुरुणी का उद्देश करना (निश्रा मे दीक्षा देना) या धारण करना नहीं कल्पता है।

१०. निर्ग्रन्थ को दूरस्थ आचार्य या गुरु आदि का उद्देश करना या धारण करना कल्पता है।

9. Jain nuns are not allowed to initiate or get initiated in overall guardianship of a *pravartini* or spiritual teacher who is staying at a far away place.

10. The Jain monks are not allowed to initiate or get initiated in overall guardianship of an *Acharya* or spiritual master who is staying at a far away place.

विवेचन : किसी भी साध्वी–(विरक्ता दीक्षार्थिनी) को कही पर भी दीक्षित होना हो तो उस क्षेत्र से अत्यन्त दूर रही हुई प्रवर्तिनी की निश्रा मे करके किसी के पास दीक्षित होना नही कल्पता है, क्योंकि इतनी दूर वह स्वयं अकेली जा नही सकती, अधिक दूर होने से कोई पहुँचा नही सकते। लम्बे समय के अन्तर्गत उसका भाव परिवर्तित हो जाय, वह बीमार हो जाय, उसकी गुरुणी बीमार हो जाय या काल कर जाय इत्यादि स्थितियों में अनेक सकल्प-विकल्प या क्लेश, अशाति उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है, इत्यादि कारणो से अतिदूरस्थ गुरुणी आदि का निर्देश कर किसी के पास दीक्षित होना साध्वी के लिए निषेध किया गया है।

सामान्य भिक्षु को भी दूरस्थ आचार्य आदि की निश्रा का निर्देश कर किसी के पास दीक्षित होना नही कल्पता है, ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि साध्वी के लिए कहे गये दोषो की सम्भावना साधु के लिए भी हो सकती है। फिर भी द्वितीय सूत्र मे जो छूट दी गई है, उसका आशय भाष्य मे यह बताया गया है कि यदि दीक्षित होने वाला भिक्षु पूर्ण स्वस्थ एव ज्ञानी, वैराग्यवान् और स्वय धर्मोपदेशक है तथा उसका आचार्य भी ऐसा ही ज्ञानी, वैरागी है तो दूरस्थ क्षेत्र मे किसी के पास दीक्षित हो सकता है।

Elaboration—In case any worldly detached lady wants to get initiated in asceticism she is not allowed to do so accepting overall supervision of a *pravartini* who is staying at an extremely far away place from that area because she neither can go alone to such a distant place herself nor can any one take her to such distant place Further there is possibility that her mind may change during the long period, she may fall ill, the spiritual teacher may fall ill or die and in suchlike situation many turbulations may arise in the mind which may disturb her peace. Therefore it is prohibited to initiate a nun in asceticism by declaring as her spiritual teacher a nun who is at very distant place.

An ordinary *bhikshu* is also not allowed to get initiated in monkhood accepting overall supervision of an *Acharya* and the like who is at a far away place. It should be understood as a corollary because the faults in ascetic conduct mentioned in case of a nun may occur in case of a monk also. Still the purpose of the exception mentioned in second aphorism as mentioned in *bhashya* is that in case the monk being initiated is healthy, well read in scriptures, detached from worldly activities and also a speaker in *Dharma* and his *Acharya* is also well read in scriptures, then he can get initiated accepting overall guardianship of that *Acharya* athough the said *Acharya* is at a distance.

११. नो कप्पइ निग्गंथाणं विइकिट्ठाइं पाहुडाइं विओसवेत्तए।

१२. कप्पइ निग्गंथीणं विइकिट्ठाइं पाहुडाइं विओसवेत्तए।

११. निर्ग्रन्थो मे यदि परस्पर कलह हो जाए तो उन्हें दूर रहते हुए ही उपशान्त होना या क्षमायाचना करना नही कल्पता है।

१२. निर्ग्रन्थियो मे यदि परस्पर कलह हो जाए तो उन्हें दूरवर्ती क्षेत्र मे रहते हुए भी उपशान्त होना या क्षमायाचना करना कल्पता है।

11. In case a quarrel arises between two or more monks, then they are not allowed to pacify or beg pardon from a great distance.

12. In case a quarrel arises between two or more nuns, then they are allowed to pacify or beg pardon even from a great distance.

विवेचन : बृहत्कल्प, उ ४ मे बताया है–साधु–साध्वी को कलह होने के बाद क्षमायाचना किये बिना विहार आदि करना नहीं कल्पता है। तथापि कभी दोनों में से एक की अनुपशाति के कारण कोई विहार करके दूर देश में चला जाए और बाद में उस अनुपशांत साधु–साध्वी के मन मे स्वत या किसी की प्रेरणा से क्षमायाचना का भाव उत्पन्न हो तो साध्वी को क्षमापना के लिए अतिदूर क्षेत्र मे नहीं जाना चाहिए किन्तु अन्य किसी जाने वाले भिक्षु के साथ क्षमायाचना का सन्देश भेज देना चाहिए, किन्तु भिक्षु को यथास्थान जाकर ही क्षमायाचना करना चाहिए। इस अलग–अलग विधान का कारण सूत्र ९–१० मे कहे अनुसार ही समझ लेना चाहिए कि साध्वी का जाना पराधीन है और साधु का अकेला जाना भी सम्भव है। यदि निकट का क्षेत्र हो तो साध्वी को भी अन्य साध्वियो के साथ वहीं जाकर क्षमापना करना चाहिए। सूत्रोक्त विधान अतिदूरस्थ क्षेत्र की अपेक्षा से है। किन्तु परस्पर क्षमायाचना करना अत्यन्त आवश्यक है। क्षमापना किये बिना कालधर्म प्राप्त हो जाय तो वह विराधक हो जाता है।

द्रव्य एव भाव के भेद से क्षमापना दो प्रकार का है–

(१) द्रव्य से–यदि किसी के प्रति नाराजगी का भाव या रोषभाव हो तो उसे प्रत्यक्ष मे कहना कि "मै आपको क्षमा करता हूँ और आपके प्रति प्रसन्नभाव धारण करता हूँ।" यदि कोई व्यक्ति किसी की भूल के कारण रुष्ट हो तो उससे कहना कि "मेरी गलती हुई आप क्षमा करे, पुन ऐसा व्यवहार नही करूँगा।"

(२) भाव से–शान्ति, सरलता एव नम्रता से हृदय को पूर्ण पवित्र बना लेना।

इस प्रकार के व्यवहार से तथा भावो की शुद्धि एवं हृदय की पवित्रता के साथ क्षमा करना और क्षमा माँगना यह पूर्ण क्षमापना विधि है। *(विवेचन . उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म , पृ ३९२–३९३)*

Elaboration—In *Brihat-kalp Uddeshak* 4, it has been stated that monk and nun should not leave that area without seeking forgiveness from each other when a quarrel arises. Still if one of them goes to a distant place because the other one did not get pacified and later that monk or nun who did not get pacified earlier thinks himself/herself or because of

inducement from any other that he/she should seek forgiveness then the nun should not go to the far away place. She should rather send her request of forgiveness through some *bhikshu* who is going that side. But the *bhikshu* should seek forgiveness only by going to that place. The purpose of having different provision in the code should be understood in the light of aphorisms 9 and 10 that the movement of nun is dependent on others while it is possible for a monk to go alone. If the place concerned is nearby then the nun also should go there with other nuns and seek forgiveness. The provision in the aphorism is with reference to a fairly distant place. It is however, very essential to seek mutual forgiveness. In case one dies without seeking forgiveness, then he becomes adverse follower of the code.

Forgiveness is if two types on the basis of external (*Dravya*) forgiveness and internal (*bhaava*) forgiveness.

(1) In respect of Dravya—In case one is having anger or ill will towards another, he should say directly—"I forgive you and I am having a pleasant attitude towards you " In case one becomes angry because the other one had committed a fault or he should tell him—"I committed a mistake. Please forgive me. I shall not act in such a manner again."

(2) In context of Bhaava—To make one's heart completely pure by equanimity simplicity and humility.

Thus the process of observing forgiveness completely is to have pure thoughts and clean heart and then to forgive and seek forgiveness. (*Commentary Upadhyaya Shri Kanhaiyalal ji Maharaj, pp 392-393*)

व्यतिकृष्ट काल में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो के लिए स्वाध्याय का विधि-निषेध
PROHIBITION OF STUDYING SCRIPTURES DURING PROHIBITED PERIOD

१३. नो कप्पइ निग्गंथाणं विइगिट्ठे काले सज्झायं करेत्तए।

१४. कप्पइ निग्गंथीणं विइगिट्ठे काले सज्झायं करेत्तए निग्गंथनिस्साए।

१३. निर्ग्रन्थो को व्यतिकृष्ट काल में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है।

१४. निर्ग्रन्थ की निश्रा में निर्ग्रन्थियों को व्यतिकृष्ट काल में भी स्वाध्याय करना कल्पता है।

13. *Nirgranths* are not allowed to study scriptures during prohibited (*vyatikrisht*) period.

14. Jain nuns can study scriptures under the guidance of a Jain monk even during prohibited period.

विवेचन : जिन आगमों का स्वाध्याय जिस काल में निषिद्ध है, वह काल उन आगमों के लिए व्यतिकृष्ट काल कहा जाता है। साधु-साध्वी को ऐसे समय में स्वाध्याय अर्थात् आगम के मूल पाठ का उच्चारण नहीं करना चाहिए। *(वर्जित स्वाध्याय काल निशीथसूत्र, उद्देशक १९ के अनुसार जानें)* संक्षेप में कालिक सूत्रों का वर्जित स्वाध्याय काल दिन और रात का दूसरा-तीसरा प्रहर है। उत्कालिक सूत्रों का चार संध्याकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

इनमें से उपलब्ध कालिक सूत्रों का उत्काल में स्वाध्याय करना प्रथम सूत्र में निषिद्ध है, किन्तु दूसरे सूत्र में साध्वी के लिए निर्ग्रन्थी के पास स्वाध्याय करने का आपवादिक विधान है। उसका कारण यह है कि कभी-कभी प्रवर्तिनी या साध्वियों को मूल पाठ उपाध्याय आदि को सुनाना आवश्यक हो जाता है, जिससे कि अन्य साधु-साध्वियो में मूल पाठ की परम्परा समान रहे। साधु-साध्वियों के परस्पर आगमों के स्वाध्याय का एवं वाचना का समय दूसरा-तीसरा प्रहर ही योग्य होता है, इसलिए यह छूट दी गई है, ऐसा समझना चाहिए।

Elaboration—The study of certain *Agams* is prohibited during a certain period. That period of time is called prohibited period for these *Agams*. Monks and nuns should not study *Agams* during that period. In other words they should not read original text of *Agams* at that time (Prohibited period should be known as stated in *uddeshak* 19 of *Nisheeth Sutra*). In brief, study of *Kalik Sutras* is prohibited during the second and third quarters of the day and the night. The study of *Utkalik Sturas* is prohibited during the four junctions (*Sandhya-kaal*) namely sunrise, noon, sunset and midnight.

In the first aphorism the study of available *Kalik Sutras* is prohibited during the period so mentioned (*Utkaal*) but in the second aphorisms there is an exceptional provision in case of study by a nun before a *pravartini*. It is because sometimes *pravartini* or nuns have to recite the text before *Upadhyaya* and the like so that the tradition of memorising the text may continue. The usual timing of scriptural study and taking lessons from the texts for monks and nuns mutually is second and third quarter of the day. So there is this exception.

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी को स्वाध्याय करने का विधि-निषेध
PROHIBITION OF STUDY OF SCRIPTURES IN PROHIBITED TIME

१५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा असज्झाइए सज्झायं करेत्तए।

१६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सज्झाइए सज्झायं करेत्तए।

१५. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना नही कल्पता है।

१६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को स्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना कल्पता है।

15. Monks and nuns should not study scriptures during the period prohibited for such studies.

16. Monks and nuns should study scriptures during the period assigned in scriptures for such studies.

विवेचन : प्रस्तुत दो सूत्रों में अस्वाध्यायकाल में स्वाध्याय करने का निषेध किया है। अस्वाध्याय सम्बन्धी विस्तृत वर्णन आगम के अंतिम परिशिष्ट में देखें।

Elaboration—In the present two aphorisms, study of scriptures is prohibited during the period prohibited for such studies. Detailed description regarding prohibited timings for scriptural studies is in the last appendix of the Agam.

शारीरिक अस्वाध्याय में स्वाध्याय का विधि-निषेध

PROCEDURE OF STUDYING/NOT STUDYING DUE TO PROHIBITION RELATING TO PHYSICAL CONDITION

१७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अपण्णो असज्झाइए सज्झायं करेत्तए। कप्पइ णं अण्णमण्णस्स वायणं दलइत्तए।

१७. निर्ग्रन्थों एव निर्ग्रन्थियों को स्व-शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय होने पर स्वाध्याय करना नही कल्पता है, किन्तु परस्पर एक-दूसरे को वाचना देना कल्पता है।

17. Monks and nuns are not allowed to study scriptures when they are deprived for such studies due to their physical condition But they can mutually teach each other.

विवेचन : सूत्र १६ मे दस औदारिक अस्वाध्याय में स्वाध्याय करने का सामान्य निषेध किया गया है, तथापि यहाँ पुन· निषेध करने का कारण यह है कि मासिक धर्म सम्बन्धी या शरीर से व्रण सम्बन्धी अपना अस्वाध्याय निरन्तर चालू रहने की स्थिति मे उतने समय तक कोई भी सूत्र की वाचना चल रही हो तो उसे बन्द करना या बीच में छोडना उपयुक्त नही है। अनेक साधु-साध्वियों की सामूहिक वाचना चल रही हो तो कभी किसी के और कभी किसी के अस्वाध्याय का कारण हो तो इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हो सकते है और उससे सूत्रो की वाचना मे अव्यवस्था हो जाती है। अत. यह सूत्र उक्त स्थिति को ध्यान मे रखकर शरीरिक अस्वाध्याय मे आपवादिक विधान करता है कि रक्त-पीप आदि की उचित रीति से शुद्धि करके साधु या साध्वी परस्पर वाचना का लेना-देना दोनो कर सकते हैं। किन्तु वाचना के अतिरिक्त स्वत स्वाध्याय करना या सुनना तो सूत्र के पूर्वार्द्ध से निषिद्ध ही है।

Elaboration—In *Sutra* (Aphorism) 16, one is prohibited to study scriptures at the time of ten physical conditions whereas such study is not allowed. Still the cause of repeating it in the present aphorism is that during the period of mensturation or when scriptural study is prohibited due to any deep wound, it is not proper to stop the study of an *Agam* in between whose study is in progress and the monks and nuns concerned are in a fit condition to continue that study. When many monks and nuns are studying together the state of stopping studies may arise sometimes

earlier in case of one of them and later in case of the other. Thus many days can pass in this condition and the study of scriptures may become topsy turvy. So keeping in view such a situation that may sometimes arise, there is this exception in the present aphorism with respect to prohibition of study relating to physical condition that monks and nuns can study/teach scriptures among themselves after properly cleaning the blood, pus and the like of the wound. But except teaching scriptures, they cannot themselves study scriptures or listen to it as already prohibited in the first part of the aphorism.

निर्ग्रन्थी के लिए आचार्य-उपाध्याय की नियुक्ति की आवश्यकता

NEED OF APPOINTING ACHARYA OR UPADHYAYA FOR A NUN

१८. तिवासपरियाए समणे निग्गंथे तीसं वासपरियाए समणीए निग्गंथीए कप्पइ उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

१९. पंचवासपरियाए समणे निग्गंथे सट्ठिवासपरियाए समणीए निग्गंथीए कप्पइ आयरिय-उवज्झायत्ताए उद्दिसित्तए।

१८. तीस वर्ष की श्रमण-पर्याय वाली निर्ग्रन्थी को तीन वर्ष के श्रमण-पर्याय वाले निर्ग्रन्थ को उपाध्याय के रूप मे स्वीकार करना कल्पता है।

१९. साठ वर्ष की श्रमण-पर्याय वाली निर्ग्रन्थी को पाँच वर्ष के श्रमण-पर्याय वाले निर्ग्रन्थ को आचार्य या उपाध्याय के रूप में स्वीकार करना कल्पता है।

18. A Jain nun who has thirty years of ascetic life to her credit is allowed to accept a monk of three years of monkhood as *Upadhyaya*.

19. A Jain nun who has sixty years of ascetic life to her credit is allowed to accept a monk of five years of monkhood as *Acharya* or *Upadhyaya*.

विवेचन : उद्देशक ३, सूत्र ११-१२ मे साध्वियो को आचार्य, उपाध्याय एवं प्रवर्तिनी की निश्रा से रहना तथा साधुओं को आचार्य, उपाध्याय की निश्रा से रहना आवश्यक कहा है। वह विधान तीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय एव चालीस वर्ष की उम्र तक के साधु-साध्वियों के लिए किया गया है।

प्रस्तुत दो सूत्रो में तीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाली साध्वी के लिए उपाध्याय की नियुक्ति और साठ वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाली साध्वी के लिए आचार्य की नियुक्ति करना कहा है। इन दोनो सूत्रो का तात्पर्य यह है कि तीस वर्ष तक की दीक्षा-पर्याय वाली साध्वियों को उपाध्याय एवं प्रवर्तिनी के बिना रहना नहीं कल्पता है और साठ वर्ष तक की दीक्षा-पर्याय वाली साध्वियों को आचार्य के बिना रहना नही कल्पता है।

उक्त वर्ष संख्या के बाद यदि पदवीधर कालधर्म को प्राप्त हो जाएँ, या गच्छ छोडकर शिथिलाचारी बन जाएँ तो ऐसी परिस्थितियों में उन साध्वियो को आचार्य आदि की नियुक्ति करना आवश्यक नही रहता है। यह उक्त सूत्रों से सूचित होता है।

Elaboration—In *Uddeshak* 3, verses 11-12 it is essential for Jain nuns to remain under the supervision of *Acharya* and *pravartini* and *Upadhyaya* and for monks to remain under supervision of *Acharya* and *Upadhyaya*. That provision is for those monks and nuns who have ascetic life of not more than thirty years and not more than forty years of age.

In the present two verses, it is stated that an *Upadhyaya* should be appointed for a nun who has thirty years of ascetic life and an *Acharya* for a nun who has sixty years of ascetic life to her credit. The gist of both these verses is that the nuns whose ascetic life is not more than thirty years are not allowed to lead their ascetic life without an *Upadhyaya* and *pravartini* and the nuns who have ascetic life upto sixty years are not allowed to lead ascetic life without an *Acharya*.

In case after the period mentioned above, the person holding the post dies or leaves the *gachha* (group) and becomes poor in ascetic conduct, it is not essential for the concerned nuns to appoint an *Acharya*. This is the purport of these verses.

मृत शरीर को परठने और उपकरणों को ग्रहण करने की विधि

PROCEDURE OF DISPERSING THE DEAD BODY AND ACCEPTING UPKARANS

२०. गामाणुगामं दूइज्जमाणे भिक्खू य आहच्च वीसुंभेज्जा, तं च सरीरगं केइ साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से तं सरीरगं 'मा सागारियं' त्ति कट्टु एगंते अचित्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेत्तए।

अत्थि य इत्थ केइ साहम्मियसंतिए उवगरणजाए परिहरणारिहे, कप्पइ से सागारकडं गहाय दोच्चंपि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता परिहारं परिहारित्तए।

२०. ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ भिक्षु यदि अकस्मात् मार्ग में ही कालधर्म को प्राप्त हो जाए और उसके शरीर को कोई श्रमण देखे और यह जान ले कि यहाँ 'कोई गृहस्थ नहीं है' तो उस मृत श्रमण के शरीर को एकान्त निर्जीव भूमि में प्रतिलेखन व प्रमार्जन करके परठना कल्पता है।

यदि उस मृत श्रमण के कोई उपकरण उपयोग में लेने योग्य हों तो उन्हें सागारकृत ग्रहण कर पुनः आचार्यादि की आज्ञा लेकर उपयोग में लेना कल्पता है।

20. If a *bhikshu* during his wanderings dies suddenly and another *bhikshu* sees his dead body and also finds that there is no householder available, he should discard that body at a lonely place, which has no life after properly examining it and cleaning it.

In case some belongings (cloth, pot and the like) of that dead monk are worthy of being used, he should collect them subject to the

permission of the senior, keep them with him temporarily. After taking the permission of *Acharya* and the like, he is allowed to use them.

विवेचन : बृहत्कल्प, उद्देशक, सूत्र ४ में उपाश्रय में कालधर्म को प्राप्त होने वाले साधु को परठने सम्बन्धी विधि बताई है और प्रस्तुत सूत्र में विहार करते हुए कोई भिक्षु मार्ग में ही कालधर्म को प्राप्त हो जाए तो उसके मृत शरीर को परठने की विधि कही है।

'मा सागारियं'–भिक्षु यह जान ले कि वहाँ आसपास में कोई गृहस्थ नहीं है जो उस शरीर का मृत-संस्कार करे, तब उस स्थिति मे साधुओं को उसे उठाकर एकान्त अचित्त स्थान में परठ देना चाहिए। यदि कोई एक या अनेक भिक्षु किसी भी कारण से उस कालधर्म प्राप्त भिक्षु के मृत शरीर को मार्ग में यों ही छोडकर चले जाएँ तो वे सभी गुरुचौमासी प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

Elaboration—In *Brihat-kalp uddeshak* 4 the procedure of disposing the dead body is stated when a monk dies in *upashraya*. In the present verse the procedure has been laid down when a monk dies on the way (during his wanderings).

Ma Sagariyam—It means that when a *bhikshu* is satisfied that no householder is available nearby who could perform necessary rites in respect of that body, he should carry that dead body to a lonely place which has no life and discard it there. In case any *bhikshu* or many *bhikshus* due to any reason leave that dead body on the way, they all are liable for *guruchaumasi prayashchit.*

परिहरणीय शय्यातर का निर्णय DECISION OF PARIHARNIYA SHAYYATAR

२१. सागारिए उवस्सयं वक्कएणं पउंजेज्जा से य वक्कइयं वएज्जा–'इमम्मिय इमम्मि य ओवासे समणा णिग्गंथा परिवसंति। से सागारिए पारिहारिए।

से य नो वएज्जा वक्कइए वएज्जा, से सागारिए पारिहारिए। दो वि ते वएज्जा, दो वि सागारिया पारिहारिया।

२२. सागारिए उवस्सयं विक्किणेज्जा, से य कइयं वएज्जा–'इमम्मि य इमम्मि य ओवासे समणा निग्गंथा परिवसंति', से सागारिए पारिहारिए।

से य नो वएज्जा, कइए वएज्जा, से सागारिए पारिहारिए। दो वि ते वएज्जा, दो वि सागारिया पारिहारिया।

२१. शय्यादाता यदि उपाश्रय किराये पर दे और किराये पर लेने वाले को यह कहे कि ''इतने-इतने स्थान में श्रमण निर्ग्रन्थ रह रहे हैं।'' इस प्रकार कहकर देने वाला गृहस्वामी सागारिक (शय्यातर) है, अतः उसके घर आहारादि लेना नहीं कल्पता है।

यदि शय्यातर कुछ न कहे, किन्तु किराये पर लेने वाला कहे तो वह शय्यातर है, अतः परिहार्य है। यदि किराये पर देने वाला और लेने वाला दोनों कहें तो दोनों शय्यातर हैं, अतः दोनों परिहार्य हैं।

२२. शय्यादाता यदि उपाश्रय बेचे और खरीदने वाले को यह कहे कि "इतने-इतने स्थान में श्रमण निर्ग्रन्थ रहते है।" तो वह शय्यातर है, अतः वह गृहस्थ परिहार्य है।

यदि उपाश्रय का विक्रेता कुछ न कहे, किन्तु खरीदने वाला कहे तो वह सागारिक है, अतः वह परिहार्य है। यदि विक्रेता और क्रेता दोनों कहें तो दोनों सागारिक हैं, अतः दोनों परिहार्य हैं।

21. In case a *Shayyadata* (the person who has given house or *upashraya* to the monks for stay) later gives it on rent and tells the tenant that the monks are staying in such and such portion of it, then the owner of the house is *Shayyatar* or *Sagarik* and the monk is not allowed to collect food and the like from his house.

In case a *Shayyatar* does not say any thing but the tenant says then he is Shayyatar. So he is *pariharıya* (one from whose house monk cannot collect food) If both the owner and the tenant say (that such and such area is for monks) then both are *Shayyatar*. So in that case both are *pariharya*.

22. In case a *Shayyatar* sells the house and tells the customer that monks are staying in such and such portion of the house, then he is *Shayyatar* and therefore is *pariharya* (nothing can be collected by monk from his house)

If the seller does not say anything but the purchaser says then he is *Sagarik* and therefore *pariharya*. If both the seller and the purchaser say, then both are *sagarik* In that case both are *pariharya*.

विवेचन : भिक्षु जिस मकान मे ठहरा हुआ है, उसका मालिक उसे किराये पर देवे या उसे बेच दे तो ऐसी स्थिति में भिक्षु का शय्यातर कौन रहता है, इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत सूत्र में स्पष्ट दिया गया है।

यदि खरीदने वाला या किराये पर लेने वाला व्यक्ति भिक्षु को अपने मकान मे प्रसन्नतापूर्वक ठहरने की आज्ञा देता हो तो वह शय्यातर माना जाता है। यदि वह भिक्षु को ठहराने मे उपेक्षाभाव रखता है एवं आज्ञा भी नहीं देता है, किन्तु मकान का पूर्व मालिक ही उसे भिक्षु के रहने का स्पष्टीकरण कर देता है कि "अमुक समय तक भिक्षु रहेंगे, उसके बाद वह स्थान भी तुम्हारा हो जायेगा।" ऐसी स्थिति में पूर्व शय्यादाता ही शय्यातर रहता है। आशय यह है कि जो शय्यातर होगा उसी के घर का आहार आदि 'शय्यातरपिंड' कहलाएगा।

कभी पूर्व शय्यादाता भी कहे कि "मेरी आज्ञा है" और नूतन स्वामी भी कहे कि "मेरी भी आज्ञा है" तब दोनो को शय्यातर मानना चाहिए। यदि समझाने पर उनके समझ मे आ जाए तो किसी एक की ही आज्ञा रखना उचित है। क्योंकि बृहत्कल्प, उ २, सू १३ में अनेक स्वामियो वाले मकान में किसी एक स्वामी की आज्ञा लेने का विधान किया गया है।

इस सूत्र मे गृहस्थ के घर के लिए 'उपाश्रय' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि जहाँ भिक्षु ठहरा हुआ हो या जहाँ उसे ठहरना हो, उन दोनों ही मकानों को आगमकार ने 'उपाश्रय' शब्द से बताये है। इसी दृष्टि से बृहत्कल्प, उ. २, सू. १-१० मे भी खाद्य-सामग्री रखे गृहस्थ के घर को अथवा कारखाने आदि स्थान को भी उपाश्रय कहा गया है। अत· यहाँ उपाश्रय शब्द से गृहस्थ का मकान अर्थ समझना चाहिए।

Elaboration—In this aphorism it has been clarified that who shall be termed as *Shayyatar* of a monk if the owner of the house where *bhikshu* is staying gives it on rent or sells it.

In case the purchaser or the tenant happily allows the monk to stay there, then he shall be termed *Shayyatar*. In case he is silent or ignores it and does not specifically indicate his permission for stay but the earlier owner of the house clarifies about the stay of *bhikshu* by saying that the monks shall stay there for such and such period and thereafter that portion shall belong to him (the purchaser), then the earlier *Shayyatar* remains the *Shayyatar*. The idea is that one who is *Shayyatar* the food from his house shall be called *Shayyatar-pind* (food not acceptable to the monk).

In case the original *Shayyatar* says that he allows monks to stay and the new owner also says that he also allows monks to stay, then both of them should be considered as *Shayyatar* In case they are able to understand when properly told regarding the purpose in declaring *Shayyatar* then it is proper to have permission of only one of them because it is laid down in *Brihat-kalp, uddeshak* 2, verses 13 that in case of a house owned by many persons, the permission should be taken only of one out of them.

In this aphorism the word '*upashraya*' has been used for the house of a lay man. It is because the author of *Agams* has named both the houses—one where the *bhikshu* is staying and the one where he is going to stay as *upashraya*. In view of it, in *Brihat-kalp, uddeshak* 2, verses 1—10, the house where food grains have been stored or the factory and the like is also called *upashraya*. So the word *upashraya* should be understood as house belonging to the householder.

आज्ञा ग्रहण करने की विधि PROCEDURE OF SEEKING PERMISSION

२३. विहवधूया नायकुलवासिणी सा वि यावि ओग्गहं अणुन्नवेयव्वा, किमंग पुण पिया वा, भाया वा, पुत्ते वा, से वि या वि ओग्गहे ओगेण्हियव्वे।

२४. पहेवि ओग्गहं अणुन्नवेयव्वे।

२३. पिता के घर पर जीवनयापन करने वाली विधवा लडकी की भी आज्ञा ली जा सकती है, तब पिता, भाई, पुत्र का तो कहना ही क्या अर्थात् उनकी भी आज्ञा ग्रहण की जा सकती है।

२४. यदि मार्ग मे ठहरना हो तो उस स्थान की भी आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए।

23. The permission can be taken of the widowed daughter also who is living in the house of her parents. Permission can be taken of the father, brother, son also.

24. In case a monk has to stay on the way, he should seek permission of that place also.

विवेचन : प्रथम सूत्र में बताया गया है कि सयुक्त परिवार का कोई भी समझदार सदस्य हो, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उनकी आज्ञा ली जा सकती है। विवाहित लडकी की आज्ञा नहीं ली जा सकती। किन्तु जो लडकी किसी भी कारण से सदा पिता के घर में ही रहती हो तो उसकी भी आज्ञा ली जा सकती है। इसी प्रकार जो समझदार एवं जिम्मेदार नौकर हो, उसकी भी आज्ञा ली जा सकती है। मकान के बाहर का खुला स्थान (बरामदा) आदि मे बैठना हो और मकान-मालिक घर बन्द करके कहीं गया हुआ हो तो किसी राहगीर या पडौसी की भी आज्ञा ली जा सकती है।

द्वितीय सूत्रानुसार भिक्षु को विहार करते हुए कभी मार्ग मे वृक्ष के नीचे अथवा अन्य कही ठहरना हो तो उस स्थान पर ठहरे हुए व्यक्ति की भी आज्ञा लेनी चाहिए। यदि कोई भी आज्ञा देने वाला न हो तो उस स्थान मे ठहरने के लिए "शक्रेन्द्र की आज्ञा है" ऐसा उच्चारण करके भिक्षु ठहर सकता है। किन्तु किसी भी प्रकार से आज्ञा लिए बिना कही पर भी नही ठहरना चाहिए।

Elaboration—In the first aphorism it has been stated that from any grown up member in a joint family whether he is a woman or a man, the permission for stay can be taken. But in case a daughter, due to any reason, is permanently staying in the house of her father, her permission can also be taken Similarly if there is a responsible servant in the house, his permission can also be taken In case there is an open verandah of the house, and the owner of the house has gone somewhere after closing the house, the permission for sitting in the verandah can be taken from the neighbour or the passer bye

According to second aphorism, in case a *bhikshu* during his wanderings has to stay under a tree or at any other place, then he should seek the permission of the person who is already staying there. In case no such person is available who could grant the permission, he should, for the purpose of staying there, say—"I seek permission of Shakrendra." Thereafter he can stay there. But he should not stay anywhere without any sort of permission.

राज्य-परिवर्तन में आज्ञा ग्रहण करने का विधान

PROCEDURE OF SEEKING PERMISSION ON CHANGE OF RULER

२५. से रज्जपरियट्टेसु, संथडेसु, अव्वोगडेसु, अव्वोच्छिन्नेसु, अपरपरिग्गहिएसु, सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ अहालंदमवि ओग्गहे।

२६. से रज्जपरियट्टेसु, असंथडेसु, वोगडेसु, वोच्छिन्नेसु, परपरिग्गहिएसु भिक्खुभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि ओग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया।

२५. राजा की मृत्यु के बाद नये राजा का अभिषेक हो किन्तु (वह) अविभक्त एव शत्रुओ द्वारा अनाक्रान्त रहे, राजवश अविच्छिन्न रहे और राज्य-व्यवस्था पूर्ववत् चालू रहे तो साधु-साध्वियो के लिए पूर्वगृहीत आज्ञा ही यथेच्छ काल तक मान्य रहती है।

२६. राजा की मृत्यु के बाद नये राजा का अभिषेक हो और उस समय राज्य विभक्त हो जाए या शत्रुओं द्वारा आक्रान्त हो जाए, राजवंश विच्छिन्न हो जाए या राज्य-व्यवस्था परिवर्तित हो जाए तो साधु-साध्वियो को भिक्षुभाव अर्थात् (सयम की मर्यादा) की रक्षा के लिए दूसरी बार आज्ञा ले लेनी चाहिए।

25. A king dies and thereafter a new ruler is crowned. He is not invaded by the enemies, the dynasty is continuing undisturbed and the administration is as before Then the permission granted earlier remains in force for the period upto which it had been granted to the monks and nuns

26. After the death of a king, a new ruler is crowned. At that time the kingdom has been divided or it has been attacked by enemies. The dynasty of the rulers is disturbed or there occurs a change in administrative set-up. Then the monks and nuns should seek the permission of stay again in order to safe-guard their life of ascetic restraint

विवेचन : भिक्षु-भिक्षुणियाँ जिस राज्य मे विचरण करते हो, उसके राजा या अधिकारी की आज्ञा प्राप्त करके रहना चाहिए। जब राजसत्ता मे परिवर्तन हो जाए तब दो स्थितियाँ बनती है-

(१) पूर्व राजा का राजकुमार या उसके वंशज राजा बने हो अथवा केवल व्यक्ति का परिवर्तन हुआ हो, अन्य राजसत्ता, व्यवस्था और कानूनो का कोई परिवर्तन न हुआ हो तो पूर्व ग्रहण की हुई आज्ञा से विचरण किया जा सकता है, पुन आज्ञा लेने की आवश्यकता नही रहती है।

(२) यदि कोई सर्वथा नया ही राजा बना हो, राज्यव्यवस्था का परिवर्तन हो गया हो तो वहाँ विचरण करने के लिए पुन. आज्ञा लेना आवश्यक हो जाता है।

सभी जैन सघों के साधु-साध्वियों के विचरण करने की राजाज्ञा एक प्रमुख व्यक्ति के द्वारा प्राप्त कर ली जाए तो फिर पृथक्-पृथक् किसी भी सत-सती को आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं रहती है।

॥ सातवाँ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—The monks and nuns should seek the permission of the ruler or the official concerned of the state in which they are moving

about (propagating their mission). When there is a change in administration, two situations occur—

(1) The son of the earlier ruler or one from his dynasty becomes the king, or there is only change in person holding the administration and there is no change in administrative set-up and the laws in force. Then monks and nuns can move about on the basis of the permission already obtained and there is no need to seek permission afresh.

(2) In case a totally new ruler has become the king and there has been a change in administrative set-up. Then it is necessary to seek permission again (for stay and moving there)

In case one responsible in the organisation secures permission from the government for wanderings of monks and nuns of all Jain groups in the state then it is not necessary for any monk or nun to seek such permission individually.

● SEVENTH UDDESHAK CONCLUDED ●

आठवाँ उद्देशक
EIGHTH UDDESHAK

शयन-स्थान ग्रहण की विधि PROCEDURE OF HAVING PLACE FOR BED

१. गाहा उऊ पज्जोसविए, ताए गाहाए, ताए पएसाए, ताए उवासंतराए "जमिणं जमिणं सेज्जासंथारगं लभेज्जा तमिणं तमिणं ममेव सिया।" थेरा य से अणुजाणेज्जा, तस्सेव सिया।

थेरा य से नो अणुजाणेज्जा नो तस्सेव सिया। एवं से कप्पइ अहाराइणियाए सेज्जासंथारगं पडिग्गाहित्तए।

१. हेमन्त या ग्रीष्म काल मे भिक्षु किसी के (गाहा-) घर में ठहरने के लिए रहा हो, उस घर के किसी विभाग के किसी (ताए पएसाए-) कमरे आदि मे, तथा ताए उवासंतराए-उसके अमुक अमुक स्थानो मे "जो-जो अनुकूल स्थान (संस्तारक) मिले वे-वे मै ग्रहण करूँ।" इस प्रकार के संकल्प होने पर भी स्थविर यदि उस स्थान के लिए आज्ञा दे तो वहाँ शय्या-सस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

यदि स्थविर आज्ञा न दे तो वहाँ शय्या-संस्तारक ग्रहण करना नही कल्पता है। स्थविर के आज्ञा न देने पर यथारत्नाधिक-(दीक्षा-पर्याय से ज्येष्ठ-कनिष्ठ) क्रम से शय्या स्थान या संस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

1. In summer or winter a *bhikshu* is present in a house for staying there. He has a thought in his mind that he shall accept that place or bed (*Sanstarak*) which is proper in such and such part of the house and at such and such place Even then he can accept such place or bed only if *Sthavir* grants him permission for it.

In case the *Sthavir* does not grant permission for it, he is not allowed to accept that place or bed. In that case the place or bed for taking rest can be accepted only in order of seniority in period of monkhood.

विवेचन : किसी भी घर या उपाश्रय आदि मे ठहरने के समय या बाद मे अपने बैठने या सोने के स्थान का निर्णय गुरु या प्रमुख की आज्ञा से करना चाहिए, जिससे व्यवस्था एवं अनुशासन का सम्यक् पालन होता रहे।

आचाराग (श्रु. २, अ. २, उ ३) में शयनासन (शय्या-भूमि) ग्रहण करने की विधि का कथन करते हुए बताया है कि "आचार्य, उपाध्याय आदि पदवीधर एव बाल, वृद्ध, नवदीक्षित और आगन्तुक (पाहुणे) साधुओं को ऋतु के अनुकूल एव इच्छित स्थान यथाक्रम से दिये जाने के बाद ही शेष भिक्षु संयम-पर्याय के क्रम से शयन-स्थान ग्रहण करे।

Elaboration—A decision about the place of sitting or sleeping in a house or in the *upashraya* and the like should be taken at the time of staying or later at the him of sitting or sleeping only with the permission

of the guru or the head of the group so that the administration may run smoothly and in a disciplined manner.

In *Acharang* (*Shrut* 2, *Adh*. 2, *Udd*. 3) while narrating the procedure for accepting the place for rest, it has been stated that *Acharyas*, *Upadhyayas* who are holding any post, the very young, the old, the newly initiated and the guest monks should be allotted the place according to the prevailing weather and their desire in that order and that the remaining space should be allotted to the remaining monks in the order of their seniority in monkhood.

शय्या-संस्तारक लाने की विधि PROCEDURE OF BRINGING BEDDING

२. से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा, जं चक्किया एगेण हत्थेण ओगिज्झ जाव एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा परिवहित्तए, "एस मे हेमन्त-गिम्हासु भविस्सइ।"

***३. से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा, जं चक्किया एगेणं हत्थेणं ओगिज्झ जाव एगाहं वा,* दुयाहं वा, तियाहं वा अद्धाणं परिवहित्तए, "एस मे वासावासासु भविस्सइ।"**

४. से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा, जं चक्किया एगेणं हत्थेणं ओगिज्झ जाव एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा, चउयाहं वा, पंचाहं वा, दूरमवि अद्धाणं परिवहित्तए, "एस मे वुड्ढावासासु भविस्सइ।"

२. श्रमण यथासम्भव (यथालघु-) हल्के शय्या-संस्तारक का अन्वेषण करे, वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से उठाकर लाया जा सके। ऐसे शय्या-संस्तारक एक, दो या तीन दिन तक उसी बस्ती से गवेषणा करके लाया जा सकता है, इस प्रयोजन से कि यह शय्या-संस्तारक मेरे हेमन्त या ग्रीष्म ऋतु में काम आयेगा।

३. श्रमण यथासम्भव हल्के शय्या-संस्तारक का अन्वेषण करे, वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से ग्रहण करके लाया जा सके। ऐसा शय्या-संस्तारक एक, दो या तीन दिन तक उसी बस्ती से या निकट की अन्य बस्ती से गवेषणा करके लाया जा सकता है, इस प्रयोजन से कि यह शय्या-सस्तारक मेरे वर्षावास में काम आयेगा।

४. श्रमण यथासम्भव हल्के शय्या-संस्तारक का अन्वेषण करे, वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से उठाकर लाया जा सके। ऐसा शय्या-संस्तारक एक, दो, तीन, चार या पाँच दिन तक उसी बस्ती से या अन्य दूर की बस्ती से भी गवेषणा करके लाया जा सकता है, इस प्रयोजन से कि यह शय्या-संस्तारक मेरे वृद्धावास (स्थविरवास) मे काम आयेगा।

2. A monk should try to select a light bedding. It should be so much light that it could be brought and carried in one hand. Such a bedding can be brought from the same colony for one, two or three days after seeking it according to the rules laid down. It can be brought with a view that it shall serve his purpose in summer and winter.

3. A monk should try to collect a light bedding—so light that it could be carried in one hand. Such a bedding can be collected according to rules from the same or nearby colony for one, two or three days. It can be colleced with a view that it shall serve the purpose in *Chaturmas* (rainy season).

4. A monk should try to collect a light bedding—so much light that it could be carried with one hand. Such a bedding can be collected according to rule for one, two or three, four or five days from the same colony or from any other colony at a distance with a view that it shall serve the purpose of permanent stay (*Sthaviravas*) due to old age.

विवेचन : पूर्व सूत्र मे शय्या-संस्तारक शब्द से स्थान ग्रहण करने की विधि कही है और इन सूत्रो मे शय्या-सस्तारक शब्द से पाट आदि ग्रहण करने का विधान है। यह पाद आदि प्रातिहारिक ही होते है जिन्हे उपयोग करने के बाद वापस लौटा दिया जाता है।

इन सूत्रो का भाव यह है कि जो भी पाट आदि लावे, वह इतना हल्का होना चाहिए कि एक हाथ से उठाकर लाया जा सके।

प्रथम सूत्रानुसार हेमन्त-ग्रीष्म काल के लिए आवश्यक पाट आदि की गवेषणा तीन दिन तक उसी ग्रामादि मे की जा सकती है, दूसरे सूत्रानुसार वर्षावास के लिए उसी ग्रामादि में या निकट के अन्य ग्रामादि मे तीन दिन तक गवेषणा की जा सकती है और तृतीय सूत्रानुसार स्थविरवास के लिए पाट आदि की गवेषणा उत्कृष्ट पाँच दिन तक उसी ग्रामादि मे या दूर के ग्रामादि मे भी की जा सकती है। ऐसा इन पृथक्-पृथक् तीन सूत्रों में स्पष्ट किया गया है।

Elaboration—In the earlier aphorism, by the word *Shayya-Sanstarak*, the procedure of getting the place of stay was stated while in these aphorisms by the word *Shayya-Sanstarak* the procedure for collecting bed and the like has been narrated. These beds are *pratiharik* and they are returned after use.

The central idea of these aphorisms is that the beds, stool and the like, which a monk collects and brings should be so light that it could be carried and brought with one hand.

According to the first aphorism, the necessary bed and the like can be collected in summer and winter from the same village or colony for three days. According the second aphorism they can be collected for *Chaturmas* during three days from the same village or colony or from another village or colony. In the third aphorism it is mentioned that for permanent stay they can be collected at the most in five days from the same village or colony or from another village or colony at a distance. This fact has been clarified in these three aphorisms.

एकाकी स्थविर के भण्डोपकरण और गोचरी जाने की विधि
PROCEDURE OF COLLECTING POT AND FOOD ALONE

५. थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दण्डए वा, भण्डए वा, छत्तए वा, मत्तए वा, लट्ठिया वा, भिसे वा, चेले वा, चेलचिलिमिलिं वा, चम्मे वा, चम्मकोसे वा, चम्मपलिच्छेयणए वा अविरहिए ओवासे ठवेत्ता गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसित्तए वा, निक्खमित्तए वा।

कप्पइ णं सन्नियट्टचारीणं दोच्चंपि उग्गहं अणुन्नवेत्ता परिहरित्तए।

५. स्थविरत्व-प्राप्त (एकाकी) स्थविरो को दण्ड, भाण्ड, छत्र, मात्रक, लाठी, काष्ठ का आसन, वस्त्र, वस्त्र की चिलमिलिका, चर्म, चर्मकोष और चर्म-परिच्छेदनक अविरहित स्थान में रखकर अर्थात् किसी को सम्भालकर गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाना-आना कल्पता है।

भिक्षाचर्या, करके पुन लौटने पर जिसकी देख-रेख में दण्डादि रखे गये है, उससे दूसरी बार आज्ञा लेकर ग्रहण करना कल्पता है।

5. The *Sthavırs* (who stay alone) can keep wooden stıck, earthen, pot, umbrella, pot for urine, wooden seat, clothes, mosquito-net, shoes, and the lıke in the charge of someone and then go to the houses for collectıng food and water

On his return after collectıng food and the like he can take back those things after securıng the permıssıon for them agaın

विवेचन : इस सूत्र मे ऐसे एकाकी विचरण करने वाले भिक्षु का वर्णन है जो किसी खास परिस्थिति के वश एकलविहारी है। साथ ही शरीर की अपेक्षा वृद्ध या अतिवृद्ध है, स्थविरकल्पी सामान्य भिक्षु है और अकेला रहकर यथाशक्ति सयम पालन कर रहा है। शारीरिक कारणों से उसे अनेक अतिरिक्त उपकरण रखने पड रहे हैं। उन सभी उपकरणो को साथ लेकर गोचरी आदि के लिए वह नहीं जा सकता है। उसे असुरक्षित स्थान रहने को मिला हो तो वहाँ उन उपकरणो को छोडकर जाने पर चोरी जाने की आशका रहती है। इत्यादि कारणो से सूत्र मे यह विधान किया गया है कि वह वृद्ध भिक्षु बाहर जाते समय अपने उपकरणो की सुरक्षा के लिए किसी को नियुक्त करके जाए या पास मे ही कोई बैठा हो तो उसे सूचित करके जाए और पुन आने पर उसे सूचित कर दे कि "मैं आ गया हूँ।" उसके बाद ही उन उपकरणो को ग्रहण करे।

वृद्ध भिक्षु चलते समय सहारे के लिए दण्ड या लाठी रखता है, गर्मी आदि से रक्षा के लिए छत्र रखता है, मल-मूत्र-कफ आदि विकारो के कारण अनेक मात्रक साथ में रखता है, मिट्टी के घडे आदि भांड भी रखता है, अतिरिक्त वस्त्र-पात्र रखता है, मच्छर आदि के कारण मच्छरदानी भी रखता है, बैठने में सहारे के लिए भृसिका-काष्ठ आसन रखता है, चर्मखण्ड, चर्मकोष (उपानह जूता आदि) अपने आवश्यक उपयोगी कोई भी उपकरण रखता है। उनमें से जिन उपकरणों की गोचरी जाने के समय आवश्यकता न हो उनके लिए सूत्र मे यह विधान किया गया है। वह उन्हे सुरक्षित स्थान पर रखकर जाये।

Elaboration—In this aphorism, there is the description of a monk who lives alone—the one who in view of some special circumstances is

passing his ascetic life alone. Simultaneously he is physically old or very old. He is an ordinary *Sthavir-kalpi bhikshu* or he is practicing his ascetic restraints alone according to his capability. He has to keep many more things with him in view of his physical condition. He cannot go for collecting food carrying all his things with him. As he has got an ill-guarded place for stay there is an inherent fear that his things may be stolen if he leaves them behind. In view of all such causes, there is a provision in the scriptures that while going out, an old *bhikshu* should appoint someone to guard his things in his absence. In case someone is sitting nearby he should inform him about his departure (and request him to look after his things) and on return he should again inform him that he has come. Only after it, he should accept those things.

An old *bhikshu* keeps a stick while going for his support. He keeps an umbrella to protect himself from heat. He keeps a pot for stool, urine and the like He keeps earthen pots He keeps additional clothes. He keeps mosquito net to save himself from mosquito bite. He keeps a wooden seat as a support in sitting (*bhrisika*) He keeps piece of skin and shoes and many such things while going for collecting ford and the like. This provision in *Agam* is in respect of those things which are not needed by him at that time. He should go after keeping his things at a secure place.

शय्या-संस्तारक के लिए पुनः आज्ञा लेने का विधान

PROCEDURE OF SEEKING PERMISSION AGAIN FOR BED

६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं दोच्चंपि ओग्गहं अणणुन्नवेत्ता बहिया नीहरित्तए। ७. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं दोच्चंपि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता बहिया नीहरित्तए।

८. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं सव्वप्पणा अप्पिणित्ता दोच्चं पि ओग्गहं अणणुन्नवेत्ता अहिट्ठित्तए। ९. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं सव्वप्पणा अप्पिणित्ता दोच्चं पि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता अहिट्ठित्तए।

६. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को बाहर से लाया हुआ प्रातिहारिक शय्या-सस्तारक या शय्यातर का शय्या-संस्तारक दूसरी बार आज्ञा लिए बिना अन्यत्र ले जाना नही कल्पता है। ७. किन्तु .... प्रातिहारिक शय्या-सस्तारक दूसरी बार आज्ञा लेकर ही अन्यत्र ले जाना कल्पता है।

८. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को बाहर से लाया हुआ प्रातिहारिक शय्या-सस्तारक या शय्यातर का शय्या-संस्तारक सर्वथा सौंप देने के बाद दूसरी बार आज्ञा लिए बिना काम में लेना नहीं कल्पता है। ९. किन्तु. .... शय्या-संस्तारक सर्वथा सौंप देने के बाद दूसरी बार आज्ञा लेकर ही काम मे लेना कल्पता है।

6. Monks or nuns have brought *Pratiharik Shayya-Sanstarak* (bed, stool that has to be returned after use) or use a *Shayya-Sanstarak* of *Shayyatar* (the person who has given place for stay). He or she cannot take it away to any other place without prior permission of *Shayya-Sanstarak* obtained again 7. But *pratiharak Shayya-Sanstarak* can be carried to another place after securing the permission for it again.

8. In case the monks or nuns have returned *Pratiharik Shayya-Sanstarak* or *Shayya-Sanstarak* of *Shayyatar* which they had brought from outside, they are not allowed to use it without taking the permission from the person concerned again 9. But *Shayya-Sanstarak* which has been returned, should be used only after having the permission for it again

विवेचन : शय्यातर का या अन्य गृहस्थ का शय्या-सस्तारक आदि कोई भी प्रातिहारिक उपकरण जिस मकान मे रहते हुए ग्रहण किया गया है, उसको दूसरे मकान मे ले जाना आवश्यक हो तो उसके स्वामी से आज्ञा प्राप्त करना या उसे सूचना करना आवश्यक होता है।

किसी का पाट आदि कोई भी उपकरण लाया गया हो, उसे अल्पकाल के लिए आवश्यक न होने से उपाश्रय मे ही अपनी निश्रा से छोडकर वापस गृहस्थ को सौंपा जा सकता है, किन्तु उसे जब कभी पुन लेना आवश्यक हो जाए तो दुबारा उसके स्वामी की आज्ञा लेना जरूरी होता है, यह उक्त सूत्रो का आशय है।

Elaboration—The *Shayya-Sanstarak* belonging to *Shayyatar* (the owner in whose house monks/nuns are staying after his consent) or the one belonging to another householder or any other *pratiharik* article has been taken while staying in that particular house. It has become necessary to take it to another house Then it is necessary to get the permission of its owner or to inform him about it.

A bed (or bench) or any other article has been brought. It is not needed for sometime. Then it can be given up from one's own supervision and returned to the householder concerned. In case it has to be taken again necessarily then it is essential to take the permission of its owner again. This is the gist of these aphorisms.

शय्या-संस्तारक ग्रहण करने की विधि **PROCEDURE OF ACCEPTING SHAYYA SANSTARAK**

१०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुव्वामेव ओग्गहं ओगिण्हित्ता तओ पच्छा अणुन्नवेत्तए।

११. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुव्वामेव ओग्गहं अणुन्नवेत्ता तओ पच्छा ओगिण्हित्ता।

१२. अह पुण एवं जाणेज्जा—इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा नो सुलभे पाडिहारिए सेज्जा संथारए त्ति कट्टु एवं णं कप्पइ पुव्वामेव ओग्गहं ओगिण्हित्ता तओ पच्छा अणुन्नवेत्तए।

"मा बहउ अज्जो ! विइयं" त्ति वइ अणुलोमेणं अणुलोमेयव्वे सिया।

१०. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को पहले शय्या-संस्तारक ग्रहण करना और बाद में उनकी आज्ञा लेना नहीं कल्पता है।

११. (किन्तु) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को पहले आज्ञा लेना और बाद मे शय्या-सस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

१२. यदि यह जाने कि निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को यहाँ प्रातिहारिक शय्या-संस्तारक सुलभ नहीं है तो पहले स्थान या शय्या-सस्तारक (पाट आदि) ग्रहण करना और बाद मे आज्ञा लेना भी कल्पता है। (किन्तु ऐसा करने पर यदि संयतों के और शय्या-संस्तारक के स्वामी के मध्य किसी प्रकार का कलह हो जाए तो आचार्य उन्हें इस प्रकार समझाए-"हे आर्यो ! एक ओर तो तुमने इनकी वसति ग्रहण की है, दूसरी ओर इनसे कठोर वचन बोल रहे हो। हे आर्यो ! इस प्रकार तुम्हें इनके साथ ऐसा दुहरा अपराधमय व्यवहार नही करना चाहिए।" इस प्रकार अनुकूल विनम्र वचनो से आचार्य उस वसति के स्वामी को अनुकूल करे।

10. Monks and nuns are not allowed to accept *Shayya-Sanstarak* first and to seek the permission later.

11. Monks and nuns should first take the permission and then accept *Shayya-Sanstarak*.

12. In case one comes to know that *Pratiharik Shayya-Sanstarak* is not easily available to the monks and nuns then one can first accept it and then take permission for it. (But if by this act a dispute arises between the ascetics and owner of *Shayya-Sanstarak* then the *Acharya* should pacify them in this manner—"O the blessed ! You on one hand have taken his house while on the other hand you are using hard words. O the blessed ! You should not behave in two different manners with him and your behaviour is sinful also." Thus the *Acharya* should pacify the owner of the house with sweet and humble words

विवेचन : भिक्षु के सामान्य नियम के अनुसार किसी भी स्थान पर बैठना या ठहरना हो तो पहले आज्ञा लेनी चाहिए, बाद मे ही वहाँ ठहरना चाहिए। इसी प्रकार पाट आदि अथवा तृण आदि अन्य कोई भी पदार्थ लेने हो तो उनकी पहले आज्ञा लेना चाहिए, बाद मे ही उसे ग्रहण करना या उपयोग मे लेना चाहिए। किसी भी वस्तु की आज्ञा लेने के पहले ग्रहण करना और फिर आज्ञा लेना अविधि है। इससे तृतीय महाव्रत दूषित होता है। तथापि सूत्र में मकान की दुर्लभता को लक्ष्य मे रखते हुए परिस्थितिवश गीतार्थ बहुश्रुत की सम्मति से उनकी निश्रा से कभी इस प्रकार अविधि से ग्रहण करने की आपवादिक छूट दी गई है।

इस सूत्र के अन्तिम वाक्य की व्याख्या में भाष्यकार बताते हैं कि "जहाँ दुर्लभ शय्या हो उस गाँव में कुछ साधु आगे जाएँ और किसी उपयुक्त मकान में आज्ञा लिए बिना ही ठहर जाएँ, जिससे मकान का मालिक रुष्ट होकर वाद-विवाद करने लगे तब पीछे से अन्य भिक्षु या आचार्य पहुँचकर उस विवाद करने वाले साधु को

आक्रोशपूर्वक डाँट दे "तू यह दुगुना अपराध क्यों कर रहा है?" इस प्रकार मकान-मालिक को प्रसन्न करते हुए नम्रता से वार्तालाप करके पुन. आज्ञा प्राप्त करे।

Elaboration—It is the common rule that a *bhikshu* should first take permission and then sit or stay at that place. Similarly if he has to take any plank, stool and the like or anything else, he should first seek permission for it Only then he should accept it and use it. It is overlooking the prescribed procedure if one accepts a thing and thereafter takes its permission. It adversely affects practice of third major vow Still in this *Sutra*, keeping in view the difficulty in having a house for stay and the particular situation, this is an exception in accepting an article with the consent of a learned bahushrut and under his supervision deviating from the prescribed procedure.

While explaining the last word in this aphorism the author of *bhashya* says, it is difficult to procure a bed from a particular village. Then some monks move ahead and stays in a suitable house without the permission of its owner The owner angrily starts quarreling. Then the other *bhikshu* or *Acharya* after reaching there should angrily condemn the monk who had stayed there earlier and say why was he committing double fault. Thus they should talk humbly, pleasing the owner of the house and thereafter seek his permission.

पतित या विस्मृत उपकरण की एषणा **ASKING FOR FALLEN OR FORGOTTEN UPAKARAN**

१३. निग्गंथस्स णं गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठस्स अण्णयरे अहालहुसए उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया। तं च केई साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय जत्थेव अण्णमण्णं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा-"इमे भे अज्जो ! किं परिण्णाए ?" से य वएज्जा-"परिण्णाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा-"नो परिण्णाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा नो अण्णमण्णस्स दावए, एगंते बहुफासुए थण्डिले परिट्ठवेयव्वे सिया।

१४. निग्गंथस्स णं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा निक्खंतस्स अण्णयरे अहालहुसए उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया। तं च केइ साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय जत्थेव अण्णमण्णं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा-"इमे भे अज्जो ! किं परिण्णाए ?" से य वएज्जा-"परिण्णाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा-"नो परिण्णाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अण्णमण्णस्स दावए, एगंते बहुफासुए थण्डिले परिट्ठेयव्वे सिया।

१५. निग्गंथस्स णं गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स अण्णयरे उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया। तं च केई साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय दूरमवि अद्धाण परिवहित्तए, जत्थेव अण्णमण्णं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा–"इमे भे अज्जो ! किं परिण्णाए ?" से य वएज्जा "परिण्णाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा–"नो परिण्णाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अण्णमण्णस्स दावए, एगंते बहुफासुए थण्डिले परिट्ठवेयव्वे सिया।

१३. निर्ग्रन्थ गृहस्थ के घर मे आहार के लिए जाए, तब कही पर उसका कोई लघु उपकरण गिर जाए, उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे तो 'जिसका यह उपकरण है उसे दे दूँगा' इस भावना से लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे, वहाँ इस प्रकार पूछे–"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?" (अर्थात् यह आपका है ?) वह कहे–"हाँ, पहचानता हूँ।" (अर्थात् हाँ, यह मेरा है) तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे–"मै नही पहचानता हूँ।"–तो उस उपकरण का न स्वय उपयोग करे और न अन्य किसी को दे, किन्तु एकान्त प्रासुक (निर्जीव) भूमि पर उसे छोड दे।

१४. स्वाध्यायभूमि मे या उच्चार-प्रस्रवण-भूमि मे जाते-आते हुए निर्ग्रन्थ का कोई लघु उपकरण गिर जाए, उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे तो 'जिसका यह उपकरण है, उसे दे दूँगा' इस भावना से लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे, वहाँ इस प्रकार कहे–"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?" वह कहे–"हाँ, पहचानता हूँ।" तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे–"मै नही पहचानता हूँ।" तो उस उपकरण का न स्वय उपयोग करे और न अन्य किसी को दे, किन्तु एकान्त प्रासुक भूमि पर उसे परठ दे।

१५. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए निर्ग्रन्थ का कोई उपकरण गिर जाए, उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे और 'जिसका यह उपकरण है, उसे दे दूँगा' इस भावना से वह उस उपकरण को दूर तक भी लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे, वहाँ इस प्रकार कहे–"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?" वह कहे–"हाँ, पहचानता हूँ।" तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे "मै नहीं पहचानता हूँ।" तो उस उपकरण का न स्वय उपयोग करे और न अन्य किसी को दे, किन्तु एकान्त प्रासुक भूमि पर उसे परठ दे।

13. A *nirgranth* (Jain monk) goes to a house to collect food and one small *upakaran* (article—say cloth) falls. Another *bhikshu* of the same order sees it and picks it up with the feeling that he shall give it to the one to whom it belongs.When he sees another *bhikshu*, he should ask him—"O the blessed ! Do you recognize this *upakaran*, in other words does it belong to you ?" and he replies—"Yes ? I recognize it. It is mine." Then he should give that *upakaran* to him.

If he replies—"I do not recognize it." Then he should neither use it himself nor give it to anyone else. But he should discard it at a lonely lifeless place

14. While going out or coming from a place of study or a place for call of nature, a small *upakaran* of the *nirgranth* falls down. Another monk of the same order finds it and picks it up with the feeling that he shall give it to the person to whom it belongs. He should then ask the monk whom he finds on the ways—"O the blessed ! Do you recognize it ?" If he says—"Yes, I recognize it." Then he should give that *upakaran* to him.

It he replies—"I do not recognize it." Then he should neither use it himself nor give it to anyone else. But discard it at a lonely lifeless place

15. While going from village to village, if any *upakaran* of a monk falls down and any monk of the same order sees it and carries it to a great distance with the feeling that he shall give it to the one to whom it belongs, then he should ask the monk whom he finds on the way—"O the blessed ! Do you recognize this *upakaran* ?" If he replies, I recognize it' Then he should give it to him.

If he replies—"I do not recognize it." Then he should neither use it himself nor give it to anyone else But discard it at a lonely lifeless place

विवेचन : उक्त तीन सूत्रो मे एक ही बात तीन भिन्न-भिन्न स्थानो की अपेक्षा से कही है। सूत्र १३ में गृहस्थ के घर गोचरी, १४ मे स्वाध्याय भूमि तथा १५ मे ग्रामानुग्राम विहार आदि का कथन है। इनके लिए जाते-आते समय भिक्षु का कोई छोटा-सा उपकरण वस्त्रादि गिर जाए और उसी मार्ग से जाते हुए किसी अन्य भिक्षु को दिख जाए तो उसके लिए तीनो सूत्रो मे विधि बताई है। भाष्यकार का कहना है-बडा उपकरण रजोहरणादि है तो कुछ दूर तक विहारादि मे साथ लेकर जाए और अन्य साधु जहाँ मिले, वहाँ उनसे पूछ लेना चाहिए। यदि उस उपकरण का स्वामी ज्ञात न हो सके और वह उपयोगी उपकरण है एवं उसकी आवश्यकता भी है तो गुरु एव अन्य गृहस्थ की आज्ञा लेकर अपने उपयोग मे लिया जा सकता है। किन्तु अनुमान से पूछताछ या गवेषणा करने के पूर्व एवं आज्ञा लेने के पूर्व उपयोग में नही लेना चाहिए। अन्यथा वह अदत्त दोष का कारण होता है।

यदि वह प्राप्त उपकरण अच्छी स्थिति मे है तो उसे छिन्न-भिन्न करके नही परठना चाहिए। किन्तु अखंड ही कहीं योग्य स्थान या योग्य व्यक्ति के पास स्पष्टीकरण करते हुए छोड देना चाहिए।

Elaboration—In the above three aphorisms, the same thing has been said from the point of view of three different places. In aphorism 13 there is mention of collection of food from the houses, aphorism 14 relates to search for a place to study and aphorism 15 relates to wandering from village to village. In case while going or while returning a small *upakaran* of the *bhikshu* falls on the way and another *bhikshu* coming that way sees

it then the procedure he should adopt has been narrated in these three aphorisms. According to author of *bhashya*, if the *upakaran* is a big one, he should carry it to some distance with him in the wanderings and when other monk meets him, he should ask him about it. If he is not able to know the monk to whom it belongs and that upakaran is worthy of use and he needs it, he can use it only after taking permission of his guru or of any householder. But he should not put it to his own use without making enquiries about its owner and without taking permission for using it. Otherwise he shall be guilty of *adatt* (stealing).

If that *upakaran* is in good condition, he should not tear it or break it before discarding But he should discard it in complete condition at some proper place or near some suitable person clarifying his position.

अतिरिक्त पात्र लाने का विधान **PROCEDURE REGARDING EXTRA POT/POTS**

१६. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अइरेगपडिग्गहं अण्णमण्णस्स अट्ठाए दूरमवि अद्धाणं परिवहित्तए,

'सो वा णं धारेस्सइ, अहं वा णं धारेस्सामि, अण्णो वा णं धारेस्सइ', नो से कप्पइ ते अणापुच्छिय, अणामंतिय अण्णमण्णेसिं दाउं वा अणुप्पदाउं वा। कप्पइ से ते आपुच्छिय आमंतिय अण्णमण्णेसिं दाउं वा अणुप्पदाउं वा।

१६. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को एक-दूसरे के लिए अधिक पात्र बहुत दूर ले जाना कल्पता है।

'वह धारण कर लेगा, मै रख लूँगा अथवा अन्य को आवश्यकता होगी तो उसे दे दूँगा।' इस प्रकार विचार कर जिनके निमित्त पात्र लिया है, उन्हे लेने के लिए पूछे बिना, निमत्रण किये बिना, दूसरे को देना या निमत्रण करना नहीं कल्पता है। उन्हे पूछने व निमंत्रण करने के बाद अन्य किसी को देना या निमत्रण करना कल्पता है।

16. Monks and nuns can carry more pots of each other to a great distance.

If a monk or nun has taken a pot or pots with the intention that such and such ascetic shall take it, I shall keep it or I shall give it to the one who needs it, then without asking that person, about it, inviting that person to have it, he is not allowed to give it to another one or invite another one for it. However after asking the monk or nun concerned (for whom he had taken the said pot) he is allowed to give it to another or invite others for it.

विवेचन : पात्र के विषय में संख्या का निर्धारण आगम में स्पष्ट नही है। उसका निर्धारण गण की समाचारी के अनुसार किया जाता है। वर्तमान गण-समाचारी अनुसार भिन्न-भिन्न परम्पराएँ प्रचलित हैं। जिस गण की जो

भी मर्यादा है, उससे अतिरिक्त पात्र ग्रहण करने का यहाँ विधान किया गया है अथवा जहाँ उपलब्ध हो वहाँ से अतिरिक्त पात्र मँगाये जाते है। ऐसे पात्र ग्रहण करते समय जिस आचार्य-उपाध्याय का या व्यक्ति विशेष का निर्देश गृहस्थ के समक्ष किया हो, उन्हे ही पहले देना एवं निमत्रण करना चाहिए। बाद में अन्य किसी को दिया जा सकता है।

Elaboration—In *Agam*, the number of pots one can keep is not specified Their number is kept according to the code laid down by respective groups. According to the code at present in force, different traditions are prevalent among different groups. The provision here is in respect of keeping extra pot/pots than the number specified in a particular group (*gana*) or extra pots that can be procured from the place where they are available While accepting such pot/pots they should be offered first to that *Acharya, Upadhyaya* or particular monk whose name was mentioned to the householder when they were asked for Only that *Acharya* and the like should be invited first for it. Thereafter the pot/pots can be given to another one or another one can be invited for it

आहार की ऊनोदरी का परिमाण **LIMIT REGARDING TAKING LESS FOOD (UNODARI)**

१७. (१) अट्ठ कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अप्पाहारे।

(२) दुवालस्स कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अवड्ढोमोयरिया।

(३) सोलस कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे दुभागपत्ते, अड्ढोमोयरिया।

(४) चउव्वीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे तिभागपत्ते, अंसिया।

(५) एगतीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे किंचूणोमोयरिया।

(६) बत्तीसं कुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे पमाणपत्ते।

(७) एत्तो एकेण वि कवलेण ऊणगं आहारं आहारेमाणे समणे निग्गंथे नो पकामभोइ त्ति वत्तव्वं सिया।

१७. (१) अपने मुखप्रमाण आठ कवल आहार करने से अल्पाहार कहा जाता है।

(२) अपने मुखप्रमाण बारह कवल आहार करने से कुछ अधिक अर्ध ऊनोदरिका कही जाती है।

(३) अपने मुखप्रमाण सोलह कवल आहार करने से द्विभाग प्राप्त आहार और अर्द्ध ऊनोदरी कही जाती है।

(४) अपने मुखप्रमाण चौबीस कवल आहार करने से त्रिभाग प्राप्त आहार और एक भाग ऊनोदरिका कही जाती है।

(५) अपने मुखप्रमाण एकतीस कवल आहार करने से किंचित् ऊनोदरिका कही जाती है।

(६) अपने मुखप्रमाण बत्तीस कवल आहार करने से प्रमाण प्राप्त आहार कहा जाता है।

(७) इससे एक भी कवल कम आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ प्रकामभोजी नहीं कहा जाता है।

17. (1) The food is considered to be the minimum if it is upto eight morsels.

(2) It is called a little more than half *Unodarıka* if ıt is twelve morsels in quantity.

(3) It ıs called two-fourth food and half *Unoderika* if it is sixteen morsels.

(4) It is called three part food and one part *Unoderika* if it is twenty-four morsels.

(5) It is called just a lıttle *Unodarika* of it is thirty-one morsels.

(6) It is called food according to requirement if it is thirty-two morsels.

(7) If food is taken one morsel less than it, the monk is not called *prakaambhoji*

विवेचन : प्रस्तुत सूत्र में द्रव्य ऊनोदरी के निम्न पाँच भेदो द्वारा वर्णन किया है–

(१) अल्पाहार–एक कवल, दो कवल यावत् आठ कवल प्रमाण आहार करने पर अल्पाहार ऊनोदरी होती है।

(२) अपार्ध–ऊनोदरी–नव से लेकर बारह कवल अथवा पन्द्रह कवल प्रमाण आहार करने पर आधी खुराक से कम आहार किया जाता है। उसे "अपार्द्ध ऊनोदरी" कहते हैं।

(३) द्विभाग प्राप्त ऊनोदरी (अर्द्ध ऊनोदरी)–१६ कवल प्रमाण आहार करने पर अर्द्ध खुराक का आहार किया जाता है जो पूर्ण खुराक के चार भाग मान लेने पर दो भाग रूप होती है, अतः इसे सूत्र मे "द्विभाग प्राप्त ऊनोदरी" अथवा "अर्द्ध ऊनोदरी" भी कह सकते हैं।

(४) त्रिभाग प्राप्त अंसिका ऊनोदरी–२४ कवल (२७ से ३० कवल) प्रमाण आहार करने पर त्रिभाग आहार होता है और एक भाग आहार की ऊनोदरी होती है। इसके लिए सूत्र मे "अशिका-ऊनोदरी" शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें आहार के चार भाग में से तीन भाग का आहार किया जाता है, अत' यह त्रिभाग प्राप्त आहार रूप ऊनोदरी है। अथवा इसे 'पाव ऊनोदरी' भी कह सकते है।

(५) किंचित्–ऊनोदरी–३१ कवल प्रमाण आहार करने पर एक कवल की ही ऊनोदरी होती है जो ३२ कवल आहार की अपेक्षा अल्प होने से 'किंचित् ऊनोदरी' कहा जाता है।

सूत्र के अन्तिम अश से यह स्पष्ट किया गया है कि इन पाँच मे से किसी भी प्रकार की ऊनोदरी करने वाला भिक्षु प्रकामभोजी (भरपेट खाने वाला) नहीं होता। ३२ कवल रूप पूर्ण आहार करने वाला प्रमाण प्राप्त भोजी कहा जाता है। उसके किंचित् भी ऊनोदरी नहीं होती है। भिक्षु को इन्द्रियसयम एवं ब्रह्मचर्य समाधि के लिए सदा ऊनोदरी तप करना आवश्यक है, अर्थात् उसे कभी भरपेट आहार नही करना चाहिए।

सूत्र मे 'कवल प्रमाण' का परिमाण बताने के लिए 'कुक्कुडिअंडग प्रमाण' शब्द आया है। व्याख्याकारों ने इस शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। जैसे-(१) अपने सामान्य आहार की मात्रा का जो ३२वाँ भाग होता है, वह 'कुक्कुडिअडग प्रमाण' समझना चाहिए। (२) जितना बडा कवल मुख मे रखने पर मुख विकृत न दीखे उतने प्रमाण को 'कुक्कुडिअंडग प्रमाण' समझना चाहिए। *(विशेष देखें-अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग २, पृ ११८२ ऊणोयरिया)*

इसका अर्थ यह है कि दिन भर के पूरे भोजन को ३२ भागों में विभक्त कर लेना चाहिए और उसी आधार पर 'अल्प भोजन' या 'अति भोजन' का निर्धारण करना चाहिए। व्याख्या मे यह भी कहा गया है कि एक दिन पूर्ण आहार करने वाला 'प्रकामभोजी' है, अनेक दिन पूर्ण आहार करने वाला 'निकामभोजी' है और ३२ कवल से भी अधिक खाने वाला 'अतिभोजी' है।

॥ आठवाँ उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In the present *Sutra*, five types of *Dravya Unodari* have been discissed—

(1) Alpahar—One morsel, two morsels upto eight morsels of food when taken is called *Alpahar Unodarı*

(2) Apardh Unodari—When food is taken to the extent of nıne morsels, or more upto twelve morsels or at the most fifteen morsels it is stated to be less than half the normal diet. This is *apardh Unodari*

(3) Dvibhag Prapt Unodari (Ardh Unodari)—When food is taken to the extent of sixteen morsels it is called half the normal diet If the total common diet is divided in four parts, it is to the extent of two parts. So ıt ıs called *'dvibhag prapt unodari* (*unodarı* upto two parts). It is also called *ardh unodarı.*

(4) Tribhag Prapt Ansika Unodari—When food is consumed to the extent of 24 morsels, it ıs called three parts of the food (out of 4 parts) and thus one part less than common dıet For it the word *'anshika unodarı'* has been used in the aphorisms Here out of four parts of the total food, only three parts are consumed. So it ıs *unodarı* in the form of three parts of food taken. It can also be called *pava unodarı*. (one-fourth) reduction)

(5) Kinchit (Somewhat) Unodari—When 31 morsels of food is consumed, *unodari* is only of one morsel, which is very little as compared to 32 morsels. So it is called *kinchıt unodarı.*

It is clear from the last part of the *Sutra* that any *bhikshu* who adopts any of the five types ıs not *prakaambhoji*. One who consumes 32 morsels of food, he is called *praman praapt bhoji*. It is necessary for a

Jain monk to practice *unodari* austerities for control over his sense-organs and equanimity in celibacy. In other words, he should never take diet to his full.

The word *'kukkudi-andag praman'* has been used in the *Sutra* to indicate size of the morsel The commentators have interpreted this word in different ways namely—(1) The thirty second part of the normal diet should be understood as *kukkudi-andag praman*. (2) The morsel of such a size which when placed in mouth, the mouth does not appear vulgar is called *kukkudi andag praman*. (*For details see Abhidhan Rajendra Kosh, Part II, p 1182 unoyariya*)

It means that the total diet for the whole day should be divided in 32 parts On its basis *'alp bhojan'* and *'ati bhojan'* should be determined. It is said in the commentary that one who takes full diet of the day is *prakaam-bhoji*. One who takes full diet for many days is called *nikaam-bhoji*. The person who takes more than 32 morsels is *ati-bhoji*.

● EIGHTH UDDESHAK CONCLUDED ●

नवम उद्देशक
NINTH UDDESHAK

निमित्त से बना आहार लेने का विधि–निषेध

PROCEDURE OF TAKING/NOT TAKING FOOD PREPARED SPECIALLY FOR ONE

१. सागारियस्स आएसे अंतो वगडाए भुंजए, निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २. सागारियस्स आएसे अंतो वगडाए भुंजए, निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

३. सागारियस्स आएसे बाहिं वगडाए भुंजए, निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ४. सागारियस्स आएसे बाहिं वगडाए भुंजए, निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१. **(निषेध)** सागरिक-शय्यातर के घर पर किसी आगन्तुक के लिए आहार बनाया गया हो, उसे खाने के लिए **प्रातिहारिक** दिया गया हो, वह उसके घर के भीतरी भाग मे जीमता हो, उस आहार मे से वह आगन्तुक साधु को देना चाहे तो साधु को लेना नही कल्पता है। २. **(विधि)** शय्यातर के घर आगन्तुक के लिए बना आहार यदि उसे **अप्रातिहरिक** दिया गया हो, वह उसके घर के भीतरी भाग मे जीमता हो, उस आहार मे से वह आगन्तुक साधु को देना चाहे तो साधु को लेना कल्पता है।

३. **(निषेध)** शय्यातर के घर किसी आगन्तुक के लिए बना आहार उसे खाने के लिए प्रातिहारिक दिया गया हो, वह यदि घर के बाह्य भाग मे जीमता हो, उस आहार मे से वह आगन्तुक साधु को दे तो साधु को लेना नहीं कल्पता है। ४. **(विधि)** शय्यातर के घर किसी आगन्तुक के लिए बना आहार उसे खाने के लिए अप्रातिहारिक दिया गया हो, वह यदि घर के बाह्य भाग मे जीमता हो, उस आहार मे से वह आगन्तुक दे तो साधु को लेना कल्पता है।

1. (Prohibition) Food has been prepared in the house of *Shayyatar* for some guest. It has been served to him as *pratiharik* (the food left out can be returned). The guest is taking it inside the house. If that guest offers any food out of it to the monk, the monk should not accept it. **2. (Procedure)** The food prepared for the guest in the house of *Shayyatar* has been served to him (the guest) in *apratiharik* form (he has to take it all and nothing out if it can be taken back from him) The guest is taking it inside. If he offers some food out if it to the monk, the monk can take it.

3. (Prohibition) Food prepared for a guest in the house of *Shayyatar* has been given to him as *pratiharik* for consumption. He is in the outer portion of the house sitting to take that food. He (the guest) offers some food out of it to the monk. Then the monk is not allowed to accept it.

4. (Procedure acceptance) Food prepared for a guest in the house of *Shayyatar* is offered to the guest concerned as *apratiharik*. He is sitting in outer part of the house to consume it. He offers some food to the monk out of it. The monk can then take it.

५. सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइण्णए वा अंतो वगडाए भुंजइ निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ६. सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइण्णए वा अंतो वगडाए भुंजइ, निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

७. सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइण्णए वा बाहिं वगडाए भुंजइ, निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ८. सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइण्णए वा बाहिं वगडाए भुंजइ, निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

५. (निषेध) शय्यातर के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए बना आहार उन्हें प्रातिहारिक दिया गया हो, वे घर के भीतरी भाग में जीमते हों तथा उस आहार मे से साधु को दें तो लेना नहीं कल्पता है। ६. (विधि) शय्यातर के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए बना आहार अप्रातिहारिक दिया गया हो, वह घर के भीतरी भाग मे जीमते हों, उस आहार में से साधु को दे तो लेना कल्पता है।

७. (निषेध) शय्यातर के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए बना आहार प्रातिहारिक दिया गया हो, वह घर के बाह्य भाग मे जीमते हों तथा उस आहार मे से वह साधु को दे तो लेना नहीं कल्पता है। ८. (विधि) शय्यातर के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए बना आहार अप्रातिहारिक दिया गया हो, वे घर के बाह्य भाग मे जीमते हो तथा उस आहार मे से साधु को देना चाहे तो साधु को लेना कल्पता है।

5. (Prohibition) The food prepared in the house of *Shayyatar* for servant, messenger, slave or temporary labour has been served to them as *pratiharik*. They are consuming it in the inner part of the house. They offer some food out of it to the monk Then the monk is not allowed to accept it. **6. (Procedure for acceptance)** Food prepared in the house of *Shayyatar* for slave, messenger, labour or servant has been served to them as *apratiharik*. They are consuming it in the inner part of the house They offer some food out of it to the monk. Then the monk can accept it.

7. (Prohibition) Food prepared in the house of Shayyatar for slave, messenger, labour or servant has been served to them as *pratiharik*. They are consuming it in the outer part of the house. They offer some food out of it to the monk. Then the monk is not allowed to accept it. **8. (Procedure for acceptance)** Food has been prepared in the house of *Shayyatar* for slave, messenger, labour or servant. It has been served to

them as *apratiharık*. They are consuming it in the outer portion of the house. If they offer out of it, the monk can take it.

९. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स एगवगडाए अंतो सागारियस्स एगपयाए, सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। १०. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स एगवगडाए अंतो सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

११. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स एगवगडाए बाहिं सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। १२. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स एगवगडाए बाहिं सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

९. (निषेध) शय्यातर का स्वजन उसके घर मे एक ही चूल्हे पर उसी की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार मे से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को देता है तो उन्हें लेना नही कल्पता है। १०. सागरिक का स्वजन यदि सागारिक के घर मे ही सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहारादि निष्पन्न कर जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को देता है तो उन्हे लेना नही कल्पता है।

११. सागारिक का स्वजन सागारिक के घर के बाह्यविभाग मे सागारिक के ही चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को देता है तो उन्हे लेना नही कल्पता है। १२. सागारिक का स्वजन सागारिक के घर के बाह्यविभाग मे सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता है। यदि वह उस आहार मे से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नही कल्पता है।

9. (Prohibition) A member of the family of *Shayyatar*, prepares food in his very house on the same hearth with the material belonging to *Shayyatar* and thus leads his life. If he offers any food out of it to monks or nuns, they are not allowed to accept. **10.** A member of the family of *Shayyatar* prepares food in that very house on a different oven with the material belonging to *Shayyatar* and thus leads his life. If he offers any food out of it to monks or nuns, they are not allowed to accept it.

11. A member of the family of *Shayyatar* prepares food in the outer portion of that house on the hearth of and with the material belonging to the *Shayyatar* and subsists on it. If he offers any food out of it to monks and nuns, they are not allowed to accept it. **12.** A member of the family of *Shayyatar* prepares food in the outer portion of that house on the hearth different from that of *Shayyatar* but with the material belonging to *Shayyatar* and subsists on it If he offers any food out of it to monks and nuns, they are not allowed to accept it.

१३. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए अंतो सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। १४. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए अंतो सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१५. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए बाहिं सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। १६. सागारियस्स णायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए बाहिं सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१३. सागारिक का स्वजन सागारिक के घर के भिन्न (दूसरे) गृहविभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश द्वार वाले गृह मे सागारिक के ही चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नही कल्पता है। १४. सागारिक का स्वजन सागारिक के घर के भिन्न गृहविभाग मे तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश द्वार वाले गृह मे सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार मे से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को दे तो उन्हे लेना नहीं कल्पता है।

१५. सागारिक का स्वजन सागारिक के गृह के विभिन्न गृहविभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश द्वार वाले गृह के बाह्य भाग मे सागारिक के चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को देता है तो उन्हें लेना नही कल्पता है। १६. सागारिक का स्वजन सागारिक के घर के भिन्न गृहविभाग मे तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश द्वार वाले गृह के बाह्य भाग में सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवननिर्वाह करता हो, यदि वह उस आहार मे से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को देता है तो उन्हे लेना नही कल्पता है।

13. A relative of *Shayyatar* prepares food in another part of that house which has only one door for entrance and exit on the oven of *Shayyatar* and with the material belonging to him (*Shayyatar*) and subsists on it. If he offers anything out of it to the monk or nun they are not allowed to accept it. **14.** A relative of *Shayyatar* prepares food in the portion different from that of *Shayyatar* and that part has only one entrance-cum-exit. He prepares it in the fireplace different from that of *Shayyatar* with the material belonging to Shayyator and thus leads his life. If he offers out if it to monks/nuns they are not allowed to accept it.

15. A relative of *Shayyatar* prepares food in another portion of the house in outer portion with the material belonging to and the fireplace of

Shayyatar and the house has common entrance-cum-exit and subsists on it. If he offers out of it to monks/nuns they are not allowed to accept it. **16.** A relative of *Shayyatar* prepares food for his need in a different portion of the house and the house has only one entrance-cum-exit. He prepares it on a different owen but with the material belonging to *Shayyatar* for his livelihood. If he offers some food out of it to monks and nuns, they are not allowed to accept it.

विवेचन : उक्त १६ सूत्रो मे शय्यातर के आहार सम्बन्धी विविध विकल्पों की चर्चा है। शय्यातर का आहार पाहुणों (मेहमानों) के एव नौकरो को नियत किये अनुसार परिपूर्ण अप्रातिहारिक दे दिया गया हो तो उसमें से भिक्षु ग्रहण कर सकता है। क्योंकि वह उनके स्वामित्व का हो जाता है।

यदि पाहुणो को या नौकरो को थोडा-थोडा दिया जा रहा है एव आवश्यकता होने पर वे पुन ले सकते है और अवशेष रहने पर लौटा भी सकते हैं, ऐसा आहार साधु नहीं ले सकता है। सूत्र १, ३, ५, ७ ये चार सूत्र निषेधपरक हैं तथा २, ४, ६, ८ ये सूत्र विधिपरक हैं।

शय्यातर के सहयोग से ही जो ज्ञातिजन जीवन व्यतीत करते हो अर्थात् उनका सम्पूर्ण खर्च शय्यातर ही देता हो तो भिक्षु उसके आहार को ग्रहण नही कर सकता। यही भाव (९ से १६) आठ सूत्रों मे कहा गया है। आशय यह है कि वे ज्ञातिजन शय्यातर के घर के अन्दर या बाहर किसी चूल्हे पर भोजन बनाये एव उसका चौका अलग हो या शामिल हो, किसी भी विकल्प में उसका आहारादि लेना नही कल्पता है। सार यह है कि जिस भोजन पर किसी भी दशा में शय्यातर का स्वामित्व जुडा हो, वह आहार साधु नही ले सकता।

Elaboration—In the above said 16 verses (*Sutras*), the discussion is of food belonging to *Shayyatar* from different points of view In case the food has been distributed among servant and guests as *apratiharik* on the basis already settled, then the *bhikshu* can accept out of it because it is now owned by that guest or servant

In case the food is being distributed to guests and servants in small quantities and they can take again if they need and also can return whatever is left, then the monk cannot accept such food (Aphorism 1, 3, 5, 7 prohibit, aphorism 2, 4, 6, 8 allow)

These relatives depend on *Shayyatar* for their livelihood. Their entire expenditure is borne by *Shayyatar*. Then *bhikshu* cannot accept that food. The same idea is reflected in. Eight aphorisms (9 to 16). The central idea is that it is immaterial whether those relatives prepare food inside or outside the house, on the hearth of *Shayyatar* or any other, whether he is consuming at any place in the house in same area or in a different portion, his food cannot be accepted by the monk. The gist is the food, which in any way, has any ownership of *Shayyatar* in any form, cannot be accepted by the monk.

PROCEDURE AND PROHIBITION OF ALMS FROM SHOPS WHERE SHAYYATAR IS PARTNER

१७. सागारियस्स चक्कियासाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। १८. सागारियस्स चक्कियासाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१९. सागारियस्स गोलियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २०. सागारियस्स गोलियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२१. सागारियस्स बोधियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २२. सागारियस्स बोधियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२३. सागारियस्स दोसियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २४. सागारियस्स दोसियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२५. सागारियस्स सोत्तियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २६. सागारियस्स सोत्तियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२७. सागारियस्स बोंडियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। २८. सागारियस्स बोंडियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

२९. सागारियस्स गंधियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ३०. सागारियस्स गंधियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

३१. सागारियस्स सोंडियसाला साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ३२. सागारियस्स सोंडियसाला निस्साहारणवक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

३३. सागारियस्स ओसहीओ संथडाओ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ३४. सागारियस्स ओसहीओ असंथडाओ, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

३५. सागारियस्स अम्बफला संथडाओ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। ३६. सागारियस्स अम्बफला असंथडा, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

१७. सागारिक (शय्यातर) की हिस्सेदारी वाली चक्रिकाशाला (तेल की दुकान) मे से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को तेल देता है तो उन्हे लेना नही कल्पता है। १८. सागारिक की हिस्सेदारी वाली तेल की दुकान मे से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना साझे (हिस्से) का (अपने हिस्से का) तेल देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

१९. सागारिक के हिस्से वाली गोलियशाला (गुड की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को गुड़ देता है तो उन्हे लेना नही कल्पता है। २०. सागारिक के हिस्से वाली गुड़ की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना साझे का गुड़ देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

२१. सागारिक के हिस्से वाली बोधियशाला (किराणे की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को किराणे की वस्तु देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है। २२. सागारिक के हिस्से वाली किराणे की दुकान मे से सागारिक का साझीदार बिना हिस्से की किराणे की वस्तु देता है तो उन्हें लेना कल्पता है।

२३. सागारिक के हिस्से वाली दोसियशाला (कपड़े की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को वस्त्र देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है। २४. सागारिक के हिस्से वाली कपडे की दुकान मे से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना हिस्से का कपडा देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

२५. सागारिक के हिस्से वाली सूत (धागे) की दुकान में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को सूत देता है तो उन्हे लेना नहीं कल्पता है। २६. सागारिक के हिस्से वाली सूत की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना हिस्से का सूत देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

२७. सागारिक के हिस्से वाली बोंडियशाला (रुई की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को रुई देता है तो उन्हें लेना नही कल्पता है। २८. सागारिक के हिस्से वाली रुई की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर की रुई देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

२९. सागारिक के हिस्से वाली गन्धियशाला (सुगन्धि द्रव्यो की दुकान) मे से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियो को सुगन्धित पदार्थ देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है। ३०. सागारिक के हिस्से वाली गन्धियशाला में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना हिस्से का सुगन्धित पदार्थ देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

३१. सागारिक के हिस्से वाली (मिठाई की दुकान) सोंडियशाला मे से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को मिठाई देता है तो साधु को लेना नही कल्पता है। ३२. सागारिक के साझे वाली मिष्ठान्नशाला में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना हिस्से की मिठाई देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

३३. सागारिक के साझे वाली भोजनशाला मे से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को आहार देता है तो साधु को लेना नही कल्पता है। ३४. सागारिक के साझे वाली भोजनशाला से सागारिक का साझीदार बँटवारे में प्राप्त खाद्य-सामग्री में से देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

३५. सागारिक के हिस्से वाले आम्र आदि फलों मे से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को आम्रादि देता है तो साधु को लेना नही कल्पता है। ३६. सागारिक के हिस्से वाले आम्रादि फलों मे से सागारिक का साझीदार बँटवारे में प्राप्त आम्र आदि फल यदि निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

17. A *Shayyatar* has a partner in his oil shop (*Chakrikashala*). His partner offers oil to monks and nuns. Then they are not allowed to accept it. **18.** From the partnership shop of *Shayyatar*, the partner offers

that oil which is in his share and not in joint ownership, then the monks and nuns can accept it.

19. A *Shayyatar* runs a sugar shop (*Goliyashala*) with a partner. His partner offers sugar to monks and nuns. Then they are not allowed to accept it. **20.** From the partnership shop of *Shayyatar*, the partner offers to monks and nuns sugar from that lot which is in his share and not in joint ownership with *Shayyatar*. Then the monks and nuns can accept it.

21. A *Shayyatar* has a partner in grocery shop (*Bodhiyashala*). The partner offers a grocery article to monks and nuns. They are not allowed to accept it. **22.** From the joint shop with *Shayyatar*, the partner offers to monks and nuns a grocery article from that lot which is totally in his share and is not in joint ownership with *Shayyatar*. Then the monks and nuns can accept it.

23. A *Shayyatar* has a partner in his cloth (*Dosiyashala*) shop. The partner offers a cloth to monks and nuns from that shop. Then they are not allowed to accept it **24.** From the joint shop with *Shayyatar*, the partner offers to monks and nuns a cloth from that lot which is totally in his share and which has no concern with *Shayyatar*. Then the monks and nuns can accept it.

25. A *Shayyatar* has a joint thread shop with a partner. His partner offers thread to monks or nuns from that shop. Then they are not allowed to accept it. **26.** From the joint thread shop with *Shayyatar*, the partner offers from his lot which has no concern with *Shayyatar*, the thread to monks and nuns. Then they can accept it.

27. A *Shayyatar* runs a cotton shop (*Bondiyashala*) with a partner. The partner offers cotton to monks or nuns from that shop. Then they are not allowed to accept it. **28.** From the joint shop with *Shayyatar*, the partner offers from his lot, which has no concern with *Shayyatar*, some cotton to monks or nuns. Then they can accept it

29. A *Shayyatar* runs a perfume shop (*Gandhiyashala*) jointly with a partner. The partner offers a perfume from that shop to monks or nuns. Then they are not allowed accept it. **30.** From the joint scent shop with *Shayyatar*, the partner offers scent article from the lot, which totally belongs to him and in which *Shayyatar* has no share, to monks or nuns. Then they can accept it.

31. A *Shayyatar* runs a sweet shop (*Sondiyashala*) with a partner. The partner offers sweets from that shop to monk or nuns. Then they cannot

accept it. 32. From the joint sweet shop with *Shayyatar*, the partner offers sweets from the lot, which totally belongs to him and in which *Shayyatar* has no ownership, to monks or nuns. Then they can accept it.

33. A *Shayyatar* runs a restaurant with a partner. The partner offers food from that shop to monks or nuns. Then they are not allowed to accept it. 34. From this joint restaurant with *Shayyatar*, the partner offers food from the lot which belongs to him and in which the *Shayyatar* has no share. Then the monks and nuns are allowed to accept it.

35. A *Shayyatar* runs a fruit shop with a partner. The partner offers (stoneless) mango and the like to the monks or nuns from that shop. Then they are not allowed to accept it. 36. From the joint shop with *Shayyatar*, the partner offers from the lot of fruits, which totally belongs to him and in which Shayyatar has no share, the fruits like mangoes and others to the monks or nuns. Then they can accept it.

विवेचन : पूर्व १६ सूत्रो मे शय्यातरपिड घरो मे से लेने-न लेने का विधान किया था और इन २० सूत्रो मे विक्रयशाला अर्थात् दुकानो मे से खाद्य-पदार्थ या अन्य वस्त्रादि लेने-न लेने का विधान है।

इन सूत्रों का आशय यह है कि शय्यातर एवं अशय्यातर (अन्य गृहस्थ) जो उसका साझीदार है उनकी सामूहिक विक्रयशाला हो, उसमे कभी कोई विभाजित वस्तु मे शय्यातर का स्वामित्व न हो या कोई पदार्थ अन्य गृहस्थ के स्वतत्र स्वामित्व का हो तो उसे ग्रहण करने पर शय्यातरपिड का दोष नही लगता है। अत· सूत्रोक्त दुकानो से वे पदार्थ गृहस्थ के निमत्रण करने पर या आवश्यक होने पर विवेकपूर्ण ग्रहण किये जा सकते है।

सूत्रगत विक्रयशाला के पदार्थ इस प्रकार है-

(१) तेल आदि, (२) गुड आदि, (३) अनाज, किराणा के कोई अचित्त पदार्थ, (४) वस्त्र, (५) सूत (धागे), (६) कपास (रुई), (७) सुगधित तेल इत्रादि (ग्लान हेतु औषध रूप मे), (८) मिष्ठान्न, (९) भोजन-सामग्री, और (१०) आम्रादि अचित्त फल (उबले हुए या गुठलीरहित खण्ड या सूखा मेवा)। इन सूत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि साधु-साध्वी घरो के अतिरिक्त कभी कही दुकान से भी कल्प्य वस्तु ग्रहण कर सकते है।

Elaboration—In the earlier sixteen verses (*Sutras*) there was the provision of accepting or not accepting a thing from the houses of *Shayyatar*. In these 20 verses, there are the rules for accepting or not accepting any article from the shop where there are such articles namely food articles cloth and the like.

The underlying idea in these verses (aphorisms) is that in the joint shop if there is any article on which *Shayyatar* has no ownership or which is totally owned by the other partner, then there is no fault of *Shayyatar pind* if the monks or nuns accept it. So from the said shops, the articles offered by the partner householder or which are needed by the monks or nuns can be taken with due prudence.

The articles in the shop are as under—

(1) Oil and the like, (2) Sugar and the like, (3) Food articles, grocery articles which do not contain living beings, (4) Cloth, (5) Yarn (Thread), (6) Cotton, (7) Scented oil and the like (for treatment of disease), (8) Sweets, (9) Food-stuffs, (10) Mango which does not contain life (boiled mango, or which is without stone and is in pieces or dry fruit without stone). It is quite evident from those aphorisms that monks and nuns can in addition to houses, take an article from the shops also if it is in the condition in which it can be accepted according to the code.

भिक्षुप्रतिमाएँ RESOLVES (PRATIMAS) OF A BHIKSHU

३७. सत्त–सत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एगूणपन्नाए राइंदिएहिं एगेणं छन्नउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ। ३८. अट्ठ–अट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासिएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आणाए अणपालित्ता भवइ।

३९. नव–नवमिया णं भिक्खुपडिमा एगासीए राइंदिएहिं चउहिं य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ। ४०. दस–दसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहिं य भिक्खासएहिं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।

३७. सप्तसप्तमिका–सप्त–सप्तदिवसीय भिक्षुप्रतिमा उनचास अहोरात्र मे एक सौ छियानवे भिक्षादत्तियो से सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है। ३८ अट्ठअट्ठमिया–अष्ट–अष्टदिवसीय भिक्षुप्रतिमा चौसठ अहोरात्र मे दो सौ अठासी भिक्षादत्तियो से सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है।

३९. नवनवमिका–नौ–नौदिवसीय भिक्षुप्रतिमा इक्यासी अहोरात्र में चार सौ पाँच भिक्षादत्तियो से सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है। ४०. दसदसमिका–दश–दशदिवसीय भिक्षुप्रतिमा सौ अहोरात्र मे पाँच सौ पचास भिक्षादत्तियों से सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है।

37. *Sapt-Saptamika* (seven *pratimas* of seven days each) of a *bhikshu* can be practiced in forty nine days in the form of 196 servings (*bhiksha-dattis*) according to the code as laid down in the order of *Jinas*. **38.** Atth-Atthamiya (eight *pratimas* of eight days each) of a *bhikshu* can be practiced in sixty four days in the form of 288 servings (*bhiksha-dattis*) according the code laid down in the order of *Jinas*.

39. *Nav-Navamika* (nine *pratimas* of nine days each) of a *bhikshu* can be practiced in eighty one days each in the form of 405 servings (*bhikshu-dattis*) according to the code laid down in the order of *Jinas*. **40.** *Das-dasamika* (ten pratimas of ten days each) of a *bhikshu* can be

practiced in 100 days in the form of 550 servings (*bhikshu-dattis*) according to the code laid down in the order of Jinas.

विवेचन : इन सूत्रों में चार प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है, जिनकी आराधना साधु-साध्वी दोनो ही कर सकते हैं। अतकृद्दशासूत्र के आठवें वर्ग (अ ५, पृ २६२) मे सुकृष्णा आर्या द्वारा इन भिक्षुप्रतिमाओं की आराधना करने का वर्णन है।

सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा—प्रथम सात दिन तक एक-एक दत्ति, दूसरे सात दिन तक दो-दो दत्ति, यों क्रमश सातवे सप्तक में सात-सात दत्ति ग्रहण की जाती है। इस प्रकार सात सप्तक के ४९ दिन होते हैं और भिक्षादत्ति की कुल अधिकतम संख्या १९६ होती है। ये दत्तियाँ आहार की अपेक्षा से हैं। पानी की अपेक्षा भी इतनी ही दत्तियाँ समझ लेनी चाहिए। इन प्रतिमाओं में निर्धारित दत्तियो से कम दत्तियाँ ग्रहण की जा सकती हैं, किन्तु किसी भी कारण मर्यादा से अधिक दत्ति ग्रहण नहीं की जाती।

इसी प्रकार **अष्टअष्टमिका भिक्षुप्रतिमा**—आठ अष्टक से ६४ दिनो मे पूर्ण की जाती है। जिसमें प्रथम आठ दिन मे एक दत्ति आहार की एवं एक ही दत्ति पानी की ली जाती है। इस प्रकार बढाते हुए आठवें अष्टक मे प्रतिदिन आठ दत्ति आहार की एव आठ दत्ति पानी की ली जा सकती है। इस प्रकार कुल ६४ दिन और २८८ भिक्षादत्ति हो जाती हैं।

इसी प्रकार **'नवनवमिका'** मे ९ × ९ = ८१ अहोरात्र और **'दसदसमिका प्रतिमा'** में १० × १० = १०० अहोरात्र होते हैं।

इन प्रतिमाओ को भी सूत्र मे 'भिक्षुप्रतिमा' शब्द से ही सूचित किया गया है। फिर भी इनको धारण करने मे बारह भिक्षुप्रतिमाओ के समान पूर्वों का ज्ञान या विशिष्ट सहनन की आवश्यकता नही होती है। (सचित्र अन्तकृद्दशा, सूत्र ३८८ पर भी इनका वर्णन आया है।)

Elaboration—In these aphorisms four *pratimas* have been discussed whose practice can be done by both monks and nuns According to the eighth *varga* of *Antkrit-dashanga Sutra* (Ch. 5, pp. 262), there is detailed description of practice of this *pratimas* by nun *Sukrishna*.

In *Sapt-Saptamika bhikshu pratima* one severing each for first seven days, two severing each for the next seven days and systematically increasing the serving; thus seven severing each are received in the last seven days. This *sapt saptaks* are completed in forty nine days and the maximum number of serving is one hundred ninety six. These servings are in respect of food and same should be understood in respect of water. In these *pratimas* less number of servings than the maximum for a day can also be accepted but due to any reason whatsoever the servings more than the prescribed limit cannot be taken on any day.

Similarly *Asht Ashtamika bhikshu pratima* is completed in sixty four days with eight *asthaks*. In it in the first eight days, one serving each of food and of water is accepted. Thus increasing one serving in every *ashtak* that follows, eight serving each are accepted in the last eight

days. Thus in sixty four days with two hundred eighty eight servings in all it is completed.

Similarly in *Nav-Navamika* nine multiplied by nine, which means in 81 days and in Das-Dasamika pratima ten multiplied by ten, which means 100 days are spent.

These *Pratimas* (special ascetic practices) have been denoted in the *Sutra* as *bhikshu-pratima*. Still in their practice it is not necessary to possess knowledge of *Purvas* and special (*samhanan*) structure of the body, which is essential for twelve bhikshu-pratimas.

मोक–प्रतिमा विधान RULE FOR MOKE-PRATIMA

४१. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–१. खुड्डिया वा मोयपडिमा, २. महल्लिया वा मोयपडिमा।

खुड्डियं णं मोयपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ पढम–सरय–कालसमयंसि वा चरिम–निदाह–कालसमयंसि वा, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणीए वा वणंसि वा वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा। भोच्चा आरुभइ, चोद्दसमेणं पारेइ, अभोच्चा आरुभइ, सोलसमेण पारेइ। जाए–जाए मोए आगच्छइ, ताए–ताए आईयव्वे। दिया आगच्छइ आईयव्वे, रत्तिं आगच्छइ नो आईयव्वे। सपाणे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अपाणे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। सबीए मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अबीए मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। ससणिद्धे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अससणिद्धे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। ससरक्खे मत्ते आगच्छइ नो आईयव्वे, अससरक्खे मत्ते आगच्छइ आईयव्वे। जावइए–जावइए मोए आगच्छइ, तावइए–तावइए सव्वे आईयव्वे, तं जहा–अप्पे वा, बहुए वा।

एवं खलु एसा खुड्डिया मोयपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।

४१. दो प्रतिमाएँ कही गई हैं, यथा–(१) छोटी (मोक) प्रस्रवणप्रतिमा, और (२) बडी (मोक) प्रस्रवणप्रतिमा।

छोटी प्रस्रवणप्रतिमा शरत्काल के प्रारम्भ मे अथवा ग्रीष्मकाल के अन्त मे ग्राम के बाहर यावत् राजधानी के बाहर वन में या वनदुर्ग में, पर्वत पर या पर्वतदुर्ग मे अनगार को धारण करना कल्पता है। यदि वह भोजन करके उस दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो छह उपवास से इसे पूर्ण करता है। यदि भोजन किये बिना अर्थात् उपवास के दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो सात उपवास से इसे पूर्ण करता है। इस प्रतिमा मे भिक्षु को जितनी बार मूत्र आये उतनी बार पी लेना चाहिए। दिन में आये तो पीना चाहिए, किन्तु रात में आये तो नहीं पीना चाहिए। कृमियुक्त आये तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु कृमिरहित आये तो पीना चाहिए। वीर्य सहित आये तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु वीर्यरहित आये तो पीना चाहिए। चिकनाई सहित आये तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु चिकनाईरहित आये तो पीना चाहिए। रज (रक्तकण) सहित आये तो नहीं पीना चाहिए, किन्तु रजरहित आये तो पीना चाहिए। जितना–जितना मूत्र आये उतना–उतना सब पी लेना चाहिए, वह अल्प हो या अधिक।

इस प्रकार यह छोटी प्रस्रवणप्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञानुसार पालन की जाती है।

41. These are of two types—(1) Primary *Prasravan Pratima* (elementary resolve to drink urine), and (2) Secondary *Prasravan Pratima* (resolve to drink urine).

The primary or elementary *prasravan pratima* is practical at the beginning of winter or at the end of summer out of the village up to capital or in the forest, or in a fortress in forest or at a hill or at a fort on the hill top by a monk. In case the ascetic starts it after taking meals then he completes it with six day fast. If he starts it without taking food, in other words with fast then he completes it with seven days of fasting. In this *pratima* (resolve), the *bhikshu* should drink his urine every time he urinates. He should drink only when he urinates in the morning but not at night. He should not drink urine if it contains minute living beings but if it is without such beings, he should drink it. He should not take it if it contains his semen but he should take it if it is without it. He should not drink it if it contains oily substances but if it is without such substance, he should take it. He should not take it if it contains dust particles but he should take it if it is without such a thing. He should drink all the urine as and when he urinates—whether it is small or large in quantity

Thus this elementary *prasravan pratima* is practiced according to the *Sutra* and according to the order of *Jinas*.

४२. महल्लियं णं मोयपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स कप्पइ पढम-सरय-कालसमयंसि वा, चरम-निदाह-कालसमयंसि वा, बहिया गामस्स वा जाव रायहाणिए वा वणंसि वा वणदुग्गंसि वा पव्वयंसि वा पव्वयदुग्गंसि वा, भोच्चा आरुभइ, सोलसमेणं पारेइ, अभोच्चा आरुभइ, अट्ठारसमेण पारेइ। जाए-जाए मोए आगच्छइ, ताए-ताए आईयव्वे। दिया आगच्छइ आईयव्वे, रत्तिं आगच्छइ नो आईयव्वे जाव एवं खलु एसा महल्लिया मोयपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालित्ता भवइ।

४२. बडी प्रस्रवणप्रतिमा शरत्काल के प्रारम्भ मे या ग्रीष्मकाल के अन्त मे ग्राम के बाहर यावत् राजधानी के बाहर वन मे या वनदुर्ग मे, पर्वत पर या पर्वतदुर्ग मे अनगार को धारण करना कल्पता है। यदि वह भोजन करके उसी दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो सात उपवास से इसे पूर्ण करता है। यदि भोजन किये बिना अर्थात् उपवास के दिन इस प्रतिमा को धारण करता है तो आठ उपवास से इसे पूर्ण करता है। इस प्रतिमा में भिक्षु को जब-जब मूत्र आये, तब-तब पी लेना चाहिए। यदि दिन मे आये तो पीना चाहिए, किन्तु रात में आये तो नहीं पीना चाहिए यावत् इस प्रकार यह बड़ी प्रस्रवणप्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञानुसार पालन की जाती है।

42. The secondary or major *prasravan pratima* is practiced at the beginning of winter or at the end of summer in the outskirts of village up to capital, in the forest or in fortness in a forest, on a hill or on a fort on

the hill, by a monk. In case he starts it on the very day on which he has taken food, then he completes it with seven days of fasting. If he starts it without taking food, which means on a fasting day, then he completes it with eight days of fasting. In this *pratima*, a *bhikshu* should drink his urine whenever he urinates. If he urinates at night, he should not drink it as laid down in the earlier pratima. Thus this *pratima* is practiced as laid down in the order of *Jinas*.

विवेचन : इन दोनो सूत्रों में दो भिक्षुप्रतिमाओं का वर्णन किया है। निर्ग्रन्थ ही इसकी आराधना कर सकता है। निर्ग्रन्थियाँ इन प्रतिमाओं को धारण नहीं कर सकतीं। क्योंकि ये प्रतिमाएँ ग्रामादि के बाहर अथवा जंगल या पहाडो में जाकर सात-आठ दिन तक एकाकी रहकर रात-दिन कायोत्सर्ग करके पालन की जाती हैं। अतः भाष्य मे इसका अधिकारी तीन संहनन वाले पूर्वधारी को ही बताया है।

ये प्रतिमाएँ आषाढ मास या मृगशीर्ष (मिगसर) मास में ही धारण की जाती हैं। दोनो प्रस्रवणप्रतिमाओं में से एक प्रतिमा सात रात्रि कायोत्सर्ग की होती है, उसे छोटी प्रस्रवणप्रतिमा कहा गया है। दूसरी आठ रात्रि कायोत्सर्ग की होती है, उसे बडी प्रस्रवणप्रतिमा कहा है।

इन दोनो प्रतिमाओं को प्रथम दिन उपवास तप करके प्रारम्भ किया जा सकता है अथवा एक बार भोजन करके भी प्रारम्भ किया जा सकता है। भोजन करने वाले के एक दिन की तपस्या कम होती है, किन्तु कायोत्सर्ग करने का काल तो सभी का समान ही होता है। *(सचित्र स्थानांगसूत्र, भाग १, पृ १०९ पर भी इनका वर्णन है।)*

इन प्रतिमाओं को धारण करने के बाद चारों प्रकार के आहार का त्याग कर दिया जाता है, केवल स्वमूत्रपान करना खुला रहता है अर्थात् उन दिनो में जब-जब जितना भी मूत्र आये, उसे सूत्रोक्त नियमों का पालन करते हुए केवल दिन में, वह भी शुद्ध मूत्र पी लिया जाता है।

प्रतिमाधारी भिक्षु के उक्त रक्त, स्निग्धता आदि विकृतियाँ किसी रोग के कारण या तपस्या एवं धूप की गर्मी के कारण हो सकती हैं, ऐसा भाष्य मे बताया गया है। कभी मूत्रपान से ही शरीर के विकारों की शुद्धि होने के लिए भी ऐसा होता है।

यद्यपि इस प्रतिमा वाला चौविहार तपस्या करता है और रात-दिन व्युत्सर्ग तप में रहता है, फिर भी वह मूत्र की बाधा होने पर कायोत्सर्ग का त्याग कर मात्रक में प्रस्रवण त्याग करके उसका प्रतिलेखन करके पी लेता है। फिर पुन कायोत्सर्ग में स्थिर हो जाता है। यह इस प्रतिमा की विधि है।

इस प्रतिमा को पूर्ण करने वाला या तो सिद्धगति को प्राप्त करता है या महर्द्धिक देव होता है। साथ ही उसके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं और कंचनवर्णी बलवान् शरीर हो जाता है।

प्रतिमा-आराधना के बाद पुनः उपाश्रय मे आ जाता है। भाष्य मे उसके पारणे में आहार-पानी की ४९ दिन की क्रमिक विधि बताई गई है, जो इस प्रकार है-

प्रथम सप्ताह—गर्म पानी के साथ चावल। ***द्वितीय सप्ताह***—यूष-माड। ***तृतीय सप्ताह***—तीन भाग उष्णोदक और थोड़े से मधुर दही के साथ चावल। ***चौथा सप्ताह***—दो भाग उष्णोदक, तीन भाग मधुर दही के साथ चावल। ***पाँचवाँ सप्ताह***—आधा उष्णोदक और आधा भाग मधुर दही के साथ चावल। ***छठे सप्ताह***—तीन भाग उष्णोदक और दो भाग मधुर दही के साथ चावल। ***सातवें सप्ताह***—मधुर दही थोडा-सा उष्णोदक मिलाकर, उसके साथ चावल। ***आठवाँ सप्ताह***—मधुर दही तथा अन्य जूसों के साथ चावल।

तत्पश्चात् सामान्य पथ्य के अनुकूल भोजन लिया जा सकता है।

वर्तमान में भी स्व-मूत्र चिकित्सा का महत्त्व बहुत बढा है, इस विषय पर निरन्तर अनुसंधान व प्रयोग हो रहे हैं। अनेक स्वतंत्र ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए है, जिनमे कैसर, टी. बी. आदि असाध्य रोगों के उपशांत होने के उल्लेख भी है। *(भाष्य, गा. ३७९० से ३८१४)* इस वर्णन से सिद्ध होता है, स्व-मूत्र चिकित्सा के सम्बन्ध मे जैन-साधना परम्परा मे बहुत गहराई से विचार किया गया है।

Elaboration—In these two *Sutras* (aphorisms) two *bhikshu pratimas* have been described. Only a monk can practice them. The Jain nuns cannot practice them because they are practiced outside the village or in the forest or in mountains and one has to remain alone for seven or eight days in *Kayotsarg*. So it is mentioned in the *bhashya* that only that monk who has knowledge of all the *purvas* and has first three structures of the body (*Sanhanan*) can practice them.

These *pratimas* are practiced only in the month of *Ashadh* or of *Migasar* of Indian Calendar. Out of the said two *prasrawan pratimas* one is of seven days which is called elementary or minor *pratima* The second one is of eight days and it is called secondary or major prasravan *pratima*

In the case of both the pratimas the practice is started with a fast for the day or with only one time meals. The monk who starts it taking meals, his austerities are less by one day but the period of doing *Kayotsarg* is same in both the cases. *(Sachitra Sthanang, Part I, pp. 109, also contains description about it)*

After starting these *pratimas*, all the four types of food is avoided Only one's own urine can be taken. In other words whenever one urinates, one can take that urine in full during the day time following the code laid down and that also in pure form.

A monk practicing *pratimas* may have some defect in his blood, fat related defects due to any illness, or practice of austerities or heat of the sun as mentioned in the *bhashya* Sometimes, such defects are removed only by drinking one's urine

Although the monk practicing these *pratimas* practices complete fast (avoiding all the four types of articles of consumption) and remains in *Vyutsarg* austerities day and night, yet he, leaving the *kayotsarg* posture, goes to urinate whenever he has such an urge. He then, after properly examining that urine, drinks it. And again stabilizes himself in *Kayotsarg*. This is the procedure for practice of this *pratima*.

The monk who practices this *pratima* in full either attains liberation or he becomes a celestial being of a very high order (*maharidhik deva*). Simultaneously his physical illness is removed and his body becomes strong and bright.

After practicing *pratima*, he again comes back to the *Upashraya*. In the *bhashya*, the food and water which he takes in forty nine days is mentioned as under—

In the first week he takes rice with hot water. In the second week he takes soup (*maand*) of rice. In third week he takes hot water and rice with a little sweet curd. In the fourth week he takes two part hot water and three part sweetened curd with rice. In the fifth week he takes rice with hot water and sweetened curd in equal quantity (half each). In sixth week he takes three parts hot water and two parts sweet curd with rice. In seventh week he takes rice with sweet curd and a small quantity of water. In eighth week he takes sweet curd and rice with other juices. Thereafter he can take food as it suits him.

Even at present, the importance of drinking one's own urine has increased a lot Continuous research and experiments on this subject are in progress. Many independent publications have also appeared in which it has been mentioned that even many incurable diseases such as cancer, T.B. and the like have been cured by it. *(Bhashya verse 3790 to 3894)*. This description proves that in tradition of Jain practices the treatment by drinking one's own urine has been examined deeply in detail.

दत्ति-प्रमाणनिरूपण DESCRIPTION ABOUT LIMIT OF SERVINGS (DATTIS)

४३. संखादत्तियस्स भिक्खुस्स पडिग्गहधारिस्स (गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए, अणुपविट्ठस्स)

(१) जावइयं-जावइयं केइ अन्तो पडिग्गहंसि उवइत्ता दलएज्जा तावइयाओ ताओ दत्तीओ वत्तव्वं सिया। (२) तत्थ से केइ छब्बएण वा, दूसएण वा, वालएणं वा अन्तो पडिग्गहंसि उवइत्ता दलएज्जा, सव्वा वि णं सा एगा दत्ती वत्तव्वं सिया। (३) तत्थ से बहवे भुंजमाणा सव्वे ते सयं सयं पिण्डं साहणिय अन्तो पडिग्गहंसि उवइत्ता दलएज्जा, सव्वा वि णं सा एगा दत्ती वत्तव्वं सिया।

४४. संखादत्तियस्स णं भिक्खुस्स पाणि पडिग्गहियस्स (गाहावइकुलं पिण्डवाय-पडियाए अणुपविट्ठस्स)

(१) जावइयं-जावइयं केइ अन्तो पाणिंसि उवइत्ता दलएज्जा तावइयाओ ताओ दत्तीओ वत्तव्वं सिया। (२) तत्थ से केइ छब्बएण वा, दूसएण वा, वालएण वा अन्तो पाणिंसि उवइत्ता दलएज्जा, सव्वा वि णं सा

एगा दत्ती वत्तव्वं सिया। (३) तत्थ से बहवे भुंजमाणा सव्वे ते सयं सयं पिण्डं साहणिय अन्तो पाणिंसि उवइत्ता दलएज्जा, सव्वा वि णं सा एगा दत्ती वत्तव्वं सिया।

४३. दत्तियों की संख्या का अभिग्रह धारण करने वाला पात्रधारी निर्ग्रन्थ गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करे, उस समय–

(१) आहार देने वाला गृहस्थ पात्र में जितनी बार झुकाकर आहार दे, उतनी ही "दत्तियाँ" कहनी चाहिए। (२) आहार देने वाला गृहस्थ यदि छबडी से, वस्त्र से या चालनी से बिना रुके पात्र में झुकाकर दे, वह सब "एक दत्ति" कहनी चाहिए। (३) आहार देने वाले गृहस्थ जहाँ अनेक हों और वे सब अपना-अपना आहार सम्मिलित कर बिना रुके पात्र में झुकाकर दे तो वह सब "एक दत्ति" कहनी चाहिए।

४४. दत्तियो की सख्या का अभिग्रह धारण करने वाला करपात्रभोजी निर्ग्रन्थ गृहस्थ के घर मे आहार के लिए प्रवेश करे, उस समय–

(१) आहार देने वाला गृहस्थ जितनी बार झुकाकर भिक्षु के हाथ में आहार दे, उतनी ही "दत्तियाँ" कहनी चाहिए। (२) आहार देने वाला गृहस्थ यदि छबडी से, वस्त्र से या चालनी से बिना रुके भिक्षु के हाथ में जितना आहार दे वह सब "एक दत्ति" कहनी चाहिए। (३) आहार देने वाले गृहस्थ जहाँ अनेक हो और वे सब अपना-अपना आहार सम्मिलित कर बिना रुके भिक्षु के हाथ मे झुकाकर दें, वह सब "एक दत्ति" कहनी चाहिए।

43. In case a monk who has taken a resolve (*abhigrah*) about the number of Servings and who is having the pot enters the house of a householder for collecting food, then—

(1) Every time when the person giving food puts food in the pot of householder by bending down, it should be considered a *datti*. (2) In case a householder gives from any plate, cloth or sieve without stopping in between in the pot of the monk bending down, then all that is one *datti*. (3) In case there are many householders ready to serve food to the monk and they collect their foodstuff together and without break offer it in the hand of the bhikshu bending themselves, it should be called as one *datti*.

44. If a *Karpatri* monk (who takes food in hand) enters a house with *abhigrah* (resolve) about number of *duttis*, then—

(1) The *'dattis'* are the number of times the donor bends down to put food in *bhikshu's* hand. (2) If the donor gives food with a plate, cloth or sieve without stopping the dropping, it is one *datti*. (3) If the donors are many and they collect their food together and give it in *Bhikshu's* hand without a stop, it is one datti.

विवेचन : उक्त सूत्र में दत्ति का स्वरूप इस प्रकार बताया है–

दाता एक ही बार में धार खंडित किये बिना जितना आहार या पानी साधु के पात्र में दे उसे एक 'दत्ति' प्रमाण आहार या पानी कहा जाता है। वह एक दत्ति आहार-पानी हाथ से दे या किसी बर्तन से दे अथवा किसी सूप, छाबडी आदि से दे, अल्प मात्रा में देकर रुक जाए या बिना रुके अधिक मात्रा में दे, वह सब एक बार में दिया गया आहार या पानी एक दत्ति ही कहा जाता है।

कभी कोई खाद्य पदार्थ अनेक बर्तनों में या अनेक व्यक्तियों के हाथ मे अलग-अलग रखा हो, उसे एक बर्तन में या एक हाथ में इकट्ठा करके एक साथ पात्र में दे दिया जाए तो वह भी एक दत्ति ही समझना चाहिए।

Elaboration—In the above *Sutra*, the nature of *Datti* has been stated as under—

The food or water, which the donor gives in one serving without break in the pot of the monk is called '*datti*'. He may give it with his hand or with some vessel or with some plate. He may give it in a small quantity and then stop or may give in large quantity without stopping. All this is given in one serving. So, this food or water is called only a datti.

In case the cooked food is in many vessels or is in the hands of many persons separately, they collect it in one vessel or in one hand and then put it in the pot collectively. It should also be considered as one datti.

तीन प्रकार का आहार THREE TYPES OF FOOD

४५. तिविहे उवहडे पण्णत्ते, तं जहा–१. फलिओवहडे, २. सुद्धोवहडे, ३. संसट्ठोवहडे।

४५. खाद्य-पदार्थ तीन प्रकार का होता है, यथा–(१) अनेक पदार्थों के संयोग से संस्कारित मिष्ठान्न, नमकीन, शाक-भाजी आदि को फलितोपहृत कहा है। (२) शुद्ध अलेप्य चने, मुर्मुरि, फूली आदि को शुद्धोपहृत कहा है। (३) शुद्ध सलेप्य भात, रोटी, घाट, खिचडी आदि असंस्कारित गीले सामान्य पदार्थ को संसृष्टोपहृत कहा है। अभिग्रह धारण करने वाले भिक्षु इनमे से किसी भी प्रकार का अभिग्रह कर सकते है।

45. Food is of three types—**(1) Phalitopahrit**—The food in which many eatables have been mixed, such as sweets, fried things, curries etc. **(2) Shuddhopahrit**—Pure roasted grams, roasted corn or roasted rice without any coating. **(3)** Pure rice with coating, loaves, mixed parched grams, khichari (pulse and rice cooked together as mixture) and other suchlike unpolished and common eatables are called *Sansrishtopahrit*. A *bhikshu* who practices *abhigrah* (inner resolve) can take any one of these things.

अवगृहीत आहार के प्रकार TYPES OF AVAGRIHIT FOOD (FOOD TAKEN FOR SERVING)

४६. तिविहे ओग्गहिए पण्णत्ते, तं जहा—१. जं च ओगिण्हइ, २. जं च साहरइ, ३. जं च आसगंसि (थासगंसि) पक्खिवइ, एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु, दुविहे ओग्गहिए पण्णत्ते, तं जहा—१. जं च ओगिण्हइ, २. जं च आसगंसि (थासगंसि) पक्खिवइ।

४६. अवगृहीत आहार तीन प्रकार का होता है, यथा-(१) परोसने के लिए ग्रहण किया हुआ (जिस बर्तन मे खाद्य-पदार्थ बनाया गया है, उसमें से निकालकर अन्य बर्तन मे रखा जा रहा हो)। (२) परोसने के लिए ले जाता हुआ। (३) बर्तन में परोसा जाता हुआ (थाली आदि में परोसा गया या परोसा जा रहा हो), ऐसा कुछ आचार्य कहते है। परन्तु कुछ आचार्य ऐसा (अन्य अपेक्षा से) भी कहते हैं कि अवगृहीत आहार दो प्रकार का होता है, यथा -(१) परोसने के लिए ग्रहण किया जाता हुआ। (२) बर्तन में परोसा जाता हुआ (यह छठी पिंडोषणा के भेद है)।

॥ नवम उद्देशक समाप्त ॥

46. *Avagrihit* (the food taken out) for serving (*avagrihit* food) is of three types namely—(1) The food taken out for serving (the food being taken out in another vessel from the vessel in which it has been cooked). (2) One carrying the food for serving (3) The food being served (the food served or being served in a plate). This is what some *Acharyas* say

But, some *Acharyas* say this (from another point of view) that Avagrihit food is of two types namely—(1) Food being held for serving (2) Food being served from the vessel. (These are the types of sixth *pindaishana*)

● NINTH UDDESHAK CONCLUDED ●

दसवाँ उद्देशक
TENTH UDDESHAK

दो प्रकार की चन्द्रप्रतिमाएँ **TWO TYPES OF CHANDRA PRATIMAS**

१. दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-(१) जवमज्झा य चंदपडिमा, (२) वइरमज्झा य चंदपडिमा।

जवमज्झं णं चंदपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं मासं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे। जे केइ परीसहोवसग्गा समुप्पज्जेज्जा दिव्वा वा, माणुस्सगा वा, तिरिक्खजोणिया वा, अणुलोमा वा, पडिलोमा वा,

तत्थ अणुलोमा ताव वंदेज्जा वा, नमंसिज्जा वा, सक्कारेज्जा वा, सम्माणेज्जा वा, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा।

पडिलोमा ताव अन्नयरेणं दंडेण वा, अट्ठिणा वा, जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, कसेण वा काए आउट्टेज्जा, ते सव्वे उप्पन्ने सम्मं सहेज्जा, खमेज्जा, तितिक्खेज्जा, अहियासेज्जा।

जवमज्झं णं चंदपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स, सुक्कपक्खस्स पाडिवए से कप्पइ एगा दत्ती भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगा पाणस्स, सव्वेहिं दुप्पयं चउप्पयाइएहिं आहार-कंखीहिं सत्तेहिं पडिणियत्तेहिं, अन्नायउंछं सुद्धोवहडं निज्जूहित्ता बहवे समण जाव वणीमगा।

कप्पइ से एगस्स भुंजमाणस्स पडिग्गाहेत्तए नो दोण्हं, नो तिण्हं, नो चउण्हं, नो पंचण्हं।

नो गुव्विणीए, नो बालवच्छाए, नो दारगं पेज्जमाणीए।

नो अंतो एलुयस्स दो वि पाए साहट्टु दलमाणीए नो बाहिं एलुयस्स दो वि पाए साहट्टु दलमाणीए।

अह पुण एवं जाणेज्जा-एगं पायं अंतो किच्चा, एगं पायं बाहिं किच्चा एलुयं विक्खम्भइत्ता दलयइ, एवं से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

बिइयाए से कप्पइ दोण्णि दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दोण्णि पाणस्स। तइयाए से कप्पइ तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तिण्णि पाणस्स। चउत्थीए से कप्पइ चउ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउ पाणस्स। पंचमीए से कप्पइ पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पंच पाणस्स। छट्ठीए से कप्पइ छ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, छ पाणस्स। सत्तमीए मे कप्पइ सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, सत्त पाणस्स। अट्ठमीए से कप्पइ अट्ठ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, अट्ठ पाणस्स। नवमीए से कप्पइ नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, नव पाणस्स। दसमीए से कप्पइ दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दस पाणस्स। एगारसमीए से कप्पइ एगारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगारस पाणस्स। बारसमीए से कप्पइ बारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, बारस पाणस्स। तेरसमीए से कप्पइ तेरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तेरस पाणस्स। चोद्दसमीए से कप्पइ चोद्दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चोद्दस पाणस्स। पन्नरसमीए से कप्पइ पन्नरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पन्नरस पाणस्स।

बहुलपक्खस्स पाडिवए से कप्पइ चोद्दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चोद्दस पाणस्स।

बिइयाए से कप्पइ तेरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तेरस पाणस्स। तइयाए से कप्पइ बारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, बारस पाणस्स। चउत्थीए से कप्पइ एक्कारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एक्कारस पाणस्स। पंचमीए से कप्पइ दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दस पाणस्स। छट्ठीए से कप्पइ नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, नव पाणस्स। सत्तमीए से कप्पइ अट्ठ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, अट्ठ पाणस्स। अट्ठमीए से कप्पइ सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, सत्त पाणस्स। नवमीए से कप्पइ छ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, छ पाणस्स। दसमीए से कप्पइ पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पंच पाणस्स। एक्कारसमीए से कप्पइ चउ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउ पाणस्स। बारसमीए से कप्पइ तिण्णि दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तिण्णि पाणस्स। तेरसमीए से कप्पइ दो दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दो पाणस्स। चउदसमीए से कप्पइ एगा दत्ती भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगा पाणस्स। अमावासाए से य अब्भत्तट्ठे भवइ।

एवं खलु जवमज्झचंदपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालिया भवइ।

१. दो प्रतिमाएँ कही गई है, यथा–(१) यवमध्य–चन्द्रप्रतिमा, (२) वज्रमध्य–चन्द्रप्रतिमा।

(१) यवमध्य–चन्द्रप्रतिमा स्वीकार करने वाला अनगार एक मास तक शरीर के परिकर्म (देखभाल) से तथा शरीर के ममत्व से रहित होकर रहे। (२) उस समय जो कोई भी देव, मनुष्य एवं तिर्यंचकृत अनुकूल या प्रतिकूल परीषह एव उपसर्ग उत्पन्न हों, यथा–

अनुकूल परीषह एव उपसर्ग इस प्रकार हैं–कोई वन्दना नमस्कार करे, सत्कार–सम्मान करे, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और ज्ञानरूप मानकर पर्युपासना करे।

प्रतिकूल परीषह एव उपसर्ग इस प्रकार हैं–किसी दण्ड, हड्डी, जोत, बेत अथवा चाबुक से शरीर पर प्रहार करे। वह इन सब अनुकूल–प्रतिकूल उत्पन्न हुए परीषहो एव उपसर्गों को प्रसन्न या खिन्न न होकर समभाव से सहन करे, उस व्यक्ति के प्रति क्षमाभाव धारण करे, वीरतापूर्वक सहन करे और शान्ति से आनन्द का अनुभव करते हुए सहन करे।

यवमध्य–चन्द्रप्रतिमा के आराधक अणगार को, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन आहार और पानी की एक–एक दत्ति ग्रहण करना कल्पता है। (दाता के द्वार से) आहार की आकांक्षा करने वाले सभी द्विपद, चतुष्पद आदि प्राणी आहार लेकर लौट गये हो तब अज्ञात स्थान से शुद्ध अल्प लेप वाला आहार लेना कल्पता है। अनेक श्रमण यावत् भिखारी आहार लेकर लौट गये हों अर्थात् वहाँ खड़े न हों तो आहार लेना कल्पता है।

एक व्यक्ति के भोजन मे से आहार लेना कल्पता है, किन्तु दो, तीन, चार या पाँच व्यक्ति के भोजन में से लेना नहीं कल्पता है।

गर्भवती, छोटे बच्चे वाली और बच्चे को दूध पिलाने वाली के हाथ से आहार लेना नहीं कल्पता है।

दाता के दोनों पैर देहली के अन्दर हों या बाहर हों तो उससे आहार लेना नहीं कल्पता है।

यदि ऐसा जाने कि दाता एक पैर देहली के अन्दर और एक पैर देहली के बाहर रखकर देहली को पैरों के बीच में करके दे रहा है तो उसके हाथ से आहार लेना कल्पता है।

शुक्ल पक्ष के द्वितीया के दिन प्रतिमाधारी अणगार को भोजन और पानी की दो-दो दत्तियाँ लेना कल्पता है। तीज के दिन भोजन और पानी की तीन-तीन दत्तियाँ, चौथ के दिन भोजन और पानी की चार-चार दत्तियाँ, पाँचम के दिन भोजन और पानी की पाँच-पाँच दत्तियाँ, छठ के दिन भोजन और पानी की छह-छह दत्तियाँ, सप्तमी के दिन भोजन और पानी की सात-सात दत्तियाँ, अष्टमी के दिन भोजन और पानी की आठ-आठ दत्तियाँ, नवमी के दिन भोजन और पानी की नव-नव दत्तियाँ, दसमी के दिन भोजन और पानी की दस-दस दत्तियाँ, ग्यारस के दिन भोजन और पानी की ग्यारह-ग्यारह दत्तियाँ, बारस के दिन भोजन और पानी की बारह-बारह दत्तियाँ, तेरस के दिन भोजन और पानी की तेरह-तेरह दत्तियाँ, चौदस के दिन भोजन और पानी की चौदह-चौदह दत्तियाँ, पूर्णिमा के दिन भोजन और पानी की पन्द्रह-पन्द्रह दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है।

कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन भोजन और पानी की चौदह-चौदह दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है।

द्वितीया के दिन भोजन और पानी की तेरह-तेरह दत्तियाँ, तीज के दिन भोजन और पानी की बारह-बारह दत्तियाँ, चौथ के दिन भोजन और पानी की ग्यारह-ग्यारह दत्तियाँ, पाँचम के दिन भोजन और पानी की दस-दस दत्तियाँ, छठ के दिन भोजन और पानी की नव-नव दत्तियाँ, सप्तमी के दिन भोजन और पानी की आठ-आठ दत्तियाँ, अष्टमी के दिन भोजन और पानी की सात-सात दत्तियाँ, नवमी के दिन भोजन और पानी की छह-छह दत्तियाँ, दसमी के दिन भोजन और पानी की पाँच-पाँच दत्तियाँ, ग्यारस के दिन भोजन और पानी की चार-चार दत्तियाँ, बारस के दिन भोजन और पानी की तीन-तीन दत्तियाँ, तेरस के दिन भोजन और पानी की दो-दो दत्तियाँ, चौदस के दिन भोजन और पानी की एक-एक दत्ति ग्रहण करना कल्पता है। अमावस के दिन वह उपवास करता है।

इस प्रकार यह यवमध्य-चन्द्रप्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञा के अनुसार पालन की जाती है।

1. Two *Pratimas* have been stated. They are—(1) *Yava-madhya chandra pratima*, (2) *Vajra-madhya-chandra pratima*.

(1) A monk who practices *yava-madhya chandra pratima*, he should remain for one month without caring for the body or any attachment for his body. (2) At that time any celestial being, human being or beast may cause him (the monk) troubles according to his liking (*anukool parisheh*) or against his liking (*pratikool parisheh*) such as—

Anukool parisheh or mental disturbance to his liking is in this manner—A person bows to the monk, honours him, believes him as a symbol of welfare, a symbol of auspicious future, a symbol of godhood and a symbol of knowledge and serves him.

Pratikool parisheh or trouble is caused in this manner. Someone attacks him with a stick, a bone, a cane or leather rope. He should tolerate all these whether they are to his liking or not and not feel dejected. He should in every condition remain in a state of equanimity. He should always have an attitude of forgiveness towards the person who causes him such troubles, tolerate the troubles bravely and experience peace and ecstatic pleasure at that time.

A monk who practices *yava-madhya-chandra pratima* is allowed to take one serving (*datti*) of food and one of water on the first day of the bright fortnight. He is allowed to take pure food which has hardly any fatty matter on it from a place where his arrival was not known earlier and that also only after all the bi-peds and quadrupeds who had come to that donor with a desire to get food had dispersed (after taking food) The other *Shramans* (monks) upto beggars must have also returned from there after taking food. In other words none should be present there for alms at that time

He is allowed to take food only when it is for one person but not for two, three, four or five persons

He is not allowed to accept food from the hand of a pregnant woman, a woman who is carrying a small baby, or a woman who is engaged in breast-feeding.

In case both the feet of the donor are inside the threshold or both are outside the threshold, then he is not allowed to accept food

In case he finds that one foot of the donor is inside and one outside the threshold and that the threshold is between his feet, then he can accept food from his (the donor's) hands.

On the second day of the bright fortnight, a Jain monk who is practicing *pratimas* should take two serving each of food and water, three each on the third day, four each on the fourth day, five each on the fifth day, six each on the sixth day, seven each on the seventh day, eight each on the eighth day, nine each on the ninth day, ten each on the tenth day, eleven each on the eleventh day, twelve each on the twelfth day, thirteen each on the thirteenth day, fourteen each on the fourteenth day and fifteen each on the fifteenth day.

On the first day of dark fortnight, fourteen servings (*dattis*) each of food and water can be taken.

On the second day thirteen servings each, on the third day twelve serving each, on the fourth day eleven serving each, on the fifth day ten servings each, on the sixth day nine servings each, on the seventh day eight servings each, on the eighth day seven servings each, on the ninth day six servings each, on the tenth day five servings each, on the eleventh day four servings each, on the twelfth day three servings each, on the thirteenth day two servings each and on the fourteenth day one serving each are allowed to be taken. On the *Amavas* day (the fifteenth day of dark fortnight), the monk should observe complete fast

In this way *Yava-madhya-chandra pratima* is practiced as laid down in scriptures and ordered by *Jinas* (Omniscient)

२. वइरमज्झं णं चंदपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स निच्चं मासं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ परीसहोवसग्गा समुप्पज्जेज्जा जाव अहियासेज्जा।

वइरमज्झं णं चंदपडिमं पडिवन्नस्स अणगारस्स, बहुलपक्खस्स पाडिवए से कप्पइ पन्नरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पन्नरस पाणस्स जाव एलुयं विक्खंभइत्ता दलयइ एवं से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

बिइयाए से कप्पइ चउद्दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउद्दस पाणस्स। तइयाए से कप्पइ तेरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तेरस पाणस्स। चउत्थीए से कप्पइ बारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, बारस पाणस्स। पंचमीए से कप्पइ एगारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगारस पाणस्स। छट्ठीए से कप्पइ दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दस पाणस्स। सत्तमीए से कप्पइ नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगहेत्तए, नव पाणस्स। अट्ठमीए से कप्पइ अट्ठ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, अट्ठ पाणस्स। नवमीए से कप्पइ सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, सत्त पाणस्स। दसमीए से कप्पइ छ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, छ पाणस्स। बारसमीए से कप्पइ चउ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउ पाणस्स। तेरसमीए से कप्पइ तिन्नि दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तिन्नि पाणस्स। चउदसमीए से कप्पइ दो दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दो पाणस्स। अमावासाए से कप्पइ एगा दत्ती भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगा पाणस्स।

सुक्कपक्खस्स पाडिवए से कप्पइ दो दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दो पाणस्स। बिइयाए से कप्पइ तिन्नि दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तिन्नि पाणस्स। तइयाए से कप्पइ चउ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउ पाणस्स। चउत्थीए से कप्पइ पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पंच पासस्स। पंचमीए से कप्पइ छ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, छ पाणस्स। छट्ठीए से कप्पइ सत्त दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, सत्त पाणस्स। सत्तमीए से कप्पइ अट्ठ दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, अट्ठ पाणस्स। अट्ठमीए से कप्पइ नव दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, नव पाणस्स। नवमीए से कप्पइ दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, दस पाणस्स। दसमीए से कप्पइ एगारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, एगारस पाणस्स। एगारसमीए से कप्पइ बारस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, बारस पाणस्स। बारसमीए से कप्पइ तेरस

दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, तेरस पाणस्स। तेरसमीएसे कप्पइ चउद्दस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, चउद्दस पाणस्स। चउद्दसमीए से कप्पइ पन्नरस दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पन्नरस पाणस्स। पुण्णिमाए से य अब्भत्तट्ठे भवइ।

एवं खलु एसा वइरमज्झा चंदपडिमा अहासुत्तं जाव आणाए अणुपालिया भवइ।

२. वज्रमध्य–चन्द्रप्रतिमा स्वीकार करने वाला अनगार एक मास तक शरीर के परिकर्म से तथा शरीर के ममत्व से रहित होकर रहे और जो कोई (अनुकूल का प्रतिकूल) परीषह एवं उपसर्ग उत्पन्न हो यावत् उन्हें शान्तिपूर्वक सहन करे। वज्रमध्य–चन्द्रप्रतिमा स्वीकार करने वाले अणगार को।

कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन पन्द्रह–पन्द्रह दत्तियाँ भोजन और पानी की लेना कल्पता है यावत् देहली को पैरो के बीच में करके दे तो उससे आहार लेना कल्पता है।

फिर द्वितीया के दिन भोजन और पानी की चौदह–चौदह दत्तियाँ, तीज के दिन भोजन और पानी की तेरह–तेरह दत्तियाँ, चौथ के दिन भोजन और पानी की बारह–बारह दत्तियाँ, पाँचम के दिन भोजन और पानी की ग्यारह–ग्यारह दत्तियाँ, छठ के दिन भोजन और पानी की दस–दस दत्तियाँ, सातम के दिन भोजन और पानी की नव–नव दत्तियाँ, आठम के दिन भोजन और पानी की आठ–आठ दत्तियाँ, नवमी के दिन भोजन और पानी की सात–सात दत्तियाँ, दसमी के दिन भोजन और पानी की छह–छह दत्तियाँ, ग्यारस के दिन भोजन और पानी की पाँच–पाँच दत्तियाँ, बारस के दिन भोजन और पानी की चार–चार दत्तियाँ, तेरस के दिन भोजन और पानी की तीन–तीन दत्तियाँ, चौदस के दिन भोजन और पानी की दो–दो दत्तियाँ, अमावस्या के दिन भोजन और पानी की एक–एक दत्ति ग्रहण करना कल्पता है।

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन भोजन और पानी की दो–दो दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पता है। द्वितीया के दिन भोजन और पानी की तीन–तीन दत्तियाँ, तीज के दिन भोजन और पानी की चार–चार दत्तियाँ, चौथ के दिन भोजन और पानी की पाँच–पाँच दत्तियाँ, पाँचम के दिन भोजन और पानी की छह–छह दत्तियाँ, छठ के दिन भोजन और पानी की सात–सात दत्तियाँ, सातम के दिन भोजन और पानी की आठ–आठ दत्तियाँ, आठम के दिन भोजन और पानी की नव–नव दत्तियाँ, नवमी के दिन भोजन और पानी की दस–दस दत्तियाँ, दसमी के दिन भोजन और पानी की ग्यारह–ग्यारह दत्तियाँ, ग्यारस के दिन भोजन और पानी की बारह–बारह दत्तियाँ, बारस के दिन भोजन और पानी की तेरह–तेरह दत्तियाँ, तेरस के दिन भोजन और पानी की चौदह–चौदह दत्तियाँ, चौदस के दिन भोजन और पानी की पन्द्रह–पन्द्रह दत्तियाँ, ग्रहण करना कल्पता है। पूर्णिमा के दिन यह उपवास करता है।

इस प्रकार यह वज्रमध्य–चन्द्रप्रतिमा सूत्रानुसार यावत् जिनाज्ञानुसार पालन की जाती है।

2. The monk who practices *Vajra-madhya-chandra pratima* keeps himself for one month away from any care for his physical body or any attachment for it. He quietly and in a state of equanimity endures all the troubles (whether to his liking or against his liking that arise).

Such a monk is allowed to accept fifteen servings (*dattis*) each of food and water from a donor who has the threshold between his feet and not otherwise; on the first day of the dark fortnight.

On the second day he can accept fourteen servings each, thirteen each on the third day, twelve each on the fourth day, eleven each on the fifth day, ten each on the sixth day, nine each on the seventh day, eight each on the eighth day, seven each on the ninth day, six each on the tenth day, five each on the eleventh day, four each on the twelfth day, three each on the thirteenth day, two each on the fourteenth day and one serving (*datti*) each of food and water on the fifteenth day (*Amavas* day) of dark fortnight.

On the first day of bright fortnight two servings (*dattis*) each of food and water can be accepted Three servings each on the second day, four each on the third day, five each on the fourth day, six each on the fifth day, seven each on the sixth day, eight each on the seventh day, nine each on the eighth day, ten each on the ninth day, eleven each on the tenth day, twelve each on the eleventh day, thirteen each on the twelfth, fourteen each on the thirteenth day and fifteen servings each of food and water can be accepted on the fourteenth day of bright fortnight. On *Poornima* (fifteenth day of bright fortnight) he observes fast.

Thus, this *Vajra-madhya-chandra pratima* is practiced as laid down in scriptures and ordered by *Jinas*.

विवेचन : जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ बढती हैं और कृष्ण पक्ष में घटती हैं, उसी प्रकार इन दोनो प्रतिमाओ मे आहार की दत्तियो की सख्या तिथियो के क्रम से घटाई और बढाई जाती हैं। इसलिए इन दोनो प्रतिमाओ को "चन्द्रप्रतिमा" कहा गया है।

यवमध्य-चन्द्रप्रतिमा का अर्थ है-जिस प्रकार जौ (धान्य) का एक किनारा पतला होता है, फिर मध्य में स्थूल होता है एव अन्त मे पतला होता है, उसी प्रकार जिस प्रतिमा के प्रारम्भ में एक दत्ति, मध्य में पन्द्रह दत्ति, अन्त में एक दत्ति और बाद मे उपवास किया जाता है।

"वज्रमध्य-चन्द्रप्रतिमा" का अर्थ है-जिस प्रकार वज्ररत्न या डमरू का एक किनारा विस्तृत, मध्य भाग संकुचित और दूसरा किनारा विस्तृत होता है, उसी प्रकार जिस प्रतिमा के प्रारम्भ में पन्द्रह दत्ति, मध्य में एक दत्ति, अन्त में पन्द्रह दत्ति और बाद में उपवास किया जाता है। (स्पष्टता के लिए संलग्न चित्र देखें।)

इन प्रतिमाओं को धारण करने वाले भिक्षु को निम्नलिखित नियमो का पालन करना आवश्यक होता है-

मूल पाठ मे जिन नियमों का नामोल्लेख है, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-(१) शारीरिक ममत्व का त्याग करना अर्थात् नियमित परिमित आहार के अतिरिक्त औषध-भेषज के सेवन का और सभी प्रकार के शरीरपरिकर्म (अभ्यंगन आदि) का त्याग करना। (२) देव, मनुष्य या तिर्यंच द्वारा किये गये उपसर्गों का प्रतिकार

न करना और नहीं उनसे बचने का प्रयत्न करना। (३) किसी के वन्दना या आदर-सत्कार किये जाने पर प्रसन्न न होना, अपितु समभाव मे स्थित रहना। (४) जिस मार्ग में या जिस घर के बाहर पशु या पक्षी हों तो पशुओ के चारा चर लेने के बाद और पक्षियो के चुग्गा चुग लेने के बाद पडिमाधारी को आहार लेने के लिए घर में प्रवेश करना। (५) पडिमाधारी के आने की सूचना या जानकारी न हो या उनकी कोई प्रतीक्षा करता न हो, ऐसे अज्ञात घरों से आहार ग्रहण करना (६) उंछ-विगयरहित रूक्ष आहार ग्रहण करना। (७) शुद्धोपहृत-लेपरहित आहारादि ग्रहण करना। (८) अन्य भिक्षु श्रमणादि जहाँ पर खडे हो, वहाँ भिक्षा के लिए न जाना। (९) एक व्यक्ति का आहार हो उसमे से लेना, अधिक व्यक्तियो के आहार मे से नही लेना। (१०) किसी भी गर्भवती स्त्री से भिक्षा न लेना। (११) जो छोटे बच्चे को लिए हुए हो, उससे भिक्षा न लेना। (१२) जो स्त्री बच्चे को दूध पिला रही हो, उससे भिक्षा न लेना। (१३) घर की देहली के अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी खडे हुए से भिक्षा नहीं लेना। (१४) देहली के भी एक पाँव अन्दर और एक पाँव बाहर रखकर बैठे हुए या खडे हुए दाता से भिक्षा ग्रहण करना।

एषणा के ४२ दोष एव अन्य आगमोक्त विधियो का पालन करना तो इन प्रतिमाधारी के लिए भी आवश्यक ही समझना चाहिए।

इन उक्त नियमो के अनुसार यदि आहार मिले तो ग्रहण करे और न मिले तो ग्रहण न करे अर्थात् उस दिन उपवास करे। प्रतिमाधारी भिक्षु भिक्षा का समय या घर की सख्या निर्धारित कर लेता है और उतने समय तक या उतने ही घरों मे भिक्षार्थ भ्रमण करता है। आहारादि के न मिलने पर उत्कृष्ट एक मास की तपश्चर्या भी हो जाती है। किन्तु किसी भी प्रकार का अपवाद सेवन वह नही करता है। इन दोनों चन्द्र-प्रतिमाओ की आराधना एक-एक मास मे की जाती है।

भाष्य मे बताया है कि ये दोनो प्रतिमाएँ धारण करने वाला श्रमण कम से कम बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला, तीन सहनन वाला और नव पूर्व के ज्ञान वाला होना चाहिए।

Elaboration—Just as the size of moon increases every day in the bright fortnight and decreases in dark fortnight, similarly in these two *pratimas* the number of servings (*dattis*) is decreased or increased with the number of days in the fortnight concerned. So, these two *pratimas* are called *chandra-pratima*.

The meaning of the word *Yava-madhya-chandra pratima* is as follows—Just as one end of the barley seed is thin, it is gross in the middle and again thin in the end, similarly a practice which is started with one serving (*datti*) and in the middle fifteen servings are accepted while in the end again only one serving (*datti*) of food and water is accepted and thereafter complete fast for this day is practiced is called *Yava-madhya-chandra pratima.*

The meaning of *Vajra-madhya-chandra pratima* is as follows—Just as in case of a *Vajra ratna* or a *damroo* (an instrument where one trapezium like thing is placed on another, the smaller parallels touching each other), one end is very wide, the middle is small (contracted) and the second end

is again stretched, similarly in this *pratima*, fifteen servings each (of food and water) are accepted in the beginning, later reducing it in the middle it is only one serving and again in the end fifteen servings (*dattis*) each of food and water is accepted. Thereafter complete fast is observed for a day (twenty four hours). (For clarity see the picture attached.)

The monk who practices these *pratimas* has to follow the rules mentioned below—

The rules, which have been mentioned in the basic text are as under—(1) One should discard attachment for his physical body. In other words except limited food and water as mentioned he should not take anything else, not even medicine and should avoid all types of massage or decoration on the body. (2) He should not in any way oppose any troubles caused by celestial beings, human beings or beasts He should not even try to save himself from such troubles. (3) He should not feel elated when anyone greets him or respects him He should rather remain in a state of equanimity. (4) In case, cattle are taking fodder or birds are gathered picking up grains outside the house, then the monk who is practicing *pratima* should enter that house only after they (the cattle and the birds) have taken their food to their satisfaction. (5) He should take food only from such houses which have no prior information or knowledge of his coming over there and where none is waiting for him. (6) He should take only such food, which does not have any strengthening matter (*ghee*, butter and the like). (7) He should take dry food (food that is not plastered with *ghee*) (8) He should not go for food to that place where other *bhikshus* are standing. (9) He should take only from that food which is for only one person. If it is for many person, he should not take from it. (10) He should not accept food from any pregnant woman. (11) He should not accept food from that person who is carrying a small baby. (12) He should not accept food from that lady who is feeding, breast-feeding the child and the like. (13) He should not take food from a person who is standing at a place other than the entrance (threshold) of his house. (14) He can accept food only from that person who is either standing or sitting with one foot outside and one foot inside the entrance.

It is very essential to safeguard oneself for forty-two faults relating to acceptance of food and to follow the other rules mentioned in the scriptures—more so for those monks who practice pratimas.

If the food is available according to the above-said rules he should accept it and if it is not available strictly in accordance with above rules, he should not accept it. In that case he should observe fast that day. A monk practicing *pratimas* (before starting for collection of food) determines in his mind the time for going out for *bhıksha* (collection of food by begging) or the number of houses he is going to visit for it and during that period (already resolved in his mind) he should visit only that number of houses for food. In case he does not get food continuously, his austerities may last even upto one month. But he does not practice any exception (or loopholes) in his austerities. The practice of these two *chandra pratimas* is completed ın one month each.

It has been stated in the *bhashya* that the monk who practices these two *pratimas* should have spent at least twenty years as monk. He should have first three *Sanhanans* (structures of the physıcal body) and he should have studied nine *Purvas*.

पाँच प्रकार के व्यवहार FIVE TYPES OF BEHAVIOUR

३. पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा–(१) आगमे, (२) सुए, (३) आणा, (४) धारणा, (५) जीए।

(१) जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

(२) णो से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

(३) णो से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

(४) णो से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।

(५) णो से तत्थ धारणा सिया, जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा।

इच्चेएहिं पंचहिं ववहारेहिं ववहारं पट्ठवेज्जा, तं जहा–(१) आगमेणं, (२) सुएणं, (३) आणाए, (४) धारणाए, (५) जीएणं। जहा–जहा से आगमे, सुए, आणा, धारणा, जीए तहा–तहा ववहारं पट्ठवेज्जा।

[प्र.] से किमाहु भंते ?

[उ.] आगमबलिया समणा निग्गंथा।

इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया–जया, जहिं–जहिं, तया–तया, तहिं–तहिं अणिस्सिओवस्सियं ववहारं ववहरमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ।

३. व्यवहार पाँच प्रकार का कहा है, यथा–(१) आगम, (२) श्रुत, (३) आज्ञा, (४) धारणा, (५) जीत।

(१) जहाँ आगमज्ञानी हों, वहाँ उनके निर्देशानुसार व्यवहार करें।

(२) जहाँ आगमज्ञानी न हो, तो वहाँ श्रुतज्ञानी के निर्देशानुसार व्यवहार करें।

(३) जहाँ श्रुतज्ञानी न हों, तो वहाँ गीतार्थ की आज्ञानुसार व्यवहार करें।

(४) जहाँ गीतार्थ की आज्ञा उपलब्ध न हो, वहाँ स्थविरो की धारणानुसार व्यवहार करें।

(५) जहाँ स्थविरों की धारणा ज्ञात न हो, तो वहाँ सर्वानुमत परम्परानुसार व्यवहार करे।

इन पाँच व्यवहारो के अनुसार व्यवहार करें। यथा-(१) आगम, (२) श्रुत, (३) आज्ञा, (४) धारणा, (५) जीत।

आगमज्ञानी, श्रुतज्ञानी, गीतार्थ की आज्ञा, स्थविरों की धारणा और परम्परा, इनमें से जिस समय जो उपलब्ध हो, उस समय उसी से क्रमशः व्यवहार करे।

[प्र.] भते! ऐसा क्यो कहा?

[उ.] श्रमण-निर्ग्रन्थ आगम-व्यवहार की प्रमुखता वाले होते हैं।

इन पाँच प्रकार के व्यवहारो मे से जब-जब, जिस-जिस विषय मे जो प्रमुख व्यवहार उपलब्ध हो तब-तब, उस-उस विषय मे निरपेक्ष भाव से उस व्यवहार से व्यवहार करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जिनाज्ञा का आराधक होता है।

3. The ascetic conduct is of five types namely—(1) According to *Agams*, (2) According to scriptures, (3) According to the order, (4) According to resolve (*Dharana*), (5) *Jeet Vyavahar*—conduct according to traditions accepted by all.

(1) Where there are persons who are well read in *Agams*, it should be as directed by them.

(2) Where there is none having expert knowledge of *Agams*, it should be as directed by those who are well read in scriptures.

(3) In case none is available who has expert knowledge of scriptures, it should be according to the directions of an experienced (*geetarth*) monk.

(4) In case no *geetarth* monk is available it should be as believed by *sthavirs*

(5) In case the traditional belief of *sthavirs* is not coming, it should be according to the tradition being followed by all.

Thus the monks should practice their monkhood following the five types of ascetic conduct in that order.

Out of expert in *Agams*, expert in scriptural knowledge, order of *geetarth* monk, belief of *sthavirs* and the tradition whichever is available in that order at a particular time, it should be followed accordingly.

[Q.] Reverend Sir ! Why is it said so ?

[Ans.] The *Nirgranths* primarily practice such a conduct.

Out of the said five types of conduct whichever is primarily available on a particular matter, it should be practiced accordingly The monk who in an impartial manner follows such a conduct, he is the true follower of the order of *Jinas*.

विवेचन : सघ की व्यवस्था सुचारु रूप मे चलाने के लिए प्रवृत्ति-निवृत्ति का आदेश, निर्देश 'व्यवहार' कहा जाता है। कही-कही प्रायश्चित्त विधि को भी **'व्यवहार'** नाम से जाना जाता है।

प्रायश्चित्त का निर्णय "आगम" आदि सूत्रोक्त क्रम से ही करना चाहिए। सूत्र मे प्रायश्चित्त के निर्णायक आधार पाँच व्यवहार कहे गये है। उन्हे धारण करने वाला व्यवहारी कहा जाता है।

(१) **आगमव्यवहारी**-केवलज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदह पूर्वधर तथा फिर क्रमश नोपूर्वधारी तक।

(२) **श्रुतव्यवहारी**-जघन्य आचारांग एवं निशीथसूत्र के मूल, अर्थ, परमार्थ सहित कण्ठस्थ धारण करने वाले और उत्कृष्ट ९ पूर्व से कम श्रुत को धारण करने वाले।

(३) **आज्ञाव्यवहारी**-किसी आगमव्यवहारी या श्रुतव्यवहारी की अनुपस्थिति मे उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर उस आज्ञा के आधार से प्रायश्चित्त देने वाला अथवा आगम की आज्ञानुसार प्रायश्चित्तादि व्यवहार करना।

(४) **धारणाव्यवहारी**-बहुश्रुतो ने श्रुतानुसारी प्रायश्चित्त की कुछ मर्यादा किसी योग्य भिक्षु को धारण करा दी हो, उनको अच्छी तरह धारण करने वाला।

(५) **जीतव्यवहारी**-जिन विषयो मे कोई सूत्र का स्पष्ट आधार न हो उस विषय मे बहुश्रुत भिक्षु सूत्र से अविरुद्ध और संयमपोषक प्रायश्चित्त की मर्यादाएँ किसी योग्य भिक्षु को धारण करा दे, उन्हे अच्छी तरह धारण करने वाला।

अनेक परिभाषाएँ हैं-(१) जो व्यवहार, एक बार या अनेक बार किसी आचार्य द्वारा प्रवर्तित होता है, तथा महान् आचार्य जिसका अनुवर्तन करते है, वह जीतव्यवहार है। (२) अमुक आचार्य ने अमुक कारण उत्पन्न होने पर, अमुक पुरुष को अमुक प्रकार का प्रायश्चित्त दिया, उसका वैसी ही स्थिति मे वैसा ही प्रयोग करना जीतव्यवहार है। *(व्यवहारभाष्य ४५२१-३४)*

जो आचार्य, उक्त चारों व्यवहार से रहित है, वह परम्परा से प्राप्त (गुरु परम्परा व सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार) व्यवहार का प्रयोग करता है, वह जीतव्यवहार है। *(व्यवहारभाष्य ४५३३ तथा सस्कृत टीका, पृष्ठ १४२)*

इस प्रकार जीतव्यवहार की विविध अपेक्षाओ से परिभाषित किया गया है।

इस सूत्रविधान का आशय यह है कि पहले कहा गया व्यवहार और व्यवहारी प्रमुख होता है। उसकी अनुपस्थिति मे ही बाद मे कहे गये व्यवहार और व्यवहारी को प्रमुखता दी जा सकती है। अर्थात् जिस विषय में श्रुतव्यवहार उपलब्ध हो उस विषय में निर्णय करने में धारणा या जीतव्यवहार को प्रमुखता नहीं देना।

वर्तमान में सर्वप्रथम निर्णायक शास्त्र हैं, उससे विपरीत अर्थ को कहने वाले व्याख्या और ग्रन्थ का महत्त्व नहीं है। उसी प्रकार शास्त्रप्रमाण के उपलब्ध होने पर धारणा या परम्परा का भी कोई महत्त्व नहीं है। इसलिए

शास्त्र, ग्रन्थ, धारणा और परम्परा को भी यथाक्रम विवेकपूर्वक प्रमुखता देकर किसी भी तत्त्व का निर्णय करना आराधना का हेतु है और किसी भी पक्ष भाव के कारण व्युत्क्रम से निर्णय करना विराधना का हेतु है। अत. इस सूत्र के आशय को समझकर निष्पक्ष भाव से आगम तत्त्वों का निर्णय करना चाहिए। *(भगवतीसूत्र, श ८, उ ८ मे तथा सचित्र स्थानाग ५, उ २, पृ १५६ पर मे भी इस विषय का विवेचन किया गया है।)*

Elaboration—In order to ensure proper administration in the organization, the directions regarding what should be done and what should not be done (*nivrithi*) is called conduct (*vyavahar*) based on directions. Sometimes the procedure of *prayashchit* is also known as *Vyavahar*.

The *prayashchit* should be determined according to the scriptures such as *Agams*. The basis for determining *prayashchit* in the *Sutra* are five types of conduct (*Vyavahar*). The person who practices it is called *Vyavahari*.

(1) **Agam-Vyavahari**—The omniscients, the one who has super-mental knowledge (*manh paryav jnani*), one who has transcendental knowledge (*avadhi jnani*) one who has knowledge of fourteen *Purvas* and so on upto nine *Purvas* are called *Agam-Vyavahari* in that order.

(2) **Shrut-Vyavahari**—The person who knows at least basic text, meaning and the underlying idea of *Acharanga* and *Nisheeth Sutra* by heart and he knows at the utmost less than nine *Purvas* is *Shrut-Vyavahari*.

(3) **Aajna-Vyavahari**—In the absence of an expert in *Agams* or expert in scriptures, one who under their order is capable of awarding *prayashchit* on the basis of that order is *Aajna-Vyavahari*.

(4) **Dharna-Vyavahari**—The learned in scriptures (*bahushrut*) taught some provision of *prayashchit* based on scriptures to an able *bhikshu* and he very well remembers them Then he is *Dharna-Vyavahari*.

(5) **Jeet-Vyavahari**—Regarding those matters which do not clearly appear in scriptures a *bhikshu* learned in scriptures (*bahushrut*) tells an able *bhikshu* some provisions of *prayashchit* which do not in any way contradict the *Sutra* and which strengthen the ascetic restraints. Such a *bhikshu* who remembers them properly is *Jeet-Vyavahari*.

There are many interpretations—(1) The rules of conduct (*vyavahar*) which is defined once or many times by an *Acharya* and which is supported by great *Acharya* is called *Jeet vyavahar*. (2) A particular *Acharya* in a certain situation awarded a particular *prayaschit* to such and such person. To follow the same in same conditions is *Jeet-Vyavahar*. *(Vyavahar bhashya 4521-34)*

The *Acharya* who does not know any of the above said four types of ascetic conduct, follows the traditional conduct (which is according to the lineage of gurus or the traditions of that sect). This is called *Jeet Vyavahar*. (*Vyavahar bhashya 4533 and Sanskrit commentary, pp 142*)

The purpose of this provision in the *Sutra* is that the conduct earlier mentioned and the person who follows it are the main ideals to be followed Only in his absence, the type of conduct mentioned later in the order can be followed In other words in case in a particular matter the conduct based on scriptures is available the *Jeet Vyavahar* or the traditional procedure of making judgement should not be given importance.

At present, the text to be followed first in deciding matter is *Agam*. Any commentary or publication, which gives a different interpretation has no importance. Similarly, if the scriptures prove a thing, then the viewpoint of a person or the tradition has no importance. So the judgement made on the basis of discriminatory importance given to *Agams*, texts, viewpoints and tradition in that order is in line with the order of *Jinas* and any partial approach to decide a matter differently is disobeying the word of *Jinas* So after understanding the purpose of this *Sutra*, matters mentioned in *Agams* should be decided in an impartial way. *(For details see Bhagvati Sutra, Shatak 8, ud 8, Sachitra Sthanang 5, ud 2, pp. 156)*

विविध प्रकार से गण की वैयावृत्य करने वाले SERVING GANA IN DIFFERENT WAYS

४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) अट्ठकरे नामं एगे, नो माणकरे, (२) माणकरे नामं एगे, नो अट्ठकरे, (३) एगे अट्ठकरे वि, माणकरे वि, (४) एगे नो अट्ठकरे, नो माणकरे।

५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) गणट्ठकरे नामं एगे, नो माणकरे, (२) माणकरे नामं एगे, नो गणट्ठकरे, (३) एगे गणट्ठकरे वि, माणकरे वि, (४) एगे नो गणट्ठकरे, नो माणकरे।

६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) गणसंगहकरे नामं एगे, नो माणकरे, (२) माणकरे नामं एगे, नो गणसंगहकरे, (३) एगे गणसंगहकरे वि, माणकरे वि, (४) एगे नो गणसंगहकरे, नो माणकरे।

७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) गणसोहकरे नामं एगे, नो माणकरे, (२) माणकरे नामं एगे, नो गणसोहकरे, (३) एगे गणसोहकरे वि, माणकरे वि, (४) एगे नो गणसोहकरे, नो माणकरे।

८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) गणसोहिकरे नामं एगे, नो माणकरे, (२) माणकरे नामं एगे, नो गणसोहिकरे, (३) एगे गणसोहिकरे वि, माणकरे वि, (४) एगे नो गणसोहिकरे, नो माणकरे।

४. चार प्रकार के पुरुष होते हैं। जैसे-(१) कोई अर्थ-सेवा आदि कार्य करता है, किन्तु मान नहीं करता है। (२) कोई मान करता है, किन्तु कार्य नहीं करता है। (३) कोई कार्य भी करता है और मान भी करता है। (४) कोई कार्य भी नहीं करता है और मान भी नहीं करता है।

५. (पुनः) चार प्रकार के पुरुष होते हैं। जैसे-(१) कोई गण का काम करता है, परन्तु मान नही करता है। (२) कोई मान करता है, परन्तु गण का काम नही करता है। (३) कोई गण का काम भी करता है और मान भी करता है। (४) कोई न गण का काम करता है और न मान करता है।

६. (पुन.) चार प्रकार के पुरुष होते है। जैसे-(१) कोई गण के लिए संग्रह करता है, परन्तु मान नहीं करता है। (२) कोई मान करता है, परन्तु गण के लिए संग्रह नही करता है। (३) कोई गण के लिए संग्रह भी करता है और मान भी करता है। (४) कोई न गण के लिए सग्रह करता है और न मान ही करता है।

७. (पुनः) चार प्रकार के पुरुष होते है। जैसे-(१) कोई गण की शोभा बढाता है, किन्तु मान नहीं करता है। (२) कोई मान करता है, किन्तु गण की शोभा नही बढाता है। (३) कोई गण की शोभा भी बढाता है और मान भी करता है। (४) कोई न गण की शोभा बढाता है और न मान ही करता है।

८. (पुनः) चार प्रकार के पुरुष होते हैं। जैसे-(१) कोई गण की शुद्धि करता है, परन्तु मान नहीं करता है। (२) कोई मान करता है, परन्तु गण की शुद्धि नही करता है। (३) कोई गण की शुद्धि भी करता है और मान भी करता है। (४) कोई न गण की शुद्धि करता है और न मान ही करता है।

4. Men are of four types. For instance—(1) Some do service but do not have any ego (2) Some have ego but do not serve (3) Some do service and also feel proud of it. (4) Some neither do any service nor feel proud.

5. (Again) Men are of four types, namely—(1) Some-one does the work of the organization (*gana*) but does not feel proud of it (2) Some-one feels proud but does not do any work of the organization (3) Some does the work of the organization and also feels proud of it. (4) Some-one neither does any work nor feels proud of it

6. (Again) Men are four types, namely—(1) Some-one collects (articles) for the organization (*gana*) but does not feel proud of it. (2) Some-one feels proud but does not collect any thing for the organization. (3) Some-one collects for the organization and also feels proud of it. (4) Some-one neither collects anything for the organization and also feels proud of it.

7. (Again) Men are of four types, namely—(1) Some-one increases grandeur of the organization (*gana*) but does not feel proud of it. (2) Some-one feels proud but does not do anything to increase grandeur of the organization. (3) Some-one increases grandeur of the organization and also feels proud of it. (4) Some-one neither increases any grandeur of the organization nor feels proud of it.

8. (Again) Men are of four types, namely—(1) Some-one purifies the organization (*gana*) but does not feel proud of it. (2) Some-one feels proud but does not purify the organization. (3) Some-one purifies the organization and also feels proud of it. (4) Some-one neither purifies the organization nor feels proud of it

विवेचन : प्रत्येक व्यक्ति मे भिन्न-भिन्न गुण तथा स्वभाव होते हैं। उन गुणों तथा स्वभाव की दृष्टि से यहाँ पुरुषो के चार-चार प्रकार बताये है।

प्रस्तुत सूत्र मे साधु आचार का विषय होने से यहाँ भिन्न-भिन्न दृष्टियो से संयमी पुरुषो के लिए पांच चौभंगियाँ कही है, उनमे निम्न विषय है-(१) अट्ठ-(अर्थ) कुछ भी सेवा आदि कार्य करना। (२) **गणट्ठ**-गच्छ के व्यवस्था-सम्बन्धी कार्य करना। (३) **गणसंग्रह**-गण के लिए साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाओं की वृद्धि हो, आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, शय्या-सस्तारक आदि सुलभ हों, ऐसे क्षेत्रो की वृद्धि करना, लोगो मे धार्मिक रुचि एव दान भावना की वृद्धि करना। (४) **गणसोह**-तप-सयम, ज्ञान-ध्यान, उपदेश एव व्यवहारकुशलता से गण की शोभा की वृद्धि करना। (५) **गणसोहि**-साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका के आचार-व्यवहार की अशुद्धियो को विवेकपूर्वक दूर करना। सघ-व्यवस्था मे आई अव्यवस्था को उचित उपायो द्वारा सुधारकर उत्तम व्यवस्था करना।

इनमे प्रथम तथा तृतीय भग सफल व प्रशसनीय होता है। द्वितीय तथा चतुर्थ भग असफल व त्याज्य है।

Elaboration—Every person has different qualities and different nature. From the point of view of qualities and the nature, people have been classified into four types

In the present *Sutra*, the subject being conduct of a monk, it has been studied from different points of view and thus five different classifications have been made. The subject in classification is as under—**(1) Atth** (in the first classification)—It is to do some service and the like. **(2) Ganatth** (in the second classification)—It is to do some thing relating to administration of the organization **(3) Gana-sangrah** (in the third classification)—In order to ensure that the number of monks and nuns, Shravaks and Shravikas (lay women) in the organization increase, to find out more places where food, water, cloth, pots, bed and the like are easily available for monks, to improve the habit of participating in spiritual matters and of giving in charity. **(4) Gana-soha** (classification of fourth type)—To increase the grandeur of the organization by austerities, ascetic restraints, scriptural knowledge meditational practices, spiritual lectures and expertise in daily behaviour. **(5) Gana-sohi** (fifth classification)—To remove prudently the shortcomings or faults in the conduct and general behaviour of monks and nuns or lay male and female devotees. To improve the administrative set up of the

organization and by proper methods to bring change in mal-administration and to make it ideal.

Out of the above, in each classification the first and third is praiseworthy and good while second and fourth are signs of failure and need to be discarded.

धर्मदृढ़ता की चौभंगियाँ FOUR CLASSIFICATIONS TO JUDGE FAITH IN DHARMA

९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) रूवं नाममेगे जहइ, नो धम्मं, (२) धम्मं नाममेगे जहइ, नो रूवं, (३) एगे रूवं वि जहइ, धम्मं वि जहइ, (४) एगे नो रूवं जहइ, नो धम्मं जहइ।

१०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) धम्मं नाममेगे जहइ, नो गणसंठिइं, (२) गणसंठिइं नाममेगे जहइ, नो धम्मं, (३) एगे गणसंठिइं वि जहइ, धम्मं वि जहइ, (४) एगे नो गणसंठिइं जहइ, नो धम्मं जहइ।

११. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा–(१) पियधम्मे नाममेगे, नो दढधम्मे, (२) दढधम्मे नाममेगे, नो पियधम्मे, (३) एगे पियधम्मे वि, दढधम्मे वि, (४) एगे नो पियधम्मे, नो दढधम्मे।

९. चार प्रकार के पुरुष होते है। जैसे–(१) कोई रूप (साधु–वेश) को छोड देता है, पर धर्म को नहीं छोडता है। (२) कोई धर्म को छोड देता है पर रूप को नही छोडता है। (३) कोई रूप भी छोड देता है और धर्म भी छोड देता है। (४) कोई न रूप को छोडता है और न धर्म को छोडता है।

१०. (पुन.) चार प्रकार के पुरुष होते है। जैसे–(१) कोई धर्म को छोड़ता है, पर गण की संस्थिति अर्थात् गण–मर्यादा नही छोडता है। (२) कोई गण की मर्यादा छोड देता है, पर धर्म को नही छोड़ता है। (३) कोई गण की मर्यादा भी छोड देता है और धर्म भी छोड देता है। (४) कोई न गण की मर्यादा ही छोडता है और न धर्म ही छोडता है।

११. (पुनः) चार जाति के पुरुष होते हैं। जैसे–(१) कोई प्रियधर्मा है पर दृढधर्मा नही है। (२) कोई दृढधर्मा है, पर प्रियधर्मा नही है। (३) कोई प्रियधर्मा भी है और दृढधर्मा भी है। (४) कोई न प्रियधर्मा ही है और न दृढ़धर्मा ही है।

9. There are four types of men, namely—(1) Some-one discards the ascetic robe but does not discard ascetic discipline. (2) Some-one discards ascetic conduct but does not discard ascetic robe. (3) Some-one discards both ascetic robe and ascetic conduct. (4) Some-one neither discards ascetic robe nor ascetic conduct.

10. (Again) Men are of four types, namely—(1) Some-one discards *Dharma* but does not reject the code of the organization (*gana*). (2) Some-one rejects the code of the organization but does not reject *Dharma*. (3) Some-one rejects the code of the organization and also

rejects *dharma*. (4) Some-one neither rejects the code of the organization nor rejects *Dharma*.

11. (Again) Men are of four types, namely—(1) Some-one likes *Dharma* and also has strong attitude to follow it in life. (2) Some-one has staunch attitude to follow *Dharma* (spirituality) in his life but has no faith in it. (3) Some-one is devotee (*priya dharma*) and is also strict in ascetic conduct (*dridh dharma*). (4) One is neither a devotee nor is strict in ascetic conduct.

विवेचन : इन चौभंगियों मे साधक की धर्मदृढता आदि निम्न विषयो की चर्चा है–सूत्र ९ मे साधु–वेश और धर्म, संयम आदि भाव, सूत्र १० में धर्मभाव और गणसमाचारी की परम्परा, सूत्र ११ मे धर्मप्रेम और धर्मदृढता।

प्रथम चौभगी मे यह बताया गया है कि कई व्यक्ति किसी भी परिस्थिति मे अपने धर्मभाव और साधु–वेश दोनो को नही छोडते और गम्भीरता के साथ विकट परिस्थिति को पार कर लेते है। यह साधक आत्माओ की श्रेष्ठ अवस्था है। शेष भग वाला कोई साधक घबराकर बाह्य वेश–भूषा का और सयम–आचार का परित्याग कर देता है, किन्तु धर्मभावना या सम्यक् श्रद्धा को कायम रखता है। ऐसा साधक आत्मोन्नति से वचित रहता है, किन्तु दुर्गति का भागी नहीं होता है। कोई धर्मभाव का परित्याग कर देते हैं अर्थात् सयमाचरण और कषायो की उपशांति को छोड देते हैं, किन्तु साधु–वेश नही छोडते है। कई साधक परिस्थिति आने पर दोनो ही छोड बैठते हैं। ये तीनो भग वाले मार्गच्युत होते है। फिर भी दूसरे भग वाला धर्म का आराधक हो सकता है। इस चौभगी में चौथे भंग वाला साधक सर्वश्रेष्ठ है।

द्वितीय चौभगी के चौथे भग में बताया है कि कई साधक किसी भी परिस्थिति मे आगम–समाचारी और गच्छ–समाचारी किसी का भी भग नही करते किन्तु दृढता एव विवेक के साथ सम्पूर्ण समाचारी का पालन करते है, वे श्रेष्ठ साधक है। शेष तीन भग में कहे गये साधक अल्प सफलता वाले है। वे परिस्थितिवश किसी न किसी समाचारी से च्युत हो जाते है।

तीसरी चौभगी में धर्माचरणो की दृढता और धर्म के प्रति अन्तरंग प्रेम, इन दो गुणो का कथन है।

धर्मदृढता स्थिरचित्तता एवं गम्भीरता की सूचक है और धर्मप्रेम प्रगाढ श्रद्धा या भक्ति से सम्बन्धित है। किसी साधक मे ये दोनो गुण होते है, किसी मे कोई एक गुण होता है और किसी मे दोनो ही गुणों की मंदता या अभाव होता है। इन चौभंगियों से सम्बन्धित अनेक रोचक उदाहरण आचार्य श्री घासीलाल जी म कृत संस्कृत टीका में दिये गये है, जो इन विषयो को स्पष्ट करने वाले है।

Elaboration—In these classifications, the intensity of faith and conduct of the practitioner and the like has been discussed. In Sutra 9 *Dharma*, ascetic Life and the like in the tenth *Sutra* attitude towards *Dharma* and the tradition of the code of conduct of an organization of monks and in *Sutra* 11, the devotion towards *Dharma* and actually translating it in conduct has been discussed.

In the first classification, it has been stated that some persons do not discard their spiritual attitude and the ascetic robe under any

circumstances and with serenity overcome the most dreadful situation. This is the best state of practitioners of spirituality. Out of the remaining classifications, some in a state of bewilderness discard their ascetic robe, while some discard ascetic conduct but maintain the right faith in *Dharma* Such a practitioner cannot make spiritual progress but he does not go to a bad state of existence. Some ascetics discard their spiritual attitude, in other words, they do not subdue their passions and wavering in ascetic conduct, but they do not discard ascetic robe. Some practitioner discards both when a situation arise. All these three have gone astray from the path of liberation. Still the monk belonging to second classification can be a true practitioner of *Dharma*. The monk of the fourth type in this classification is ideal or the best of all.

It has been stated in the fourth part of the second classification that some practitioners of ascetic discipline, in any situation whatsoever do not disobey the code as mentioned in *Agams* and the code of conduct of the *gachha* (group) but with full determination and prudence practice the entire code of ascetic conduct. They are the best of all. The person belonging to the other three types get little success. They in some situation or the other commit fault somewhere in the practice of code of conduct.

In the third classification two qualities namely firmness in ascetic conduct and the inner devotion or faith in *Dharma* has been mentioned.

The firmness in ascetic conduct indicates stability of the mind and serenity and love for *Dharma* indicates deep faith and devotion. Some practitioners have both the qualities, some have only one of them while some have low intensity in both the qualities or do not have them at all. In the Sanskrit commentary by Acharya Ghasilal ji Maharaj many interesting examples concerning these classification have been mentioned that classify these subjects.

आचार्य एवं शिष्यों के प्रकार **TYPES OF ACHARYAS AND DISCIPLES**

१२. चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा-(१) पव्वावणायरिए नामेगे, नो उवट्ठावणायरिए (२) उवट्ठावणायरिए नामेगे, नो पव्वावणायरिए, (३) एगे पव्वावणायरिए वि, उवट्ठावणायरियए वि, (४) एगे नो पव्वावणायरिए, नो उवट्ठावणाययरिए-धम्मायरिए।

१३. चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा-(१) उद्देसणायरिए नामेगे, नो वायणायरिए, (२) वायणायरिए नामेगे, नो उद्देसणायरिए। (३) एगे उद्देसणायरिए वि, वायणयरिए वि, (४) एगे नो उद्देसणायरिए, नो वायणायरिए-धम्मायरिए।

१४. चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा-(१) पव्वावणंतेवासी नामेगे नो उवट्ठावणंतेवासी, (२) उवट्ठावणंतेवासी नामेगे, नो पव्वावणंतेवासी, (३) एगे पव्वावणंतेवासी वि उवट्ठावणंतेवासी वि, (४) एगे नो पव्वावणंतेवासी, नो उवट्ठावणंतेवासी-धम्मंतेवासी।

१५. चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा-(१) उद्देसणंतेवासी नामेगे, नो वायणंतेवासी, (२) वायणंतेवासी नामेगे, नो उद्देसणंतेवासी, (३) एगे उद्देसणंतेवासी वि वायणंतेवासी वि, (४) एगे नो उद्देसणंतेवासी, नो वायणंतेवासी-धम्मंतेवासी।

१२. चार प्रकार के आचार्य होते है, यथा-(१) कोई आचार्य (किसी एक शिष्य की अपेक्षा) प्रव्रज्या (दीक्षा) देने वाले होते हैं, किन्तु महाव्रतो का आरोपण (बडी दीक्षा) कराने वाले नहीं होते हैं। (२) कोई आचार्य महाव्रतों का आरोपण कराने वाले होते है, किन्तु प्रव्रज्या देने वाले नहीं होते है। (३) कोई आचार्य प्रव्रज्या देने वाले भी होते हैं और महाव्रतो का आरोपण कराने वाले भी होते है। (४) कोई आचार्य न प्रव्रज्या देने वाले होते है और न महाव्रतों का आरोपण कराने वाले होते हैं, वे केवल धर्मोपदेश देने वाले होते है।

१३. चार प्रकार के आचार्य होते है, यथा-(१) कोई आचार्य (किसी एक शिष्य की अपेक्षा) मूल पाठ की वाचना देने वाले होते है, किन्तु अर्थ की वाचना देने वाले नही होते है। (२) कोई आचार्य अर्थ की वाचना देने वाले होते है, किन्तु मूल पाठ की वाचना देने वाले नही होते है। (३) कोई आचार्य मूल पाठ की वाचना देने वाले भी होते हैं और अर्थ की वाचना देने वाले भी होते है। (४) कोई आचार्य मूल पाठ की वाचना देने वाले भी नहीं होते हैं और अर्थ की वाचना देने वाले भी होते है, वे केवल धर्माचार्य होते है।

१४. अन्तेवासी (शिष्य) चार प्रकार के होते है, जैसे-(१) कोई प्रव्रज्या-शिष्य है, परन्तु उपस्थापना-शिष्य नही है। (२) कोई उपस्थापना-शिष्य है, परन्तु प्रव्रज्या-शिष्य नही। (३) कोई प्रव्रज्या-शिष्य भी है और उपस्थापना-शिष्य भी है। (४) कोई न प्रव्रज्या-शिष्य है और न उपस्थापना-शिष्य है। किन्तु धर्मोपदेश से प्रतिबोधित शिष्य है।

१५. पुनः अन्तेवासी चार प्रकार के होते है, जैसे-(१) कोई उद्देशन-अन्तेवासी है, परन्तु वाचना-अन्तेवासी नही है। (२) कोई वाचना-अन्तेवासी है, परन्तु उद्देशन-अन्तेवासी नही है। (३) कोई उद्देशन-अन्तेवासी भी है और वाचना-अन्तेवासी भी है। (४) कोई न उद्देशन-अन्तेवासी है और न वाचना-अन्तेवासी है। किन्तु धर्मोपदेश से प्रतिबोधित शिष्य है।

12. *Acharyas* are of four types, namely—(1) Some *acharyas* (in respect of a disciple) consecrate in monkhood but do not grant five major vows (*Mahavrat* or *badi Diksha*). (2) Some *acharyas* give the five *Mahavrat* but do not consecrate in monkhood at initial stage. (3) Some *acharyas* consecrate in monkhood initially and also later bless him with five *Mahavrat* (major vows of monkhood). (4) Some *acharyas* neither consecrate in monkhood initially nor bless him with five *Mahavrats* later.

13. *Acharyas* are of four types, namely—(1) Some *acharyas* (in respect of a disciple) teach him the text but not its meaning. (2) Some *acharyas* teach the meaning but no the basic text. (3) Some *acharya* teach both the text and the meaning thereof. (4) Some acharyas neither teach the text nor the meaning. They are only *Dharmacharya* (head of the organization—the *Dharma*).

14. The disciples are of four types, namely—(1) Some-one is disciple due to consecration or initiation in monkhood but not due to granting of five *Mahavrats* (*Upsthapana*). (2) Some-one is disciple due to granting of five *Mahavrat* but not due to consecration. (3) Some-one is disciple due to both the granting of five *Mahavrat* and consecration in monkhood. (4) Some-one is disciple neither due to initial consecration in monkhood nor due to granting of five *Mahavrat*. He is disciple because he was influenced by the spiritual lecture.

15. Again disciples are of four types, namely—(1) Some-one is a disciple because he learns reading the text (*Uddeshan*) from his guru (teacher) but he does not learn its meaning from him (*Vachana*). (2) Some-one learns the meaning of the text from his guru but not the text. (3) Some-one learns both the text and also its meaning. (4) Some-one learns neither the text nor the meaning from the guru. But he was spiritually awakened by his teacher.

विवेचन : इन चौभंगियो मे गुरु और शिष्य से सम्बन्धित निम्नलिखित विषयो का कथन किया गया है–

(१) दीक्षादाता–प्रव्राजनाचार्य, और शिष्य–प्रव्राजनान्तेवासी कहा जाता है।

(२) बडी दीक्षादाता गुरु–उपस्थापनाचार्य और शिष्य–उपस्थानान्तेवासी।

(३) आगम के मूल पाठ की वाचनादाता उद्देशनाचार्य गुरु और शिष्य उद्देशनान्तेवासी।

(४) सूत्रार्थ की वाचनादाता गुरु वाचनाचार्य और शिष्य वाचनान्तेवासी।

(५) प्रतिबोध देने वला गुरु धर्माचार्य और शिष्य धर्मान्तेवासी।

किसी भी शिष्य को दीक्षा, बडी दीक्षा या प्रतिबोध देने वाले पृथक्–पृथक् आचार्य निर्धारित नहीं होते हैं अर्थात् आचार्य, उपाध्याय या अन्य कोई भी श्रमण–श्रमणी गुरु की आज्ञा से किसी को भी दीक्षा, बड़ी दीक्षा या प्रतिबोध दे सकते हैं। उनको इस सूत्र के "आयरिय" शब्द से सूचित किया गया है। इसी तरह शिष्य को भी भिन्न–भिन्न शब्दों से सूचित किया है।

इस प्रकार इन चौभंगियो के ये भंग केवल ज्ञेय हैं, अर्थात् इन चौभंगियो के किसी भंग को प्रशस्त या अप्रशस्त नही कहा जा सकता है। *(स्थानांग सूत्र, भाग १, पृष्ठ ५२२ से ५२८ पर भी ये सूत्र आये हैं।)*

Elaboration—In these classification, each mentioning four types, the following matters relating to the teacher and the disciples have been stated.

(1) **Pravrajnaacharya**—The *acharya* who has initiated in monkhood. His such disciple is called *pravrajanantevasi*.

(2) **Upasthapanacharya**—The acharya who conducts final initiation into five *Mahavrats*. Such a disciple is called *Upasthapanantevasi*.

(3) **Uddeshanacharya** is that *Acharya* who teaches how to read the basic text and his disciple is called *Uddeshanantevasi*.

(4) **Vachanacharya** is that *Acharya* who teaches the text and the meaning thereof and his disciple is called *Vachanatevasi*.

(5) **Dharamacharya** is that guru (teacher) who has initially taught the nature of *Dharma* and his disciple is called *Dharamanstevasi*

Separate *acharyas* are not specified for consecrating, granting major initiation (*badi diksha*) in monkhood or teaching the nature of spirituality. In other words any *Acharya, Upadhyaya* or, with the permission of the guru, any monk or nun can consecrate, grant five *Mahavrat* (major initiation) or teach the nature of *dharma* to any person. In this aphorism they have been denoted by the word '*ayariya*'. Similarly the disciple has been denoted by different words.

Thus, these classifications and their four types each are purely for knowledge. In other words none of them can be called worthy the sake of merit or demerit *(Sthanang Sutra, Part 1, pp 522 to 528 also contains these aphorisms)*

स्थविर के प्रकार TYPES OF STHAVIRS

१६. तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–(१) जाइ–थेरे, (२) सुय–थेरे, (३) परियाय–थेरे।

(१) सट्ठिवासजाए समणे निग्गंथे जाइ–थेरे। (२) ठाण–समवायांगधरे समणे निग्गंथे सुय–थेरे। (३) वीसवासपरियाए समणे निग्गंथे परियाय–थेरे।

१६. स्थविर तीन प्रकार के होते हैं, यथा–(१) जाति–(वय)–स्थविर, (२) श्रुत–स्थविर, (३) पर्याय–स्थविर।

(१) साठ वर्ष की आयु वाले श्रमण–निर्ग्रन्थ वय–स्थविर हैं। (२) स्थानांग–समवायांग के धारक श्रमण–निर्ग्रन्थ श्रुत–स्थविर हैं। (३) बीस वर्ष की दीक्षा–पर्याय के धारक श्रमण–निर्ग्रन्थ पर्याय–स्थविर हैं।

16. *Sthavirs* are of three types—(1) *Jati Sthavir*, (2) *Shrut Sthavir*, (3) *Paryaya Sthavir*.

तीन प्रकार के स्थविर

Illustration No. 12

धान्यादि युक्त उपाश्रय

ाश्रय) रहने योग्य नही है। जैसे-

गेहूँ, चावल, मूँग, तिल आदि धान्य जमीन पर बिखरा पडा हो। जहाँ ारियो मे, मिट्टी लिपे बर्तनो मे, मिट्टी की कोठियो मे या मचान आदि रबन्द टोकरियो मे पडा हो, ऐसा सचित्त धान्ययुक्त स्थान।

अनेक प्रकार की मदिरा व रस आदि के घडे भरे रखे हो तथा पीने के ाए रखे हो ।

-बृह, उ २ सू ४ ५

अग्नि जलती हो अथवा जहाँ दीपक आदि रातभर जलते रहते हो, ऐसे ठहरे।

-बृह, उ २, सू ६, ७

य के भीतर दूध, दही, पूडी, मिष्ठान्न आदि विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ ा साध्वी-साध्वी के ठहरने योग्य नही है।

-बृह, उ २, सू ८, ९, पृ २३९

'ASHRYAYA WITH GRAINS

ıyas (places of stay) are not suitable for monks and

'heat, rice, pulses, sesame and other grains are ‹und Where millet, wheat and other grains are ts plastered with clay, earthen silos, lofts or other ıth cow-dung and clay Any such place with sachit

ɔitchers filled with a variety of wines and juices are n-boiled drinking water is stored in pitchers

—Brihatkalp 2/4, 5

चित्र परिचय-११

श्रमण-श्रमणी के लिए निषिद्ध

१ दकतीर-जहाँ तालाब आदि का किनारा हो, पशु स्त्रियाँ जल भरने आती हो, श्रमण-श्रमणी ऐसे स्थान पर बैठे। ऐसे स्थान से लौटकर चले जाये।

२. चित्रो वाला स्थान-जिस स्थान, भवन आदि की दी देवियो तथा पशु-पक्षियो आदि के जोडे व कामोत्तेजक म स्थान पर भी नही ठहरे।

३. प्रतिबद्ध स्थान-जिस घर की एक छत के नीचे ग उनका खाना-पीना बनता हो, ऐसे स्थान पर साधु को यदि उस छत के नीचे अलग-अलग कमरे बने हो तो ि ऐसे स्थान पर ठहर सकती है।

-बृह

PLACE OF STAY PROHIBI SHRAMAN-SHRAM.

1. Daktir—At the bank of a lake where animals and birds come to drink to collect water, monks and nuns shoulc or sit They should turn back from such

—

2. Place with paintings—They shoı places or houses where walls abound erotic paintings of men-women, gods and birds.

3. Confined place—A monk should

(1) A monk who is of sixty years or more in age is called *Jati Sthavir* or *Vaya Sthavir*. (2) A monk who has thoroughly studied and retained in memory *Sthanang* and *Samvayang Sutra* is called *Shrut Sthavir*. (3) A monk who has at least twenty years of monkhood to his credit is called *paryaya sthavir*

विवेचन : आचार्य श्री घासीलाल जी म. ने टीका मे बताया है–इन तीनों प्रकार के स्थविरो की विविध प्रकार से सत्कार-सम्मान आदि वैयावृत्य करनी चाहिए। जैसे वय-स्थविर को उनकी अवस्था तथा प्रकृति अनुसार आहार उपधि आदि देना। अनुकूल कोमल शय्या देना। कही विहार करे तो उनका उपधि आदि भार अन्य को उठाने के लिए देना। जो ज्ञान व तप आदि में बडे है, उनका वन्दनादि कृतिकर्म करना। योग्य आहार-पानी समर्पित करना। उनके गुणो की प्रशसा करना। उनसे नीचे आसन पर बैठना। इत्यादि प्रकार से श्रुत-स्थविर का सम्मान करना। तीसरे पर्याय-स्थविर का विनय करना इन्हे सम्मान देना आदि विधि से उनका सम्मान व वैयावृत्य करना चाहिए। *(व्यवहारसूत्र, सस्कृत टीका, पृष्ठ २५८)*

Elaboration—Acharya Shri Ghasilal ji Maharaj has stated in his commentary that these three types of *Sthavirs* should be respected and served in different ways. A *Vaya (Jati) sthavir* should be given food, cloth and the like (*Upadhi*) keeping in view his age and his nature. He should be offered soft bed. During his wanderings, his articles should be given to some-one else for carrying them during the journey. Those monks who are senior in spiritual knowledge and ascetic austerities, they should be respected by salutation. They should be offered food and water. Their good qualities should be appreciated. One should sit on a seat, which is at a lower level than those monks. In this way *Shrut Sthavir* should be respected. The third type namely *paryaya sthavir* should be greeted with respect and one should be humble towards them and serve them.

बड़ी दीक्षा देने का कालप्रमाण TIME PERIOD FOR INITIATION IN FIVE MAHAVRAT (BADHI DIKSHA)

१७. तओ सेहभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–(१) सत्तराइंदिया, (२) चाउम्मासिया, (३) छम्मासिया। छम्मासिया उक्कोसिया। चाउम्मासिया मज्झमिया। सत्तराइंदिया जहन्निया।

१७. नवदीक्षित शिष्य की तीन शैक्ष-भूमियाँ होती हैं, जैसे–(१) सप्तरात्रि, (२) चातुर्मासिकी, (३) षाण्मासिकी। उत्कृष्ट छह मास से महाव्रत आरोपण करना। मध्यम चार मास से महाव्रत आरोपण करना। जघन्य सात दिन-रात के बाद महाव्रत आरोपण करना।

17. The newly initiated monk has three stages of remaining disciple as such. They are—(1) Seven days, (2) Four months, (3) Six months. The maximum period is six months after which one should be consecrated in five Mahavrats (if one is otherwise fit). The middle period is of four months for initiating in *Mahavrats* while the minimum period is seven days.

[1]विवेचन : दीक्षा देने के बाद एवं उपस्थापना के पूर्व की मध्यगत अवस्था को यहाँ शैक्ष–भूमि कहा गया है। जघन्य शैक्षकाल सात अहोरात्र का है, इसलिए कम से कम सात रात्रि व्यतीत होने पर अर्थात् आठवें दिन बडी दीक्षा दी जा सकती है। उपस्थापना सम्बन्धी अन्य विवेचन व्यव., उद्दे ४, सूत्र १५ पर किया जा चुका है।

प्रतिक्रमण एवं समाचारी अध्ययन के पूर्ण न होने के कारण मध्यम और उत्कृष्ट शैक्ष–काल हो सकता है, अथवा साथ मे दीक्षित होने वाले कोई माननीय पूज्य पुरुष का कारण भी हो सकता है।

Elaboration—The period between consecration (*diksha*) and awarding five *Mahavrats* (*Upasthapana*) is called (*Shaiksh-bhoomi*) probation period. Since the minimum prescribed probation period is seven days, so five *Mahavrats* can be granted only on the eighth day or later but not earlier to it. Detailed discussion about *Upasthapana* has already been made in *Vyavahar Sutra Udd.* 4, *Sutra* 15.

In case one is able to completely memorise *pratikraman* and study the code of conduct of the organization, the probation period can be the middle one or maximum one. It can also be due to simultaneous consecration of elderly respectable person in monkhood.

बालक–बालिका को बड़ी दीक्षा देने का विधि–निषेध

PROCEDURE/REFUSAL OF GRANTING MAHAVRATS (BADI DIKSHA) TO YOUNGSTERS

१८. नो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा खुड्डगं वा खुड्डियं वा ऊणट्ठवासजायं उवट्ठावेत्तए वा संभुंजित्तए वा।

१९. नो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा खुड्डगं वा खुड्डियं वा साइरेग अट्ठवासजायं उवट्ठावेत्तए वा संभुंजित्तए वा।

१८. निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थियों को आठ वर्ष से कम उम्र वाले बालक–बालिका को बड़ी दीक्षा देना और उनके साथ आहार करना नही कल्पता है।

१९. निर्ग्रन्थ–निर्ग्रन्थियो को आठ वर्ष से अधिक उम्र वाले बालक–बालिका को बडी दीक्षा देना और उनके साथ आहार करना कल्पता है।

18. Monks and nuns are not allowed to award five *Mahavrats* (*badi diksha*) to such boys and girls who are less than eight years old and they cannot even dine with the group.

19. Monks and nuns are allowed to award five *Mahavrats* and dine collectively (after it) with those who are more than eight years of age.

विवेचन : पूर्व सूत्र में शैक्ष–भूमि के कथन से उपस्थापना काल कहा गया है और यहाँ पर क्षुल्लक–क्षुल्लिका अर्थात् छोटी उम्र के बालक–बालिका की उपस्थापना का कथन किया गया है।

यदि किसी बालक को माता–पिता आदि के साथ किसी कारण से छोटी उम्र के बालक को दीक्षा दे दी जाय तो कुछ भी अधिक आठ वर्ष अर्थात् गर्भकाल सहित नौ वर्ष के पूर्व बडी दीक्षा नहीं देनी चाहिए। इतना समय

पूर्ण हो जाने पर बड़ी दीक्षा दी जा सकती है। सामान्यतया तो इस वय के पूर्व दीक्षा भी नहीं देनी चाहिए। अत यह सूत्रोक्त उपस्थापना का विधान आपवादिक परिस्थिति की अपेक्षा से है, ऐसा समझना चाहिए। अथवा उपस्थापना से दीक्षा या बड़ी दीक्षा दोनों ही सूचित है, ऐसा भी समझा जा सकता है।

सूत्र में "संभुंजित्तए" क्रिया पद भी है, उसका तात्पर्य यह है कि उपस्थापना के पूर्व नवदीक्षित साधु को एक मांडलिक आहार नही कराया जा सकता है। क्योंकि तब तक वह सामायिक चारित्र वाला होता है। बड़ी दीक्षा के बाद वह छेदोपस्थापनीय चारित्र वाला हो जाता है।

Elaboration—In the earlier verse the time of initiation in *Mahavrat* is mentioned with reference to probation period while here it is with reference to the age of the person being initiated in monkhood.

In case a boy or girl of younger age (than the age prescribed) is initiated in monkhood alongwith his father or mother due to any reason, then he or she should not be granted five *Mahavrats* till the completion of nine years from the date of conception. Five *mahavrats* can be awarded only after completion of that age. Ordinarily even the first initiation (in *Samayik Charitra* for life) should not be done before completion of that age. So, this provision in the *Sutra* should be considered as an exception. It can also be understood that *Upasthapana* indicates both—the first consecration (in *Samayik*) and second consecration (in five *Mahavrats*)

In the aphorism, there is a word 'Sambhujittaye'. It means that before *Upasthapana*, a newly initiated monk is not allowed to dine in the group with other monks. It is because till then he is practicing only *Samayik Charitra*. After accepting *Mahavrat* (*badi diksha*) he is in *Chhedopasthapaniya Charitra*

बालक को आचारप्रकल्प के अध्ययन कराने का निषेध

PROHIBITION OF TEACHING ACHARKALP TO THE YOUNG

२०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा अवंजणजायस्स आयारपकप्पे णामं अज्झयणे उद्दिसित्तए।

२१. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा खुड्डगस्स वा खुड्डियाए वा वंजणजायस्स आयारपकप्पे णामं अज्झयणे उद्दिसित्तए।

२०. अव्यंजनजात अर्थात् युवा अवस्था प्राप्त हुए बिना बालक भिक्षु या भिक्षुणी को आचारप्रकल्प नामक अध्ययन पढ़ाना नहीं कल्पता है।

२१. व्यंजनजात अर्थात् यौवन प्राप्त भिक्षु या भिक्षुणी को आचारप्रकल्प नामक अध्ययन पढ़ाना कल्पता है।

20. The chapter named *Acharkalp* should not be taught to young *bhikshu* (monk) or young nun unless they have reached the stage of puberty (*avyanjan-jaat*)

21. A monk or nun who has reached the stage of puberty can be taught *Achar-prakalp*

विवेचन : यहाँ पर आचारागसूत्र और निशीथसूत्र को आचारप्रकल्प कहा गया है। इसका अध्ययन सोलह वर्ष से कम उम्र वाले साधु-साध्वी को कराने का निषेध किया गया है।

व्यंजनजात का अर्थ है-दाढ़ी तथा बगल में बाल आदि का उगना। यह युवावस्था की पहचान है।

Elaboration—Here *Acharanga Sutra* and *Nisheeth Sutra* are called *Achar-prakalp*. It is prohibited to teach these *Sutras* to a monk or nun who is less than sixteen years of age.

Vyanjanjaat means the growth of beard and hair in armpit. This is a symptom of youth.

दीक्षा-पर्याय के साथ आगमों का अध्ययनक्रम TEACHING OF AGAMS WITH PERIOD OF MONKHOOD

२२. तिवास-परियायस्स समणस्स निग्गंथस्स कप्पइ आयारपकप्पे नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। २३. चउवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ सूयगडे नाम अंगे उद्दिसित्तए। २४. पंचवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ दसा-कप्प-ववहारे उद्दिसित्तए। २५. अट्ठवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ ठाण-समवाए उद्दिसित्तए। २६. दसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ वियाहे नामं अंगे उद्दिसित्तए। २७. एक्कारसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लियाविमाणपविभत्ती, अगंचूलिया, वग्गचूलिया, वियाहचूलिया नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। २८. बारसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ अरुणोववाए, वरुणोववाए, गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए, नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। २९. तेरसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ उट्ठाणसुए, समुट्ठाणसुए, देविंदपरियावणिए, नागपरियावणिए नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३०. चोद्दसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ सुमिणभावणानामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३१. पन्नरसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ चारणभावणानामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३२. सोलसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ तेयणिसग्गे नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३३. सत्तरसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ आसीविसभावणाणामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३४. अट्ठारसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ दिट्ठिविसभावणाणामं अज्झयणे उद्दिसित्तए। ३५. एगूणवीसवास-परियायस्स समणस्स णिग्गंथस्स कप्पइ दिट्ठिवाय नामं अंगे उद्दिसित्तए। ३६. वीसवास-परियाए समणे णिग्गंथे सव्वसुयाणुवाई भवइ।

२२. तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले (योग्य तथा यौवन प्राप्त) श्रमण-निर्ग्रन्थ को आचारप्रकल्प नामक अध्ययन पढाना कल्पता है। २३. चार वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को

सूत्रकृतांग ...। २४. पाँच (छह-सात) वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प, व्यवहारसूत्र ....। २५. आठ (नव) वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को स्थानांग और समवायांगसूत्र ..। २६. दस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) नामक अंग ...। २७. ग्यारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को क्षुल्लिका विमानप्रविभक्ति, महल्लिका विमानप्रविभक्ति, अंगचूलिका, वर्गचूलिका और व्याख्याचूलिका नामक अध्ययन ....। २८. बारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलन्धरोपपात नामक अध्ययन ।। २९. तेरह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को उत्थानश्रुत, समुत्थानश्रुत, देवेन्द्रपरियापनिका नामक अध्ययन । ३०. चौदह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को स्वप्नभावना नामक अध्ययन । ३१. पन्द्रह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को चारणभावना नामक अध्ययन । ३२. सोलह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को तेजोनिसर्ग नामक अध्ययन । ३३. सत्तरह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को आसीविषभावना नामक अध्ययन ..। ३४. अठारह वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को दृष्टिविषभावना नामक अध्ययन ...। ३५. उन्नीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण-निर्ग्रन्थ को दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अग पढाना कल्पता है। ३६. बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ सर्वश्रुत को धारण करने वाला हो जाता है।

22. One is allowed to teach *Achar-prakalp* to an ascetic who has three years of monkhood to his credit (capable for it and has reached age of puberty). **23.** *Sutrakritanga* can be taught to those who have four years of monkhood to their credit. **24.** *Dashashrut Skandh, Kalp* and *Vyavahar Sutra* can be taught when five (six or seven) years have passed since consecration in monkhood. **25.** *Sthananga* and *Samvayanga Sutras* can be taught only to these who have completed eight (or nine) years in monkhood. **26.** *Bhagvati Sutra* can be taught to one who has completed ten years of monkhood. **27.** The chapter titled as *Kshullika Viman-pravibhakti, Mahallika Viman-pravibhakti, Anga-chulika, Varg-chulika* and *Vyakhya-chulika* can be taught to one who has completed eleven years of monkhood. **28.** The chapters titled *Arunopapaat, Varunopapaat, Garudopapaat, Dharnopapaat, Vaishramanopapaat* and *Velandharopapaat* can be taught to that ascetic who has completed twelve years of monkhood. **29.** The chapters titled *Utthanshrut, Samutthaanshrut, Devendra-pariyapanika* can be taught to one who has completed thirteen years of monkhood. **30.** The chapter captioned '*Svapna Bhavana*' can be taught to one who has completed fourteen years of age. **31.** The chapter titled *Chaaran-bhavana* can be taught to that monk who has completed fifteen years in monkhood. **32.** The chapter titled *Tejo-nisarg* can be taught to that monk who has completed sixteen years of

monkhood. 33. The chapter titled *Aaasivish-bhavana* can be taught to that monk who has completed at least seventeen years of monkhood. 34. The chapter titled *Drishtivish-bhavana* can be taught to that monk who has completed eighteen years of age. 35. The twelfth *Anga, Drishtivaad-bhavana* can be taught to that monk who has completed nineteen years of monkhood. 36. A monk having twenty years of service in monkhood can become one having knowledge of all scriptures.

विवेचन : इन पन्द्रह सूत्रों में क्रमशः आगमों के अध्ययन का कथन दीक्षा-पर्याय की अपेक्षा से किया गया है, जिसमें तीन वर्ष से लेकर बीस वर्ष तक का कथन है।

यह अध्ययन क्रम इस सूत्र के रचयिता श्री भद्रबाहु स्वामी के समय उपलब्ध श्रुतो के अनुसार है। उसके बाद में रचित एवं निर्यूढ़ सूत्रों का इस अध्ययन क्रम में उल्लेख नहीं है। अत उववाई आदि १२ उपांगसूत्र एव मूलसूत्रों के अध्ययन क्रम का यहाँ उल्लेख नहीं है। फिर भी आचारशास्त्र का अध्ययन कर लेने पर अर्थात् छेदसूत्रों के अध्ययन के बाद और ठाणांग, समवायाग तथा भगवतीसूत्र के अध्ययन के पहले या पीछे कभी भी उन शेष सूत्रों का अध्ययन करना समझ लेना चाहिए। इससे यह भी सूचित होता है कि उस समय तक उपर्युक्त आगम विद्यमान थे।

इन सूत्रो के अन्त मे यह बताया गया है कि बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय तक सम्पूर्ण श्रुत का अध्ययन कर लेना चाहिए। तदनुसार वर्तमान मे भी प्रत्येक योग्य भिक्षु को उपलब्ध सभी आगम श्रुत का अध्ययन बीस वर्ष मे परिपूर्ण कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत आगम अध्ययन क्रम के अनुसार दस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले श्रमण को भगवतीसूत्र पढाया जा सकता है। इसके आगे निर्दिष्ट सूत्रो के नाम वर्तमान मे अल्प प्रसिद्ध होने से इनका वर्णन आचार्य श्री घासीलाल जी म. कृत भाष्य अनुसार इस प्रकार है-

क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति में कल्प देव लोको के विमानो का संक्षिप्त वर्णन है। **महल्लिका विमान प्रविभक्ति** में उन्हीं विमानों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। अंगचूलिका, उपासकदशा आदि पाँच आगमों की चूलिका, अथवा निरयावलिका को भी अंगचूलिका कहा जाता है। **वर्ग चूलिका**-महाकल्प सूत्र की चूलिका। **विवाहचूलिका**-व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र की चूलिका। **अरुणोपपात** से **वेलंधरोपपात** तक के अध्ययनो मे उन-उन नाम वाले देवों के उपपात आदि व ऋद्धि का वर्णन है। जो श्रमण उन देवों का मन में चिन्तन कर जब उन अध्ययनों का परावर्तन करता है, तब उनके निकट उस-उस अध्ययन से सम्बन्धित देव प्रसन्न होकर दोनो हाथ जोडे, दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए प्रकट होकर उनकी सेवा पर्युपासना करते हैं। वेलंधर, धरण-वरुण नामक देव इनके पाठकों के पास गंधोदक की वर्षा करते हैं। अरुण, गरुड़, वैश्रमण देव उनके पाठकों के निकट परावर्तन समय में सुवर्ण-रजत आदि की वृष्टि करके हाथ जोडकर पूछते हैं-"आज्ञा दीजिए ! हम आपकी क्या सेवा करें ?"

उत्थान श्रुत-समुत्थान श्रुत-जब श्रमण स्वस्थ व एकाग्रचित्त होकर उत्थान श्रुत का परावर्तन करते हैं तब उस स्थान विशेष में रहने वाले कुल, ग्राम, नगर आदि में उद्वेग आदि उत्पन्न होने लगता है। तथा जब समुत्थान श्रुत का परावर्तन करते हैं तब सभी स्वस्थ चित्त हो जाते हैं।

देवेन्द्रोपपात-नागोपपात, इन अध्ययनों का परावर्तन करते समय स्वाध्याय करने वाले श्रमण के निकट देवेन्द्र तथा नागदेव (धरणेन्द्र) उपस्थित होकर सेवक की भाँति पर्युपासना करने लगते हैं। यह इन सूत्रों का प्रभाव है।

स्वप्नभावना नामक अध्ययन में ७२ प्रकार के स्वप्नो का शुभाशुभ फल प्रतिपादित है।

चारणभावना अध्ययन का पाठ करने वाले श्रमण को जंघाचारण, विद्याचारण लब्धि उत्पन्न होती है।

तेजोनिसर्ग अध्ययन का पाठ करते समय शरीर से विशेष प्रकार का दिव्य तेज प्रकाश निकलता है।

आशीविषभावना नामक अध्ययन के पाठ से आशीविष नामक लब्धि प्राप्त होती है। दृष्टिविषभावना अध्ययन से दृष्टिविष लब्धि प्राप्त होती है। दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग उन्नीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय पूर्ण होने पर पढ़ा जा सकता है। बीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण समस्त श्रुत द्वादश गणिपिटक का धारक हो सकता है। *(दृष्टव्य-आचार्य श्री घासीलाल जी म कृत संस्कृत टीका, पृष्ठ २६२-२६८)*

Elaboration—In these fifteen verses, the study of *Agams* is allowed on the basis of period of monkhood. The description is from the period of three years of monkhood upto twenty years.

This table of study of scriptures is according to scriptures available at the time of Shri Bhadrabahu Swami who authored this *Sutra*. Here there is no mention of those *Sutras* which were written later and of *Niryoodh Sutras*. So, there is no mention of twelve *Upanga* namely *Uvavayi Sutra* and others and *Mool Sutras* (*Dashavaikalik* and the like) in it. Still it should be understood that after studying *Achar Shastra* meaning thereby *Chhed Sutras* and before or after studying *Sthananga, Samvayang* and *Bhagvati Sutra* at any time these remaining *Sutras* can be studied. It also indicates that these *Agams* were not in existence till then.

In the end of these verses it has been stated that one should complete his study of all scriptures by the time he completes twenty years in monkhood. In view of it, even at present, every able monk should complete his study of all the available scriptures and *Agams* by the time he completes twenty years of monkhood.

According to the present table for study of *Agams, Bhagvati Sutra* can be taught to a monk who has completed ten years as monk. The titles of *Sutras* mentioned thereafter are less famous at present. According to *Bhashya* authored by Acharya Shri Ghasilal ji Maharaj, they are as under—

In *Kshullika Viman pravibhakti* there is a brief description of *Vimanas* in *kalp* heavens. In *Mahallika Viman pravibhakti* there is detailed description of those very *Vimanas*. The *Chulikas* of five *Agams* namely *Upasak Dasha* and others or *Nirayavalika* is also called *Angchulika*. The *chulika* of *Bhagvati Sutra* is called *Vivah Chulika*. From *Arunopapaat* up to *Varunopapaat*, there is the description of wealth and the like and the grandeur of the celestial beings of these

names. When a monk studies these chapters contemplating about the celestial being concerned, then the celestial being concerning that chapter feels pleased, appears before him with folded hands brightening all the ten directions, serves him and praises him. The celestial being called Velandhar, Dharan, Varun sprinkle *gandhodak* near such readers, Arun, Garud, Vaishraman sprinkle gold, silver and the like and with folded hands ask— "Please order us what should we do for you ?"

Utthan Shrut—Samutthan Shrut—When a monk with a healthy mind and full concentration studies *Utthan Shrut*, then among those families, villages and cities which are in that area, a great disturbance starts and when they study *Samutthaan Shrut*, all become healthy minded.

Devendropapaat—Nagopapaat—When a monk studies these chapters the master god of first heaven (*devendra*) and Dharnendra (master god of a category of *bhavanpati* gods) come there respectively and attend to him like a servant. This is the effect of these *Sutras*

Svapna-bhavana—In this chapter, the good or bad result of seventy two types of dreams has been mentioned

Chaaran-bhavana—With the study of *Chaaran-bhavana* one gains special powers of *Jangha-charan* and *Vidya-charan labdhis* (with which he can fly to a distance)

Tejo nisarg—When one studies it, a special type of divine light emits from the body.

Aashivish bhavana—By studying (and meditating on) this chapter one gets special power of *aashivish labdhi*. **Drishtivish bhavana**—By studying this chaper and meditating on it one gets special power of *drishtivish labdhi*. *Drishtivad*, the twelfth *Anga Sutra* can be studied only after completion of nineteen years of monkhood. Thus a monk having twenty years of monkhood to his credit can be expert in all the twelve *Angas* and scriptures. *(See Sanskrit Commentary by Acharya Ghasilal ji Maharaj, pp 262-268)*

वैयावृत्य के प्रकार एवं महानिर्जरा

TYPES OF SERVICE (VAIYAVRITYA) AND GREAT SHEDDING OF KARMAS (MAHA NIRJARA)

३७. दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—(१) आयरिय—वेयावच्चे, (२) उवज्झाय—वेयावच्चे, (३) थेर—वेयावच्चे, (४) तवस्सि—वेयावच्चे, (५) सेह—वेयावच्चे, (६) गिलाण—वेयावच्चे, (७) साहम्मिय—वेयावच्चे, (८) कुल—वेयावच्चे, (९) गण—वेयावच्चे, (१०) संघ—वेयावच्चे।

(१) आयरिय–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (२) उवज्झाय–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (३) थेर–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (४) तवस्सि–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (५) सेह–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (६) गिलाण–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (७) साहम्मिय–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (८) कुल–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (९) गण–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथ महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ। (१०) संघ–वेयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे महानिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ।

३७. वैयावृत्य दस प्रकार का कहा गया है, जैसे–(१) आचार्य–वैयावृत्य, (२) उपाध्याय–वैयावृत्य, (३) स्थविर–वैयावृत्य, (४) तपस्वी–वैयावृत्य, (५) शैक्ष–वैयावृत्य, (६) ग्लान–वैयावृत्य, (७) साधर्मिक–वैयावृत्य, (८) कुल–वैयावृत्य, (९) गण–वैयावृत्य, (१०) सघ–वैयावृत्य।

(१) आचार्य की वैयावृत्य, (२) उपाध्याय की वैयावृत्य, (३) स्थविर की वैयावृत्य, (४) तपस्वी की वैयावृत्य (५) शैक्ष की वैयावृत्य, (६) ग्लान की वैयावृत्य, (७) साधर्मिक की वैयावृत्य, (८) कुल (एक गुरु की परम्परा) की वैयावृत्य, (९) गण (एक प्रमुख आचार्य की परम्परा) की वैयावृत्य, (१०) संघ (सभी गच्छो का समूह) की वैयावृत्य, इन दसो की वैयावृत्य करने वाला श्रमण–निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है।

37. *Vaiyavritya* (Service) is of ten types namely—(1) Service of *Acharya*, (2) Service of *Upadhyaya*, (3) Service of *Sthavirs*, (4) Service of one practicing austerities, (5) Service of newly consecrated monk, (6) Service of the sick, the diseased, (7) Service of monk of same order (*Sadharmik*), (8) Service of monk of same family (*Kula*-monks belonging to the same guru), (9) Service of monks of same *gana* (group of monks belonging to the lineage of same *Acharya*), (10) Service of *sangha* (the organization—a collective group of many gachhas).

The monk who serves the ten above mentioned, sheds a great amount of *Karmas* and becomes totally free from all *Karmik* bondage (*maha-paryupasana*)

विवेचन : सूत्र मे कथित महानिर्जरा का अर्थ है–कर्मों की महान् निर्जरा तथा महा पर्यवसान का अर्थ है–सर्व कर्मों से मुक्त होना।

यहाँ आचार्य आदि दसो के कथन मे वैयावृत्य के पात्र सभी साधुओ का समावेश कर दिया गया है। भाष्य में वैयावृत्य तेरह प्रकार का बताया है, यथा–

(१) **आहार**–उक्त आचार्य आदि के लिए यथायोग्य आहार लाना व देना आदि। (२) **पानी**–पानी की गवेषणा करना एव लाना–देना आदि। (३) **शयनासन**–शयनासन की नियुक्ति करना, सस्तारक बिछाना या गवेषणा करके लाना तथा शय्या भूमि का प्रमार्जन करना। (४) **प्रतिलेखन**–उपकरणो का प्रतिलेखन करना व

शुद्धि करना। (५–७) पाए–औषध, भेषज लाना–देना या पाद–प्रमार्जन करना। (८) मार्ग–विहार आदि में उपधि वहन करना तथा उनके साथ–साथ चलना आदि। (९) राजद्विष्ट–राजादि के द्वेष का निवारण करना। (१०) स्तेन–चोर आदि से रक्षा करना। (११) दंडग्गाह–उपाश्रय से बाहर गमनागमन करते समय उनके हाथ में से दण्ड पात्र आदि ग्रहण करना अथवा उपाश्रय में आने पर उनके दण्ड आदि ग्रहण करना। (१२) ग्लान–बीमार की अनेक प्रकार से सँभाल करना, पूछताछ करना। (१३) मात्रक–उच्चार, प्रस्रवण खेल मात्रक की शुद्धि करना अर्थात् उन पदार्थों के एकान्त मे विसर्जन करना।

भाष्यकार ने बताया है कि सूत्र में कहे गये आचार्य पद से तीर्थंकर का भी ग्रहण समझ लेना चाहिए।

॥ दसवाँ उद्देशक समाप्त ॥

॥ व्यवहारसूत्र समाप्त ॥

Elaboration—The word '*Maha-nırjara*' mentioned in this verse means shedding great amount of *Karmas*. The word '*Maha paryavasan*' means to be free from all *Karmic* bondage.

Here in ten categories namely *Acharya* and others, all the monks who are worthy to be served have been included. In *bhashya*, service (*Vaiyavritya)* has been mentıoned of thirteen types, namely—

(1) **Ahar**—To bring food for *Acharya* and others and to give it to them. (2) **Paani (water)**—To find water, collect it and give ıt to *Acharya* and others. (3) **Shayansan**—To select bed, spread the bedding or to bring it by collecting it and to clean the area for taking rest and sleep for *Acharya* and others. (4) **Pratilekhan**—To examine properly the cloth, pot and other articles of *Acharya* and others and to clean them. (5-7) To bring medicine and others for *Acharya* and others or to clean their feet. (8) **Marg**—To carry the articles of *Acharya* and others during their wanderings and to move with then. (9) **Rajadvisht**—To remove the hatred of the ruler against *Acharya* and others. (10) **Stain**—To protect *Acharya* and others from thieves and the like. (11) **Dandaggah**—While going out from the *Upashraya*, to hold their wooden rod or pot and the like or to hold their rod, pot and others on their return to Upashraya. (12) **Glaan**—To attend to the sick monks *Acharya* and others in different ways, to enquire about their health. (13) **Matrak**—To dispose of the stool and urine of *Acharya* and others at lonely place.

The commentator has mentioned that the word *Acharya* in this verse includes *Tirthankar* also.

● TENTH UDDESHAK CONCLUDED ●

● VYAVAHAR SUTRA CONCLUDED ●

परिशिष्ट
APPENDIX
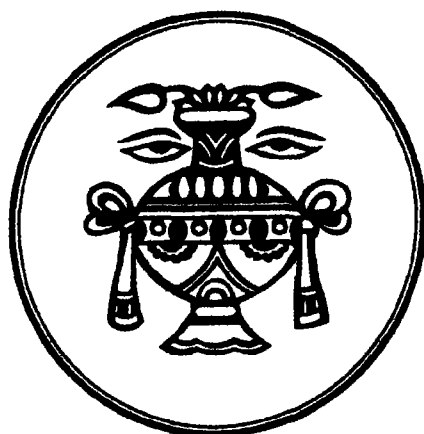
आगमों का अनध्यायकाल

(स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी महाराज द्वारा सम्पादित नन्दी सूत्र से उद्धृत)

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वर-विधा सयुक्त होने के कारण, इनका भी शास्त्रो में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है।

स्थानाग सूत्र के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या। इस प्रकार बत्तीस अनध्यायकाल माने गए है, जिनका सक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है-

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन-यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. दिग्दाह-जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित-बादलो के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत्-बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत' आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात-बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर दो प्रहर तक अस्वाध्यायकाल है।

६. यूपक-शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त-कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे-थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण-कार्तिक से लेकर माघ मास तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक वह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत-शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्यायकाल है।

१०. रज–उद्‌घात–वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूल छा जाती है। जब तक यह धूल फैली रहती है, स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११–१३. हड्डी, माँस और रुधिर–पंचेन्द्रिय, तिर्यंच की हड्डी, माँस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आसपास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, माँस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन–रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक तथा बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि–मल–मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान–श्मशान भूमि के चारो ओर सौ–सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण–चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण–सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन–किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र–पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाह–सस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै –शनै. स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्‌ग्रह–समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन–रात्रि स्वाध्याय नहीं करे।

२०. औदारिक शरीर–उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२१–२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा–आषाढ–पूर्णिमा, आश्विन–पूर्णिमा, कार्तिक–पूर्णिमा और चैत्र–पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९–३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्ध–रात्रि–प्रातः सूर्य उगने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे, सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे, मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घडी पहले और एक घडी पीछे एव अर्ध–रात्रि में भी एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार अस्वाध्यायकाल टालकर दिन–रात्रि में चार काल का स्वाध्याय करना चाहिए।

Appendix

INAPPROPRIATE TIME FOR STUDY OF AGAMS

(Quoted from Nandi Sutra edited by Late Acharya Pravar Shri Atmaram ji M.)

Scriptures should be studied only at the appropriate time as prescribed in the *Agams*. Study of scriptures at a 'time inappropriate for studies' (*anadhyaya kaal*) is prohibited

Detailed description of *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) is also included in *Smritis* (the corpus of *Sanatan Dharmashastra*) like *Manusmriti* Vedic people also mention about the *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) of the *Vedas*. This rule is applicable to other Aryan holy books. As Jain *Agams* are sermons of the Omniscient, ensconced by the *devas*, and phonetically composed, discussion about the *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies) is also included in the scriptures For example :

According to *Sthananga Sutra* there are thirty two slots of time defined as *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies)—ten related to sky, ten related to the gross physical body (*audarik sharira*), four relating to *mahapratipada* (the date following a specific full moon night), four relating to the date of the said full moon night, and four relating to *sandhya* (the four junctions of parts of the day, viz. morning, noon, evening and midnight) They are briefly described as follows

RELATING TO SKY

1. Ulkapat or Tarapatan—If a falling star or a comet is visible in the sky, scriptures should not be studied for three hours following the incident.

2. Digdaha—As long as the sky looks crimson in any direction, as if there was a fire, then study of scriptures should not be done.

3. Garjit—For three hours following thunder of clouds such studies are prohibited

4. Vidyut—For three hours following lightening such studies are prohibited.

However, the prohibition related to thunder and lightening is not applicable during the four months of monsoon. This is because frequent thunder and lightening is an essential attribute of that season. Thus this prohibition is relaxed starting from *Ardra* till *Svati Nakshatra* (lunar mansion or 27/28 divisions of the ecliptic on the path of the moon).

5. Nirghat—For six hours following thunder without clouds (demonic or otherwise) such studies are prohibited

6. Yupak—The conjunction of solar and lunar glows at twilight hour on first, second and third days of the bright half of a month (*Shukla Paksha*) is called *Yupak* During these dates such studies are prohibited during the first quarter of the night.

7. Yakshadeepti—Some times there is a lightening like intermittent glow visible in the sky. This is called *Yakshadeepti* As long as such glow is visible in the sky such studies are prohibited

8. Dhoomika-krishna—The months from *Kartik* to *Maagh* are months of cloud formation During this period smoky fog of suspended water particles is a frequent phenomenon. This is called *Dhoomika-krishna*. As long as this fog exists such studies are prohibited.

9. Mihikashvet—The white mist during winter season is called *Mihikashvet* As long as this exists such studies are prohibited

10. Raj-udghat—High speed wind causes dust storm. This is called *Raj-udghat*. As long as the sky is filled with dust such studies are prohibited.

RELATING TO GROSS PHYSICAL BODY

11-13. Bone, flesh and blood—As long as bone, flesh and blood of five sensed animals are visible and not removed from sight such studies are prohibited. According to the commentator (*Vritti*) if such things are lying up to a distance of 60 yards the prohibition is effective

This rule is applicable to human bones, flesh and blood with the amendment that the distance is 100 cubits and the effective period is one day and night. The period prohibited for studies is three days in case of a women in menstruation, seven days in case of male-child birth and eight days in case of a female-child birth.

14. Ashuchi—As long as excreta is visible and not removed from sight such studies are prohibited.

15. Smashan—Up to a distance of hundred yards in any direction from a cremation ground such studies are prohibited.

16. Chandra grahan—At the time of lunar eclipse such studies are prohibited for eight, twelve or sixteen hours

17. Surya grahan—At the time of solar eclipse such studies are prohibited for eight, twelve or sixteen hours.

18. Patan—On the death of a king or some other nationally eminent person such studies are prohibited as long as he is not cremated. Even after that, the period of study is kept limited as long as his successor does not take over.

19. Raaj-vyudgraha—During a war between neighbouring states such studies are prohibited as long as peace does not prevail. Studies should be resumed only 24 hours after peace is established.

20. Audarik Sharira—In case a five sensed animal dies or is killed in an *upashraya* (place of stay for ascetics) such studies are prohibited as long as the dead body is not removed This prohibition also applies if a dead body is lying within 100 yards of the place of stay

21-28. Four Mahotsavas and four Mahapratipada—*Ashadh, Ashvin, Kartik* and *Chaitra purnimas* (the full moon days of these four months) are called great festival days The days after these festival days are called *Mahapratipada*. On all these days such studies are prohibited.

29-32. Sandhya—During the twenty four minutes preceding and following the four junctions of parts of the day, viz morning, noon, evening and midnight such studies are prohibited

Studies of scriptures or other holy books should be done avoiding all these *anadhyaya kaal* (time inappropriate for studies)

विश्व में पहली बार जैन साहित्य के इतिहास में एक नये ज्ञान युग का शुभारम्भ

(जैन आगम, हिन्दी एव अग्रेजी भावार्थ और विवेचन के साथ। शास्त्र के भावों को उद्‌घाटित करने वाले बहुरंगे चित्रो सहित)

१. **सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र** — मूल्य ५००/-

भगवान महावीर की अन्तिम वाणी। आदर्श जीवन विज्ञान तथा तत्त्वज्ञान से युक्त मोक्षमार्ग के सम्पूर्ण अंगो का सारपूर्ण वर्णन। एक ही सूत्र में सम्पूर्ण जैन आचार, दर्शन और सिद्धान्तों का समग्र सद्‌बोध।

२. **सचित्र दशवैकालिक सूत्र** — मूल्य ५००/-

जैन श्रमण की अहिंसा व यतनायुक्त आचार संहिता। जीवन में पद-पद पर काम आने वाले विवेकयुक्त, सयत व्यवहार, भोजन, भाषा, विनय आदि की मार्गदर्शक सूचनाएँ। आचार विधि को रंगीन चित्रो के माध्यम से आकर्षक और सुबोध बनाया गया है।

३. **सचित्र नन्दी सूत्र** — मूल्य ५००/-

मतिज्ञान-श्रुतज्ञान आदि पाँचों ज्ञानो का विविध उदाहरणो सहित विस्तृत वर्णन।

४. **सचित्र अनुयोगद्वार सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,०००/-

यह शास्त्र जैनदर्शन और तत्वज्ञान को समझने की कुजी है। नय, निक्षेप, प्रमाण, जैसे दार्शनिक विषयों के साथ ही गणित, ज्योतिष, संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, प्राचीन लिपि, नाप-तौल आदि सैकडों विषयो का वर्णन है। यह सूत्र गम्भीर भी है और बडा भी है। अत. दो भागो में प्रकाशित किया है।

५. **सचित्र आचारांग सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,०००/-

यह ग्यारह अगो में प्रथम अंग है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, सम्यक्त्व, सयम, तितिक्षा आदि आधारभूत तत्त्वों का बहुत ही सुन्दर वर्णन है। भगवान महावीर का जीवन-चरित्र, उनकी छद्मस्थ चर्या का आँखो देखा वर्णन तथा जैन श्रमण का आचार-विचार दूसरे भाग में है। दोनों भाग विविध ऐतिहासिक व सांस्कृतिक चित्रों से युक्त।

६. **सचित्र स्थानांग सूत्र (भाग १, २)** — १,२००/-

यह चौथा अंग सूत्र है। अपनी खास संख्या प्रधान शैली में संकलित यह शास्त्र ज्ञान, विज्ञान, ज्योतिष, भूगोल, गणित, इतिहास, नीति, आचार, मनोविज्ञान, पुरुष-परीक्षा आदि सैकड़ों प्रकार के विषयों का ज्ञान देने वाला बहुत ही विशालकाय शास्त्र है। भावार्थ और विवेचन के कारण प्रत्येक पाठक के लिए समझने में सरल और ज्ञानवर्धक है।

७. **सचित्र ज्ञाताधर्मकथा सूत्र (भाग १, २)** — मूल्य १,०००/-

भगवान महावीर द्वारा प्रवचनों में प्रयुक्त धर्मकथाएँ, उद्‌बोधक, रूपक, दृष्टान्त आदि जिनके माध्यम से तत्त्वज्ञान सहज ही ग्राह्य हो गया है। विविध रोचक रंगीन चित्रों से युक्त। दो भागों में सम्पूर्ण आगम।

८. सचित्र उपासकदशा एवं अनुत्तरौपपातिकदशा सूत्र मूल्य ५००/-

सप्तम अंग उपासकदशा में भगवान महावीर के प्रमुख १० श्रावकों का जीवन-चरित्र तथा उनके श्रावक धर्म का रोचक वर्णन है। नवम अंग अनुत्तरौपपातिकदशा में उत्कृष्ट तप.साधना करने वाले ३३ श्रमणों की तप ध्यान-साधना का रोमांचक वर्णन है। भावों को स्पष्ट करने वाले कलात्मक रगीन चित्रों सहित।

९. सचित्र निरयावलिका एवं विपाक सूत्र मूल्य ६००/-

निरयावलिका में पाँच उपांग हैं। भगवान महावीर के परम भक्त राजा कूणिक के जन्म आदि का वर्णन तथा वैशाली गणतंत्राध्यक्ष चेटक के साथ हुए महाशिलाकटक युद्ध का रोमांचक सचित्र चित्रण तथा भगवान अरिष्टनेमि एवं भगवान पार्श्वनाथ के शासन में दीक्षित अनेक श्रमण-श्रमणियों का चरित्र इनमें है।

विपाक सूत्र में अशुभ कर्मों के अत्यन्त कटु फल का वर्णन है, जिसे सुनते ही हृदय द्रवित हो जाता है, तथा सुखविपाक में दान, तप आदि शुभ कर्मों के महान् सुखदायी पुण्य फलों का मुँह बोलता वर्णन है। भावपूर्ण रोचक कलापूर्ण चित्रों के साथ।

१०. सचित्र अन्तकृद्दशा सूत्र मूल्य ५००/-

आठवें अग अन्तकृद्दशा सूत्र मे मोक्षगामी ९० महान् आत्म-साधक श्रमण-श्रमणियो के तपोमय साधना जीवन का प्रेरक वर्णन है। यह सूत्र पर्युषण में विशेष रूप में पठनीय है। विविध चित्र व तपों के चित्रो से समझने मे सरल सुबोध है।

११. सचित्र औपपातिक सूत्र मूल्य ६००/-

यह प्रथम उपाग है। इसमे राजा कूणिक का भगवान महावीर की वन्दनार्थ प्रस्थान, दर्शन-यात्रा तथा भगवान की धर्मदेशना, धर्म प्ररूपणा आदि विषयो का बहुत ही विस्तृत लालित्ययुक्त वर्णन है। इसी में अम्बड परिव्राजक आदि अनेक परिव्राजकों की तप:साधना का वर्णन भी है।

१२. सचित्र रायपसेणिय सूत्र मूल्य ५००/-

यह द्वितीय उपाग है। धर्मद्वेषी प्रदेशी राजा को धर्मबोध देकर परम धार्मिक बनाने वाले महान् ज्ञानी आचार्य केशीकुमार श्रमण के साथ आत्मा, परलोक, पुनर्जन्म आदि विषयों पर हुई तर्कयुक्त अध्यात्म-चर्चा प्रत्येक जिज्ञासु के लिए पठनीय ज्ञानवर्द्धक है। आत्मा और शरीर की भिन्नता समझाने वाले उदाहरणों के चित्र भी बोधप्रद है।

१३. सचित्र कल्प सूत्र मूल्य ५००/-

कल्प सूत्र का पठन, पर्युषण में विशेष रूप मे होता है। इसमें २४ तीर्थंकरो का जीवन-चरित्र है। साथ ही भगवान महावीर का विस्तृत जीवन-चरित्र, श्रमण समाचारी तथा स्थविरावली का वर्णन है। २४ तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित सुरम्य चित्रो के कारण सभी के लिए आकर्षक उपयोगी है।

१४. सचित्र छेद सूत्र (दशा-कल्प-व्यवहार) मूल्य ६००/-

आचार-शुद्धि के लिए जिन आगमों में विशेष विधान है, उन्हें 'छेद सूत्र' कहा गया है। छेद सूत्रों में आचार-शुद्धि के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियमों का वर्णन है। चार छेद सूत्रो में दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प तथा

व्यवहार-ये तीन छेद सूत्र सभी श्रमण-श्रमणियो के लिए विशेष पठनीय है। प्रस्तुत भाग मे तीनो छेद सूत्रों का भाष्य आदि के आधार पर विवेचन है। अग्रेजी अनुवाद के साथ १५ रंगीन चित्रों सहित प्रकाशित है।

१५. **सचित्र भगवती सूत्र (भाग १)** **मूल्य ६००/-**

पचम अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र 'भगवती' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसमे जीव, द्रव्य, पुद्गल, परमाणु, लोक आदि चारो अनुयोगो से सम्बन्धित हजारो प्रश्नोत्तर है। यह विशाल आगम जैन तत्त्व विद्या का महासागर है। सक्षिप्त और सुबोध अनुवाद व विवेचन के साथ यह आगम लगभग ६ भाग मे पूर्ण होने की सम्भावना है। प्रथम भाग मे केवल १ से ४ शतक तक तथा १५ रगीन चित्रो सहित प्रकाशित है। सम्भवत इस सूत्र का प्रथम बार अग्रेजी मे विस्तृत अनुवाद किया जा रहा है।

- इस प्रकार १९ जिल्दो मे २२ आगम तथा कल्प सूत्र प्रकाशित हो चुके है। प्राकृत अथवा हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी अग्रेजी माध्यम से जैनशास्त्रो का भाव, उस समय की आचार-विचार प्रणाली आदि को अच्छी प्रकार से समझ सकते है। अग्रेजी शब्द कोष भी दिया गया है।
- पुस्तकालयो, ज्ञान-भण्डारो तथा सत-सतियो, स्वाध्यायियो के लिए विशेष रूप से सग्रह करने योग्य आगमो का यह प्रकाशन कुछ समय पश्चात् दुर्लभ हो सकता है।
- इस आगममाला के प्रकाशन मे परम श्रद्धेय उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म की अत्यन्त बलवती प्रेरणा रही है। उनके शिष्यरत्न जैन शासन दिवाकर आगमज्ञाता उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी म द्वारा सम्पादित है, इनके सह-सम्पादक है प्रसिद्ध विद्वान् श्रीचन्द सुराना। अग्रेजी अनुवादकर्त्ता है श्री सुरेन्द्र बोथरा तथा सुश्रावक श्री राजकुमार जी जैन।

IN THE HISTORY OF JAIN LITERATURE BEGINNING OF A NEW ERA OF KNOWLEDGE FOR THE FIRST TIME IN THE WORLD

(Jain Agams published with free flowing translation in Hind and English. Also included are multicoloured illustrations vividly exemplifying various themes contained in scriptures)

1. **Illustrated Uttaradhyayan Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The last sermon of Bhagavan Mahavir Essence of the ideal way of life and path of liberation based on philosophical knowledge contained in all Angas. The pious discourse encapsulating complete Jain conduct, philosophy and principles

2. **Illustrated Dashavaikalik Sutra** **Price Rs. 500/-**

   The simple rule book of ahimsa and caution based Shraman conduct rendered vividly with the help of multicoloured illustrations. Useful at every step in life, even of common man, as a guide book of good behaviour, balanced conduct and norms of etiquette, food and speech.

3. **Illustrated Nandi Sutra** **Price Rs. 500/-**

   All enveloping discussion of the five facets of knowledge including Mati-jnana and Shrut-jnana

4. **Illustrated Anuyogadvar Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,000/-**

   This scripture is the key to understanding Jain philosophy and metaphysics Besides philosophical topics like Naya, Nikshep and Praman it contains discussion about hundreds of other subjects including mathematics, astrology, music, poetics, ancient scripts and weights and measures. The complexity and volume of this could be covered only in two volumes

5. **Illustrated Acharanga Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,000/-**

   This is the first among the eleven Angas. It contains lucid description of ahimsa, samyaktva, samyam, titiksha and other fundamentals propagated by Bhagavan Mahavir. Eye-witness-like description of the life of Bhagavan Mahavir and his pre-omniscience praxis as well as details about ascetic conduct and praxis form the second part. Both parts contain multi-coloured illustrations on a variety of historical and cultural themes.

6. **Illustrated Sthananga Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,200/-**

This is the fourth Anga Sutra Compiled in its unique numerical placement style, this scripture is a voluminous work containing information about scriptural knowledge, science, astrology, geography, mathematics, history, ethics, conduct, psychology, judging man and hundreds of other topics The free flowing translation and elaboration make the contents easy to understand and edifying even for common readers

7. **Illustrated Jnata Dharma Katha Sutra (Parts 1 and 2)** **Price Rs. 1,000/-**

Famous inspiring and enlightening religious tales, allegories and incidents told by Bhagavan Mahavir presented with attractive colourful illustrations. This works makes the abstract philosophical principles easy to understand. This is the sixth Anga complete in two volumes

8. **Illustrated Upasak Dasha and Anuttaraupapatik Dasha Sutra** **Price Rs. 500/-**

This book contains the seventh and the ninth Angas The seventh Anga, Upasak Dasha, contains the stories of life of ten prominent Shravak disciples of Bhagavan Mahavir with a special emphasis on their religious conduct. The ninth Anga Anuttaraupapatik Dasha contains thrilling description of the lofty austerities and meditation done by thirty three specific ascetics With colourful illustrations

9. **Illustrated Niryavalika and Vipaak Sutra** **Price Rs. 600/-**

Niryavalika has five Upangas that contain the story of the birth of king Kunik, a devout disciple of Bhagavan Mahavir This also contains the thrilling and illustrated description of the famous Mahashilakantak war between Kunik and Chetak, the president of the republic of Vaishali. Besides these it also has life-stories of many Shramans and Shramanis of the lineage of Bhagavan Parshva Naath.

Vipaak Sutra contains the description of the extremely bitter fruits of ignoble deeds. This touching description inspires one towards noble deeds like charity and austerities the fruits of which have been lucidly described in its second section titled Sukha-vipaak. The colourful artistic illustrations add to the attraction.

10. **Illustrated Antakriddasha Sutra** **Price Rs. 500/-**

This eighth Anga contains the inspiring stories of the spiritual pursuits of ninety great men destined to be liberated. This Sutra is specially read during the Paryushan period. The illustrations related to austerities are specially informative.

11. Illustrated Aupapatik Sutra **Price Rs. 500/-**

This the first Upanga. This contains lucid and poetic description of numerous topics including king Kunik's preparations to go to pay homage to Bhagavan Mahavir, Bhagavan's sermon and establishment of the religious order This also contains the description of austerities observed by Ambad and many other Parivrajaks.

12. Illustrated Raipaseniya Sutra **Price Rs. 500/-**

This is the third Upanga. It provides an interesting and edifying reading of the discussions between Acharya Keshi Kumar Shraman and the anti-religious king Pradeshi on topics like soul, next life and rebirth. This dialogue turned him into a great religionist. The illustrations of the examples showing the difference between soul and body are also instructive

13. Illustrated Kalpa Sutra **Price Rs. 500/-**

Kalpa Sutra is widely read and recited during the Paryushan festival. It contains stories of life of 24 Tirthankars with more details about Bhagavan Mahavir's life It also contains the disciple lineage of Bhagavan Mahavir and detailed ascetic praxis. The illustrations connected with the 24 Tirthankars add to its attraction as well as utility

14. Illustrated Chheda Sutra (Dasha-Kalp-Vyavahar) **Price Rs. 600/-**

The Agams that contain special procedures for purity of conduct are called Chheda Sutra These Sutras enumerate subtle rules for purity of conduct. Of the four Chheda Sutras three should be specially read by all ascetics—Dashashrut-skandh, Brihatkalpa and Vyavahar. This edition contains these three Chhed Sutras with elaboration based on commentaries (Bhashya) and other works. It also includes English translation and 15 multicolour illustrations.

15. Illustrated Bhagavati Sutra (Part 1) **Price Rs. 600/-**

Vyakhya Prajnapti, the fifth Anga, is popularly known as Bhagavati. It contains thousands of questions and answers on various topics from four Anuyogas, such as soul, entities, matter, ultimate particle and universe. This voluminous Agam is an ocean of Jain metaphysics. With simple translation and brief elaboration it is expected to be completed in six

volumes. This first volume contains only one to four Shataks and 15 illustrations. This is probably for the first time that a comprehensive English translation of this Agam is being published.

- Thus till date 22 Agams and Kalpa Sutra have been published in 19 books. The English translation makes it possible for those with passing knowledge of Prakrit and Hind to understand the content of Jain Agams including the religious practices as prevalent in ancient times. Also included in some of these editions are glossaries of Jain terms with their meanings in English.
- Due to its demand by libraries, Jnana Bhandars, ascetics and lay readers this unique series may soon go out of print
- The publication of this Agam series has been inspired by Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev Bhandari Shri Padmachandra ji M. Its editor is his able disciple Uttar Bharatiya Pravartak Shri Amar Muni ji M His team includes renowned scholar Shri Srichand Surana as associate editor, Shri Surendra Bothara and Sushravak Shri Raj Kumar Jain, as English translators

Website : www.sachitrajainagam.com